सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

४

(१९ ३–१९ ५)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

अगस्त १९६ (भाद्रपद १८८२ शक)

साढ़े सात रुपये

निदेशक प्रकाशन विभाग दिल्ली–८ द्वारा प्रकाशित
और जीवणजी डाह्याभाई देसाई, नवजीवन प्रेस अहमदाबाद–१४ द्वारा मुद्रित

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमें अक्तूबर १९ ३से जून १९ ५तककी सामग्री दी गई है। इस समय गांधीजी जोहानिसबर्गमें थे और उनका समय तथा ध्यान धन्धेसे सम्बन्धित कार्यों और सार्वजनिक सेवामें बँटा रहता था। उनकी वकालत बहुत अच्छी चल रही थी और आमदनी भी खासी थी। एक पत्र-पुस्तिकामें उनके एक हजार पत्र उपलब्ध हैं। इनमें से ज्यादातर मुवक्किलोंके नाम हैं और सारेके-सारे लगभग तीन महीनेके अरसेमें लिखे गये हैं। उन दिनों वे अपने घरसे दफ्तरतक ६ मील रोज साइकिलपर आया करते थे और पीछे तो पैदल ही आने लगे थे। इससे मालूम होता है कि उन दिनों भी उनका जीवन कितना सादा था।

जून १९ ३में डर्बनसे साप्ताहिक *इंडियन ओपिनियन*का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। वह गांधीजीकी उदारतापूर्ण आर्थिक सहायतासे चालू रखा गया और अक्तूबर १९ ४में तो उन्होंने उसे पूरी तरह अपने हाथोंमें ले लिया। पत्रमें उनके समय और शक्तिका बड़ा भाग ही नहीं वरन् उनकी सम्पत्ति भी लगातार लगती रही। उन्होंने गोखलेको लिखा था (जनवरी १३, १९ ५) कि उनका दफ्तर अखबारके हितकी दृष्टिसे चलाया जा रहा है और वे अबतक ३५ पौंडकी जिम्मेदारी उठा चुके हैं।

सन् १९ ५की दो प्रमुख घटनाएँ थीं — जोहानिसबर्गमें प्लेग और फीनिक्स बस्तीकी स्थापना। गांधीजीने उस समय इन दोनों घटनाओंका जो उल्लेख किया है वह उनके द्वारा *आत्मकथा*में अधिक तटस्थ वृत्तिसे दिये गये विवरणकी पृष्ठभूमि है। इन दोनों उल्लेखोंमें कुछ मनोरंजक असमानता भी दिखाई देती है। जब मार्चमें जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्तीमें प्लेग फैला तब गांधीजीने बीमारीका विस्तार रोकने और बीमारोंकी सार-सँभालके लिए तत्काल जोरदार कार्रवाई प्रारम्भ कर दी। उनकी यह कार्रवाई इतनी दूरदर्शितापूर्ण और प्रभावकारी थी कि उसकी तुलना उनके प्रथम जीवनी लेखक रेवरेंड जे डोकने “उस गरीब आदमी से की है जिसने अपनी बुद्धिमत्तासे नगरकी रक्षा की थी” (*एक्लीजियास्टिकस* ९, १५)। इसके कई साल बाद जब गांधीजीने इस घटनाकी बात लिखी तब उन्होंने अपने साहसके बारेमें स्वयं थोड़ा संतोष व्यक्त किया क्योंकि उससे लोगोंकी सेवा हुई थी और लोगोंपर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा था। देखिए *आत्मकथा* (भाग ४ अध्याय १५, १६, १७)। किन्तु उस समय *इंडियन ओपिनियन*में गांधीजीने जो लेखमाला प्रकाशित की और समाचारपत्रोंमें उनकी जो मुलाकातें और चिट्ठियाँ छपीं उनसे इस बातका एक दूसरा ही पहलू प्रकट होता है। उनमें गांधीजीने भारतीयोंके जबरदस्त कामपर जोर दिया है और पूरी तरहसे इस बातको सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि प्लेग फैलनेका मुख्य कारण नगर-परिषदकी लापरवाही थी। गांधीजी इस दुःखजनक विषयपर दीर्घ कालतक निरन्तर लिखते रहे। अपने इस कामके विषयमें उन्होंने एक जगह कहा है कि वे इसे करते हुए “सत्य लोक-कल्याण और स्वदेशप्रेम” इन त्रिदेवोंकी आराधना कर रहे हैं।

उन्होंने समाचारपत्रोंको प्लेगके सम्बन्धमें जो पत्र लिखे और इसी कालमें निरामिष भोजनके विषयमें जो दिलचस्पी ली उनमे हेनरी एस एल पोलकका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। श्री पोलक *क्रिटिक* नामक पत्रके उपसम्पादक थे। दोनोंका स्वभाव समान होनेके कारण वे जल्दी ही एक-दूसरेके मित्र बन गये। दूसरे सज्जन अल्बर्ट वेस्ट इससे पहले

ब्रिटिश शासन-कालमें और भी कठोरतासे पालन किया जा रहा था। जनवरी १९०४के "सिंहावलोकन" शीर्षक लेखमें और दिसम्बर १९०४ के "सालाना लेखा-जोखा" शीर्षक लेखमें गांधीजीने भारतीयोंके आसपास छाई हुई घोर घटाओंका चित्र खींचा है और उन शुभ लक्षणोंका भी उल्लेख किया है जो उन्हें मानव स्वभावके प्रति अपने अटूट विश्वासके कारण दिखाई देते थे। उन्होंने कहा कि आपत्ति मनुष्यको खोज कर खरा बनाती है। वे कहते हैं "हमारा काम केवल यह है कि जिसे हम सही और न्यायपूर्ण समझते हैं उसे बराबर करते रहें और परिणाम भगवान पर छोड़ दें जिसकी अनुमति या जानकारीके बिना पत्ता भी नहीं हिलता।"

गिरमिटिया भारतीय मजदूरोंकी समस्याके सम्बन्धमें इस समयतक गांधीजीका रुख सख्त हो चुका था। उन्होंने भारत-सरकारके इस निर्णयका स्वागत किया कि जबतक ट्रान्सवालमें पहलेसे आबाद भारतीयोंकी अवस्थामें सुधार नहीं किया जाता तबतक भारतसे और अधिक मजदूरोंके प्रवासकी अनुमति नहीं दी जायेगी। उन्होंने गिरमिटिया एशियाई मजदूरोंका आयात करने और स्वतन्त्र एशियाइयोंको अमानुषताके साथ दास बनाये रखनेके प्रयत्नोंका विरोध किया। किन्तु इसका कारण कोई कोरी आदर्शवादी कल्पना नहीं थी बल्कि वे भावी पीढ़ियोंके कल्याणकी गहरी चिन्ता और उनके प्रति हार्दिक सहानुभूतिसे प्रेरित होकर यह करनेपर विवश हुए थे। किसी राजनीतिक या आर्थिक सिद्धान्तसे नहीं उन्होंने मानव-जातिके प्रति अपने प्रेमके कारण श्री स्किनरकी खानोंमें काम करनेवाले चीनी मजदूरोंके सम्बन्धमें पेश की गई रिपोर्टकी आलोचना की। उसी विचारसे प्रेरित होकर उन्होंने श्री क्रेसवेलके सोनेकी खानकी कम्पनीकी मैनेजरीसे इस्तीफा देनेपर सराहना भी की। श्री क्रेसवेलने इस्तीफा इसलिए दिया था कि मालिक अच्छे वेतनपर गोरे मजदूरोंकी नियुक्तिका विरोध करते थे और केवल मुनाफेकी चिन्तामें बाहरसे लाये हुए मजदूरोंको कम मजदूरी देकर कामपर लगाना चाहते थे ("श्री क्रेसवेलका समर्थन" २६-११-१९०३)। गांधीजी साधारणतया आफ्रिकियों या रंगदार लोगोंके कष्टोंकी चर्चा कभी कभी ही किया करते थे। युवक नेता गांधीके आचरणमें स्वदेशीकी भावना समा गई थी और उनका व्यवहार, भावी कार्यकर्ताओंके व्यवहारकी भाँति जितनी जिम्मेदारी ले सकते थे उसीसे मर्यादित होता था।

गांधीजी सदा समझौतेके लिए तैयार रहते थे — ऐसे समझौतेके लिए, जिससे यूरोपीयोंकी उचित इच्छाओं और हितोंकी पूर्ति भी पूर्ण रूपसे होती हो। उन्होंने इस बातका ध्यान रखकर ही प्रवास और व्यापारिक परवानोंके सम्बन्धमें ब्रिटिश भारतीय संघके उचित और नरम प्रस्तावोंका स्वागत किया। देशमें भारतीयोंकी बाढ़ की सम्भावनाको रोकनेके उद्देश्यसे केपके कानूनके नमूनेका प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम सुझाया और भारतीयोंके कारण यूरोपीय व्यापारको अनुचित रूपसे हानि न हो इसलिए उन्होंने सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलके अधिकारके साथ परवानोंपर नगरपालिकाओंके नियन्त्रणका सिद्धान्त स्वीकार किया। ("पत्र [illegible] १-९-१९०४)। उन्होंने लेडीस्मिथके भारतीय दुकानदारोंको टाउन क्लार्ककी हिदायतोंपर अमल करने और अपनी दुकानें जल्दी बन्द करनेकी सलाह दी ताकि यूरोपीयोंका विरोध समाप्त हो जाये। जब दीर्घकालीन और कठिन संघर्षके बाद हबीब मोटनके परीक्षात्मक मुकदमेमें भारतीय व्यापारियोंकी जीत हो गई, तब भी गांधीजीने उन्हें समझाया कि यद्यपि कानूनने उन्हें चाहे जहाँ व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता दे दी है तो भी वे इसका पूरा लाभ न उठायें बल्कि अपनी जीतके फलोंका उपभोग "धीरज और दूरदर्शितापूर्ण संयमसे" करें। अदालतकी न्याय-भावनाकी सराहना करते हुए उन्होंने लिखा "ब्रिटिश राज्यमें रंगभेद कितना ही तीव्र क्यों न हो सर्वोच्च न्यायालयके रूपमें सुरक्षाका एक आश्रय स्थान हमेशा उपलब्ध है। (सुयोग्य विजय १४-५-१९०४)। पचिफस्ट्रूमके "पहरेदारों" की हिंसा और

उत्तेजनासे दूर रहनेकी अपील करते हुए उन्होंने लिखा "ब्रिटिश शासनका इतिहास सांविधानिक विकासका इतिहास है। ब्रिटिश झंडेके नीचे कानूनकी इज्जत करना लोगोंकि स्वभावका हिस्सा बन गया है (पॉचिफस्ट्रूमके पहरेदार २४–१२–१९०४)।

गांधीजीने इस समयके लेखों और विशेषतः दादाभाई नौरोजीको लिखे गये अपने पत्रोंमें बार-बार अंग्रेजोंसे विवेक रखकर अपने पिछले वचनों और आश्वासनोंपर कायम रहनेकी अपील की है। किन्तु कभी-कभी उनका रुख कठोर हो जाता है जैसे उस समय जब वे ट्रान्सवालके सम्बन्धमें कहते हैं यहाँ रहनेवाली आबादीके साथ या तो अच्छा बरताव किया जाये या उसे देशसे खदेड़ दिया जाये। उनको देशसे निकालनेकी कार्रवाई सख्त तो होगी किन्तु वह गोलियाका जहर जैसा देकर धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूपसे प्राण लेनेकी क्रियाकी अपेक्षा कहीं अधिक मान्य होगी (८–१–१९०४)। कुछ महीनोंके बाद गांधीजीने देखा कि यदि ब्रिटिश भारतीय कानूनन प्राप्त अपने अधिकारोंके मुताबिक मनचाही जगह व्यापार करना चाहते हों और अपने व्यापार, सम्पत्तिके स्वामित्व और आवागमनके अधिकारोंके सम्बन्धमें यूरोपीयोंके समान आधारपर रखे जानेके दावेकी पूर्ति चाहते हों तो उन्हें जीवन-मरणके संघर्षमें उतरना पड़ेगा (२८–६–१९०५)

उन्होंने अपनी दृष्टिको एक क्षणके लिए भी विद्वेष रोष या ओछेपनके कारण धुंधला नहीं होने दिया। व्यक्तियों और राष्ट्रोंमें जो गुण था उसे स्वीकार किया। यहाँतक कि सर जॉन रॉबिन्सन डॉ. जेमिसन और भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगर जैसे विवादास्पद व्यक्तियोंमें उन्होंने कुछ-न-कुछ सराहनीय गुण देखे। राष्ट्रपति क्रूगर उनकी दृष्टिमें एक महान और ईश्वरपरायण व्यक्ति थे जो कभी-कभी गलत दिशामें जानेवाली एकनिष्ठ देशभक्ति" का एक उदाहरण छोड़ गये हैं (स्वर्गीय श्री क्रूगर २३–७–१९०४)।

तफसीलकी छोटीसे-छोटी बात उनके लिए छोटी नहीं थी। अभ्यासके युद्ध करते हुए "सामान्य जीवनकी छोटी-छोटी बातोंकी उन्होंने कभी उपेक्षा नहीं की। १७ और १९ अप्रैल १९०५ को छगनलाल गांधीके नाम लिखे गये पत्रोंमें उन्होंने बाहरसे आये हुए काम और अखबारकी निःशुल्क भेजी जानेवाली प्रतियोंकी लम्बी सूचीके सम्बन्धमें बड़ी फिक्रके साथ पूछताछ की है और अच्छी रोटी बनानेके लिए मैदे और घीके विधिवत् मिश्रणके सम्बन्धमें तफसीलवार हिदायतें भी दी हैं।

राजनीतिक सफलता और असफलताके समस्त उतार-चढ़ावोंसे गुजरते हुए गांधीजीने प्रारम्भसे ही *इंडियन ओपिनियन*का उपयोग सम्पादक और पाठकोंके बीच हार्दिक और स्वच्छ सम्बन्धोंकी स्थापना के लिए किया। उनका निशाना सोद्देश्य और सही दिशामें होता था। उन्होंने गुजराती और अंग्रेजी दोनोंमें एक ही विषयसे सम्बन्धित लेख लिखे हैं किन्तु गुजराती लेख अपेक्षाकृत विविध ज्ञानपूर्ण और लोक-कल्याणकी भावनाप्त भरे हुए हैं जब कि अंग्रेजीमें लिखे हुए लेख नैतिकतापरक अधिक हैं। इन दोनोंकी तुलना करनेसे यह विदित होता है कि पाठकोंका लेखककी नीति निश्चित करनेमें कितना बड़ा हाथ होता है। उनके "आरोग्य" और फुटकर टिप्पणियोंका सच्चा मूल्य चाहे जितना उनके धर्म-सम्बन्धी व्याख्यानोंकी भाँति ही यह जाहिर करते हैं कि वे अपने पत्र या सार्वजनिक कार्योंमें कितने ही व्यस्त क्यों न रहे हों किन्तु उनके कारण उनकी दृष्टिसे जीवनके आधारभूत सत्य कभी ओझल नहीं होने पाते थे।

पाठकोंको सूचना

इस खण्डमें जो प्रार्थनापत्र और स्मरणपत्र दिये गये हैं और जिनकी संख्या इससे पहले खण्डोंकी अपेक्षा कम है गांधीजीके लिखे हुए माने गये हैं। इस मान्यताके कारण कुछ विस्तारसे पहले खण्डकी भूमिकामें बताये जा चुके हैं। गांधीजी *इंडियन ओपिनियनमें* लिखते थे इसके सम्बन्धमें उनकी सामान्य साखी उनके आत्मकथा-सम्बन्धी लेखोंसे मिलती है। इसके अतिरिक्त उनके पुराने साथी श्री एच० एस० एल० पोलक और श्री छगनलाल गांधीकी राय एवं जहाँ कहीं मिली वहाँ अन्य साखीका विशेष लेखोंके लेखकत्वका निर्णय करनेमें उचित महत्व दिया गया है।

अंग्रेजी सामग्रीसे अनुवाद करनेमें हिन्दीको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधार कर अनुवाद किया गया है और मूलमें व्यवहृत शब्दोंके संक्षिप्त रूप हिन्दीमें पूरे करके दिये गये हैं।

गुजरातीसे अनुवाद करनेमें मुख्य उद्देश्य यह रखा गया है कि अनुवादमें मूल सामग्री सही-सही उतार दी जाये। किन्तु उसकी भाषामें हिन्दीपन लानेका प्रयत्न अवश्य किया गया है जिससे वह पढ़नेमें अच्छी हिन्दी लगे।

प्रत्येक लेखकी लेख-तिथि यदि वह उपलब्ध है दाहिने कोनेमें ऊपर दी गई है। यदि मूल लेखमें कोई तिथि नहीं थी तो चौकोर कोष्ठकोंमें अनुमानित तिथि जहाँ आवश्यक हो वहाँ कारणोंके साथ दे दी गई है। सूत्रके साथ अन्तमें दी गई तिथि प्रकाशनकी है। पत्रोंमें वे जिन्हें लिखे गये हैं उनके नाम और पते मूलमें उपलब्ध हैं तो सिरेपर बायें कोनेमें दिये गये हैं।

मूलकी भूमिकामें और मूल सामग्रीके भीतर चौकोर कोष्ठकोंमें जो-कुछ सामग्री दी गई है, वह सम्पादकीय है। गोल कोष्ठक जहाँ मूलमें आते हैं कायम रख लिये गये हैं। गांधीजीने लेखोंमें कभी-कभी अपने ही लेखों या पत्रोंसे उद्धरण दिये हैं। वे हाशिया छोड़कर महरी स्याहीमें छापे गये हैं।

मूल पाठको समझनेमें सहायक अधिकांश जानकारी पादटिप्पणियोंमें दी गई है। उनमें इसी खण्डमें अन्यत्र प्रकाशित सामग्रीके सन्दर्भमें विशेष लेखोंके शीर्षकों और उनकी तिथियोंका उल्लेख कर दिया गया है। सन्दर्भ पहले खण्डके अगस्त १९५८ के संस्करणसे लिये हैं। आत्म कथाके सन्दर्भ गांधीजीकी मूल गुजराती पुस्तक *सत्यना प्रयोगो* अथवा *आत्मकथाकी* नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित १९५२ की नवीं आवृत्तिसे लिये हैं। उनमें सम्बन्धित भाग और अध्याय मात्र दिये गये हैं क्योंकि विभिन्न आवृत्तियोंमें पृष्ठ-संख्याएँ विभिन्न हैं।

इस खण्डकी सामग्रीके साधन-सूत्र और इसके कालसे सम्बन्धित तारीखवार जीवन-वृत्तान्त खण्डके अन्तमें दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें एस० एन० संकेत साबरमती संग्रहालय अहमदाबादमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका जी० एन० गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और सी० डब्ल्यू० सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय द्वारा प्राप्त कागज-पत्रोंका सूचक है। संकेतोंमें कहीं कहीं सी० एस० ओ० कलोनियल सेक्रेटरीका ऑफिस के लिए और "सी० ओ० कलोनियल ऑफिसके लिए आते हैं।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम इन संस्थाओं और व्यक्तियोंके ऋणी हैं गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका पुस्तकालय नई दिल्ली नवजीवन ट्रस्ट और साबरमती आश्रम संरक्षक व स्मारक ट्रस्ट और संग्रहालय श्री छगनलाल गांधी अहमदाबाद भारत सेवक समिति पूना कलोनियल ऑफिस पुस्तकालय तथा इंडिया ऑफिस पुस्तकालय लन्दन प्रिटोरिया और पीटरमैरित्सबर्ग आर्काइव्ज सार्वजनिक पुस्तकालय केपटाउन सार्वजनिक पुस्तकालय जोहानिसबर्ग श्री अरुण गांधी बम्बई और *इंडिया इंडियन ओपिनियन आउटलुक* और स्टार समाचारपत्र।

अनुसन्धान और सन्दर्भकी सुविधाओंके लिए गांधी स्मारक संग्रहालय तथा इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय तथा सूचना और प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग नई दिल्ली साबरमती संग्रहालय और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय अहमदाबाद ब्रिटिश म्यूजियम पुस्तकालय लन्दन राजकीय पुस्तकालय प्रिटोरिया और विश्वविद्यालय पुस्तकालय जोहानिसबर्ग हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

विषय-सूची

चित्र-सूची

१ नेटालका प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम

अभीतक हम जिसे प्रवासी-प्रतिबन्धक विधेयकके[1] रूपमें जानते थे उसपर सम्राट्की मंजूरी मिल गई और वह सरकारी *गज़टमें* कानूनके रूपमें प्रकाशित कर दिया गया है। अब वह पूरी शक्ति और प्रभावसहित उपनिवेशमें लागू हो गया है। ब्रिटिश सरकारसे उसके मंजूर होनेमें कभी किसीको शंका नहीं रही। अब उपनिवेश बहुत शक्ति-सम्पन्न बन गये हैं और दिन-प्रतिदिन और भी अधिक शक्तिशाली बनते जा रहे हैं। इसलिए सम्राट्के भारतीय प्रजाजनोंके लिए तो उन सब नियन्त्रणोंके सामने धैर्य और शान्तिसे सर झुकाना ही रहा जो उपनिवेशी उनपर लादना पसन्द करें। बस हम भी लॉर्ड मिलनरके साथ-साथ यह आशा लगाये रहें कि समय बीतने पर, और बातचीतकी मददसे उपनिवेशी खुद ही अपने तरीकोंकी भूल समझ लेंगे और इस महान शक्तिशाली साम्राज्यके एक अंगके निवासियोंके नाते हमारे प्रति अपने कर्तव्योंको पहचानकर महसूस करने लगेंगे कि उन्हें उनका पालन करना चाहिए। पुराने और नये कानूनके बीच खास फर्क कहाँ-कहाँ है यह इस मौकेपर दिखाना अच्छा होगा।

पुराना

(१) भाषा-विषयक शर्त यह थी कि कानूनके साथ अर्जीका जो एक साधारण नमूना दिया गया था उसके अनुसार एक अर्जी यूरोपकी किसी भी भाषाकी लिपिमें लिख सकनेकी योग्यता अर्जदारमें हो।

नया

(१) प्रवासी-अधिकारी किसी भी अर्जीका मजमून बोलता जायेगा। वही अर्जदारको लिखना होगा।

पुराना

(२) अधिकारी प्रवासियोंके नाबालिग बच्चे जो २१ वर्षसे अधिक उम्रके नहीं होंगे उपनिवेशमें उनके साथ आ सकेंगे। बच्चोंके लिए भाषाकी कोई कसौटी नहीं होगी।

नया

(२) अब बालिग होनेकी उम्र मनमाने तौरपर १६ वर्ष निश्चित कर दी गई है।

पुराना

(३) हर-कोई आदमी जो यह सिद्ध कर सके कि वह दो वर्षसे उपनिवेशमें रह रहा है, उपनिवेशका निवासी होनेका प्रमाणपत्र पानेका अधिकारी होगा और इसलिए उसका प्रवेश निषिद्ध नहीं होगा।

नया

(३) यह अवधि अब बढ़ाकर तीन वर्ष कर दी गई है।

१ देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३८७-८८ तथा पृष्ठ ४१८-२५।

२ सर अल्फ्रेड मिलनर, दक्षिण आफ्रिकाके हाई कमिश्नर और गवर्नर (१८९७-१९०१) ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर उपनिवेश (१९०१-१९०५)।

पुराना

(४) अपने मित्रों अथवा मुख्तियारोंके द्वारा अर्जी देनेपर अर्जदारोंको अस्थायी प्रवेशपत्र दे दिये जाते थे।

नया

(४) अब यह आग्रह रखा जाता है कि अर्जदार खुद हाजिर होकर अर्जी दे।

पुराना

(५) कानून इस बारेमें कुछ नहीं कहता था कि अपनी पाँच सालकी गिरमिटकी अवधि-भर उपनिवेशकी सेवा कर चुकनेवाला गिरमिटिया मजदूर उपनिवेशका निवासी माना जायेगा या नहीं।

नया

(५) जहाँतक कानूनसे सम्बन्ध है इस तरह पाँच वर्षतक उपनिवेशमें जो रह चुका है वह उपनिवेशका बाशिन्दा नहीं माना जायेगा।

इस तरह इस विधेयकके खिलाफ ब्रिटिश भारतीयोंके युक्तियुक्त आपत्ति करनेपर भी पाँच आवश्यक बातोंमें उपनिवेशके कानूनमें निश्चय अधिक सख्त बना दिये गये हैं और इसका भी कोई भरोसा नहीं कि अब आगे और कुछ नहीं होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१-१९११

२. श्री वायबर्ग और एशियाई मजदूर

ट्रान्सवालके खान-आयुक्त श्री वायबर्गकी श्रम-आयोगके समक्ष दी गई गवाही अबतकके गवाहों द्वारा प्रयुक्त भूमिकाकी अपेक्षा अधिक ऊँची भूमिकापर स्थित है, और यद्यपि वे विधानपरिषदके सदस्य हैं फिर भी उन्होंने कुछ खरी-खरी बातें कहनेमें संकोच नहीं किया है। ट्रान्सवालमें एशियाई मजदूरोंको लानेके कट्टर और अचल विरोधी श्री क्विनके प्रश्नोंके जवाबमें उन्होंने जो बातें कहीं उनमें से कुछ अत्यन्त प्रभावकारी बातें हम नीचे दे रहे हैं।

श्री वायबर्गने कहा

> खानोंमें अकुशल गोरे मजदूरोंसे काम लेनेके जो प्रयोग हुए हैं उनके बारेमें मुझे प्रत्यक्ष कोई जानकारी नहीं है परन्तु मैं इस विवादका बहुत दिलचस्पीके साथ अध्ययन करता रहा हूँ। गोरे मजदूरोंके उपयोगके बारेमें मेरी राय इस प्रसिद्ध लोकोक्तिमें आ गई है कि जहाँ चाह है वहाँ राह भी है। अगर गोरे मजदूरोंके उपयोगकी इच्छा लोगोंमें बहुत प्रबल हो तो मुझे मानना ही पड़ेगा कि वैसा होकर रहेगा। मैं तो इसे मुख्यतः एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजनीतिक प्रश्न समझता हूँ। यह सब इसपर निर्भर है कि हम किस नीतिपर चलना चाहते हैं।
>
> इस प्रश्नका निर्णय पूर्णतः खानोंके मालिकोंको करना है कि खानोंमें गोरे मजदूरोंसे काम लिया जाये या स्थानीय अथवा बाहरके रंगदार जातिके मजदूरोंसे। वे अपने

इंजीनियरोंसे कह दें : हम चाहते हैं कि आप गोरे मजदूरोंको लानेका पूरा प्रयत्न करें और उनसे अधिकसे-अधिक और अच्छेसे-अच्छा काम किस तरह लिया जाये यह जो बतायेगा उसे खूब इनाम दिया जायेगा। अगर मालिक ऐसा करें तो मेरा खयाल है, गोरे मजदूरोंसे काम लेनेकी जोरोंसे कोशिशें होने लगेंगी और इसमें सफलता भी मिलने लगेगी। इसके विपरीत अगर खान-मालिक यह कहते रहेंगे : हम गोरे मजदूरोंको पसन्द नहीं करते; तो मेरा खयाल है इंजीनियर कभी गोरे मजदूरोंको लानेका यत्न करने और उसे सफल बनानेकी पर्याप्त प्रेरणा नहीं पायेंगे और इंजीनियरके रूपमें उन्हें ऐसी प्रेरणा मिलनी भी नहीं चाहिए।

श्री ह्वाइटसाइडके जवाबमें श्री बायवर्सने आगे कहा :

लड़ाईसे पहलेके दिनोंमें सार्वजनिक कामोंमें मुझे बहुत दिलचस्पी थी और किसी समय मैं दक्षिण आफ्रिकी संघका अध्यक्ष भी था। संघकी नीति यह थी कि जितने भी अधिक अंग्रेजोंको ट्रान्सवालमें लाया जा सके, लाना चाहिए। मेरी और मैं समझता हूँ हर अंग्रेजकी तब यही नीति थी। इस बारेमें कहीं दो रायें हो ही नहीं सकती थीं कि अंग्रेजोंको यहाँ आकर बसनेके लिए जितना अधिक प्रोत्साहन दिया जा सके, देना चाहिए। यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण थी। मैं समझता हूँ कि देशके हर वफादार आदमीका उद्देश्य यही होना चाहिए। परन्तु वफादार और गैर-वफादारकी बात अभी छोड़ दीजिए। मैं तो कहता हूँ कि अगर हम दक्षिण आफ्रिकाको कैनडा और आस्ट्रेलियाकी भाँति जो गोरोंके देश हैं साम्राज्यका महत्त्वपूर्ण भाग बनाना चाहते हैं तो हमको यही करना चाहिए। नहीं तो इसकी भी स्थिति अमेरिका ब्रिटिश गियाना अथवा उष्ण कटिबन्धके समीपस्थ अन्य देशोंकी जैसी हो जायेगी, जहाँ गोरे काम लेनेवाले मालिक हैं और अधिकांश असली निवासी गुलामोंसे कुछ ही अच्छे हैं। हमें इस स्थितिसे बचना चाहिए। इस दृष्टिसे यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि यहाँ अधिकांश आबादी गोरोंकी हो जाये और ये गोरे ऐसे हों जो अपना सारा काम खुद करें। यह एक बड़ा खतरनाक है कि अगर हमको दक्षिण आफ्रिकामें रंगदार मजदूर काफी नहीं मिलते तो हम इनकी पूर्ति किसी दूसरे जरियेसे कर लें।

श्री बायवर्सके इन प्रभावकारी वाक्योंसे स्पष्ट हो जाता है कि उनकी रायमें एशियासे लाये जानेवाले गिरमिटिया मजदूरोंकी स्थिति गुलामोंसे कुछ ही अच्छी होगी। वे सरकारी सहायतासे एशियासे मजदूर लानेका जो विरोध कर रहे हैं उसका एक आधार यह भी है। अब यह रुख ऐसा है जिसपर किसी भी समझदार आदमीको आपत्ति नहीं हो सकती। हम तो यही आशा करते हैं कि उनकी यथार्थ महत्त्वपूर्ण समझी जायेगी और जो लोग उचित और अनुचितका विचार छोड़कर केवल अपने कामकी खातिर एशियाई मजदूरोंका आयात करनेके लिए उत्सुक हैं उनके मनसूबे विफल कर दिये जायेंगे। स्पष्ट ही श्री बायवर्स एक सिद्धान्तप्रिय पुरुष हैं और अपने सिद्धान्तोंके इतने पक्के हैं कि वे जान देकर भी स्वार्थी वर्गोंके दबावका मुकाबला कर सकते हैं, क्योंकि श्री लिंडनने उनमें यह तथ्य समझकर लिया कि उन्हें संयुक्त स्वर्णनाश (कान्सालिडेटेड गोल्डफील्ड्स) को इसीलिए छोड़ना पड़ा। खान-मालिक श्री बायवर्ससे अपेक्षा करते थे कि वे अपने राजनीतिक विचारोंको दबा दें या बदल दें। एक दिलचस्प बात और भी ध्यानमें रखने लायक है — श्री बायवर्स यह नहीं मानते कि यहाँ देशी मजदूरोंकी किसी प्रकार

भी कमी है। जब श्री स्मिथने उनसे कहा कि आपके पहले जो गवाहियाँ गुजरी हैं उनसे आपके ये कथन मेल नहीं खाते तब भी श्री मायबर्गने कहा

> यहाँ जो कुछ हो रहा है उसे देखने-समझनेकी मुझे असाधारण सुविधाएँ प्राप्त हैं और मेरा तो खयाल है कि इन बाहरके जिलोंमें तत्काल बहुत अधिक मजदूरोंकी माँग होनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-१०-१९०३

२. ऑरेंज रिवर कालोनीमें ईश्वरका मजाक

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर सर हैमिल्टन जॉन गूल्ड-ऐडम्सने अपने दस्तखतोंसे घोषणा प्रचारित की है कि इस मासका अन्तिम रविवार नम्रता और प्रार्थनाका या कृतज्ञता-प्रकाशन-का — जैसी भी स्थिति हो — दिवस नियत किया गया है, ताकि हम अपने आपको परमात्माके सामने नम्र बनायें और उससे विनती करें कि वह इस देशको अनावृष्टिके कोपसे बचाये और यहाँ विपुल और स्फूर्तिदायिनी वर्षा करे। घोषणामें आगे कहा गया है कि अगर सर्वशक्तिमान प्रभुकी दयासे इससे पहले ही वर्षा हो जाये तो मैं घोषित करता हूँ कि वह दिन कृतज्ञता-प्रकाशनका दिन मनाया जाये। यह विधिका विधान है कि इस घोषणाके तुरन्त बाद ही एक नई घोषणा हुई है जिसमें तमाम रंगदार लोगोंके लिए चेचकके टीके लगवाना अनिवार्य घोषित किया गया है और कहा गया है कि अगर वे इसमें असफल रहेंगे तो उन्हें पाँच पौंड जुर्माना देना होगा अथवा उसके बदले १४ दिनकी कड़ी कैदकी सजा भुगतनी होगी। इन दो घोषणाओंका साथ-साथ प्रकट होना तो निःसन्देह विचित्र संयोगकी ही बात है। चेचकके खिलाफ इस सावधानीको हम तो आवश्यक ही मानते हैं, और जहाँतक रंगदार जातियोंके लिए यह टीका खास तौरपर अनिवार्य कर देनेका सवाल है, उसपर भी हमें कोई बहुत भारी शिकायत नहीं है। परन्तु चूँकि यह दूसरी घोषणा ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें हो रही है अतः यह रंगदार जातियोंके प्रति उस अत्यन्त विरोधी नीतिका नमूना है जो उपनिवेशको पुरानी सरकारसे विरासतके रूपमें मिली है।

फिर पहली घोषणाका अर्थ क्या रहा? प्राचीन कालमें जब मनुष्य अपने आपको नम्र बनाते थे तब कुछ त्याग करते, बहुत बड़ा आत्म-निरीक्षण करते, अपने पापोंका प्रायश्चित्त करते और इस तरह जीवनका नया अध्याय शुरू करते थे। इस घोषणाका मसविदा भी एक एक विभागने बनाया है और लेफ्टिनेंट गवर्नरने उसपर दस्तखत किये हैं। क्या इन दोनों सज्जनोंको कभी एक क्षण भरके लिए ही सही यह भी खयाल हुआ है कि इसमें उनका प्रायश्चित्त करनेका कहीं कोई इरादा नहीं है अथवा जिस सरकारका वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं उसकी नीतिका — चाहे वह जाति-भेदकी या जैसी भी रही हो — बदलनेका कोई विचारतक नहीं है? हम यह कहनेकी धृष्टता करते हैं कि उपनिवेशमें रंगदार जातियोंके प्रति अन्धा और बुद्धिहीन द्वेष भरा पड़ा है। जिन ब्रिटिश भारतीयोंकी सहायता आवश्यकताके समय उपनिवेशियोंने खुशीसे ली थी उनके लिए उन्होंने उपनिवेशके द्वार जान-बूझकर बन्द कर दिये हैं। याद रहे, ईश्वरका मजाक यह एक राष्ट्रीय पाप है। जबतक यह नीति जारी रखी जाती है तबतक उपनिवेशमें सर्वशक्ति

मान ईश्वरकी दृष्टिमें जो स्वीकार हो सके ऐसी नम्रता आ ही नहीं सकती क्योंकि वह तो मनुष्यकी चमड़ीके रंगको नहीं उसके गुणावगुणोंको देखेगा और तब निर्णय करेगा। हमारे सामने तो एशियाके पैगम्बर — हजरत ईसाका प्रमाण है। वे भी रंगदार जातिके ही थे। उन्होंने कहा है कि केवल तोतेकी तरह दुहराई गई प्रार्थना स्वर्गमें स्थान नहीं दिलाती। उनके शब्द हैं "जो आदमी 'हे प्रभु, हे प्रभु!' कहकर मुझे पुकारते हैं वे सभी स्वर्गके राज्यमें प्रविष्ट नहीं होंगे किन्तु वहाँ वही प्रवेश पायेगा जो मेरे पिताकी इच्छाका अनुसरण करता है।" प्रार्थना वही है जिसके साथ अनुरूप क्रिया भी हो अन्यथा वह व्यर्थ तोतारटन्त-मात्र है। बाइबिल कहती है "पृथ्वी परमात्माकी है।" उपनिवेशवासियोंने इस मूल वचनको बदल दिया है। वे कहते हैं "पृथ्वी हमारी है।" अतः जबतक ईश्वरकी आज्ञाओंको पैरों तले कुचला जाता है तबतक प्रार्थनाका दिन निश्चित करना निरा ढोंग है। फिर भी हम स्वीकार करेंगे कि घोषणा द्वारा ईश्वरका अपमान बुद्धिपूर्वक नहीं किया जा रहा है। यह तो संकट और जरूरतके समय ईश्वरके नाम निकली हुई हृदयकी पुकार है। परन्तु साथ ही यह हमारी स्वभावगत कमजोरीका एक सुन्दर उदाहरण भी है। हम ईश्वरको अपने नापसे नापते हैं और भूल जाते हैं कि उसके तरीके हमारे तरीकोंसे अलग हैं। अगर ऐसा नहीं होता तो जिसे हम भूलसे नम्रता और प्रार्थनाका नाम देते हैं उसके बावजूद हमसे बहुतसी चीजें छिन गई होती। प्रभु सर्वज्ञ है। उसका सूरज भले और बुरे सबको समान रूपसे प्रकाश देता रहता है।

परन्तु क्या हम परमश्रेष्ठ और उनकी सरकारसे क्षणभर रुकने और सोचनेके लिए नहीं कह सकते? घोषणासे इतना तो प्रकट है कि हृदयमें ईश्वरके प्रति श्रद्धा है। जिस हृदयमें ऐसी श्रद्धा निवास करती है क्या उसके लिए एक समस्त जातिको महज इसलिए कि उसकी चमड़ीका रंग उससे जुदा है, निन्दित बताना सुसंगत है, जबकि दोनों एक ही राजाके प्रति राजभक्तिके बंधनोंसे बँधे हैं? क्या ब्रिटिश भारतीयोंने ऐसी कोई बुराई की है, जिससे वे इतने अपमानित किये जानेके योग्य ठहरें जितने अपमानित वे उपनिवेशमें किये जाते हैं? किन्तु अगर रंगदार जातियोंके प्रति इस बिल्लाहटको जारी ही रखना है तो झूठमूठ नम्रताका नाम लेकर प्रार्थनाके लिए दिन मुकर्रर करके ईश्वर और मानवताके प्रति अपराध क्यों करते हैं?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१०-१९०७

४ एशियाई मुहकमा

अन्यत्र हम चार्ल्सटन गोल्डफील्ड्स न्यूज़के संवाददाताका एक पत्र छाप रहे हैं जिसे हमारे सहयोगी रैंड डेली मेलने उचित ही ज्ञानवर्धक बताया है। ट्रान्सवालकी वर्तमान सरकारने उपनिवेशके कार्योंके प्रबन्धपर जो भारी खर्च किया है उसकी चर्चा इस पत्रमें बहुत साफ-साफ भाषामें की गई है। अगर संवाददाताके बताये अंक अविश्वसनीय नहीं हैं, तो यह बिलकुल साफ है कि पिछली बोअर-सरकार हमारी वर्तमान सरकारके मुकाबलेमें कुछ भी नहीं ठहरती। गोल्डफील्ड्स न्यूज़के संवाददाताने जो लम्बी सूची दी है उसमें हम एशियाई मुहकमेको भी जोड़ सकते हैं जिसपर सालाना १ पौंड खर्च किये जाते हैं और इतनेपर भी एशियाइयोंको उसका तिलभर भी लाभ नहीं मिलता। पिछली सरकारके जमानेमें इस खर्च जैसा कोई खर्च नहीं था क्योंकि वह भारतीय हितोंकी चाहे कितनी ही विरोधी रही हो परन्तु उसने अलग एशियाई मुहकमा कभी नहीं खोला था। पाठकोंको याद होगा कि सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिकने[1] इस फी-आदमी एक पौंडके भारी अपव्ययका सख्त विरोध किया था क्योंकि ट्रान्सवालमें पूरे १ भारतीय भी शायद ही हों। फिर जब हम यह खयाल करते हैं कि यह खर्च उन लोगोंके नियन्त्रणके लिए किया जा रहा है जो संसारमें सबसे अधिक निर्दोष हैं तथा जो कभी पुलिसको परेशान नहीं करते तो आश्चर्य होता है कि ट्रान्सवाल सरकार इसके औचित्यको कैसे सिद्ध कर सकती है। और, सुन रहे हैं कि छँटनी आ ही रही है। उपनिवेशके सारे असैनिक प्रशासनकी सफाई की जानेको है। हमारा तो खयाल है कि एशियाई मुहकमा एक ऐसा मुहकमा है जिसे सबसे पहले छाँट दिया जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८–१–१९ १

५ जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्ती

जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदकी स्वास्थ्य-समितिने परिषदके सम्मुख एक प्रतिवेदन पेश किया है जिसे हम [illegible] लेकर अन्यत्र छाप रहे हैं। इसे पढ़कर दुःख होता है। अगर इस समितिकी सिफारिशोंको नगर-परिषद मान्य कर लेती है और सरकार भी इनके आधारपर दिये गये सुझावोंपर अपनी मंजूरी दे देती है, तो ट्रान्सवालमें बसे अधिकांश भारतीयोंकी किस्मतका फैसला हमेशाके लिए हो जाता है। यह स्मरणीय है कि ट्रान्सवालमें जितनी भारतीय आबादी है उसमें से आधीसे भी अधिक जोहानिसबर्गमें है। नगर-परिषदने जिस बस्तीको हालमें ही जब्त कर लिया है उससे कोई एक मीलके फासलेपर काफिरोंकी वर्तमान बस्ती है जिसे हमने देखा भी है। समितिकी मंशा है कि जिन लोगोंको पुरानी बस्तीसे स्थान-च्युत किया गया है केवल उन्हींको नहीं बल्कि जोहानिसबर्ग शहरमें बसे भारतीयोंको भी वहाँ रहनेके लिए मजबूर किया जाये। उनके लिए स्वास्थ्य-समितिने यही जगह चुनी है। साफ-साफ शब्दोंमें स्वास्थ्य-समितिका सुझाव यह है कि ब्रिटिश भारतीय दुकानदारोंके मुँहकी रोटी छीन ली जाये। वहाँ जानेपर

१ तत्कालीन विधान परिषद सदस्य।

आपसमें वे जो कुछ लेन-देन करें सो बात दूसरी है परन्तु व्यापारके मामले वहाँ कुछ भी होना सम्भव नहीं हो सकेगा। फिर भी लॉर्ड मिलनर हमें आश्वासन दे ही रहे हैं कि बाजारोंके लिए ऐसे स्थान चुने जायेंगे जिनमें भारतीयोंको शहरकी गोरी और काफिर — दोनों आबादियोंसे व्यापारका काफी हिस्सा मिल सकेगा। यह स्पष्ट नहीं है कि समितिने पहलेके ५ × ५ के बजाय अब जो १ × २ के बाड़े बनानेका सुझाव दिया है वह भारतीय बस्तीपर भी लागू है या नहीं। देखें सरकार इस अन्यायपूर्ण प्रस्तावके बारेमें क्या कहती है। ट्रान्सवालमें काम बहुत जल्दी-जल्दी होते हैं। करोड़पति चाहते हैं कि थोड़े वर्षोंमें ही यहाँका सब सोना निकाल लें। नगर-परिषदने हजारों निर्दोष लोगोंकी जमीनें बातकी बातमें छीन ली हैं इसलिए स्वास्थ्य समितिके नीचे लिखे वाक्यका अर्थ क्या है सो हम ठीक तरहसे समझ सकते हैं

> बर्गर्सडॉर्पकी पुरानी भारतीय मजदूर बस्ती और मलायी लोगोंके दूसरे हिस्सोंसे जिन एशियाइयोंको हटाया जायेगा उनको बसानेके लिए तुरन्त स्थानका प्रबन्ध करना अति आवश्यक है। अतः यह जरूरी है कि इस योजनाको जल्दसे-जल्द हाथमें लिया जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८–१०–१९०३

६ ट्रान्सवालके लिए परवाने

परवानोंके नियमोंके सम्बन्धमें एक विज्ञापन हमने पिछले अंकमें छापा था। हम अपने भारतीय पाठकोंका ध्यान उस विज्ञापनकी तरफ दिलाना चाहते हैं। इतने सीधे-सादे फिर भी कारगर नियम बनानेपर हम मुख्य परवाना-सचिव कप्तान हैमिल्टन फाउलको बधाई देना चाहते हैं। पाठक देखेंगे कि अब उन्हें परवाने प्राप्त करनेके लिए छ-छः जगहोंपर नहीं दौड़ना होगा। पहले अर्जदारोंको भिन्न-भिन्न शहरोंके परवाना-दफ्तरोंमें जाना पड़ता था। अब इसकी जरूरत नहीं रह गई है। हमारी रायमें यह कल्पना बहुत अच्छी और मौलिक है। अब तो शरणार्थीको सिर्फ इतना करना होगा कि वह परवानेके लिए अर्जीका एक फार्म प्राप्त कर के उसे भर दे मजिस्ट्रेटकी उपस्थितिमें उसपर अपने दस्तखत कर दे और मुख्य परवाना-सचिवके पास उसे भेज दे। बस इसके जवाबमें उसे इस अर्जीकी पहुँच लौटती डाकसे मिल जायेगी और फिर उसकी बारी आनेपर ट्रान्सवालमें प्रवेश पानेका अधिकारपत्र उसके पास पहुँच जायेगा। तब वह खुद जोहानिसबर्ग जाये और ट्रान्सवालमें बसनेका स्थायी अधिकारपत्र ले ले। कुछ लोगोंको शायद यह कुछ कठिन प्रतीत हो कि जो लोग ट्रान्सवालके दूसरे हिस्सोंमें बसना चाहते हैं उन्हें भी पहले जोहानिसबर्ग जाना पड़ेगा परन्तु यहाँ दो विकल्पोंमें से एकके चुनावकी बात थी। एक तो यह कि परवाने प्राप्त करनेके दफ्तर भिन्न-भिन्न शहरोंमें हों और दूसरा यह कि सब जोहानिसबर्ग जायें। सो इन दोनोंमें से दूसरा विकल्प हमें कम असुविधाजनक प्रतीत होता है क्योंकि इन आनेवालोंका बहुत अधिक प्रतिशत तो जोहानिसबर्गकी तरफ ही आकर्षित होता है। अर्जदारोंको याद रखना चाहिए कि ट्रान्सवालमें प्रवेशका अधिकारपत्र मिलनेके बाद उन्हें निश्चित समय मिलेगा जिसके अन्दर उन्हें वहाँ जरूर पहुँच जाना होगा। इसलिए उन्हें इस बातका खास तौरपर ध्यान रखना होगा कि वे वहाँ अवधि बीत जानेपर देरसे न पहुँचें। इन परवानोंके नियमोंमें शरणार्थियोंके लिए तो एक नया युग-सा शुरू हो गया है। जो चीज उन्हें बगैर किसी परेशानी और खर्चके आसानीसे मिल जानी चाहिए थी उसको पानेकी कोशिशमें

पहले उनकी गाढ़ी कमाईका बहुत-सा पैसा लुट जाता था। कप्तान फाउल अर्जदारोंको यह भी स्मरण दिलाते हैं कि अर्जीके फार्म या परवानेके लिए कोई शुल्क या कीमत नहीं देनी है और अगर अर्जदारको अनुमतिपत्रके दफ्तरके किसी कर्मचारीके खिलाफ कभी कोई शिकायत हो तो वह सीधा मुख्य परवाना-सचिवको सूचित करे। शरणार्थियोंको ध्यान रखना चाहिए कि उन्हें अपनी दरख्वास्तें किसी मुख्तियारके मार्फत नहीं सीधे खुद मुख्य परवाना-सचिवके पास भेजनी हैं। अब अगर वे मुख्तियारों या वकीलोंपर बेकार पैसा खर्च करेंगे तो इसमें दोष उन्हींका होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१-१९०३

७ पॉचिफस्ट्रूमका व्यापार-संघ

पॉचिफस्ट्रूमके व्यापार-संघके अध्यक्ष श्री हार्टलेने संघको दिये अपने वक्तव्यमें नीचे लिखी बातें कही हैं:

> कुलियोंके सवालपर संघ गंभीरतापूर्वक सोचता रहा है। हमारी कोशिश यह रही है कि अब नये परवाने न जारी किये जायें। और नये आये हुए लोगोंको उनके लिए बने *बाजारोंतक* ही सीमित रखा जाये। फिर भी हम देखते हैं कि शहरके अलग भागोंमें नई दूकानें खुल गई हैं। और स्थानीय अधिकारियोंसे हमें इस सवालका कोई सन्तोषजनक जवाब नहीं मिलता कि इस मामलेको निपटानेके लिए जो नया अध्यादेश जारी किया गया है उसपर अमल क्यों नहीं हो रहा है। दूसरे संघोंसे भी हमारी चिट्ठी-पत्री चल रही है कि हम सब मिलकर इस मामलेमें आगे बढ़ें। संघके सदस्योंसे मैं जोरदार अनुरोध करना चाहता हूँ कि कुलियोंके आगमनको रोकनेके लिए हर तरहकी कोशिश करनी चाहिए; क्योंकि यूरोपीय व्यापारियोंके लिए वे भयंकर खतरेका कारण साबित होनेवाले हैं।

स्पष्ट ही पॉचिफस्ट्रूमके सज्जन पूर्वी रान्डवाले पहरेदार संघ[1] (ईस्ट रैंड विजिलैंट्स) का अनुकरण कर रहे हैं। उन्हें इस बातकी बड़ी चिन्ता है कि पॉचिफस्ट्रूम नगरका एक-एक भारतीय दूकानदार एक ऐसी पृथक बस्तीमें भेज दिया जाये जहाँ उसे कोई धंधा ही न मिल सके। संघकी बैठकमें श्री हार्टलेने यह घोषित किया कि

> कुलियोंके प्रश्नके बारेमें मैं यह कह सकता हूँ कि यह मामला उच्च अधिकारियोंके विचाराधीन है और मुझे जो-कुछ बताया गया है उससे मुझे विश्वास होता है कि अच्छा होगा यदि अभी तीन महीने इसे हम जैसाका-तैसा छोड़ दें। इस अवधिमें मेरा खयाल है कि सरकार गोरे व्यापारियोंको सन्तोष देने योग्य कुछ कदम उठायेगी।

हम भली भाँति अनुमान कर सकते हैं कि वे उच्चाधिकारी कौन हो सकते हैं जिन्होंने श्री हार्टलेको आश्वासन दिया है कि तीन महीनेके अन्दर-अन्दर पॉचिफस्ट्रूम नगरमें से भारतीयोंको निकाल

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४३।

बाहर कर दिया जायेगा। और इन पृथक बस्तियोंके बारेमें हम जैसा सुन रहे हैं अगर वे ऐसी ही रहीं तो इन गरीब दूकानदारोंकी क्या दशा होगी! ख्याल देनेकी बात है जैसा कि श्री हार्टलेके बयानसे स्पष्ट है कि पॉचिफस्ट्रूमके यूरोपीय व्यापारी अपने साथी भारतीय व्यापारियोंके विरोधी हैं। इसलिए अगर सरकार उनकी बात मंजूर कर लेगी तो कहना होगा कि सारा व्यापार खुद ही हड़पनेकी इच्छा रखनेवालोंके स्वार्थपूर्ण आन्दोलनकी विजय हो गई। ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंपर अगले वर्ष क्या-क्या मुसीबतें आयेंगी इसका पहले ही अनुमान हो जानेपर कुछ महीने हुए परमश्रेष्ठ उच्चायुक्तको एक दरख्वास्त भेजी गई थी। इसपर परमश्रेष्ठ क्या जवाब देते हैं, यह जाननेके लिए हम अत्यन्त आतुर हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८–१–१९०३

८. चीनी मजदूरोंके बारेमें श्री स्किनरकी रिपोर्ट

खानमालिकोंके संघने श्री एच॰ रॉस स्किनरको संसारके उन तमाम भागोंके दौरेपर भेजा था जिनका चीनके साथ कुछ भी सम्पर्क है। वे लौट आये हैं और उन्होंने अपना प्रतिवेदन संघके सम्मुख पेश कर दिया है। वह जोहानिसबर्गके अखबारोंमें प्रकाशित हुआ है। उसमें मजदूरोंके हितोंकी चर्चाका एक भी अनुच्छेद ढूँढे नहीं मिलता। प्रतिवेदन योग्यतापूर्वक लिखा गया है और अंकों तथा तथ्योंसे भरा पड़ा है। तथापि भावनाके सर्वथा अभावके कारण वह एक अत्यन्त निराशाजनक विवरण है। खान-उद्योगसे सम्बन्धित मजदूरोंके प्रश्नपर एक *भावनाशून्य और विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टिके अलावा किसी दूसरे प्रकारकी आशा तो हमने* उनसे की भी नहीं थी। उनके सामने एकमात्र प्रश्न यही था कि खानोंके लिए मजदूर[1] कैसे प्राप्त करें, जिससे उद्योगको अधिकसे-अधिक और मजदूरोंको कमसे-कम लाभ हो। उन्होंने जोहानिसबर्ग स्पष्टतः छपे अपने साढ़े पाँच कालमवाले सारे प्रतिवेदनमें इसी प्रश्नका उत्तर देनेका यत्न किया है।

श्री स्किनर मजदूरोंपर नीचे लिखी शर्तें लगाना चाहेंगे

(१) कुछ वर्षोंकी निश्चित अवधितक काम करनेका इकरारनामा।

(२) कुछ वर्षोंके मजदूरों और निवासस्थानोंपर प्रतिबंध।

(३) इस अवधिमें उनके किसी प्रकारके व्यापार करने और कोई जमीन-जायदाद खरीदने या पट्टेपर लेनेपर प्रतिबन्ध।

(४) अगर शर्तकी अवधि नहीं बढ़ी तो अनिवार्य रूपसे वापस लौट जाना।

(५) अंग्रेजी कानून और आरोग्यके नियमोंका पालन आवश्यक। ये बातें चीनकी परम्पराओंसे एकदम भिन्न हैं।

पहली और पाँचवीं शर्तको छोड़कर शेष सारी शर्तें इस हेतुसे लगाई जायेंगी कि अपने मालिककी इजाजतसे अधिक कोई चीनी अपने शरीर या बुद्धिका लाभदायी उपयोग न करने पावे। इसके साथ-साथ श्री स्किनर इनपर जहाजोंकी प्रथा भी लागू कर देना चाहते हैं। इस प्रकार मजदूर एक निरा कैदी बन जायेगा। जैसा कि *स्टारने* गम्भीरतापूर्वक सुझाया

1. ट्रान्सवालके खान-व्यवसाय मालिकोंने चीनसे २, गिरमिटिया मजदूर बुलानेका प्रस्ताव किया था। देखिए खण्ड ३ पृष्ठ ४८१।

है अब तो केवल एक काम रह जाता है कि इन पट्टोंके साथ मजदूरोंको लानेकी इस योजनाको विधानसभा अपनी मंजूरी प्रदान कर दे तो ट्रान्सवालकी मजदूर-समस्या हल हो जायेगी। श्री स्किनरके मन्तव्यके विपरीत हम आशा करते हैं कि यदि इस आशयका कानून मंजूर भी हो जाये — जिसके बारेमें हमें बहुत सन्देह है — तो भी जिनको प्रत्यक्ष सर्वनाशमें सिसकने हैं वे लोग कारकाटियों (लेबर-एजेंटों) द्वारा प्रस्तुत सारे प्रलोभनोंको ठुकरा देंगे और ऐसी अपमानजनक शर्तोंपर काम नहीं देंगे। तब खानोंके उद्योगका प्रश्न अपने आप और बाहिस्तासे गोरे उपनिवेशियों तथा देशी निवासियों दोनोंके लिए लाभदायक रूपमें हल हो जायेगा और चीनी या अन्य किसी एशियाई देशके सहायक मजदूरोंकी परेशानी-भरी समस्या भी सामने नहीं आयेगी। सच तो यह है कि खुद श्री स्किनरको डर है कि मजदूर कहीं मालिकोंके हितोंके विरुद्ध अपना संगठन आदि न बना लें। उनके प्रतिवेदनका वह हिस्सा उन्हींके शब्दोंमें हम नीचे दे रहे हैं :

> चीनियोंमें फ्रीमेसनरियोंके समान पारस्परिक सहयोगकी एक समर्थ प्रणाली होती है। एकताके सामर्थ्य और लाभोंको वे भली-भाँति जानते हैं। सैनफ्रांसिस्कोमें ऐसे छः संगठन हैं। अधिकांश प्रवासी चीनी उनमें से किसी-न-किसीके सदस्य हैं और उसे चन्दा देते रहते हैं। यह प्रणाली बहुत व्यापक है, परन्तु कुल मिलाकर इसका प्रभाव लाभप्रद ही होता है। ये संगठन अपने सदस्योंकी तरक्की और उनके मानपर अनेक प्रकारके व्यवसाय करते हैं मजदूरोंकी देख-भाल करते हैं पैसेका लेनदेन करते हैं, या उसे चीन भेजना हो तो उसका प्रबन्ध भी कर देते हैं। ये चीनियोंकी हर प्रवृत्तिमें दिलचस्पी रखते हैं और उनके हितोंकी रक्षा करते हैं। ये एक और काम भी करते हैं कि यदि कोई चीनी मर जाये तो कहनेपर मृतककी अस्थियाँ उसके रिश्तेदारोंके पास चीन भेज देते हैं। जिनका कार्य-क्षेत्र इतना व्यापक है ऐसी संस्थाएँ अगर रैंडमें भी स्थापित हो जायें तो यहाँके प्रवासी चीनियोंपर उनका गहरा प्रभाव पड़ेगा। कई बातोंमें जैसा कि ऊपर बताया गया है उनका प्रभाव हितकारी हो सकता है। परन्तु अगर कहीं उन्हें यह खयाल हो गया कि साधारण मजदूरीके विषयमें खानें पूर्णतः उन्हींपर अवलम्बित हैं तो इसमें खतरा भी है। इस कठिनाईको टालनेके लिए स्पष्ट ही यह आवश्यक है कि अभी हम काफिर मजदूरोंकी संख्या बढ़ानेके लिए जो यत्न कर रहे हैं वह बराबर और जोरोंके साथ जारी रखा जाये ताकि खानोंमें चीनी, काफिर और अन्य साधारण मजदूरोंकी संख्यामें एक प्रकारका सन्तुलन बना रहे। चीनके भिन्न-भिन्न भागोंसे लाये हुए मजदूरोंपर भी यह सिद्धान्त लागू किया जा सकता है। उदाहरणार्थ अनुभव यह हुआ है कि उत्तरी भागोंके चीनी दक्षिणी भागोंके चीनियोंके साथ शायद ही सहयोग करते हैं।

इस तरह श्री स्किनर "फूट फैलाकर राज करो" वाली चालसे काम लेना चाहते हैं। परन्तु हमारा खयाल है कि संगठनोंको तोड़नेमें विधानसभाके बनाये कानून मददगार होंगे ऐसा अगर श्री स्किनरको विश्वास हो तो वे बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं। उत्तर और दक्षिणी चीनके निवासी अपने देशमें भले ही लड़ रहे हों किन्तु यहाँ आनेपर समान विपत्ति उनमें एकता पैदा कर देगी और उन्हें बहादोंकी गैर तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके अपहरणके विरुद्ध लड़नेकी शक्ति प्रदान कर देगी। श्री स्किनरकी योजनाकी तफसीलोंको देखें तो वे दिलचस्प होते हुए भी हमारी रायमें एकदम अव्यावहारिक हैं। ज्यों ही वे चीनी डॉक्टरों तथा जमादारोंको लायेंगे त्यों ही श्री स्किनर

देखेंगे कि वे अपने लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता चाहेंगे और अनियन्त्रित रूपसे अपने दिमागका उपयोग भी करना चाहेंगे। यह दृश्य बड़ा मनोरंजक होगा जब दो समान बुद्धिवाली जातियोंमें एक जाति दूसरीकी बुद्धिके विकासको कुंठित करनेकी कोशिश करेगी। तफसीलें हम नीचे दे रहे हैं। पाठक खुद ही सोचें कि सर रिचर्ड सॉलोमनका बनाया कोई भी कानून श्री स्किनर द्वारा इतनी लापरवाहीसे बनाई गई कागजी नीतिको सफल करनेमें कहाँतक कामयाब हो सकता है।

एक खानके लिए नियोजित चीनी मजदूरोंके जत्थेकी बनावट इस प्रकार होगी:

(१) एक मुखिया जो अहातेके प्रबन्धकके साथ काम करेगा और मजदूरों तथा प्रबन्धकर्ताओंके बीच दुभाषियेका काम भी करेगा।

(२) चार उपमुखिया दो खानके अन्दर और दो ऊपर काम करनेके लिए, जो अंग्रेजी बोल सकते हों या इस काबिल हों कि बहुत थोड़े समयमें काम चलाऊ अंग्रेजी सीख सकें।

(३) हर तीस मजदूरोंके ऊपर देखभाल करनेवाला एक जमादार होगा जिस प्रकार काफिरोंके जत्थोंपर देखभाल करनेवाले होते हैं।

(४) पचास आदमियोंके हर समूहके लिए एक रसोइया होगा और हर रसोइएकी मददके लिए एक जवान कुली सहायक।

(५) एक चीनी डॉक्टर, जो स्थानीय खान डॉक्टरके मातहत एक मुखियाकी भाँति काम करेगा और अस्पताल उसके सुपुर्द रहेगा। बहुत-से चीनी खास तौरपर शुरू-शुरूमें आग्रह करेंगे कि वे अपने देशके डॉक्टरसे भी इलाज करा सकें। इसके लिए कुछ चीनी दवाएँ भी संग्रहमें रखनी होंगी।

प्रत्येक खानपर कुशल गोरे और साधारण काफिर, अथवा कुशल गोरे और साधारण चीनी मजदूर होंगे। चीनी और काफिर मजदूरोंको एक साथ किसी खानपर मिलने नहीं दिया जायेगा। वैसे यदि सम्भव हो तो उनका जिलोंमें मिलना भी रोकना चाहिए। अधिक बड़ी संख्यामें चीनी कुलियोंको लानेसे पहले जो कुछ हजार चीनी मजदूर लाये जायेंगे उनके साथ ऐसे भी आदमी लाये जायेंगे जो चीनियोंसे वाकिफ हों ताकि उनसे काम लेनेमें सहूलियत हो और जो खानें चीनियोंसे काम लेना चाहें उन्हें चीनियोंको समझनेमें मदद मिले, ताकि एकाएक उनके सामने कोई ऐसी नई परिस्थिति खड़ी न हो जाये जिसका सामना करनेके लिए वे तैयार न हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-१०-१९०३

९ जोहानिसबर्गका यह अस्वच्छ क्षेत्र

गत ७ तारीखको मुख्य मार्ग जोहानिसबर्गमें एक आम सभा हुई। जोहानिसबर्ग नगर-परिषदने जिन जमीनोंपर अधिकार कर लिया है उनके मुआवजे और उस रकबेकी जमीनोंके पुराने मालिकोंको दिये जानेवाले किरायेके बारेमें उसके रुखपर इस सभाके वक्ताओंने अपने विचार प्रकट करनेमें किसी प्रकारकी रू-रियायत नहीं की। बड़ी सख्त भाषाका उपयोग किया गया। नगर-परिषदके कार्यको एक बलात्कार माना गया। सभाके अध्यक्ष श्री मार्क गिबन्सने कहा नगर-परिषदका कार्य सचमुच लज्जाजनक है और यह एक लादा हुआ बोझ है जिसे सहन नहीं करना चाहिए। दूसरे वक्ताने तो इस जमीन लेनेको "जमीनें हड़पन" करनेकी संज्ञा दी। नगर-परिषदके सदस्योंपर खुलकर बुरे उद्देश्योंके आरोप तक लगाये गये। हम नहीं मानते कि वे इन विशेषणोंके पात्र हैं। जबतक हमारे सामने कोई निश्चित प्रमाण नहीं है हम यह विश्वास नहीं करेंगे कि श्री हिलन और उनके साथियोंका हेतु भूलके अतिरिक्त कुछ और रहा होगा। परन्तु अस्वच्छ क्षेत्रकी समितिके पक्षमें इससे अधिक हम और कुछ नहीं कह सकते। उनका हेतु अत्यंत संकीर्ण रहा है इसमें तो हमें तिल-भर भी सन्देह नहीं है और चूँकि भारतीयोंने एक बड़ी संख्यामें मुआवजेके लिए अपने दावे पेश कर रखे हैं इसलिए यह उचित होगा कि अभिविषर वक्ताओंने जो जो आरोप लगाये हैं उनकी भी हम जाँच कर लें। इस सम्बन्धके तथ्य अपने आपमें इतने गम्भीर हैं कि यदि वक्ता केवल तथ्य सामने रख देते तो भी उनका कर्तव्य पूरा हो जाता। नगर-परिषदके खिलाफ सबसे बड़ा प्रमाण तो स्वयं उसीकी यह स्वीकृति है कि १२   दावेदारोंमें से केवल १९४ ने नगर-परिषद द्वारा दिया गया अत्यन्त अपर्याप्त मुआवजा स्वीकार किया है। इसपर शायद यह कहा जा सकता है कि दूसरे मालिकोंकी अपेक्षा खुद दावेदार अपने लाभ-हानिको अधिक अच्छी तरह जानते हैं। नगर-परिषद द्वारा निश्चित मुआवजेका उनके द्वारा स्वीकार कर लिया जाना ही इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि निश्चित मुआवजा बहुत वाजिब था। लेकिन यह दलील पेश करनेवाले इस मुख्य बातको भूल जाते हैं कि नगर-परिषद और दावेदार समान भूमिकापर नहीं हैं। दावेदार बहुत गरीब हैं। यह जमीन उनकी आजीविकाका एकमात्र साधन थी। साहूकार शायद उन्हें अलग तंग कर रहे होंगे। ऐसी सूरतमें उनकी इच्छा हो या न हो उन्हें तो अपने प्रतिपक्षीसे जिसके पास अक्षय खजाना पड़ा है समझौता करना ही था। अस्वच्छ क्षेत्रके गरीब निवासियोंके मुकाबलेमें नगर-परिषदके साधन निश्चित रूपसे असीम हैं। इसलिए हम तो मानते हैं कि इन बाईस दावोंका निपटारा भी नगर-परिषदके पक्षमें पेश नहीं किया जा सकता। बल्कि जब हम देखते हैं कि अनिर्णीत दावोंकी संख्या बहुत अधिक है तब यह उसके खिलाफ सबसे बड़ा और जोरदार पेश किया गया प्रमाण है। दावोंपर विचार करते हुए हमें ज्ञात हुआ है कि जायदादोंकी कीमतका निर्णय करनेमें किसी पद्धतिसे काम नहीं लिया गया है। कुछ जमीनें ऐसी हैं जिनपर बड़ी मजबूत इमारतें खड़ी हैं। जिन जमीनोंपर भद्दे नये टीन-घर खड़े हैं उनकी कीमतें भी इनके समान ही लगाई गई हैं। याद रहे कि इन दोनों प्रकारकी जमीनोंकी कीमतें इमारतोंको छोड़कर समान ही हैं क्योंकि वे उसी बस्तीमें और एक-दूसरेसे लगी हुई हैं। और ऐसे उदाहरण इक्के-दुक्के नहीं हैं। ऐसे बहुत-से उदाहरण पेश किये जा सकते हैं कि जब जितनी बार वे बिके थे तब उनकी कीमतें अच्छी आई थीं किन्तु परिषदके

निर्मलिकान उनकी कीमतें उससे कम आँकी हैं। यह कहना कोई मानी नहीं रखता कि मालिकोंने अत्यधिक मुआवजेकी माँगें की हैं। सम्भव है यह सही हो या गलत भी हो किन्तु गलत प्रकारकी इस मक्खीचूसपनेकी नीतिका अवलम्बन करके परिषद अपने करदाताओंकी कुसेवा ही कर रही है। शायद परिषदके सदस्योंने ऐसा करते हुए अपने कर्तव्यको बहुत बढ़ाकर समझ लिया है। सर्वसाधारण रूपसे वे अपने करदाताओंका पैसा बचानेकी धुनमें अपने ही उन गरीब करदाताओंके साथ बहुत भारी अन्याय कर रहे हैं जिन्हें यदि उदारता नहीं तो न्यायकी बहुत जरूरत है। जब इस क्षेत्रमें आवश्यक सुधार हो जायेंगे तब यहाँका किराया बढ़ जायेगा। परन्तु कानूनने मालिकोंसे यह लाभ छीन लिया है। इस बातकी कोई शिकायत नहीं कि यह सारी विपत्ति आम करदाताओंकी ही मानी जायगी। परन्तु इतनेपर भी नगर-परिषदसे यह तो अपेक्षा अवश्य की गई थी कि वह इन अस्वच्छ क्षेत्रोंकी जमीनोंके मालिकोंके साथ शोभनीय और न्यायपूर्ण व्यवहार करेगी। जहाँतक जमीनोंके मालिकोंसे किराया लेनेवाले नगर-परिषदके प्रस्तावसे सम्बन्ध है, हम समझते हैं कि जो लोग इसका विरोध कर रहे हैं उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेसे अपने आपको रोकना बड़ा कठिन है। सभाके वक्ताओंका यह कथन अक्षरशः सही है कि बहुतसे लोगोंकी आजीविकाका एकमात्र साधन जायदादें ही हैं। शायद नगर-परिषदकी सरसर माँग काफी अपनी जिद कानूनकी दृष्टिसे उचित भी हो। परन्तु ऐसे मामलोंमें कानूनी अधिकार, अगर उनमें दया-धर्मका खयाल नहीं रखा गया है तो क्रूरता बन जाता है। बेदखल लोगोंके रहनेके लिए जमीनें ढूँढ़नेका प्रश्न अनिश्चित कालके लिए आगे ढकेल दिया गया है। इसलिए जबतक उनके रहनेकी पूरी-पूरी व्यवस्था नहीं हो जाती और अगर मालिकोंको अपनी जायदादोंका अस्थायी रूपसे उपयोग नहीं करने दिया जाता या किराया वगैरह नहीं लेने दिया जाता तो वे गुजर कैसे करेंगे—खासकर ऐसे कठिन और चिन्ताके समयमें? आखिर बहुत ही पिछड़ गई है। परमात्मा जाने दक्षिण आफ्रिकापर उसकी कृपा कब होती है। उद्योग-धन्धे ठप्प हैं पैसे टकेका बाजार भी मन्दा है और हम अखबारोंमें पढ़ते हैं कि जोहानिसबर्गमें हजारों आदमी एकदम बेकार हैं। ऐसी परिस्थितियोंमें इन निर्दोष लोगोंसे उनकी जीविकाका एकमात्र साधन छीन लेना एक ऐसा काम है जिसका किसी प्रकार भी समर्थन नहीं किया जा सकता। परिषद अभीतक नामजद ही है। अत शायद वह लोक-भावनाका निरादर कर सकती है। परन्तु हमारी मान्यता है कि परिषद जनताके प्रति सीधी जिम्मेदार नहीं है इस कारण उसका यह कर्तव्य दूना हो जाता है कि अस्वच्छ क्षेत्रके निवासियोंके प्रति अपने व्यवहारमें न्याय और औचित्यका पूरा-पूरा ध्यान रखे। और अगर वह यह नहीं कर सकती या करना नहीं चाहती तो जबतक निर्वाचित परिषद नहीं बन जाती—जैसी कि वह बहुत जल्दी ही बन जायेगी—तबतक यह कार्रवाई रोक रखी जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-१ -१९ १

१० जोहानिसबर्गकी पृथक बस्ती

हमें नगर-परिषदके नाम जोहानिसबर्गके निवासियों और करदाताओंकी ओरसे दी गई उस अर्जीका समर्थन करनेमें कोई हिचक नहीं जिसमें भारतीय बस्तीको वहाँसे हटाकर किसी अधिक उपयुक्त स्थानपर ले जानेकी माँग की गई है। इस अर्जीका एक अंश हम गत ७ तारीखके *ट्रान्सवाल लीडर*से यहाँ उद्धृत करते हैं जिससे प्रकट होता है कि यह अर्जी नागरिकोंमें घुमाई जा रही है। अर्जीमें जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी स्वास्थ्य-समितिके उस प्रस्तावका हवाला दिया गया है जिसमें कहा गया है कि अस्वच्छ क्षेत्र-अधिग्रहण अध्यादेश (इनसैनिटरी एरिया एक्सप्रोप्रियेशन ऑर्डिनेन्स) के अनुसार जिस भारतीय बस्तीके निवासियोंको बेदखल किया गया है उसे काफिरोंकी बस्तीकी जगह और काफिरोंकी बस्तीको और भी आगे हटा दिया जाये। हम स्वीकार करते हैं कि जिन कारणोंको लेकर करदाता इस सुझावका विरोध कर रहे हैं हमारे कारण उनसे भिन्न हैं। उस अर्जीपर हस्ताक्षर करनेवाले स्पष्ट रूपसे यह चाहते हैं कि भारतीयोंको हटाकर काफिरोंकी वर्तमान बस्तीसे भी कहीं आगे बसाया जाये। हमारी राय है कि यह काफिर बस्ती ही जब्त किये गये स्थानसे इतनी अधिक दूर है कि उसका भारतीयोंके लिए कोई उपयोग नहीं हो सकेगा। दूसरे खुद कानून यह कहता है कि जबतक अस्वच्छ क्षेत्रके इन लोगोंको नजदीक ही कहीं बसनेका स्थान नहीं बता दिया जाता तबतक इन्हें अपने वर्तमान स्थानसे न हटाया जाये। हम जानते हैं कि परिषद द्वारा जब्त की गई जगहसे काफिर बस्ती एक मीलसे भी अधिक दूर है और हम नहीं समझते कि बेदखल लोगोंको अपनी मौजूदा जगहसे पूरे एक मीलसे भी दूर ले जाना बेदखली कानूनकी मंशाके अनुकूल माना जायेगा। इसलिए या तो उन लोगोंको अपनी जगहसे हटाया ही नहीं जाना चाहिए, या कोई दूसरा कम आपत्तिजनक स्थान बताया जाना चाहिए। अर्जदारोंके प्रस्तावके समर्थनमें केप टाउनका दृष्टान्त दिया गया है और इस तर्कके बलपर ब्रिटिश भारतीयोंको जोहानिसबर्गसे दूर हटानेका औचित्य सिद्ध करनेकी कोशिश की गई है कि काफिरोंको तो ठेठ मेटलैंडसे केप टाउनमें लाया गया था। परन्तु इन दो उदाहरणोंके बीच जरा भी समानता नहीं है। अगर बस्तीमें रहनेवाले सारे भारतवासी निरे मजदूर होते तब शायद केप टाउनका अनुकरण जोहानिसबर्गमें भी करनेके पक्षमें कुछ कहा जा सकता था परन्तु जब हम देखते हैं कि उनमें से अधिकांश व्यापारमें लगे हुए स्वतन्त्र लोग हैं और कुछकी आजीविका पूर्णतया बस्तीके व्यापारपर ही निर्भर है, तो यह बात तुरन्त ध्यानमें आ सकती है कि नई बस्ती शहरके इतने नजदीक होनी चाहिए कि कमसे-कम वह देशी तथा गोरे ग्राहकोंको समान रूपसे आकर्षित करनेकी उचित अनुकूलताएँ प्रदान कर सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-१-१९०३

११ श्री बालफ़रका मन्त्रिमण्डल

पाँसा फेंक दिया गया है और श्री सेंट जॉन ब्रॉड्रिक भारतके सिरपर मढ़ दिये गये हैं। श्री ब्रॉड्रिककी योग्यताके बारेमें सर्वत्र यही राय है कि युद्ध-कार्यालयका तख्ता पूर्णतः बिगाड़नेमें वे सफल रहे हैं, और मन्त्रीका स्थान सँभालनेमें अपने आपको उन्होंने अयोग्य साबित कर दिया है। परन्तु श्री बालफ़रने देखा कि वे श्री ब्रॉड्रिकको बता तो नहीं बता सकते इसलिए उनको ऐसे पदपर बैठा दिया जिसके खिलाफ कोई जोरदार आवाज नहीं उठ सकती। भारत-कार्यालयमें श्री ब्रॉड्रिकके बैठनेसे श्री बालफ़रको अपना एक भी वोट खोनेका डर नहीं है। इस नियुक्तिका भारत भले ही सर्वानुमतिसे विरोध करता रहे, परन्तु लोकसभाके सदस्योंके चुनावमें तो भारतका मत नहीं लिया जाता वहाँ उसकी कुछ नहीं चलती। इसीलिए श्री ब्रॉड्रिक अपने आपको बचानेके लिए यह बेहूदा प्रस्ताव लानेकी हिम्मत कर सके कि दक्षिण आफ्रिकी फौजोंका पाँच लाख पौंडका पूरा वार्षिक खर्च भारत दे। इस भावनाका इतना विरोध हुआ कि अन्तमें उसे छोड़ ही देना पड़ा परन्तु इसका भी उनपर कोई असर नहीं हुआ। इस नियुक्तिके अन्याय और हृदयहीनताको दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंने भी महसूस किया है। *ट्रान्सवाल लीडरके* अग्रलेख लिखनेवालेने जितनी कड़ी भाषामें इस नियुक्तिकी निन्दा की है उससे अधिक सख्त भाषाका प्रयोग हम नहीं कर सकते थे। इस नियुक्तिके बारेमें वह लिखता है

> श्री ब्रॉड्रिकने *पालमालसे* विदा ली यह तो निश्चय ही एक बड़े लाभकी बात हुई। परन्तु हमें शक है कि अपने काम-काजके शीर्षस्थानपर उनकी नियुक्तिसे भारतकी जनता खुश होगी। इस सर्वसम्मत निर्णयको मानना ही पड़ेगा कि वे पूर्णतः अयोग्य व्यक्ति हैं और ऐसी सूरतमें उन्हें चुपचाप गैर-सरकारी जिन्दगीमें उपेक्षापूर्वक डाल देना चाहिए। निश्चय ही मामलेकी सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध होना तो असम्भव ही है। परन्तु भारतमें वाइसराय लॉर्ड कर्जन हैं जो लॉर्ड डलहौजीके बाद सबसे अधिक योग्य और दृढ़ निश्चयी वाइसराय हैं। इसलिए श्री ब्रॉड्रिकको निश्चय ही ऐसे गुप्त आदेश दे दिये गये होंगे कि वे हर बातमें लॉर्ड कर्जनकी रायका आदर करें और नाम मात्रको भारत-मन्त्री बने रहें। हम आशा करते हैं कि बात ऐसी ही होगी। क्योंकि, उन्होंने अबतक जो भी प्रयोग किये वे सब इतनी बुरी तरह असफल हुए हैं कि अब कोई बुद्धिके भावुक मामलोंमें उनका फूहड़पन पसन्द नहीं करेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-१-१९०३

१२ भारतकी साम्राज्य-सेवा

इंडिया के एक ताजा अंकमें भारत द्वारा साम्राज्यकी सेवाओंके सम्बन्धमें आँकड़ा देनेवाले अंक छपे हैं। इन सेवाओंका क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है और इनका प्रारम्भ १८१ से होता है। *इंडिया* ने लिखा है कि भारतने सन् १८१ में दो और १८११ में एक सैन्यदल न्यूजीलैंड भेजे। सन् १८६७ में अबीसीनियाकी लड़ाईमें भारतने सोलह पैदल सैन्यदल पाँच रिसाले सात इंजीनियरोंकी कम्पनियाँ पाँच तोपखाने और सेनापति तथा अन्य कर्मचारी भेजे। सन् १८७५ में पेराककी सारी लड़ाईमें भारतीय ही भारतीय थे। सन् १८७८ और १८७९ के अफगान युद्धमें १ और ७ के बीच भारतीय सिपाही खेत रहे। सन् १८८२ में मिस्रकी लड़ाईमें पाँच पैदल सैन्यदल तीन रिसाले इंजीनियरोंकी दो कम्पनियाँ और दो तोपखाने भेजे गये। सन् १८८५ और १८८६ में सूडान और सुआकिमकी लड़ाइयोंमें भेजी गई सारी फौजें भारतीय थीं। इनमें से एकको छोड़कर सारा साधारण खर्च भारतने ही दिया। अफगान-युद्धके खर्चमें १,८ पौंड भारतने दिये जब कि ग्रेट ब्रिटेनने केवल ५ पौंड दिये थे। मिस्रकी लड़ाईमें भारतने साधारण खर्च तो दिया ही इसके अलावा ८, पौंड अतिरिक्त खर्च भी उसीने उठाया। सन् १८६ से पहलेवाले अफगान युद्धमें भारतने जो सहायता दी है वह भी इनके साथ जोड़ दी जानी चाहिए। उस युद्धमें हमारा भारतीय सिपाही बर्फके नीचे दबकर मर गये थे और जनरल साईको अपनी भारतीय फौजोंकी वीरताके कारण नाम कमानेका अवसर मिल गया था। इस आश्चर्यजनक विवरणमें हालकी चीनकी लड़ाई, दक्षिण आफ्रिकाको सर जॉर्ज व्हाइट और उनके १ भारतीयों द्वारा ऐन मौकेपर दी गई बहुमूल्य सहायता और सोमालीलैंडमें चल रहा वर्तमान युद्ध भी जोड़ दिये जाने चाहिए। अपने किसी पिछले अंकमें हमने भारतको साम्राज्यकी दासी (सिण्ड्रेला[1]) के रूपमें वर्णित किया है और हम अपने पाठकोंसे पूछना चाहते हैं कि क्या हमारा किया यह वर्णन किसी भी तरह खींचा-तानी हुआ है? हमारा तो यहाँतक खयाल है कि साम्राज्यके इतिहासमें और खास तौरपर औपनिवेशिक विस्तारके इतिहासमें हमने ऊपर जो वर्णन दिया है उसकी तुलनामें रखने लायक कहीं भी कुछ नहीं मिलेगा। अन्य उपनिवेशोंने कभी भारत-जितनी सहायता नहीं की है, या उनसे कभी इस तरह सहायता माँगी ही नहीं गई है। और यद्यपि उपनिवेशोंने गत महायुद्धमें उदारतापूर्वक जो हाथ बँटाया निःसन्देह वह साम्राज्यके हर सदस्यके लिए गौरवकी बात है, तथापि भारतने जो-कुछ दिया है और जो-कुछ सहा है, उसके मुकाबलेमें यह सब कुछ-नहींके बराबर है। क्योंकि यह सत्य भुलाया नहीं जाना चाहिए कि अन्य उपनिवेशोंने जो-कुछ छोटी-छोटी भी सेवा की है उसका पूरा-पूरा मुआवजा उनको दिया गया है। और अगर इजाजत हो तो हम बतायें कि आस्ट्रेलियाके मन्त्री तो यहाँतक बढ़ गये कि ब्रिटेनके खाते उन्होंने जो रकम खर्च की उसपर उन्होंने ब्याज और दलाली तक वसूल की मानो उनके मातृदेश और आस्ट्रेलियाके बीच केवल आसामी और आढ़तियाका सम्बन्ध हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५-१०-१९ ३

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४९१।

१३ देर आयद दुरुस्त आयद

ट्रान्सवालके *गवर्नमेंट गजट*के एक ताजा अंकमें हमने पढ़ा कि कमिश्नरका एशियाई दफ्तर उठा दिया गया। दिन बड़े सही लेकिन इस जागनेपर सरकार भारतीय समाजकी तरफसे बधाईकी पात्र है। जबसे यह दफ्तर खुला था तभीसे ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय बराबर कहते आये हैं कि यह शुद्ध अपव्यय है। सरकारने अपने इस कदम द्वारा सिद्ध कर दिया कि उनकी बात सही थी। हम आशा करते हैं कि सरकार एक कदम और आगे बढ़कर मुहकमेको ही पूरी तरहसे उठा देगी। उसमें भला किसीका नहीं है। उल्टे यह ब्रिटिश भारतीयोंको काफी असुविधा और उनकी भावनाओंको चोट पहुँचाता है। अनुमतिपत्रोंका सारा काम उसके पाससे कम हो जानेके बाद सवाल यह है कि उसके पास अब क्या काम रह जाता है? आर्थिक नियन्त्रण उसके हाथोंमें नहीं है। और परवाने जारी करनेके लिए परवाना-अधिकारी है। एशियाइयोंके नाम दर्ज करनेके लिए मुख्य अनुमतिपत्र सचिव है। इस तरह कल्पना नहीं की जा सकती कि इस मुहकमेकी उपयोगिता आखिर है किस बातमें?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १५–१ –१९ १

१४ पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
अक्तूबर १९, १९ १

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय

आपके १ तारीखके पत्रके सम्बन्धमें[१] मैं आपको विनम्रतापूर्वक याद दिलाता हूँ और आपसे सादर प्रार्थना करता हूँ कि परमश्रेष्ठसे ब्रिटिश भारतीय शिष्टमण्डल की भेंटके लिए कोई तिथि निश्चित कर दें।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़ : एल० जी० २११२ : एशियाटिक्स १९७/१९ १।

१. इसमें पहले २५ सितम्बरकी वह प्रार्थना की गई थी कि ... सम्बन्धमें ... पर विचार ... एक शिष्टमण्डलको मिलनेका अवसर दिया जाये।

१५ ट्रान्सवालके अनुमतिपत्र

मुख्य सचिवने पिछले महीनोंमें जारी हुए अनुमतिपत्रोंके अंक प्रकाशित किये हैं जो जोहानिसबर्गके अखबारोंमें छपे हैं। ब्रिटिश भारतीयोंके लिए यह प्रासंग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और दिलचस्प है। इस अवधिमें जारी किये गये अनुमतिपत्रोंकी कुल संख्या ३२,३५१ है। इनमें से पुराने निवासियोंको दिये गये अनुमतिपत्र केवल ७८२७ हैं और शेष २४५२४ नये आगन्तुकोंको दिये गये हैं। यह संख्या केवल ट्रान्सवालकी है। जनवरी और मार्चके बीच ११८६५, अप्रैल और जूनके बीच ११८८४ और जुलाई तथा सितम्बरके बीच ८६५२ अनुमतिपत्र जारी हुए। इन आंकड़ोंमें उन भूतपूर्व निवासियोंको शामिल नहीं किया गया है जिन्होंने लड़ाईके दिनोंमें अपने अनुमतिपत्र लौटा दिये थे या जिन्हें वापस लौटनेकी इजाजत दे दी गई थी। इसलिए इस संख्यामें केवल वही यूरोपीय शामिल हैं जो शरणार्थी नहीं हैं क्योंकि याद रखनेकी बात है कि एशियाइयोंके अनुमतिपत्र इनमें शुमार नहीं किये गये हैं। अक्सर ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंको न आने देनेका कारण यह बताया जाता है कि अगर उनके प्रवेशपर कोई रोक नहीं लगाई गई तो उपनिवेशमें वे-ही-वे हो जायेंगे। ये अंक आरोपका माकूल जवाब है। सरकारी कागज बताते हैं कि इस समय ट्रान्सवालके उपनिवेशमें शायद पूरे १   भारतीय भी नहीं होंगे जब कि जोहानिसबर्गके एक पत्रके अनुसार ट्रान्सवालमें नागरिकों सहित ५,   यूरोपीय हैं। इसलिए अभी कोई ऐसा आसन्न भय तो नहीं नजर आता कि ब्रिटिश भारतीय ट्रान्सवालको पदाक्रान्त कर देंगे। परन्तु ये अंक एक दूसरी दुःखदायी कहानी भी सुना रहे हैं कि जहाँ यूरोपीय शरणार्थियोंसे तीन गुने नये यूरोपीयोंको ट्रान्सवालमें प्रवेशके अनुमतिपत्र दिये गये हैं वहाँ गैर-शरणार्थी ब्रिटिश भारतीयोंको अनुमतिपत्र अगर दिये भी गये हों तो बहुत कम गये होंगे विशेष रूपसे उनका खयाल किये जानेके कितने ही प्रबल कारण रहे हों। हमें ऐसे बीसियों लोगोंका पता है जिनको ट्रान्सवालमें काम दिया जानेका आश्वासन दिया गया। परन्तु चूँकि वे शरणार्थी नहीं थे इसलिए उन्हें अनुमतिपत्र नहीं मिले और इस कारण वे इन आश्वासनोंका लाभ नहीं उठा सके। हर हफ्ते केवल सत्तर अनुमतिपत्र एशियाइयोंको मिलते हैं। हमारा खयाल है इनमें चीनी भी शामिल हैं। और जिन गैर-शरणार्थी भारतीयोंने अर्जियाँ दी हैं उनको यह जवाब मिला है कि जबतक शरणार्थी भारतीयोंकी सारी अर्जियाँ खत्म नहीं हो जातीं उनकी अर्जियोंपर विचार नहीं हो सकेगा। अब अनुमतिपत्रोंका सारा मुहकमा अनुमतिपत्रोंके मुख्य सचिवके मातहत हो गया है। क्या हम आशा करें कि स्पष्ट रूपसे यूरोपीयोंकी — चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हों या नहीं — अर्जियोंके प्रति जो उदारता वे प्रकट कर रहे हैं, वही भारतीयोंकी अर्जियोंके प्रति भी करेंगे? हम एक क्षणके लिए भी यह नहीं सुझाना चाहते कि वे हजारों गैर-शरणार्थी ब्रिटिश भारतीयोंको ट्रान्सवालमें प्रवेश दे दें। पहले तो ट्रान्सवालमें आनेके इच्छुक लोग हजारोंकी संख्यामें हैं भी नहीं और मान लीजिए कि हजारों भारतीय ट्रान्सवालमें आना चाहते हैं तो हम खूब जानते हैं कि उनकी अर्जियोंपर विचार नहीं हो सकता। परन्तु जो लोग ट्रान्सवालमें पहलेसे ही बस गये हैं उनकी मददके लिए अगर नये आदमियोंकी जरूरत है अथवा जो लोग काफी पढ़े-लिखे हैं और जिनकी आजीविकाके स्वतन्त्र साधन हैं और समवत जिनके अच्छे तात्लुकात हैं, उनकी अर्जियोंपर तो अवश्य उदा-

रतापूर्वक विचार होना चाहिए। लॉर्ड मिलनरने भी चेम्बरलेनको[1] आश्वासन दिया है कि पुराने कानूनपर ट्रान्सवालकी सरकार पहलेकी तरह सख्तीसे अमल नहीं करेगी। उनके इस कथनका हमने आदरपूर्वक प्रतिवाद कर दिया है क्योंकि वास्तविकता इसके विरुद्ध है। भारतीयोंके प्रवेशका प्रश्न हमारे कथनका प्रत्यक्ष प्रमाण है। क्योंकि पिछली हुकूमतके जमानेमें भारतीयोंके प्रवेशपर वहाँ किसी प्रकारकी रोक नहीं थी वहाँ अब शरणार्थियोंको भी बहुत मुश्किलसे कहीं इक्के-दुक्के लौटने दिया जाता है। और गैर शरणार्थी भारतीयोंके लिए तो ट्रान्सवालके दरवाजे एकदम बन्द हैं। इस प्रकार ट्रान्सवाल-सरकार केवल पुराने एशियाई-विरोधी कानूनसे ही आगे नहीं बढ़ जाती है बल्कि इस विषयमें तो उसने नेटाल और केपके कानूनोंको भी बहुत पीछे छोड़ दिया है। नेटाल और केपके उपनिवेशोंमें जो भारतीय बस गये हैं वे जब चाहें, स्वतन्त्रता-पूर्वक अपने उपनिवेशसे बाहर जा सकते हैं और लौट भी सकते हैं। और जो यूरोपीय भाषाओंमें से कोई एक भी भाषा जानते हैं वे — चाहे पहले उपनिवेशके निवासी रहे हों या न भी रहे हों — इस शर्तसे किसी भी उपनिवेशमें जाकर बस सकते हैं। लॉर्ड मिलनरने सुझाया है कि ट्रान्सवालके १८८५ के कानून ३ की जगह नेटाल-कानूनके नमूनेपर कानून बनाया जाये। इसलिए क्या हम सुझायें कि कमसे-कम अभी तत्काल नेटाल और केपके कानूनोंके अनुसार जो अर्जदार प्रवेश पानेके अपात्र न हों उन्हें बगैर रोक-टोकके ट्रान्सवालमें आने दिया जाये? और शरणार्थियोंको भी उनकी तरफसे अर्जी आते ही प्रवेश मिल जाया करे? केप और नेटालके कानूनोंमें एक और सुविधा यह है कि जो पहलेके निवासी नहीं हैं और जो किसी यूरोपीय भाषाकी आवश्यक शैक्षणिक योग्यता नहीं रखते किन्तु अन्य प्रकारसे प्रवेश पानेके योग्य हैं उन्हें भी विशेष आज्ञासे प्रवेश मिल सकता है। इसके अलावा ऐसे लोगोंको भी उदाहरणार्थ पुराने निवासियोंके लिए आवश्यक घरेलू नौकरों और दूकानोंके लिए गुमाश्तों वगैराको भी स्वतन्त्रतापूर्वक प्रवेशकी अनुकूलता होनी चाहिए। हम समझते हैं कि ये माँगें अत्यन्त उचित हैं। इनसे भारतीयोंकी भावनाओंको बड़ा समाधान मिलेगा। और जैसा कि हम पहले ही सुझा चुके हैं भारतीयोंके अनियन्त्रित प्रवेशका अथवा गैर-शरणार्थी अर्जदारोंकी बाढ़के आनेका कोई प्रश्न ही नहीं है हम आशा करते हैं कि सरकार इन सुझावोंपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१-१९०३

१ जोज़ेफ़ चेम्बरलेन (१८३६-१९१४), उपनिवेश-मंत्री, १८९५-१९०३; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३९२ ।

१६ आस्ट्रेलियाका ब्रिटिश तथा भारतीय साम्राज्य-संघ

आस्ट्रेलियामें स्थापित उपर्युक्त संस्थाका घोषणापत्र हमें मिला है। यह एक शुभ चिह्न है कि जो ब्रिटिश भारतवासी संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें जा बसे हैं वे सम्राट्की प्रजाके नाते अपने अधिकारोंकी रक्षाके हेतु अपने ऊपर होनेवाले आक्रमणोंका प्रतिकार करनेके लिए सुसंगठित हो रहे हैं। संस्थाके पदाधिकारियोंके नाम पढ़नेसे ज्ञात होता है कि आस्ट्रेलियामें बसे हमारे देशभाई कुछ प्रभावशाली यूरोपीयोंका सक्रिय सहयोग भी प्राप्त कर सके हैं। इनमें सर्वश्री टेप्लाम जी. बॉरबर्न पास्कल विल्स इत्यादिके नाम हैं। और अगर समितिके सदस्योंकी सूची संस्थाके साधारण सदस्योंकी निर्देशिका मानी जाये तो हम कह सकते हैं कि संस्था सभी वर्गके भारतीयोंका प्रतिनिधित्व करती है।

मालूम हुआ है कि श्री चार्ल्स फ्रान्सिस लीवराइट संस्थाके एक संस्थापक हैं। *इंडियन* *डेली न्यूज*के अनुसार ये सज्जन मेलबोर्नके निवासी और वहाँके बैरिस्टर श्री मार्कस लीवराइटके दूसरे पुत्र हैं। संस्थाने श्री लीवराइटको राष्ट्रीय महासभा (नेशनल कांग्रेस) के आगामी अधिवेशन और मुस्लिम शिक्षा-परिषदके लिए अपने प्रतिनिधिके रूपमें चुना है। वे अपने साथ इन महान संस्थाओंके नाम अपनी संस्थाकी तरफसे अर्जियाँ भी ले जा रहे हैं जिनमें उनसे अपने प्रवासी भाइयोंका ख्याल रखनेकी विनती की गई है। यह एक सही कदम है, और हम श्री लीवराइटके प्रयत्नोंको बारीकीसे समझते रहेंगे क्योंकि यद्यपि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके प्रश्नके अपने स्वतन्त्र और स्थानीय पहलू हैं और, इसलिए, श्री लीवराइटके उद्दिष्ट कार्यका उसपर शायद बहुत असर न भी पड़े फिर भी यह एक साम्राज्यका ही प्रश्न है इसलिए डाउनिंग स्ट्रीटके अधिकारी आस्ट्रेलियामें जो-कुछ करेंगे वह बहुत हदतक दक्षिण आफ्रिकापर भी लागू होगा।

संस्थाके उद्देश्य ऐसे हैं जिन्हें सब पसन्द करेंगे। उसका उद्देश्य है "कॉमनवेल्थ सरकारकी ऐसे कानूनोंके पालनमें मदद करना जो अनिष्ट प्रकारके — उदाहरणार्थ अज्ञानी दरिद्र और अनैतिक वर्गोंके — अवांछित आगन्तुकोंसे सम्बन्ध रखते हैं। इसके अलावा उसका उद्देश्य ब्रिटिश भारतसे आये अधिक सुसंस्कृत व्यापारी-वर्गके खिलाफ जो हानिकर रुकावटें लगी हुई हैं उन्हें दूर करना भी है। संस्था यह भी चाहती है कि आस्ट्रेलियाके भारतीय नागरिकोंका सामाजिक स्तर बढ़ाये। ऐसा करनेसे भारतीयोंको और, उनके साथ-साथ वहाँके जीवनमें वे जिनके दैनिक सम्पर्कमें आते हैं उनको भी लाभ पहुँचानेका दोहरा काम होगा। घोषणा आगे कहती है

> हम सब मिलकर काम करेंगे। कोई सदस्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थकी अभिलाषा नहीं रखेगा और सब दूसरी तमाम बातोंको छोड़कर, जिसमें सभी सदस्योंका हित होगा उसीका सर्वोपरि ध्यान रखेंगे। हम दत्तचित्त और निस्स्वार्थ रहेंगे। संस्थाके विभिन्न ओहदोंकी नियुक्तिमें किसी धर्म या पुरुषका विचार नहीं करेंगे। एक संगठनके नाते हमारा लक्ष्य सारे राष्ट्र-कुटुम्ब (कॉमनवेल्थ) में ब्रिटिश भारतीयोंके लिए न्याय प्राप्त करना होगा।

ये उद्देश्य प्रशंसनीय हैं और ऐसे हैं जिनपर किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। और जिस भावनासे संस्थाके सदस्य काम करना चाहते हैं, वह तारीफके लायक है। और यदि वे अपने घोषणा पत्रमें लिखित मार्गपर चलते रहे तो उनकी सफलता निश्चित है। हम इस संस्थाकी

स्थापनाका स्वागत करते हैं और कामना करते हैं कि वह अपने जीवनको सार्थक करे और चिरायु हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-१ -१९ ६

१७. रपट पड़ेकी हर गंगा

जोहानिसबर्गके पत्रोंसे ज्ञात होता है कि आखिर यही निश्चय होने जा रहा है कि खानोंके लिए चीनी मजदूर न लाये जायें। श्री स्मिथके अंक[1] बताते हैं कि गहरी खानोंमें चीनी मजदूर लाभदायक साबित नहीं होंगे। उनके प्रतिवेदनसे यह भी ज्ञात होता है कि वे जापानीसे जायेंगे भी नहीं। प्रस्तावित शर्तोंपर आवश्यक संख्याको राजी करनेके लिए बहुत अधिक खुशामद करनी पड़ेगी। यदि ये समाचार सही हैं तो हम मुश्किलपर दक्षिण आफ्रिकाके लोग अवश्य अपने आपको बधाई दे सकते हैं। हमें आश्चर्य नहीं होगा अगर यहाँके करोड़पति एकाएक घोषणा कर दें कि इस मन्दीका मजदूरोंके प्रश्नसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उसके कारण दूसरे ही हैं। और यह कि चीनसे मजदूर न आयें तो भी खानें बराबर चलती रहेंगी। परन्तु यह तो रपट पड़ेकी हर गंगा हुई। वे यह कह सकते थे "चाहे हमें खानें बन्द कर देनी पड़ें तो भी हम स्वतन्त्र एशियाई मजदूरोंको लेकर श्रमिक-वर्गके साथ अन्याय न करेंगे और वह काम न करेंगे जो तत्वतः दासोंका क्रय-विक्रय है।" अगर वे ऐसा करते तो उनकी स्थिति ज्यादा गौरवास्पद हुई होती और वे श्रमिक-वर्गके प्रिय बन गये होते।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-१ -१ ६

१८. असली रूपमें

डंडी नगर-परिषदकी हाल ही में हुई एक बैठकका यह विवरण *नेटाल मर्क्युरीसे* लिया गया है

परवाना-अधिकारीने एक भारतीयको जिसने अपने व्यापारके लिए एक इमारत खड़ी कर ली थी परवाना दे दिया। परवाना-अधिकारीके इस कार्यका परिषद-सदस्य श्री विल्सनने विरोध किया। उन्होंने इस कार्यको अत्यन्त अनुचित बताया; क्योंकि यूरो-पीयों द्वारा बनाई शानदार दुकानोंके किरायेदार भारतीयोंको ऐसे परवाने देनेसे इनकार कर दिया गया था। उन दुकानोंकी तुलनामें इस भारतीयकी इमारत झोंपड़ेके समान कही जायेगी।

परिषद-सदस्य जोन्सने इस विषयपर बड़ा जोरदार भाषण दिया और उन्होंने इस कार्यको लज्जाजनक बताया। क्योंकि, परिषदने साफ इच्छा व्यक्त की थी कि अब भारतीयोंको परवाने न दिये जायें।

1. देखिए "चीनी मजदूरोंके बारेमें श्री स्मिथका निर्णय", १५-१०-१ ६।

परवाना-अधिकारीने अपनी बुद्धिका उपयोग करके जो निर्णय किया उसे परिषद-सदस्य जॉन्सनने साहसके साथ लज्जाजनक कहा। और परिषद-सदस्य विल्सनके विचारमें वह अनुचित है। बेशक अपील सुननेवाले न्यायालयके ये न्यायाधीश क्या खूब हैं! ध्यान देनेकी बात है कि परवाना देनेवाले अधिकारीके निर्णयके विरोधमें की गई अपीलोंको सुननेका अधिकार डंडी नगर-परिषदको दिया गया है। उपरके विवरणका अर्थ यह हुआ कि अब डंडीके परवाना अधिकारीको परवानेके लिए जो अर्जियाँ आयें उनपर अपनी तरफसे कोई निर्णय नहीं देना चाहिए। उसे तो केवल नगर-परिषदका भोंपू बनकर केवल उसकी आज्ञाओंका पालन करते रहना चाहिए। फिर भी इस अंग्रेजी उपनिवेशमें हमसे कहा जाता है कि विक्रेता-परवाना अधिनियमके अन्दर अर्जदारोंको अपील करनेका अधिकार है। हम तो कहना चाहेंगे कि वास्तवमें परवाना अधिकारीका कार्य नहीं बल्कि नगर-परिषदके उक्त दोनों सदस्योंका जो खुद ही डंडीमें दुकानदार हैं उद्गार ही लज्जाजनक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-१-१९०५

१९. एशियाई "बाजार"

हमारे सहयोगी *नॉर्दर्न ट्रान्सवाल रेकर्डर* और *नॉर्दर्न एक्सप्रेस*ने एशियाई *बाजारों*के प्रश्नपर जो विचार प्रकट किये हैं उन्हें हम हर्षके साथ नीचे दे रहे हैं।

व्यापारी-संघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) की बैठकके विचारणीय विषयोंके बारेमें लिखते हुए हमारा सहयोगी अपने अग्रलेखमें कहता है

> एशियाई *बाजारों*का तीसरा प्रश्न एक ऐसा विषय है जिसपर काफी चर्चा करनेकी जरूरत है। व्यापारी संघ इस विषयमें इतना जोर क्यों लगा रहा है, यह अभीतक हमारी समझमें नहीं आया। हमें कहा तो सिर्फ इतना ही गया है कि अपनी बैठकमें इसपर विचार होगा किन्तु हमारा अनुमान यह है कि इस बैठकमें सरकारसे विनती की जायेगी कि वह अध्यादेशपर अमल करनेके लिए तुरन्त कदम उठाये। हमें कुछ भी नहीं मालूम कि एशियाई व्यापारियोंको शहरसे बाहर हटानेके लिए कुछ-न-कुछ करनेके लिए संघ इतना उतावला और अधीर क्यों हो रहा है और हम समझते हैं कि हमारे शहरकी मुख्यतर सड़कोंपर बहस करना इससे अधिक संगत है।

हमारे सहयोगीको इस प्रश्नपर इतनी समझ-भरी दृष्टिसे विचार करते हुए देखकर हमें प्रसन्नताका अनुभव हुआ है और हम सहयोगी *रेकर्डर*की रायसे सहमत हैं कि व्यापारी-संघ भारतीय व्यापारियोंको पीटर्ससे हटानेके लिए अत्यन्त आतुर है। हमें ज्ञात हुआ है कि पीटर्समें पहलेसे ही एक पृथक बस्ती है जिसे पुरानी हुकूमतने बनाया था। और यह कि वर्तमान सरकारने उसका पुन: सर्वेक्षण किया है और उसे यह *बाजार*का नया नाम देकर उन तमाम भारतीय व्यापारियोंको वहाँ हटाना चाहती है, जिनके पास लड़ाईके पहले परवाने नहीं थे। हमारी राय है कि यह कार्य सरकारके द्वारा जारी की गई अपनी सूचनाके अनुरूप

१ कानूनी कार्रवाईके लिए देखिए खण्ड २, पृष्ठ १८३-१८४।

२ देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३१४।

भी नहीं होगा क्योंकि सूचनामें साफ कहा गया है कि ट्रान्सवालमें *बाजार* शहरके अन्दर ही स्थापित किये जायेंगे और लॉर्ड मिलनरका आश्वासन है कि ये *बाजार* शहरके अन्दर ही ऐसी जगहपर होंगे कि जिससे ब्रिटिश भारतीयोंको भारी व्यापारका भी कुछ हिस्सा मिल सके। अब अगर बीरस्टकी पुरानी बस्ती जो शहरके भीतर नहीं बाहर है, दूसरे शहरोंमें बननेवाले *बाजारोंका* नमूना हो तो हमारी रायमें यह एक अत्यन्त गम्भीर बात होगी। हर हालतमें उन लोगोंके लिए अपना सारा कारोबार हटाना बड़े संकटकी बात होगी जिनका व्यापार जम गया है। अत हमें अब भी आशा है कि निहित स्वार्थोंको छेड़नेका ऐसा काम नहीं किया जायेगा। परन्तु एक तरफ पड़ी हुई ऐसी बस्तियोंमें व्यापार करना नये वर्गदारोंके लिए भी एकदम असम्भव होगा। चूँकि वर्ष समाप्त होने जा रहा है इस मामलेका निर्णय करना दिन-ब-दिन अधिकाधिक जरूरी होता जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-१ -१९ ३

२० भारतसे गिरमिटिया मजदूर

पिछले हफ्ते हमने प्रवासियोंके कार्यवाहक संरक्षकके सन् १९ २ के मनोरंजक प्रतिवेदनके एक हिस्सेपर विचार किया था। उस वर्ष सोलह जहाजोंने — ग्यारहने मद्राससे और पाँचने कलकत्ता से — ४१७१ भारतीयोंको उतारा जिनमें २९४ पुरुष थे और १ ११ स्त्रियाँ थीं। इस वर्ष प्रवेशके लिए १८ अर्जियाँ आई थीं। इनके अलावा १९ २ अविचारित अर्जियाँ सन् १९ १ की पड़ी हुई थीं। इस प्रकार सन् १९ २ के अन्तमें इस प्रतिवेदनके अनुसार १७५ मनुष्य ऐसे थे जो भेजे नहीं जा सके। प्रतिवेदन आगे कहता है

> अगर भारतमें मजदूरोंकी भरती और उन्हें भेजनेका काम जोरोंसे आगे नहीं बढ़ाया गया तो भारतीय मजदूरोंकी आवश्यक संख्या हमें दाई वर्षसे पहले नहीं मिल सकेगी। भारतीय मजदूरोंकी माँग इतनी अधिक बढ़नेका कारण वतनी मजदूरका खास तौरपर खेतीके काममें अविश्वसनीय होना है।

> इस असाधारण माँगके दूसरे कारण ये बताये गये हैं
>
> ज्यादातर दिनोंमें इन वतनी आदमियोंको ऊँची मजदूरी मिलती रही है। रिक्शा चलाकर वे प्रतिदिन एक-एक पौंड कमा लेते हैं। फिर गोरी आबादी ९ बढ़ गई है। इसलिए बहुतसे मजदूरोंको उनके पास काम मिल गया होगा। मजदूरोंकी इस कमीके कारण वतनी आदमियों और स्वतन्त्र भारतीयोंको खूब ऊँची मजदूरी मिल रही है। यह सातवाँ वर्ष है जब उनको हर महीने साठ-साठ शिलिंग पड़ जाते हैं।

इस प्रकार प्रतिवेदनसे प्रकट है कि उपनिवेशकी समृद्धिके लिए भारतीयोंकी कितनी अधिक आवश्यकता है। हर जगह उनकी जरूरत है और फिर भी अखबारोंमें लेखक शिकायतें कर रहे हैं कि उपनिवेशमें भारतीयोंकी बाढ़ आ रही है। हमारा सहयोगी नैटाल ऐडवर्टाइजर तो और आगे बढ़कर उपनिवेशके प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम और गिरमिटिया मजदूरोंके प्रवास-सम्बन्धी कानूनोंके भेदको भी भुला देता है और लिखता है कि भारतीयोंका प्रवेश रोकनेमें प्रवासी

प्रतिबन्धक अधिनियम एकदम असफल रहा है। हम सहयोगीको याद दिलाना चाहते हैं कि गिरमिटिया मजदूरोंपर प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम लागू नहीं होता और इस प्रकार स्वतन्त्र भारतीयोंके प्रवेश-नियन्त्रणका गिरमिटिया मजदूरोंके प्रश्नसे कोई सम्बन्ध नहीं है। विचाराधीन वर्षमें १२९ पुरुष और १५ स्त्रियाँ भारत लौटे। और सन् १८९१ के गिरमिटिया मजदूरोंके कानूनका संशोधन करनेवाले अधिनियमके मातहत ६४३ पुरुषों और २९६ स्त्रियोंने अपनी पाँच वर्षकी अवधि पूरी होनेपर पुनः नये इकरारनामेपर दस्तखत किये हैं। १६५५ पुरुषों और ४५१ स्त्रियोंने ३ पौंडका व्यक्ति-कर अदा किया है और इस तरह, उपनिवेशको २११८ पौंडकी सालाना आय दी है। इतने पुरुषों और स्त्रियोंका सालाना कर अदा करना यह भी सिद्ध करता है कि स्वतन्त्र भारतीय मजदूरोंकी भी यहाँ अत्यधिक माँग है।

> फिर रसोइया, हजूरिये, धोबी इत्यादि विशेष प्रकारके नौकरोंकी माँग पहलेके समान ही है। बहुतसे स्वतन्त्र भारतीय ऊँची मजदूरीपर ट्रान्सवाल चले गये हैं और अब एक मामूली रसोइया ६ पौंड प्रतिमास वेतन देनेपर भी भीतरके उपनिवेशोंमें नहीं जाता। खास प्रकारकी योग्यता रखनेवाला आदमी तो १६ पौंड मासिक तककी माँग करता है। मजदूरों और नौकरोंके वेतन इतने बढ़ जानेके कारण साधारण लोगोंका इस वर्गके स्वतन्त्र भारतीयोंको अपने घर नौकर रखना लगभग असम्भव हो गया है। गिरमिटिया मजदूर मिलें केवल तभी इस तरहके नौकरोंको रखा जा सकता है।

इस आखिरी वाक्यसे सिद्ध है कि एक प्रकारकी गुलामी जारी हो तभी यहाँके जरूरतमन्द लोगोंको बाजारकी दरसे काफी कम दरोंपर नौकर मिल सकते हैं। फिर भी जो लोग अपनी सेवाएँ इतनी कम दरोंपर पाँच-पाँच वर्ष अथवा इससे भी अधिक समयके लिए देते हैं उनको अपनी आजादीकी कीमत ३ पौंड वार्षिक कर चुका कर देनी पड़ती है।

उपनिवेशका भारतीय विवाह-विषयक कानून भी अभीतक अत्यन्त असन्तोषजनक है।

> विचाराधीन वर्षमें १ ५१ विवाह दर्ज हुए, जब कि इससे पहलेवाले वर्षमें ४ ३ विवाह दर्ज हुए थे। इनमें से ५२७ तो भारतीयोंके यहाँ पहुँचनेके बाद उनके जिलेमें पहले दर्ज हुए थे। शेष नेटालमें दर्ज थे। इसमें अब एक सवाल खड़ा किया गया है कि यदि वधू या वरमें से कोई एक भी १८९१ के २५ वें कानूनकी धारा ७१ के अनुसार अपना विवाह दर्ज करानेसे इनकार करे तो ऐसे धार्मिक विवाह जायज माने जायेंगे अथवा नहीं। इसमें शक नहीं कि अविवेकशील लोगोंमें बहुत-सी बुराइयाँ फैली हुई हैं। जैसे वे अपने बच्चोंकी शादी बहुत छोटी उम्रमें कर देते हैं। और जब वे बड़े होते हैं तब लड़कियोंको पतिके घर भेजनेमें बाधाएँ उपस्थित करते हैं। कभी-कभी पैसे लेकर उसे दूसरे आदमीके साथ जानेके लिए ललचाते भी हैं। और चूँकि इस धारामें धार्मिक विधिकी आवश्यकता नहीं है इसलिए पंजीयककी हदतक इसका कोई बन्ध नहीं होता।

पर कठिनाई तबतक बनी रहेगी जबतक विवाह विषयक कानूनका उपनिवेशके कानूनके साथ सामंजस्य स्थापित नहीं हो जाता और वर-वधूके धर्मके अनुसार हुए विवाहोंको मान्यता नहीं दे दी जाती। विवाहोंको दर्ज करानेके विचारका भारतीयोंके मनमें बड़ा गहरा विरोध है। वे विवाहको केवल एक इकरारनामा नहीं बल्कि एक धार्मिक विधि मानते हैं। उनके लिए वह एक अत्यन्त पवित्र वस्तु है। धार्मिक कार्रवाईसे ही विवाहका बन्धन अटूट होता है। उनमें

तलाक है ही नहीं। ऐसे लोगोंकी दृष्टिमें सरकारी कागजोंमें शादियोंका दर्ज किया जाना एक तमाशा है, और जैसा कि संरक्षक (प्रोटेक्टर)ने कहा है

> उच्च वर्गके भारतीयोंमें स्वभावतः शायद ही कभी कोई कठिनाई पैदा होती है। ये कठिनाइयाँ तो केवल वहीं खड़ी होती हैं जहाँ माता-पिता लड़कीको धन कमानेका साधन मानते हैं। पंजीयनके लिए गये लोगोंमें से बहुत-सी औरतें शपथपूर्वक यह नहीं कह सकीं कि उनके पति मर चुके हैं। इसलिए उनकी शादियाँ दर्ज नहीं की गईं।

इस बुराईको कम करनेके दो-ही रास्ते हैं। एक तो यह कि भारतसे रवाना होनेसे पहले प्रत्येक स्त्री और पुरुषके बारेमें निश्चित जानकारी प्राप्त कर ली जाये कि वह विवाहित है या नहीं। और दूसरा यह कि वर-वधूके धर्मके अनुसार जो विवाह हुए हों उनको उपनिवेशमें मान्यता दे दी जाये। यदि उपनिवेशके साधारण कानूनके विरुद्ध कोई बात हो—जैसे किसी मनुष्यकी एकसे अधिक पत्नियाँ हों या वे विवाहके योग्य वयकी न हों — तो ऐसी शादियोंको मान्यता न दी जाये। इसके लिए आवश्यक है कि भारतीय विवाहोंकी जाँचके लिए ऐसे अधिकारी नियुक्त कर दिये जायें जिनकी सचाईपर किसीको शक न हो। उन्हें सब भारतीयोंके विवाहोंके सम्बन्धकी जानकारी एकत्र करनेका काम सौंप दिया जाये। और भारतीयोंके मान्य पुरोहितोंको यह जानकारी तैयार करनेका काम दिया जाये। यद्यपि ऐसे नियम बनानेसे कठिनाई पूरी पूरी तरह तो हल नहीं होगी फिर भी हमें इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि वह बहुत हदतक कम जरूर हो जायेगी।

कहा जाता है जो १४१२ भारतीय भारतको लौटे वे अपने साथ १६,५२२ पौंड नकद और ४,८ ९ पौंड कीमतके जेवर ले गये। यह एक आदमीके पीछे १५ पौंडसे कुछ ज्यादा पड़ा। यह उसकी पाँच वर्षकी बचत है अर्थात् एक वर्षकी बचत ३ पौंड हुई। इस रकमको यदि दक्षिण आफ्रिका आनेवाले भारतीयोंकी बचतका नमूना मान लिया जाये तो इससे प्रकट है कि शर्तकी अवधि भारतमें समाप्त करनेका प्रस्ताव अत्यन्त हानिकर है। यह रकम इतनी छोटी है कि उस व्यक्तिको कोई सहारा नहीं दे सकती। पाँच वर्षके कठिन परिश्रमके बाद १५ पौंडकी बचत भारत जैसे गरीब देशमें भी उसे बहुत सहायक नहीं होगी। इतनी छोटी पूँजीसे वह न तो व्यापार कर सकता है, न और कोई काम-धन्धा।

मद्रासके निवासी बहुत मितव्ययी होते हैं। ध्यान देनेकी बात है कि यह उन्होंने एक बार और सिद्ध कर दिया। वे अपने साथ १२९ पौंड ले गये जब कि उनके कलकत्तावाले भाई केवल ८७ पौंड ले जा सके। ३१ दिसम्बरको कुल प्रवासी भारतीयोंकी संख्या ८७ थी। इनमें से १६, उपनिवेशमें पैदा हुए थे। हम देखते हैं कि सोनेकी खानोंमें भी अभी तक भारतीयोंको लिया जा रहा है, यद्यपि यह प्रयोग पूरी तरह सफल साबित नहीं हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्हें जाड़ेके मौसममें कामपर बुलाया गया। यह मौसम उन्हें अनुकूल नहीं पड़ता। जिन्हें जमीनके अन्दर काम करना होता है उनकी मजदूरी रुपोंकी होती है अर्थात् १ शिलिंगके बजाय मासिक १५ शिलिंग।

> संरक्षकके मुहकमेकी मार्फत २११ भारतीयों द्वारा २,६७६ पौंड १२ शिलिंग और पोस्ट ऑफिसके द्वारा १ ९,८८९ पौंड भारत भेजे गये। ३१ दिसम्बरको नेटाल सेविंग्स बैंकमें १७८७ भारतीयोंके ४६,३ ९ पौंड जमा थे। जब कि इससे पहलेके वर्षमें १ ३१ भारतीयोंके ३४१ ८ पौंड जमा थे।

सरासर कहना है। यह निवेदन करते हुए प्रसन्नता होती है कि कुल मिलाकर भारतीय कानूनोंका अच्छी तरह पालन करते हैं। दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि कानूनका पालन करनेकी यह अच्छी वृत्ति दक्षिण आफ्रिकामें व्यर्थ जा रही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१०-१९ ।

२१ लेडीस्मिथके भारतीय

लेडीस्मिथके व्यापार-संघकी एक दिलचस्प बैठकका लम्बा-लम्बा विवरण हमारे सहयोगी *नेटाल विटनेसने* छापा है। महापौर श्री डी० स्पार्क्सने भारतीय परवानोंके बारेमें अपने भाव प्रकट करते हुए कहा

> अरब व्यापारी अपने अच्छेसे-अच्छे आदमियोंको ४ पौंड मासिक देते हैं, जब कि गोरे दुकानदारोंको बीस-बीस पौंड और कभी-कभी इससे भी अधिक देना पड़ता है। भारतीयोंके पास भी व्यापारके परवाने हैं। परन्तु वे यूरोपीय दुकानदारोंके रिवाजोंकी परवाह नहीं करते और अपनी दुकानें चौबीसों घंटे खुली रखते हैं। क्या आप लोग पसन्द करेंगे कि आपके आदमी सुबह पाँच बजेसे लेकर रातके नौ-नौ बजेतक दुकानोंपर काम करते रहें? इस प्रश्नका अब हमपर प्रत्यक्ष असर पड़ने लगा है। इसलिए इस मामलेमें हमें जल्दीसे-जल्दी कोई कदम उठाना चाहिए। इसीमें लेडीस्मिथ शहर, जिले और हमारी आनेवाली पुश्तोंकी भलाई है। किन्तु अगर हम समयपर नहीं चेते और ढील-पोल चलती रही तो लेडीस्मिथका यह ऐतिहासिक शहर एक एशियाई शहर बन जायेगा।

ऊपरके भाषणमें योग्य महापौर जितनी गलत बातें गिनतीके पाँच-सात वाक्योंमें चतुराईके साथ कह गये हैं, शायद ही कोई इतने थोड़े वाक्योंमें इतनी गलत बातें कह सके। श्री स्पार्क्सको हम चुनौती देते हैं कि ऊपर उन्होंने जो बात सबसे पहले कही है अर्थात् यह कि भारतीय व्यापारी अपने अच्छेसे-अच्छे आदमियोंको ४ पौंड मासिक वेतन देते हैं, सिद्ध करके बतायें। भारतीय व्यापारी-व्यवसायी अपने कारकुनों और विक्रेताओंको जो वेतन देते हैं उसकी कुछ-कुछ जानकारी रखनेका हम दावा कर सकते हैं। और श्री स्पार्क्सको यह बताते हुए हमें बहुत खुशी हो रही है कि भारतीय व्यापारी अपने अच्छेसे-अच्छे आदमियोंको मासिक २५ पौंडतक अथवा इसके बराबर वेतन देते हैं, अर्थात् वे आदमी १२ से १५ पौंड तो नकद पाते हैं और इसके अलावा उन्हें भोजन तथा मकानकी सहूलियत दी जाती है। हम यह भी बता दें कि उत्तम आदमियोंको अच्छी सेवाकी अवधिके अन्तमें नाना इनाम भी दिया जाता है। इसके आगे दर्जनों उदाहरण तो हम अभी दे सकते हैं और अगर श्री स्पार्क्स ४ पौंड मासिक वेतन पानेवाले अच्छेसे-अच्छे आदमियोंके नाम बतानेकी कृपा करें तो हमने जो वेतन बताया है उसके पानेवालोंके नाम हम भी खुशीसे उन्हें बता सकेंगे। यह बिलकुल सही है कि कुछ कारकुन और नौकर सचमुच ४ पौंड मासिक वेतन पाते हैं। परन्तु जिनको यह वेतन मिलता है वे अकसर इससे अधिक पानेके पात्र भी नहीं होते। जो आदमी एकदम नये हैं जिनको काम सिखानेकी जरूरत है और अंग्रेजी भाषाका ज्ञान न होनेके कारण जिनका बहुत उपयोग नहीं हो पाता वे बहुत अच्छे वेतनकी आशा भी नहीं कर सकते। फिर यह नहीं भुलाया जा सकता कि जिनको ४ पौंड मासिकका भी वेतन मिलता है उन्हें हमेशा वेतनके अलावा भोजन और मकानकी सुविधा दी जाती

है। हम यह नहीं कहते कि भारतीय कम वेतन स्वीकार ही नहीं करते। सच तो यह है कि वे अक्सर बहुत थोड़ा वेतन स्वीकार कर लिया करते हैं। परन्तु जब कोई बात बहुत बढ़ा चढ़ाकर कही जाती है तो हमें उसका प्रतिवाद करना ही पड़ता है। क्योंकि उपनिवेशमें भारतीयोंके प्रति पहले ही काफ़ी दुर्भाव भरा पड़ा है। ऐसी गलत बातोंसे वह और भी बढ़ जाता है। भारतीयोंकी आदतें सीधी-सादी और रहन-सहन कम खर्चीला है। इसलिए वे थोड़े वेतनमें भी सन्तोष मान लेते हैं। फिर, हमारी समझमें नहीं आता कि जहाँ इतनी अधिक होड़ है और सबके लिए खुली होड़ है वहाँ वेतनके बारेमें किसीको क्यों शिकायत हो। हम यह स्वीकार करनेको तैयार हैं कि भारतीय दूकानें — बहुतसी सब नहीं — यूरोपीय दूकानोंकी अपेक्षा अधिक समयतक खुली रहती हैं। परन्तु यह कहना तो सरासर गलत है कि वे सुबह पाँच बजेसे लेकर रातके नौ-नौ बजेतक खुली रहती हैं। और, जहाँतक ऐतिहासिक शहर लेडीस्मिथके एशियाई बन जानेका डर है क्या हम महावीर महोदयको याद दिलायें कि अगर सर जॉर्ज व्हाइटका प्रमाणपत्र सही है तो उसे बोअरोंके हाथमें जानेसे—चाहे वह कितने ही थोड़े समयके लिए क्यों न हो—प्रभुसिंह[1] नामक अकेले एक भारतीयकी बहादुरीने बचाया था। वह प्रभुसिंह ही था जो अपनी जानको खतरेमें डालकर एक पेड़पर चढ़कर बैठ गया था और ज्यों ही मम्बुलवाना टेकड़ीपर बोअर तोप दागी जाती वह घंटा बजाकर उसकी सूचना दिया करता था। प्रभुसिंहका यह काम इतना महत्त्वपूर्ण माना गया कि सर जॉर्जने इसका खास तौरपर उल्लेख किया और लेडी कर्जनने उसे विशेष मान्यता दी और इनामके तौरपर उन्होंने उसके लिए एक चोगा भेजा ताकि वह डर्बनमें उसे सार्वजनिक रूपसे भेंट किया जाये। इसलिए श्री ल्यावर्सके मुँहसे यह ताना शोभा नहीं देता। परन्तु जहाँ लेडीस्मिथके महापौर और वहाँके व्यापार-संघके अन्य सदस्योंके शब्द हमारी रायमें अनुचित हैं वहाँ लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीय व्यापारियों और दूकानदारोंको भी हम चेतावनी देना चाहते हैं। पहले श्री ल्यावर्सने और बादमें इतनी अच्छी तरह और सौम्य भाषामें परवाना अधिकारी श्री जी॰ डब्ल्यू॰ लाइन्सने भारतीयोंके यूरोपीय दूकानदारोंकी अपेक्षा अधिक समयतक दूकानें खुली रखनेकी जो शिकायत की उसके प्रति हम अपनी सहानुभूति प्रकट किये बिना नहीं रह सकते। श्री जमर एक व्यापारी हैं। उनका यह कहना वाजिब है कि भारतीयोंके और यूरोपीयोंके व्यापारमें अन्तर है। भारतीय व्यापारियोंके ग्राहक ऐसे वर्गके लोग हैं जिनके लिए अधिक समयतक दूकानें खुली रखना जरूरी होता है। परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि इस मामलेमें बीचका कोई रास्ता निकल सकता है। और यूरोपीय दूकानदारोंकी माँगपर जरूर उचित विचार होना चाहिए। ऐसी बातोंमें और जहाँ समस्त समाजकी भलाईका सवाल हो वहाँ हमें तमाम उचित सुझावों और सलाहोंका बिना किसी दबावके अवश्य स्वागत करना चाहिए। यह बिलकुल सम्भव है कि दूकानें खास तौरपर किस समयसे किस समयतक खुली रहें इस बारेमें कानून बन जाये। परन्तु इससे कहीं अधिक शोभाजनक और लाभदायक यह होगा कि भारतीय व्यापारी खुद ही इस विषयमें पहल करके आवश्यक सुधार कर लें। तब हम जाहिर कर सकेंगे कि जब-कभी किसी वाजिब शिकायतकी तरफ हमारा ध्यान दिलाया जाता है हम उसे दुरुस्त करनेके लिए और यूरोपीयोंके साथ सहयोग करनेके लिए तैयार रहते हैं। इसलिए श्री लाइन्सने मिलनेवाले भारतीयोंसे उन्हें जो वचन दिया है कि वे उनके मध्यमार्गीय प्रस्तावपर विचार करेंगे अवश्य ही उसका अच्छा परिणाम होगा ऐसा हमारा विश्वास है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९–१०–१९०३

[1] १ [illegible] *इंडियन ओपिनियन* [illegible] है।

२२. न्यायालयका सम्मान क्या है?

नेटालके विद्वान मुख्य न्यायाधीश सर हेनरी बेलने[1] फिर इस प्रश्नको छेड़ा है कि जब एक ब्रिटिश भारतीय न्यायालयमें कदम रखे तब वह न्यायालयका उचित सम्मान किस प्रकार करे? न्यायमूर्तिके विचाराधीन एक मामलेमें कोई मनोरथ नामक ब्रिटिश भारतीय गवाह जूते पहने न्यायालयमें हाजिर हुआ। न्यायमूर्तिने दुभाषिये (श्री मैथ्यूज) से पूछा कि गवाहोंके बारेमें भारतमें क्या रिवाज है? दुभाषियेने कहा कि अगर गवाह जूता पहनकर आये तो इसमें न्यायाधीशका अपमान समझा जाता है। न्यायमूर्तिने दुभाषियेसे कहा कि वह कलकत्ताके मुख्य न्यायाधीशसे दरियाफ्त करे कि वहाँका सही-सही रिवाज क्या है। न्यायमूर्तिने कहा कि मैंने तो भारतीयोंको पगड़ी और जूते दोनों पहनकर न्यायालयमें आते हुए देखा है। उन्होंने विनोदपूर्वक यह भी कहा कि अगर वे जूते निकालकर आयें तो उनके गायब हो जानेका डर रहता है। हमारा खयाल है कि इस विषयमें सर हेनरी जिसका ताड़ बना रहे हैं। जहाँतक नेटालसे सम्बन्ध है, यहाँ क्या किया जाये यह अनेक बार तय हो चुका है। बरसों पहले सर वाल्टर रैगने भार तीयोंका एक शिष्टमण्डल मिला था। और यह तय हुआ था कि पगड़ी हटानेके स्थानपर भारतीय न्यायासनको सलाम किया करें। जब सन् १८९४ में नेटाल सरकारकी तरफसे उसके प्रतिनिधि भारत गये तो वे वहाँके रिवाजके बारेमें पूरी-पूरी जानकारी लाये थे। और इसका उल्लेख उन्होंने सरकारको पेश किये अपने प्रतिवेदनमें किया था। उन्होंने स्पष्ट किया था कि भारतके अदालतमें सम्बन्धित व्यक्तियोंको चाहे वे यूरोपीय अथवा अंग्रेज भारतीय वेशभूषामें हों पगड़ी या जूते उतारनेकी आवश्यकता नहीं है। अर्थात् अगर उनके सिरपर कोई पूर्वी पोशाक है तो उसे नहीं हटाना चाहिए। परन्तु अगर जूते देशी ढंगके बने हैं तो उनको पूर्वी रिवाजके मुताबिक निकाल देना चाहिए। सर वाल्टर यह जानते थे। अतः उन्होंने हुक्म दिया कि बूट या जूते नहीं निकाले जायें क्योंकि नेटालमें उन्हें निकालना व्यावहारिक नहीं होगा और दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय निरपवाद रूपसे यूरोपीय ढंगके बूट या जूते ही पहनते हैं। न्यायमूर्तिको हम यह भी याद दिला दें कि जब वे वकालत कर रहे थे और नेटालके वकील-समाजकी शोभा बढ़ा रहे थे तब उन्होंने कासिम अब्दुल्ला बनाम बेनेटकी तरफसे बड़े वकीलकी हैसियतसे पैरवी की थी। कासिम अब्दुल्लाने श्री बेनेट मजिस्ट्रेटपर मामला इसलिए चलाया था कि उनकी अदालतमें चल रहे एक मामलेमें श्री बेनेटने हुक्म दिया था कि गवाहकी पगड़ी जबरदस्ती उतार ली जाये। इसपर श्री कासिमने हर्जानेकी माँग की थी। तब वे यह फैसला प्राप्त करा सके थे कि *ब्रिटिश भारतीयोंको सिरकी पोशाक या जूता निकालनेके लिए मजबूर नहीं करना चाहिए,* किन्तु अदालतमें प्रवेश करनेपर वे सलाम किया करें। तबसे यहाँ यही रिवाज माना जाता है। और अब इस प्रश्नको पुनः छेड़ना अनुचित होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-१-१९०५

१. पहले नेटालके छोटे न्यायाधीश और बादमें स्थानापन्न मुख्य न्यायाधीश।

२१. ट्रान्सवालके "बाजार"

ट्रान्सवालमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीय दूकानदारों और व्यापारियोंका पृथक् बस्तियोंमें (जिनको *बाजारका* गलत नाम दिया गया है) चले जानेकी जो सूचनाएँ मिली हैं उनकी मियाद आगामी ११ दिसम्बरको समाप्त होती है। प्रतीत होता है कि सरकारके एशियाई मुहकमेमें कोई आसुरी प्रतिभा काम कर रही है। भिन्न-भिन्न शहरोंके मजिस्ट्रेटोंने अर्जदारोंको बाड़े देनेके बारेमें जो सूचनाएँ जारी की हैं उन्हें हमने देखा है। जमीनें देनेके इन प्रस्तावोंमें इतनी कड़ी शर्तें जुड़ी हुई हैं कि उन्हें देखकर हमें यही कहना पड़ता है कि वर्तमान कानूनमें भारतीयोंका जो-कुछ थोड़ा-बहुत दिया गया है, उससे भी उन्हें वंचित करनेका जानबूझकर प्रयत्न किया जा रहा है। हमारी समझमें नहीं आता कि उपनिवेशकी सरकारकी तरफसे नहीं तो उसके मातहत व्यापारमें भारतीयोंके प्रति ऐसी तुच्छ ईर्ष्या कभी पैदा ही क्यों होनी चाहिए। इन सूचनाओंमें से एकमें लिखा है:

> अगर आप कोई खास बाड़े चाहते हैं तो अपनी अर्जीमें आपको लिखना चाहिए कि आपको ये बाड़े क्यों चाहिए। अगर इन बाड़ोंके पट्टेपर आपका कोई विशेष हक हो तो उसका भी उल्लेख कीजिए। आपको याद रखना है कि मैं ऐसे किसी आदमीको बाड़े नहीं दे सकता जो वास्तवमें शहरमें नहीं रहता या व्यापार नहीं कर रहा है और जिसको प्रत्यक्ष रहने या व्यापारके लिए इन बाड़ोंकी जरूरत नहीं है और रहने अथवा व्यापारके लिए ठीक जितने बाड़ोंकी जरूरत होगी उससे अधिक भी नहीं दिये जायेंगे।

हमें याद नहीं पड़ता कि ऐसी "न खाये न खाने दे" वाली नीति कभी पिछली गणराज्य सरकारके जमानेमें भी रही हो। हम आशा करते हैं कि इन तथाकथित *बाजारोंमें* दी जानेवाली जमीनोंका लालच चाहे जितना भी क्यों न हो ट्रान्सवालके भारतीय तबतक इनसे कोई वास्ता नहीं रखेंगे जबतक लॉर्ड मिलनरने जिस कानूनके बननेका वचन दिया है वह बन नहीं जाता। परन्तु, किसी भी हालतमें कोई अर्जदार जमीनकी जरूरतका कारण क्यों बताये? कानूनके अनुसार निर्धारित स्थानोंमें भारतीय बिना प्रतिबन्धोंके जमीनें रख सकते हैं। तब अगर कोई अर्जदार इन *बाजारोंमें* जमीन लेना चाहता है तो उसे वह क्यों नहीं मिल सकती? फिर किसी अर्जदारपर उसके रहने और व्यापारके लिए जितनी जमीनकी जरूरत हो केवल उतनी ले सकनेकी शर्त क्यों? क्या इसका अर्थ हम यह समझें कि इन जमीनोंके पट्टेदारोंको अपने हिस्से दूसरे किसीको किरायेपर देनेका हक नहीं होगा और उन्हें खुद हमेशा वहाँपर रहना होगा नहीं तो उनके पट्टे छीन लिये जायेंगे? फिर इन जमीनोंके पट्टे केवल उन्हींको क्यों दिये जायेंगे जो इन शहरोंमें रहते या व्यापार करते हैं? पिछली हुकूमतके जमानेमें हर पृथक् बस्तीमें ऐसे मालिक और पट्टेदार थे जो अपनी खुदकी जमीनोंपर नहीं रहते थे। उन्हें जिस तरह चाहें इनको बरतनेका अधिकार था। वे इन्हें दूसरे व्यापारियोंको किरायेपर दे सकते थे और अनेक जमीनें रख सकते थे। तब ब्रिटिश हुकूमतमें उनकी यह आजादी क्यों छीनी जा रही है? लॉर्ड मिलनरका आश्वासन है कि सरकारके दिलमें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति कोई दुर्भाव नहीं है और वह उन्हें केवल समानता और न्यायपूर्वक ही नहीं उदारतापूर्वक भी

रखना चाहती है। परन्तु इस अनमोल *बाजारों*के बारेमें कौमके विरुद्ध जो सूचनाएँ निकाली गई हैं वे तो इस आश्वासनके एकदम विपरीत हैं। अगर सरकार भारतीयोंको परेशान करनेवाले कानून बनाकर यहाँसे निकाल बाहर करना चाहती है तो वह उन्हें एक बारमें बोरिया-बिस्तर समेत उपनिवेससे बाहर क्यों नहीं कर देती? ऐसा करना उनके प्रति दया होगी। वे अपनी स्थिति जान जायेंगे और सरकारको अपने कार्योंके लिए झूठमूठके बहाने भी नहीं ढूँढने पड़ेंगे। ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी पुरानी सरकारकी भाँति वह साफ-साफ कह दे कि "यद्यपि आप लोग ब्रिटिश प्रजाजन हैं तथापि हम आपसे कोई वास्ता नहीं रखना चाहते क्योंकि आपकी चमड़ीका रंग मेहुँआ है। ऐसा करना सख्त कार्रवाई है और शायद ब्रिटियोंके लिए मध्योमनीय भी। परन्तु इसमें ईमानदारी है। और यदि सरकार सचमुच भारतीयोंपर मेहरबान है और उल्लिखित आश्वासनोंपर अमल करना चाहती है तो अबतक चली आनेवाली अपनी नीतिमें वह जितनी जल्दी परिवर्तन कर सके उसके लिए उतना ही अच्छा होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१०-१९ ३

२४ ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

हम ट्रान्सवालके तथा-कथित भारतीय *बाजारों*के प्रश्नपर वापस आनेके लिए कोई क्षमा-याचना नहीं करते। वहाँ ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति अत्यन्त नाजुक है और यह देखते हुए कि इस समय प्रश्नका यह सबसे कमजोर हिस्सा है हम इसीपर अधिक ध्यान केन्द्रित करना अपना कर्तव्य समझते हैं। हम दूसरे स्तम्भमें स्टैंडर्टनके मजिस्ट्रेटके हस्ताक्षरोंसे युक्त एशियाई लोगोंके नाम निकाली गई सूचना पुनः छापते हैं। इससे स्पष्ट रूपसे वह भावना व्यक्त होती है जिससे ब्रिटिश भारतीयोंसे व्यवहारके सम्बन्धमें एशियाई विभागकी नीति संचालित होती प्रतीत होती है। सूचनाके अनुसार *बाजारमें* बाड़ोंके पट्टेके लिए दरख्वास्तें माँगी गई थीं जिनकी सूची गत मासकी १ तारीखको बन्द होनी थी। प्रार्थियोंको अपनी दरख्वास्तोंमें यह बताना है कि किन्हीं विशेष बाड़ोंकी आवश्यकता उन्हें क्यों है और उनको पट्टेपर देनेके लिए उनके दावोंके आधार, यदि उनके पास हों तो क्या हैं। फिर मजिस्ट्रेट दी हुई तारीखपर दरख्वास्तोंपर विचार करेगा और प्रार्थियोंमें बाड़ोंको निम्नलिखित नियमोंके अनुसार बाँट देगा

> (क) किसी भी ऐसे व्यक्तिको कोई बाड़ा न दिया जायेगा जो वस्तुतः शहरमें नहीं रहता है या व्यापार नहीं करता है और जिसे अपने निवास या व्यापार-सम्बन्धी कार्योंके लिए बाड़ेकी आवश्यकता नहीं है।
>
> (ख) किसी भी व्यक्तिको जितने बाड़े वस्तुतः उसके निवास या व्यापारके लिए आवश्यक हों उससे अधिक बाड़े न दिये जायेंगे।
>
> (ग) यदि किसी विशेष बाड़ेके लिए एकसे अधिक प्रार्थी हैं तो, किसी दावेदारके साथ विशिष्ट व्यवहारके लिए अच्छा दावा न होनेकी अवस्थामें उस बाड़ेका निर्धारण कानून द्वारा या किसी अन्य तरीकेसे किया जायेगा जिसका फैसला मजिस्ट्रेट करेगा।

अब जैसा हम इन स्तम्भोंमें कई बार बता चुके हैं १८८५का कानून ३ भारतीयोंको मुहल्ला *बाजारों* या बस्तियोंमें जो उनके लिए निर्धारित किये जायें भूमि-सम्पत्ति रखनेका

असीमित अधिकार देता है, किन्तु उनके इस अधिकारके सिवा, शहरसे बहुत दूरकी बस्तियोंके सम्बन्धमें जहाँ व्यापार करना अत्यन्त असम्भव और रहना बहुत खतरनाक होगा, अत्यन्त परेशान करने वाली शर्तोंकी बाधाएँ खड़ी कर दी गई हैं। जो शर्तें लगाई गई हैं, उनकी हद दर्जेकी कठोरता समझनेके लिए यह तथ्य ध्यानमें रखना होगा कि ये बाड़े महज जमीनके खाली टुकड़े हैं। पट्टेदारोंको इनकी पैमाइशकी फीस और किराया ही नहीं देना है, बल्कि उन्हें इनके ऊपर अपने मकान-दूकान भी बनाने हैं। तभी वे इन बाड़ोंको अपने निवास या व्यापारके लिए ले सकते हैं और वे केवल ऐसे ही कामोंके लिए काफी होंगे, दूसरे कामोंके लिए नहीं। सरकार यह आशा कैसे करती है कि प्रत्येक भारतीय पट्टा ले लेगा, उसपर बाड़ा बना लेगा और शायद उसे किरायेपर न उठा सकनेपर भी वहाँ रहेगा। यह बात समझना बहुत कठिन है। सूचनामें दी गई हास्यास्पद शर्तोंका पालन किया जा सके इसके लिए प्रत्येक भारतीयको विशाल साधन-सम्पन्न व्यक्ति होना आवश्यक है। किन्तु दुर्भाग्यसे यह ऐसा है नहीं। फिर यदि वह सुन्दर इमारत नहीं खड़ी कर सकता या केवल टीनकी खोली खड़ी कर लेता है, तो दोष उसके सिरपर मढ़ा जायेगा और वह इसलिए घृणा और तिरस्कारका पात्र बनाया जायेगा कि वह महज खोलियोंमें रहता है, यद्यपि स्थिति बिलकुल उसकी उत्पन्न की हुई नहीं बल्कि सरकारकी उत्पन्न की हुई होगी। ट्रान्सवालमें भी कई स्थानोंमें न्यूनाधिक इसी मात्रामें ब्रिटिश भारतीयोंको सूचनाएँ भेजी गई हैं। उनमें दी गई शर्तें लगानेमें परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयका कोई हाथ है, इसमें हमें बहुत अधिक सन्देह है। वस्तुतः यह देखते हुए कि प्रत्येक सूचनाके शब्द दूसरीसे भिन्न हैं, सत्य बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। अतः यह प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट संभवतः प्रधान कार्यालयसे प्राप्त बहुत ही सामान्य निर्देशोंके आधारपर अपने आप ही यह कार्रवाई कर रहे हैं। यदि ऐसी बात है तो इससे एक बार फिर हमने जो स्थिति ग्रहण की है उसका औचित्य सिद्ध हो जाता है। वह स्थिति यह है — भारतीयोंके सम्बन्धमें कोई सम्बद्ध निश्चित नीति नहीं है और वे न्यूनाधिक मजिस्ट्रेटों या अन्य अफसरोंकी दयापर निर्भर हैं, जो भारतीयोंके प्रति या विरुद्ध अपने पक्षपातके अनुपातसे नरम या कड़ा व्यवहार करते हैं। ऐसी स्थिति अधिक दिन नहीं टिक सकती, अतः आशा की जाती है कि सर आर्थर लॉली, जिनका हृदय विशाल है, अपने बहुविध कर्तव्योंसे कुछ समय बचायेंगे और इस मामलेमें स्वयं दिलचस्पी लेंगे। भारतीय गत दो वर्षसे अनिश्चय और दुविधाकी अवस्थामें रहनेके लिए विवश हो रहे हैं। उनको अपने दर्जेकी स्पष्ट व्याख्याकी आशा रखनेका अधिकार है। इस बीच, जैसा सत्ताकमें कह चुके हैं, हम विश्वास करते हैं कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय धैर्यपूर्वक घटनाओंकी प्रतीक्षा करेंगे और बाजारोंसे कोई सरोकार रखनेसे इनकार कर देंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९ १

१. अभिप्राय गवर्नर ।

२५ ईस्ट लन्दन और उसके भारतीय निवासी

हम अन्य स्तम्भमें *ईस्ट लन्दन डिस्पैच*का एक संयत अग्रलेख उद्धृत करते हैं जो नगरमें भारतीयों द्वारा भूमि-सम्पत्ति रखनेके प्रश्नपर लिखा गया है। हमारे सहयोगीने यह लेख एक भारतीयके साथ जिसने वहाँकी एक प्रधान सड़कपर भूमिका एक टुकड़ा खरीदा था और उसकी अच्छी कीमत दी थी घटित घटनाके आधारपर लिखा है। हम अपने सहयोगीसे पूर्णतः सहमत हैं कि नगर-परिषद भवन-निर्माण कानूनोंको कठोरतासे लागू करे, और हम उसे विश्वास दिलाते हैं कि यदि नगर-परिषद इस दिशामें अपने कर्तव्यका पालन करे तो सदासे सीधे-सादे और नियम-पालक भारतीय उन कानूनोंको भंग करके कभी मकान न बनायेंगे। अपने इस कथनकी सत्यताके प्रमाणस्वरूप हम भारतीय व्यापारियों द्वारा डर्बनमें ग्रे स्ट्रीटपर और अन्यत्र बनाई गई शानदार इमारतोंका हवाला देते हैं। मुख्य बात यह है कि भारतीयोंके साथ सज्जन और बन्धु प्रजाजनका-सा व्यवहार किया जाना चाहिए। हमें इसमें सन्देह नहीं कि भारतीयोंके विरुद्ध अनुचित या ओछी स्पर्धा और अन्य दोषोंके जो आरोप प्रायः अनुचित रूपसे लगाये जाते हैं उनका कारगर इलाज यही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९ ३

२६. प्लेग और लाल-फीताशाही

हमें कई संवाददाताओंसे इस आशयकी शिकायतें मिली हैं कि यद्यपि नेटालसे ट्रान्सवाल जानेवाले भारतीयोंपर से प्लेग-सम्बन्धी रुकावटें हटा ली गई हैं फिर भी प्रामाणिक ब्रिटिश भारतीयोंको १ शि ६ पें खर्च करके डॉक्टरी प्रमाणपत्र लेने पड़ते हैं और फोक्सरस्टमें अब भी उनकी डॉक्टरी परीक्षा की जाती है। चिकित्सा-अधिकारी उन्हें मजिस्ट्रेटके नाम पत्र दे देता है कि दस दिनतक उनको डॉक्टरी निगरानीमें रखा जाये। हमें यह लाल-फीताशाहीका अतिरेक प्रतीत होता है। यदि नियमोंके हटाये जानेके बाद भी ये परेशानियाँ जारी रहती हैं तो हम नहीं जानते ट्रान्सवाल-सरकारकी प्लेग-सम्बन्धी सूचनाको रद करनेका अर्थ क्या है। डॉक्टरी प्रमाणपत्र लेना और उसके लिए भारी गिन्नी देना गरीब शरणार्थियोंपर बिलकुल अनावश्यक कर है। अतः ट्रान्सवालकी सरकार अपने अधिकारियोंको जितनी जल्दी आवश्यक निर्देश भेज देगी भार तीय शरणार्थियोंके लिए उतना ही अच्छा होगा। वस्तुस्थिति यह है कि इन गरीबोंको पिछले सौ माससे सफाई और स्वास्थ्य-सम्बन्धी सावधानीके नामपर अनन्त कष्टों और असुविधाओंका लक्ष्य बनाया जा रहा है जबकि दूसरे हजारों लोग तनिक भी डॉक्टरी निरीक्षण या व्यवस्थाके बिना मुक्त रूपसे नेटालसे ट्रान्सवालमें प्रविष्ट होने दिये जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९ ३

२७ "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस" और उसके तथ्य

बताया जाता है कि स्वेज़रनेके जिलेमें भारतीयोंको परवाने दिये गये हैं। इस विषयपर हमारे सहयोगी ईस्ट रैंड एक्सप्रेसने अपने श्रेष्ठ साप्ताहिक हास्यके एक अंकमें "गुप्त कारगुज़ारियाँ" शीर्षकसे एक सम्पादकीय उपलेख प्रकाशित किया है। सहयोगी कहता है:

> स्वेज़रनेकेमें वास्तवमें जो कुछ हो रहा है वह जानना एक दिलचस्प बात होगी। पता चला है कि इस तथ्यके बावजूद कि युद्धसे पहले वहाँ भारतीयोंको परवाने नहीं दिये जाते थे अब अधिकारियोंने कुछ भारतीय व्यापारियोंको वहाँ कारोबार करनेके लिए परवाने दिये हैं। सन् १९०१ की सूचना १५६का क्या हुआ यदि उसकी धाराएँ इतनी खुल्लम-खुल्ला तोड़ी जा सकती हैं? उस सूचनाकी उपधारा २ में स्पष्ट कहा गया है: किसी भी एशियाईको निर्दिष्ट *बाज़ारों*के अतिरिक्त अन्यत्र व्यापार करनेके नये परवाने न दिये जायेंगे। अब स्वेज़रनेकेमें तो *बाज़ार* नहीं है। वह तो एक ऐसा विस्तीर्ण क्षेत्र है जहाँ मुख्यतः वतनी कौम बसी है। प्रतीत होता है, सरकार जान-बूझ कर अपनी घोषणाका उल्लंघन कर रही है और एशियाइयोंके लिए असीमित स्पर्धाका द्वार खोल रही है। यदि सरकार एशियाइयोंके सम्बन्धमें नेटाली कानूनोंको लागू करनेका इरादा रखती है तो वह खुल्लम-खुल्ला ऐसा करे। तब हम अपना कर्तव्य सोच लेंगे; किन्तु जैसी गुप्त कार्रवाईका ऊपर जिक्र किया गया है, वैसी कार्रवाइयोंका हमें अन्त कर देना चाहिए।

अब हमें जो सूचना मिली है वह ऊपरकी सूचनाके विपरीत है। हमें ज्ञात हुआ है कि दो भारतीय अपने पुराने परवानोंसे वंचित होते-होते बचे। संयोगसे हमें यह बात भी ज्ञात है कि पीटर्सबर्ग जिलेसे ही जिसके अन्तर्गत स्वेज़रनेके स्थित है भारतीय व्यापारियोंकी अधिकांश मुसीबतें शुरू होती हैं। हमारा विश्वास है कि हमारे सहयोगीको जो सूचना दी गई है वह बेचारे भारतीयोंके ऊपर और अधिक मुसीबतें लानेमें मदद देनेका एक प्रस्ताव-मात्र है। हमारे सहयोगी और हमारे बीच भारतीयोंके प्रश्नपर एक सच्चा मतभेद है किन्तु हमारा खयाल है कि हमारा सहयोगी इसपर विचारके समय तथ्योंको गलत रूपमें पेश करना नहीं चाहता। अतः हम उससे कहते हैं कि वह इस बातकी जाँच करे कि हमने जो कुछ ऊपर कहा है वह तथ्योंका सही विवरण है या नहीं?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५–११–१९ ।

२८. ट्रान्सवालमें यात्रा

हमारे सहयोगी *ट्रान्सवाल लीडरने* वतनी रेल-यात्रियोंके सम्बन्धमें एक गुमनाम लेखककी खबरको प्रमुखता दी है और एक स्थानीय रेलगाड़ीके पहले दर्जेके डिब्बेमें वतनी यात्रियोंको स्थान देनेकी रेलवे-अधिकारियोंकी मुस्तैदीपर बहुत क्रोध प्रकट किया है। कथित संवाददाताके लेखानुसार बात यह दिखाई देती है कि उसको जॉर्ज गॉचसे आनेवाली रेलगाड़ीके पहले दर्जेके डिब्बेमें चार वतनी यात्री बैठे मिले। अन्य सब डिब्बोंमें यूरोपीय यात्री बैठे थे। संवाददाताके पास पहले दर्जेका टिकट था और वह भी उसी गाड़ीसे जाना चाहता था। जब उसको दूसरे किसी डिब्बेमें स्थान न मिला तब ऐसा प्रतीत होता है कि वह उस डिब्बेके पाससे निकला जिसमें वतनी यात्री बैठे थे। यह उसकी सहिष्णुताकी सीमासे परे था। वह नहीं समझ सकता था कि वे पहले दर्जेमें यात्रा क्यों करते हैं। उन्होंने भी किराया दिया है यह प्रश्न उसके लिए विचारणीय न था। वह गार्डके पास गया और गार्डने यह कहा प्रतीत होता है कि वतनी यात्रियोंने भी पहले दर्जेका किराया दिया है अत उनको भी उस गाड़ीके पहले दर्जेमें यात्रा करनेका उतना ही अधिकार है जितना स्वयं संवाददाताको। गार्डके इस उत्तरके कारण यह संवाददाता अखबारोंमें शिकायत छपाने दौड़ पड़ा। अपने पत्रमें उसने वतनी लोगों और भारतीयोंको मिलाजुला दिया है। ऐसा ही हमारे सहयोगीने भी किया है। इस महादेशमें निस्सन्देह यह असाधारण बात नहीं है। इससे उस खतरेका पता चलता है जिसका सामना हमारे देशवासियोंको दक्षिण आफ्रिकामें सामान्यतः और ट्रान्सवालमें मुख्यत करना है। यहाँ वतनी कुली और भारतीय शब्दोंका ऐसा प्रयोग करनेकी एक प्रवृत्ति है, मानो ये सब एक ही हों। *लीडरने* रेलवे अधिकारियोंसे अपील की है कि वे वतनी लोगोंको और कुलियोंको — ब्रिटिश भारतीयोंको वह इसी नामसे पुकारना पसन्द करता है — पहले दर्जेमें यात्रा करनेसे तुरन्त वंचित कर दें। वह यह भूल जाता है कि रेलवेके नियमोंमें इस समय न तो भारतीयोंका और न वतनी लोगोंका पहले दर्जेमें यात्रा करना वर्जित है। और केवल वतनी लोगोंके सम्बन्धमें यह व्यवस्था है कि वे अपनी बर्थ गाड़ी रवाना होनेके विज्ञापित समयसे कमसे-कम आधा घंटा पूर्व लें। यदि वे चार या चारसे ज्यादा एक साथ यात्रा करनेवाले हों तो उनकी अर्जीपर विशेष रूपसे विचार किया जायेगा। हम अपने सहयोगीको स्मरण दिला सकते हैं कि पुराने शासनमें भी भारतीयोंको पहले दर्जेमें यात्रा वर्जित न थी। हम उसे यह तथ्य भी याद दिलाना चाहते हैं (यद्यपि हमें बतलाया जाता है कि अखबारोंके इतिहासमें पूर्व उदाहरणोंका कोई मूल्य नहीं होता) कि *ट्रान्सवाल लीडर* युद्धसे पूर्व रंगदार लोगोंके अधिकारोंका समर्थक था। इस पत्रकी सम्पादकीय कुर्सीको सुशोभित करनेवाले श्री पैकमैनकी अपेक्षा अधिक सहानुभूति रखनेवाला उनका कोई दूसरा मित्र नहीं था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९०३

२९. लेडीस्मिथके भारतीय दूकानदार

नेटाल विटनेस और *टाइम्स ऑफ नेटालने* लेडीस्मिथके भारतीय दूकानदारोंके प्रति श्री लाइन्सकी कार्रवाईपर और इस धमकीपर, कि यदि वे यूरोपीयोंके साथ अपनी दूकानें बन्द करना मंजूर न करेंगे तो उनके परवाने नये न किये जायेंगे जो टिप्पणियाँ लिखी हैं उनका स्वागत देते हुए हमें बहुत प्रसन्नता होती है। *टाइम्स ऑफ नेटाल* अपने सदाके तरीकेसे ब्रिटिश भारतीयोंकी निन्दा करनेके बाद आगे कहता है:

> किन्तु, इस सबके बावजूद, प्रश्न यह है कि लेडीस्मिथके टाउन क्लार्क श्री लाइन्सकी यह कार्रवाई कहाँतक उचित है कि वे सब अरब व्यापारियोंको इकट्ठा करें और उनको अपनी दूकानें उन्हीं समयोंपर बन्द करनेका आदेश दें जिनपर उनके यूरोपीय साथी बन्द करते हैं; और उनको वे ही छुट्टियाँ भी मनानेको कहें; और अन्यथा करनेपर उनके परवाने वापस लेनेकी धमकी दें। यह एक परवाना-अधिकारीके अधिकारोंका बहुत ही मनमाना उपयोग प्रतीत होता है। जब कोई व्यक्ति एक बार परवाना ले लेता है और सामान्यतः देशके और मुख्यतः अपनी नगरपालिकाके उपनियमोंका पालन करता है तब यह किसी भी स्थानीय अधिकारीके अधिकारोंके बाहर होना चाहिए कि वह उसको इतनी बुरी तरहसे बरबाद कर सके, जैसा श्री लाइन्स चाहते हैं; क्योंकि यदि इस नवीनतम अफसरशाही उदाहरणका उचित निष्कर्ष निकाला जाये तो लेडीस्मिथका यह निरंकुश अधिकारी और ऐसे ही पदोंपर नियुक्त उपनिवेशके अन्य अधिकारी किसी भी यूरोपीयको अपनी दूकान जिस समय चाहें उस समय बन्द करनेका आदेश दे सकते हैं। यह एक नाजुक विषय है, आप इसे पसन्द करें या न करें; किन्तु अंदेशाका घर उसका गढ़ है — यह पुरानी उक्ति लेडीस्मिथमें इस विषयको हल करनेसे पूर्व व्यस्त कर देनी पड़ेगी।

यह कथन निस्सन्देह उचित है और विशुद्ध कानूनी और ब्रिटिश दृष्टिकोणसे भी श्री लाइन्सका प्रस्ताव मनमाना और अत्याचारपूर्ण है। फिर भी हम उस मतपर दृढ़ हैं जो हमने व्यक्त किया है। श्री लाइन्सने जो मनमाना रुख अख्तियार किया उसके बावजूद लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए यह बहुत ही गौरवास्पद होगा कि वे श्री लाइन्सके सुझावको मान लें। निस्सन्देह शर्त यह है कि वह व्यावहारिक हो। यदि वे ऐसा कर सकें तो उनके हाथोंमें आत्मरक्षाका एक बहुत अच्छा हथियार होगा और इससे लेडीस्मिथमें उनका बहुत-सा विरोध कम जोर पड़ जायेगा। जबतक विक्रेता-परवाना अधिनियम वर्तमान रूपमें उपनिवेशकी कानूनी पुस्तकोंमें मौजूद है तबतक भारतीय समाजको जागरूक रहना आवश्यक होगा और जहाँ झुकना उचित हो वहाँ झुकना भी पड़ेगा भले ही उसमें कुछ आर्थिक हानि भी उठानी पड़े क्योंकि वे (अर्थात् भारतीय व्यापारी) पूर्णतः परवाना-अधिकारियों नगर-परिषदों या स्थानीय निकायोंकी दयापर निर्भर हैं जैसा बार-बार संकेत किया जा चुका है। कुछ इक्के-दुक्के उदाहरण ऐसे हो सकते हैं जिनमें इंग्लैंडके अधिकारियोंसे सहायता मिल सकती है। फिर भी यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि यह क्रम बड़ी मन्द गतिसे चलता है। अतः सबसे सुरक्षित बात यह है कि जैसी

स्थिति है उसे स्वीकार किया जाये। इस कानूनको हटवानेके उद्देश्यसे सब प्रयत्न किए जायें और इस दरमियान इस विधिसे कार्य किया जाये जिससे यह प्रकट हो जाये कि हमारे ऊपर जो निर्योग्यताएँ लगाई गई हैं वे किस प्रकार अत्यन्त अनुचित हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९०३

३० पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
पो ऑ बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
नवम्बर ७, १९०३

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय

आपका तारीख ४ का पत्र[1] क्रमांक २१११ मिला।

जैसा कि मैं कह ही चुका हूँ इस वर्षकी विज्ञप्ति ३५६ को लेकर ब्रिटिश भारतीय संघने जो प्रतिवेदन किया था उसके सम्बन्धमें परमश्रेष्ठके उत्तरोंके मामलेपर बहस चलानेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है। किन्तु मैं यह आशा करनेकी धृष्टता अवश्य करता हूँ कि परमश्रेष्ठके सम्मुख प्रस्तुत तथ्योंको देखते हुए संघकी विनीत प्रार्थनापर कृपापूर्ण विचार किया जायेगा। और इस सम्बन्धमें मुझे परमश्रेष्ठका ध्यान लॉर्ड मिलनर द्वारा श्री चैम्बरलेनको भेजे गये खरीतेकी ओर आकर्षित करनेकी अनुमति दी जाये। यह खरीता[2] ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें उदार नीति निश्चित करता हुआ लगता है।

मैं हूँ
आपका विनम्र सेवक,
मो. क. गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज एल. जी. २११२, एशियाटिक्स १९/२–१९०३।

१. यह पत्र गांधीजीके ९ नवम्बरके पत्रका उत्तर था। गांधीजीका पत्र उपलब्ध नहीं है।

२. लेफ्टिनेंट गवर्नरने लिखा था कि उनके उत्तरोंमें कहीं भी किसी गलतफहमी की कोई गुंजाइश नहीं है। उन्होंने लिखा "हर जगह रहने को स्वतंत्र हैं और सब हैं और वे सुरक्षित बस्तियों ऐसे कुछ परवानोंकी संख्याको खास तौरपर सीमित करते हैं जो सुरक्षा करके व्यापार करनेका परवाने रखते थे।"

३. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३५२–५३।

३१. टिप्पणियाँ[1]

जोहानिसबर्ग
नवम्बर ९, १९०३

ट्रान्सवालके भारतीय प्रश्नपर टिप्पणियाँ, ९ नवम्बर १९०३ तक

इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न इस वर्षकी सूचना ३५६ पर, जो कि *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाके नामसे मशहूर है, समझता है।

वर्ष समाप्त होनेवाला है इसको देखते हुए ब्रिटिश भारतीयोंका एक शिष्टमण्डल परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरसे मिलने गया था।[2] वह उन्हें इस बातके लिए तैयार करना चाहता था कि जो ब्रिटिश भारतीय इस समय नियमपूर्वक मिले हुए परवानोंके सहारे उपनिवेशमें व्यापार कर रहे हैं उन सबके परवानोंको मान लिया जाये।

यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि उक्त सूचनापर कठोरतासे अमल किया गया तो इस वर्षकी समाप्तिके पश्चात् बस्तियोंसे बाहर वे ही लोग व्यापार कर सकेंगे जिनके पास युद्ध छिड़नेके समय परवाने थे।

इसलिए दो प्रकारके भारतीय व्यापारियोंके मामलोंपर विचार होना बाकी है। पहले वे जो युद्धसे पहले व्यापार तो करते थे परन्तु जिनके पास परवाने नहीं थे और दूसरे वे जिन्हें ब्रिटिश अधिकार हो जानेके पश्चात् ब्रिटिश अधिकारियोंने शरणार्थी होनेके आधारपर परवाने दिये थे।

बाजार-सम्बन्धी सूचनाके विषयमें परमश्रेष्ठके साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ था उससे आशा हो चली थी कि पहले प्रकारके लोगोंके परवानोंके सम्बन्धमें कोई कठिनाई नहीं खड़ी होगी क्योंकि युद्धसे पहले प्राय सभी ब्रिटिश भारतीय ट्रान्सवालमें परवानोंके बिना ही (क्योंकि वे दिये ही नहीं जाते थे) परवाना शुल्कके वादेके आधारपर या गोरे मित्रोंके नामपर व्यापार करते थे और उस समयकी सरकार भी इसे जानती थी।

परन्तु ब्रिटिश भारतीयोंके दुर्भाग्यसे परमश्रेष्ठने इसका दूसरा ही अर्थ लिया और कहा कि उनका मतलब संघको यह सूचित करनेका कदापि नहीं था कि अगले १ दिसम्बरके पश्चात् बस्तियोंसे बाहर उनको छोड़कर किसीको व्यापार न करने दिया जायेगा जिनके पास युद्धसे पहले भी सचमुच ऐसा करनेके परवाने थे।

परन्तु जब परमश्रेष्ठको यह ज्ञात हुआ कि युद्धसे पहले सैकड़ों भारतीय ब्रिटिश सरकारके संरक्षणके कारण परवानोंके बिना व्यापार करते थे तब उन्होंने कहा कि इस प्रश्नपर वे कार्यकारिणी-परिषदकी बैठकमें विचार करेंगे।

इसलिए आशा की जा सकती है कि प्रथम प्रकारके परवानेदारोंको कुछ राहत मिल जायगी।

परन्तु आजकल हमें इतनी अधिक निराशाओंका सामना करनेका अभ्यास हो चुका है कि यदि हम यहाँ स्थितिका स्पष्ट वर्णन करके यह बतला दें कि इन लोगोंको *बाजारों* या बस्तियोंमें भेज देनेका परिणाम क्या होगा तो शायद गलती नहीं होगी।

१. गांधीजीने ये टिप्पणियाँ दादाभाई नौरोजीको भेजी थीं। दादाभाई नौरोजीने [illegible] इनकी एक प्रति भारत-मन्त्रीको भेजी थी और *इंडियाने* इन्हें यथावत् रूपमें अपने ४-१२-१९०३ के अंकमें प्रकाशित किया था।

२. अनुपलब्ध।

यद्यपि प्रामाणिक संख्या बतलाना कठिन है, फिर भी ऐसा अनुमान भली प्रकार किया जा सकता है कि ५ प्रतिशतसे अधिक परवानेदार प्रथम श्रेणीमें आयेंगे।

उनमें से बहुतसे दस या इससे भी अधिक वर्षोंसे व्यापार कर रहे हैं। उन्होंने जिन दूकानोंको लगा रखा है उनके पट्टे वे बड़ी-बड़ी मियादोंके लिए लिये हुए हैं और वे बड़ी मात्रामें मालका आयात करते हैं, क्योंकि उनके ग्राहक गोरे और काफिर दोनों हैं। क्या उन्हें अपनी समाप्तिपर बस्तियोंमें जाना पड़ेगा, यद्यपि गणराज्यके समयमें भी अम्बरसेन उन्हींके लिए इतने प्रयत्नपूर्वक लड़े थे और उन्होंने सफलता भी प्राप्त की थी?

उन्हें परवानाके बिना बस्तियोंसे बाहर व्यापार करने दिया जाता था, क्योंकि श्री क्रूगरके[1] लिए ब्रिटिश सरकार बहुत बलवान सिद्ध हुई थी। और, अब उन कुछ भाग्यशाली भारतीयोंके साथ असाधारण व्यवहार क्यों किया जाये जिन्होंने बोअर-सरकारसे परवाने ले लिये थे? निश्चय ही उनका मामला प्रथम श्रेणीके उन अभागे लोगोंसे किसी भी प्रकार अधिक मजबूत नहीं है, जिनको अब बस्तियोंमें जानेकी सूचना दी जा चुकी है।

इन कुछ लोगोंको युद्धसे पहले परवाने क्यों मिल गये थे, इसका कारण निम्नलिखित है:

जब ब्रिटिश सरकारके साथ लम्बे चौड़े पत्र-व्यवहारके बाद बोअर-सरकारने अनुभव कर लिया कि वह ब्रिटिश भारतीयोंको बस्तियोंमें नहीं ढकेल सकती तब १८९९ में यह निश्चय किया गया कि उस वर्षसे पहले जो ब्रिटिश भारतीय बस्तियोंसे बाहर व्यापार कर रहे थे उन्हें परवाने दे दिये जायें। उस समय जो समर्थ थे उन्होंने तो परवाने ले लिये, परन्तु जो १८९८में कुछ समयके लिए ट्रान्सवालसे बाहर चले गये थे वे रह गये और उस समय भी सबको परवाने एक साथ नहीं दिये गये थे।

बोअर-सरकारका काम बड़ा सुस्त था। परवाना-अधिकारी फुर्तीसे या हिदायतोंके अनुसार क्वचित् ही काम करते थे। फल यह हुआ कि दूर-दूरके कस्बोंमें प्रार्थनापत्र देनेपर भी बहुतसे भारतीयोंको परवाने नहीं मिल पाये। परन्तु फिर भी उनके व्यापारमें विघ्न नहीं डाला गया।

तो क्या अब उनको किसी कसूरके बिना बस्तियोंसे बाहरके नगरोंमें व्यापार करनेके अधिकारसे वंचित कर दिया जायेगा?

अब दूसरी श्रेणीके लोगोंके परवानोंपर विचार करना शेष रह गया।

इन लोगोंको उपनिवेशपर ब्रिटिश अधिकार हो जानेके पश्चात् बिना किसी शर्तके परवाने मिले थे। लॉर्ड मिलनरके ही खरीतेमें लिखा है कि १८८५ के कानून ३ को लागू करनेका विचार इसी वर्ष किया गया था। पिछले वर्ष पिछली सरकारके एशियाई-विरोधी अविहित कानूनोंपर अमल करनेका विचारतक किसीके मनमें नहीं आया था। ये लोग शरणार्थी थे, उनमें से बहुत-से युद्धसे पहले किसी-न-किसी स्थानपर व्यापार भी करते थे और ब्रिटिश अधिकारी जो स्थानीय विद्वेष-भावनामें शिक्षित नहीं हुए थे स्वभावतः यह सही समझ सकते थे कि जब विदेशियोंतक को व्यापार करनेके परवाने दिये जा रहे हैं तब ब्रिटिश प्रजाजनोंको क्यों न दिये जायें?

यह काम एशियाई दफ्तरके लिए ही सुरक्षित था कि वह एशियाई-विरोधी कानूनोंको खोदकर निकाले और उन्हें लागू करनेका सुझाव दे। स्वार्थी लोगोंने ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध

१ एस॰ जे॰ पॉल क्रूगर (१८२५–१९०४), ट्रान्सवालके प्रेसीडेंट, १८८३–९९। देखिए "स्वर्गीय प्रेसीडेंट क्रूगर" २३–७–१९०४।

२ देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १९१।

जो आन्दोलन छेड़ा उससे इस दफ्तरका बल और भी बढ़ गया और परिणाम यह हुआ कि अब हमें *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाका सामना करना पड़ रहा है।

पिछली जनवरीमें जब ब्रिटिश भारतीय शिष्टमण्डल श्री चेम्बरलेनसे मिला था[1] तब वे समझ ही नहीं सकते थे कि जो परवाने एक बार दिये जा चुके उन्हें वापिस किस प्रकार लिया जा सकता है?

इसके अतिरिक्त दूसरी श्रेणीके व्यक्तियोंकी संख्या बहुत कम है। उनके हाथमें भी बहुत माल रुका पड़ा है और किसी-किसीने दूकानोंके पट्टे भी ले रखे हैं। इन सबको यदि *बाजारों*में जानेके लिए विवश किया गया तो उसका मतलब इनका पूर्ण विनाश कर डालना होगा।

सरकारने जिन इलाकोंमें *बाजारों*के लिए स्थानका चुनाव करना उचित समझा है, उनमें से कइयोंके व्यापार-पेशा लोगोंसे ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) सच्चे हालात जाननेका यत्न कर रहा है। अबतक प्राप्त विवरणोंके अनुसार इनमें से एक भी स्थान ऐसा नहीं है — जहाँ गोरे या काफिर ग्राहक जाना पसन्द करेंगे — यद्यपि लॉर्ड मिलनर और सर आर्थर लॉली दोनोंने हमें विश्वास दिलाया था कि उनका चुनाव शहरोंके अन्दर और ऐसे स्थानोंपर किया जायेगा जहाँ ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको गोरे और काफिर, दोनों प्रकारके ग्राहकोंसे व्यापार करनेकी उचित सुविधाएँ मिल सकें।

हरएक मामलेमें *बाजारों*को रास्तोंसे दूर हटाकर कायम किया गया है और यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे वे शहरकी हदमें हैं तथापि उसके बसे हुए भागोंसे अवश्य ही दूर हैं। एक मामला तो ऐसा था कि वर्तमान बस्तीको और भी परे हटानेका यत्न किया गया था। यहाँ यह भी जिक्र कर देना चाहिए कि परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने हमारे शिष्टमण्डलसे कहा था कि उनकी सम्मतिमें *बाजारों*के स्थानोंका चुनाव बहुत अच्छा किया गया है और जिन लोगोंको वहाँ जाना पड़ेगा उन्हें व्यापार करनेका अच्छा अवसर मिलेगा।

परमश्रेष्ठका अत्यन्त आदर करते हुए हम कहना चाहते हैं कि इस सम्बन्धमें सर्वथा निष्पक्ष तथा अच्छा स्थानीय अनुभव रखनेवाले लोगोंकी रिपोर्टें और अपना सारा जीवन व्यापारमें बिताये हुए लोगोंकी सम्मतियाँ आखिरकार परमश्रेष्ठकी सम्मतिसे कहीं अधिक विश्वसनीय हैं।

*बाजार*के स्थानके बारेमें निम्नलिखित रिपोर्ट नमूनेके लायक है।

श्री जे० ए० नेसर, जे० पी०, वकील क्लार्क्सडॉर्प *बाजार*के बारेमें कहते हैं:

> मेरी सम्मतिमें प्रस्तावित स्थान व्यापारके लिए उपयुक्त नहीं है; क्योंकि यह सम्भावना नहीं कि नगरके निवासी इतना फासला तय करके वहाँ खरीदारी करनेके लिए जायेंगे। ... पुराने शासनमें पृथक भारतीय *बाजार* कोई नहीं था।

डॉ० जुप एम० बी०, सी० एम० भी कहते हैं:

> मेरी सम्मतिमें इस समय जो स्थान *बाजार*के लिए अंकित किया गया है वह स्वच्छताकी दृष्टिसे निन्दनीय है।

इन शब्दोंके लिखे जा चुकनेके पश्चात् वहाँके जिला-सर्जनने भी उक्त स्थानकी निन्दा की है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स ४०२।

१. देखिए खण्ड ३, पृ० २९२।

३२. ऑरेंज रिवर उपनिवेश और अश्वेत-कानून

*गवर्नमेंट गज़ट*के अभी हालके एक अंकमें बिलकुल स्पष्ट रूपसे बताया गया है कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकार रंगदार लोगोंकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेवाले विधानोंपर अमल करनेसे किन्हीं भी बाधाके विचारसे रुकनेवाली नहीं है। २१ अक्तूबरके *गज़ट*में नगरपालिका कानूनमें संशोधनके लिए एक अध्यादेशका मसविदा प्रकाशित किया गया है। इसमें नगरपालिकाओं के चुनावोंमें मतदाताओंकी निर्योग्यताओंके सम्बन्धमें यह धारा है:

> ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, जो १८९१ के कानून ८ की धारा ८ के अनुसार रंगदार व्यक्ति है, और जो किसी गोरे पिताके रंगदार माताके साथ या किसी रंगदार पिताके गोरी माताके साथ वैध विवाहकी सन्तान नहीं है या जिसने ऐसी सन्तान होनेपर भी कानूनके १४ वें अध्यायकी धाराओंके अन्तर्गत इस उपनिवेशमें अचल सम्पत्तिका स्वामित्व या अधिकार प्राप्त नहीं किया है, मतदाता होनेके अयोग्य है।

अब १८९१ के कानून ८ की धारा ८ के अन्तर्गत

> जो रंगदार व्यक्ति शब्द इस कानूनमें आते हैं उनमें जबतक किसी प्रकरणमें स्पष्ट निषेध न हो तबतक ये लोग सम्मिलित होंगे: दक्षिण आफ्रिकाकी किसी भी वतनी जातिके १६ वर्षकी आयु या अनुमानित आयुसे ऊपरके पुरुष या अनेक पुरुष या स्त्री सब रंगदार लोग और वे सभी लोग जो किसी भी नस्ल या जातिके हैं, किन्तु कानून या रिवाजके अनुसार रंगदार माने जाते हों या रंगदार लोगोंकी भाँति व्यवहार पाते हों।

अतः यह परिभाषा इतनी व्यापक है, जितनी कल्पनामें आ सकती है और इसमें ब्रिटिश भारतीय भी सम्मिलित हैं। यह धारा स्वतः अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि हम जानते हैं कि ट्रान्सवाल-सरकारने अभी हालमें ही सभी रंगदार लोगोंका नगरपालिकाओंके चुनावोंमें भाग लेनेका अधिकार छीन लिया है। ब्रिटिश भारतीयोंकी यह निर्योग्यता निश्चय ही उनपर लगी निर्योग्यताओंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है; किन्तु जब हम इसे ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध सरकारकी जान-बूझकर अख्तियार की गई शत्रुतापूर्ण नीतिके उपलक्षणके रूपमें देखते हैं तब यह कोई कम महत्त्व नहीं रखती। उपनिवेश सरकार भूतकालीन परम्परासे बिलकुल विमुख नहीं हो सकती। पुराने कानूनोंमें परिवर्तन होगा भी है तो बुराईकी दिशामें ही। श्री लेम्बर्ट लेम्बने लॉर्ड मिलनरको प्रेषित खरीतेमें उनकी एशियाई गिरमिटिया मजदूरोंकी माँगका उत्तर देते हुए दोनों उपनिवेशोंके भारतीय-विरोधी कानूनोंका उल्लेख किया है और यह आशा व्यक्त की है कि वे निर्दिष्ट दिशामें राहत देंगे। हमने ऊपर जिस धाराका उल्लेख किया है और वे धाराएँ जिनका उल्लेख हम करनेवाले हैं उस खरीतेके ऑरेंज रिवर उपनिवेश द्वारा दिए गये उत्तर हैं। जो उपनिवेश उपनिवेश-कार्यालयके अधीन और उसके सीधे नियन्त्रणमें है, उसकी सरकार किस प्रकार उस कार्यालयके प्रधान-अधिकारीके आदेशोंका उल्लंघन करती है और किस प्रकार ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें पिछले कानूनोंको हटानेसे इनकार ही नहीं करती जाती बल्कि ब्रिटिश भारतीयोंको बाँधनेवाली रस्सीको और भी कड़ा करती जाती है, यह अकल्पनीय

है। अध्यादेशके इसी मसविदेमें पीछे हम कुछ धाराएँ बस्तियोंके सम्बन्धमें भी देखते हैं। हाशियेपर अंकित टिप्पणीमें "बतनी बस्तियों" का उल्लेख है किन्तु धारा स्पष्ट रूपसे सभी रंगदार लोगों" पर लागू होती है। वह इस प्रकार है

परिषदको अधिकार है कि वह नगर-पालिकाओंकी भूमिके उस भाग या भागोंपर, जहाँ वह उचित समझे बस्तियाँ स्थापित करे, जिनमें अपने मालिकोंके मकानोंमें रहनेवाले घरेलू नौकरोंके अतिरिक्त अन्य सभी रंगदार लोग रहनेके लिए बाध्य किये जा सकेंगे। वह समय-समयपर इन बस्तियोंको बन्द कर सकती है और नई बस्ती या बस्तियाँ बसा सकती है। परिषदको इन लोगोंके उचित नियंत्रणके लिए नियम बनानेका अधिकार भी दिया जाता है। कोई भी पुरुष या स्त्री जिसकी अनुमानित आयु सोलह वर्षसे अधिक हो या साठ वर्षकी अनुमानित आयुसे कम हो इन बस्तियोंमें अठ्तालीस घंटेसे अधिक न रहेगा जबतक

(क) वह वस्तुतः नगरपालिकाकी सीमामें या नगरपालिका-क्षेत्रकी सीमासे बाहर पाँच मीलके घेरेमें रहनेवाले किसी गोरे मालिक का कर्मचारी न हो और उसके पास इस आशयका नगर-परिषदका परवाना न हो। या जबतक

(ख) उसने सन् १८९३के कानून ८की धारा १के अनुसार अपनी ओरसे काम करनेकी अनुमतिका प्रमाणपत्र न ले लिया हो और वस्तुतः उस कार्यमें लगा हुआ न हो। या जबतक

(ग) वह ऐसा व्यक्ति न हो जिसने रंगदार जन-राहत अध्यादेश (कलर्ड पर्सन्स रिलीफ़ ऑर्डिनेन्स) १९ १की धाराओंके अन्तर्गत अपवादपत्र प्राप्त कर लिया हो। या जबतक

(घ) वह किसी ऐसे पुरुषकी वैध पत्नी न हो जो पहले कही धाराओंके अन्तर्गत ऐसी बस्तीमें रह रहा हो।

इन उपधाराओंका निचोड़ यह है कि एक बस्तीकी सीमामें जो अस्तबल या कांजीहौसकी तरह परिषदकी इच्छानुसार हटाई जा सकती है रहनेके लिए भी एक रंगदार व्यक्तिको पूर्वानुमति लेनी आवश्यक है और वह एक छोटा नौकर होना चाहिए, अर्थात् वह उपनिवेशमें तबतक नहीं रह सकता जबतक वह निपुण मजदूर न हो। हमारे पाठक कहीं यह कल्पना न कर लें कि इन उल्लिखित कानूनोंमें रंगदार धर्मावलम्बियोंके लिए बड़े-बड़े विशेषाधिकार सुरक्षित हैं अतः हम यहाँ यह जिक्र कर दें कि १८९३ के कानून ८की धारा १में यह विधान है स्थानीय निकाय ५ शिलिंग प्रतिमास शुल्क लेनेपर रंगदार व्यक्तिको अपनी सेवाएँ जिसको चाहे उसको बेचनेकी अनुमति दे सकते हैं, बशर्ते कि वह ऐसा करनेके लिए आवश्यक प्रमाणपत्र प्राप्त कर ले। रंगदार जन-राहत अध्यादेशमें इसकी जो योग्यताएँ बताई गई हैं वे बहुत ऊँची हैं। इस बाध्यतासे रंगदार व्यक्ति व्यक्तिगत परवाना रखनेसे जिसे समय-समयपर नया कराना पड़ता है, और जिसका निश्चित शुल्क देना पड़ता है छूट प्राप्त करनेका अधिकारी हो सकता है। यह महँगी छूट बहुत ही अप्रिय विधि-विधानोंमें से गुजरनेके बाद दी जाती है और इसमें वस्तुतः मामूली परवानेकी जगह छूटका प्रमाणपत्र होता है। इससे अधिक इस अध्यादेशसे कोई राहत नहीं मिलती। और ऐसे छूट-प्राप्त व्यक्तिपर अन्य सभी निर्योग्यताएँ — जैसे व्यापार करने और भूमि रखने अथवा सम्पत्ति खरीदने बस्तियोंसे बाहर रहने आदि पर लगाई निर्योग्यताएँ

—ज्यों-की-त्यों रह जाती है। ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकारका रंगदार लोगोंके प्रति ऐसा रवैया है। अतः जबतक उपनिवेश-कार्यालय साम्राज्यकी श्वेत प्रजाओंकी इच्छाके सम्बन्धमें अपने निषेधाधिकारका प्रयोग करनेका मार्ग नहीं अपनाता तबतक उन सैकड़ों ब्रिटिश भारतीयोंको बड़ी कठिनाईका सामना करना होगा जो ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें अपनी आजीविका कमानेके उद्देश्यसे प्रवास करने और बसनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि ब्रिटिश भारतीयोंके हमदर्द[?] मित्र हमारी इन बातोंको देखेंगे उनका अध्ययन करेंगे और हमारी रक्षा करेंगे एवं उपनिवेश-कार्यालयसे आग्रह करेंगे कि वह सम्राटकी राजभक्त प्रजाके प्रति अपने कर्तव्यका पालन करे। अपने राजस्व-सम्बन्धी आन्दोलनमें भी चेम्बरलेनने बड़ी मुस्तैदीसे इस तथ्यपर जोर दिया है कि भारतमें लड़ाकू शक्तिका अक्षय भंडार सुरक्षित है जिसका उपयोग आवश्यकताके समय साम्राज्य रत्ती-भर भी झिझकके बिना कर सकता है। हाँ भारत समस्त साम्राज्यकी सेवामें अपना भाग अदा करनेके लिए सदैव तैयार है। क्या परम माननीय महानुभाव उपनिवेशोंको भी अपने कर्तव्योंका पालन करनेके लिए समझानेमें अपने प्रभावका उपयोग करेंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १२–११–१९०३

३३. स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सन

मृत्युने स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सनके रूपमें हमारे बीचसे नेटालके एक निर्माताको उठा लिया है। उत्तरदायी शासनमें प्रथम प्रधानमन्त्रीके रूपमें उन्होंने अपने पीछे उपनिवेशकी उपयोगी सेवाका एक ऐसा लेखा छोड़ा है जिससे आगे बढ़ना दूर, बराबरी करना भी किसीके लिए सरल न होगा। जैसा अभी हालकी घटनाओंसे सिद्ध हो चुका है, यह अत्यन्त सौभाग्यकी बात थी कि जब उपनिवेशको स्वशासन दिया गया जिसकी प्राप्तिमें सर जॉनका हाथ प्रमुख था तब उसका शासन उनको और उनके ही जैसे उनके योग्य साथी स्व. परम माननीय मी हैरी एस्कम्बको सौंपा गया। उन्होंने इसका कार्य जिस उत्तम रूपसे आरम्भ किया उसके बिना उत्तरदायी शासनमें नेटालकी जो स्थिति होती उसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। सम्भवतः उनसे प्रधानमन्त्री बनना बहुत बड़ी उपाधि है। इससे उस व्यक्तिकी खरी योग्यता प्रकट होती है, जो अब हमारे बीचमें नहीं है। अपनी योग्यता उत्साह और उद्देश्य-निष्ठासे उन्होंने नेटाल मर्क्युरीको नेटालकी एक शक्ति बनानेमें सफलता प्राप्त की। उन्होंने उपनिवेश सरकारपर उन सब गुणोंका और भी उत्कृष्ट रूपमें प्रभाव डाला। इसके लिए सम्राटने उनको के. सी. एम. जी. की उपाधि प्रदान करके मानो उनकी योग्यताको मान्यता प्रदान की थी। ब्रिटिश भारतीय इन माननीय महानुभावको मताधिकार अपहरण विधेयकके निर्माताके रूपमें सभी भाँति याद रखेंगे। ब्रिटिश भारतीयोंका उस समय उनके विचारोंसे मतभेद था। और इसका कारण था किन्तु कोई यह नहीं कह सकता कि उस विधेयकको प्रस्तुत करनेमें वे ऊँचे इरादोंके अतिरिक्त किन्हीं और बातोंसे प्रेरित थे। यह विधेयक जो बादमें परिवर्तित हुआ उपनिवेशकी कानूनी पुस्तकोंका अभीतक अंग है। अच्छा होता कि उस विधेयकको प्रस्तुत करते समय उन्होंने जो

१ देखिए खण्ड १ पृष्ठ ११९।

मन्द पड़े थे वे भी उस कानूनका अंग होते। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि ब्रिटिश भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित करनेमें विधानसभाके प्रत्येक सदस्यने अपने ऊपर एक गंभीर दायित्व लिया है और वह उसका स्थायी हो गया है। यदि उस विधानकी रचनामें जो बादमें बना हमारे विधायकोंकी ऐसी ही भावना रही होती तो शिकायतकी बात बहुत कम रह गई होती। सर जॉनके हृदयमें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति प्रेमका भाव था यह इस तथ्यसे सिद्ध हो जाता है कि जब व अपनी गम्भीर बीमारीसे अच्छी तरह उठे भी न थे तभी अपने स्वास्थ्यकी बड़ी कुर्बानी करके उन्होंने लेडीस्मिथकी मुक्तिका उत्सव मनानेके लिए कांग्रेस भवनमें आयोजित सभाकी अध्यक्षता करनेका नेटाल भारतीय-कांग्रेसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया था[1]। जैसा उनका सामान्य नियम था उन्होंने कार्यक्रममें पूरे हृदयसे भाग लिया और नेटालके भारतीय आहत सहायक दलकी उदारतापूर्वक सराहना की।[2] उन्होंने उस अवसरपर जो सुन्दर भाषण दिया था उसको हम पूराका-पूरा दूसरे पृष्ठपर पुनः छापते हैं। हम लेडी रॉबिन्सन और उनके परिवारको उनके इस वियोगमें जो समस्त उपनिवेशके लिए शोककी बात है, अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रेषित करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १२–११–१९ ३

३४ क्लार्क्सडॉर्पमें एशियाई "बाजार" के लिए प्रस्तावित जगह

हमें ज्ञात हुआ है कि ट्रान्सवालकी सरकारने अनेक शहरोंमें एशियाई *बाजारों*के लिए जो जगहें पसन्द की हैं वे उपयुक्त हैं या नहीं इसके बारेमें उन शहरोंके ब्रिटिश भारतीयोंने रिपोर्ट तैयार कराई है। क्लार्क्सडॉर्पके भारतीयोंने भी ऐसा ही किया है और जिन डॉक्टर महानुभावने भारतीयोंकी ओरसे अपनी रिपोर्ट दी है उन्होंने सफाईकी दृष्टिसे उन जगहोंको निन्दनीय ठहराया है। इस रिपोर्टका समर्थन भी बहुत विचित्र क्षेत्रोंसे हुआ है। *क्लार्क्सडॉर्प माइनिंग रेकॉर्ड*के इसी ३ तारीखके अंकके अनुसार, स्थानीय जिला चिकित्सा-अधिकारीने भी उस जगहके विरुद्ध राय दी है और स्वास्थ्य-निकायने मंजूर किया है कि चूँकि सरकारने उस जगहको पसन्द कर लिया है, इसलिए वह इस मामलेमें असमर्थ है। यह बात दुःखजनक है अन्यथा इसपर हँसीको हँसी आती। अगर सम्भव होता तो निकाय कह देता कि इस पसन्दगीमें उसका कोई हाथ नहीं है परन्तु उसके दुर्भाग्यसे *बाजार*-विषयक सरकारी सूचनाके अनुसार सरकार प्रस्तुत जगहके बारेमें बगैर स्वास्थ्य-निकायसे सलाह किये शायद निर्णय नहीं कर सकती थी। फिर राजधानी प्रिटोरियामें होनेके कारण सरकार एक बार बहाना भी कर सकती है कि आरोग्यकी दृष्टिसे वह जगह अनुपयुक्त है, इसका उसे ज्ञान नहीं था। परन्तु स्वास्थ्य निकायके पास ऐसा कोई बहाना नहीं है, क्योंकि उसके सदस्य सब वहींके रहनेवाले हैं और उन्होंने आँखें खूब खोलकर ही इस जगहकी सिफारिश की होगी। *क्लार्क्सडॉर्प माइनिंग रेकॉर्ड*में वह प्रतिवेदन जिस तरह प्रकाशित हुआ है, उसे हम ज्योंका-त्यों यहाँ पेश कर देना ही सबसे अच्छा समझते हैं

१. देखिए खण्ड ३ पृष्ठ १३९।
२. वही खण्ड पृष्ठ १७२।

जिला चिकित्सा-अधिकारीका पत्र पढ़ा गया जिसमें उन्होंने लिखा है कि एशियाई *बाजारके* लिए चुनी गई जगहको अनुपयुक्त मानते हैं क्योंकि बरसातके दि वहाँ पानी भर जाता है। यह बताया गया कि *बाजारके* २ बाड़े होंगे जिन कमसे-कम तीन-चौथाईकी जरूरत वर्षोंतक नहीं पड़ेगी और यह कि यद्यपि कुछ बा बाड़े नीची जमीनपर हैं तथापि अधिकांश तो बहुत ही सुन्दर जगहपर हैं। यह प्रश्न स्वास्थ्य-निकायके अधिकार-क्षेत्रसे बाहरका है क्योंकि सरकार उस ज पसन्द कर चुकी है उसका सर्वेक्षण करा चुकी है और उसकी *बाजारके* रूपमें घो भी कर चुकी है।

दूसरे शहरोंमें भी *बाजारोंकी* सिफारिश करनेवाले स्वास्थ्य-निकाय इसी कोटिके हैं। फिर लॉर्ड मिलनरने उपनिवेश-कार्यालयको यह आश्वासन दिया है कि *बाजारोंके* लिए अच्छे स्थान चुने जायेंगे स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी और व्यापारकी दृष्टिसे भी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १२-११-१९०३

३५. श्वेत-संघ और ब्रिटिश भारतीय

गत ५ तारीखको जोहानिसबर्गके अन्तर्गत फोर्ड्सबर्गमें श्वेत-संघके तत्वावधानमें एक सभा की जिसमें कई प्रश्नोंपर बहस हुई। अखबारोंमें छपे समाचारोंसे ज्ञात होता है कि कार्र "अत्यधिक सजीव" रही बीच-बीचमें शोर-गुल भी हुआ। श्री ए मैक-फ़ारलेन सभा थे और लगभग अस्सी व्यक्ति उपस्थित थे। सभापतिने अपने प्रारम्भिक भाषणमें एशियाइ प्रश्नपर कुछ विस्तारके साथ अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने कहा

> श्वेत-संघकी स्थापना एक वर्ष पहले इस भावनाके कारण हुई थी कि जोहा बर्गमें अवांछनीय श्रेणीके विदेशियोंकी बाढ़-सी आ गई है। वे छोटी-छोटी दुकानों व्यापारी हलकोंमें भरे जा रहे हैं और बहुत-से मामलोंमें हमारी जातिके उन लोग स्थान ले रहे हैं, जो लड़ाईके कारण यहाँ नहीं आ पाये और जिन्होंने लड़ाईका बदला चुका। उन्होंने भाषणमें बताया कि लड़ाईके बाद लौटनेके लिए एशि इयोंको आसानीसे अनुमतिपत्र मिलते जा रहे हैं, विदेशियोंको उन्हें पानेमें कठिनाई रही है और एशियाई उनके लिए बेईमानीके तरीकोंसे भी काम ले रहे हैं। डच्चन कानूनके अनुसार चीनी और भारतीय परवाने रखनेके अधिकारी नहीं हैं। परन्तु वर्त सरकारने यह कानून उन चीनियों और भारतीयोंके लिए मुल्तवी कर दिया है लड़ाईसे पहले गैर-कानूनी तौरपर व्यापार कर रहे थे। यहाँ यह सवाल जा सकता है कि जब भारत-सरकारने हमें रेलवेके कामके लिए अपने यहाँ मजदू भरती करनेकी आज्ञा देनेसे इनकार कर दिया है तब क्या हम यह माँग नहीं सकते कि यहाँ जितने भी भारतीय हैं उन सबको वापिस भारत भेज दिया जाये, व्यापारियोंके रूपमें उन्होंने इस देशकी वास्तविक उन्नतिमें बाधा पहुँचानेका काम किया

ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें श्री मैक-फ़ारलेनके ये विचार हैं। अब वास्तविकताको देखिए। सरकारी कागजातके अनुसार जनवरी और सितम्बरके बीच जहाँ यूरोपीयोंको २८   अनुमतिपत्र जारी किये गये वहाँ ब्रिटिश भारतीयोंको युद्ध-विरामकी घोषणाके बादसे लेकर अबतक १   से भी कम अनुमतिपत्र दिये गये हैं। इसके अलावा हम पहले ही जो अंक प्रकाशित कर चुके हैं उनसे ज्ञात होगा कि ये सबके-सब २८   यूरोपीय गैर-शरणार्थी हैं। दूसरी तरफ़, कुछ दर्जन ब्रिटिश भारतीयोंको छोड़कर सारेके-सारे अनुमतिपत्र पानेवाले भारतीय शरणार्थी हैं। अब अनुमतिपत्रोंके लिए एशियाइयोंपर मनमाने तरीके काममें लानेके विषयमें हम सुयोग्य सभापतिका ध्यान केवल उन मामलोंकी तरफ़ दिलाना चाहते हैं जो हाल ही में कैप्टन हैमिल्टन फ़ाउलने जितने ही यूरोपीयोंपर बगैर अनुमतिपत्रके ट्रान्सवालमें आने अथवा अनुमतिपत्रोंका अवैध व्यापार करनेके अपराधमें दायर किये हैं। यूनानके सहायक उप राजप्रतिनिधि पर अवैध अनुमतिपत्र बेचनेके अपराधमें भारी जुर्माना हुआ था। हमारा खयाल है कि वे केवल यूरोपीयोंके लिए ही अनुमतिपत्र प्राप्त करनेका काम करते थे। सभापतिका यह सुझाव उनके भाषणके सम्पूर्ण भावके अनुरूप ही है कि जो भारतीय ट्रान्सवालमें बरसोंसे बसे हुए हैं और जिन्होंने यहाँ जमीन-जायदाद ले ली है और जो उपनिवेशमें स्वतन्त्र आदमीकी हैसियतसे आये हैं उनको तुरन्त स्वदेश भेज दिया जाये क्योंकि गुलामीकी-सी शर्तोंपर भारत-सरकारने ट्रान्सवालको मजदूर भेजनेसे इनकार कर दिया है। मौजूदा सरकारपर इन्हीं महानुभावोंके विरोधका असर पड़ता है। इन्हींकी प्रेरणासे *बाजार*-सूचनाएँ जारी हुई हैं, जिनकी वजहसे सैकड़ों ब्रिटिश भारतीय दूकानदार इस वर्षके अन्ततक भिखारी बना दिये जायेंगे। इस सभाका सम्पूर्ण ब्योरा *रैंड डेली मेल*से हम अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं, जिससे पाठकोंको पता चलेगा कि ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ़ किस प्रकारका विरोध काम कर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १२–११–१९०३

३६. भारतीय और "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस"

हमारा सहयोगी अभीतक भारतीय प्रश्नमें उलझा हुआ है। उसके एक ताजा अंकमें आधेसे अधिक कालम एक भारतीय द्वारा ईस्ट रैंड जिलेमें जमीनके एक टुकड़ेकी खरीदके मामलेसे भरा है। तथ्य जो उसमें दिये गये हैं काफ़ी सही हैं। हमारे पास भी सारी हकीकत है। तथापि हम अपने सहयोगीको एक बहुत ही आवश्यक बातकी याद दिलाना चाहेंगे वह यह कि इस जमीनकी खरीदारी पूर्णतः सही तरीकेसे हुई है। जब ट्रान्सवालपर अंग्रेजोंने अधिकार किया तब लोगोंने — जिनमें सरकारी अधिकारी सर्वसाधारण जनता और स्वयं भारतीय भी शामिल हैं — समझ लिया कि पुराने भेदभाव-भरे कानून अब नहीं रह गये हैं। लॉर्ड मिलनरके वादे और स्वर्गीया सम्राज्ञीके मन्त्रियोंके भाषण लोगोंके दिमागमें ताजा थे। उनको ध्यानमें रखकर वे इस स्वाभाविक नतीजेपर पहुँचे कि जिस बुराईको दूर करनेके लिए पिछली लड़ाई लड़ी गई थी वह अब नहीं रही होगी। ब्रिटिश साम्राज्यके दूसरे किसी भी भागमें ब्रिटिश प्रजाजनोंके विरुद्ध ऐसे दुर्नीति करनेवाले कानून नहीं हैं। इसलिए, उस भारतीयने जमीन खरीद ली और उस गोरे मनुष्यने पूरी तरह यह समझकर वह उसे बेच दी कि जमीनकी रजिस्ट्री हो जायेगी। यही नहीं रजिस्ट्रारके दफ़्तरमें रजिस्ट्रीकी दरख्वास्त पेश भी हो गई। जब यह पता लगा कि

भारतीयोंकी आशाएँ पूरी नहीं होनेवाली हैं, और एक भारतीयके नामपर जमीन दर्ज नहीं हो सकती तब केवल यही एक मार्ग रह गया कि वह किसी गोरेके नाम दर्ज करा दी जाये। इसलिए उस गरीबने एक गोरे मित्रसे प्रार्थना की कि वह जमीन अपने नामपर करवा ले ताकि यह जमीन बिके तो उसमें उसे नुकसान न उठाना पड़े। उस गोरे मित्रने यह मंजूर कर लिया और इस तरह मामला समाप्त हो गया। हमें तो इससे दुःख हुआ परन्तु अगर इस इकरारसे हमारे सहयोगीको सन्तोष होता है तो उसे वह सन्तोष मुबारक हो। हम तो केवल इतना ही कहेंगे कि यह अत्यन्त अशिष्ट है। किन्तु इस छोटेसे प्रश्नके प्रति जो रुख प्रकट हुआ है उसपर हमें आश्चर्य नहीं है क्योंकि इसी लेखमें लिखा है कि ईस्ट रैंडके लोगोंका आगे यह कार्यक्रम होगा (१) शहरके बाहर *बाजारों*को छोड़कर अन्यत्र कोई एशियाई व्यापार नहीं होगा जैसी कि कानूनकी आज्ञा है। (२) किसी जमीन या स्थावर सम्पत्तिका स्वामित्व एशियाइयोंको न हो इस सम्बन्धमें वर्तमान कानूनका पूरा-पूरा समर्थन किया जायेगा। (३) तमाम एशियाइयोंको काफिरोंके समान माना जायेगा। अपने सहयोगीकी स्पष्टवादिताकी हमने सदैव सराहना की है। इस मामलेमें भी हमें उसके यही गुण दिखलाई पड़ते हैं। वह कटु सत्य कहनेमें संकोच नहीं करता। सरकारसे माँग की जानेवाली है कि वह शहरोंके बाहर *बाजार* बना दे। सच पूछिए तो इस बातकी आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि जहाँ जगहोंका चुनाव हो गया है वहाँ सरकारने पहलेसे ही ऐसा कर दिया है। हम नहीं समझते कि ईस्ट रैंडका कोई कट्टरतम व्यक्ति भी स्वयं अपनी दृष्टिसे इनसे अधिक उपयुक्त जगहोंका चुनाव कर सकता था। ये जगहें ऐसे हिस्सोंमें हैं जहाँ व्यापार लगभग असम्भव और निवास खतरोंसे भरा है। दूसरी माँग भी अनावश्यक ही है, क्योंकि सरकार वर्तमान कानूनके पालनमें जरा भी रू-रियायत करना नहीं चाहती। उल्टे, उसका तो रुख नियन्त्रणोंको जितना भी सख्त बनाया जा सके उतना सख्त बनानेका है। तीसरी माँग सबसे अधिक स्पष्ट है। और अगर ब्रिटिश भारतीयोंके दर्जेका सवाल अनिश्चित कालके लिए ताकमें रखा जा सका तो यह प्रश्न हमेशाके लिए हल है। सारे एशियाइयोंको एक ही स्तरपर ले आना बहुत सरल उपाय है। परन्तु मुश्किल तो यह है कि ट्रान्सवालकी सरकार पुरानी सभी घोषणाओंको चाहे कितना ही पैरों तले कुचलनेकी इच्छा करे, और तैयार हो जाये हमारा अनुमान है कि हमारे सहयोगी द्वारा सुझाये गये मार्गका अवलम्बन करनेमें उसे भी हिचक होगी। उसका अर्थ होगा सन् १८८५ के कानून ३ को रद कर देना और उसके स्थानपर ऐसा कानून बनाना जो उसने पिछली हुकूमतको कभी पास नहीं करने दिया। भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगरने कई बार प्रयत्न किया कि लन्दन-समझौतेकी १४वीं धाराको इस तरह बदल दिया जाये कि दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंमें तमाम एशियाइयोंको भी शामिल कर लिया जाये और चाहा कि उसपर सम्राज्ञीकी सरकार अपनी मंजूरी दे दे। परन्तु लॉर्ड डर्बी दृढ़ रहे और उन्होंने ऐसे किसी प्रस्तावपर विचार करनेसे इनकार किया। इसलिए ट्रान्सवालमें भारतीयोंके प्रति न्याय करनेकी भावनाका जबतक लवलेश भी बचा रहेगा हमारे सहयोगीकी योजना यद्यपि बड़ी सरल है, तथापि उसके कार्यान्वित होनेमें कुछ कठिनाई अवश्य होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १२-११-१९०३

३७ पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
पो० आ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जनवरी १४, १९ ३

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय

आज जिनके पास व्यापारिक परवाना है उन्हें हटानेका प्रश्न उन लोगोंके लिए इतना महत्त्वपूर्ण और गंभीर है कि मैं फिर परमश्रेष्ठका ध्यान बँटानेका साहस कर रहा हूँ।

शिष्टमण्डलने परमश्रेष्ठकी सेवामें निवेदन किया था कि लॉर्ड मिलनरका श्री चेम्बरलेनके नाम तारीख ११ मईका खरीता ब्रिटिश भारतीयोंके इस मतकी पुष्टि करता है कि इस वर्षकी सूचना ३५६ वर्तमान परवानों पर असर नहीं डालेगा। मैं समर्थनमें विनयपूर्वक खरीतेसे निम्न अंश उद्धृत कर रहा हूँ

> परन्तु सरकार इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस कामको (कानूनके अमलको) देशमें पहलेसे बसे हुए भारतीयोंका बहुत खयाल रखते हुए और निहित स्वार्थोंके प्रति —जहाँ इन्हें कानूनके विरुद्ध भी विकसित होने दिया गया है—सबसे अधिक खयाल रखते हुए करे। लड़ाईसे पहले जो एशियाई लोग उपनिवेशमें थे केवल उन्हींका सवाल होता तो महामहिमकी सरकारके मनके लायक नये कानून बननेतक हम रुक रह सकते थे। परन्तु यहाँ तो नये-नये आनेवालोंका ताँता लगा रहता है और वे व्यापार करनेके परवाने माँगते रहते हैं। और यूरोपीय लोग बिना सोचे-समझे परवाने देते जाने और एशियाइयोंको उनके लिए ही विशेष रूपसे पृथक बनाई गई बस्तियोंतक सीमित रखनेका कानून लागू करनेमें सरकारकी लापरवाहीके विरुद्ध निरन्तर प्रतिवाद और अधिकाधिक तीव्र रोष प्रकट कर रहे हैं। ऐसी दशामें एकदम खामोश बैठे रहना असम्भव हो गया है। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ लड़ाईके पहले यहाँ जिन एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे उन्हें सरकार स्वीकार करनेको तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरमियान और युद्धविरामके बाद कितने ही एशियाइयोंको आम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर, १९ ३ तकके लिए बढ़ा दी गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई हैं कि उस तारीखको उन्हें अपने लिए निश्चित सड़कों या *बाजारों*में चले जाना होगा।

उपर्युक्त उद्धरणसे स्पष्ट है कि लॉर्ड मिलनरके मनपर छाप यह है कि व्यापारिक परवाने नवागन्तुकोंको दिये गये हैं, अतएव केवल उन्हें ही सड़कों या बाजारोंमें हटाया जाना चाहिए। किन्तु जैसा कि शिष्टमण्डलने निवेदन किया है, जिन्हें बाजारोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने दिये गये हैं, अगर उनमें कोई नवागन्तुक हैं तो उनकी संख्या बहुत कम है।

लॉर्ड मिलनर फिर कहते हैं

> प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयों अथवा सुसभ्य एशियाइयों पर हम कोई निर्योग्यताएँ लगाना नहीं चाहते। वह (सरकार) तीन महत्त्वपूर्ण बातोंमें इन एशियाइयोंके प्रति रियायत दिखा रही है, जो पिछली हुकूमतने नहीं दिखाई थी।

इन बातोंमें से एक है ऊँचे दर्जेके एशियाइयोंकी खातिर विशेष कानूनोंसे छूट। चूँकि केवल निवासियोंको इनके दिये जानेका सवाल है, मैं निवेदन करनेकी धृष्टता करता हूँ कि जो स्वच्छता और अन्य नियमोंका अनुसरण करते हैं उन्हें यथा कानून बगनेतक अपना व्यापार अबाध रूपसे करने देना चाहिए।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज एल जी २११२, एशियाटिक्स १९०२–१९०६।

३८. टिप्पणियाँ[1]

[जोहानिसबर्ग
नवम्बर १८, १९०३]

नवम्बर १६, १९०३ को समाप्त होनेवाले सप्ताहका विवरण

स्थिति अब भी वैसी ही है। पिछले सप्ताह जो संक्षिप्त विवरण भेजा गया था[2] वह लॉर्ड मिलनर द्वारा मई २, १९०३ को श्री चैम्बरलेनके नाम भेजे गये खरीतेके आधारपर अच्छी तरह स्पष्ट किया जा सकता है।

यद्यपि लॉर्ड मिलनर कहते हैं, सरकार इस बातके लिए चिन्तित है कि कानून इस तरह लागू हो जिसमें उपनिवेशमें पहलेसे बसे भारतीयोंका पूरा खयाल रखा जाये, फिर भी पिछले सप्ताह यह प्रकट हो गया कि भारतीयोंका कितना कम खयाल रखा गया है।

इन भारी हितोंको जो जोखिममें हैं देखते हुए यह आवश्यक है कि लॉर्ड मिलनरके खरीतेसे और उद्धरण चुने जायें जिनसे प्रकट होगा कि यह अमलमें आनेवाले वर्तमान तरीकोंसे वस्तुतः कितना भिन्न है। लॉर्ड मिलनर कहते हैं

> लड़ाईके पहले जो एशियाई उपनिवेशमें थे केवल उन्हींका सवाल होता तो महा-महिमकी सरकारके मनके लायक नये कानून बननेतक हम राह देख सकते थे; परन्तु

1. जोहानिसबर्ग का [विवरण] [illegible] दादाभाई नौरोजीको भेजा गया था [illegible] इंडिया [illegible] ११-१२-१९०३ के इंडियामें छपा था।
2. देखिए "टिप्पणियाँ", नवम्बर ९, १९०३।

यहाँ तो नये-नये आनेवालोंका तांता लगा रहता है और वे व्यापार करनेके परवाने भी माँगते रहते हैं। ऐसी दशामें एकदम खामोश बैठे रहना असम्भव हो गया है।

लॉर्ड महोदय आगे कहते हैं

> जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, हालाँकि पहले यहाँ जिन एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे उन्हें सरकार स्वीकार करनेको तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। क्योंकि दरमियान और, युद्धविरामके बाद, कितने ही नवागन्तुकोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर, १९०३ तकके लिए बढ़ा दी गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई हैं कि उस तारीखको उन्हें अपने लिए निश्चित बस्तियों या *बाजारोंमें* चले जाना होगा।

अब उपर्युक्त कथनके अनुसार उन लोगोंकी राहमें जो युद्धके पहले व्यापार कर रहे थे कोई रुकावट नहीं आनी चाहिए, साथ ही उन लोगोंकी भी जो युद्धके पहले इस देशमें बस गये थे चाहे फिर वे युद्धके पूर्व व्यापार करते रहे हों या नहीं। खरीतेके अनुसार *बाजार*-सूचनाका असर केवल उन्हीं नये आगन्तुकोंपर होना चाहिए, जिनके बारेमें कहा गया है कि वे यहाँ आकर भर गये हैं। *वास्तवमें जैसा कि पिछले विवरणमें बताया गया है, नये आगन्तुक तो बहुत ही कम* हैं क्योंकि देशमें केवल शरणार्थियोंको आने दिया गया है। इसलिए खरीतेपर भरोसा कर निष्क्रिय बैठे रहनेसे कोई लाभ नहीं होगा। समय भागता जा रहा है, खरीतेके अनुसार यह अत्यन्त आवश्यक है कि बेचारे ब्रिटिश भारतीयोंको आश्वासन दिया जाये कि उनके परवानोंका सम्मान किया जायेगा।

लॉर्ड मिलनर आगे कहते हैं

> प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयों और सुसभ्य एशियाइयोंपर हम कोई निर्योग्यताएँ नहीं लादना चाहते।

और, परमश्रेष्ठ आगे कहते हैं

> इसलिए, तीन महत्त्वपूर्ण बातोंमें सरकार एशियाइयोंके साथ ऐसी रियायत दिखा रही है जो पिछली हुकूमतने नहीं दिखलाई थी।

उक्त मामलोंमें से एक है उच्च वर्गके एशियाइयोंको सभी तरहके विशेष विधानोंसे मुक्त करना। यह रियायत निवासस्थानको छोड़कर, जो कुछ महत्त्व नहीं रखता, अन्यत्र अभी तक नहीं दी गई है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है देशका कानून स्वीकार करनेवाले लोगोंके व्यापारमें रोड़े न अटकाना। बस्तियोंसे बाहर निवासस्थानके अधिकारपर निःसन्देह बहुत जोर डाला जाता है। किन्तु तुलनात्मक दृष्टिसे निवासस्थानका अधिकार तो भावनासे सम्बन्धित है और व्यापारका अधिकार रोटीसे।

जहाँतक *बाजारोंके* लिए स्थानोंके चुनावका सम्बन्ध है भारतीयोंकी केवल एक राय है —अर्थात् उनके कट्टर विरोधी इनसे बुरे स्थान नहीं चुन सकते थे। व्यापारके लिए ये स्थान सर्वथा बेकार हैं। ज्यादातर मामलोंमें ये उजाड़ भूमि-खण्ड हैं जो व्यापारिक केन्द्रोंसे दूर पड़ते हैं। निष्पक्ष पेशेवर लोगोंने प्रमाणित किया है कि व्यापारिक दृष्टिसे उनका कोई मूल्य नहीं है।

रस्टेनबर्ग बाजारके सम्बन्धमें स्वास्थ्य-निकायके एक सदस्य तक ने यह कहनेमें संकोच नहीं किया कि वहाँ व्यापार नहीं हो सकता और तो भी लॉर्ड मिलनरने भी चेम्बरलेनको लिखा है :

> जैसा कि आप जानते हैं, दक्षिण आफ्रिकाकी भूतपूर्व गणराज्य-सरकारने इन एशियाई *बाजारोंके* लिए जो जगहें चुनी थीं उनमें बहुत-सी इस कामके लिए सर्वथा अनुपयुक्त थीं क्योंकि शहरके व्यापार-केन्द्रोंसे वे दूर पड़ती थीं। बहुतसे शहरोंमें जगहें चुनी ही नहीं गई थीं। अब सरकारका यह इरादा है कि एशियाई *बाजारोंके* लिए उपयुक्त जगहें चुननेमें जरा भी देर न की जाये। वे नगरके समीप, तथा आने-जानेके लायक हों। मुझे विश्वास है कि वहाँ रहनेके लिए जानेवाले लोगोंकी जरूरत और रिवाजके अनुसार एक बार जब वहाँ *बाजार* स्थापित हो जायेंगे तब वे आजकी स्थितिसे अधिक अच्छी तरह नहीं तो, कमसे-कम इतनी ही अच्छी तरह वहाँ अपना व्यापार कर सकेंगे।

उक्त उद्धरण यह प्रकट नहीं करता कि लॉर्ड मिलनरके इरादे अच्छे नहीं हैं, बल्कि बताता है कि १८८५ के कानून ३ के प्रशासनका उत्तरदायित्व जिनपर है वे उन इरादोंपर अमल नहीं कर रहे हैं। वास्तवमें वे इस कानूनको ऐसे ढंगसे अमलमें ला रहे हैं जो भारतीयोंके अत्यन्त विरुद्ध है क्योंकि कानून सरकारको मजबूर नहीं करता कि वह *बाजारोंको* दूर-दराज जगहोंमें चुने बल्कि वह उसे अधिकार देता है कि वह एशियाइयोंको रहनेके लिए सड़कें मुहल्ले तथा बस्तियाँ बताये। लॉर्ड मिलनरने स्वयं पृथक सड़कें स्थापित करनेके बारेमें विचार किया था। उसी खरीतेमें उन्होंने कहा है: उन्हें उन सड़कों या *बाजारोंमें* जाना होगा जो इस मतलबके लिए चुने गये हैं।”

हम देखते हैं कि लॉर्ड मिलनरका वक्तव्य जहाँतक सम्भव हो सकता है निश्चित है। इसलिए सरकारसे जो न्यूनतम अपेक्षा की जाती है, वह है कि लॉर्ड मिलनरकी घोषणाको पूर्ण रूपसे अमलमें लाये और ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके परवानोंको नया करके उन्हें बरबाद होनेसे बचाये। यदि सरकार चाहे तो नये अर्जदारोंके साथ भिन्न तरीकेसे बरताव किया जा सकता है।

भारतीय हितोंके प्रति प्रशासनकी उदासीनता, या वैरभावको सिद्ध करनेके लिए बारबर्टनके स्वास्थ्य-निकायकी कार्रवाईका उदाहरण दिया जा सकता है। जैसा कि पिछले सप्ताह बताया जा चुका है वहाँ वर्तमान बस्तीको नगरसे और दूरके स्थानपर हटानेका प्रयत्न किया गया था। उसके बाद सरकारने लिखा है कि वर्तमान बस्तीके उपकरणोंको ज्यों-का-त्यों रहने दिया जायेगा क्योंकि स्वास्थ्य-निकाय न तो उनको हटानेका हर्जाना दे सकता है, और न उसपर होनेवाले खर्च ही। किन्तु जो एक हाथसे दिया गया है उसे दूसरे हाथसे छीन लिया गया है क्योंकि अभी-अभी स्थानिक मजिस्ट्रेटके हस्ताक्षरोंसे एक सूचना निकली है, जिसके जरिये वर्तमान पट्टेदारोंकी पट्टेदारीपर नई और असाधारण शर्तें लगा दी गई हैं। ये शर्तें गैर-सरकारी पक्षोंके बीच भी नहीं सुनी गई थीं। इसका मतलब यह है कि यदि वे नई बस्तियोंमें नहीं जाना चाहते तो उन्हें अपनी जगहोंमें उप-किरायेदारको और, यहाँतक कि किसी अभ्यागतको भी रखनेका हक न होगा। यदि वे न मानें तो उन्हें बेदखलीका खतरा उठाना होगा और नियत तारीखको किराया न देनेपर पट्टेदारी समाप्त कर दी जायेगी। वर्तमान पट्टेदारोंके सिवा न तो किसी अन्य व्यक्तिके नाम परवाने बदले जा सकते हैं और न किसी अन्य स्थानके लिए नए बनाए जा सकते हैं। इस प्रकार निकायको यदि उसका निर्णय बहाल रहा तो एक भी पैसा खर्च किये बिना ही भारतीयोंको वर्तमान बस्तियोंसे हटानेका सन्तोष प्राप्त हो जायेगा।

यह सारे-का-सारा स्पष्ट रूपसे १८८५ के कानून ३ के खिलाफ है क्योंकि कुछ हो बस्तियोंके अन्दर तो ब्रिटिश भारतीयोंको भी वैसे ही अधिकार होंगे जैसे कि किसी साधारण व्यक्तिको। यह मामला सरकारके सामने पेश किया गया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स ४ २।

३९. ट्रान्सवालके "बाजार"

अच्छा हो कि ब्रिटिश भारतीयोंके लन्दन-स्थित मित्र ११ मईको श्री चेम्बरलेनके नाम भेजे गये लॉर्ड मिलनरके खरीतेकी तुलना ट्रान्सवालके अधिकारियोंके उस रुखके साथ करें जो उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंके व्यापारी परवानोंके बारेमें धारण कर रखा है। इन दुकानदारोंके बारेमें लॉर्ड मिलनर अपने खरीतेमें लिखते हैं

> परन्तु सरकार इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस कामको (कानूनके अमलको) देशमें पहलेसे बसे हुए भारतीयोंका बहुत खयाल रखते हुए और निहित स्वार्थोंके प्रति — जहाँ उन्हें कानूनके विरुद्ध भी विकसित होने दिया गया है — सबसे अधिक खयाल रखते हुए करे।

इस वक्तव्यको पढ़कर स्वभावतः मनुष्यका यही खयाल हो सकता है कि जितने भी भारतीय इस समय परवाने प्राप्त करके उपनिवेशमें व्यापार कर रहे हैं उन्हें छेड़ा नहीं जायेगा और उन्हें बस्तियोंमें जानेपर मजबूर नहीं किया जायेगा। परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। कुछ बहुत थोड़े लोगोंको छोड़कर, जिनको लड़ाईके पहले व्यापारी परवाने मिल सके थे शेष सबको, यद्यपि वे लड़ाईके पहले बगैर परवानोंके व्यापार करते थे बस्तियोंमें जाना होगा मानो इन लोगोंका कोई निहित स्वार्थ है ही नहीं। इसलिए ट्रान्सवालकी वास्तविक जानकारीके अभावमें इंग्लैंडमें लोगोंको यह गलत खयाल हो सकता है कि ट्रान्सवालकी स्थिति चिन्ता करने लायक नहीं है और, यह कि जिनके पास परवाने हैं उनको वर्षके अन्तमें छेड़ा नहीं जायेगा। इसलिए हम उन्हें सावधान कर देना चाहते हैं कि अगर उन्होंने अपने दिमागमें ऐसा कोई खयाल बना लिया हो तो उसे हटा दें। लॉर्ड मिलनरके खरीतेके उपर्युक्त उद्धरणके बावजूद वे निश्चयपूर्वक जान लें कि इस समय इन निर्दोष लोगोंको बचानेके लिए अधिकतम प्रयत्नकी जरूरत है। अगर वह नहीं किया गया तो इस वर्षके अन्तमें सैकड़ों भारतीय व्यापारी बरबाद हो जायेंगे। लॉर्ड मिलनरके खरीते पर हम जितना ही अधिक विचार करते हैं उतना ही हमें लगता है कि वह गुमराह करनेवाला है। लॉर्ड महोदय कहते हैं

> जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ लड़ाईके पहले यहाँ एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे उन्हें सरकार स्वीकार करनेको तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, उसे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरम्यान, और युद्ध-विरामके बाद जितने ही नवागन्तुकोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर, १९०३ तकके

लिए अदा की गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई हैं कि उस तारीखको उन्हें अपने लिए निश्चित सड़कों या *बाजारोंमें* चले जाना होगा।

लड़ाईसे पहले कुछ भारतीय परवानोंके बगैर व्यापार करते थे। दूसरे ऐसे भारतीय शरणार्थी भी हैं, जो लड़ाईसे पहले किन्हीं जिलोंमें व्यापार नहीं करते थे। परन्तु बादमें उन्हें वहाँ व्यापार करनेके लिए परवाने दे दिये गये हैं। उनको छेड़ा जायेगा या नहीं इस विषयमें उपर्युक्त वक्तव्यमें एक शब्द भी नहीं आया है। लॉर्ड मिलनरके अनुसार प्रश्न एकमात्र नये आनेवालोंका है। अगर *बाजार*-सूचना केवल उन नये आनेवालों पर लागू होती जिनके पास अस्थायी परवाने हैं, तो शायद बहुत कहने-सुननेकी बात नहीं होती। परन्तु यह लगभग निरपवाद रूपसे सिद्ध किया जा सकता है कि सारे वर्तमान परवानेदार शरणार्थी हैं, जो लड़ाईसे पहले यहाँ रहते थे।" और फिर भी इन सबको उनके लिए निश्चित सड़कोंपर या *बाजारोंमें* चले जाना होगा।" सड़कों शब्दपर ध्यान दीजिये। और उसे नीचे लिखे संदर्भके साथ पढ़िए।

लॉर्ड महोदय कहते हैं

> जैसा कि आप जानते हैं, दक्षिण आफ्रिकाकी भूतपूर्व गणराज्य-सरकारने इन एशियाई *बाजारोंके* लिए जो जगहें चुनी थीं उनमें बहुत-सी इस कामके लिए सर्वथा अनुपयुक्त थीं क्योंकि शहरके व्यापार-केन्द्रोंसे वे दूर पड़ती थीं। बहुतसे शहरोंमें जगहें चुनी ही नहीं गई थीं। अब सरकारका यह इरादा है कि एशियाई *बाजारोंके* लिए उपयुक्त जगहें चुननेमें जरा भी देर न की जाये। वे समाजके सभी वर्गोंके आने-जानेके अनुकूल हों। मुझे विश्वास है कि वहाँ रहनेके लिए आनेवाले लोगोंकी जरूरत और रिवाजके अनुसार एक बार जब वहाँ *बाजार* स्थापित हो जायेंगे तब वे आजकी स्थितिसे अधिक अच्छी तरह नहीं तो, कमसे-कम, इतनी ही अच्छी तरह वहाँ अपना व्यापार कर सकेंगे।

इन शब्दोंको पढ़नेपर स्वभावतः किसी भी आदमीको यही खयाल हो सकता है कि इन *बाजारोंकी* जगहें सचमुच बड़ी अच्छी और पिछली गणराज्य-सरकारने जो चुनी थीं उनसे बिलकुल भिन्न प्रकारकी होंगी। और यह कि यह सड़कोंकी अदला-बदली मात्र है। परन्तु जिन्हें ट्रान्सवालके हालातका पता नहीं है उन्हें हम बता दें कि यहाँ इन *बाजारोंका* चुनाव ऊपर लिखी भावनासे नहीं किया गया है। किसी भी मामलेमें कोई सड़क भारतीयोंके व्यापार या निवासके लिए निश्चित नहीं की गई है। प्राय सभी बस्तियाँ शहरके व्यापार-केन्द्रोंसे जितनी भी अधिक दूर रखी जा सकती थीं उतनी दूर रखी गई हैं। हम अन्यत्र वे प्रतिवेदन प्रकाशित कर रहे हैं जो हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजे गये हैं। प्रतिवेदन ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघकी प्रेरणासे इस उपनिवेशके अपने पेशेमें अच्छी स्थितिके सज्जनों द्वारा तैयार किये गये हैं। वे सब सज्जन एक रायसे कह रहे हैं कि चुनी हुई जगहें व्यापारके लिए किसी कामकी नहीं हैं। लॉर्ड मिलनरने यह तो शुरू ही स्वीकार किया है कि पिछली हुकूमतने जो जगहें चुनी थी वे व्यापारके लिए अत्यन्त अनुपयुक्त थीं। किन्तु हम पूर्ण निश्चयके साथ कहते हैं कि वर्तमान सरकार द्वारा चुनी गई जगहें प्राय उनसे दूनी खराब हैं। पिछली सरकार द्वारा चुनी हुई बस्तियोंकी जगहोंको और भी दूर ले जानेका प्रयत्न किया गया है और एक दो बस्तियोंको छोड़ कर, जिनकी जगहें पुरानी थी शेष सब उन्हीं दूरकी जगहोंमें कायम रखी गई हैं। आज तो प्राय वे सारे स्थान निरे रेगिस्तान हैं जहाँ सफाई और पानीका कोई प्रबन्ध नहीं है। मकान भी नहीं बने हैं। ट्रान्सवालमें ९० डिग्रीकी धूपमें बैठे हुए लोगोंको शायद हमारी बातोंपर विश्वास न हो, परन्तु अकाट्य सत्य तो यह है कि जिन लोगोंको इन *बाजारोंमें* जाकर बसना है उन्हें

वास्तवमें एक नये नगरकी स्थापना करनी होगी। उन्हें जमीनोंके पट्टे लेने होंगे, अपने खर्चसे उनपर मकानात खड़े करने होंगे और अगर उनमें क्षमता हो, नये सिरेसे व्यापारको जमाना होगा। अपने खर्चसे शब्दपर हम इसलिए जोर दे रहे हैं कि इन बाड़ोंके लिए होड़ उन्हीं लोगोंके बीच होगी जिन्हें अपने व्यापार और निवासके लिए वहाँ मकान बनाने हैं। इसलिए स्पष्ट है कि छोटे व्यापारी वहाँ अच्छे मकान बनानेके लिए ३० से ४० पौंड तक नहीं जुटा सकेंगे। बाजारोंकी जगहोंका निश्चय अभी-अभी हुआ है। वहाँपर उनको तुरन्त मकान बनाना शुरू कर देना चाहिए और पहली जनवरीसे पहले उसे पूरा करके इस तारीखको अपने नये निवास पर रहनेके लिए चले जाना चाहिए। लॉर्ड महोदय फरमाते हैं कि "बाजार समाजके सब वर्गोंके लोगोंके आने-जाने लायक होंगे।" अगर इन शब्दोंका अर्थ यह हो कि इन बाजारोंपर ऊँचा सींखचा और कास-पास काँटेदार तार नहीं लगाये जायेंगे तो उनका कहना जरूर सही होगा। परन्तु अगर वे इन शब्दोंके द्वारा यह कहना चाहते हों कि सभी वर्गोंके लोग वहाँपर सौदा खरीदनेके लिए आसानीसे आ सकेंगे तो हमें फिर कहना होगा कि यह एकदम गलत है। शहरसे बाहर, व्यापार-केन्द्रसे एक मीलके फासलेपर, रास्तेसे हटकर भारतीय बाजारोंमें सौदा खरीदनेके लिए जानेसे लोग इनकार करेंगे। और फिर भी लॉर्ड महोदय आशा रखते हैं कि भारतीयोंका व्यापार जिस प्रकार चल रहा है अगर उससे अधिक अच्छी तरह नहीं तो वैसा ही जरूर चलता ही रहेगा। परिस्थितिकी यह हृदयहीनता वर्णनसे परे है। अभी तो केवल इसी आशाके सहारे लोग टिके हैं कि वर्ष समाप्त होनेसे पहले सरकारसे कुछ राहत मिलेगी और वर्तमान परवानेदारोंको छेड़ा नहीं जायेगा। खरीतेके बारेमें और भी कुछ कहना शेष है। इंग्लैंडके और भारतके कापे समाचारपत्रोंमें हमने देखा है कि खरीतेका यह प्रभाव पड़ा है कि प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयों और मुक्त एशियाइयोंपर बाजार-सूचनाका असर नहीं पड़ेगा? क्योंकि लॉर्ड मिलनर कहते हैं:

> प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयों और सुसभ्य एशियाइयोंपर हम कोई निर्योग्यतायें नहीं लगाना चाहते। इस विषयमें पिछली हुकूमतने जो कानून बना दिया था वर्तमान सरकार बिलकुल उसे कायम रख रही है। परन्तु तीन बहुत महत्त्वपूर्ण बातोंमें वह एशियाइयोंके साथ ऐसी रियायत दिखा रही है जो पिछली हुकूमतने नहीं दिखाई थी।

लॉर्ड महोदयने इसमें वर्तमान कालका प्रयोग किया है, जो ध्यान देनेकी बात है। इन तीन महत्त्वपूर्ण बातोंमें से एक तो उच्च वर्गके एशियाइयोंकी सभी विशेष कानूनोंसे मुक्ति है। भारत और इंग्लैंडके अपने पाठकोंको हम पुनः विश्वास दिलाना चाहते हैं कि इस मुक्तिके सिद्धान्तको भी मान्यता नहीं मिली है। फिर, यह मुक्ति कानूनमें आम नहीं है। और केवल निवाससे सम्बन्ध रखती है। और अगर कभी यह रियायत मिलेगी भी तो भविष्यमें किसी दिन मिलेगी, पता नहीं है। तबतक प्रतिष्ठित भारतीयों और अन्य सबका भाग्य एक जैसा है और उन्हें बगैर किसी भी रियायतके बस्तियोंमें जाकर बसने और वहीं — केवल वहीं — व्यापार करनेके लिए मजबूर किया जायेगा। वास्तविक स्थिति जिसे हम जानते हैं और बता रहे हैं उसमें और लॉर्ड मिलनर द्वारा खींची गई एशियाइयोंकी स्थितिकी तसवीरमें यह महान अन्तर है। एक तसवीर लोगोंको बस्तुस्थितिसे अच्छा बता सकती है। दूसरी तसवीर वस्तुस्थितिका सही सही चित्रण है और हम विश्वासपूर्वक कहते हैं कि इसमें तिलभर भी अत्युक्ति नहीं की गई है। हम जो बातें खुद जानते हैं और जिनका ब्योरा हमको मिला है उन्हींके आधारपर हम यह कह रहे हैं। परिस्थिति इतनी नाजुक और अनिश्चित है कि हम केवल यह आशा करते हैं कि शायद इस अन्तिम घड़ीमें भी उसमें कोई परिवर्तनकारी गुण निकल आवे और नवीन

वर्ग भारतीय व्यापारियोंके लिए इतनी उदासी लेकर न अवतरित हो जितना कि इस समय यह प्रतीत हो रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-११-१९०३

४० भारतके पितामह

भारतकी ताजा डाकमें आये अखबारोंमें श्री दादाभाई नौरोजीकी[1] सालगिरहपर बहुत लम्बे-लम्बे लेख हैं। निश्चय ही श्री दादाभाईका भारतमें वही स्थान है जो इंग्लैंडमें श्री ग्लैडस्टनका था। उन्होंने अपने ७९ वें वर्षमें प्रवेश किया है और उनकी यह वर्षगाँठ सारे भारतमें जैसे मनाई जानी चाहिए थी उसी तरह मनाई गई है। लाखों-करोड़ों मनुष्योंने परमात्मासे प्रार्थनाएँ कीं कि वह उस वृद्ध पुरुषपर अपने आशीर्वादकी वृष्टि करे, और उसे चिरायु करे। हम भी उन करोड़ोंकी प्रार्थनामें शामिल हैं। हिन्दुकुशसे लेकर कन्याकुमारीतक और कलकत्तेसे लेकर कराचीतक भी दादाभाईके प्रति जनताका जितना प्रेम है उतना और किसी जीवित व्यक्तिके प्रति नहीं है। उन्होंने अपना सारा जीवन अपनी जन्मभूमिकी सेवामें अर्पित कर दिया है और यद्यपि वे पारसी हैं फिर भी सारे देशके हिन्दू, मुसलमान ईसाई और अन्य सब उनके प्रति उतना ही आदर और श्रद्धा रखते हैं जितना कि पारसी खुद। भारतकी सेवाके लिए उन्होंने अपने सुख-वैभवको तिलांजलि दे दी और एक निर्वासितका जीवन स्वीकार किया। उन्होंने तो अपना धन भी इसी काममें लगा दिया है। उनकी देशभक्ति शुद्धतम है और उसमें प्रेरणाका एकमात्र स्रोत मातृभूमिके प्रति कर्तव्यकी भावना ही है। यही नहीं उनका व्यक्तिगत चरित्र पूर्णतः आदर्श रहा है, जिसका उठती पीढ़ीको हर दृष्टिसे अनुकरण करना चाहिए। जहाँतक हमारा खयाल है, उनके सारे राजनीतिक कार्योंकी बुनियादमें एक प्रबल धार्मिक उत्साह रहा है, जिसे कोई मिटा नहीं सकता। जो देश दादाभाई जैसे पुरुषको जन्म दे सकता है, उसका भविष्य निःसन्देह अत्यन्त उज्ज्वल है। इंग्लैंडकी लोकसभाके लिए एक ब्रिटिश क्षेत्रसे चुने जानेवाले वे पहले भारतीय हैं। अपने इस चुनावके बाद जब वे भारत आये तो उनका स्वागत बड़ी धूमधामसे किया गया। बम्बईसे लाहौरकी उनकी इस विजय-यात्राको जिन्होंने देखा है वे कहते हैं कि उनके स्वागतोत्सवमें जो उत्साह दिखाई दिया उसकी बराबरी अगर किसी उत्साहसे हो सकती है तो वह चिरस्मरणीय लॉर्ड रिपनके उस समयके सत्कारका उत्साह ही था जब वे अपने शासनकालके पदसे निवृत्त हुए थे। ऐसे पुरुषका सम्मान करके निश्चय ही राष्ट्रने अपना ही सम्मान किया है। श्री दादाभाईका जीवन अपार कठिनाइयोंसे भरा पड़ा है (जैसा कि हमारे बहुत-से पाठकोंको ज्ञात है) परन्तु उन सबके बावजूद वे अनुपम श्रद्धा और निःस्वार्थ भावसे अपने कामपर डटे रहे हैं। देश और जातिकी सेवामें जो धीरज उन्होंने बताया है दक्षिण आफ्रिकामें हमारे लिए वह एक सबक लेनेकी वस्तु है। राजनीतिक संघर्षोंमें विजय कभी एक दिनमें नहीं मिल जाती। जो इनमें पड़ते हैं उन्हें अक्सर निराशाओंका ही सामना करना पड़ता है। दक्षिण आफ्रिकामें हम इनका अनुभव कर ही रहे हैं। फिर अगर हम यह स्मरण कर लें कि श्री दादाभाई गत चालीस वर्ष या इससे भी अधिक समयसे इस

१ देखिए खण्ड १, पृ. ३११।

संघर्षमें पड़े हुए हैं तो उससे हमें बड़ा सन्तोष मिलेगा। क्योंकि हमारी लड़ाई तो अभी शुरू ही हुई है और, फिर, हम पर जो मुसीबतें आई हैं उनमें तो कहीं कहीं आशाकी किरणें भी दिखाई दे जाती हैं। अपने तमाम कामकाजके बीच भी दादाभाई दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नपर भी बराबर ध्यान देते रहे हैं और वे हमारे पक्षके अत्यन्त लगन भरे सरक्षकोंमें से हैं। परमात्मासे हमारी यही हार्दिक प्रार्थना है कि वह श्री दादाभाईको शरीर और मनसे पूर्णत स्वस्थ रखे ताकि वे चिरायु होकर अपनी मातृभूमिकी गौरवमयी सेवा करते रहें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-११-१९ ९

४१ लॉर्ड हैरिस और ब्रिटिश भारतीय

भारत-सरकारने ट्रान्सवालको मजदूर भेजने और इस तरह उसकी मदद करनेसे तबतकके लिए इनकार कर दिया है जबतक ट्रान्सवाल-सरकार वहाँकी भारतीय आबादीकी शिकायतोंको दूर करनेके लिए तैयार नहीं होती। हमारे सहयोगी *ट्रान्सवाल लीडरको* प्राप्त सामुद्रिक तारके अनुसार, कहा जाता है बम्बईके भूतपूर्व गवर्नर लॉर्ड हैरिसने दक्षिण आफ्रिकाकी संयुक्त स्वर्ण पेढी (कान्सॉलिडेटेड गोल्डफील्ड्स) के अध्यक्षकी हैसियतसे ट्रान्सवालके मजदूरों-सम्बन्धी प्रश्नपर अपने विचार प्रकट करते हुए भारत-सरकारके इस रुखपर असन्तोष प्रकट किया है। लॉर्ड हैरिस बड़े प्रतिष्ठित पुरुष हैं परन्तु उनके उद्गारोंसे अगर वे सही हैं प्रकट होता है कि स्वार्थ मनुष्यको कितना अन्धा बना देता है। लॉर्ड महोदय जब बम्बईके गवर्नर तो रहे नहीं इसलिए भारतके दृष्टिकोणसे इस प्रश्नपर विचार करनेकी उन्हें जरूरत ही नहीं मालूम होती। वे एक बहुत बड़ी खानेकी कम्पनीके पूँजीदाता और अध्यक्ष हैं और उसके हिस्सेदारोंको मुनाफा दिलाना उनकी जिम्मेवारी है। इसलिए जब वे देखते हैं कि उनकी कम्पनी मजदूरोंकी कमीसे कठिनाईमें फँस गई है तब भारत-सरकारके इस रुखपर उन्हें रोष आता है कि वह अपने आश्रितोंकी रक्षा करनेका प्रयास करती है। उनकी कम्पनीको मुनाफा न मिलनेकी संभावना उनकी नजरोंमें सबसे बड़ी चीज है। ट्रान्सवालके भारतीयोंपर सभी निर्योग्यताएँ और गिरमिटिया मजदूरोंके लिए प्रस्तावित शर्तें कितनी ही पक्षपात भरी क्यों न हों वे उसकी तुलनामें कुछ नहीं हैं। इस घटनासे यह भी प्रकट होता है कि इंग्लैंडमें ब्रिटिश भारतीयोंके जो मित्र और संरक्षक हैं उनको कितनी सावधानीसे ब्रिटिश भारतीयोंके हितोंपर निगाह रखनेकी जरूरत है परन्तु हम लॉर्ड महोदयसे कहेंगे कि वे अपने पिछले जीवनभर निगाह डालें जब वे बम्बईके गवर्नर थे। हम उनसे अपने देशभाइयोंकी तरफसे यह भी अपील करेंगे कि वे एक सच्चे सिपाहीके भावसे उनका खयाल जरूर रखें। पिछली बार इस उपनिवेशसे गुजरते समय भारतीयोंके प्रतिनिधियोंसे डर्बनमें उन्होंने यह कहा भी था कि वे अपने हृदयमें भारतीयोंके लिए सदा प्रेमपूर्ण स्थान बनाये रखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-११-१ ९

४२. राष्ट्रीय कांग्रेस और दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय

इंडियन ओपिनियनके इस अंकके भारत पहुँचते-पहुँचते राष्ट्रीय कांग्रेसके आगामी अधिवेशनकी तैयारियाँ बहुत आगे बढ़ चुकेंगी। इस अधिवेशनके मनोनीत सभापति श्री लालमोहन घोष[1] हैं। हमें जरा भी सन्देह नहीं कि देशके प्रति उनकी दीर्घकालीन और सुयोग्य सेवाओं एवं अद्वितीय वक्तृत्व-कलासे इस अधिवेशनमें विशाल जन-समूह आकर्षित होगा। श्री लालमोहन घोष मँजे हुए राजनीतिज्ञ हैं और अपने देशभाइयों तथा सरकारमें सहानुभूतिका भाव जागृत करना भली-भाँति जानते हैं। वे इंग्लैंडकी अनेक सभाओंमें श्रोताओंपर अपना सिक्का बैठा चुके हैं और हमें जरा भी शक नहीं कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके प्रश्नको वे बहुत ही योग्यताके साथ सँभालेंगे। इस महान सभाके कार्यकी आवश्यक मर्यादाओंका हमें पूरा-पूरा खयाल है। अभी तो यह सरकारके लिए एक स्वेच्छा-संगठित सलाहकार परिषद मात्र है परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा और उसका आकार, बल ज्ञान और मानसिक सन्तुलन अनुपातके ही समान बढ़ता जायेगा यह जो भी विचार सरकारके सामने रखेगी सरकार उसका आदर किये बिना न रह सकेगी। उसपर उसे ध्यान देना ही पड़ेगा। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका प्रश्न उन थोड़े-से प्रश्नोंमें से एक है जो दलगत राजनीतिसे बिलकुल अलग है और जिनके विषयमें कांग्रेस तथा शक्तिशाली आंग्ल-भारतीय दलके बीच किसी प्रकारका मत-भेद नहीं है। अतः उनके लिए दोनों पक्ष कन्धेसे-कन्धा मिलाकर काम कर सकते हैं और एक ही मंचसे सरकारसे सर्व-सम्मत अपील भी कर सकते हैं। इसके अलावा इस प्रश्न-विशेषके बारेमें सरकारकी भर्त्सना करनेकी भी जरूरत नहीं है, क्योंकि लॉर्ड कर्जनने अनेक बार कहा है कि वे इस प्रकार उपनिवेशोंके रुखको बहुत अधिक नापसन्द करते हैं। इसलिए भारतमें तो केवल इतना ही आवश्यक है कि दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति न्याय-प्राप्तिके प्रयत्नमें लॉर्ड महोदयके हाथोंको मजबूत करनेके लिए लगातार आन्दोलन किया जाता रहे। हमें आशा है कि इस महान देशभक्तके नेतृत्वमें कांग्रेस हम दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंको नहीं भुलायेगी यद्यपि भारतके करोड़ों लोगोंकी तुलनामें हम बहुत थोड़े हैं। हमारी निर्योग्यताओंके इस प्रश्नकी तहमें एक महान साम्राज्य-सम्बन्धी सिद्धान्त है जिसकी सम्भावनाओंका ठीक-ठीक अन्दाजा लगाना भी बड़ा कठिन है। बहुतसे ख्यातनामा आंग्ल-भारतीयोंने भारतीयोंको उनकी साहसिकताकी कमी और मानसिक संकीर्णतापर कोसा है, क्योंकि वे काफी बड़ी संख्यामें अपने देशको छोड़कर किस्मत आजमानेके लिए कहीं नहीं जाते हैं। अब यह बिलकुल स्पष्ट हो गया है कि भारतसे बाहर जानेपर उनको ब्रिटिश प्रजाजनोंका पूरा दर्जा नहीं मिल सकता। दूसरे देशोंको उनके मुख्य रूपसे प्रवास करनेके मार्गमें यह एक कठिन बाधा है। किन्तु जैसे-जैसे देशमें पाश्चात्य शिक्षाका प्रसार होगा साहसी भारतीय प्रवासियोंकी शक्तिको बाहरकी ओर प्रवाहित करनेका मार्ग खोजना ही होगा। इन प्रवासियोंका क्या हो यह प्रश्न गौण या महत्वहीन नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०३

१. लालमोहन घोष (१८४९–१९०९ ई०) वकील, वक्ता और भारतकी स्वतन्त्रताके प्रबल समर्थक।

४१. अत्याचारका इतिहास

कई वर्षोंसे और कदाचित् बहुत पहलेसे ब्रिटिश भारतीय वाटरबर्टनकी बस्तीमें रह रहे हैं। उस बस्तीकी स्थापना पिछली सरकारने की थी। वहाँके स्वास्थ्य-निकायने बाजार-सूचनासे प्रोत्साहित होकर अब किसी-न-किसी बहाने ब्रिटिश भारतीयोंको उस बस्तीसे हटाकर शहरसे और भी दूर एक स्थानमें भेजनेका निश्चय किया है। इसके लिए स्वास्थ्य-निकायको सरकारकी स्वीकृति लेनी अनिवार्य थी जो उसे तुरन्त दे दी गई। परन्तु इस शर्तपर कि वर्तमान बस्तीको स्वास्थ्य-निकाय अपने खर्चेसे नई जगहपर ले जायेगा या केवल मकानोंकी कीमतका वाजिब मुआवजा मालिकोंको दे देगा। इसके अनुसार काबिज लोगोंको सूचनाएँ भी दे दी गईं और वे परिस्थितिको समझ कर पूरे निश्चयके साथ काममें लग गये। उन्होंने सरकारसे दरख्वास्त की कि उन्हें वहाँसे हटाया न जाये। कई अर्जियाँ गुजारीं। इसपर जाँच की गई। अर्जदारोंके विरोधके आधार ये थे पहला यह कि वे वर्तमान बस्तीमें बहुत लम्बे अर्सेसे रह रहे हैं और अपने व्यापार-व्यवसायमें एक साख बना चुके हैं। दूसरा यह कि ऐसे लोगोंके लिए वहाँसे हटने और नई बस्तीमें जानेसे बहुत बड़ा नुकसान होगा। तीसरा यह कि नई बस्ती ऐसी जगह नहीं है जहाँ वे कुछ भी व्यापार कर सकें। फिर वह वर्तमान बस्तीकी अपेक्षा शहरसे और भी ज्यादा दूर है और ऐसी जगह है जो स्वास्थ्यप्रद नहीं है। इसके अलावा उन्होंने इस प्रश्नपर एक विशेष प्रतिवेदन भी तैयार कराया। शहरके प्रसिद्ध सर्वेक्षक श्री वटियरने उसमें लिखा कि शहरके चौक बाजारसे छोटेसे-छोटे रास्तेसे भी बस्तीकी नई जगह १ मील और ९१ गजकी दूरीपर है।

> बस्तीकी जमीन उसी किस्मके काले पत्थरकी है, जैसी कि पड़ोसके अस्पतालकी छोटी टेकड़ीकी है और वास्तवमें बस्तीका एक हिस्सा तो वस्तुतः उस टेकड़ीके ढालपर ही पड़ता है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए, यह भी गम्भीर रूपसे विचारणीय है कि इस जमीनमें दीमक बहुत है, जिन्होंने उक्त पहाड़ीपर अस्पतालकी इमारतोंको बहुत नुकसान पहुँचाया है।

अपने वर्तमान स्थानसे बस्तीको हटाना वांछनीय है या नहीं इस प्रश्नकी विस्तारके साथ चर्चा करते हुए भी वटियरने स्पष्ट रूपसे बताया है कि यह वांछनीय नहीं है। वे लिखते हैं

> बस्तीके वर्तमान स्थानमें जो वाटरबर्टनसे काम मामीको जानेवाले मुख्य मार्गके बिलकुल नजदीक है, कुछ हदतक व्यापारकी अनुकूलता है। फासला भी इतना है कि शहरके साथ भी व्यापार-व्यवसाय चल सकता है। किन्तु नया स्थान तो मुख्य मार्गसे दूर एक कोनेमें सिरेपर पड़ेगा। शहरका फासला भी बढ़ जाता है। इस कारण व्यापार व्यवसायमें कठिनाइयाँ और भी बढ़ जायेंगी। फिर बस्ती और उपनगरोंके बीच मुसाफिरोंके लिए सरकारी बग्घियोंकी व्यवस्था भी नहीं है। अस्पतालकी टेकड़ीके पूर्वमें होकर जो भी रास्ता नई बस्तीमें जायेगा वह स्वास्थ्य-निकायकी जमीनसे एक सौ गजके अन्दर अन्दर ही पड़ेगा, जहाँ कि जानवरोंका अस्तबल है, बाजाने और कूड़े-करकटकी गाड़ियाँ खड़ी की जाती हैं और बाल्टियाँ तारकोल लगाकर जमा रखी जाती हैं।

इस सबका सरकारने जवाब भेजा है कि वह नये स्थानको आरोग्यके लिए हानिकर नहीं मानती। उसने इस बातको टाल ही दिया है कि बस्तीका हटाना सिद्धान्ततः अनावश्यक है। फिर भी वह कहती है कि चूंकि स्थानिक निकाय मुआवजा देनेके लिए अथवा बस्तीको हटानेका खर्च उठानेके लिए भी तैयार नहीं है इसलिए वहाँ रहनेवालोंको अभी छेड़ा नहीं जायेगा। किन्तु अब उसपर नई शर्तें लादी जा रही हैं जो अत्यन्त सन्तापकारक हैं। अगर ये शर्तें न लादी जातीं तो आज ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी जो स्थिति है उसे देखते हुए, उक्त समझौता ठीक कहा जा सकता था। परन्तु बस्तीके निवासियोंको वर्तमान बस्तीमें रहनेकी इजाजत जिन शर्तोंपर दी जायेगी उनको देखते हुए तो यह समझौता बिलकुल निकम्मा बन गया है। जो चीज एक हाथसे दी गई है, वह दूसरे हाथसे छीन ली गई है। इन गरीबोंको भेजी गई गई सूचनामें लिखा है:

> बस्तीमें केवल वर्तमान परवानेदारोंको और उनकी स्त्रियों तथा बच्चोंको ही रहनेकी छूट होगी। निश्चित तारीखपर वाजिब किराया अदा नहीं किया गया तो उनकी किरायेदारी खत्म कर दी जायेगी। कोई परवानेदार अपने बाड़ेमें उप-किरायेदार न रखेगा और अन्य किसीको वहाँ रहने देगा अन्यथा वह बेदखल कर दिया जायेगा। इसी प्रकार वर्तमान बस्तीके लिए नये परवाने जारी नहीं होंगे और न दिये हुए परवाने दूसरे किसीके नामपर बदले जायेंगे।

ये शर्तें अत्यन्त सन्तापकारी हैं। किरायेदार दुर्भाग्यवश हम भी हैं परन्तु हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमारे मकान मालिकने ऐसी कोई शर्त नहीं लगाई है और अन्य किसी पट्टेमें भी हमने इस तरहकी शर्तें नहीं देखी हैं। इससे तो कहीं अच्छा होता अगर निगम सीधा कह देता कि हम आपको कोई मुआवजा नहीं देना चाहते। फिर भी आपको नये स्थानपर जाना ही होगा। परन्तु लोगोंको इस तरह टेढ़े-मेढ़े तरीकोंसे उनके स्थानोंसे खदेड़नेकी नीति उसके निर्माताओंके लिए प्रतिष्ठाकी सूचक नहीं। यह प्रत्यक्ष है कि जोहानिसबर्गका स्वास्थ्य-निकाय ब्रिटिश भारतीयोंसे सम्बन्धित कानूनकी कोई परवाह नहीं करना चाहता। यह जगह जहाँ ब्रिटिश भारतीय रहते हैं सन् १८८५ के कानून ३ के अनुसार या तो पृथक बस्ती है या नहीं है। अगर वह पृथक बस्ती है, और कानूनको समझनेमें हम कोई भूल नहीं करते तो हर ब्रिटिश भारतीयको परवानेकी फीस भर देनेपर न केवल वहाँ रहनेका बल्कि उप-किरायेदारको और निश्चित रूपसे मेहमानोंको भी अपने यहाँ रखनेका तथा बस्तीके किसी भी भागमें जिसमें वह चाहे व्यापार करनेका भी अधिकार अवश्य है। परन्तु जैसा कि पाठकोंने देख लिया होगा नई शर्तोंके अनुसार निकाय भारतीयोंको अपने यहाँ मेहमान रखनेसे भी मना करेगा और अगर वे रखेंगे तो उनको बस्तीसे निकाल देगा। हमें ज्ञात हुआ है कि मामला सरकारके विचाराधीन है। चिन्ताके साथ हम सरकारके निर्णयकी प्रतीक्षा करेंगे। हम जानना चाहेंगे जोहानिसबर्गका स्वास्थ्य-निकाय जो-कुछ करना चाहता है, उसके बचावमें कोई क्या कहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-११-१९०४

४४ पत्र : दादाभाई नौरोजीको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
नवम्बर २३, १९०३

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
वाशिंगटन हाउस
७२, एनर्ले पार्क
लंदन एस० ई० इंग्लैंड

प्रिय महोदय,

मैंने गत सप्ताह[1] ट्रान्सवालके भारतीय व्यापारियोंकी स्थितिके सम्बन्धमें आपको लिखा था और सुझाया था कि संभव हो तो श्री ब्रॉड्रिक या श्री लिटिलटनसे निजी मुलाकात माँगी जाये। इस मामलेमें जितना सोचता हूँ उतना ही मुझे विश्वास होता है कि ऐसी कोई कार्रवाई करना नितान्त आवश्यक है। इस मुलाकातमें बातचीत केवल अत्यावश्यक प्रश्न — अर्थात्, वर्तमान परवानेदारोंके अधिकारोंतक सीमित रखी जाये। *इंडियन ओपिनियन*के इसी अंकमें आप *बाजारों*के लिए प्रस्तावित स्थानोंके बारेमें जिम्मेवार लोगोंके प्रतिवेदन देखेंगे। अधिकांश मामलोंमें सरकारने उत्तर दिया है कि ये प्रतिवेदन गलत हैं और यह कि सम्बन्धित शहरोंमें केवल ये ही स्थान उपलब्ध हैं। मुझे पूर्ण विनम्रतासे यह कहनेमें कोई हिचक नहीं है कि ये स्थान व्यापारके लिए बिलकुल बेकार हैं और, सच कहा जाये तो सरकार इस विषयमें विवादमें नहीं पड़ना चाहती बल्कि इस तर्कका आश्रय लेती है कि कोई अन्य स्थान उपलब्ध ही नहीं है। कुछ भी हो जो इस समय बस्तियोंके बाहर व्यापार कर रहे हैं उनके लिए वहाँ हटाये जानेका बिलकुल प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। मैं लॉर्ड मिलनरके खरीतेकी चर्चा कर ही चुका हूँ। उससे प्रकट हो जायेगा कि कम-से-कम उन्होंने इन लोगोंको जो शरणार्थी हैं, हटानेकी कभी कल्पना न की थी। श्री चेम्बरलेनने गत जनवरीमें शिष्टमण्डलको जो वचन दिया था उसका आशय भी यही है। ब्रिटिश भारतीयोंके सामान्य दर्जेके प्रश्नके अतिरिक्त मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि उपनिवेश-कार्यालय और भारत-कार्यालय पर्याप्त ध्यान दें तो इन गरीब लोगोंको न्याय मिलनेकी पूरी संभावना है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२५८) से।

१ देखिए “ट्रान्सवाल” नवम्बर १४, १९०३।

४५. पत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरके सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जनवरी २८, १९०३

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

महोदय

ब्रिटिश भारतीयोंके पासके व्यापारिक परवानोंसे सम्बन्धित मेरे तारीख १४ के पत्रके उत्तरमें आपका तारीख २४ का पत्र क्रमांक ९७/२ मिला।

जोहानिसबर्गमें परमश्रेष्ठसे ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधिमण्डलकी भेंटकी तारीखके बारेमें अबतक उपनिवेश-सचिवकी ओरसे उस प्रसंगसे सम्बन्धित कोई पत्र नहीं आया है।

परमश्रेष्ठने प्रतिनिधिमण्डलसे कृपापूर्वक ऐसा कहा था कि इस मामले पर किसी पासकी तारीखपर कार्यकारिणी परिषदकी बैठकमें विचार किया जायेगा और तब उसका उत्तर भेजा जायेगा।

जानना चाहता हूँ कि क्या उसका उक्त उत्तर मिलेगा?

आपका आज्ञाकारी सेवक
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइब्ज़ एल० जी० ९७/२ एशियाटिक्स १९०२–१९०६।

४६. इंग्लैंड और रूस

एक तुलना

श्री स्काइनने ७ जुलाई, १९ ३ को इम्पीरियल इन्स्टिट्यूटमें "इंग्लैंड और रूस द्वारा एशियाइयोंपर शासन" विषयपर एक मनोरंजक भाषण दिया था जिसे ईस्ट ऐंड वेस्टने अपने अक्तूबरके अंकमें छापा है। इस विषयमें हम दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंको बौद्धिक ही नहीं बल्कि उससे कुछ अधिक दिलचस्पी है। अनन्त एशिया और उसकी हजारों जातियोंपर, जिनमें बहुत-सी बातोंमें जमीन-आसमानका अन्तर होते हुए भी कुछ ऐसी समानता है जिसकी व्याख्या नहीं हो सकती, इन दोनोंमें से किसी एकके शासनकी सफलता या असफलताके बारेमें अन्तिम निर्णय देना राष्ट्रोंके इतिहासमें अभी बहुत जल्दी करना होगा। वक्ताने कहा था

> रूसी सम्राट् — जार — के कई करोड़ बौद्ध और मूर्ति-पूजक प्रजाजन हैं और २ ७ ० हिन्दू भारत-सम्राट्की सत्ता स्वीकार करते हैं किन्तु पूर्वमें केवल इस्लाम इन दोनोंके अधिकारियोंके सम्मुख एक जैसी समस्याएँ प्रस्तुत करता है। ब्रिटिश भारतमें नबीके कमसे-कम ५,१८,४ अनुयायी हैं। सन् १८९७ की जनगणनाके अनुसार, रूसके महान् श्वेत सम्राट्के शासनाधीन मुसलमानोंकी संख्या १,८७ ७,० ० है। इसके विपरीत, मैं कह दूँ कि, तुर्कीमें खलीफाके प्रजाजन, जो उनका धर्म मानते हैं १,८५, ० से कम हैं।

इस प्रकार यह प्रत्यक्ष है कि श्री स्काइनने अपनी तुलनाकी सुनिश्चित मर्यादाएँ बना दी हैं इसलिए यद्यपि उनके भाषणका व्यापक अर्थ लगानेकी गुंजाइश नहीं है, फिर भी वह पठनीय है। भारतीय शासनको कहीं "उदार निरंकुशता" का नाम दिया गया है। यद्यपि इन शब्दोंमें परस्पर विरोधाभास है किन्तु कदाचित् वे भारतमें अंग्रेजी राजकी अवस्थाको बहुत कुछ यथार्थ रूपमें व्यक्त करते हैं। जबतक अंग्रेजी राजकी प्रभुतामें हस्तक्षेप नहीं होता तबतक भारतके लोगोंके प्राचीन कालसे चले आते हुए रीति-रिवाजोंका लिहाज किया जाता है और उन्हें अछूता रहने दिया जाता है। उनको अपने देशके मामलोंमें न्यूनाधिक भोंडे तरीकेका स्वशासन प्राप्त है। सन् १८५७ की ऐतिहासिक घोषणा और उसके बाद एकके बाद दूसरे वाइसरायोंकी घोषणाएँ बताती हैं कि उनके पीछे जाति रंग और धर्मके सब भेदभावोंको समाप्त करने और साम्राज्यके समस्त प्रजाजनोंको समान अधिकार देनेका इरादा है। इसलिए यदि स्वयं भारतमें इन घोषणाओंपर पूरा अमल नहीं हो पाता तो इसका कारण यह नहीं कि अधिकारी उन्हें पूरा करना नहीं चाहते बल्कि यह है कि व्यवहारमें ब्रिटिश शासनकी सर्वोच्चताके सम्बन्धमें अनुचित भय या शासितोंके सम्बन्धमें अनिश्चित सन्देह उनके हाथ रोकते हैं। इसलिए अस्थायी रुकावटोंके बावजूद यह आशा करनेके लिए पर्याप्त आधार है कि ज्यों-ज्यों लोगोंकी स्वाभाविक राजभक्तिकी परीक्षाके अवसर आते जायेंगे त्यों-त्यों सन्देह या भय धीरे-धीरे विलुप्त होते जायेंगे और उनका स्थान विश्वास लेता जायेगा। दक्षिण आफ्रिकाकी अभी हालकी लड़ाई और चीनके अभियानने भारतीय सामन्तोंके ऊपर आश्चर्यजनक प्रभाव डाला है और भारतीय दृष्टिकोणसे

१. अगस्त १८९८ के स्वाप पृष्ठसे लिखित।

उनके द्वारा अप्रत्यक्ष रूपमें बहुत हित हुआ है। किन्तु श्री रुथमाइनने जिस मुख्य बातपर जोर दिया है वह राजनीतिककी अपेक्षा धार्मिक है। उनका तर्क यह है कि लाखों-करोड़ों मानवोंसे व्यवहार करते समय धर्मोंकी जो सहिष्णुता इतनी आवश्यक प्रतीत होती है वह शासकोंमें दिखाई नहीं पड़ती। वे कहते हैं

> ईसाइयों और मुसलमानोंके भौतिक संघर्षसे उत्पन्न तीव्र शत्रुताके कारण हम प्रतिस्पर्धी धर्मके प्रति थोड़े अन्यायी हो गये हैं। स्पेनमें मूरोंके शासनकी यश-गाथाओंसे यह असंदिग्ध रूपसे सिद्ध हो जाता है कि इस्लामके सिद्धान्त बौद्धिक और भौतिक उन्नतिके विरोधी नहीं हैं। वस्तुतः इस्लाममें कई बातें ऐसी हैं जो हमें उसका आदर करनेके लिए विवश करती हैं। उसके एकेश्वरवाद और सब मानव प्राणियोंके भ्रातृत्वके आदर्श केवल कल्पनाशील और विचारशील लोगोंमें विकसित हो सकते थे। वे मानवको पतित करनेवाले उस भौतिकवाद और विवेकहीन धन-पिपासाके विरुद्ध शक्तिशाली प्रतिरोधक हैं, जो पश्चिमी यूरोप और अमेरिकामें आज सभ्यताके स्वरूपको नष्ट करनेका भय पैदा कर रहे हैं।

इस उत्कृष्ट साक्षीमें हम पश्चिममें उमरखय्यामकी रचनाओंको प्राप्त अनुपम सफलताकी बात और जोड़ सकते हैं। जब हम यह लिख रहे हैं तब नबीके लाखों करोड़ों अनुयायी कठिनाइयों और कष्टोंके बावजूद स्वेच्छासे पूरे एक मासके रोजे रख रहे होंगे। जो लोक-समुदाय किसी भौतिक या प्रत्यक्ष लाभकी खातिर नहीं बल्कि बहुत ही अप्रत्यक्ष और विशुद्ध आध्यात्मिक लाभकी खातिर ऐसी कठिनाइयाँ सहन कर सकता है उसके धर्ममें कोई ऐसी बात जरूर होगी जो प्रशंसनीय है और उससे ऐसा करा सकती है। ब्रिटिश शासनके काम गिनानेके बाद भी रुथमाइन आगे कहते हैं

> सत्य मुझे इन पंक्तियोंमें विश्लेषणके लिए विवश करता है, जिससे पूर्वमें ब्रिटिश साम्राज्यका यह आश्चर्यजनक विकास फीका पड़ जाता है। कुल मिलाकर हमारा शासन कदाचित् संसारमें सर्वोत्तम और सबसे अधिक सच्चा है; किन्तु वह निष्ठुर और फीका है। उससे अलौकिक समुन्दरी-दूकानकी गंध आती है। वह भारतीयोंकी सराहक प्रवृत्तिके, जो उनके स्वभावका एक प्रमुख अंग है, अनुकूल पड़ता है; किन्तु उनके हृदयको स्पर्श नहीं करता। इसमें दोष कुछ हमारा भी है। हमारी जातिमें कल्पनाशीलताकी कमी है; इसीलिए हम मानसिक दृष्टिसे अपने-आपको दूसरे लोगोंकी स्थितिमें रखने या उनके मनसे यह मान सकनेमें असमर्थ हैं कि, हम स्वभावतः जो रुख इख्तियार करते हैं यदि वही रुख वे इख्तियार करें तब हम उसे कैसा समझेंगे। यदि अंग्रेजोंको सहानुभूतिके दिव्य गुणका अपना हिस्सा इससे ज्यादा मिला होता तो दक्षिण आफ्रिकी युद्ध ही न हुआ होता, हमारे साधन यों कुचले न गये होते और हमारा ध्यान अधिक महत्त्वपूर्ण बातोंकी ओरसे न हटा होता।

हमारे पाठक तुरन्त समझ जायेंगे कि पिछले दो वाक्य दक्षिण आफ्रिकापर बहुत ज्यादा लागू होते हैं। यदि गोरे उपनिवेशी अपने-आपको कानूनन निर्योग्य बनाये गये ब्रिटिश भारतीयोंके स्थानमें रखकर बात सोचें तो उन्हें तुरन्त पता चल जाता कि ये निर्योग्यताएँ कितनी अनुचित हैं। श्री रुथमाइनने इसी आधारपर निम्नलिखित चित्र खींचा है

जब ब्रिटेनमें पन्द्रहवीं शताब्दीमें लंकास्टर और यॉर्क-वंशीय युद्ध (वार्स ऑफ रोजेज) समाप्त हुआ तब रूसके कतिपय जनशासित राज्य मास्कोके ग्रैंड ड्यूककी अधीनतामें संगठित थे। जारशाही एक पूर्ण तथ्य थी और ग्रीक धर्मने उन शक्तियोंको मुक्त कर दिया था जो इस्लामकी पतनोन्मुख क्रूरतासे भी बढ़ गई थीं। इस प्रकार रूसने तातारी जुआ उतार फेंका था और देशोंको जीतने और अपना संघ बनानेका अभियान आरम्भ कर दिया था। नैपोलियन प्रायः कहा करता था "रूसीको खुरचो तो तुम्हें तातार मिलेगा"। यद्यपि उसका यह कथन तथ्यके ठीक विपरीत था फिर भी रूसी लोगोंमें अब भी एक असंदिग्ध मंगोल स्वभाव दिखाई देता है। रिश्तेकी आन्तरिक भावनाने एशियामें उनका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। उनमें जातीय अभिमान नहीं है; अतः वे अपने साथी पूर्वी प्रजाजनोंसे समानताके आधारपर मिलते हैं। समरकन्दमें मैंने मुसलमान जिला-अधिकारीके साथ भोजन किया और सामाजिक सम्पर्ककी दृष्टिसे मैं उसके स्त्री-बच्चोंसे मिला। किन्तु इसके विपरीत अंग्रेज पूर्वी जातियोंको अपनेसे हीन समझा करते हैं। उनके इस रुखके कारण वे शक्तियाँ उनके विरुद्ध हो जायेंगी, जो यदि संगठित होतीं तो भारतमें राजनीतिक क्रान्ति कर देतीं।

हम इस पत्रसे और भी उद्धरण दे सकते हैं किन्तु हमारा उद्देश्य पाठककी भूखको उत्तेजित करना और उसे मूल भाषण पढ़नेके लिए तैयार करना है। किन्तु हम वक्ता महोदयके अन्तिम शब्दोंके साथ जिनमें उन्होंने तुलना करनेका प्रयत्न किया है, इस लेखको समाप्त करते हैं। वे कहते हैं

> पूर्वी लोगोंपर शासन करनेकी अंग्रेजी और रूसी विधियोंकी तुलना करना कठिन है। जारके अधिकारियोंको विशाल दूरियों और अस्वास्थ्यवर्धक जलवायुसे संघर्ष करना पड़ता है क्योंकि वहाँ सिंचाईका पानी जमीनके भीतर न सोखनेसे मलेरिया बहुत फैलता है। किन्तु भारतमें शासकोंकी सबसे बड़ी कठिनाई घनी आबादी और तज्जनित जीवन-संघर्षकी उग्रता है। इस प्रकार ब्रिटिश भारतमें एक भारी स्नातक वर्ग पैदा हो गया है, जिसकी समता अन्य एशियामें नहीं मिलती। सन् १८९७ में तुर्किस्तानमें ११४२ निवासी फ्रांससे लगभग दुगुने क्षेत्रमें रहते थे और ट्रान्सकास्पियामें ब्रिटेनसे तिगुनेसे कुछ ज्यादा बड़े देशमें केवल ८,११ लोग फैले हुए थे। इसके अतिरिक्त उनकी सुख-सुविधाका स्तर भी ऊँचा है। दुष्काल जहाँके लोग जानते भी नहीं और ये प्रदेश पृथक होनेसे हैजे और प्लेगसे भी लगभग सुरक्षित हैं। मौकेपर जाकर रूसी तरीकोंका अध्ययन करनेवाले भारतीय अधिकारीकी हैसियतसे मेरा विश्वास है कि दोनोंमें से प्रत्येक शक्ति अपने पूर्वी प्रजाजनोंका सामाजिक और राजनीतिक स्तर ऊँचा उठानेकी सचाईके साथ आकांक्षा रखती है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९–११–१ ३

४७ "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस" और हम

ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें हमारे विचारोंकी तरफ हमारा सहयोगी बराबर ध्यान देता रहता है। इसे हम अपना सम्मान ही समझते हैं। हम यह भी मानते हैं कि भारतीयोंकी बहुत-सी कठिनाइयोंकी जड़में गलतफहमियाँ हैं और समयके साथ विचार-विनिमयसे गलतफहमियाँ दूर भी हो सकती हैं। इसलिए हमारे सहयोगीने गत १४ तारीखके अंकमें जो लिखा है उसका जवाब देते हुए हम उस प्रश्नपर फिर वापस आते हैं। सहयोगीने लिखा है कि पीटर्सबर्ग शहरमें लड़ाईसे पहलेकी अपेक्षा भारतीय परवानेदारोंकी संख्या अब कुछ बढ़ गई है। हम इसे स्वीकार करते हैं परन्तु जहाँतक स्पेलोनकेन जिलेसे सम्बन्ध है हम अत्यन्त निश्चयपूर्वक कहते हैं कि वहाँ परवानोंकी संख्यामें बहुत ही कम वृद्धि हुई है। इस जिलेमें जो भी भारतीय दूकानदार इस समय व्यापार कर रहे हैं वे अपनी अपनी जगहोंमें दस-दस बल्कि इससे भी अधिक वर्षोंसे व्यवसाय करते हैं। सहयोगीको हम यह भी बता दें कि उन्हें अपने परवानोंको नये करवानेके लिए बहुत अधिक जद्दोजहद करनी पड़ी है। परन्तु ये तो इक्के-दुक्के मामले हैं और व्यापक रूपसे फैली हुई बीमारीके लक्षण-मात्र हैं। स्टारके इन शब्दोंमें सारा मर्म आ जाता है

> साफ-साफ बात कहना अच्छा होता है, इसलिए हम स्वीकार करते हैं कि जहाँतक हो सके तो ट्रान्सवाल अपनी सीमाके अन्दर स्वतन्त्र एशियाइयोंको नहीं चाहता। उसका कारण जैसा कि कुछ हलकोंमें खयाल मालूम होता है यह नहीं है कि हम गोरे लोग भारतीयोंको हीन मानते हैं; बल्कि यह है कि कानून-सम्मत शर्तोंपर गोरोंके लिए उनके सम्मुख होड़में टिकना असम्भव है। व्यापारियोंकी हैसियतसे नेटालमें सारे व्यापारपर उनका तेजीसे एकाधिपत्य होता जा रहा है। वे कुशल व्यापारी तो हैं ही; परन्तु इसके साथ अत्यन्त मितव्ययी भी हैं। इस कारण अपने तमाम प्रतिस्पर्धियोंके मुकाबलेमें वे हर चीज कम कीमतमें बेच सकते हैं। अगर कहीं उनके पैर यहाँ जम गये तो यहाँ भी यही हाल होगा। इसीलिए हम ईस्ट रैंडवासी लोग एशियाइयोंको व्यापारिक या सामाजिक दर्जा देनेके इतने विरोधी हैं। हमें तो सिर्फ एक प्रकारके एशियाईकी जरूरत है और वह है अनुबद्ध गिरमिटिया मजदूर। आत्मरक्षा प्रकृतिका पहला कानून है। उसका तकाजा है कि यहाँ अन्य सभी लोग वंचित निवासी हों, भले ही यह कठोरता दिखाई दे। जिन लोगोंके अधिकार निहित हुए हैं उनके अधिकारोंकी यथासम्भव रक्षा की जाती रहेगी परन्तु नई रियायतें तो बन्द होनी ही चाहिए।

भारतीयोंके प्रति उपनिवेशमें जो दुर्भाव है उसका असली कारण इसमें आ जाता है। इसके बचावमें बहुत कुछ कहा जा सकता है परन्तु उसे हम थोड़े-से-थोड़े शब्दोंमें कहनेकी कोशिश करेंगे। ऊपरके कथनमें नेटालका उदाहरण दिया गया है परन्तु अगर जरा भी गहराईसे उसकी जाँच की जायेगी तो उससे यह प्रकट हो जायेगा कि इससे तो उल्टी ही बात सिद्ध होती है। नेटालमें भारतीय व्यापारी बड़ी संख्यामें जरूर हैं परन्तु व्यापारका सर्वोत्तम भाग तो यूरोपीयोंके ही हाथोंमें है और आगे भी रहेगा। भारतीय व्यापारी जहाँ अपने गुजर-बसरके लिए नेटालमें अच्छी कमाई कर सके हैं वहाँ उनमें से एकको भी अभी वह दर्जा प्राप्त नहीं हो सका

है, जो हारवे ग्रीनेकर ऐंड कम्पनी — अथवा एस. बूचर ऐंड सन्सको अथवा अन्य बड़े व्यापारी संस्थानोंको प्राप्त है, यद्यपि कुछ भारतीय व्यापारियोंने भी अपने व्यापारका प्रारम्भ उन्हीं दिनों किया था जिन दिनों इन पेढ़ियोंने। वस्तुतः हम खुद एक भारतीय व्यापारीका उदाहरण जानते हैं जो अपने साथ पूँजी लेकर आया था। यहाँ उसने एक अल्पवयस्क यूरोपीयको अपना साझीदार बना लिया। दोनों गहरे दोस्त बन गये और आज भी दोनोंके आपसी सम्बन्ध बहुत सन्तोषजनक हैं। फिर भी व्यापार शुरू करते समय जिस यूरोपीयके पास अपनी पूँजी भी नहीं थी वह दौड़में अपने पुराने साझीको बहुत पीछे छोड़ गया है और अब उपनिवेशमें उसकी स्थिति प्रथम श्रेणीकी है। किन्तु इस घटनाकी व्याख्या बिलकुल स्पष्ट है। भारतीय व्यापारीकी आदतें यूरोपीयके मुकाबले कम खर्चीली हैं परन्तु उसमें यूरोपीय व्यापारीकी संगठनशक्ति अंग्रेजी भाषाकी जानकारी और उसके यूरोपीय सम्बन्धोंसे प्राप्त व्यापारिक लाभकी कमी सहज है। हमारी रायमें भारतीय व्यापारीकी तरह किफायतशारी न होनेकी कमी यूरोपीय व्यापारी इन गुणोंसे पूरी ही नहीं कर लेता बल्कि उसको इनका और भी अधिक लाभ मिलता है। खुद भारतमें बड़े-बड़े भारतीय व्यापारी संस्थान हैं परन्तु वहाँ बड़ी-बड़ी यूरोपीय पेढ़ियाँ इन गुणोंसे ही उनका मुकाबला कर रही हैं। आज भी सबसे अधिक कमाई देनेवाले व्यापार ज्यादातर यूरोपीयोंके ही हाथोंमें हैं यद्यपि भारतीयोंकी योग्यता तथा साहसिकताको वहाँ पूरा-पूरा अवकाश प्राप्त है। इसलिए, चाहे दक्षिण आफ्रिका हो या अन्य कोई देश भारतीय व्यापारियोंने तो मध्यस्थ या आढ़तियोंका ही काम किया है। हम यह स्वीकार करनेके लिए स्वतन्त्र हैं कि अपवाद रूपमें वे छोटे यूरोपीय दूकानदारोंके मुकाबलेमें कहीं-कहीं सफलता प्राप्त कर सके हैं परन्तु यहाँ भी जैसा कि सर जेम्स हल्मेटने कहा है कुल मिलाकर यूरोपीय व्यापारी ही नफेमें रहते हैं क्योंकि दूसरे क्षेत्रोंमें उनकी साहसिकताके लिए खूब अवकाश रहता है। यदि भारतीय नेटालमें न आये होते तो जो यूरोपीय व्यापारी काफिरोंके बीच व्यापार करनेवाले छोटे-छोटे दूकानदार बने रहते वे ही आज या तो थोकके बड़े व्यापारी हैं जिनके मातहत पचासों आदमी काम कर रहे हैं या खुद ऐसे थोक व्यापारके संस्थानोंमें लगे हुए हैं। आज यहाँ उनकी अपनी करमुक्त जायदादें हैं, और वे बेरिया [डर्बनमें धनीमानी और शौकीन लोगोंके मुहल्ले] में अपेक्षाकृत सुख चैनकी जिन्दगी बिता रहे हैं। इसलिए हमारा खयाल तो यह है कि भारतीयोंकी सादगी और किफायतशारीका जरूरतसे ज्यादा तूल बाँधा गया है। परन्तु क्या इस विषयमें साम्राज्यकी दृष्टिसे कुछ भी कहनेको नहीं रह जाता? भलेके लिए हो या बुरेके और भारतीय कितने ही छोटे क्यों न हों परन्तु वे आखिर साम्राज्यके हिस्सेदार तो हैं ही। ऐसी सूरतमें उनकी योग्यता या मिहनत उन्हें जितनेका अधिकारी ठहराये उतना मुनासिब हिस्सा क्या उन्हें देनेसे इनकार करना उचित है? हमारा सहयोगी चाहता है कि ट्रान्सवालमें भारतीय केवल गिरमिटिया मजदूरोंकी हैसियतसे ही आयें उससे ज्यादा अन्य किसी हैसियतसे नहीं। आत्मरक्षा अवश्य प्राकृतिक पहला कानून हो सकता है परन्तु हम नहीं मानते कि प्रकृति किसीको यह भी सिखाती है कि जिसकी सहायतासे वह ऊपर चढ़ा हो उसकी हस्तीको ही मिटा दे। शुद्ध स्वार्थकी दृष्टिसे यह सम्भव हो सकता है कि आप एक सम्पूर्ण प्रजातिके लिए उपनिवेशके दरवाजे बन्द कर दें। परन्तु प्रकृतिके किसी भी कानूनके साथ इस व्यवहारका मेल बैठाना बहुत मुश्किल मालूम होता है कि एक आदमीका दूसरेके स्वार्थके लिए उपयोग कर लिया जाये और जब उसकी जरूरत समाप्त हो जाये तब उस गरीबको ठोकर मारकर हटा दिया जाय। परन्तु दक्षिण आफ्रिकाका वर्तमान संघर्ष उन लोगोंके अधिकारोंकी पूरी रक्षाके लिए है जो दक्षिण आफ्रिकामें पहलेसे ही बस हुए हैं। इस बातको हमारा सहयोगी स्वीकार करता है परन्तु

साथ ही "यथासम्भव" जैसा सुरक्षित तथा संदिग्ध शब्द जोड़ देता है, पर यह तो इस बातपर निर्भर करेगा कि इस प्रश्नको किस दृष्टिसे देखा जाता है और यह "यथासम्भव" शब्द भारतीय समाजकी उचित आवश्यकताओंकी पूर्ति की हदतक जाता है या नहीं। हमारा खयाल है पत्रकारकी हैसियतसे हमारी भाँति हमारे सहयोगीका भी कर्तव्य है कि हम लोकमतको इस तरह शिक्षित करें, जिससे इस कठिनाईको पार करनेका उत्तम मार्ग निकल सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६–११–१९ १

४८. श्री क्रेसवेलका बमगोला

श्री क्रेसवेल अभी कुछ पहलेतक विलेज मेन रीफ गोल्ड माइनिंग कम्पनी लिमिटेड के प्रबन्धक थे जिससे उन्होंने अब इस्तीफा दे दिया है और वह मंजूर कर लिया गया है। उन्होंने अपना इस्तीफा देते हुए कम्पनीके सेक्रेटरी श्री विलसोको जो लम्बा पत्र लिखा था वह जोहानिसबर्गके पत्रोंमें भी प्रकाशनार्थ भेजा है। जोहानिसबर्गमें अवनी श्रम-आयोगके सामने अपना चौंका देनेवाला बयान देते हुए उन्होंने जो बवाल पैदा किया था उसीकी पुष्टि इस लम्बे पत्रसे होती है। इस बयानमें उन्होंने अत्यन्त निश्चयात्मक रूपसे बताया था कि उस बड़े खान-निगमकी आशाकी खुराकके लिए गिरमिटिया एशियाई मजदूर लानेका प्रयत्न आर्थिक आवश्यकताकी अपेक्षा एक राजनीतिक चाल अधिक है। पाठकोंको याद होगा कि उस समय श्री क्रेसवेलने अपने कथनकी पुष्टिमें अपने नाम लिखा गया श्री टारबटका एक पत्र पेश किया था जिसमें बताया गया था कि इन दिनों गोरे मजदूरोंसे काम लेनेका जो प्रयोग चल रहा है उसे अधिकांश खान-कम्पनियाँ पसन्द नहीं करतीं। यह पत्र पेश करनेके कारण ही श्री क्रेसवेलसे जवाब तलब किया गया था। श्री विलसो लिखते हैं "आपके द्वारा श्री टारबटके २१ जुलाई १९ २ के व्यक्तिगत पत्रका प्रकाशन संचालकोंकी दृष्टिमें असह्य है। श्री क्रेसवेलके लिए यह सम्भव न था कि वे यह डंक सहकर चुप बैठ जाते। कम्पनीको लिखा वह लम्बा पत्र उसीका परिणाम था। श्री क्रेसवेलके प्रति किसीको भी सहानुभूति हुए बगैर नहीं रह सकती। बड़ी कठिनाइयाँ सहकर भी उन्होंने अपनी खानोंपर गोरे मजदूरोंसे काम लेनेका प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। वे इसे पूरे दिलसे पसन्द भी करते थे परन्तु वे वस्तुतः अकेले पड़ गये। अधिक उत्पादन और अधिक मुनाफेकी जोरदार माँग पूरी करनेमें वे पिछड़ गये। जैसा कि हम इन स्तम्भोंमें पहले अनेक बार लिख चुके हैं हम तो यही कह सकते हैं कि इस विषयमें श्री क्रेसवेलने जो रुख ग्रहण किया है आनेवाली पुश्तोंका लाभ उसीमें है। समय ही बताएगा कि उपनिवेशमें खान-उद्योगके तथाकथित विकासके लिए अगर एशियासे कभी गिरमिटिया मजदूर लाये गये तो वह एक गलत कदम होगा जिससे आनेवाली पुश्तें दुःखी होंगी और इस योजनाके बनानेवालोंकी बेहिसाब निन्दा करेंगी। श्री क्रेसवेलका त्यागपत्र तो एक छोटी और व्यक्तिगत बात है। इससे उन्हें आर्थिक कष्ट हो सकता है या शायद न भी हो। परन्तु बहुधा उनके इस जानेसे सुधारकोंका काम और भी कठिन हो जाता है। इस दृष्टिसे उनके इस जानेसे उन लोगोंकी बड़ी हानि हुई है, जो न केवल वर्तमान पीढ़ीके कल्याणके लिए चिन्तित हैं बल्कि भावी पीढ़ियोंके हितोंका भी उतना ही खयाल रखते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६–११–१ १

४९. क्लार्क्सडार्पका एशियाई "बाजार"

कुछ दिन पहले हमने क्लार्क्सडॉर्पकी एशियाई बस्तीके बारेमें लिखा था। उसके जवाबमें हमारे सहयोगी *क्लार्क्सडॉर्प मार्निंग रेकर्ड*ने जो बहुत ही संयत लेख लिखा है उसे हम हर्षके साथ अन्यत्र दे रहे हैं। इसमें निकायका यह आश्वासन है कि क्लार्क्सडॉर्पके ब्रिटिश भारतीयोंके साथ असमानता और अन्यायका व्यवहार करनेकी उसकी इच्छा नहीं है। हम उसके लिए निकायके कृतज्ञ हैं। परन्तु हम यह कहनेकी अनुमति चाहते हैं कि सहयोगीने अपने लेखमें कुछ बातें खुद स्वीकार की हैं जिनसे प्रकट है कि क्लार्क्सडॉर्पके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति कितनी कठिन है और प्रस्तावित नये स्थानके बारेमें उनका मन्तव्य कितना उचित है। यह भी साफ तौरपर स्वीकार किया गया है कि प्रस्तावित स्थानके कमसे-कम कुछ हिस्सेको तो जिला-सर्जनके प्रतिवेदनमें भी बुरा बताया गया है। उस आपत्तिका यह कोई जवाब नहीं कि सारे स्थानकी एक साथ जरूरत नहीं होगी। अगर उसकी जरूरत नहीं है तो वह नक्शेमें शामिल ही क्यों किया गया था? अगर आवासी मजिस्ट्रेट ही कुछ नीची भूमिवाले बाड़े अर्जदारोंको दे देते तो उन्हें कौन रोकनेवाला था? सरकारने तो इन बाड़ोंके बँटवारेके सम्बन्धमें बहुत अधिक सत्ता अपने हाथोंमें रख छोड़ी है। वह आग्रह कर सकती थी कि सबसे पहले निचले हिस्सोंको ही निपटायेगी। अब भी हमारा खयाल यही है कि निकायके लिए ऐसा स्व अख्तियार करना और यह कहना ठीक नहीं कि एक बार स्थानका निश्चय हो जानेके बाद उसके हाथोंमें कुछ नहीं रह जाता। आखिर स्थानोंका चुनाव करनेमें उसका भी तो हाथ था ही। इसलिए हमें यह खयाल अवश्य होता है कि अगर जिला-सर्जनके प्रतिवेदनको पानेके बाद वह निचले हिस्सोंको *बाजारकी* जमीनमें शामिल करनेका विरोध करता तो यह उसके लिए बहुत सम्मानजनक होता। सहयोगी आगे लिखता है:

> चिह्नित स्थान शहरमें उपलब्ध एकमात्र स्थान है। अब केवल तीस बाड़े बचे हैं जिनको अभी कब्जेमें नहीं लिया गया है; परन्तु किसी भी हालतमें एशियाई बस्तीके तौरपर उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। वर्तमान बस्तीके पास शहरके उत्तर और पश्चिममें कुछ बाड़े जोड़े जा सकते थे; किन्तु उनसे लगे हुए बाड़ोंके मालिक स्वभावतः इस कार्रवाईका विरोध करेंगे।

अब यह स्पष्ट रूपसे लाचारीकी स्वीकृति है और साथ ही इस बातकी भी कि निश्चित किया गया स्थान शहरसे बड़ी दूरीपर है। ब्रिटिश भारतीयोंके लिए कोई स्थायी स्थान निश्चित करनेके सिद्धान्तको थोड़ी देरके लिए अगर अलग रख दिया जाये तो हमारा खयाल है कि अगर निकाय कोई ऐसा उपयुक्त स्थान प्राप्त नहीं कर सकता जहाँ ब्रिटिश भारतीय उतनी ही सुविधासे व्यापार कर सकें जितनी सुविधासे वे शहरमें अबतक कर रहे थे तो वह उनको जहाँ जमी वे हैं वहीं पड़े रहने दे। परन्तु एक बार उन्हें अलग रखनेका सिद्धान्त स्वीकार कर लेनेके बाद अपने पड़ोसमें ब्रिटिश भारतीयोंको रखनेपर आपत्ति करनेवाले लोग मिल ही जाया करेंगे। तब क्या शहरी निकाय इसी तरह अपनी लाचारी बताकर ब्रिटिश भारतीयोंको शहरोंसे इतनी दूर फेंक देना चाहते हैं जहाँ व्यापार करना उनके लिए असम्भव हो जाये? अंग्रेज स्वभावतः निहित स्वार्थोंको छेड़ना पसन्द नहीं करते और अपने विरोधीके साथ भी न्यायका व्यवहार

करना चाहते हैं। परन्तु ब्रिटिश भारतीय तो विरोधी भी नहीं हैं। वे तो सह-प्रजाजन हैं। इसलिए हमारी राय है कि जहाँपर उन्होंने अपना व्यापार-व्यवसाय जमा लिया है वहाँसे उन्हें हटाकर, उनकी भलाईका विचार न करके एक रेगिस्तान जैसी निर्जन जगहपर फेंक देना किसी भी प्रकार न तो उचित है और न न्यायमुक्त। बस सारे प्रश्नका मर्म यही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६-११-१९ १

५० भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेससे विनती

हमें जो पत्र मिले हैं उनसे मालूम होता है कि आगामी दिसम्बर महीनेमें मद्रासमें होनेवाली कांग्रेस ब्रिटिश उपनिवेशोंमें बसे हुए भारतीयोंकी स्थितिपर विचार करेगी। इस खबरसे हमें धीरज बाँधना चाहिए और देखना चाहिए कि वहाँ क्या होता है। उपनिवेशोंमें भारतीयोंको होनेवाली तकलीफोंके बारेमें भारतीय कांग्रेस पिछले पाँच-छः सालसे आवाज उठा रही है और छुटकारा मिले इस हेतु उसने प्रस्ताव[1] भी पास किये हैं जिससे सरकारका और लोगोंका ध्यान इस ओर जाये। इसके लिए उपनिवेशोंमें रहनेवाले भारतीय इस संस्थाका उपकार मानते हैं और आशा करते हैं कि वह चिन्तापूर्वक इस विषयमें अपने विचार प्रकट करती रहेगी ताकि परिणाम अच्छा निकले।

यह साल उपनिवेशोंमें रहनेवाले भारतीयोंके लिए बहुत महत्त्वका है। आस्ट्रेलियाके लेकर सम्बन्धी व्यवहारसे भारतकी जनताकी आँखें बहुत खुली हैं। इस देश (दक्षिण आफ्रिका) में भी हर तरफसे खुल्लमखुल्ला जुल्म बढ़ने लगा है। केपमें जो प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम (इमिग्रेशन रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट) बना उसपर बंगालके व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कामर्स) ने वाजिब कदम उठाकर सरकारका ध्यान खींचा है। केप टाउन जोहानिसबर्ग और डर्बनमें भारतीयोंकी जो बड़ी सभाएँ हुई उनके विवरणसे भारतकी जनता परिचित है लेकिन ऐसा मालूम होता है कि सरकार किसी उलझनमें पड़ी है और उसके कारण लॉर्ड मिलनर हैं। लॉर्ड मिलनरने श्री चेम्बरलेनको जो खरीता भेजा है उसका असर हमारे खिलाफ बहुत हुआ है — अर्थात् जान पड़ता है कि लॉर्ड मिलनरकी सद्भावनाके कारण भारत-सरकारका कुछ ऐसा खयाल बन गया है कि कानूनोंका अमल नरमीके साथ होता होगा और भले आदमियोंको कुछ भी तकलीफ नहीं होती होगी। यह मान्यता कितना गलत है सो तो हम हमेशा बताते रहे हैं।

१८९७ में नेटालमें विधान बननेके बाद उससे होनेवाली परेशानियोंकी चर्चा १९ २ तक चलती रही थी। लेकिन केप उपनिवेशमें नया प्रवासी प्रतिबन्धक कानून बना ट्रान्सवालमें बाजार-सम्बन्धी सूचना निकली ऑरेंज रिवर कालोनी आँख मूँदकर अत्याचारपूर्ण कानून बनाती ही चली जा रही है नेटालमें नगरपालिकाओंने ट्रान्सवाल जैसे कानून शुरू करनेकी माँग की है और सरकारने गिरमिटिया मजदूरोंके बारेमें नया कानून पास किया है, इसलिए स्थितिकी गम्भीरता बहुत बढ़ गई है जिसकी ओर हम भारतके अपने भाइयोंका ध्यान खास तौरपर खींचते हैं। अगर भारतकी सरकार एकदम जाग्रत होकर कड़े कदम नहीं उठायेगी तो हमें डर लगता है कि नया साल शुरू होते ही यहाँकी भारतीय जनतामें हाहाकार मच जायेगा। यहाँतक संभावना

1. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४७४ और खण्ड ३, पृष्ठ २५८-६२।
2. देखिए परिशिष्ट।

है कि न जाने कितने लोग जो १९०३ के दिसम्बरतक अच्छे व्यापारी माने जाते रहे हैं, १९०४ के जनवरी महीनेमें दिवालिया अथवा भिखारी बन जायेंगे। आशंका यह भी है कि ट्रान्सवालमें और उसी तरह नेटालमें भी १९०४ के जनवरी महीनेमें थोड़े-बहुत व्यापारियोंको भी व्यापार करनेके सामान्य परवाने नहीं मिलेंगे और अगर ऐसा हुआ तो जहाँ-तहाँ हाहाकार मच जायेगा। इसपरसे भारतके हमारे भाई देखेंगे कि समय बहुत नाजुक है और उसे सँभालनेकी बड़ी जरूरत है। यहाँकी पुकार विलायत या भारततक पहुँचनेमें देर लगती है और पहुँचती है तो पूरे जोरसे नहीं। इस बातको ध्यानमें रखकर यदि भारतीय कांग्रेस अपने कर्तव्यके अनुसार कड़ा विरोध करे और भारतकी सरकारके कान खोले तो आशा है कि कुछ राहत मिलेगी। कांग्रेस प्रस्ताव पास करे और फिर हरएक इलाकेके कुछ अगुआ लोग गवर्नरोंसे प्रतिनिधिमण्डलोंके रूपमें मिलें और एक प्रतिनिधिमण्डल खुद लॉर्ड कर्जनसे स्वयं मिलकर जनताकी भावना उनपर प्रकट करे, और साथ ही विनती करे कि वे तत्काल तार द्वारा ऐसा सन्देश भेजें जिससे अत्याचारोंकी रोक हो तो हमें विश्वास है कि इस देशमें बढ़ते जानेवाले अत्याचारोंकी रोक होगी और देरसे ही सही पर भारतके लोगोंको इन्साफ मिलेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २६-११-१९०३

५१. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६, कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
नवम्बर ३०, १९०३

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
वाशिंगटन हाउस
७२ एनर्ले पार्क
लंदन एस० ई० इंग्लैंड

प्रिय महोदय,

गत सप्ताह सरकारसे एक पत्र मिला था जिसमें कहा गया था कि वह विधान परिषदसे बाजार-सम्बन्धी सूचनामें इस आशयका संशोधन करनेके लिए कहेगी कि जो लोग लड़ाई आरम्भ होनेपर परवाने लेकर या परवानोंके बिना व्यापार कर रहे थे वे *बाजारों* या बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके अधिकारी होंगे। इससे कुछ राहत मिलेगी किन्तु बहुत कम। समस्त वर्तमान परवानोंके सम्बन्धमें आश्वासनसे कम किसी चीजसे न्यूनतम न्यायके उद्देश्य पूरे नहीं होंगे। इसके अतिरिक्त "लड़ाई आरम्भ होनेपर व्यापार" शब्द भी कई उलझनें पैदा करेंगे। उदाहरणके लिए, उनका क्या होगा जो १८९९ के आरम्भमें या उससे पूर्व व्यापार तो करते थे किन्तु ११ अक्तूबरको ट्रान्सवालमें न तो मौजूद थे और न व्यापार ही कर रहे थे? यद्यपि मुझे यह प्रतीत होता है कि दोनोंको एक समान ही [illegible] रखा जाना चाहिए।

वस्तुतः जिस व्यक्तिने लड़ाई आरम्भ होनेसे ठीक दो मास पूर्व व्यापार करना आरम्भ किया हो वह उनकी अपेक्षा बहुत कम अधिकारी है जो ट्रान्सवालमें या वर्षोंसे व्यापारमें लगे थे किन्तु युद्धके आरम्भ होनेपर व्यापार नहीं कर रहे थे। जैसा मैं कह चुका हूँ कि इन तथाकथित *बाजारों*में किसी भी वर्तमान परवानेदारके लिए अपना व्यापार चलाना नितान्त असम्भव है। अतः मैं यह विश्वास करता हूँ कि आप श्री लॉट्रिक या श्री लिटिलटनसे मुलाकात कर सकेंगे और इस तारके अनुसार कार्य आरम्भ कर देंगे।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२५१) से।

५२. पत्र : कांग्रेसको

[बुलावायो]
दिसम्बर ८, १९०३

सेवामें
माननीय सचिवगण
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
मद्रास

प्रिय महोदयगण,

मैं बुलवायोसे (रजिस्टर्ड) से उस बयानकी[1] जो यहाँके भारतीयोंने गत वर्ष श्री चेम्बरलेनको उनके यहाँ आनेपर दिया था और उस प्रार्थनापत्रकी[2] जो स्थानीय विधानसभाको प्रवासी-विधेयक स्वीकार करनेके विरोधमें दिया था कुछ प्रतियाँ भेजता हूँ।

बयानसे आप नेटालमें १९०२ के अन्ततक भारतीयोंपर लगाई गई निर्योग्यताओंकी उचित कल्पना कर सकेंगे। तभीसे नेटाल ट्रान्सवाल द्वारा प्रस्तुत उदाहरणके अनुकरणका प्रयत्न कर रहा है। मैं यहाँकी एक विधान सभाकी कार्रवाई[3] भी उल्लेख कर दूँ जो *इंडियन ओपिनियन*में छपी थी।

प्रवासी विधेयक हमारे विरोधके बावजूद दोनों सदनोंसे पास हो गया है और उसपर राजकीय स्वीकृति भी प्राप्त हो चुकी है।

इंडियन ओपिनियन आपको अंग्रेजीमें ताजीसे-ताजी खबरें और गुजरातीमें कुछ सुझाव भी देता है। मुझे ज्ञात हुआ है कि उसके मालिकने आपको उसके सब अंकोंकी कुछ प्रतियाँ भेजी हैं।

यदि भारत-सरकार मजबूत रुख इख्तियार नहीं करेगी और वह भी तत्काल तो मुझे भय है, दस वर्षमें दक्षिण आफ्रिकामें बहुत-से भारतीय बरबाद हो जायेंगे।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३८८।
२. वही खण्ड, पृष्ठ ३००।
३. देखिए *इंडियन ओपिनियन* ४-८-१९०३।

आशा है, आपकी कमेटी स्थितिकी गम्भीरताका अनुभव करेगी और जल्दी ही राहत प्राप्त करनेका प्रयत्न पूरे उत्साहसे करेगी।

आपका विश्वासपात्र,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४११९) से।

५३. बम्बईके लॉर्ड बिशप और भारत

अपने उपनिवेशवासी पाठकोंके लाभार्थ हम नीचे डॉक्टर मैकार्थरके उस विदाई-भाषणका कुछ अंश दे रहे हैं, जो बम्बईमें पाँच वर्षसे कुछ ऊपर बिशपके पदपर रहनेके बाद इंग्लैंडके लिए रवाना होनेसे पहले उन्होंने बम्बईके टाटा भवनमें दिया। डॉ॰ मैकार्थर भारतमें बहुत अधिक नहीं रहे। उसमें भी बीमारीके कारण उन्हें बीचमें बाहर जाना पड़ा था। किन्तु इस थोड़े समयमें भी उन्होंने यहाँके तमाम वर्गोंका प्रेम प्राप्त कर लिया था। और यद्यपि वे इंग्लिश चर्चके प्रमुख थे तथापि हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियों और उन तमाम जातियोंको जो उनके धर्मको नहीं मानतीं, अपनी तरफ आकर्षित करनेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई (यह काम किसी प्रकार आसान नहीं था)। उनकी इस असाधारण सफलताका रहस्य जैसा कि न्यायमूर्ति श्री चन्दावरकर[1] ने अपने स्वागत भाषणमें कहा था, उनकी नम्रताकी भावना है, जो उनकी प्रत्येक प्रवृत्तिको प्रेरित करती रही है। विद्वान न्यायाधीशने आगे कहा :

> इसका कारण उनकी समझमें यही था कि सबसे पहले बिशप मैकार्थरके अन्दर नम्रताका असली धार्मिक गुण प्रचुर मात्रामें है। उन्होंने इसे धार्मिक गुण बताया, परन्तु हाल ही में उन्होंने कहीं पढ़ा था कि नम्रता इस युगकी वैज्ञानिक वृत्तिका भी प्राण है। इस तरह नम्रता एक ऐसा तत्त्व है जिसे विज्ञान और धर्म दोनों गुण कहते हैं। और बिशप मैकार्थरके पास यह गुण प्रचुर मात्रामें है।

बिशप मैकार्थरने इसका जवाब देते हुए नीचे लिखे सारगर्भित शब्द कहे :

> श्री मेहताने बिशपके पदके बारेमें अपने विचार बड़ी योग्यतापूर्वक प्रभावोत्पादक भाषामें प्रकट किये हैं। मुझे लगता है कि भारतमें बिशपका स्थान या तो बहुत नगण्य और छोटा है अथवा फिर वह अनेक प्रकारसे बहुत बड़ा और भव्य है। यह बात उसके बारेमें व्यक्तिकी अपनी कल्पना और उसके प्रति रुखपर निर्भर करती है। जब मैं भारतमें आया तब मेरे मनमें बड़ी झिझक और चिन्ता थी। और इस महान पदका मैं किस प्रकार निर्वाह कर सकूँगा इसके बारेमें अपने प्रति वास्तवमें आत्मविश्वासका अभाव अनुभव कर रहा था। भारतमें बिशप बनकर आनेवाले किसी व्यक्तिके प्रति भारतीयोंका रुख क्या होगा इसका भी म अन्दाजा नहीं लगा सकता था। परन्तु भारतीयोंके रुखने मेरी सारी चिन्ताओंसे भगा दिया और मैं अनुभव करने लगा कि भारतीयोंके

[1] एन॰ जी॰ चन्दावरकर; प्रमुख शिक्षा-शास्त्री, समाजसुधारक और बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीश थे। सन् १९०० में कांग्रेसके लाहौर अधिवेशनके सभापति हुए थे।

वस्तुतः जिस व्यक्तिने लड़ाई आरम्भ होनेसे ठीक दो मास पूर्व व्यापार करना आरम्भ किया हो वह उनकी अपेक्षा बहुत कम अधिकारी है जो ट्रान्सवालमें दो वर्षसे व्यापारमें लगे थे किन्तु युद्धके आरम्भ होनेपर व्यापार नहीं कर रहे थे। जैसा मैं कह चुका हूँ कि इन तथाकथित *बाजारोंमें* किसी भी वर्तमान परवानेदारके लिए अपना व्यापार चलाना नितान्त असम्भव है। अतः मैं यह विश्वास करता हूँ कि आप श्री ब्रॉड्रिक या श्री लिटिल्टनसे मुलाकात कर सकेंगे और इस तारके अनुसार कार्य आरम्भ कर देंगे।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२५९) से।

५२. पत्र : कांग्रेसको

[जोहानिसबर्ग]
दिसम्बर ८, १९०३

सेवामें
माननीय सचिवगण
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
मद्रास

प्रिय महोदयगण,

मैं बुकपोस्ट (रजिस्टर्ड) से उस अभ्यागत[1] को जो यहाँके भारतीयोंने गत वर्ष श्री चेम्बरलेनके उनके दर्शन आनेपर दिया था और उस प्रार्थनापत्रकी[2] जो स्थानीय विधानसभाको प्रवासी-विधेयक स्वीकार करनेके विरोधमें दिया था कुछ प्रतियाँ भेजता हूँ।

अभ्याससे आप नेटालमें १९०२ के अन्ततक भारतीयोंपर लगाई गई निर्योग्यताओंकी उचित कल्पना कर सकेंगे। तभीसे नेटाल ट्रान्सवाल द्वारा समुपस्थित उदाहरणके अनुकरणका प्रयत्न कर रहा है। मैं यहाँकी एक विशाल सभाकी कार्रवाईका[3] भी उल्लेख कर दूँ जो *इंडियन ओपिनियनमें* छपी थी।

प्रवासी विधेयक हमारे विरोधके बावजूद दोनों सदनोंसे पास हो गया है और उसपर राजकीय स्वीकृति भी प्राप्त हो चुकी है।

इंडियन ओपिनियन आपको अंग्रेजीमें ताजीसे-ताजी खबरें और गुजरातीमें कुछ सुझाव भी देता है। मुझे ज्ञात हुआ है कि उसके मालिकने आपको पत्रके सब अंकोंकी कुछ प्रतियाँ भेजी हैं।

यदि भारत-सरकार मजबूत रुख इख्तियार नहीं करेगी और वह भी तत्काल, तो मुझे भय है, एक वर्षमें दक्षिण आफ्रिकामें बहुत-से भारतीय बरबाद हो जायेंगे।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २८२।
२. वही खण्ड, पृष्ठ ३००।
३. देखिए *इंडियन ओपिनियन* ४-९-१९०३।

आशा है, आपकी कमेटी स्थितिकी गम्भीरताका अनुभव करेगी और जल्दी ही राहत प्राप्त करनेका प्रयत्न पूरे उत्साहसे करेगी।

आपका विश्वासपात्र,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४११) से।

५३. बम्बईके लॉर्ड बिशप और भारत

अपने उपनिवेशवासी पाठकोंके लाभार्थ हम नीचे डॉक्टर मैकार्थरके उस विदाई-भाषणका कुछ अंश दे रहे हैं, जो बम्बईमें पाँच वर्षसे कुछ ऊपर बिशपके पदपर रहनेके बाद इंग्लैंडके लिए रवाना होनेसे पहले उन्होंने बम्बईके टाटा भवनमें दिया। डॉ० मैकार्थर भारतमें बहुत अधिक नहीं रहे। उसमें भी बीमारीके कारण उन्हें बीचमें बाहर जाना पड़ा था। किन्तु इस थोड़े समयमें भी उन्होंने यहाँके तमाम वर्गोंका प्रेम प्राप्त कर लिया था। और यद्यपि वे इंग्लिश चर्चके प्रमुख थे, तथापि हिन्दुओं, मुसलमानों, पारसियों और उन तमाम जातियोंको जो उनके धर्मको नहीं मानतीं, अपनी तरफ आकर्षित करनेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई (यह काम किसी प्रकार आसान नहीं था)। उनकी इस असाधारण सफलताका रहस्य जैसा कि न्यायमूर्ति श्री चन्दावरकर[1] ने अपने स्वागत-भाषणमें कहा था, उनकी नम्रताकी भावना है, जो उनकी प्रत्येक प्रवृत्तिको प्रेरित करती रही है। विद्वान न्यायाधीशने आगे कहा:

> इसका कारण उनकी समझमें यही था कि सबसे पहले बिशप मैकार्थरके अन्दर नम्रताका असली धार्मिक गुण प्रचुर मात्रामें है। उन्होंने इसे धार्मिक गुण बताया, परन्तु हाल ही में उन्होंने कहीं पढ़ा था कि नम्रता इस युगकी वैज्ञानिक वृत्तिका भी प्राण है। इस तरह नम्रता एक ऐसा तत्त्व है जिसे विज्ञान और धर्म दोनों गुण कहते हैं। और बिशप मैकार्थरके पास यह गुण प्रचुर मात्रामें है।

बिशप मैकार्थरने इसका जवाब देते हुए नीचे लिखे सारगर्भित शब्द कहे:

> श्री मेहताने बिशपके पदके बारेमें अपने विचार बड़ी योग्यतापूर्वक प्रभावोत्पादक भाषामें प्रकट किये हैं। मुझे लगता है कि भारतमें बिशपका स्थान या तो बहुत नगण्य और छोटा है अथवा फिर वह अनेक प्रकारसे बहुत बड़ा और भव्य है। यह बात उसके बारेमें व्यक्तिकी अपनी कल्पना और उसके प्रति रुखपर निर्भर करती है। जब मैं भारतमें आया तब मेरे मनमें बड़ी झिझक और चिन्ता थी। और इस महान पदका मैं किस प्रकार निर्वाह कर सकूँगा इसके बारेमें अपने प्रति वास्तविक आत्मविश्वासका अभाव अनुभव कर रहा था। भारतमें बिशप बनकर आनेवाले किसी व्यक्तिके प्रति भारतीयोंका रुख क्या होगा, इसका भी मैं अन्दाजा नहीं लगा सकता था। परन्तु भारतीयोंके रुखने मेरी सारी चिन्ताओंको भगा दिया और मैं अनुभव करने लगा कि भारतीयोंके

[1] सर एन० जी० चन्दावरकर, बम्बई हाईकोर्टके [illegible] समाज-सुधारक और [illegible] भारतीय रा० [illegible] सन् १९[illegible] में कांग्रेसके अध्यक्ष चुने गये थे।

बीच काम करनेका एक सुन्दर और अनूठा अवसर मेरे सामने है। भारतीयोंके मानसका अध्ययन करनेमें मुझे अधिकसे-अधिक आनन्द आने लगा। भारतीयोंके मानस और अनुभूतिके कुछ अंग ऐसे हैं जिनके प्रति मेरे हृदयमें अत्यधिक आदर है। भारतीयोंकी बुद्धि अत्यन्त तीव्र सूक्ष्म और सुसंस्कृत है। इससे उत्तम कोटिके भारतीय कैसे होते हैं इसका परिचय हो जाता है। फिर उनकी आत्मानुशासन और स्वावलम्बनकी वृत्ति भी अत्यन्त अद्भुत है। इसके अतिरिक्त उनमें एक गहरी और सच्ची धार्मिक सहज-बुद्धि भी होती है। मेरा खयाल है कि इन विशेषताओंके कारण मानव जातिके भविष्य-निर्माणमें भारत बहुत बड़ा योग दे सकता है। मैं उन लोगोंमें से हूँ जो विश्वास करते हैं कि कुछ अच्छी और बुनियादी बातें ऐसी हैं जो सभी धर्मोंमें पाई जाती हैं और संसारके सभी महान धर्मोंमें अच्छे नतीजे देनेकी क्षमता है। मैं भारतके जिन धर्मोंके सम्पर्कमें आया उन सभीके उत्तम फल भी मैंने देखे। आत्माकी आकांक्षाओंको प्रकट करने तथा अध्यात्म-जगतके ऊँचे प्रदेशोंमें मार्गदर्शन करनेकी क्षमताएँ इन धर्मोंमें हैं। और मुझे लगता है कि इन सब धर्मोंका आचरण मनुष्योंको इन शक्तियोंके प्राप्त करनेमें मदद करता है। इसलिए इनकी त्रुटियोंके बारेमें लोगोंका चाहे जो खयाल हो यह मानना ही पड़ेगा कि इन धर्मोंमें ऐसी शक्ति और क्षमता जरूर है। तब कोई संकीर्णता और अभद्रताके साथ उनकी आलोचना करनेकी बात कैसे सोच सकता है? मेरी समझमें धर्मान्तर करानेवालेका काम मैंने यहाँ कभी किया ही नहीं। मैंने कभी किसी पढ़े-लिखे पुरुष या स्त्रीसे अपने धर्मकी शरण लेनेके लिए भी नहीं कहा। यह कल्पना गलत है कि अंग्रेज भारतमें इसलिए आये हैं कि उसकी मददसे वे अपना कोई स्वार्थ-साधन करें। इसमें किसी भी प्रकारके स्वार्थ-साधनका हेतु नहीं है। अगर भारतकी सेवा उसके सामाजिक जीवनको प्रगतिशील बनाना और संसारके कल्याण-साधनमें वह जिस-किसी प्रकार भी उपयोगी हो सकता है उसमें उसकी सहायता करना अंग्रेजोंका उद्देश्य नहीं है तो उन्हें यहाँ नहीं रहना चाहिए। अगर अंग्रेजोंको इसमें जरा भी सन्देह हो कि वे इस देशका भला नहीं कर रहे हैं तो उन्हें यहाँ सत्ताधारी बनकर रहनेका कोई अधिकार नहीं है। वे यहाँ धन और सत्ता प्राप्त करनेके लिए नहीं आये हैं। यहाँ तो वे न्यासी (ट्रस्टी) हैं। यहाँपर उनका काम और धंधा यह है कि वे आनेवाले वर्षोंमें भारतीयोंको ऐसा महान अवसर प्रदान करें, जिससे वे भौतिक नैतिक और आध्यात्मिक वैभव प्राप्त कर सकें और उसके द्वारा वे मानवताकी सेवा कर सकें जिसका मुझे विश्वास है।

यह ठीक लम्बा उद्धरण हमने इसलिए दिया है कि हमारे खयालसे बिशपके शब्द काफी प्रभावशाली हैं — उनके पद और उनके अपने निजी महत्त्वके कारण भी। उनका सारा भाषण और सभाकी कार्रवाई मनन करने लायक है — खास तौरपर दक्षिण आफ्रिका जैसे देशमें जहाँ भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं और स्वार्थलिप्साने मनुष्यके मानसपर इतना अधिकार कर रखा है। डॉ॰ वैल्डनके विचारोंकी विशालता उदारता और नम्रताका हमारे मनोंमें लवलेश भी हो तो जीवन आजकी अपेक्षा कहीं अधिक सह्य बन सकता है। हमारे यूरोपीय मित्रोंके लिए ये शब्द विशेष रूपसे स्वागत करने योग्य हैं क्योंकि ये उनके अपने धर्माचार्यके मुखसे निकले हैं और ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति सही रुख क्या हो सकता है उसका निर्णय करनेमें इससे

बड़ी मदद मिल सकती है। वे अवश्य अपने हितोंका ध्यान रखें और उनकी रक्षा करें किन्तु यदि वे विशप मैकार्थरकी उदारताको अपना सकें तो उन दो समाजोंके मतभेद मिटानेमें बड़ी सहायता मिले जिन समाजोंको प्रकृतिने एक झंडेके नीचे लाकर खड़ा कर दिया है। मनुष्य तब तक वास्तवमें सभ्य नहीं बन सकते जब तक कि वे अपनी सभ्यता और भलाईमें जीव मात्रको शामिल नहीं कर लेते। और इस प्रश्नपर हम धार्मिक वैज्ञानिक अथवा राजनीतिक — चाहे जिस दृष्टिसे विचार करें — इसमें कोई शक नहीं कि विशपने तत्त्वकी बात कही है। यह सबके सँजोकर रखने लायक है। और जैसाकि हमने अखबारोंमें पढ़ा है, अगर एक आदमी पाँच बरसोंके थोड़े-से समयमें दो जातियोंको पहलेकी अपेक्षा अधिक नजदीक लानेकी दिशामें इतना अधिक काम कर सका है तो कल्पना कीजिए कि अगर यह वृत्ति एक झंडेके नीचे रहनेवाली समस्त जनताके मनोंमें फैल जाये तो उसका कितना कल्याणकर परिणाम हो सकता है? इमर्सनने कहा है, संसार अधिकांशमें सहिष्णुता और समझौतेके आधारपर ही चल रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि अभीष्ट अवस्थाको प्राप्त करनेके लिए प्रत्येक पक्षको कुछ देना और कुछ लेना पड़ता है। हमारी कामना है कि विशपका यह भाषण अधिकसे-अधिक पाठकोंके हाथोंमें पहुँचकर उनपर अच्छा प्रभाव डाले।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १–१२–१९ ११

५४ ट्रान्सवालके उपनिवेश-सचिव

श्री डब्ल्यू ई० बैबिंग्टनके त्यागपत्र दे देनेपर उनके स्थान पर नये उपनिवेश-सचिव श्री पैट्रिक डंकनकी नियुक्तिकी घोषणा सरकारी *गज़टमें* की गई है। ट्रान्सवालके हमारे देश भाइयोंको इस नियुक्तिमें कोई दिलचस्पी न हो ऐसा नहीं है। हम नहीं जानते कि उन्हें इस परिवर्तनपर बधाई दें या नहीं; क्योंकि एशियाई प्रश्नके बारेमें श्री डंकनके रुखका हमें कुछ पता नहीं है। इस समय एशियाई विभाग सीधा उपनिवेश-सचिवके मातहत है जिन्होंने यह काम अपने सहायक श्री डब्ल्यू एच मूअरके सुपुर्द कर रखा है। इसलिए हम इन माननीय सज्जनको याद दिलानेका साहस करते हैं कि उनके हाथोंमें एक अत्यन्त पवित्र काम सौंपा गया है अर्थात् वे एक ऐसी अल्पसंख्यक कौमके हितोंके संरक्षक हैं जिसे एक शक्तिशाली बहुसंख्यक कौमकी दुर्भावनासे संघर्ष करना पड़ रहा है। आपका जमाना आगे चलकर ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिको नया मोड़ देनेवाला सिद्ध होगा। एशियाई-विरोधी कानूनों और बाजार-सूचनाओंसे सम्बन्धित अनेक प्रश्नोंपर उन्हें अपने निर्णय देने होंगे। अत सामने पेश होनेवाले तमाम पेचीदा प्रश्नोंको सुलझानेके लिए उन्हें अपनी सारी शक्ति और सिद्धान्त-निष्ठासे काम लेना होगा। यदि साथ ही वे थोड़ीसी सहानुभूति और सहृदयता भी इसमें जोड़ दें तो हमें निश्चय है वे अपने आपको ट्रान्सवालके भारतीयोंकी कृतज्ञताका पात्र बना लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १–१२–१९ ११

५५ व्यापार-संघ और युद्ध-क्षतिका मुआवजा

जोहानिसबर्गके अखबारोंमें यह खबर छपी है कि सरकार बड़ी पेढ़ियों या कम्पनियोंको चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजनोंकी हों या अन्यकी मुआवजा देनेसे इनकार-सम्बन्धी अपने निर्णयपर अब भी पुनर्विचार करनेसे इनकार कर रही है। सर आर्थर लालीके इस कार्यको व्यापार-संघके अध्यक्ष श्री जॉर्ज मिचल विश्वासघातके समान समझते हैं। वे कहते हैं कि श्री चेम्बरलेनने निश्चित रूपसे यह वचन दिया था कि जिन-जिनको भी लड़ाईमें नुकसान हुआ है उन्हें मुआवजा दिया जायेगा। इसलिए उनका खयाल है कि सरकारको छोटी और बड़ी पेढ़ियोंके बीच भेद करनेका कोई अधिकार नहीं है। हम इस विचारसे अपनी सहानुभूति प्रकट करना चाहते हैं। आखिर छोटी और बड़ी पेढ़ियोंके बीच जो भी भेद किया जायेगा वह मनमाना और पूर्णतः अवैज्ञानिक होगा। और जिन्हें व्यापारका थोड़ा भी ज्ञान है वे आसानीसे समझ सकते हैं कि जो पेढ़ियाँ बड़ी दिखाई देती हैं उनको संभव है दी जा सकनेवाली हर मददकी जरूरत हो क्योंकि उनके कामका फैलाव बहुत होता है। और ऐसी काफी पेढ़ियाँ होंगी जिनपर इस लड़ाईका असर उन छोटी पेढ़ियोंकी अपेक्षा बहुत अधिक गम्भीर हुआ हो जिनका कारोबार छोटा होनेसे नुकसान भी थोड़ा ही होता है। फिर हम अपने निजी अनुभवसे भी जानते हैं कि छोटी पेढ़ियाँ बगैर मुआवजा मिले भी अपने कर्ज देनेवालोंकी माँगोंका सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकी हैं। परन्तु जिन्हें अपनी साख बचानी है वे ऐसा नहीं कर सकतीं। इसलिए उनपर दोहरी मुसीबत आई है। अनेक कम्पनियोंने अपने साहूकारोंको ब्याज-सहित रकम अदा की है। और अब उनके सामने सरकारका निर्णय है कि उन्हें उनके हकका मुआवजा नहीं दिया जायेगा। श्री मिचलने यह धमकी दी है कि वे इंग्लैंडकी सरकार तथा ब्रिटिश संसदतक अपनी पुकार भेजेंगे। परन्तु हमारा खयाल है कि अगर यहाँकी सरकार इस माँगपर अनुकूलतापूर्वक विचार करनेके लिए राजी नहीं है, तो इंग्लैंडकी सरकारसे दरख्वास्त करके भी कामकी बहुत कम सम्भावना है। फिर भी हमारी हार्दिक कामना है कि व्यापार-संघको उसके प्रयत्नोंमें यश मिले और वह इंग्लैंडकी सरकारके सामने अपनी माँगका औचित्य सिद्ध कर सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–१२–१९०३

५६. श्रम-आयोगका प्रतिवेदन

श्रम-आयोगका प्रतिवेदन प्रकाशित हो गया है। फिलहाल हम श्री विल्सन और श्री व्हाइट-साइडके अल्पसंख्यक प्रतिवेदनपर ही विचार करना चाहते हैं। हम जानते हैं कि ये सज्जन बड़ी कठिन लड़ाई लड़ रहे हैं। फिर भी हमें यह कहना चाहिए कि उनके निर्णय न्यायपूर्ण हैं इसलिए नहीं कि उन्होंने अपने कथनकी पुष्टिमें कुछ आँकड़े या अपने मन्तव्योंका समर्थन करनेके लिए, बहुत-से गवाह पेश किये हैं बल्कि हमारा खयाल है कि उनकी पुष्टिके लिए ऐसी किन्हीं चीजोंकी जरूरत ही नहीं है क्योंकि उनके कथन लगभग स्वयंसिद्ध सत्य हैं। जो स्वार्थ और दुर्भावसे अन्धे नहीं हैं उन्हें इन दो आयुक्तोंकी निम्नलिखित राय माननेमें कोई आपत्ति नहीं होगी

> हमारी राय है कि जो लोग इस उपनिवेशमें स्थायी रूपसे नहीं बसना चाहते और जो इस उपनिवेशके स्थायी वैभव अथवा भावी परिणामोंका बगैर विचार किये मात्र ही अपने उद्योगका विस्तार करना चाहते हैं उनकी बातोंकी बहुत सावधानीसे जाँच करके ही उद्योगके लिए आवश्यक असली मजदूरोंकी निश्चित संख्या तय की जा सकेगी इसके बगैर नहीं।

गवाहियोंका जिन्होंने थोड़ा भी अध्ययन किया है उन्हें यह समझनेमें कठिनाई नहीं होगी कि ये शब्द कितने यथार्थ हैं। फिर उनकी "आवश्यकताओं" की परिभाषा भी हमारी रायमें आदर्श है। इसके बाद इन "आवश्यकताओं" की पूर्तिके लिए देशमें पर्याप्त मजदूर हैं या नहीं यह जाननेके लिए हमारा प्रश्न करनेकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। आयुक्त आगे कहते हैं

> इसलिए हम आवश्यकताओंका यह अर्थ लेते हैं कि उत्पादन और व्ययकी दृष्टिसे लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालके उद्योग जिस अच्छी अवस्थामें थे उनको उस हालतमें लानेके लिए तथा इस उपनिवेशके गोरे और रंगदार दोनों प्रकारके निवासी किस प्रकार वैभवशाली हो सकते हैं इस बातको ध्यानमें रखते हुए इन उद्योगोंका अधिकसे-अधिक विस्तार करनेके लिए कितने मजदूरोंकी जरूरत होगी।

यही सारी परिस्थितिका मर्म है। अगर पूँजीपतियों और केवल वर्तमान पीढ़ीके लाभके लिए उपनिवेशका शोषण करके उसे वैभवशाली बनाना है तो इसमें कोई शक नहीं कि आयोगके बहुसंख्यक सदस्योंका प्रतिवेदन पूर्णतः उपयुक्त है। परन्तु यदि उपनिवेशका विकास क्रमशः करना है तो इसमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं कि उपनिवेशके अन्दर ही जितने और जैसे मजदूर मिल सकें उनसे उसे सन्तोष मानकर काम चलाना चाहिए। अस्वाभाविक तरीकोंसे मन्दम बनावटी तौरपर लाई गई वृद्धि और स्वाभाविक क्रमिक विकास इन दोनोंमें जमीन-आसमानका अन्तर होता है। पहली वस्तु अस्वाभाविक परिस्थितियोंकी उपज होगी देखनेमें सुन्दर और लुभावनी होगी परन्तु परिणाममें हलाहल। दूसरी चीज निश्चय ही देखनेमें इतनी लुभावनी नहीं होगी परन्तु उसका फल स्थायी लाभ पहुँचानेवाला होगा। प्रयत्न करके गिरमिटिया मजदूरोंके आनेको रोकना संभव होगा या नहीं इसमें हमें सन्देह है तथापि हम यह कहे बगैर नहीं रह सकते कि श्री विल्सन और श्री ह्वाइटसाइडने अपने कर्तव्यका पालन निर्भयतापूर्वक कर दिया है, जिसके लिए वे हार्दिक बधाईके पात्र हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २-१२-११

५५ व्यापार-संघ और युद्ध-क्षतिका मुआवजा

जोहानिसबर्गके अखबारोंमें यह खबर छपी है कि सरकार बड़ी पेढ़ियों या कम्पनियोंको, चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजनोंकी हों या अन्यकी, मुआवजा देनेसे इनकार-सम्बन्धी अपने निर्णयपर अब भी पुनर्विचार करनेसे इनकार कर रही है। सर आर्थर लालीके इस कार्यको व्यापार-संघके अध्यक्ष श्री जॉर्ज मिचल विश्वासघातके समान समझते हैं। वे कहते हैं कि श्री चेम्बरलेनने निश्चित रूपसे यह वचन दिया था कि जिन-जिनको भी लड़ाईमें नुकसान हुआ है उन्हें मुआवजा दिया जायेगा। इसलिए उनका खयाल है कि सरकारको छोटी और बड़ी पेढ़ियोंके बीच भेद करनेका कोई अधिकार नहीं है। हम इस विचारसे अपनी सहानुभूति प्रकट करना चाहते हैं। आखिर छोटी और बड़ी पेढ़ियोंके बीच जो भी भेद किया जायेगा वह मनमाना और पूर्णत: अवैज्ञानिक होगा। और जिन्हें व्यापारका थोड़ा भी ज्ञान है वे आसानीसे समझ सकते हैं कि जो पेढ़ियाँ बड़ी दिखाई देती हैं उनको संभव है, दी जा सकनेवाली हर मददकी जरूरत हो क्योंकि उनके कामका फैलाव बहुत होता है। और ऐसी काफी पेढ़ियाँ होंगी जिनपर इस लड़ाईका असर उन छोटी पेढ़ियोंकी अपेक्षा बहुत अधिक गम्भीर हुआ हो जिनका कारोबार छोटा होनेसे नुकसान भी थोड़ा ही होता है। फिर हम अपने निजी अनुभवसे भी जानते हैं कि छोटी पेढ़ियाँ बगैर मुआवजा मिले भी अपने कर्ज देनेवालोंकी माँगोंका सफलतापूर्वक मुकाबला कर सकी हैं। परन्तु जिन्हें अपनी साख बचानी है वे ऐसा नहीं कर सकतीं। इसलिए उनपर दोहरी मुसीबत आई है। अनेक कम्पनियोंने अपने साहूकारोंको ब्याज-सहित रकम अदा की है। और अब उनके सामने सरकारका निर्णय है कि उन्हें उनके हकका मुआवजा नहीं दिया जायेगा। श्री मिचलने यह धमकी दी है कि वे इंग्लैंडकी सरकार तथा ब्रिटिश संसदतक अपनी पुकार भेजेंगे। परन्तु हमारा खयाल है कि अगर यहाँकी सरकार इस माँगपर अनुकूलतापूर्वक विचार करनेके लिए राजी नहीं है, तो इंग्लैंडकी सरकारसे दरख्वास्त करके भी लाभकी बहुत कम सम्भावना है। फिर भी हमारी हार्दिक कामना है कि व्यापार-संघको उसके प्रयत्नोंमें यश मिले और इंग्लैंडकी सरकारके सामने अपनी माँगका औचित्य सिद्ध कर सके।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-१२-१९[illegible]

बहुत धीरजके साथ इस प्रश्नकी जाँच होनी चाहिए। और हमें तो जरा भी सन्देह नहीं कि यूरोपीयोंका विरोध मोल लिये बिना मामला शान्तिके साथ सुलझ सकता है। अगर श्री चैमनेके हाथोंमें सत्ता है तो क्या वे इस अवसरके अनुरूप काम करेंगे? अगर उनके हाथोंमें यह सत्ता नहीं है तो क्या सरकार भारतीयोंके सामने यह निरर्थक नाम और पद भुलाते रहना बन्द करनेकी कृपा करेगी?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१२-१९ ३

५८. एक अपील[1]

कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ७, १९ ३

सेवामें
सम्पादक
स्टार

महोदय,

कुछ भारतीय व्यापारियोंकी ओरसे जिनकी किस्मत इस वर्षकी सूचना ३५६ से सम्बन्धित सरकारके निर्णयपर लटक रही है, मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है इसे प्रकाशित करके आप अवश्य मुझे अपने सौजन्यका लाभ उठाने देंगे।

प्रस्तुत सूचनाका तकाजा है कि इस वर्षके अन्ततक सारे भारतीय *बाजारोंमें* चले जायें और वहीं व्यापार करें या रहें। तथापि वह उन लोगोंको इससे बरी करती है जिनके पास लड़ाई शुरू होते समय *बाजारों* और पृथक बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने थे। कुछ एशियाइयोंको निवासके बारेमें अपवाद-स्वरूप बरी रखा जा सकता है; इसका हम इस समय जिक्र नहीं करते, क्योंकि यहाँ वह प्रश्न अप्रस्तुत है। सभी जानते हैं कि लड़ाईसे पहले बहुत-से भारतीय बिना परवानोंके पृथक बस्तियोंसे बाहर व्यापार कर रहे थे। ब्रिटिश मन्त्रालय (डाउनिंग स्ट्रीट) के आदेशानुसार ब्रिटिश एजेंटकी छायाके कारण वे ऐसा कर पा रहे थे। अर्थात् सरकार ऐसे व्यापारियोंका अपवाद करनेकी जरूरत मानती है जिनके पास परवाने नहीं थे परन्तु जो सिद्ध कर सकते हैं कि वे लड़ाई छिड़नेके समय पृथक बस्तियोंसे बाहर व्यापार कर रहे थे।

एक वर्गके लोग और रह जाते हैं जो लड़ाईसे पहले व्यापार तो नहीं करते थे, परन्तु जिन्हें शरणार्थी होनेके नाते पिछले वर्ष बस्तियोंसे बाहर व्यापार करनेके परवाने ब्रिटिश अधिकारियोंने दे दिये थे और जिनपर उस समय किसी प्रकारकी शर्तें या बन्दिशें नहीं लगाई गई थीं। इनमें से अधिकांश लोग जोहानिसबर्गमें हैं। मेरी नम्र राय है कि इनके निहित स्वार्थोंकी भी उसी प्रकार रक्षा की जानी चाहिए जैसे कि उन अन्य अधिक भाग्यशाली भाइयोंकी जो लड़ाईसे पहले व्यापार करते थे। इनका व्यापार भी काफी अच्छा जम गया है। मुझे यह कहनेकी

१. सम्भवतः अंग्रेजीमें प्रकाशित।

५७ ट्रान्सवालमें एशियाइयोंका संरक्षक

प्रिटोरिया स्थित एक संवाददाताने हमारे पास एक छपा हुआ फार्म भेजा है जिसपर सहायक उपनिवेश-सचिव श्री डब्ल्यू एच मूरके दस्तखत हैं और तारीख ५ नवम्बर पड़ी है। इसमें प्रिटोरियामें रहनेवाले तमाम एशियाइयोंको सूचित किया गया है कि

> प्रिटोरियाके एशियाई *बाजारमें* जमीनोंके लिए तारीख १ जनवरी १९०४से लेकर इक्कीस वर्ष अथवा इससे कम अवधिके लिए जो पट्टे लेना चाहें उन्हें अपनी अर्जियाँ तारीख ३ नवम्बर १९०३की दोपहरतक एशियाइयोंके संरक्षक श्री चैमनेके पास दे देनी चाहिए, जो अर्जियोंपर विचार करके जमीनोंका वितरण करेंगे।

इसके बाद वे शर्तें हैं जिनके आधारपर विचार और वितरण होगा। अपने पिछले अंकोंमें हम बता चुके हैं कि एशियाइयोंको जबरदस्ती अलग बसाने और इन *बाजारों*के लिए चुने गये स्थानोंके बारेमें हम अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। प्रिटोरियाके *बाजारों*के बारेमें भी वही बात लागू होती है। यह पृथक बस्ती कोनेमें एक तरफ है और उसके तथा शहरके बीच एक नाला पड़ता है। भारतीयोंका सारा व्यापार बहुत दूर प्रिन्सलू स्ट्रीटमें केन्द्रित है। यद्यपि अपने कारोबारको उठाकर इस बस्तीमें जाना अपने हाथ अपने पाँवपर कुल्हाड़ी मारना है। परन्तु आज प्रसंगके इस पहलूपर नहीं हम श्री चैमनेके पदपर कुछ कहना चाहते हैं। हमें बताया गया है कि उन्हें भारतका बड़ा विशाल अनुभव है। उनके विचार उदार हैं और जिनका उन्हें संरक्षक नियुक्त किया गया है उनके प्रति उनके हृदयमें सहानुभूति बहुत बड़ी मात्रामें है। सबसे पहले तो हम यह बता दें कि इस पदका नाम हमें बहुत अच्छा नहीं लगता। उससे हमें गिरमिटिया मजदूरोंसे सम्बन्धित गंध आती है। और दक्षिण आफ्रिकामें तो इस पदका अर्थ यही लगाया जाता है कि नेटालमें जिस प्रकार गिरमिटिया मजदूरोंके हितोंकी देखभाल करनेवाला अधिकारी होता है उसी तरहका यह भी कोई अधिकारी होगा। परन्तु हम नामपर भी नहीं झगड़ना चाहते। मुद्देकी बात तो यह है कि क्या श्री चैमने भारतीयोंको सन्तोष हो इस प्रकार अपना काम कर रहे हैं? अब अगर हमारे संवाददाताका कहना सही है तो श्री चैमने भारतीयोंके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करनेकी इच्छा रखते हुए भी ऐसा नहीं कर सकेंगे। क्योंकि उन्हें कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। एशियाई मुहकमेका सम्पूर्ण प्रबन्ध और संचालन उपनिवेश-सचिवके हाथोंमें है और श्री चैमनेको केवल उनके हाथके नीचे काम करना है। अगर बात यही है तो हमें यह कहना पड़ेगा कि हालत बड़ी अजीब है। नेटालमें प्रवासियोंके संरक्षकके हाथोंमें भी नहीं अधिक सत्ता है और इस पदका वहाँ वजन और प्रभाव है। वहाँ वह गवर्नरके प्रति जिम्मेदार है परन्तु प्रिटोरियामें काम दूसरे ढंगसे होता है। एक भले आदमीको संरक्षक तो बना दिया किन्तु उसे काम करनेमें पहलका अधिकार नहीं दिया गया। अगर हमें सच्ची जानकारी मिली है तो सरकारने उनके लिए जो कानून और नियम बना दिये हैं उनका तनिक भी उल्लंघन किये बिना मनुष्य-मनुष्यके बीच सम्मानपूर्वक न्याय करनेका सुवर्ण अवसर भी चैमनेके सामने उपस्थित है। रास्ता चलता आदमी भी एक मिनटमें जान सकता है कि जिन लोगोंके पास मात्र *बाजारोंसे* बाहर व्यापार-व्यवसाय करनेके परवाने हैं ऐसे सैकड़ों ब्रिटिश भारतीयोंको इस वर्षके अन्तमें उन बस्तियोंमें भगा देना बहुत बड़े कलंककी बात है।

बहुत धीरजके साथ इस प्रश्नकी जाँच होनी चाहिए। और हमें तो जरा भी सन्देह नहीं कि यूरोपीयोंका विरोध मोल लिये बिना मामला शान्तिके साथ सुलझ सकता है। अगर श्री चैमनके हाथोंमें सत्ता है तो क्या वे इस अवसरके अनुरूप काम करेंगे? अगर उनके हाथोंमें यह सत्ता नहीं है तो क्या सरकार भारतीयोंके सामने यह निरर्थक नाम और पद झुलाते रहना बन्द करनेकी कृपा करेगी?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-१२-१९०३

५८. एक अपील[1]

कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ७, १९०३

सेवामें
सम्पादक
स्टार

महोदय

कुछ भारतीय व्यापारियोंकी ओरसे जिनकी किस्मत इस वर्षकी सूचना ३५६ से सम्बन्धित सरकारके निर्णयपर लटक रही है मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है इसे प्रकाशित करके आप अवश्य मुझे अपने सौजन्यका लाभ उठाने देंगे।

प्रस्तुत सूचनाका तकाजा है कि इस वर्षके अन्ततक सारे भारतीय *बाजारों*में चले जायें और वहीं व्यापार करें या रहें। तथापि वह उन लोगोंको इससे बरी करती है जिनके पास लड़ाई शुरू होते समय *बाजारों* और पृथक बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने थे। कुछ एशियाइयोंको निवासके बारेमें अपवाद-स्वरूप बरी रखा जा सकता है इसका हम इस समय जिक्र नहीं करेंगे क्योंकि यहाँ वह प्रश्न अप्रस्तुत है। सभी जानते हैं कि लड़ाईसे पहले बहुत से भारतीय बिना परवानोंके पृथक बस्तियोंसे बाहर व्यापार कर रहे थे। ब्रिटिश मन्त्रालय (डाउनिंग स्ट्रीट) के आदेशानुसार ब्रिटिश एजेंटकी छायाके कारण वे ऐसा कर पा रहे थे। अर्थात् सरकार उन व्यापारियोंका अपवाद करनेकी अनुमति मानती है जिनके पास परवाने नहीं थे परन्तु जो सिद्ध कर सकते हैं कि वे लड़ाई छिड़नेके समय पृथक बस्तियोंसे बाहर व्यापार कर रहे थे।

एक वर्गके लोग और रह जाते हैं जो लड़ाईके पहले व्यापार तो नहीं करते थे परन्तु जिन्हें शरणार्थी होनेके नाते पिछले वर्ष बस्तियोंसे बाहर व्यापार करनेके परवाने ब्रिटिश अधिकारियोंने दे दिये थे और जिनपर उस समय किसी प्रकारकी शर्तें या बन्दिशें नहीं लगाई गई थी। इनमें से अधिकांश लोग जोहानिसबर्गमें हैं। मेरी नम्र राय है कि इनके निहित स्वार्थोंकी भी इसी प्रकार रक्षा की जानी चाहिए, जैसे कि उन अन्य अधिक भाग्यशाली भारतीयोंकी जो लड़ाईसे पहले व्यापार करते थे। इनका व्यापार भी काफी अच्छा जम गया है। मुझे यह जानकारी

[1] सम्भवतः गांधीजीका मसविदा ।

जरूरत नहीं है कि इनके लिए अपने व्यापारको पृथक बस्तियोंमें ले जाना जहाँ कोई आबादी नहीं है और जहाँ चीजें खरीदनेके लिए लोगोंका आकर्षित नहीं किया जा सकता असम्भव है। इन्हें वहाँ जानेके लिए मजबूर करनेका अर्थ इनके मुँहका कौर छीनना है। और यह काम ट्रान्सवालकी जनताके नामपर किया जा रहा है। मैं कदापि नहीं मान सकता कि इस देशके बहुसंख्यक लोग ऐसी (जिस कृतिकी धमकी दी जा रही है उसके वर्णनमें सही शब्दका प्रयोग करनेपर अगर मुझे क्षमा किया जाये) अमानुषता कर सकते हैं। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ और मेरे पास इसके लिए अच्छे सबूत हैं कि जोहानिसबर्गके बहुत-से व्यापारियोंने जब सरकार से पिछली गणराज्य-सरकारके एशियाई-विरोधी कानूनोंपर अमल करनेका आग्रह किया था तब उनका उद्देश्य यह कदापि नहीं था कि जिनके पास कानूनके अनुसार परवाने हैं ऐसे वास्तविक शरणार्थियोंको किसी प्रकार हानि पहुँचे। वे चाहते थे — और इसमें वे सफल भी हो गये हैं — कि नये अर्जदारोंको परवाने न दिये जायें नहीं तो और नये स्वार्थ निर्मित हो जायेंगे। यह एक अजीब बात होगी कि एक ऐसे राष्ट्रके निवासी जो निहित स्वार्थोंका इतना आदर करते हैं कि गुलामोंके मालिकों और होटलोंके मालिकोंके हितोंको भी — जिन्हें अगर अनैतिक कहें तो अनुचित नहीं होगा — मान्यता दे सकते हैं इन निर्दोष व्यापारियोंके हितोंकी अवमानना करें।

फिर मेरी इस प्रार्थनाको राज्यके ऊँचेसे-ऊँचे अधिकारीके दिये गये वचनका आधार है। पिछले वर्ष इन्हीं दिनों पहले-पहल यह धमकी दी गई थी कि उक्त भारतीयोंको अपने परवाने नये करवानेका हक नहीं होगा। इस ओर भी चेम्बरलेनका ध्यान आकर्षित किया गया। उस समय उन्होंने कहा था कि वे विश्वास नहीं कर सकते कि इस धमकीपर अमल किया जायेगा। यह उनकी बात है जिन्होंने एक ब्रिटिश अधिकारीका लिखा पुर्जा बैंक-नोटके समान है ये प्रसिद्ध शब्द कहे थे। वे समझ रहे थे कि यह सूचना एक स्थानीय अधिकारीकी सूझसे जारी हो गई है। इसका परिणाम यह हुआ कि परवाने नये कर दिये गये यद्यपि इसके लिए दुःखदायक संघर्ष करना पड़ा और सो भी केवल शुरूमें पिछले जून मास और बादमें इस मासकी ११ तारीखतक के लिए। इसलिए मिली हुई राहतको स्थानीय अधिकारियोंने जब पहली बार तात्कालिक बताया तब लॉर्ड मिलनरसे विनती की गई। उन्होंने इस विषयपर अपने विचार श्री चेम्बरलेनको भेजे गये खरीतेमें प्रकट किये हैं। इसमें (यदि मैंने आशय ठीक समझा है तो) परमश्रेष्ठने कहा है कि वर्तमान भारतीय परवानेदारोंमें से केवल उनको पृथक बस्तियों-में जाना होगा जो लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें नहीं रहते थे। मैं पहले ही बता चुका हूँ कि वे भारतीय वास्तविक शरणार्थी हैं।

लड़ाई छिड़नेके वक्त ऐसे प्रश्न हैं जिनके कारण अनन्त कठिनाइयाँ और बड़े भेदभाव पैदा होंगे। इसलिए आप इस प्रश्नपर चाहे जिस दृष्टिसे विचार कीजिए, इसका सरल हल यही है कि इस समय जिन लोगोंके पास परवाने हैं उन सबको मान्यता दे दी जाये। अगर जरूरत हो तो यह शर्त लगाई जा सकती है जो लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें व्यापार करते थे।

मेरे देश भाइयोंपर अनुचित होड़का आरोप लगाया जाता है। मैं यहाँ तो उसका संक्षेप में ही जवाब दे सकता हूँ। हाथ कंगनको आरसीकी जरूरत नहीं होती। क्या यह सत्य नहीं है कि इस होड़के बावजूद यूरोपीय व्यापारी ही सर्वत्र प्रबल हैं? यह सच है कि भारतीय रहन-सहन मितव्ययी और सादा होता है। परन्तु वह अपने व्यापारमें भी सीधा-सादा और संगठन-की भावनामें गरीब है। उसके इस कलामें निपुण बनने और उससे होड़से भय होने योग्य परिस्थिति लानेमें बहुत दिन लगेंगे। कहा जा सकता है कि यदि भारतीयोंका आगमन बेरोक-टोक जारी रहा तो उनकी संख्या बढ़ जायेगी और तब उनका असर असह्य होगा। परन्तु मैं तो

केवल उनकी तरफसे वकील कर रहा हूँ या अभी व्यापारमें लगे हुए हैं। ब्रिटिश भारतीयोंने यह भी सुझाया है कि परवानोंका नियन्त्रण नगर-परिषद अथवा जिला-निकायके हाथोंमें दे दिया जाना चाहिए, ताकि उनका दुरुपयोग न होने पाये। आरोग्य और नगरकी सुन्दरताकी दृष्टिसे सफाई और इमारतोंसे सम्बन्धित अन्य उचित जरूरतोंकी पूर्ति भारतीय बहुत खुशीसे करेंगे।

मेरी विनती यह है कि ट्रान्सवालमें जो ब्रिटिश नागरिक बस गये हैं, उनकी सहानुभूतिका मेरे देशभाइयोंको अधिकार है। लड़ाईके पहले उनसे मदद चाही गई और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक दी। ब्रिटिश गोरा-समिति (एटलांडर कमिटी) के तत्कालीन सदस्योंने जिनकी बात सरकार सुनती है, कहा था कि ज्यों ही प्रिटोरियामें ब्रिटिश झंडा लहराने लगेगा उसकी हवा के झकोरोंसे भारतीयोंकी सारी तकलीफें और निर्योग्यताएँ उड़ जायेंगी, क्योंकि क्या वे ब्रिटिश प्रजाजन नहीं हैं? इस समय मैं निर्योग्यताओंका सामान्य प्रश्न नहीं उठाना चाहता। उस समय जो बहुत बड़े-बड़े वचन दिये गये थे उनमें से मैं इस समय एक बहुत छोटी चीज माँग रहा हूँ। क्या यह भी स्वीकार नहीं होगी?

अन्तमें एक बात और कहनेकी इजाजत चाहता हूँ कि पिछली लड़ाईमें अपना नम्र हिस्सा अदा करनेमें भारतीय पीछे नहीं रहे हैं। शासकीय खरीतोंमें उनके कामका सम्मानपूर्वक उल्लेख किया गया है। तब किसीने गाया था "आखिर हम सब साम्राज्यके पुत्र हैं।" उनकी प्रशंसा में यह जो कहा गया है और इसमें जो अर्थ भरा पड़ा है उसे झुठलाने लायक कोई काम मेरे देशभाइयोंके द्वारा उसके बादमें हुआ हो ऐसी खबर मुझे नहीं है।

आपका आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-१२-१९०३

५९. प्रार्थनापत्र: ट्रान्सवाल-परिषदको[1]

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ८, १९०३

सेवामें
माननीय अध्यक्ष और सदस्यगण
ट्रान्सवाल विधान-परिषद

ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीय-संघकी समितिके अध्यक्ष अब्दुल गनीका प्रार्थनापत्र

सविनय निवेदन है कि

उपनिवेश-सचिवने सूचना दी है कि वे आगामी तारीख ९ को एशियाई बाजारोंके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव पेश करनेवाले हैं। आपका प्रार्थी उसी सम्बन्धमें माननीय सदनकी सेवामें उपस्थित हो रहा है।

प्रार्थी आदरपूर्वक निवेदन करता है कि नये प्रस्तावके द्वारा भी भारतकी पहुत व्यापकी आवश्यकताओंके मार्गमें पूर्ण अड़चनें होंगी।

1. यह १०-१२-१९०३ के *इंडियन ओपिनियन*में भी प्रकाशित हुआ था।

बाजारों अथवा पृथक् बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेवाले ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको तीन वर्गोंमें विभक्त किया जा सकता है :

पहला : जिनके पास युद्ध छिड़नेके समय *बाजारोंके* बाहर व्यापार करनेके परवाने थे।

दूसरा : वे जो बिना परवानोंके इसी तरह व्यापार करते थे।

तीसरा : वे जो लड़ाई छिड़नेके समय व्यापार नहीं करते थे परन्तु जिन्हें इसके पहलेसे ट्रान्सवालके सच्चे निवासी होनेके कारण पिछले वर्ष ब्रिटिश अधिकारियोंने बगैर किसी शर्त या प्रतिबन्धके *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने दिये थे।

इनमें दूसरे वर्गके व्यापारियोंकी संख्या सबसे अधिक है।

तीसरे वर्गके व्यापारियोंकी संख्या बहुत छोटी है और उनमें से अधिक जोहानिसबर्गमें ही बसे हुए हैं।

तीसरे वर्गवालोंके लिए *बाजारोंमें* हटाया जाना बड़ी गंभीर बात होगी। वहाँ उनके लिए किसी प्रकारका भी व्यापार कर सकना असम्भव है। और इस समय गोरे निवासियों और काफिरोंके बीच उनका जो व्यापार फैला हुआ है और जिसके लिए उनके पास कानूनी परवाने हैं उसे तो वे किसी प्रकार वहाँ नहीं चला सकेंगे।

बाजारकी जगहोंकी अनुपयुक्तताके अलावा भी प्रार्थी इस माननीय सदनका ध्यान कुछ और किन्हीं बातोंकी तरफ खींचना चाहता है :

पिछले वर्ष लगभग इन्हीं दिनोंकी बात है, पीटर्सबर्गमें ऊपर बताये गये तीसरे वर्गके तमाम ब्रिटिश भारतीयोंको सूचनाएँ मिली थीं कि उनके परवानोंकी अवधि पूरी हो जानेपर वे नये नहीं किये जायेंगे। इसलिए तत्कालीन परममाननीय उपनिवेश-मन्त्रीका ध्यान उनकी ट्रान्सवाल-यात्राके समय इस प्रश्नकी तरफ खींचा गया था। उन्होंने कहा था कि इस मामलेपर अमल नहीं हो सकेगा। और इसके फलस्वरूप अबतक ये परवाने नये किये जाते रहे हैं।

परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरने भी तारीख ११ मई १९ ३ को परम माननीय श्री चेम्बरलेनको भेजे गये अपने खरीतेमें इस प्रश्नपर जोर दिया था।

परमश्रेष्ठ कहते हैं :

> परन्तु सरकार इस बातकी चिन्तामें है कि वह इस कामको (कानूनके अमलको) देशमें पहलेसे बसे भारतीयोंका बहुत खयाल रखते हुए और निहित स्वार्थोंका — यदि उन्हें कानूनके विरुद्ध भी विकसित होने दिया गया है — सबसे अधिक विचार रखते हुए, करे। . . . लड़ाईसे पहले जो एशियाई लोग उपनिवेशमें थे केवल उन्हींका सवाल होता तो महामहिमकी सरकारके मनके लायक नये कानून बननेतक हम रुक भी सकते थे। परन्तु यहाँ तो नये आनेवालोंका तांता लगा रहता है और वे व्यापार करनेके परवाने माँगते रहते हैं . . . ऐसी दशामें एकदम खामोश बैठे रहना असम्भव हो गया है।

इसी खरीतेमें परमश्रेष्ठने आगे लिखा है :

> जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, लड़ाईके पहलेसे यहाँ जिन एशियाइयोंके जो निहित स्वार्थ थे उनको सरकार स्वीकार करनेके लिए तैयार है। परन्तु दूसरी तरफ, मुझे लगता है कि कानूनके खिलाफ नये निहित स्वार्थोंको खड़े होने देना उचित नहीं होगा। लड़ाईके दरमियान और युद्धविरामके बाद कितने ही एशियाइयोंके नाम व्यापारके अस्थायी परवाने जारी कर दिये गये थे। इन परवानोंकी मियाद ३१ दिसम्बर १९ ३ तकके लिए थी

दी गई है। परन्तु इन परवानेदारोंको हिदायतें दे दी गई हैं कि उस तारीखको उन्हें उनके लिए निश्चित सड़कों या *बाजारोंमें* चला जाना होगा।

प्रार्थीकी नम्र रायमें खरीता उन तमाम वर्तमान ब्रिटिश भारतीय परवानेदारोंको जो लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें रहते थे साफ तौरसे *बाजार*-सूचनाके अमलसे बरी करता है।

प्रार्थी संघने सन् १८८५ के कानून ३ के अमलका सदा आदरपूर्वक विरोध किया है, क्योंकि वह स्वर्गीया महारानीकी सरकार और पिछली गणराज्य-सरकारके बीच मतभेदका विषय रहा है। वह पिछली लड़ाईके कारणोंमें से एक कारण था और ब्रिटिश संविधानके विपरीत है।

परन्तु अभी प्रार्थी इस सामान्य प्रश्नको उठाना नहीं चाहता। अभी तो वह यही आशा लेकर उपस्थित हुआ है कि यह माननीय सदन वर्तमान परवानेदारोंके साथ किसी प्रकारकी छेड़छाड़ नहीं होने देगा।

प्रार्थी संघके पास जो जानकारी है उसके अनुसार जिन्होंने लड़ाईसे पहले कभी व्यापार नहीं किया उनकी संख्या सम्भवतः एक सौसे अधिक न होगी। *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके लिए उनके परवाने भी अगर नये कर दिये गये तो *बाजार*-सूचनाके सिद्धान्तको कोई आँच नहीं आनेवाली है परन्तु स्वयं उन आदमियोंके लिए तो यह जीने और मरनेका सवाल है।

इसके अतिरिक्त "लड़ाई छिड़नेके समय या उससे तुरन्त पहले" इन शब्दोंके अमलसे बहुत भारी कठिनाइयाँ और ईर्ष्या भरे भेदभाव उत्पन्न हो जायेंगे।

प्रार्थी संघकी विनम्र राय है कि जो व्यक्ति सन् १८९९ के मध्यमें व्यापार करते थे उन्हें परवाने दे दिये जायें परन्तु जो १८९८ के अन्तमें तो व्यापार करते थे और १८९९ के प्रारम्भमें नहीं उन्हें इनकार कर दिया जाय तो यह सरासर अन्याय होगा। फिर, यह भी सम्भव है कि सन् १८९९ में भी एक पेढ़ीके दो साझेदार रहे हों। अगर दोनों परवानोंके लिए अर्जी करें तो एकको दूसरेपर तरजीह देना आसान बात नहीं होगी।

ये केवल उन बहुत-सी कठिनाइयोंके उदाहरण हैं जो इस सूचनाके कारण कानूनको अमलमें लानेके वक्त उत्पन्न होंगी।

ब्रिटिश भारतीय सम्राट्की राजभक्त प्रजा हैं और वे सदासे परदेश करनेवाले मेहनती और कानूनके मुताबिक चलनेवाले माने गये हैं।

इसलिए प्रार्थी संघ नम्र निवेदन करता है कि यह माननीय सदन इस विषयके पक्षमें विचार करे और सूचनामें ऐसा संशोधन करे कि आजके भारतीय परवानोंको मान्यता दी जा सके बशर्ते कि परवानेदार यह सिद्ध कर सके कि लड़ाईके पहले वह ट्रान्सवालका निवासी था। यह न्यायपूर्ण और उचित तो होगा ही, माननीय श्री चेम्बरलेन और परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरकी उल्लिखित घोषणाओंके अनुरूप भी होगा।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए आपका प्रार्थी कर्तव्य समझकर, सदा दुआ करेगा।

जोहानिसबर्ग आज तारीख ८ दिसम्बर, उन्नीस सौ तीन।

अब्दुल गनी
अध्यक्ष ब्रिटिश भारतीय संघ

हस्ताक्षरित मूल अंग्रेजी प्रति की फोटो-नकल (सिटिल्न एन मी ४/ १) से।

६० लॉर्ड हैरिस और भारतीय मजदूर

कोलोनिस्ट्स पत्रमें लॉर्ड हैरिसका वह भाषण उद्धृत किया है जो उन्होंने गत १२ मई को केनन स्ट्रीट होटल लंदनमें दक्षिण आफ्रिकाके संयुक्त स्वर्ण क्षेत्रों (कान्सॉलिडेटेड गोल्ड फील्ड्स) के हिस्सेदारोंकी साधारण सभामें दिया था। इस भाषणसे एशियाई मजदूरोंके प्रश्नपर लॉर्ड महोदयके विचारोंका हमें अधिक अच्छी तरह पता लग सकता है। हमें स्वीकार करना पड़ता है कि इस भाषणको पढ़कर हमें बड़ी निराशा हुई है और उनके प्रति सम्पूर्ण आदर रखते हुए हमें कहना पड़ता है कि जिन आर्थिक स्वार्थोंका वे प्रतिनिधित्व करते हैं उनकी रक्षाकी अत्यधिक चिन्ताने उनके विचारोंको ढक दिया है। लॉर्ड हैरिस भारतीयोंको ऐसी शर्तों-पर लाना चाहते हैं जो उन्हें यहाँ अपने दिमागका अगर ऐसी कोई चीज वे रखते हों उपयोग करनेसे रोकें और गिरमिटकी अवधि पूरी हो जानेपर उनको जबरदस्ती वापस कर दें। इसमें इस बातका कोई खयाल नहीं किया जायेगा कि वे यहाँ अधिक अच्छी कमाई कर सकते हैं या नहीं। लॉर्ड हैरिसने यह खोज की है कि इसमें वास्तवमें मजदूरोंका बहुत बड़ा हित होगा। लॉर्ड महोदय कहते हैं

> मुझे लगता है कि खानोंके लिए मजदूरोंकी भरती करनेकी इजाजत तब मिलेगी जब हम व्यापारीवर्गके साथ अधिक अच्छा व्यवहार करनेका वचन देंगे — इस शर्तमें कुछ अदूरदर्शिता मालूम होती है।
>
> कुली कोई बहुत पढ़े-लिखे तो होते नहीं। वे तो केवल शरीर-श्रम करनेवाले लोग होते हैं। भारतकी खानोंमें जिस प्रकारका व्यवहार मजदूरोंके साथ होता है उससे बुरा तो नहीं बल्कि शायद अच्छा ही व्यवहार हम उनके साथ करेंगे। और ऊँची जातियोंके लोग उन्हें जिस तरह भारतमें रखते हैं उससे तो निश्चय ही हमारा व्यवहार अधिक अच्छा होगा।
>
> मेरा तो खयाल है कि अगर इस तरह मजदूरोंको भारतसे बाहर जाने और वापस लौटनेके लिए उत्साहित किया जायेगा तो सारे भारतके लोगोंको उससे बड़ा लाभ होगा।

हम इन बातोंका जवाब कुछ नीचे प्रश्न पूछ कर देना चाहते हैं

क्या लॉर्ड महोदयको यह पता है कि भारतमें नीचेसे-नीचे वर्गका आदमी धीरज और अध्यवसायके बलपर ऊँचेसे-ऊँचे स्थानपर पहुँच सकता है? क्या वे जानते हैं कि अनेक भारतीय एक साधारण मजदूरकी स्थितिसे बहुत सम्मानित पदोंपर पहुँचे हैं? क्या यह सच नहीं है कि भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंको जबरदस्ती स्वदेश लौटानेका कारण यह है कि गिरमिटसे मुक्त होनेपर व्यापार और दूसरे व्यवसायोंमें वे यूरोपीयोंके साथ होड़ करने लग जायेंगे? क्या यह कहनेमें अप्रत्यक्ष रूपसे भारत-सरकारकी निन्दा नहीं है कि भारतीय मजदूरोंके साथ खुद भारतमें जैसा व्यवहार होता है उसकी अपेक्षा ट्रान्सवालमें अधिक अच्छा व्यवहार होगा? (व्यक्तिगत रूपसे हम नहीं मानते कि शारीरिक व्यवहारका प्रश्न यहाँ उठता भी है क्योंकि हमारा दृढ़ विश्वास है कि ट्रान्सवालमें मजदूरोंके साथ काफी अच्छा व्यवहार होगा।) क्या लॉर्ड महोदय सचमुच मानते हैं कि यदि ऊँची जातिके लोग भारतमें नीची जातिके लोगोंके साथ विवेकपूर्ण बरताव नहीं करते हैं तो इसी कारण एक उदार शासनके

मातहत रहो भी — भले कुछ बदले हुए रूपमें ही क्यों न हो — ऐसा भेदभाव बरतना उचित है? और क्या वे यह नहीं जानते कि भारतकी ऊँची जातियोंके लोगोंमें जो भी कमियाँ हों कमसे-कम वे अपने स्वार्थ-साधनके लिए तो परिवर्तित रूपमें गुलामीकी प्रथाको आश्रय नहीं देते? ट्रान्सवालमें बरसों रह लेनेके बाद और उसे भारतकी अपेक्षा अधिक अपना घर बना लेनेके बाद यदि वे मजबूर जबरदस्ती भूखों मरनेके लिए भारत भेज दिये जायेंगे तो क्या उससे इनका या भारतके अन्य निवासियोंका आर्थिक लाभ होगा? क्या यह किसी भी अर्थमें उचित कहा जा सकता है कि मनुष्योंके एक समाजको महज इस आशंकासे बौना बना दिया जाये कि वह मनुष्योंके दूसरे समाजसे स्पर्धा करने लगेगा? इस परिस्थितिको रोकनेका क्या यह रास्ता अधिक सीधा नहीं है कि गिरमिटिया मजदूरोंको लाना ही बन्द कर दिया जाये और उपनिवेशको अपने स्वाभाविक क्रमसे धीरे-धीरे विकसित होने दिया जाये?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १०-१२-१९१०

६१ लेडीस्मिथमें भारतीयोंके परवाने

लेडीस्मिथके टाउन क्लार्क श्री लाइन्सने शहरके परवाना-अधिकारीकी हैसियतसे शहरके भारतीयोंको सूचनाएँ भेजी हैं। उनमें विक्रेता-परवाना अधिनियमकी वे धाराएँ बताई गई हैं जिनमें व्यापारके परवाने देनेकी शर्तोंका उल्लेख है। साथमें प्रार्थनापत्रोंके फार्म भी भरनेके लिए भेजे हैं जिनमें निम्न महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद आया है

> मैं पाबन्द होता हूँ कि शनिवारको छोड़कर किसी भी दिन शामको पाँच बजे बाद अपनी दूकानको व्यापारके लिए खुला न रखूँगा। मैं अपने कारोबारकी जगहको सरकारी छुट्टीके सब दिनोंमें बन्द रखनेके लिए भी पाबन्द होता हूँ।

कुछ सप्ताह पूर्व ही हमने श्री लाइन्स और लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीयोंकी मुलाकातकी खबर छापी थी जिसमें श्री लाइन्सने धमकी दी थी कि यदि ब्रिटिश भारतीय अपनी दूकानें शामको पाँच बजे बन्द करना स्वीकार न करेंगे तो वे उनके परवाने अगले वर्षके लिए नये न करेंगे। अब उन्होंने पहला कदम बढ़ाया है और स्पष्ट धमकी अमलमें लायी जायगी। हम अपना यह मत व्यक्त कर ही चुके हैं कि यदि सम्भव हो तो लेडीस्मिथके भारतीय दूकानदारोंके लिए श्री लाइन्सके प्रस्तावको मान लेना ठीक होगा। हमें सन्देह नहीं इससे अन्तमें बहुत भलाई होगी। निस्सन्देह यह प्रश्न उठता है कि क्या भारतीय व्यापारी पाँच बजे सायंकाल अपनी दूकानें बन्द करके अपना व्यवसाय कर सकेंगे। सम्भव है उनका अधिकांश व्यवसाय केवल पाँच बजे बाद ही होता हो। इस स्थितिमें इस माँगकी पूर्ति उनके लिए असम्भव होगी किन्तु यदि ऐसी बात हो और वह सप्रमाण सिद्ध भी किया जा सके तो हमारा खयाल है श्री लाइन्समें इतनी न्यायबुद्धि अवश्य होगी कि वे पाबन्दीकी शर्तको छोड़ ही दें। यह पूर्णतः आपसी समझौतेका मामला है। हमें भरोसा है कि लेडीस्मिथके भारतीय व्यापारी संयमसे काम लेंगे और यह देखेंगे कि जो मार्ग हमने सुझाया है उसका अवलम्बन करनेमें उनका हित है। यदि दूकानें बन्द करनेका यह नियम समस्त व्यापारियोंपर लागू न होता हो तो निस्सन्देह उक्त आश्वासन

किसी भी अवस्थामें नहीं दिया जा सकता। इस सम्बन्धमें हम उनका ध्यान भी लाइसेंसकी सूचनामें दी गई निम्न धाराकी ओर आकर्षित करते हैं :

> उन दूकानों-मकानोंके सम्बन्धमें कोई परवाने न दिये जायेंगे जो निर्दिष्ट व्यापारके लिए अनुपयुक्त होंगे या जिनमें स्वास्थ्य और सफाईकी उचित और आवश्यक व्यवस्था न होगी या दोनों कामोंके लिए व्यवहृत होनेवाली इमारतोंके मामलेमें विक्रेताओं, मुहर्रिरों या नौकरोंके लिए आवास-घरों या उन कमरोंके अतिरिक्त, जिनमें माल और सामान रखा जा सके, पर्याप्त और योग्य स्थान न होगा।

यह निःसन्देह ऐसी व्यवस्था है जिसकी पूर्तिमें कोई भी हिचक या कठिनाई न होनी चाहिए। सचाई यह है कि लेडीस्मिथके अधिकतर भारतीय गोदाम इस प्रकारकी सभी आपत्तियोंसे मुक्त हैं यह हम जानते हैं किन्तु यह बताना अच्छा है कि उल्लिखित धारा भाषा और भाव दोनोंकी दृष्टिसे कार्यान्वित की जानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१२-१९०३

६२ सरकार तथा बारबर्टनके भारतीय

४ दिसम्बरके ट्रान्सवालके सरकारी *गजट*में श्री डब्ल्यू एच मूअरके हस्ताक्षरोंसे एक सूचना छपी है जिसके द्वारा भारतीयोंकी वर्तमान बस्ती ही *बाजार*की जगह निश्चित कर दी गई है। उसमें यह असाधारण अनुच्छेद भी है :

> इस *बाजारमें* मासुवारी किरायेदारीपर बाड़े केवल उन्हीं एशियाइयोंको दिये जायेंगे जो वर्तमानमें वहाँ रह रहे हैं या व्यापार कर रहे हैं। निवासी पट्टे नहीं दिये जायेंगे और किरायेदारोंको उपकिरायेदार रखनेका अधिकार नहीं होगा (केवल मूल सूचनामें ही दूसरे टाइपमें है)।

इस प्रकार बारबर्टनके आवासी मजिस्ट्रेट द्वारा जारी की गई सूचनाके जिस अत्यन्त आपत्तिजनक अंशकी तरफ कुछ समय पहले हमने पाठकोंका ध्यान खींचा था उसे सरकारने कायम रखा है। अब बस्तीको बन्द करनेके विरोधमें आपत्ति करके वास्तविक न्याय पानेका प्रयत्न करनेवाले भारतीयोंके सामने सम्भावना यह आती है कि उपकिरायेदार न रखनेकी शर्तके कारण उन्हें बगैर मुआवजेके बस्ती छोड़ नये *बाजारमें* जानेके लिए मजबूर होना पड़ेगा। पाठकोंको ज्ञात है कि इस नये *बाजार*के खिलाफ भी गंभीर आपत्तियाँ उठाई गई हैं। अगर वहाँ नहीं जाना है तो उन्हें बारबर्टनका ही छोड़ देना होगा। फिर भी लॉर्ड मिलनर कहते हैं कि बोअरोंके शासनकालमें भारतीयोंके साथ जैसा व्यवहार होता था उसकी अपेक्षा अब उनके साथ कहीं अच्छा व्यवहार हो रहा है!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१२-१९०३

६३ "मॉर्निंग पोस्ट" और एशियाई मजदूर

अभी हमारे हाथोंमें जोहानिसबर्गके जो समाचारपत्र आये हैं उनमें *मॉर्निंग पोस्ट* द्वारा भारत-सरकारसे गिरमिटिया मजदूर भेजनेके सम्बन्धमें की गई अपीलका समाचार छपा है। *डेली मेल*का संवाददाता कहता है कि पराये चीनियोंके बजाय ब्रिटिश भारतीय मजदूरोंसे खानोंकी खुदाई करवानेकी आशा अभी इस पत्रने छोड़ी नहीं है। उसने लिखा है कि यह पूरी तरह ब्रिटिश साम्राज्यके हितमें है कि भारत-मन्त्री श्री ब्रॉड्रिक भारतके वाइसराय लॉर्ड कर्जनसे ट्रान्सवालके साथ भारतीय मजदूरोंके बारेमें कोई समझौता करनेका आग्रह करें, जिसमें कुलियोंको मात्र अच्छे व्यवहारका आश्वासन तो हो परन्तु उन्हें राजनीतिक अधिकार देनेका नहीं। हम नहीं जानते कि राजनीतिक अधिकार से *मॉर्निंग पोस्ट* क्या समझता है परन्तु हमें बड़ा भय है कि दक्षिण आफ्रिकामें इन शब्दोंका प्रयोग एक ऐसे नये अर्थमें करनेका विचार किया जा रहा है जिसमें ब्रिटिश प्रजाजनोंके घूमने-घामने व्यापार करने और रहनेके मामूली अधिकार भी सम्मिलित हो जायें। ब्रिटिश भारतीय मताधिकारकी आकांक्षा नहीं करते परन्तु व्यापार करनेकी और जहाँ उनकी इच्छा हो वहाँ बसनेकी पूर्ण स्वतन्त्रताका — जहाँतक वह रंग-भेदके बगैर किये गये सफाईके प्रबन्ध और तत्सम्बन्धी विधानोंके विरुद्ध न पड़ती हो — आग्रह जरूर रखते हैं। अगर पोस्ट हमारी बताई इन बातोंको अच्छे व्यवहारका अंग मानता है तो हमें उसकी दलीलके विरोधमें कुछ भी नहीं कहना है परन्तु जैसा कि ट्रान्सवालके लोग जोर दे रहे हैं यदि इन मजदूरोंको जबरदस्ती स्वदेश लौटाया जानेवाला है और उनपर दूसरे नियन्त्रण लगाये जानेवाले हैं तो हमें कहना होगा — जैसा कि हमने बहुधा कहा है — कि इन व्यापारियोंके अधिकार हमें बहुत ही महँगे पड़ेंगे। और जब *मॉर्निंग पोस्ट* जैसा प्रभावशाली अखबार भी ट्रान्सवालके लिए भारतीय मजदूरोंकी वकालतपर जोर देता है तो भारतीयोंके हितैषी इंग्लैंड और दक्षिण आफ्रिकाकी घटनाओंपर जितनी भी सावधानीसे नजर रखें उतनी थोड़ी ही होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १०-१२-१९०३

६४ "बाजार"-सूचनामें संशोधन[1]

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर ११, १९०३

सरकारका विचार विधान-परिषदमें *बाजार*-सम्बन्धी सूचनामें एक संशोधन पेश करनेका है, उसके फलस्वरूप ट्रान्सवालके कुछ ब्रिटिश भारतीय विशेष रूपसे पृथक बनाये गये *बाजारों* या बस्तियोंमें ही अपना व्यापार चलानेकी पाबन्दीसे मुक्त हो जायेंगे।

परन्तु इस संशोधनमें सब वर्तमान परवानेदार नहीं आते। संशोधित कानूनका असर फिर भी यह रह जायेगा कि कोई एक सौ ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको बस्तियोंमें जाना पड़ेगा। इसका मतलब यह होगा कि ये सब व्यापारी बिलकुल बरबाद हो जायेंगे।

इसलिए यहाँ ब्रिटिश भारतीयोंकी एक सार्वजनिक सभा की गई और उसमें इस आशयका प्रस्ताव पास किया गया कि जबतक ट्रान्सवालके भारतीय-विरोधी कानूनोंमें वह परिवर्तन नहीं कर दिया जाता जिसका वादा किया गया है तबतक सभी वर्तमान परवानेदारोंकी रक्षा की जाये।

विधान-परिषद प्रस्तावित संशोधनपर आगामी सोमवार, १४ दिसम्बरको विचार करेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया १८-१२-१९०३

६५ तार : ब्रिटिश समितिको

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर १२, १९०३

सेवामें
इन्काब

सरकार विधान-परिषदमें *बाजार*-सम्बन्धी सूचना संशोधन लाना और सब वर्तमान परवानोंको शामिल न करके केवल कुछ भारतीयोंको *बाजारमें* व्यापारकी पाबन्दीसे मुक्त करना चाहती है। इसका अर्थ है लगभग सौ व्यापारियोंको बस्तियोंमें अनिवार्यतः हटाना और उनकी बिलकुल बरबादी। अतः ब्रिटिश भारतीयोंकी सामूहिक सभामें प्रस्ताव द्वारा प्रार्थना की गई कि सब वर्तमान परवानेदारोंको भारतीय-विरोधी कानूनोंमें परिवर्तन होने तक संरक्षण दिया जाये। परिषदमें संशोधन पर विचार सोमवारको होगा। कृपया सहायता करें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स ५७/१९०४।

१. यह "एक संवाददाता द्वारा प्राप्त" रूपमें प्रकाशित हुआ था।

६६. एक सामान्य पत्र[1]

[सितम्बर १०, १९[illegible] के पूर्व]

महोदय

परिषद्के कार्यक्रममें इस वर्षकी बाजार-सूचना ३५६ के संशोधनपर माननीय उपनिवेश-सचिवके नामपर जो प्रस्ताव पेश है, उसके सम्बन्धमें विधान-परिषद्के विचारार्थ एक प्रार्थनापत्र[2] पहले ही भेजा जा चुका है। मेरे संघकी विनती है कि श्रीमान उसपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करें।

तथापि कुछ बातें ऐसी हैं जिनका उल्लेख प्रार्थनापत्रमें ठीक तरहसे नहीं किया जा सकता था। इसलिए मेरा संघ यह निवेदन आपकी सेवामें प्रस्तुत करनेकी अनुमति चाहता है।

प्रार्थनापत्रमें जिस विषयकी चर्चा की गई है वह भारतीय समाजके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और अगर यूरोपीय व्यापारियोंके दृष्टिकोणसे देखा जाये तो उनके लिए उसका कोई तुलनात्मक महत्त्व नहीं है।

अगर माँगी गई राहत नहीं मिलती तो आगामी १ जनवरीको ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंकी स्थिति अत्यन्त संकटग्रस्त हो जायेगी।

आप परिस्थितिको पूरी तरह समझ सकें इस उद्देश्यसे सरकारके प्रति सम्पूर्ण आदर प्रकट करते हुए मैं कहता हूँ कि बाजारोंके लिए जो स्थान चुने गये हैं वे व्यापारकी दृष्टिसे निकम्मे हैं। लगभग प्रत्येक स्थान शहरसे बहुत दूर है और वहाँ मामूली सुविधाएँ भी नहीं हैं। वहाँ जानेका मतलब भारतीयोंके लिए बिलकुल नये कस्बे या गाँव बसाने जैसा ही होगा।

इस बातका अधिक विस्तार करना आवश्यक है, क्योंकि आप देशसे परिचित हैं, और कमसे-कम कुछ बाजारोंके स्थानोंकी स्थिति भी जानते हैं। इसलिए अन्य कारणोंसे नहीं तो केवल इसी कारणसे मेरा निवेदन यह है कि वर्तमान परवानेदारोंको छेड़ना उनके लिए अत्यन्त संकटावह होगा।

मेरे संघको पता है कि परिषद्के कुछ माननीय सदस्य मानते हैं कि उपनिवेशमें लड़ाईसे पहले जितनी भारतीय आबादी थी उसकी अपेक्षा अब बहुत अधिक है और उपनिवेशमें ऐसे बहुत-से भारतीय घुस आये हैं जो पहले यहाँ नहीं रहे हैं। मैं आपको निश्चय दिलाना चाहता हूँ कि वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। कुछ नये लोग देशमें जरूर आ गये हैं परन्तु परवानोंके सिलसिलेमें पिछले दिनों जो मुकदमे चलाये गये थे उनके फलस्वरूप बहुत-से लोगोंको देशकी सीमासे बाहर कर दिया गया है और उन नये लोगोंमें से तो शायद ही किसीके पास परवाना हो।

इसलिए मेरे संघकी यह विनती नये लोगोंकी तरफसे नहीं परन्तु सच्चे स्थायी निवासियोंकी तरफसे है। उन्हें बाजारोंमें भेजनेके इस प्रयासका एकमात्र कारण यह है कि लड़ाईसे पहले वे ट्रान्सवालमें व्यापार नहीं करते थे या विशेषतः जिन स्थानोंमें व्यापार करनेके परवाने अब उनके पास हैं उनमें वे लड़ाईसे पहले व्यापार नहीं करते थे। यह एक ऐसा भेद है कि उसका औचित्य समझमें आना कठिन है। असलमें छोटे-छोटे शहरोंमें भारतीय व्यापारियोंकी तथाकथित होड़का भय इस बातकी जड़में है। परन्तु मेरे संघका नम्र निवेदन तो यह है कि ऐसे छोटे शहरोंमें बहुत कम भारतीय व्यापारी हैं। इनमें से अधिकांश तो मुख्यतः जोहानिसबर्गमें

1. यह ब्रिटिश भारतीयोंने ट्रान्सवाल विधान-परिषद्के सदस्योंको लिखा था।
2. देखिए "प्रार्थनापत्र : ट्रान्सवाल विधान-परिषद्को," सितम्बर ८, १[illegible]।

है, जहाँ कि यह दुर्भाव इतना तीव्र नहीं है और न वहाँ ऐसी भारी होड़ ही अनुभव की जा रही है, क्योंकि वहाँ यूरोपीय व्यापारियोंकी संख्या बहुत अधिक है। तब क्या इन थोड़े-से गरीब भारतीय व्यापारियोंकी रोटी छीनना ठीक है, क्योंकि जितनी भी बार यह कहा जाये थोड़ा ही होगा कि भारतीयोंका *बाजारोंके* बाहर जो व्यापार है उसे *सफलताकी सम्भावनाके* साथ बस्तियोंमें ले जाना असम्भव है? मेरा संघ इस सम्बन्धमें कुछ उदाहरण पेश करना चाहता है

उदाहरणके लिए, रस्टेनबर्गमें केवल एक भारतीय व्यापारी व्यापार कर रहा है, यद्यपि वह लड़ाईसे पहले वहाँ व्यापार नहीं करता था। यहाँ क्षेपक रूपमें कहा जा सकता है कि वह *जोहानिसबर्गमें जरूर थोक व्यापार करता रहा है।* क्या यह अकेला भारतीय *बस्तीमें* बसा जाये जो कि लगभग वियावान जंगल-सा है, जहाँ कोई आवागमन नहीं और जहाँ अकेले एक आदमीका रहना भी खतरनाक है? और क्या केवल इस आदमीको हटा देनेसे आज शहरमें जो दूसरे व्यापारियोंका व्यापार चल रहा है उसमें कोई कहने लायक अन्तर पड़ जायेगा?

स्वीजर रेनेकी बात तो इससे भी गम्भीर है। वहाँ दो व्यापारी हैं जो लड़ाईसे पहले वहाँ व्यापार नहीं करते थे यद्यपि उनमें से कमसे-कम एक लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें व्यापार करता था। इस जगह बहुत कम मकानात हैं और आबादी भी बहुत विरल है। क्या ये दो आदमी उस बस्तीमें जाकर कुछ भी व्यापार कर सकेंगे जो बहुत दूर है और जहाँ आज एक भी आदमी नहीं रहता?

इस तरहके बहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं। उनसे प्रकट है कि प्रयोगमें लाये जानेवाले साधन और प्राप्त किये जानेवाले परिणामके बीच हद दर्जेका बेमेलपन है। संघका मत है कि इन देशभरमें बिखरे व्यापारियोंको *बाजारोंमें* भेजना बीमारीको भगानेका अत्यन्त उग्र उपाय है और इससे वह बीमारी अच्छी नहीं होगी जो मौजूद बताई जाती है। हाँ, अगर नये आनेवाले भारतीयोंको *बाजारोंके* बाहर व्यापार करनेके परवाने देनेकी इच्छा है तो इसको मेरा संघ पूरी तरह समझ सकता है। फिर भी जिनका व्यापार-व्यवसाय निःसन्देह जम गया है उनके प्रति उपेक्षापूर्ण रुखको सहन करना बहुत कठिन है, क्योंकि पिछले वर्ष जो परवाने दिये गये थे वे भारतीयोंने खुले तौरपर जायज तरीकेसे प्राप्त किये थे। ब्रिटिश *अधिकारियोंने भी उनको ये परवाने यह जानते हुए कि वे भारतीय हैं और लड़ाईसे पहले* अपने क्षेत्रोंमें व्यापार नहीं करते थे इस आधारपर दिये थे कि वे शरणार्थी हैं। इन परवानोंको जारी करते समय कोई शर्त भी नहीं लगाई गई थी।

इसलिए मेरा संघ आदरपूर्वक पूछता है कि क्या इन मुट्ठीभर भारतीयोंको इस तरह परेशान करना वाजिब है जिन्होंने अपना व्यापार अच्छी तरह जमा लिया है, जिनके भण्डारोंमें बहुत-सा माल पड़ा है और जिनमें से कुछने अपने कब्जेकी जगहोंके लम्बे पट्टे लिखा रखे हैं? मेरा संघ मानता है कि आप केवल यूरोपीयोंके हितोंका ही नहीं बल्कि उन सबके हितोंका प्रतिनिधित्व करते हैं जो इन उपनिवेशोंमें बस गये हैं और विशेष रूपसे उनका जो ब्रिटिश प्रजाजन हैं। इसलिए मेरा संघ आशा करता है कि उसने आपके सामने जो प्रश्न रखा है उसका अध्ययन करनेके लिए आप जरूर समय निकालेंगे और न्यायोचित निर्णयपर पहुँचेंगे।

आशा है आप कष्टके लिए क्षमा करेंगे।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष, *ब्रिटिश भारतीय संघ*

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १०-१२-१९०३

६७. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

जोहानिसबर्गके अखबारोंमें हमने पढ़ा कि ट्रान्सवालकी विधान-परिषदकी कार्रवाई प्रार्थना पूर्वक शुरू हुई। अपने भाषणके अन्तमें परमश्रेष्ठ परिषद-अध्यक्षने सदस्योंको "सर्वशक्तिमान परमेश्वरके मार्गदर्शनमें सौंपा और उनसे अत्यन्त भावभरी प्रार्थना की कि उनकी सारी मन्त्रणाएँ उसकी महिमाको बढ़ायें और राज्यको समृद्ध बनायें।" और, उन्होंने विश्वास प्रकट किया कि "उन्हें अपने कार्यमें परमात्माका अनुग्रह प्राप्त होगा।" यह सब बहुत उत्तम है और यहाँतक तो बहुत सन्तोषजनक भी है। जो ईश्वरका भय मनमें रखकर प्रत्येक कार्य करते हैं और अपने प्रत्येक कार्यमें उसका मार्गदर्शन चाहते हैं उनसे भय करनेकी कोई बात नहीं है। परन्तु दुर्भाग्यसे इस तरहकी बातें बहुत-कुछ रूढ़ बन गई हैं। हम प्रार्थना इसलिए करते हैं कि वह रिवाजमें आ गई है; हम ईश्वरकी मदद भी इसीलिए माँगते हैं कि वह भी एक रिवाज हो गया है, इसलिए नहीं कि हम उसे कोई विशेष महत्त्व प्रदान करते हैं या उसके पीछे सचमुच ऐसी कोई भावना होती है, जो उसकी मदद प्राप्त करनेके लिए जरूरी है। हमें बहुत भय है कि जब परमश्रेष्ठने प्रार्थना पढ़ी या अपने भाषणको समाप्त किया तब शायद उन्होंने अपने-आपसे यह प्रश्न भी नहीं पूछा कि परिषदके विचारणीय विषयोंमें कोई ऐसी बात तो नहीं है जो सम्भवतः प्रभु-महिमाको बढ़ानेवाली न हो। और, हम तो वस्तुस्थितिको ही जाँचें। उपनिवेश-सचिव श्री पी० डंकनने नीचे लिखे प्रस्तावकी सूचना दी:

> एशियाइयोंके व्यापारके लिए *बाजारोंकी* तजवीज करनेके सम्बन्धमें ८ अप्रैल १९०३ की शासकीय सूचना ३५६की उपधारा ३ न लड़ाई आरम्भके बाद नीचे लिखे शब्द जोड़ दिये जायें — इसी प्रकारकी परिस्थितियोंमें उन एशियाइयोंको परवाने दिये जायें जो लड़ाई शुरू होते समय अथवा उसके तुरन्त पहले ऐसी जगहोंमें व्यापार करते थे जिनको सरकारने विधिवत रूपसे निश्चित नहीं किया था — भले ही उनके पास उस समय ऐसे व्यापारके लिए कानूनके अनुसार आवश्यक परवाने न भी रहे हों। वे तमाम व्यापारी जो इस उपधाराके मातहत परवाने पानेकी माँग करें, इस सम्बन्धमें अपना सबूत राजस्व-अधिकारीके सामने पेश करें और उसको सन्तोष करा दें कि उनके सम्बन्धमें उपर्युक्त शर्तें पूरी हो जाती हैं।

इस प्रस्तावके बारेमें ब्रिटिश भारतीय क्या सोचते हैं यह बतानेके लिए *इंडियन ओपिनियन*के इस अंकमें पाठकोंको काफी सामग्री मिलेगी। इन स्तम्भोंमें हम अनेक बार बता चुके हैं कि बाजार-सम्बन्धी सूचना अन्यायपूर्ण है और यह स्वर्गीया महारानीके मन्त्रियों तथा श्री चेम्बरलेन द्वारा समय-समयपर दिये गये वचनोंके विपरीत है। परन्तु इस समय हम यह प्रश्न नहीं उठाना चाहते। हम तो ब्रिटिश भारतीय अर्जदारोंने अपनी दरख्वास्तमें जो स्थिति बताई है केवल उसीकी जाँच करेंगे।

परन्तु ऐसा करनेसे पहले हम इस अवसरपर अपने ट्रान्सवालवासी देशभाइयोंको बधाई देते हैं कि उन्होंने ऐसी सराहनीय क्रियाशीलता दिखाई है और इतने व्यवस्थित ढंगसे अपना प्रार्थनापत्र अधिकारियोंके सामने पेश किया है। उसी हफ्तेके मंगलवार और बुधवारके बीच विधानसभाको प्रार्थनापत्र देना, सदस्योंको एक लम्बा व्यक्तिगत भेजना और सफल सार्वजनिक

सभा करना जिसमें लगभग पाँचसौ लोग उपस्थित हों बहुत ही प्रशंसाके लायक काम है और हम नेटाल-वासी भारतीयोंके लिए अनुकरणीय है।

अब हम प्रस्तुत विषयपर आते हैं। संक्षेपमें स्थिति यह है

बाजार-सूचना उन ब्रिटिश भारतीयोंके परवानोंमें हस्तक्षेप नहीं करती जो यह सिद्ध कर सकते हैं कि लड़ाई छिड़ते समय उनके पास *बाजारोंसे बाहर व्यापार करनेके परवाने* थे। अब सरकार यह संरक्षण उन लोगोंको भी देना चाहती है जो लड़ाई छिड़ते समय बिना परवानोंके व्यापार करते थे। फिर तो केवल वे भारतीय शेष रह जाते हैं जो यद्यपि लड़ाईसे पहले व्यापार तो नहीं करते थे परन्तु शरणार्थी होनेके कारण ब्रिटिश अधिकारियोंसे परवाने प्राप्त कर सके थे। इसलिए ब्रिटिश भारतीयोंने विधान-परिषदको प्रार्थनापत्र दिया है और विनती की है कि इस अन्तिम वर्गके व्यापारियोंको भी संरक्षण दिया जाये। उनका तर्क कुछ इस प्रकार है

जिन लोगोंको आप संरक्षण नहीं देना चाहते उनकी संख्या बहुत छोटी है और जहाँ तक *यूरोपीयोंकी भावनाका प्रश्न है यह विचार करने योग्य भी नहीं है।* करीब ६ सौ परवाने हैं। इनमें से उक्त वर्गमें नये प्रकारके व्यापारियोंको अलग करके आप करीब सौ आदमियोंको बस्तियोंमें खदेड़ सकेंगे। इससे लोकमें मुश्किलसे कोई अन्तर पड़ेगा। आपने इन परवानेदारोंकी रक्षा करनेका बार-बार वचन दिया है। श्री चेम्बरलेनने यह वचन दिया है और लॉर्ड मिलनरने भी दिया है। लड़ाईसे पहले ब्रिटिश एजेंटोंने गणराज्यकी हुकूमतके बावजूद अर्जी-पुर्जी करके ब्रिटिश भारतीयोंका व्यापार बचाया था। इसलिए यद्यपि आपने सिंहके समान शक्ति पा ली है, फिर भी आपको अपनी इस शक्तिका उपयोग इन थोड़े आदमियोंको कुचल कर उनका अस्तित्व मिटा देनेमें नहीं करना चाहिए। इनने कोई अपराध नहीं किया है। आप इन पर ऐसे दोषोंका आरोप कर रहे हैं जिनकी अगर ठीक जाँच की जाये तो आप देखेंगे कि वे कोई दोष ही नहीं हैं और व्यापारिक ईर्ष्याको भी इतना बढ़ावा नहीं देना चाहिए कि उससे निहित अधिकार खतरेमें पड़ जायें।

हमें ऐसा मालूम होता है कि ऐसी दलीलका, जैसी यह है, कोई जवाब नहीं है और जोहानिसबर्गमें वेस्ट ऐंड हॉलकी बड़ी सभामें वक्ताओंने जो तथ्य बताये थे सही हैं। तो क्या सरकारने जो रुख धारण किया है वह परमश्रेष्ठकी विधान-परिषदके सदस्योंको ईश्वरके मार्ग-दर्शनमें सोचनेकी बातसे मेल खाता है? और क्या उनकी परिषदके सदस्योंकी मनोकामनाएँ ईश्वरकी महिमाको बढ़ायें इस भावभरी प्रार्थनासे कोई संगति है? हम स्पष्ट रूपसे कहते हैं कि इसमें हमें ईश्वरका हाथ दिखाई नहीं देता। हम यह भी नहीं मानते कि सैकड़ों निर्दोष व्यापारियोंको बरबाद कर देनेसे किसी प्रकार भी ईश्वरकी महिमा बढ़ सकती है, या राज्य समृद्ध बन सकता है।

उधर हम देखते हैं कि पूर्वी ट्रान्सवाल पहरेदार-संघ (ईस्ट रैंड विजिलैंट्स) उपर्युक्त संशोधन करनेकी हिम्मत करनेपर सरकारके खिलाफ झंडा लेकर खड़ा हो गया है। वह इस बातपर आगबबूला हो रहा है कि जिस सरकारने लड़ाईसे पहले ब्रिटिश भारतीयोंको पिछली प्रजातन्त्री सरकारके कानूनोंका भंग करके भी बगैर परवानोंके व्यापार करनेमें मदद दी वही अब उन परवानोंको कानूनी आधार पर उन्हें वहीं संरक्षण दे रही है और विलम्बसे ही सही उनके साथ न्याय कर रही है। इसलिए उन्होंने विधान-परिषदको एक अर्जी भी भिजवाई है। इस तरह सरकारके सामने एक तरफ ब्रिटिश भारतीयोंकी अत्यन्त युक्तिसंगत विनती है जिसमें सरकारसे एक बहुत छोटा न्याय माँगा गया है, और दूसरी तरफ पूर्वी ट्रान्सवाल पहरेदार-संघके इसके विरोधी हैं जिनकी माँग है कि भारतीयोंके साथ किसी प्रकार भी न्याय न किया जाये। बोक्सबर्गके इन सबसे आत्मविश्वासी दम्भियोंपर दुःख होनेके साथ-साथ हँसी भी आती है। उनका तमाम

है कि अगर सरकारने *बाजार-सूचना*में किसी प्रकारका भी संशोधन किया तो वह ट्रान्सवालके गोरे निवासियोंके साथ विश्वासघात होगा। क्या ये भले आदमी क्षणभर यह विचार भी करनेका कष्ट करेंगे कि इस तरहकी दलील देकर वे अपने आपको कितनी हास्यास्पद स्थितिमें रख रहे हैं, क्योंकि सरकारके लिए भारतीयोंके प्रति पहले घोर विश्वासघात किये बगैर गोरे निवासियोंको किसी प्रकार भी वचन देना असम्भव है? हमारे ये मित्र यह उम्मीद कैसे कर रहे हैं कि सरकार भारतीयोंको निश्चित रूपसे बस्तियोंमें भेजनेका निश्चित वचन दे जब कि साम्राज्य-सरकारने इसी प्रश्नको लेकर युद्धकी घोषणातक कर दी थी? *बाजार-सूचना* निकल चुकी है यह सही है। परन्तु हमने जो-जो बातें कही हैं उनको ध्यानमें रखते हुए इसका अर्थ यह तो नहीं लगाया जा सकता कि वह गोरे निवासियोंको किसी प्रकारका वचन है, यद्यपि हम यह स्वीकार करते हैं कि इस सूचनाको जारी करना सरकारकी कमजोरीका चिह्न है। परन्तु सूचना निकलनेपर यह तर्क असंगत है कि अब सरकारको उसमें अपनी पसन्दके मुताबिक किसी प्रकार भी संशोधन करनेका अधिकार नहीं है। हमारी तो विनीत राय है कि ट्रान्सवालकी शक्तिशाली सरकारके सामने सीधा रास्ता यह है कि उसने ब्रिटिश भारतीयोंको जो वचन दिये हैं उनका वह पालन करे और केवल यही नहीं इन वचनोंके अलावा भी उसका यह कर्तव्य है कि वह बलवान पक्ष अर्थात् यूरोपीयोंके विरोध और दुर्भावोंसे कमजोरों अर्थात् भारतीयोंकी रक्षा करे, क्योंकि स्वार्थ बलवानोंकी न्याय भावनाको अन्धा कर सकता है। इसलिए सरकारको उनके विरोधसे विचलित नहीं होना चाहिए — भले ही वह जोरदार भी क्यों न हो — बल्कि परस्पर-विरोधी स्वार्थोंके बीच न्यायकी तराजूके पलड़े बराबर रख कर विशुद्ध न्याय ही करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १७-१२-१९०३

६८ जोहानिसबर्गमें भारतीयोंकी आम सभा

पिछले बुधवारकी सुबह जोहानिसबर्गमें हमारे भाइयोंकी एक बड़ी सभा हुई थी। उसमें २४ घंटेकी सूचनापर गाँव-गाँवसे प्रतिनिधि शामिल हुए, जिसके लिए उन्हें शाबाशी दी जानी चाहिए। विख्यात पेढ़ी मुहम्मद कासिम कमरुद्दीनके संचालक सेठ अब्दुल गनी सभाके अध्यक्ष थे। उन्होंने प्रभावशाली भाषण दिया और साबित किया कि सरकार कानूनमें जो फेरफार करनेवाली है वे काफी नहीं हैं। इस समय ट्रान्सवालमें भारतीय व्यापारी तीन तरहके हैं (१) जो लड़ाईसे पहले परवाने लेकर व्यापार कर रहे थे (२) जो बगैर परवाना लिए व्यापार करते थे और (३) ब्रिटिश शासन आनेके बाद जिन्हें परवाने दिये गये। लड़ाईसे पहले जो परवाने लेकर व्यापार करते थे उन्हें नये परवाने दिये जा रहे हैं। अब सरकार यह सुधार करना चाहती है कि दूसरे वर्गके लोगोंको अर्थात् लड़ाईसे पहले जो व्यापार करते थे परन्तु जिनके पास तब परवाने नहीं थे उन्हें भी परवाने दे दिये जायें। इस सभाका उद्देश्य यह था कि तीसरे वर्गके व्यापारियोंके साथ भी न्याय हो अर्थात् जो लोग पहले व्यापार नहीं करते थे परन्तु जिन्हें ब्रिटिश अधिकारियोंने परवाने दे दिये थे उन्हें भी परवाने दिये जायें। स्वयं चेम्बरलेनने भी कहा था कि परवाने उन्हें भी जरूर दिये जाने चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १७-१२-१९०३

६९. एक सामान्य पत्र[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२१-२४ कोर्ट च
रिसिक स्ट्री
जोहानिसबर्ग
दिसम्बर १७, १९

महोदय

इस वर्षकी एशियाई *बाजार*-सूचना १५६ में प्रस्तावित संशोधनके सम्बन्धमें ब्रिटि
असोसिएटेड चेम्बर ऑफ कॉमर्सकी बैठक समीप आ रही है। इस बातको ध्यानमें रखते ह
ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) की ओरसे एक संक्षिप्त विवरण
विचारार्थ नम्रतापूर्वक प्रस्तुत करता हूँ।

परम माननीय श्री चेम्बरलेन जब ट्रान्सवाल आये थे तब उनसे ब्रिटिश भारतीयोंका
शिष्टमण्डल मिला था। उन्होंने शिष्टमण्डलके सदस्योंको परामर्श दिया था कि वे अपना
उपनिवेशवासी यूरोपीयोंसे एकमत होकर चलें। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता ह
मेरा संघ जिस समुदायका प्रतिनिधित्व करता है उसके सदस्योंकी सदा यही अभिलाषा र

मैं समझता हूँ कि भारतीयोंके विरुद्ध आम आपत्ति उनके रहन-सहनके तरीकेके सम
है। इसलिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि वे इस दिशामें क्या कर सकते हैं — अभीतक उ
दिखानेका अवसर ही नहीं दिया गया है। उनकी स्थितिकी व्याख्या कभी स्पष्ट रूपसे न
गई। वे अनिश्चितताकी स्थितिमें रहनेके लिए बाध्य किये गये हैं। कुछ भी हो मैं
विश्वास दिलाता हूँ कि सफाई या व्यवसाय-स्थानोंकी निवास-स्थानोंसे पृथकताके सम्बन्ध
भी नियम बनाये जायेंगे भारतीय उनको तत्काल मान लेंगे। वस्तुतः मेरे संघने सरकारको
निवेदन-पत्र भेजा है कि नये प्रार्थियोंको व्यापारिक परवाने देना नगरपालिकाके नियन्त्रणमें
किन्तु सत्ताके दुरुपयोगके विरुद्ध संरक्षण देनेके निमित्त उन्हें न्यायालयमें अपीलका अधिकार
यह बात भारतीय समाजको बिलकुल स्वीकार होगी।

उपनिवेशके बहुतसे लोगोंके मनमें यह भय है कि भारतीयोंका उपनिवेशमें प्रवाह
बंधित रहेगा तो वे अपने संख्या-बलसे ही गोरी आबादीको दबा देंगे। मेरा संघ इस भ
परिचित है। यद्यपि मेरा संघ इस प्रकारके प्रत्येक भयको निराधार समझता है कि
अपनी यूरोपीयोंके साथ सहयोगकी इच्छाकी सचाई बतानेके लिए उसने कुछ परिवर्तनोंके
केप-अधिनियमके आधारपर प्रवासपर रोक लगानेवाले विधानका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया

परन्तु प्रस्तावित संशोधनपर विचारके लिए आम सवालपर गौर करना भा
जरूरी है। उपनिवेश-सचिवके प्रस्तावमें *बाजार*-सूचना ही अमलमें लाई गई है, प
मेरे संघकी विनीत सम्मतिमें उसमें न्यायका मूल सिद्धान्त तबतक पूरा नहीं होता

1. यह पत्र रोडेशियाके असोसिएटेड चेम्बर्स ऑफ कॉमर्सके सदस्योंको सम्बोधित किया ग
१८ १९-११-१९०६ के *इंडियन ओपिनियन*में प्रकाशित हुआ था। यह दादाभाई नौरोजीको भी भेजा ग
जिन्होंने इसकी एक प्रति भारत-मंत्रीको भेजी थी।

उसकी कमीकी पूर्ति संघकी प्रार्थनाके अनुसार नहीं की जाती। उसमें उन ब्रिटिश भारतीयोंके निहित स्वार्थोंकी रक्षाकी बात है जो बोअरोंके शासनमें ब्रिटिश प्रतिनिधिके हस्तक्षेपसे बस्तियों या बाजारोंके बाहर परवानोंके बिना व्यापार करते थे। अगर आप उसी संरक्षणको अब भी जारी रखनेका विरोध करेंगे जब ब्रिटिश सरकार उसे देनेकी अधिक अच्छी स्थितिमें है तो मुझे इसस दुःख और आश्चर्य ही होगा।

और यदि आप सब उपनिवेश-सचिवके वर्तमान परवानेदारोंको संरक्षण देनेके प्रस्तावको मंजूर करेंगे तो आप उस प्रस्तावकी पूर्ति ही करेंगे।

उपनिवेशमें कदाचित् बाजारोंसे बाहर १   से अधिक एशियाई परवानेदार नहीं हैं। इनमें से ५   पर बाजार-सूचना और प्रस्तावित संशोधनका असर नहीं होगा। इसलिए केवल १   परवानेदार ऐसे रहेंगे जो सूचनाके अन्दर नहीं आते हैं। तर्क यह है कि इन १   परवानेदारोंके अधिकार भी उतने ही ध्यान देने योग्य हैं जितने दूसरोंके। क्योंकि वे सभी ट्रान्सवालके ही भूतपूर्व निवासी हैं और उनको ब्रिटिश अफसरोंने किसी प्रकारके प्रतिबन्धके बिना गत वर्ष परवाने दिये थे। इसलिए यदि आप ५०   परवानेदारोंपर से अपनी आपत्ति हटा लें तो शेष परवानोंको भी उसी कोटिमें रखनेसे न्यूनतम न्यायकी पूर्ति ही होगी।

कदाचित् आप लड़ाईसे पहले डर्बनकी गोरा समितिके सदस्य थे। यदि ऐसी बात है तो मैं यह कह सकता हूँ कि ठीक युद्धसे पूर्व समितिने बड़ी प्रसन्नतासे अपने विचारोंके प्रसारके लिए भारतीयोंका सहयोग प्राप्त किया था। भारतीयोंको समान उद्देश्यकी पूर्तिके लिए साथ लेनेके पक्षमें समितिका एक तर्क यह था कि अंग्रेजोंका अधिकार होनेपर भारतीयोंको १८८५के कानून ३ द्वारा लगाई गई निर्योग्यताओंसे पीड़ित न होना पड़ेगा। इसलिए निवेदन है कि मेरा संघ इस आश्वासनपर अमलकी आशा करनेका अधिकारी है।

भारतीय ब्रिटिश प्रजा हैं। भारतके ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने ब्रिटिश ताजका अत्यन्त प्रकाशमान रत्न बताया है। वह साम्राज्यकी लड़ाइयाँ लड़नेके लिए सदैव उद्यत है। नेटालमें कदाचित् भारतीय सेनाने ही स्थिति बिगड़नेसे बचाई थी। स्थानीय भारतीय भी अपना हिस्सा अदा करनेमें पीछे नहीं रहे थे। उसी समाजके सदस्योंके लिए मेरा संघ आपकी सहानुभूतिकी प्रार्थना करता है और वह भी उस मामलेमें जो भारतीयोंके लिए तो बहुत अधिक महत्त्वका है, फिर भी आपके लिए अपेक्षाकृत महत्त्वहीन है। इसलिए मेरा संघ विश्वास करता है कि असोसिएटेड चेम्बर्स अपनी बैठकमें समस्त वर्तमान भारतीय परवानोंकी रक्षाके लिए सिफारिश करेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफ़िस : ज्युडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स ५७/१ ४।

६९. एक सामान्य पत्र

ब्रिटिश भारतीय संघ

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
दिसम्बर १०, १९०३

महोदय,

इस वर्षकी एशियाई *बाजार-सूचना* ३५६ में प्रस्तावित संशोधनके सम्बन्धमें प्रिटोरियाके असोसिएटेड चेम्बर ऑफ कॉमर्सकी बैठक समीप आ रही है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए मैं ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन) की ओरसे एक संक्षिप्त विवरण आपके विचारार्थ नम्रतापूर्वक प्रस्तुत करता हूँ।

परम माननीय श्री चेम्बरलेन जब ट्रान्सवाल आये थे तब उनसे ब्रिटिश भारतीयोंका एक शिष्टमण्डल मिला था। उन्होंने शिष्टमण्डलके सदस्योंको परामर्श दिया था कि वे यथासंभव उपनिवेशवासी यूरोपीयोंसे एकमत होकर चलें। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मेरा संघ जिस समुदायका प्रतिनिधित्व करता है उसके सदस्योंकी सदा यही अभिलाषा रही है।

मैं समझता हूँ कि भारतीयोंके विरुद्ध आम आपत्ति उनके रहन-सहनके तरीकेके सम्बन्धमें है। इसलिए मैं यह कहना चाहता हूँ कि वे इस दिशामें क्या कर सकते हैं — अभीतक उन्हें यह दिखानेका अवसर ही नहीं दिया गया है। उनकी स्थितिकी व्याख्या कभी स्पष्ट रूपसे नहीं की गई। वे अनिश्चितताकी स्थितिमें रहनेके लिए बाध्य किये गये हैं। कुछ भी हो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सफाई या व्यवसाय-स्थानोंकी निवास-स्थानोंसे पृथकताके सम्बन्धमें जो भी नियम बनाये जायेंगे भारतीय उनको तत्काल मान लेंगे। वस्तुतः मेरे संघने सरकारकी सेवामें निवेदन-पत्र भेजा है कि नये आवेदकोंको व्यापारिक परवाने देना नगरपालिकाओंके नियन्त्रणमें रहे किन्तु सत्ताके दुरुपयोगके विरुद्ध संरक्षण देनेके निमित्त उन्हें अदालतमें अपीलका अधिकार रहे। यह माँग भारतीय समाजको बिलकुल स्वीकार होगी।

उपनिवेशके बहुतसे लोगोंके मनमें यह भय है कि भारतीयोंका उपनिवेशमें प्रवास अनि-यन्त्रित रहेगा तो वे अपने संख्या-बलसे ही गोरी आबादीको दबा देंगे। मेरा संघ इस आशंकासे परिचित है। यद्यपि मेरा संघ इस प्रकारके प्रत्येक भयको निराधार समझता है फिर भी अपनी पूर्वीयोंके साथ नहुँवोंकी इच्छाकी सच्चाई बतानेके लिए उसने कुछ परिवर्तनोंके साथ केप-अधिनियमके आधारपर प्रवासपर रोक लगानेवाले विधानका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया है।

परन्तु प्रस्तावित संशोधनपर विचारके लिए आम सवालपर गौर करना शायद ही जरूरी है। उपनिवेश-सचिवके प्रस्तावमें *बाजार-सूचना* ही अमलमें लाई गई है, हालाँकि मेरे संघकी विनीत सम्मतिमें उससे न्यायका मूल सिद्धान्त तबतक पूरा नहीं होता जबतक

१. यह पत्र भी प्रिटोरियाके असोसिएटेड चेम्बर्स ऑफ कॉमर्सके सदस्योंको संबोधित किया गया था, १२-१२-१९०३ के *इंडियन ओपिनियनमें* प्रकाशित हुआ था। यह सम्भवतः गांधीजीकी ही भेजा गया था, जिन्होंने इसकी एक प्रति भारत-मंत्रीको भेजी थी।

उसकी कमीकी पूर्ति संघकी प्रार्थनाके अनुसार नहीं की जाती। उसमें उन ब्रिटिश भारतीयोंके निहित स्वार्थोंकी रक्षाकी बात है जो डाभरोंके शासनमें ब्रिटिश प्रतिनिधिके हस्तक्षेपसे बस्तियों या बाजारोंके बाहर परवानोंके बिना व्यापार करते थे। अगर आप उसी संरक्षणको अब भी जारी रखनेका विरोध करेंगे जब ब्रिटिश सरकार उसे देनेकी अधिक अच्छी स्थितिमें है तो मुझे इससे दुःख और आश्चर्य ही होगा।

और यदि आप सब उपनिवेश-सचिवके वर्तमान परवानेदारोंको संरक्षण देनेके प्रस्तावको मंजूर करेंगे तो आप उस प्रस्तावकी पूर्ति ही करेंगे।

उपनिवेशमें कदाचित् बाजारोंसे बाहर ६ से अधिक एशियाई परवानेदार नहीं हैं। इनमें से ५ पर बाजार-सूचना और प्रस्तावित संशोधनका असर नहीं होगा। इसलिए केवल १ परवानेदार ऐसे रहेंगे जो सूचनाके अन्दर नहीं आते हैं। तर्क यह है कि इन १ परवाने-दारोंके अधिकार भी उतने ही ध्यान देने योग्य हैं जितने दूसरोंके। क्योंकि ये सभी ट्रान्सवालके ही भूतपूर्व निवासी हैं और उनको ब्रिटिश अफसरोंने किसी प्रकारके प्रतिबन्धके बिना गत वर्ष परवाने दिये थे। इसलिए यदि आप ५ परवानेदारोंपर से अपनी आपत्ति हटा लेंगे तो शेष परवानोंको भी उसी कोटिमें रखनेसे न्यूनतम न्यायकी पूर्ति ही होगी।

कदाचित् आप लड़ाईसे पहले जोहानिसबर्ग गोरा समितिके सदस्य थे। यदि ऐसी बात है तो मैं यह कह सकता हूँ कि ठीक युद्धसे पूर्व समितिने बड़ी प्रसन्नतासे अपने विचारोंके प्रचारके लिए भारतीयोंका सहयोग प्राप्त किया था। भारतीयोंको समान उद्देश्यकी पूर्तिके लिए साथ लेनेके पक्षमें समितिका एक तर्क यह था कि अंग्रेजोंका अधिकार होनेपर भारतीयोंको १८८५के कानून ३ द्वारा लगाई गई निर्योग्यताओंसे पीड़ित न होना पड़ेगा। इसलिए निवेदन है कि मेरा संघ इस आश्वासनपर अमलकी आशा करनेका अधिकारी है।

भारतीय ब्रिटिश प्रजा हैं। भारतको ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने ब्रिटिश ताजका अत्यन्त प्रकाशमान रत्न बताया है। वह साम्राज्यकी लड़ाइयाँ लड़नेके लिए सदैव उद्यत है। नेटालमें कदाचित् भारतीय सेनाने ही स्थिति बिगड़नेसे बचाई थी। स्थानीय भारतीय भी अपना हिस्सा अदा करनेमें पीछे नहीं रहे थे। उसी समाजके सदस्योंके लिए मेरा संघ आपकी सहानुभूतिकी प्रार्थना करता है और वह भी उस मामलेमें जो भारतीयोंके लिए तो बहुत अधिक महत्त्वका है, फिर भी आपके लिए अपेक्षाकृत महत्त्वहीन है। इसलिए मेरा संघ विश्वास करता है कि असोसिएटेड चेम्बर्स अपनी बैठकमें समस्त वर्तमान भारतीय परवानोंकी रक्षाके लिए सिफारिश करेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजी से]

इंडिया ऑफ़िस ज्युडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स ५०/१ ४।

७० ट्रान्सवालके व्यापार-संघ और ब्रिटिश भारतीय

अन्यत्र हम ब्रिटिश भारतीय संघ द्वारा ट्रान्सवालके व्यापार-संघोंके सदस्योंके नाम भेजे गये गश्तीपत्रको[1] ज्यों-का-त्यों प्रकाशित कर रहे हैं। उनका सम्मेलन गत १८ तारीखको प्रिटोरियामें हुआ था और रैंड डेली मेलने उसकी कार्रवाईका विवरण प्रकाशित किया है। इसे पढ़नेपर ज्ञात होगा कि सम्मेलनमें उपस्थित प्रतिनिधियोंपर इस गश्तीपत्रका कोई असर नहीं हुआ। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उपनिवेश-सचिवने प्रस्तावित संशोधनपर विचार मुल्तवी करनेका निर्णय बहुत देरसे — ऐन वक्तपर — किया था इसलिए गश्तीपत्र भी बहुत देरसे भेजा गया। गश्तीपत्रमें यह विशेष स्पष्ट रूपसे बताया गया है कि यदि लड़ाईसे पहले बगैर परवाने व्यापार करनेवाले भारतीयोंके निहित स्वार्थोंकी रक्षा करना उचित है, तो लड़ाईके बाद पैदा हुए ऐसे स्वार्थोंकी रक्षा करना और भी अधिक उचित है। पत्रमें युद्ध-पूर्वकी ब्लेवर मौंट समितिको भारतीय समाजने जो सहयोग दिया था उसका भी उल्लेख था। उसका असर भी सदस्योंपर होना चाहिए था। अपनी निजी जानकारीके आधारपर हम कह सकते हैं कि समितिके नेता बहुत चाहते थे कि इंग्लैंडकी सरकारको आवेदनपत्र भेजनेमें भारतीय उनका साथ दें। उस समय भारतीयोंपर लगाई गई निर्योग्यताओंपर विशेष रूपसे चर्चा हुई थी और सब इस बातको मानते थे कि अगर लड़ाई हुई तो ये निर्योग्यताएँ खत्म हो जायेंगी। इसलिए सम्मेलनके सदस्योंको यह शोभा नहीं देता कि अब वे उलट पड़ें और भारतीयोंके विरुद्ध ऐसी कड़ी कार्रवाईका सुझाव दें जिसका लड़ाईसे पहले बुरेसे-बुरे दिनोंमें सपनेमें भी खयाल नहीं था। इस प्रकारके सुझावोंके पक्षमें सदस्योंने जो दलीलें पेश कीं वे अत्यन्त कमजोर थीं और कुछ तो विकृत तथ्योंपर आधारित थीं। हम यह खयाल पैदा करना नहीं चाहते कि तथ्योंमें यह तोड़-मरोड़ जान-बूझकर की गई थी। उसका कारण शायद यह भी हो कि वक्ता किसी चीजको निष्पक्ष दृष्टिसे देखनेमें असमर्थ ही थे परन्तु हम तो कहते हैं कि वक्ताओं द्वारा कही गई कुछ बातें बिलकुल निराधार थीं। जिम्मेदार पदोंपर काम करनेवाले आदमी अपनी सार्वजनिक हैसियतमें ऐसी-ऐसी बातें कह दें जिन्हें खानगी रूपमें बिना जाँच-पड़ताल किये कहनेमें उन्हें खुद बड़ी लज्जा अनुभव हो यह समयका ही प्रतीक है। खबर है कि सम्मेलनके अध्यक्षने कहा

> बारबर्टनके सभी भारतीय शहरके प्रमुख व्यापारियोंके पास गये थे। इन भारतीयोंने उनसे विनती की थी कि वे मकानात और परवाने प्राप्त करनेके उद्देश्यसे उन्हें अपने नामोंका उपयोग करने दें। एक भारतीयने यहाँतक डींग हाँकी कि अगर उसे परवाना मिल जाये तो वह एक वर्ष भरके अन्दर-अन्दर काफिरोंके बीच व्यापार करनेवाले हर गोरेका बोरिया-बिस्तर बँधवा देगा।

अब हम बगैर किसी झिझकके कह सकते हैं कि इस कथनमें रत्ती भर भी सत्य नहीं है। बारबर्टनमें अधिक भारतीय हैं ही नहीं। वहाँ भारतीय व्यापारी बहुत थोड़े हैं। और जो हैं वे केवल बस्तीमें ही रहते हैं। शहरके अन्दर कोई भी भारतीय व्यापारी नहीं बसा है। जो गिनतीके भारतीय व्यापारी बस्तीमें कुछ व्यापार कर रहे हैं, वे इतने गरीब हैं कि व्यापार-संघके

१ देखिए पिछला शीर्षक।

अध्यक्षने उनपर जिस महत्त्वाकांक्षाका आरोप लगाया है वे उसका सपना भी नहीं देख सकते। बस्तीके अधिकांश निवासी फेरीवाले हैं इसलिए व्यापार-संघके अध्यक्षको हमारी चुनौती है कि वे उस भारतीयका नाम बतायें जिसने कहा जाता है बारह महीनेके अन्दर-अन्दर काफिरोंके बीच व्यापार करनेवाले हर गोरे दूकानदारको निकाल बाहर करनेकी डींग हाँकी है। अध्यक्षने यह पैगाम भी पाया

> उनका इरादा यह नहीं है कि वे किसी दुश्मनीके भावसे सरकारसे इसकी शिकायत करें। परन्तु उनका रुख पूरी तरहसे देशप्रेमी और मित्रका-सा होना चाहिए। दूसरे शब्दोंमें मानो वे कहना चाहते हैं — सज्जनो! आप क्या करनेवाले हैं, इसका जरा ध्यान रखिए। अच्छा हो आप सावधान रहें क्योंकि यह बड़ी गम्भीर बात है। इस विषयमें इस देशकी जनताकी भावनाएँ कितनी तीव्र और गहरी हैं; उसका आपको गुमान नहीं है। यह ऐसा प्रश्न है जिसपर सारे देशकी जनता सरकारके खिलाफ एक हो सकती है। अगर सरकार गोरोंके विरोधमें रंगदार जातियोंका पक्ष ग्रहण करती है तो यह अत्यन्त गम्भीर मामला हो जाता है।

ये भले आदमी व्यापारी हैं और इस मामलेमें इनका अपना स्वार्थ भरा पड़ा है। ये अगर बना सकते तो तमाम प्रतिस्पर्धियोंका बहिष्कार करनेके लिए अपना एक गिरोह बना लेते। इनको ऐसी बातें कहते देखकर हमें हँसी आती है। ऐसी भाषामें सारे समाजकी तरफसे ये बोल रहे हैं मानो खरीदारोंके और इनके स्वार्थ एक ही हों। अध्यक्ष कहते हैं कि इस विषयमें जनताकी भावनाएँ कितनी तीव्र और गम्भीर हैं उसका किसीको विश्वास भी नहीं हो सकता। परन्तु वे भूल जाते हैं कि भारतीयोंका व्यापार एक बहुत बड़ी हदतक गोरे ग्राहकोंपर ही निर्भर करता है। अगर उनकी भावनाएँ इतनी तीव्र हैं तो वे अभीतक इन भारतीय व्यापारियोंको अपना सहारा कैसे देते हैं? अगर भारतीयोंका बहिष्कार करना इन व्यापारियोंके हाथोंमें है तो भारतीयोंको तंग करके उपनिवेशसे भगा देनेके उद्देश्यसे भला इस तरह कानूनोंका सहारा लेनेकी क्या जरूरत है? बहुत से पाठकोंके लिए यह एक नई खबर होगी कि सरकार रंगदार जातियोंका पक्ष करने लग गई है। अब लॉर्ड मिलनर कह सकते हैं कि वे चक्कीके दो पाटोंके बीच पिस रहे हैं क्योंकि एक तरफ भारतीय कहते हैं कि लड़ाईसे पहले उनके साथ जैसा व्यवहार होता था अब सरकार उनके साथ उसकी अपेक्षा कहीं बुरा व्यवहार कर रही है और उधर, इस सम्मेलनके सदस्य कहते हैं कि सरकारने भारतीयोंको आश्रय दे रखा है।

भारतीय व्यापारी तो मुट्ठी भर हैं परन्तु उनकी उपस्थितिसे उत्पन्न परिस्थितिको तिलका ताड़ बना दिया गया है। रंगदार गिरमिटिया मजदूरोंके रूपमें उपनिवेशपर जिस गम्भीर बुराईके छा जानेका खतरा है उसकी हलकेपनसे उपेक्षा कर दी गई है। क्योंकि सर जॉर्ज फेरारने अध्यक्षको बखूबी यह आश्वासन दे दिया है कि इन गिरमिटिया मजदूरोंको स्थायी रूपसे यहाँ ठहरने नहीं दिया जायेगा और इसके लिए हर सम्भव सावधानी बरती जायेगी। हम तो समझते हैं कि अगर इस देशकी जनताको एक आवाजसे सरकारका किसी मामलेमें विरोध करना चाहिए तो वह निस्सन्देह यह गिरमिटिया मजदूरोंका मामला है।

सम्मेलनमें जो प्रार्थनापत्र भेजनेका निश्चय किया गया और जो प्रस्ताव स्वीकृत किये गये उनके बारेमें हम कुछ भी नहीं कहेंगे। वहाँ विभिन्न वक्ताओंने जो भाषण दिये उनके ये दोनों बातें अनुरूप ही हैं। प्रार्थनापत्रमें काली और रंगदार जातियोंके विषय पर बहुत कुछ कहा गया है। क्या हम इस सम्मेलनके अध्यक्षको बता दें कि महोदय ब्रिटिश भारतीयोंका

सम्भव है यह बात वस्तुतः कहीं नहीं पाई जाती? मगर भारतीयोंका किसी बातपर सबसे अधिक आग्रह है तो वह एक बात — जातिकी शुद्धता — ही है। परन्तु आप इस बातको विवादका विषय क्यों बनाते हैं? हम तो बहुत जानना चाहते हैं कि अबतकका पिछला इतिहास क्या है और प्रार्थनापत्र भेजनेवालोंका अनुभव क्या है?

स्वीकृत प्रस्तावोंमें से एक किसी विभागको जो ऐसे सिद्धान्तको मूर्त बना दे, अत्यन्त भय और घृणासे देखता है। यह वस्तुतः बहुत ही हँसीके लायक बात है। सदस्य एक ऐसी बातसे अत्यन्त भयभीत हैं जिसका कहीं अस्तित्व ही नहीं है। कोई एलेगज़रोने कहा था कि अफगान युद्धके दिनोंमें कुछ लोग ऐसे थे जिनको घुड़सवारोंकी आवाज सुनकर समाप्त होता था कि उन्होंने तोपोंकी गड़गड़ाहट सुनी है। इस सम्मेलनके सदस्योंकी हालत प्रत्यक्षतः कुछ ऐसी ही हो गई जान पड़ती है क्योंकि अभीतक तो ऐसा कोई कानून जनताको नहीं दिया गया है और जहाँतक हमें पता है जिस कानूनकी बड़ी आशायें दिखाई जा रही हैं वह अगर बन भी गया तो वह भारतीयोंकी दृष्टिसे वर्तमान कानूनकी अपेक्षा कहीं बुरा होगा। सदस्योंने यह तो खयाल कर ही लिया होगा कि अभी उपनिवेश-सचिवने जो संशोधन रखा है, वह नया कानून नहीं है — मुख्यतः तब जब कि उपनिवेश-सचिवने बहुत स्पष्ट रूपसे बता दिया था कि इस बाजार-सम्बन्धी सूचनाका व्यापक प्रश्नपर सचमुच क्या असर पड़ेगा।

ट्रान्सवालके विभिन्न व्यापार-संघोंके सदस्योंसे हमारा आग्रहपूर्वक अनुरोध है कि वे ब्रिटिश भारतीय-संघ द्वारा भेजे गये मसविदेके प्रारम्भिक अनुच्छेदोंपर निर्विकार चित्तसे विचार करें। उसमें जो दो बातें कही गई हैं वे यूरोपीय दृष्टिकोणसे बिलकुल कारगर समझी जानी चाहिए। नगर-परिषदों अथवा नगर-निकायोंमें अधिकतर व्यापारी ही हैं। भारतीय कहते हैं — परवानोंके विषयमें हमारा पक्ष इतना न्यायोचित है कि हमें अपने मामलोंका निर्णय आपके हाथोंमें सौंपने और उसको माननेमें जरा भी संकोच या झिझक नहीं है, बशर्ते कि हम अपने निर्णयके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेके हमारे अधिकारको छीन न लें। जहाँतक नये बसनेवालोंका सवाल है, हम बिलकुल सहमत हैं कि श्री चेम्बरलेनने उपनिवेशोंके प्रधान-मन्त्रियोंके समक्ष भाषण देते हुए जो बातें कही थीं उनकी दिशामें उनपर अवश्य उचित नियन्त्रण लगाये जा सकते हैं। अगर आप इस नीतिपर चलेंगे तो न्यूनाधिक परिमाणमें आप ब्रिटिश परम्पराओंकी रक्षा कर लेंगे।"

हमारी विनीत सम्मतिमें इस स्थितिपर किसीको विरोध नहीं हो सकता। हम व्यापार संघोंसे विनती करेंगे कि कुछ समय निकाल कर वे इस प्रश्नपर विचार करें और उसके बाद अपने-आपसे खुद ही पूछें कि क्या यह समझौता उचित नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २४–१२–१ ३

७१. अपने संशोधनपर भी कायम

ट्रान्सवालके एशियाई विरोधी कानूनका जो योग्यतापूर्ण सहानुभूति-भरा और ऐतिहासिक विवेचन उपनिवेश-सचिवने[1] किया उसके लिए वे बधाईके पात्र हैं। अपने संशोधनके पक्षको जोरदार बनानेमें स्वभावतः उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। बड़े विश्वासजनक ढंगसे उन्होंने बताया कि ब्रिटिश भारतीय ट्रान्सवालमें कानूनके खिलाफ भी जो व्यापार कर सके उसका एकमात्र कारण भी बूअरके शासन-कालमें उन्हें ब्रिटिश सरकारकी तरफसे प्राप्त संरक्षण था। इसलिए अगर उन्हें बस्तियोंमें ठेल देना उचित भी हो तो भी अब सरकार अपने कदमोंको वापस लेकर ऐसा नहीं कर सकती। जैसा कि उन्होंने बताया यह प्रश्न भावुकता या नीतिका नहीं विशुद्ध न्यायका है। इसलिए उन्होंने सदस्योंसे और उनके द्वारा सामान्यतः ट्रान्सवालके लोगोंसे भी अनुरोध किया कि वे इस प्रश्नपर निर्विकार चित्तसे विचार करें और यह सोचें भी नहीं कि वर्तमान सरकार भारतीयोंके साथ धोखा कर सकती है। दयनीय बात तो यह है कि सरकारको यह सब पहले नहीं सूझा। *यह बात भी आसानीसे समझमें नहीं आती कि वह एक शासन-सम्बन्धी* मामलेमें इतनी दौड़धूप क्यों करती है और *बाजार*-सम्बन्धी सूचनामें संशोधन करनेके लिए परिषदमें क्यों जाती है। श्री डंकनने खुद स्वीकार किया है कि कानूनकी दृष्टिसे *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाका कोई महत्त्व ही नहीं है, क्योंकि उसे कानूनका अंग नहीं समझा जा सकता। हम यहाँ उन्हींके शब्द देते हैं

> सबसे पहले उनको यह याद रखना चाहिए कि यह कानून नहीं बल्कि एक सूचना-मात्र है। इसमें वह नीति बताई गई है, जिसपर सरकार देशके कानूनकी व्याख्याके मामलेमें चलना चाहती है।

इसलिए यह स्पष्ट है कि इस प्रश्नको परिषदमें ले जानेकी जरा भी जरूरत नहीं थी। साधारण मनुष्योंके लिए विधान-परिषदके विभिन्न कार्योंके भेदोंको समझना कठिन है। वे क्या जानें कि कानूनकी-सी सत्ता रखनेवाले परिषदके कार्य कौन-से हैं और दूसरे कार्य कौन-से हैं, जो ऐसी सत्ता नहीं रखते बल्कि परिषदका केवल मत प्रकट करते हैं। साधारण मनुष्यके विचारमें तो ऐसी सारी सूचनाएँ देशके कानून ही हैं। वे यह भी भूल जाते हैं कि पहले भारतीयोंको वास्तवमें जो अधिकार प्राप्त थे वे इस सूचना द्वारा छिन गये हैं और नया संशोधन उनमें से कुछ अधिकार वापस दिलानेके लिए पेश किया गया है। वे इसे एक रियायत मानते हैं और इसलिए इसका विरोध करते हैं। उनके साथ आप चाहे कितनी ही दलील कीजिए या उन्हें कितना ही समझाइए, उनके दिमागमें जो खयाल पैदा हो गया है वह नहीं हटेगा। इसलिए हमारा खयाल तो यह है कि पहले तो सरकारने यही गलती की कि यह *बाजार*-सम्बन्धी सूचनाको परिषदमें ले गई। उसने खुद अपनी मर्जीसे अपने हाथ-पैर बाँध लिये हैं और एक अनिष्ट आन्दोलनको पैदा होनेका मौका दिया है। हाँ अगर सरकारका हेतु यही रहा हो कि ऐसा आन्दोलन सचमुच पैदा हो ताकि एशियाई-विरोधी नीतिपर अमल करनेमें उसके हाथ मजबूत हों तो बात दूसरी है। परन्तु उपनिवेश-सचिवका भाषण हम उसकी राय बनानेसे हमें रोकता है।

फिर अपने प्रस्तावके पक्षमें इतना कायल कर देनेवाली दलील देनेके बाद समझमें नहीं आता कि उपनिवेश-सचिवने अखबारोंमें उन भारतीयोंको भी क्या नहीं सुधार कर लिया

1. श्री पैट्रिक डंकन।

जिन्हें पिछले वर्ष बगैर किसी शर्तके परवाने दे दिये गये थे यद्यपि वे लड़ाईसे पहले व्यापार नहीं करते थे। उन्होंने अपने प्रभावशाली तर्कका आधार ब्रिटिश सरकारके पिछले कार्योंको बनाया। वही दलील अभी ऊपर बताये व्यापारियोंके मामलेमें और भी अधिक अच्छी तरह लागू होती है, जिनके लिए जोहानिसबर्गका ब्रिटिश भारतीय संघ इतना प्रशंसनीय प्रयत्न कर रहा है। पिछले वर्ष जिन भारतीयोंको परवाने दिये गये थे अगर उनको बस्तियोंमें भेजा गया तो यह भी ब्रिटिश सरकार द्वारा किये गये एक कार्यको पलटना ही कहा जायेगा। श्री चेम्बरलेनने हमें आश्वासन दिया है कि एक ब्रिटिश अधिकारीके लेखका वही महत्त्व होता है, जो बैंकके नोटका होता है। सो हम व्यापारियोंके परवाने नोट हैं, जिनपर दस्तखत करनेवाले ब्रिटिश अधिकारी ही थे। हमने इनमें से बहुत-से परवाने देखे हैं और एकपर भी हमने किसी प्रकारकी शर्त नहीं पाई है। तब उनको दूसरे परवानोंसे अलग क्यों माना जाता है? ये बातें ऐसी हैं जिनपर सरकारको विचार करना उचित था। हम पहले कह चुके हैं कि सरकारको न्याय करनेमें डर लगता है और चूँकि प्रस्तावित संशोधनपर कौंसिलवर्ग और बारबर्टनमें इतना शोर-गुल हो रहा है इसलिए बहुत सम्भव है, सरकार सोचती हो कि ब्रिटिश भारतीयोंके साथ समानता और न्यायका व्यवहार करनेके झगड़ेमें पड़कर उसे सब लोगोंका बुरा नहीं बनना चाहिए। परन्तु ब्रिटिश झंडेको अपना कहलेवाली सरकारोंकी परम्परा तो ऐसी नहीं है इसलिए हम अब भी आशा करते हैं कि जिन गरीब व्यापारियोंको बस्तियोंमें चले जानेकी हिदायतें दी गई हैं, उनके परवाने बस्तियोंसे बाहर व्यापार करनेके लिए नये कर दिये जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-१२-१९०३

७२ ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

ट्रान्सवालमें लगातार ऐसी उत्तेजनकारी घटनाएँ हो रही हैं कि अभी कुछ समय और हमको अपना ध्यान उनकी ओर देना पड़ेगा और दूसरी बहुत-सी बातोंको छोड़ देना होगा यद्यपि हम उन्हें कुछ स्थान देना चाहेंगे। गत १२ तारीखको विधान-परिषदमें जो बहस हुई वह अत्यन्त मनोरंजक और शिक्षाप्रद थी। ट्रान्सवाल-सरकारके भारतीयोंकी स्थितिसे सम्बन्धित रुखकी हमने अनेक बार शिकायत की है। इसलिए इस बार उपनिवेश-सचिवके प्रस्तावपर उसने जो मजबूत रुख इख्तियार किया है उसपर उसे हम तुरन्त धन्यवाद देते हैं। उसपर अगर वह कोई दूसरी तरहका रुख लेती तो सचमुच आश्चर्यकी ही बात होती। फिर भी अभी हालमें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति इतनी अधिक डाँवाडोल हो गई थी कि हमें निश्चय नहीं हो रहा था कि सरकार लड़खड़ा नहीं जायेगी और स्वार्थी व्यापारियोंके दबावसे झुककर अपने प्रस्तावको वापिस नहीं ले लेगी। अन्तमें उसने सर जॉर्ज फेरारके संशोधनको स्वीकार तो कर लिया परन्तु हमारा खयाल है कि इससे उसने इस प्रश्नपर जो रुख ग्रहण किया है उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। उप-निवेश-सचिव और महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल) दोनोंने यह पूर्णतया स्पष्ट कर दिया कि सर जॉर्ज फेरारका सुझाव स्वीकार करनेके मानी ये नहीं हैं कि जो भारतीय लड़ाईसे पहले परवाने लेकर, अथवा बगैर परवानोंके भी व्यापार करते थे उनके परवानोंको सरकार मानना नहीं चाहती। सर रिचर्ड सॉलोमनने बगैर किसी हिचकिचाहटके इस बातका बड़ी दृढ़ताके साथ समर्थन किया। विद्वान सदस्य महोदयने कहा

अगर माननीय सदस्य प्रस्तावमें संशोधन नहीं करेंगे तो वे एक बहुत बड़े वर्गके साथ अन्याय करनेके दोषी होंगे। मालूम होता है कि साम्राज्य-सरकारने जो रुख धारण किया है उससे माननीय सदस्योंको आश्चर्य हुआ है; परन्तु भारतीय साम्राज्यके सम्बन्धमें सम्राट्की सरकारकी जिम्मेदारियोंका जब हम खयाल करते हैं, और वहाँ बसे करोड़ों लोगोंका और सम्राट्के प्रति उनकी वफादारीका जब हमें ध्यान आता है तब हमारी समझमें फौरन यह बात आ जाती है कि मनुष्य-मनुष्यके बीच न्यायकी तराजूके पलड़े बराबर रखना यहाँ कितना आवश्यक है। लोगोंको साम्राज्यके न्यायपूर्ण शासनमें विश्वास है, तभी तो साम्राज्यमें बसनेवाले इन करोड़ों लोगोंकी वफादारीपर ब्रिटेन भरोसा करता है।

गैर-सरकारी सदस्योंमें से श्री हॉस्केनने बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण रुख प्रकट किया और सदनको बताया कि भारतीय-विरोधी आन्दोलन केवल व्यापारियों तक ही सीमित है और उसमें जोहानिसबर्गका व्यापार-मण्डल शरीक नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय व्यापारियोंसे उपनिवेशको किसी प्रकार भी हानि नहीं हो रही है। श्री हॉस्केनने बताया कि जोहानिसबर्गके व्यापार-संघका रुख तो यह है कि लोग भारतीयोंके साथ व्यापार करते हैं, केवल इसीसे सिद्ध हो जाता है कि उनकी यहाँ माँग है। अगर यहाँके लोगोंको भारतीय व्यापारियोंके विरुद्ध सचमुच कोई खास आपत्ति होती तो वे उनका बहिष्कार करते और उनके लिए यहाँ व्यापार करना असम्भव कर देते।

विरोधी पक्षके नेता श्री लवडे और श्री बोर्क थे। श्री लवडेकी बात तो हम समझ सकते हैं। पिछली हुकूमतके जमानेमें भारतीयोंके पक्षमें उन्होंने कभी एक शब्द भी नहीं कहा था। उनकी दृष्टिसे तो भारतीय एक विशुद्ध अभिशाप है। परन्तु हम स्वीकार करते हैं कि श्री बोर्कने जो-कुछ कहा उसे पढ़ कर हमें बड़ी निराशा हुई। हम उन्हें सदासे ट्रान्सवालका एक उदारमना नागरिक मानते आये हैं और हमारा खयाल था कि जो भी कोई प्रश्न उनके सामने निर्णयके लिए रखा जाये उसपर वे निष्पक्षतापूर्वक विचार कर सकते हैं। परन्तु हमारी नम्र राय है कि गोरे व्यापारियोंके स्वार्थोंकी रक्षाकी चिन्तामें वे उनके दुर्भावसे प्रभावित हो गये अन्यथा उनकी कमजोर दलीलका इसके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण दिखाई देना कठिन है। यह बात उनकी समझमें ही नहीं आ सकी कि लड़ाईसे पहले ब्रिटिश सरकारने जिन भारतीय व्यापारियोंको पूरा संरक्षण दिया था और जिनको उसके प्रतिनिधियोंने ट्रान्सवालके कानूनोंको तोड़ने और अपना व्यापार जारी रखनेके लिए प्रोत्साहित किया था उनको अब भी उसी सरकारसे यद्यपि वह संरक्षण देनेकी और भी अच्छी स्थितिमें है, संरक्षण मिलना जारी क्यों रहना चाहिए। उन्होंने बड़ी स्पष्टताके साथ इस बातको स्वीकार किया कि भारतीयोंके व्यापारका विरोध लोगोंकी तरफसे नहीं आया था बल्कि ब्रिटिश व्यापारियोंकी ओरसे आया था। इसलिए वे अब भारतीय स्पर्धाकारियोंसे ब्रिटिश व्यापारियोंके लिए संरक्षणकी माँग करते हैं भले ही इसके लिए ब्रिटिश भारतीयोंके निहित स्वार्थोंको छीन कर ब्रिटिश सरकारको झुकनेकी जरूरत पड़े। श्री बोर्क बहुत पुराने अनुभवी व्यापारी हैं और व्यवसायीके रूपमें उनकी जानकारी ज्यादा होनी चाहिए। उनको तो ऐसी सामान्य दलील नहीं दुहरानी थी कि अगर भारतीय व्यापारियोंपर रोक नहीं लगाई गई तो वे यूरोपीय व्यापारियोंको देशसे भगा देंगे। वे इस बातको भूल ही जाते हैं कि जब उनपर किसी प्रकारका प्रतिबन्ध नहीं था तब भी वे ऐसा करनेमें सफल नहीं हुए और यह भी कि प्रिटोरियामें यूरोपीयोंके व्यापारके मुकाबले भारतीयोंका व्यापार बहुत ही कम है।

परन्तु हम एक बात और कह दें। अगर यह भय ठीक भी हो तो भी वर्तमान प्रश्नसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि विधान-परिषद तो अभी केवल पुराने परवानोंके प्रश्नपर ही विचार कर रही है। उपनिवेश-सचिवके और श्री लोवेके संशोधनोंके बीच सर जॉर्ज फेरारने एक मध्यम मार्ग सुझाया था। उसका नतीजा यह है कि छः मास पहले व्यापार करनेवाले तमाम एशियाइयोंके मामलोंकी जाँच करनेके लिए एक आयोगकी नियुक्ति होगी। इस बीच एशियाई दूकानदारोंको अस्थायी परवाने दे दिये जायेंगे और सरकार एक नये कानूनका मसविदा पेश करेगी जिसमें केप कालोनीके प्रवासी-अधिनियमके सिद्धान्तोंका समावेश होगा।

हम इस आयोगकी नियुक्तिका स्वागत करते हैं क्योंकि हमने सदा यह अनुभव किया है कि वर्तमान परवानेदारोंकी वास्तविक संख्याके बारेमें बड़ी गलतफहमी है और भारतीय व्यापारके परिमाणोंको श्वेत-संघ और अन्य संस्थाओंने बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताया है। इसलिए आयोगकी मददसे इस गलतफहमीको दूर करनेका अवसर मिल जायेगा और हर आदमी जान लेगा कि उपनिवेशमें भारतीय व्यापारकी वास्तविक स्थिति क्या है। भारतीयोंने तो हमेशा यह माँग की है कि उनके कार्योंपर रोशनी डाली जाये। अतः हम आयोगके परिणामोंकी प्रतीक्षा बहुत विश्वासके साथ कर रहे हैं। अगर हमारी अपेक्षाएँ सही साबित हुईं तो ट्रान्सवालके विचारशील उपनिवेशवासियोंके लिए भारतीय-विरोधी आन्दोलन जारी रखनेका कोई कारण नहीं रह जायेगा क्योंकि उससे किसी भी पक्षको कोई लाभ नहीं है। उलटे, दोनों समाजोंके बीच जिनको उचित था कि एक साथ शान्तिपूर्वक रहते इस आन्दोलनके कारण बेकार भावनाओंकी कटुतामात्र बढ़ती है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-१२-१९०३

७३. ट्रान्सवालके रंगदार रेल-यात्री

जिस दिन श्री डंकनने विधान-परिषदमें बाजार-सम्बन्धी सूचनापर अपना संशोधन पेश किया उसी दिन श्री एच० सॉलोमनने रेलोंके रंगदार मुसाफिरोंके सम्बन्धमें अपना प्रस्ताव रखा। यद्यपि उन्होंने जो-कुछ कहा वह प्रायः वतनी मुसाफिरोंके बारेमें ही था फिर भी उससे बड़ी शिक्षा मिलती है क्योंकि उससे प्रकट होता है कि वतनी और रंगदार आदमी जैसे शब्दोंका पर्याय रूपमें प्रयोग करके उनके अन्तर्गत ब्रिटिश भारतीयोंको भी घसीट लेना कितना आसान है। माननीय सदस्यका प्रस्ताव भी इतना गोल-मोल और पूर्वापर-विरोधी था कि सर रिचर्डको उन्हें फटकार बतानेमें कोई कठिनाई नहीं हुई, जिसपर श्री सॉलोमनको अपने शब्द वापिस भी लेने पड़े। सर रिचर्डकी आपत्ति यह थी कि अगर वे रंगदार जातियोंके लोगोंको पहले दर्जेमें नहीं बैठने देना चाहते तो दूसरे दर्जेके मुसाफिरोंपर भी उन्हें न लादना चाहिए। इसपर श्री सॉलोमनको स्वीकार करना पड़ा कि वे इस तरहकी कोई बात कहना नहीं चाहते थे। उनका जवाब था कि रंगदार जातियोंके लिए उसी दर्जेमें अलग प्रबन्ध रहे।

हम सर रिचर्डसे इस बातमें सहमत हैं कि यह प्रस्ताव असामयिक है और इससे अकारण ही कटुता और दुर्भावना फैलेगी। अगर गोरे मुसाफिर पसन्द नहीं करते कि रेलोंमें वतनी आदमी अथवा एशियाई उनके डिब्बोंमें सहयात्रीके तौरपर आकर बैठें तो हमारी रायमें वतनियों और रंगदार यात्रियोंके लिए अलग डिब्बोंकी व्यवस्था करनेमें ही समझदारी होगी जिसमें

कि यदि किसी गोरे यात्रीको अन्य डिब्बेमें स्थान न मिले और वह रंगदार यात्रियोंके डिब्बेमें — यद्यपि वह भलीभाँति जानता है कि यह डिब्बा रंगदार यात्रियोंके लिए ही है — भी गई जगहका काम उठाये तो किसी प्रकारकी शिकायतका मौका न रहे।

स्पष्टतः यह मामला कानून बनानेके बजाय रेलवे व्यवस्थासे अधिक सम्बन्धित है। रेलवे खुद ही इतना प्रबन्ध कर सकती है। श्री सॉलोमनके प्रति आदर रखते हुए भी हमारा खयाल है, इस तरहका प्रस्ताव पेश करनेमें उन्होंने सदनकी प्रतिष्ठाका खयाल नहीं रखा। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कार्यमें एक दोषको दूर करने अथवा एक सार्वजनिक महत्त्वके प्रश्नकी ओर सरकारका ध्यान प्रमुख रूपसे खींचनेकी इच्छा उतनी नहीं थी जितनी कि लोगोंकि दुर्मतिको तुष्ट करनेकी अभिरुचि। इसीलिए अगर डॉ० टर्नर जैसे लोगोंको प्रस्तावकी सीमाके बाहर जाकर भी उनका विरोध करना पड़ा तो इसके लिए जिम्मेदार भी सॉलोमन ही हैं। हाँ, अप्रत्यक्ष रूपमें इस विवादसे एक प्रकारका लाभ ही हुआ। इससे प्रकट हो गया कि सर रिचर्ड सॉलोमन रंगदार जातियोंके एक मित्र और हितैषी हैं जो चाहते हैं कि आदमी-आदमीके बीच न्यायका व्यवहार होना चाहिए, और यह भी कि लोक-भावना चाहे कितनी ही प्रबल हो, अगर वह न्यायकी मूल भावनाके विपरीत होगी तो भी वे पथसे विचलित नहीं होंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-१२-१९०३

७४ "कैवल्य" पर टिप्पणी

[१९-११-१९०४][1]

ईसाई पादरियोंने उतावलेपनमें "कैवल्य" में हिन्दुओंके महान विश्वासका अर्थ "शून्य" में विश्वास किया है। वे कहते हैं कि हिन्दुओंके विश्वासके अनुसार शून्यमें विलीन हो जाना — अस्तित्व खो देना — सबसे बड़ी चीज है। इस मान्यताने ईसाई और हिन्दू धर्मोके बीच एक गहरी खाईका निर्माण कर दिया है जिससे दोनोंकी हानि हुई है।

संस्कृतके जिस शब्दका अनुवाद 'शून्य' किया गया है उसके अर्थके सम्बन्धमें मतैक्य न होनेके कारण यह सारी भ्रान्ति उत्पन्न हुई है। साधारण तौरपर वह जिस अर्थकी व्यंजना करता है सो इस मान्यताके कारण कि हम इस समय जो हैं वही सब-कुछ है, और तब हिन्दू दार्शनिक कहता है "शून्य मेरे लेखे सब-कुछ है क्योंकि तुम जिसे सब-कुछ कहते हो वह तो प्रत्यक्ष ही नश्वर है। (क्या शरीर और इन्द्रियोंका नाश नहीं होता और इसी तरह दूसरी सब वस्तुओंका भी जिन्हें हम देखते या अनुभव करते हैं?) शून्यको इस तरह देखें तो उससे वही विचार व्यक्त होता है जो अन्तिम मोक्षसे होता है — अर्थात् ईश्वरसे एकरूप होना। यह ईश्वर स्पेन्सरका महान अज्ञेय तत्त्व है, किन्तु वह सापेक्ष अज्ञेय है, अर्थात् वह स्पेन्सर द्वारा वर्णित ज्ञानके साधारण साधनोंसे ज्ञेय नहीं है। इतनेपर भी यदि आप निरी साधारण बुद्धिसे परे किसी उच्चतर साधन

1. इस लेखकी ठीक तारीख नहीं मिली। मूल पत्र स्वर्गीय भारतीय मजिस्ट्रेट श्री जेम्स दुभरके संग्रहमें गांधीजीके "मि० जेम्स दुभरको" जनवरी १९, १९०५ के साथ प्राप्त हुआ है और अब कुमारी [illegible] के पास है। उसपर श्री दुभरके किसी का लिखा है "यह भी मो० क० गांधीका लिखा हुआ है। [illegible] १९ ११-४ के [illegible] दिया गया था।" इस बातमें गांधीजीने हिन्दू धर्मपर [illegible] साथ बहुत चर्चाएँ की थीं। देखिए *आत्मकथा* भाग ४ अध्याय ५।

2. गांधीजीका "तर्क० [illegible]" लिखते हुए गांधीजीके [illegible], [illegible] अथवा निर्वाण जैसा शब्द था, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

की सत्ता स्वीकार करें, जिसे वास्तवमें हिन्दू और ईसाई दोनों ही स्वीकार करते हैं तो उस — वह तत्व अज्ञेय नहीं हो सकता।

हिन्दू कहते हैं यह जाना जा सकता है। ईसाई भी ऐसा ही कहते हैं — जिन्होंने मुझे जान लिया उन्होंने परमपिताको जान लिया। किन्तु फिर इस उद्धरणका अर्थ क्या है? कदाचित् शब्दोंको छोड़कर दोनों बातोंमें कोई अन्तर नहीं है। "जब कुहरा हट जायेगा तब हम एक दूसरेको अधिक अच्छी तरह पहिचानेंगे।" तबतक यदि हम मतभेदकी बातोंकी अपेक्षा एकतावाली बातोंको खोज निकालनेकी कोशिश करें तो क्या यह सम्भव नहीं है कि हमें कुछ पहले उस स्थितितक पहुँचनेमें सहायता मिले।

[अंग्रेजीसे]

कुमारी मेली केम्बेल इर्विन के सौजन्यसे प्राप्त हस्तलिखित मूल प्रतिसे।

७५ पिछले सालका सिंहावलोकन

ट्रान्सवाल

गत वर्ष इन दिनों ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय आशासे परिपूर्ण थे क्योंकि श्री चेम्बरलेन उन्हें आशा दिलाते आ रहे थे कि जो लोग इस देशमें बस गये हैं और जिन्हें सामान्य प्रवासी अधिनियमके अनुसार उपनिवेशमें आ जानेकी अनुमति मिल सकती है, वे तो बहरहाल, न्यायोचित और सम्मानास्पद व्यवहारके अधिकारी[1] होंगे ही। उस वक्त स्थिति बहुत अनिश्चित थी। व्यापारियोंके नाम सूचनाएँ जारी की गई थीं कि उनके परवाने नये नहीं किये जायेंगे। १८८५का कानून ३ उपनिवेशकी कानूनकी किताबमें अब भी मौजूद था। ट्रान्सवालके कुछ भागोंमें पैदल-पटरीके नियमों तकको कार्यान्वित कराया जा रहा था। जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्तीके निवासियोंका भाग्य अधरमें झूल रहा था। बस्तीकी सफाई सम्बन्धी हाल्फक आदि डॉ. पोर्टरकी जयाली रिपोर्ट नंगी तलवारकी तरह उनकी गरदनपर लटक रही थी। उपनिवेश भरके श्वेत-संघ सभाएँ करके सरकारसे माँग कर रहे थे कि जो ब्रिटिश भारतीय उपनिवेशमें पहले ही बस गये हैं उनपर और पाबन्दियाँ लगाई जायें। एशियाई दफ्तरोंके तौर तरीकोंसे भारी सरासर हो रही थी। जोहानिसबर्गके दफ्तरमें भ्रष्टाचारका बोलबाला था और शरणार्थी तबतक उपनिवेशमें घुस नहीं सकते थे जबतक कि परवाने लेनेके लिए दोनों हाथों धन न उलीचें। और, कई अवसरोंपर ये परवाने निकम्मे कागज ही होते थे। श्री चेम्बरलेनको प्रिटोरियामें जो शिष्टमण्डल मिला था उसके सामने उनका जोरदार बयान ही कठिनाइयोंके इन घने बादलोंको चीरकर दिखाई देनेवाली आशाकी एकमात्र किरण था हालाँकि दुर्भाग्यवश वह बादलोंको छिन्न-भिन्न करनेके लिए काफी सबल सिद्ध नहीं हुआ। आगे चलकर, अभी पिछले अप्रैलके महीनेमें जब भारतीयोंने सरकारसे प्रार्थना की कि उनके दर्जेकी साफ-साफ व्याख्या कर दी जाये और मौजूदा परवानोंके बारेमें आश्वासन दिया जाये तब सरकारने बाजार-सूचनाके नामसे मशहूर, सूचना ३५६ भारतीय समाजपर लाद दी और १८८५के कानून ३ के अनुसार, जो पिछले कई वर्षोंसे निश्चल पड़ा हुआ था ३ पौंडका पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन)-कर वसूल करनेके लिए कप्तान हैमिल्टन फाउलको एशियाइयोंका रजिस्ट्रार मुकर्रर

[1] देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २०९।

कर दिया। जोहानिसबर्गके ब्रिटिश भारतीय संघने लॉर्ड मिलनरकी शरण ली[1] परन्तु उसे लॉर्ड महोदयसे जबानी सहानुभूतिके सिवा कुछ नहीं मिला। उन्होंने भारतीय समाजको जोरदार सलाह दी कि वह ३ पौंडी करकी अदायगीका विरोध न करे और यह वचन भी दिया कि परवाने आदिके जो मामले उनकी निगाहमें लाये गये हैं उनकी वे सावधानीसे जाँच करेंगे। परमश्रेष्ठने यह महत्त्वपूर्ण बयान दिया कि बाजार-सूचना सिर्फ एक अस्थायी उपाय है और निकट भविष्यमें कदाचित् विधान-परिषदके तत्कालीन अधिवेशनमें ही १८८५ के कानून ३ के स्थानपर एक विधेयक पेश किया जायेगा।

आज स्थिति पहलेसे बहुत अच्छी नहीं है यद्यपि कुछ बातोंमें निश्चय ही प्रगति बताई जा सकती है। बाजार-सूचना पर अब भी अमल हो रहा है और उसके द्वारा सर्वनाश होनेसे बचनेके लिए ब्रिटिश भारतीय संघको अपने सारे साधन काममें लाने पड़े हैं। व्यावहारिक रूपमें वह सूचना दुविधाजनक पाई गई है। परवाना-अधिकारी उसके अर्थके बारेमें निश्चित निर्णय हमेशा नहीं दे सके हैं। नतीजा यह हुआ कि निहित स्वार्थोंकी रक्षाके लिए समाजको गम्भीर प्रयत्न करने पड़े। और तो भी आज कोई यह नहीं कह सकता कि तमाम मौजूदा परवानोंको स्वीकार किया जायेगा या नहीं। ट्रान्सवालके उपनिवेश-सचिवने सूचनामें ऐसा संशोधन करनेका प्रयत्न किया जिससे उन भारतीयोंके हितोंकी रक्षा हो सके जो लड़ाईके पहले ब्रिटिश हस्तक्षेपके कारण परवानोंके बिना व्यापार करते थे। इस मामलेमें अन्तमें समझौता हो गया। सरकारने सर जॉर्ज फेरारका यह संशोधन स्वीकार कर लिया है जिसमें ऐसे ब्रिटिश भारतीयोंके दावोंकी जाँच करनेके लिए आयोग (कमीशन) नियुक्त करनेकी बात कही गई है और केपके प्रवासी अधिनियमके ढंगपर कानून पेश करनेकी सरकारसे प्रार्थना की गई है। अभी यह कहना सम्भव नहीं कि इस संशोधनका असर क्या होगा। हमने उसे सद्भावनाओंका प्रमाण समझकर मंजूर कर लिया है और, इसलिए, उसका एक ही अर्थ लगाया है जो सम्भव है और जो वर्तमान सरकारकी घोषणाओंके भी अनुकूल है। वह अर्थ यह है कि जो लोग लड़ाईसे पहले व्यापार कर रहे थे उन सबको बाजारोंसे बाहर व्यापार करनेके परवाने दिये जायेंगे और केप जैसा कानून बननेका अर्थ यह होगा कि मौजूदा एशियाई-विरोधी कानून बिलकुल उठा दिये जायेंगे और जिस भारके नीचे भारतीय पहलेसे ही दबे हुए हैं उसमें कोई वृद्धि नहीं होगी। एक बात बिलकुल साफ हो जानी चाहिए कि ब्रिटिश सरकारके राज्यमें पुरानी हुकूमतकी अपेक्षा स्थिति अधिक असह्य न बना दी जाये — भले ही इसका हेतु इतना ही क्यों न हो कि लड़ाई छेड़नेके जो कारण जाहिरा तौरपर बताये गये थे उनमें से एक कारण ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंपर लदी हुई निर्योग्यताएँ भी था। इस अर्थमें दो निर्णयात्मक सुधार हुए हैं। परवाना विभाग फिर परवानोंके मुख्य सचिवको सौंप दिया गया है और हमें जो समाचार मिले हैं उनसे हम कृतज्ञतापूर्वक कहते हैं कि भ्रष्टाचार बिलकुल मिट गया है और वास्तविक अरजदारोंको बेजा देरके बिना परवाने मिल जाते हैं। एशियाई दफ्तर अब भी है। हमें पता नहीं क्यों है परन्तु हमें मालूम हुआ है कि "एशियाइयोंके संरक्षक" के रूपमें भी जिनसे भारतीय समाजके हितैषी और हमदर्द हैं।

जोहानिसबर्गकी बस्ती भारतीयोंके हाथसे निकल गई है। यदि ऐसा न होता तो भी कोई भारी मुसीबत न होती क्योंकि अकेले जोहानिसबर्गमें भारतीयोंको उस छोटेसे क्षेत्रके भीतर ९९ वर्षके पट्टेका अधिकार दिया गया था और अब वहाँ निवासियोंको भरोसा नहीं है कि उन्हें वही सुविधाएँ दी जायेंगी या नहीं यह भी भरोसा उन्हें नहीं है कि नया स्थान

[1] देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ११४।

कहाँ तय किया जायेगा। कुछ भी हो यह स्थान मौजूदा जगहके बराबर लाभदायक हरगिज नहीं होगा।

संक्षेपमें ट्रान्सवालकी यह स्थिति है। एशियाई गिरमिटिया मजदूरोंको लानेकी तजवीज मजबूती पकड़ रही है, और इससे अधिक गिरमिटिया लोगोंका अस्तित्व भारतीयोंको जकड़नेवाले बन्धन और भी कड़े करनेका बहाना बनाया जायेगा। किन्तु दक्षिण आफ्रिकामें लॉर्ड मिलनर एक मजबूत आदमी हैं। सही या गलत जब उन्हें विश्वास हो गया कि युद्ध आवश्यक है तो सारे विरोधके बावजूद उन्होंने उसे पार लगाया। इसलिए हम आशा रखते रहेंगे कि परमश्रेष्ठने जो वचन दिये हैं उन्हें वे पूरा कर सकेंगे और ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें सरकारी नीतिके सिद्धान्त साफ तौरपर तय कर सकेंगे। स्वार्थी व्यापारियोंका भारतीयोंके प्रति द्वेष निःसन्देह प्रबल है मगर हमारी रायमें यह और भी बड़ा कारण है कि परमश्रेष्ठ दृढ़ रहें और सबलोंके विरोधसे निर्बलोंकी रक्षा करें।

ऑरेंज रिवर कालोनी

इस उपनिवेशका विचार करते हैं तो निराशा ही हाथ लगती है। वर्तमान शासनने पुराने गणराज्यके भारतीय-विरोधी कानूनोंको सतर्कताके साथ रखा भी है और उन पर हर तरहकी दस्तन्दाजीको रोका है। जैसा कि इन स्तम्भोंमें बताया गया है उसने आगे बढ़कर पेचीदा विधान भी पास किया है तमाम रंगदार प्रजापर नियन्त्रणकी असाधारण शक्ति उसने नगरपालिकाओंको सौंपी है। श्री चेम्बरलेनने मामलेपर बारीकीसे विचार करके जल्दी ही सुविधा कर देनेका वचन दिया था किन्तु उसका कोई फल नहीं निकला। ब्रिटिश शासनके लगभग दो वर्ष बाद भी ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें किसी भी स्तरके भारतीयका प्रवेश नहीं है। जो कुछ बरसों पहले उस उपनिवेशमें व्यापार करते थे उन्हें भी वापस जानेकी इजाजत नहीं है। हमने यहाँतक सुना है कि सारी प्रारम्भिक कार्रवाइयोंमें से गुजर चुकनेके बाद जो कोई भारतीय नौकरोंकी हैसियतसे कालोनीमें रहते थे अभी पिछले महीनेमें उन्हें इसलिए गिरफ्तार किया गया और उनपर जुर्माना भी किया गया कि शायद वे पहलेसे भिन्न कोई नौकरी इस समय कर रहे थे। श्री लिटिलटनको[1] उदार साम्राज्यवादी भावनाएँ रखनेका श्रेय प्राप्त है। वे जिस पदपर हैं वहाँ अपने साम्राज्यवादको कसौटीपर परख सकते हैं। क्या वे अवसरके अनुकूल प्रवृत्त होकर उपनिवेशका द्वार ब्रिटिश भारतीयोंके लिए खोल देंगे? — बेशक बिना प्रतिबन्धोंके नहीं क्योंकि यह मुद्दा हमने मान लिया है कि दक्षिण आफ्रिकामें रंग-भेदके अस्तित्वको ध्यानमें रखकर प्रवास-नियमनके लिए सर्व-सामान्य कानून बनाया जा सकता है किन्तु हमारा यह दृढ़ मत है कि किसी भी वर्ग धर्म या रंगके आदमीको प्रवासी कानून द्वारा लगाई हुई शर्तें पूरी करनेके बाद किसी भी ब्रिटिश उपनिवेशमें और अपनी इच्छाका उद्यम करनेका अधिकार होना चाहिए।

नेटाल

इधर हमारा नजदीकी बात लें तो बहुत-कुछ कहनेको नहीं है। प्रिटोरियामें ब्रिटिश भारतीय शिष्टमण्डलके मिलनेपर श्री चेम्बरलेनने जो उत्साहवर्धक शब्द कहे थे वे ही उन्होंने डर्बन और पीटरमैरित्सबर्गके शिष्टमण्डलोंसे भी कहे। प्रवासी-प्रतिबन्धक कानून अधिक कठोर हो गया है। शैक्षणिक धारा इस तरह संशोधित कर दी गई है कि यदि प्रवासी-अधिकारी चाहे तो किसी भी व्यक्तिका जाँचमें सफल होना बहुत मुश्किल हो जायेगा। किन्तु यह बहुत ज्यादा

१. चेम्बरलेनके बाद सितम्बर १९, १९०३ को उपनिवेश-मन्त्री नियुक्त हुए।

महत्त्वकी बात नहीं है। असलमें चुभती हुई रग तो विक्रेता-परवाना अधिनियम है। डर्बन नगर परिषद और नेटालके अन्य स्थानिक निकायोंकी हलचलोंसे इस भयको खासा आधार मिल जाता है कि यह कानून सख्तीसे लागू किया जायेगा। अभी नगर-परिषदें ही अपने परवाना अधिकारियोंके निर्णयके खिलाफ की गई अपीलोंको सुननेवाली सत्ता हैं। जबतक सर्वोच्च न्यायालय इन परिषदोंके निर्णयोंके खिलाफ अपील सुननेकी सत्तासे वंचित रखा जायेगा तबतक यह कानून कष्टोंका प्रबल कारण बना रहेगा। लेडीस्मिथके परवाना-अधिकारीने भारतीयोंको सूचना भेजी है कि वे जबतक दूकानें बन्द करनेके मामूली वक्त की पाबन्दीके लिए रजामन्द नहीं होते उनके परवाने फिर जारी नहीं किये जायेंगे। हमने एकाधिक बार यह आशा व्यक्त की है कि लेडीस्मिथके ब्रिटिश भारतीय व्यापारी इस सम्बन्धमें परवाना-अधिकारीके साथ कोई आपसी समझौता कर सकेंगे हमारी समझमें यह बहुत ही नाजुक और ऐसा मामला है जिसपर यदि निर्णय देनेमें कोई गलती हो गई तो फिर शिकायतें दूर कराना बहुत कठिन हो जायेगा।

लगता है डर्बनमें *बाजारों* या बस्तियोंसे सम्बन्धित थी एक्सके प्रस्तावका मुर्दा दफन हो चुका है, किन्तु उसकी दुर्गन्ध नाकमें भर गई है और कह नहीं सकते कब उसे फिर उखाड़नेके प्रयत्न किये जायें। यह प्रस्ताव ट्रान्सवाल-*बाजार*-सूचनाके प्रकाशनके तुरन्त बाद आया था और जैसा कि हमने उस समय स्पष्ट किया था उसे सुयोग्य महापौर महाशयने अशोभनीय जल्दबाजीमें पेश किया था। प्रस्तावकी[1] स्याही कागजपर सूखने भी नहीं पाई थी कि ट्रान्सवालसे खबर मिली कि *बाजार-सूचना* केवल एक अस्थायी विनियम है और उसे उपनिवेशके स्थायी कानूनोंमें शामिल करनेका कोई इरादा नहीं है।

यह देखते हुए कि नेटालमें हजारों भारतीय अपने कुटुम्बोंके साथ रहते हैं और उन्हें अपने बच्चे पढ़ाने-लिखाने हैं यहाँ भारतीयोंकी शिक्षाका प्रश्न गम्भीर है। सरकार भारतीयोंकी शिक्षाका काफी अच्छा प्रबन्ध करनेको कितनी भी तैयार क्यों न हो उपनिवेशकी लोकशालाओं (पब्लिक स्कूलों) के द्वार भारतीय विद्यार्थियोंके लिए बन्दकरके उसने भारतीय समाजको बहुत बड़े घाटेमें डाल दिया है। डर्बनके सरकारी मदरसेमें जो आखिरी तीन भारतीय छात्राएँ पढ़ रही थी वे श्रेयके साथ उत्तीर्ण होकर निकल आई हैं। अब दुर्भाग्यसे उनकी दूसरी बहनोंको वैसे शिक्षणकी सुविधा नहीं रही। ये तीनों लड़कियाँ ठीक भारतीय कुटुम्बोंकी हैं। इनका पालन-पोषण बहुत अच्छी तरह हुआ है और इनकी शिक्षिकाएँ इन्हें खूब चाहती थीं। ये हमेशा पहली पंक्तिमें रहीं और श्रम सत्य और शीलकी दृष्टिसे इनका चरित्र बहुत ऊँचा था। यह सोचकर दुःख होता है कि अन्य भारतीय लड़कियाँ जो ऐसी ही सुविधाएँ मिलने पर इन्हीं जैसा करतब कर दिखाती अब केवल अपनी चमड़ीके रंगके कारण ऐसे अवसरसे वंचित हैं।

थोड़ी-बहुत चैन मिल जानेसे भारतीय समाज नेटालमें शिक्षा-सुधारका काम हाथमें ले सका है। इस सिलसिलेमें डर्बनकी मदरसा उल्लेखनीय है। यह उन्नतिशील संस्था है और मूडी साहबकी देखरेखमें इसकी व्यवस्था सुचारु है। हमारी इच्छा तो यही है कि ऐसी ही और भी संस्थायें उपनिवेशमें जहाँ-तहाँ हों। रेवरेंड स्मिथने अभी-अभी भारतीय-शिक्षकोंके लिए एक प्रशिक्षण महाविद्यालय खोला है। अच्छा प्रबन्ध होने और प्रोत्साहन मिलनेपर यह उपनिवेशमें नैतिक और शैक्षणिक प्रभावका बहुत बड़ा केन्द्र बन सकता है।

और भी बहुतसे ऐसे सुधार हैं जिन्हें भारतीय समाज अपने ही हाथमें ले सकता है। हम आशा करें कि पिछले वर्षकी अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यकर इस वर्ष उन्नति होगी और हमारे कुछ उदारचेता भारतीय व्यापारी इनमें से कुछ कार्योंको पूरा करेंगे।

१ देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३३१।

फिर कालोनी

इस सबसे पुराने उपनिवेशमें कहने लायक बहुत-कुछ नहीं है। प्रवासी अधिनियम पिछली जनवरीमें लागू किया गया था। सुनते हैं वह खास सख्तीसे अमलमें नहीं लाया जा रहा है। उस तरहके कानूनके अमलमें कुछ कठिनाइयोंका आना स्वाभाविक है। किन्तु कुल मिलाकर अधिकारीगण उसकी कठोरता कम करनेके लिए उत्सुक जान पड़ते हैं।

ईस्ट लंडनमें बस्ती कानून और पैदल-पटरी कानूनने जो बदरत पड़ेगी यह मानकर, पहलेसे ही बना लिये गये थे एक समय तो काफी क्षोभ उत्पन्न कर दी थी। किन्तु अब सुनते हैं भारतीय ब्रिटिश भारतीय छूटका प्रमाणपत्र लिए बिना भी पैदल-पटरियोंपर चलते हैं और उनको सताया नहीं जाता। बात अभी तो सन्तोषजनक दिखाई देती है, किन्तु हमारी रायमें ऐसा उपनियम नगरपालिकापर कलंक है और जितनी जल्दी यह उठा लिया जाये उतना नगरपालिकाके लिए श्रेयस्कर होगा। यह एक विडम्बना है कि सम्राट्की सरकारने ऐसे कानूनको उस उपनिवेशमें अनुमति दे दी जिसमें भारतीय-विरोधी कानून कमसे-कम बाधदायक है। फिर भी ब्रिटिश भारतीय इससे इतना सबक तो ले ही सकते हैं कि अगर कोई समाज अपने हितोंके प्रति जागरूक न रहे तो वह ब्रिटिश सरकारके मातहत फूल-फल नहीं सकता।

अपनी बात

दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके इस संक्षिप्त सिंहावलोकनके अन्तमें हम कुछ अपनी भी कहनेकी अनुमति चाहते हैं। अभी *इंडियन ओपिनियनको* प्रकाशित होते मुश्किलसे सात महीने हुए हैं किन्तु हम समझते हैं इस थोड़ी-सी अवधिमें ही उसने एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। उसे जो कुछ प्रतिष्ठा मिली उसका उपयोग हमने समाजके और साम्राज्यके जिसका अंग होनेका हमें अभिमान है हितमें करनेकी कोशिश की है। हमने जो कार्यक्रम बनाया है वह महत्त्वाकांक्षापूर्ण है। वह पूरा-पूरा सम्पन्न नहीं किया जा सका है — उसके निर्माताओंकी यह अपेक्षा भी नहीं थी कि वह सारा-का-सारा एकदम पूरा हो जायेगा। वह तो हमारा लक्ष्य है, जिसे हम यथासम्भव जल्दी प्राप्त करना चाहते हैं। एक सिद्धान्तपर हमने अडिग रहनेका प्रयत्न किया है — जो वास्तविक तथ्य है उससे कभी अलग न होना और वर्षमें जो कठिन सवाल सामने आयें उन्हें निपटानेमें हमारा सवाल है हमने जितनी अधिक नरमीसे उस समयकी परिस्थितियोंमें काम किया जा सकता था उतनी नरमीसे काम किया है। हमारा कर्तव्य बहुत सीधा-सादा है। हम समाजकी और, अपने निजी नम्र ढंगसे साम्राज्यकी सेवा करना चाहते हैं। हमें जिस कार्यको उठानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसकी पवित्रतामें हमारा विश्वास है। सर्वशक्तिमान परमेश्वरकी करुणामें हमारी अचल निष्ठा है और ब्रिटिश विधानमें हमें पूरा भरोसा है। ऐसी हालतमें यदि हम चोट पहुँचानेके लिए कुछ लिखें तो हम अपने कर्तव्यसे च्युत होंगे। तथ्य कटु हों या मधुर, उन्हें हम सदा पाठकोंके सामने रखेंगे। जनताके सामने उन्हें उनके नये रूपमें लगातार पेश करते रहनेसे ही दक्षिण आफ्रिकामें दोनों समाजोंके बीचकी गलतफहमी हटाई जा सकेगी। यदि इसे जल्दी हटानेमें हम थोड़ी-बहुत भी मदद कर सके तो यही हमारे लिए काफी पुरस्कार हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ७–१–१९०४

७६. ट्रान्सवालमें मजदूर-समस्या

सर जार्ज फेरारका प्रस्ताव[1]

सरकारका ध्यान ट्रान्सवाल मजदूर आयोगकी रिपोर्टकी[2] तरफ दिलाया जाये और सरकारसे एक ऐसे अध्यादेशका मसविदा पेश करनेका अनुरोध किया जाये जिसके अनुसार विटवॉटर्सरैंड इलाकेकी खानोंमें मजदूरोंकी भर्ती पूरी करनेके लिए अकुशल रंगदार गिर मिटिया मजदूर बाहरसे बुलाये जा सकें और उनपर ऐसी पाबन्दियाँ लगाई जा सकें जिनसे वे अकुशल मजदूरोंके तौरपर ही नौकर रखे जा सकें और करार पूरा होनेपर अनिवार्य रूपसे स्वदेश लौटाये जा सकें और इसलिए कि इस महत्त्वपूर्ण मामलेपर पूरा विचार किया जा सके अध्यादेशका मसविदा इस परिषदमें पेश होनेके काफी पहले अंग्रेजी और डच भाषामें प्रकाशित कर दिया जाये।

यह प्रस्ताव एक बहुत लम्बी बहसके बाद जबरदस्त बहुमतसे स्वीकार कर लिया गया। पक्षमें २२ और विपक्षमें केवल ४ मत — सर्वश्री बोर्क, लवडे, रेट और हल्के — थे।

सर जॉर्ज फेरार १ घंटेसे अधिक बोले। श्री हल ४ घंटे बोले लेकिन इस अवसरका मुख्य भाषण शायद सर रिचर्ड सॉलोमनका था। अवसर अनोखा था और सारे दक्षिण आफ्रिकाके इतिहासमें न सही ट्रान्सवालमें ब्रिटिश राज्यके इतिहासमें यह एक महत्त्वपूर्ण घटना समझी जायेगी। बेशक प्रस्तावके पक्षमें बोलनेवालोंने जोरदार ढंगसे अपना मामला रखा फिर भी हमारी रायमें उससे हम कई वर्ष पीछे ढकेल दिये गये हैं और हमारा निश्चित खयाल है कि सर जॉर्ज फेरार और उनके समर्थक आगेकी ओर नहीं देख सके। जो व्यक्ति बड़े-बड़े मुनाफोंके लिए लगाव रखे हैं, उनका यह रुख तो हम भलीभाँति समझ सकते हैं कि जिस प्रश्नमें ऐसे मुनाफोंका स्वार्थ निहित हो उसपर वे निष्पक्ष दृष्टि नहीं रख सकते। ऐसी ही स्थितिमें दूसरे लोग होते तो शायद वे वही दृष्टि रखते जो एशियाइयोंके समर्थकोंने रखी है। यह दलील निःसन्देह अधूरा है कि चीनी मजदूरोंके विनियमन पर सरकार जो पाबन्दियाँ लगायेगी वे इतनी कड़ी होंगी कि उनसे एशि-याई-विरोधियोंकी उठाई हुई सारी आपत्तियोंका जवाब मिल जायेगा। जो सज्जन इस तरह तर्क करते हैं वे इस हकीकत पर ध्यान नहीं देते कि चीनी भी मनुष्य हैं और प्रतिबन्ध कितने ही कड़े लगाये जायें तो भी दक्षिण आफ्रिकाके सारे समाजपर उनका असर पड़े बिना नहीं रह सकता। बेशक हो हम एशियाई-विरोधियोंसे इस बातमें सहमत नहीं हैं कि चीनी कौम दूसरे लोगोंसे जरा भी ज्यादा चरित्रहीन है या क्षुद्र प्राणी है। गिरमिटिया चीनियोंकी ही नहीं भारतीयोंकी भी इतनी बड़ी संख्यामें मौजूदगीपर हमारा ऐतराज यह है कि उनका दक्षिण आफ्रिकाके भविष्यपर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता और गोरोंके दृष्टिकोणसे तो वह प्रभाव और भी बुरा होगा। यदि दक्षिण आफ्रिकामें किन्हींको जबरदस्ती लाना है तो निःसन्देह ब्रिटिश द्वीप समूहके निवासियोंको ही लाना चाहिए, और किसीको नहीं। यह अपेक्षा करना व्यर्थ है कि समय पाकर हालात बदले आप ऐसे हो जायेंगे कि गोरोंको हाथसे काम करनेमें आपत्ति न रह जायेगी। सम्भावना नहीं है कि जब एक बार दक्षिण आफ्रिका या ट्रान्सवालके यूरोपियोंको हाथसे काम करना

1. यह ट्रान्सवाल विधान परिषदमें रखा गया था।
2. देखिए पृष्ठ ७०।

अपनी शानके खिलाफ समझनेकी आदत हो जायगी और वे यह काम रंगदार लोगोंसे लेनेके आदी हो जायेंगे तब वे इसके विपरीत करनेको और हाथका काम खुद करनेको राजी नहीं होंगे। सर पर्सी[1] अपने श्रोताओंसे कहा कि वे ट्रान्सवालमें गिरमिटिया रंगदार मजदूरोंको न आने देनेका परिणाम सोचें। उन्होंने अपने खयालके अनुसार, बहुत भयानक चित्र खींचते हुए कहा कि यदि ऐसा हुआ तो विभिन्न नगरपालिकाओंने जो जबरदस्त काम हाथमें लिये हैं उनमें से अधिकतर उन्हें छोड़ देने पड़ेंगे। हम साफ-साफ स्वीकार करें कि अगर ट्रान्सवालके लाभ केवल भविष्यकी मैनाओंके तो भले ही यह दृश्यमें कठोर दिखाई दे हमें इन बड़े कामोंको बन्द कर देनेमें कोई असाधारणता दिखाई नहीं देती। यह बिलकुल ठीक है कि जब यहाँ ब्रिटिश सत्ता आई तब जो बहुत-सी अतिशयोक्तिपूर्ण बातें सोची गई थीं उनकी तदबीर बदलनी पड़ेगी परन्तु यह अच्छा ही होगा। हमें खेद है कि लम्बी और उबा देनेवाली सारी बहसमें सर जॉर्जके पादरियों सम्बन्धी प्रस्तावकी पिछली धाराके विरुद्ध आवाज उठानेवाला एक भी वक्ता नहीं था। यह देखकर निराशा होती है कि तेजस्वी लोगोंके उस समूहमें किसीने भी उसपर चीनियोंके दृष्टिकोणसे विचार करना जरूरी नहीं समझा। सब सहमत थे कि चीनी लोग परिश्रमी समझदार और योग्य हैं, फिर भी किसीको इसमें असंगतता नहीं दिखाई दी कि उनके साथ निरे गुलामोंका-सा बरताव किया जाये और खानोंके विकासके लिए जितनी थोड़ी मदद की जरूरत हो उसके सिवा जबरदस्ती उनको अपनी समझ और योग्यतासे काम न लेने दिया जाये। सर रिचर्डका[2] सवाल था कि अगर किसी काफिरको सरकारी हस्तक्षेप द्वारा या कर लगाकर काम करनेपर मजबूर किया जायेगा तो वह जबरिया काम होगा और उसे ब्रिटिश सरकार सहन नहीं कर सकेगी। यदि आप एक आदमीको चूस लें उसकी हलचलोंपर पाबन्दी लगायें और ज्यों ही उसका गिरमिट पूरा हो उसे निकाल बाहर करें तो क्या यह भी ऐसी ही बात नहीं है? किन्तु इस मौकेपर दलीलें देनेसे कोई फायदा नहीं। पाँसा पड़ चुका है। जल्दी ही हमारे सामने अध्यादेशका मसविदा आनेवाला और शायद कुछ ही महीनोंमें हजारों गिरमिटिया मजदूर भी। ट्रान्सवाल जो महत्त्वपूर्ण कदम उठानेवाला है उसका परिणाम समय बतायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ७–१–१९०४

1. सर पर्सी फिट्ज़पैट्रिक — ट्रान्सवाल विधान परिषदके सदस्य।
2. सर रिचर्ड सॉलोमन।

७७ ट्रान्सवालमें गिरमिटिया मजदूर-अध्यादेशका मसविदा

अन्यत्र हम ट्रान्सवालमें गैर-यूरोपीय अकुशल मजदूरोंके प्रवेशका नियमन करनेवाला अध्यादेश पूराका-पूरा उद्धृत कर रहे हैं। सरकारने सर जॉर्ज फेरारके प्रस्तावपर तड़ाकेसे कार्रवाई की है। अध्यादेशका मसविदा होशियारीसे बनाया गया है। मगर सरकारको इस कारगुजारीपर बधाई नहीं दी जा सकती। एक ईसाई ब्रिटिश सरकार इस बाबत यथाशक्ति ऐसे प्रस्ताव पेश कर सकती है, जैसे कि अध्यादेशके मसविदेमें रखे गये हैं — यह आधुनिक सभ्यताकी हास्य पर दुःखपूर्ण टीका है। सदसद् विवेककी किसी भी दृष्टिसे अध्यादेशका मसविदा काफी कठोर है और यह हजारों चीनियों या अन्य एशियाई जातियोंको जिन्हें उसके अनुसार इस देशमें लाया जायेगा मात्र भारवाही पशु बना डालेगा। उनका आना-जाना उनके काम करनेकी जगहोंमें एक मीलकी परिधिके भीतर सीमित रखा जायेगा और उन जगहोंको वे बाकायदा हस्ताक्षर किये हुए पासोंके बिना नहीं छोड़ सकेंगे और सो भी ४८ घंटेसे अधिक समयके लिए नहीं। उनमें कोई कौशल हो तो भी वे उसे काममें नहीं ला सकेंगे और, जैसा भी तय हो तीन या पाँच वर्षके अन्तमें वे ट्रान्सवालसे वापस भेज दिये जायेंगे। जबरदस्ती वापस भेजनेकी क्रियाको लागू करनेका तरीका बहुत सीधा-सादा और कारगर है परन्तु उतना ही अमानुषिक भी है। जिस धाराके अनुसार जबरदस्ती वापस भेजनेका नियमन किया जायेगा उसमें कहा गया है कि अगर गिरमिटिया मजदूरोंमें से कोई वापस जानेसे इनकार करेगा तो उसे एक तरहसे स्थायी कैद भुगतनी होगी और यह तभी खतम होगी जब वह देशसे बाहर निकाल दिया जाना मंजूर कर लेगा। इस प्रकार, परिस्थितिवश ट्रान्सवालमें फिर संशोधित गुलामीका युग लाया जायेगा। खानोंका काम किसी भी कीमतपर जारी रहना ही चाहिए — भले इसमें ब्रिटिश नीतिके अत्यन्त स्नेह-संरक्षित सिद्धान्तोंका बलिदान ही क्यों न करना पड़े। इंग्लैंडमें ऐसे लोग हैं, जिन्हें दूसरे देशोंके कालोंकी बड़ी चिन्ता लगी रहती है और वे दक्षिण अमेरिका और दूसरी जगहोंके लोगोंको जो इनकी रायमें ईसाकी शिक्षासे गिर रहे हैं, उपदेश देते रहते हैं। पता नहीं वे इस प्रस्तावित अध्यादेशके बारेमें क्या कहेंगे जो ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंडके राजा तथा भारतके सम्राटके नामपर ट्रान्सवालमें जारी किया जानेवाला है।

भारतीयोंके लिए अध्यादेशका यह मसविदा सिर्फ दिमागी दिलचस्पीकी चीज नहीं उससे ज्यादा है क्योंकि भारत-सरकारके ट्रान्सवालकी अनुनय-विनय मान लेने भरकी देर है, और उपनिवेश-सरकार खुशी-खुशी भारतके लाखोंको इस कीमती अध्यादेशका तोहफा दे डालेगी।

धारा २९ में यह कहा गया है कि

> इस अध्यादेशकी कोई बात इस उपनिवेशमें लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा उन ब्रिटिश भारतीयोंके लाये जानेपर लागू नहीं होगी, जिन्हें गवर्नरके मंजूर किये हुए रेल-मार्ग बनाने पर या दूसरे निर्माण-कार्योंपर लगाया जायेगा; किन्तु हमेशा शर्त यह होगी कि ऐसा प्रवेश उन नियमोंके अनुसार हो जिन्हें विधान-परिषद मंजूर करेगी और यह भी शर्त होगी कि इस अध्यादेशके मजदूरोंको स्वदेश लौटानेके नियम आवश्यक परिवर्तनोंके साथ ब्रिटिश भारतीयोंपर लागू होंगे।

हमें आशा है, भारतमें लोकमतके नेता और इंग्लैंडमें भारतवासियोंके हितैषी इसका ध्यान रखेंगे। इससे जाहिर होता है कि ट्रान्सवाल-सरकार यह नहीं मानती कि भारत-सरकार अध्यादेशके मसविदेकी धाराओंको चुपचाप पी लेगी लेकिन दुर्भाग्यवश इससे यह भी प्रकट होता है कि उसे आशा है जल्दी ही भारत-सरकार अनिवार्य वापसीकी शर्तपर भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंको जानेकी बात मंजूर कर लेगी। हमने अनेक बार अपना यह मत प्रकट किया है कि हम स्वतंत्र भारतीयोंकी स्वतन्त्रताके बदले गिरमिटिया भारतीयोंकी लगभग गुलामों जैसी हालत मंजूर नहीं करेंगे और यह ध्यानमें रखना चाहिए कि ट्रान्सवाल-सरकारने अपने व्यवहारमें अभीतक भारतीयोंके साथ अत्यन्त "प्रारम्भिक न्याय" (ये भी लॉर्डके शब्द हैं) करनेकी भी कोई इच्छा प्रकट नहीं की है। डूबते हुए आदमीकी तरह ट्रान्सवालके लोग उसी तिनकेका सहारा लेनेपर उतारू हैं जो उपनिवेशको दिवालियापनसे बचा सके और अगर खानोंके चीनियोंको निकालकी और इस प्रकार उपनिवेशके भौतिक वैभवकी रक्षा हो सके तो वे किसी हद तक उतर आनेको तैयार हैं। हम इतनी ही आशा रख सकते हैं कि ट्रान्सवालके लोग कुछ भी करें, चीनी जनता या चीन-सरकार इस प्रस्तावित अध्यादेशके साथ कोई वास्ता रखनेसे इनकार करे और भारत-सरकार अपने मूल रवैयेपर कायम रहकर ट्रान्सवालवालोंकी उनकी हर कोशिशके बावजूद कोई सहायता नहीं करेगी तो इस प्रकार उस समाजको (हम अत्यन्त आदरके साथ कहते हैं) ऐसी बातसे बचायेगी जो मानवताके विरुद्ध अपराध है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-१-१९०४

७८ नव वर्षका उपहार

जब व्यापार-सूचनाके संशोधनमें अपना प्रस्ताव पेश करते समय ट्रान्सवालके उपनिवेश-सचिवने अपना बहुत सहानुभूतिपूर्ण भाषण दिया तब हमें उसमें भारतीय व्यापारियोंके शुभ भविष्यके लक्षण दिखाई दिये थे। हमने निष्कर्ष निकाला था कि सर जॉर्ज फेरारका प्रस्ताव मान लेना बहुत अच्छा हुआ है। पाठकोंको स्मरण होगा कि सर जॉर्जका प्रस्ताव यह था कि भारतीय व्यापारियोंके निहित स्वार्थोंकी जाँचके लिए एक आयोग नियुक्त किया जाये और जो लोग लड़ाईसे पहले बतौर व्यापार कर रहे थे उन सबके परवाने फिलहाल नये कर दिये जायें। लेकिन हुआ यह है कि सरकारने ट्रान्सवालके विभिन्न भागोंमें आय-विभागके अफसरोंको हिदायत दी है कि फिलहाल केवल उन्हींको परवाने दिये जायें जो यह विश्वास करा सकें कि वे लड़ाईके पहले परवानेसे या परवानेके बिना व्यापार कर रहे थे। उपनिवेश-सचिवका मूल संशोधन यह था कि जो अफसर वसूल करनेवाले अफसरोंको इस तरहका विश्वास करा सकें उन्हें बिना शर्त परवाने दे दिये जायें और यद्यपि उपनिवेश-सचिवने अपने भाषणमें अपनी स्थिरचित्त पराक्रमके साथ बचाव किया, और सर जॉर्जका प्रस्ताव इसलिए मान लिया कि उसमें संशोधनकी भावनाका समावेश हो जाता था फिर भी जिन हिदायतोंका हमने जिक्र किया है वे स्पष्ट ही इस नीतिसे अलग हैं। आय वसूल करनेवाले अफसरोंके सामने सबूत अब भी पेश करना होगा — मानो मूल संशोधन इस प्रकार आप स्वीकृत हो गया हो कि वहाँ संशोधनके अनुसार बिना शर्त परवाने दिये जायें वहाँ इन हिदायतोंके अनुसार केवल अस्थायी परवाने दिये जायेंगे। इस प्रकार कथनी और करनीके बीचमें जबरदस्त खाई है। उपनिवेश-सचिवने जो आशाएँ दिलाई थी वे ज्यों ही उनके कर्मों

कार्यान्वित करनेकी नौबत आई, चूर चूर हो गई। भारतीयोंने पहले ही एक बार अपने पहलेके व्यापारका सबूत दे दिया है क्योंकि परिपाटी यह थी कि एशियाइयोंके पर्यवेक्षक (सुपरवाइजर ऑफ एशियाटिक्स) की सिफारिशके बिना किसीको व्यापार करनेका परवाना नहीं दिया जाता था। इसके खिलाफ भारतीय रोये-चिल्लाये परन्तु कोई काम नहीं हुआ। दुनिया भरके हलफनामे पर्यवेक्षकोंके पास ले जाने पड़ते थे और वे परवानोंके प्रार्थियोंके दावोंकी पूरी जाँच करके सिर्फ उन्हींको परवाने देनेकी सिफारिश करते थे जो उनकी रायमें युद्धसे पहले व्यापार करते थे या दूसरी तरह परवाने प्राप्त करनेके पात्र थे। अब सरकार द्वारा नियुक्त अफसरोंकी ये तमाम सिफारिशें निकम्मी समझी जायेंगी। आय वसूल करने वाले अफसरोंके सामने फिर सबूत पेश करने होंगे और फिर भी मानो इसलिए कि अत्याचार अधूरे रह गये थे प्रत्येक भारतीय परवानेदारको एक आयोग (कमिशन) के सामने घसीटा जायेगा जहाँ उसे फिर प्रमाणोंकी अग्नि-परीक्षामें से गुजरना होगा और तब भी भगवान जाने उसका परवाना बहाल होगा या नहीं। सरकारके इस निर्णयका परिणाम यह है कि भारतीय समाजको हलफनामों और दूसरे दस्तावेजों पर सैकड़ों पौंड खर्च करने होंगे तब कहीं अस्थायी परवाने जारी किये जायेंगे। जो यह सिद्ध नहीं कर सकेंगे कि वे लड़ाईके पहले व्यापार करते थे उन्हें अपनी दूकानें बन्द कर देनी होंगी। इसकी कोई परवाह नहीं की जायेगी कि उन्हें एशियाई अधिकारियोंकी सिफारिशपर गत वर्ष या उससे पहलेके वर्षमें बिना शर्त परवाने मिले थे।

ट्रान्सवालमें उनकी यह दशा हो गई है। इस दुःखद स्थितिके कारण ढूँढ़नेके लिए दूर जानेकी जरूरत नहीं है। श्री बोर्कने स्पष्ट कर दिया है कि यूरोपीय व्यापारी भारतीय स्पर्धा लेशमात्र भी नहीं चाहते — और श्री बोर्क वणिक वर्गके प्रतिनिधि हैं और वे १ पौंडकी उस युद्ध-सहायताको वापस लेनेका प्रस्ताव करनेवाले भी हैं जिसकी श्री चेम्बरलेनके आगमनपर संसारके सामने इतना ढिंढोरा पीटकर घोषणा की गई थी। शान्तिकी घोषणा होनेपर व्यापारमें जो तेजी आई, सरकार उसके बहावमें साधारण लोगोंकी तरह बह गई और उसने भारी कर्ज करके ऐसा काम हाथमें ले लिया है जिसे वह धनके बिना जारी नहीं रख सकती। इसलिए यह उन सब लोगोंको जिनकी बात ऐसे मामलोंमें सुनी जानेकी सम्भावना हो राजी करना चाहती है — भले ही ऐसा करनेसे स्पष्ट वचन-भंग और निर्दोष नागरिकोंकी बरबादी होती हो और उसके अपने ही अधिकारियोंके दिये हुए दस्तावेज रद हो जाते हों। सरकार इतनी कमजोर और भयभीत है कि न्याय नहीं कर सकती।

तब ऐसे संकटके समय ब्रिटिश भारतीयोंका क्या रुख होगा? हमारे दिमागमें यह बिलकुल साफ है कि क्या होना चाहिए। भारतीयोंको सर्वथा शान्त और धैर्यसे रहना चाहिये और अब भी भरोसा रखना चाहिए कि अन्तमें न्याय जरूर किया जायेगा। उन्हें सरकारको आदरपूर्ण *दरख्वास्तें तो देते ही रहना चाहिए परन्तु आय वसूल करनेवाले अधिकारियोंके सामने प्रमाण देनेसे* दृढ़तापूर्वक इनकार भी करना चाहिए, और कह देना चाहिए कि जो आयोग नियुक्त होगा वे उसके सामने प्रमाण देंगे। हो सकता है कि परवानोंके बिना व्यापार करनेके लिए मुकदमे चलाये जायें और अगर समन जारी कर दिये जायें और परवानेके बिना व्यापार करनेपर जुर्माने किये जायें तो अभियुक्तोंको परिस्थितिके अनुकूल साहस दिखाकर जुर्माना देनेसे इन्कार कर देना चाहिए और जेल चले जाना चाहिए। ऐसे कामके लिए जेल जानेमें कोई बेइज्जती नहीं है आम तौरपर बेइज्जती उन अपराधोंको करनेमें है जिनपर कैदकी सजा दी जा सकती है स्वयं कैदमें बेइज्जती नहीं है। इस मामलेमें कथित अपराध अपराध है ही नहीं और यह तरीका अपनाना बहुत शानदार बात होगी। हमें मालूम है कि ट्रान्सवालके भारतीय

समाजने अबतक जानबूझकर अपनी कानूनी स्थितिका सहारा नहीं लिया है। उसने यह आशा रखी थी कि अन्तमें सरकार उसके साथ न्याय करेगी। परन्तु यदि सरकार अपने कर्तव्यको तिलांजलि देकर भारतीय समाजकी रक्षा करनेसे इनकार करती है तो भारतीय समाजको सर्वोच्च न्यायालयकी सहायता लेकर इस प्रश्नकी जाँच करानी ही चाहिए कि निवासमें व्यवसाय सम्मिलित है या नहीं। १८८५ के कानून ३ का मंशा है कि भारतीय अलग बस्तियोंमें रहें, व्यापारके बारेमें यह कुछ नहीं कहता। बोअर उच्च न्यायालयने बहुमतसे फैसला दिया है कि भारतीयोंके लिए निवासमें व्यवसाय सम्मिलित है। हम नहीं समझते कि सर्वोच्च न्यायालय इस फैसलेको बन्धनकारी मानेगा। कुछ भी हो मुद्दा महत्त्वका और विचारणीय है और यद्यपि हमें अब भी आशा है कि कानूनी दावेकी नौबत नहीं आयेगी फिर भी यदि सरकार तमाम मौजूदा परवानेदारोंकी रक्षा न करनेका आग्रह रखेगी तो उपनिवेशकी सबसे ऊँची अदालतमें अपील करनेके सिवा हमें और कोई उपाय दिखाई नहीं देता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-१-१९०४

७९. पैदल-पटरी उपनियम

इसी ७ तारीखको प्रिटोरियाकी नगर-परिषदकी एक बैठकमें श्री लवडेने प्रस्ताव रखा कि,

> पुलिसको दी गई इन हिदायतोंको देखते हुए कि रंगदार लोगोंको पैदल-पटरियाँ इस्तेमाल करनेसे न रोका जाये परिषद तुरन्त प्रिटोरियाके नागरिकोंके अधिकारों, रीति-रिवाजों और विशेष सुविधाओंके इस दुरुपयोगको रोकथामके लिए कदम उठाये।

प्रस्ताव पेश करते हुए उन्होंने अपने भाषणमें कुछ असाधारण बातें कहीं और यद्यपि उनकी वे बातें ज्यादातर काफिरोंपर लागू होती हैं फिर भी यह स्पष्ट है कि उनके लपाटेमें सभी रंगदार आ जाते हैं। स्पष्ट रूपसे उनके लेखे काफिर घृणाके पात्र हैं और सिवायमें वे कितने ही उन्नत क्यों न हों वे पैदल-पटरीपर चलनेके योग्य भी नहीं हैं। किन्तु हम काफिरोंके कोई वकील नहीं हैं। खिलाफ हमारा सम्बन्ध उन बहुत अजीब दलीलोंसे है, जो श्री लवडेने अपने प्रस्तावके समर्थनमें दी हैं। उनके कथनानुसार यदि काफिरोंको — और काफिर ही क्यों किसी भी रंगदार आदमीको — पैदल-पटरियों पर चलने दिया जायेगा तो उन्हें नगरपालिकाका मताधिकार — राजनीतिक मताधिकार — मिल जायेगा और वह उनके साथ विधान-परिषदमें बैठेगा। क्या हम इन माननीय सज्जनको याद दिलायें कि अभी उस दिन यही सरकार जिसने बताते हैं अच्छे कपड़े पहने हुए वतनियोंको पैदल-पटरियोंपर चलनेसे न रोकनेकी पुलिसको हिदायतें दी हैं, तमाम रंगदार लोगोंको नागरिक मताधिकारसे वंचित करनेको राजी हो गई थी? अपने मुद्दे साबित करनेके प्रयत्नमें श्री लवडेने अपने श्रोताओंको बताया कि भारतमें भारतीयोंको उसी रेलके डिब्बेमें सफर नहीं करने दिया जाता जिसमें यूरोपीय सफर करते हैं। हम यह जाननेके लिए बहुत उत्सुक हैं कि उन्हें यह जानकारी कहाँसे मिली। अगर वे नागरिक जीवनमें बिलकुल नये आदमी होते और ऐसा बयान देते तो उसे क्षम्य गलती माना जा सकता था परन्तु श्री लवडेकी स्थितिके आदमी पुरुषके लिए पहले तसदीक किए बिना ऐसा बयान देना — और जो भी ऐसा बयान जिससे बहुत हानि हो सकती है — मिथ्या प्रचारसे कम नहीं है। कोई भी व्यक्ति जो भारतमें थोड़े समय भी रह चुका है, यह जानता है कि

८१ श्री ग्लैडस्टनका जीवनवृत्त

इस ज़मानेमें महापुरुषोंमें गिने जानेवाले श्री ग्लैडस्टनका जीवनवृत्त जो उनके पट्ट शिष्य श्री मॉर्लेने[1] लिखा है तीन जिल्दोंमें हालमें ही प्रकाशित हुआ है। भारतमें जीवनवृत्त कम लिखे जाते हैं। अतः जीवनवृत्तकी क्या कीमत है सो समझनेमें इस ओरकी जनता नासमझ ही रही है। पाश्चात्य जनता इस विषयमें बहुत आगे बढ़ गई है। महात्मा पुरुषोंके जीवनवृत्तोंमें अनेकानेक प्रकारकी शिक्षा समाई रहती है। जो शिक्षाप्रद उदाहरण इस जीवनवृत्तसे मिलते हैं उनका जन-समाजपर बहुत महत्त्वका प्रभाव पड़ता है।

महात्मा ग्लैडस्टन किस कोटिके पुरुष थे इस विषयपर एक व्याख्यान माननीय श्री चन्दावरकरने उच्च श्रेणीके श्रोता-समाजके समक्ष २२ नवम्बर, १९ १ को प्रार्थना-समाज मन्दिरमें दिया था। श्री चन्दावरकरने अपने भाषणके आरम्भमें बताया था कि इस संसारमें महापुरुष कौन होता है और महापुरुषमें कौन-कौनसे गुण होने चाहिए। श्री ग्लैडस्टन कैसे थे तमाम यूरोपकी जनता एक महापुरुषके रूपमें उनका सम्मान किसलिए करती है आदि बातोंकी संक्षिप्त चर्चा करके उन्होंने श्री ग्लैडस्टनकी स्तुति की थी और वैसा करते हुए माननीय वक्ताने तत्त्ववेत्ता इमर्सनका उदाहरण देकर बताया था कि जिस मनुष्यमें विनय सौजन्य शान्ति तथा दूसरेका मत कितना ही भूलभरा क्यों न हो तो भी उसके प्रति आदर कामको समझनेकी शक्ति परिणामदर्शिता त्रिकालाबाधित सत्यके प्रति दृढ़ भक्ति-भाव कार्य करनेकी एक निश्चयात्मक बुद्धि आदि गुण प्रभावक्षम होते हैं, वह महापुरुष कहा जा सकता है। ऐसा महापुरुष तत्त्ववेत्ता इमर्सन था। श्री चन्दावरकरने बताया कि बड़प्पन बाचालतासे नहीं आ जाता बल्कि ये गुण तो संयम-साधनसे ही आ सकते हैं।

श्री मॉर्लेने ग्लैडस्टनका जो जीवनवृत्त लिखा है, उससे स्पष्ट पता चलता है कि जिस तरह इमर्सन तत्त्वज्ञोंमें महान गुणी था उसी तरह राजकारियों और राजनीतिज्ञोंमें ग्लैडस्टन महान गुणी था। इस महात्माकी यह अद्भुत खूबी है और यही कारण है कि इंग्लैंडकी ही नहीं, बल्कि अनेक राष्ट्रोंकी जनता इसको ओर पूज्य बुद्धिसे देखती है। इस संसारमें जन्म लेकर मेरा कर्तव्य क्या है और मेरी योग्यता क्या है इसे श्री ग्लैडस्टनसे अधिक अच्छी तरह दूसरा कोई समझ नहीं सका। व्यवस्थापूर्वक और चिन्तापूर्वक नियमित रीतिसे उन्होंने जो दैनन्दिनी लिखी है वह इस बातका उत्तम उदाहरण है। राष्ट्रीय उन्नतिके चिन्तनमें वे सदैव निमग्न रहते थे और उन्हें विद्याका इतना व्यसन था कि उसीके परिणामस्वरूप वे राजमान्य लोकमान्य और प्रजाप्रिय महात्मा बन गये थे। उनका बुद्धि-चातुर्य विलक्षण था। उनकी राजनीतिक सूझ-बूझ आदर्श थी। हाथमें लिये हुए कामको पूरा करनेमें वे बेजोड़ थे। अपयश प्राप्त होनेपर वे खिन्न नहीं होते थे बल्कि सदैव सत्यको पकड़े रहते थे। यश मिलनेपर आनन्दित नहीं होते थे। बल्कि जब दुनियाके लोग उनपर प्रसन्न होते थे और समाचारपत्र उनकी अद्भुत चमत्कार-पूर्ण शक्तिका गान करते थे तब यह राजमान्य पुरुष अपने मनमें विचार करके बहुत अच्छी तरह सोच लेता था कि उसकी अपनी योग्यता कितनी कम है। इंग्लैंडकी प्रजाकी उन्नतिके लिए

[1] बादमें वाइकाउंट जॉन मॉर्ले (१८३८–१९२३), उदार राजनीतिज्ञ और लेखक, १८८६ और १८९२-९५में आयरलैंड-मन्त्री और १९०५-१ में भारत-मन्त्री।

८९. ट्रान्सवालकी स्थिति[1]

[जोहानिसबर्ग]
जनवरी १८, १९०४

ट्रान्सवालमें भारतीयोंकी आज तककी स्थितिका प्रदर्शक वक्तव्य

जैसा कि नीचेके वक्तव्यसे स्पष्ट होगा सरकारने एक असमर्थनीय तथा विरोधी रुख अख्तियार कर लिया है।

उपनिवेश-सचिव श्री डंकनने विधान-परिषदमें इस आशयका प्रस्ताव रखा कि जो लोग लड़ाईसे पहले बिना परवानोंके भी व्यापार कर रहे थे उन सबके परवाने नये कर दिये जायें। सर जॉर्ज फेरारने संशोधन पेश किया कि ऐसे लोगोंको अस्थायी रूपसे परवाने दिये जायें और उनके दावोंकी जाँचके लिए एक आयोग नियुक्त किया जाये। लगता था कि इन परिस्थितियोंमें भारतीयोंके तमाम मौजूदा परवाने फिर अस्थायी रूपसे जारी कर दिये जायेंगे किन्तु सरकारने संशोधनकी सीमा संकुचित करके परवाना देनेवाले अधिकारियोंको हिदायतें दी हैं कि वे पहलेके व्यापारके बारेमें प्रमाण लें और यदि उन्हें सन्तोष हो जाये तो अस्थायी परवाने जारी करें। अन्य लोगोंको बाजारोंके सिवा दूसरी जगहोंके लिए परवाने न दिये जायें। इसका अर्थ हुआ आयोगमें एक और आयोग! यदि नियुक्त होनेवाले आयोगको प्रमाण लेने हैं तो फिर गरीब व्यापारी राजस्व लेनेवालोंके सामने प्रमाण पेश करनेके खर्चमें क्यों डाले जायें — खास करके जब उनके परवाने अस्थायी तौरपर ही जारी किये जानेवाले हैं? इसके सिवा शान्तिकी घोषणाके बाद जब इन्हें परवाने दिये गये थे तब वे एशियाई पर्यवेक्षकोंके सामने प्रमाण देनेपर मजबूर किये ही जा चुके हैं। पर्यवेक्षकोंने उनकी बड़ी सख्तीसे जाँच की थी और तसल्ली कर ली थी कि वे वास्तविक शरणार्थी हैं और लड़ाईके पहले व्यापार कर रहे थे। इसके बाद ही उन्होंने सिफारिशें की थीं जिनके बलपर परवाना-अधिकारियोंने परवाने जारी किये थे। वे सारे प्रमाण जो भारतीय समाजके विरोधके बावजूद सरकारी अधिकारियोंके आगे पेश किये गये थे अब निःसत्व माने जायेंगे। उनके निर्णय निरर्थक हो जायेंगे और भारतीयोंको फिरसे परीक्षा देनी होगी और यह परीक्षा भी पूरे तौरपर अनिर्णीत होगी। अंग्रेजी झंडेकी छायामें अधिकारोंकी ऐसी अनिश्चितता इसके पहले कभी नहीं देखी गई थी।

बात अभी बाकी है। लॉर्ड मिलनरने कहा है कि युद्धके बाद परवाने अस्थायी तौरपर दिये गये थे। ब्रिटिश भारतीयोंने इस वक्तव्यका खण्डन किया है। परवाने ज्यादातर पूरे वर्षके लिए बिना किसी शर्तके दिये गये थे — इस दावेकी पुष्टिमें सरकारके सामने बहुत ठोस प्रमाण पेश किया जा चुका है। ऐसे पाँच-छः लोगोंके मामले सरकारको बताये गये जिनको पिछले सालके प्रारम्भमें ३१ दिसम्बरको समाप्त होनेवाले परवाने दिये गये थे। किन्तु उनपर कोई शर्त न लिखी रहनेके कारण उन्हें उन्हीं जगहोंके पंच-मासा परवाने दिये गये। एक आदमीको इसलिए परवाना दिया गया कि वह लड़ाईके पहले ट्रान्सवालकी किसी और जगहमें व्यापार करता था और युद्धमें वह किसी सिपाहीकी जान बचानेका निमित्त बना था। उसे इसपर बहुत गर्व

[1] यह वक्तव्य गोरोंगीको भेजा गया था और उन्होंने इसकी एक नकल अखबार-नवीसोंको देदी थी। यह १९-२-१९०४ के *इंडियन ओपिनियन*में भी प्रकाशित किया गया था।

ऊपर बिना नमक-मिर्च मिलाये जिस वस्तुस्थितिका बयान किया गया है, उससे स्पष्ट है — परम सम्माननीय महोदय क्षमा करें — कि उक्त तीन बातोंमें से एक भी तथ्योंके समक्ष नहीं ठहर सकती। क्योंकि बाजार दुर्गम स्थानोंमें निश्चित किये गये हैं, वास्तविक व्यापारियोंके परवाने पुनः जारी नहीं किये जा रहे हैं और भारतीय वे कितने भी प्रतिष्ठित क्यों न हों, तमाम निर्योग्यताओंके शिकार बने हुए हैं। अभीतक सिर्फ निवासकी छूटका वचन मिला है किन्तु वह भी इतनी अपमानजनक शर्तोंसे घिरा हुआ है कि शायद ही किसी आत्माभिमानी भारतीयने उस छूटकी सुविधाके लिए दरख्वास्त दी है। फिर, निवासकी छूट भारतीयोंकी आखिरी जरूरत है। निवासकी ऐसी छूटका क्या मूल्य होगा जिसके साथ व्यापारका हक जुड़ा हुआ नहीं है? वर्तमान शासनमें क्रम उलटा हो गया है। व्यापार मुख्य वस्तु है, इसे समझकर पहले भी चेम्बरलेनने बोअर-सरकारसे कहा था कि नगरोंका भारतीय व्यापार जैसाका-तैसा छोड़ दिया जाये किन्तु यदि वे आरोग्य स्वच्छताकी दृष्टिसे ब्रिटिश भारतीयोंके लिए अलग निवासकी जगहें निश्चित करना चाहें तो उन्हें इसपर आपत्ति न होगी।

युद्ध अंशतः भारतीयोंके लिए छेड़ा गया था। यदि वे अपनी स्थिति बेहतर नहीं कर सकते तो कमसे-कम लड़ाईके पहलेकी सुविधाका दावा तो वे कर ही सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

कॉलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स सी० ओ० २९१ जिल्द ७५, इंडिया ऑफिस।

८४ ऑरेंज रिवर उपनिवेश

आम तौरपर किसी देशका सरकारी गजट पढ़नेमें बड़ा नीरस होता है और वकीलोंको छोड़कर वे ही लोग उसके नजदीक फटकते हैं जो विधानोंकी सूचनाओं और ऐसी ही रूखी चीजोंका अध्ययन करना चाहते हैं। परन्तु ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें प्रकाशित सरकारी गजट इस सामान्य नियमका अपवाद है। उस गजटके अंक पढ़नेमें प्रायः दिलचस्प होते हैं और, साथ ही इनमें से कुछके लिए सुखद भी। उनसे प्रकट होता है कि उपनिवेशमें सम्राट्की सरकार रंगके प्रश्नपर ब्रिटिश नीतिको बोअरोंकी नीतिमें पूरी तरह मिला देनेकी दिशामें छलांग भरती हुई प्रगति कर रही है। जैसे नया धर्मान्तरित मुल्ला जोर-जोरसे अजाँ देता है वैसे ही ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकार भी रंगके प्रश्नपर पूरी तरह बोअरोंके विचारकी बन जानेके कारण अपने उत्साहमें उनको भी मात दे रही है। पिछले ११ दिसम्बरके (जो नीति-निर्धारणके लिए बहुत अनुकूल तारीख है) गजटमें हैल्पोर्ट नगरके लिए प्रकाशित नियमोंमें 'वतनी' शब्दकी एक नई ही परिभाषा दी गई है।

धारा ११४ में कहा गया है कि

> इन नियमोंमें जहाँ-जहाँ 'वतनी' या 'वतनी लोग' शब्द आये हैं वहाँ अगर प्रकरणसे और कोई अर्थ साफ-साफ न निकलता हो तो वे स्त्रियों और पुरुषोंके और इनके बोधक होंगे और इनपर लागू होंगे: दक्षिण आफ्रिकाकी तमाम वतनी जातियोंके सोलह सालकी आयुके या सोलह सालकी संभावित आयुके या उससे अधिक आयुके स्त्री या पुरुष; और तमाम रंगदार व्यक्ति एवं वे सब जो कानून या रिवाजके अनुसार वतनी या

१ यहाँ मूलमें शब्दों का क्रम भूलसे उलटा होता है।

रंगदार व्यक्ति कहे जाते हैं, या जिनसे वैसा बरताव किया जाता है — चाहे वे किसी भी जाति या राष्ट्रके क्यों न हों।

उसके बाद वे गुलाम बनानेवाले नियम आते हैं जिनकी तरफ हमने अनेक बार इन स्तम्भोंमें ध्यान आकर्षित किया है। यह परिभाषा जितनी हो सकती है उतनी व्यापक और अपमानजनक है। यहाँ तक कि राजा रणजीतसिंहजी[1] या सर मंचरजी[2] या कोई मिस्नरके सज्जनोंमें जापानी राजदूत भी जापानियोंके बारेमें हम अखबारोंमें जो भी मर्ममरी बातें पढ़ते हैं उनके बावजूद अगर एक खानगी व्यक्तिकी तरह सफर करना चाहें तो ब्लूमफोंटीन नगरमें उनके साथ दक्षिण आफ्रिकाके एक वतनीका-सा बरताव किया जायेगा उन्हें पृथक बस्तियोंकी सीमामें ही रहना पड़ेगा निवास परवाने लेने पड़ेंगे वे आवारा वतनी माने जायेंगे — चाहे इस शब्दका कुछ भी अर्थ हो रातके दस बजेके बाद बस्तीके बाहर नहीं रह सकेंगे कर्फ्यूकी घंटीके बाद आम रास्तों या खुली जगहोंमें नहीं रह सकेंगे और जिन गाड़ियोंपर "केवल वतनी" लिखा होगा उनके सिवा और गाड़ियोंमें नहीं चल सकेंगे। जिस तरीकेसे परम्परागत ब्रिटिश नीतिका सार्वभिक त्याग किया गया है वह भी बहुत चतुरतापूर्ण है। उपनिवेशके कानूनमें ऐसा कोई भेद-भाव रखा जाता तो उसके लिए उपनिवेश-कार्यालयसे मंजूरी लेनी पड़ती और वह मंजूरी देनेके लिए कितना भी तैयार क्यों न हो शायद पूरी-पूरी बात मंजूर न कर पाता। इसलिए उपनियमोंकी रचना की गई है जिनके लिए ब्रिटिश मन्त्रिमंडलसे स्वीकृति लेनेकी आवश्यकता नहीं है, और जिनकी मंजूरी वैधानिक शासनवाले उपनिवेशका लेफ्टिनेंट गवर्नर स्वभावतः और शिष्टाचारवश कुछ आपत्ति किये बिना दे देता है। और फिर भी उस लड़कीकी तरह जो बराबर चिल्लाती रही कि "अब भी हम सात हैं,"[3] ऑरेंज रिवर उपनिवेशके राज्याधिकारियोंको यह कहते शर्म नहीं आयगी कि "अब भी हम ब्रिटिश नीतिका पालन कर रहे हैं!" आशा है, इंग्लैंडमें कोई व्यक्ति इन नियमोंको जिन्हें हम अन्यत्र छाप रहे हैं देखेगा इनका अध्ययन करेगा और जनताको बतायेगा कि इस समय ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें इंग्लैंडके नामपर क्या किया जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-१-१९०४

१. नवानगरके जाम साहब — महाराजा रणजीतसिंहजी विभाजी १८७२–१९३३; जो क्रिकेटके खेलके लिए "रणजी" नामसे प्रसिद्ध थे।

२. सर मंचरजी भावनगरी देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४२।

३. विलियम वर्ड्सवर्थकी कविता "वी आर सेवन" में एक छोटी लड़की कहती है कि हम सात भाई-बहन हैं; मरे दो गये-बीते भाग हैं, फिर भी हम सात हैं।

ऊपर बिना नमक-मिर्च मिलाये जिस वस्तुस्थितिका बयान किया गया है, उससे स्पष्ट है — परम सम्माननीय महोदय क्षमा करें — कि उक्त तीन बातोंमें से एक भी तथ्योंके सामने नहीं ठहर सकती। क्योंकि बाजार दुर्गम स्थानोंमें निश्चित किये गये हैं; वास्तविक व्यापारियोंको परवाने पुन: जारी नहीं किये जा रहे हैं, और भारतीय वे कितने भी प्रतिष्ठित क्यों न हों, तमाम निर्योग्यताओंके शिकार बने हुए हैं। अभीतक सिर्फ निवासकी छूटका वचन मिला है किन्तु वह भी इतनी अपमानजनक शर्तोंसे घिरा हुआ है कि शायद ही किसी आत्माभिमानी भारतीयने उस छूटकी सुविधाके लिए दरख्वास्त दी है। फिर, निवासकी छूट भारतीयोंकी आखिरी जरूरत है। निवासकी ऐसी छूटका क्या मूल्य होगा जिसके साथ व्यापारका हक जुड़ा हुआ नहीं है? वर्तमान शासनमें क्रम उलटा हो गया है। व्यापार मुख्य वस्तु है, इसे समझकर पहले भी चेम्बरलेनने बोअर-सरकारसे कहा था कि नगरोंका भारतीय व्यापार जैसाका-तैसा बने दिया जाये किन्तु यदि वे भी ऊपर स्वच्छताकी दृष्टिसे ब्रिटिश भारतीयोंके लिए अलग निवासकी जगहें निश्चित करना चाहें तो उन्हें इसपर आपत्ति न होगी।

युद्ध अंशत: भारतीयोंके लिए लड़ा गया था। यदि वे अपनी स्थिति बेहतर नहीं कर सके तो कमसे-कम लड़ाईके पहलेकी सुविधाका दावा तो वे कर ही सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

कॉलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स सी० ओ० २९१ जिल्द ७५, इंडिया ऑफिस।

८४ ऑरेंज रिवर उपनिवेश

आम तौरपर किसी देशका सरकारी गजट पढ़नेमें बड़ा नीरस होता है और वकीलोंको छोड़कर वे ही लोग उसके नजदीक फटकते हैं जो विधानकी सूचनाओं और ऐसी ही रूखी चीजोंका अध्ययन करना चाहते हैं। परन्तु ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें प्रकाशित सरकारी गजट इस सामान्य नियमका अपवाद है। उस गजटके अंक पढ़नेमें प्राय: दिलचस्प होते हैं और, साथ ही इतने से कुढ़नेके लिए दु:खद भी। उससे प्रकट होता है कि उपनिवेशमें सम्राट्की सरकार रंगके प्रश्नपर ब्रिटिश नीतिको बोअरोंकी नीतिमें पूरी तरह मिला देनेकी दिशामें लगातार बढ़ती हुई प्रगति कर रही है। जैसे नया धर्मान्तरित मुल्ला जोर-जोरसे अजाँ देता है वैसे ही ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकार भी रंगके प्रश्नपर पूरी तरह बोअरोंके विचारकी बन जानेके कारण अपने उस्तादोंको भी मात दे रही है। पिछले ११ दिसम्बरके (जो नीति-निर्धारणके लिए बहुत अनुकूल तारीख है) गजटमें हैल्बोर्न नगरके लिए प्रकाशित नियमोंमें वतनी शब्दकी एक नई ही परिभाषा दी गई है।

धारा ११४ में कहा गया है कि

> इन नियमोंमें जहाँ-जहाँ वतनी या वतनी लोग शब्द आते हैं वहाँ अगर प्रकरणसे और कोई अर्थ साफ-साफ न निकलता हो तो, वे स्त्रियों और पुरुषोंके और इनके दोनों होंगे और इनपर लागू होंगे: दक्षिण आफ्रिकाकी तमाम वतनी जातियोंके सोलह सालकी आयुके या सोलह सालकी संभावित आयुके या उससे अधिक आयुके स्त्री या पुरुष और तमाम रंगदार व्यक्ति एवं वे सब जो कानून या रिवाजके अनुसार वतनी या

१ यहाँ मूलमें शब्दोंका क्रम चूकसे उलटा प्रतीत होता है।

असफलता ही उचित पुरस्कार या यों कहिए कि कर्तव्यकी घोर अवहेलनाका योग्य दण्ड होगी। ब्रिटिश राज्यमें रहनेवाली जातियोंके लिए किसी वीरतापूर्ण त्यागकी भी जरूरत नहीं है। मुख्य आवश्यकता इस बातकी है कि धैर्यके साथ लगातार और सौम्य वैधानिक प्रयत्न किया जाये। उसमें सर्वत्र सफलता मिलती है। ब्रिटिश उपनिवेशोंमें तो यह और भी कारगर होती है। यदि ब्रिटिश राजकी चाल धीमी है क्योंकि राष्ट्रका स्वभाव ही शान्तिप्रिय है तो वह समझ और एकताको जल्दी समझने और स्वीकार कर लेनेवाला भी है। एक भारतीय कहावत है, रोये बिना माँ भी बच्चेको दूध नहीं पिलाती। फिर, ब्रिटिश सरकार तो और भी कम सुननेवाली है। इसलिए हम आशा करते हैं कि दक्षिण आफ्रिका भरमें हमारे देशवासी ब्रिटिश अधिकारके इस पहलूका सावधानीसे ध्यान रखेंगे और तबतक चैन नहीं लेंगे जबतक पूरा न्याय नहीं किया जाता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-१-१९०४

८९. डॉ० जेमिसन और एशियाई

डॉ० जेमिसनने[1] केप उपनिवेशके गवर्नर महोदयके सामने एक बड़ी माकूल तजवीज रखकर चीनके दौड़ रहनेको पंगु बना दिया है और गवर्नरने उसका प्रस्ताव मान लिया है। यह वस्तुस्थिति योग्य डॉक्टर महोदयके दलको बहुत ही ठोस सहायता पहुँचायेगी। ट्रान्सवालमें चीनी मजदूर आनेवाले हैं। इस दृष्टिसे उन्होंने गवर्नरसे अनुरोध किया कि केप उपनिवेशके दरवाजे चीनियोंके लिए बन्द करनेका कानून बना दिया जाये। अपने साम्राज्य-निष्ठाके दावेके अनुसार उन्होंने सुझाया कि पाबन्दी सिर्फ गैर-ब्रिटिश एशियाइयोंपर ही लागू हो। इस प्रकार उन्होंने एशियाई ब्रिटिश प्रजाजनोंका दर्जा पहले-पहल स्वीकार किया। उन्होंने एक विधेयकका मसविदा भी स्वीकृतिके लिए पेश किया और गवर्नरने *गज़ट*में एक ऐसा विधेयक छाप कर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट की है, जिसमें प्रगतिशील दलके उक्त नेताकी सिफारिशोंकी सभी जरूरी बातें शामिल की गई हैं। अब भी यह आशा की जा सकती है कि इस ऐन वक्तपर भी ट्रान्सवालके लोग ऐसी उम्मीद न मारनेका फैसला करेंगे जो भयंकर परिणामोंसे भरी हुई है और वे उक्त विधेयकका पास होना अनावश्यक बना देंगे। क्योंकि अगर यह गैर-ब्रिटिश प्रजाजनोंपर लागू किया जानेका हो तो यह बहुत कठोर है और इसलिए, एक ब्रिटिश उपनिवेशके उपयुक्त नहीं है। इसके अतिरिक्त इस प्रकारका कानून संघ-शासनकी प्रगतिको अनिश्चित कालके लिए रोक देगा। इसलिए अब भी ट्रान्सवालके लोगोंके लिए समय है कि वे स्थितिपर पुनः विचार करें और कम आपत्तिजनक उपायोंसे वर्तमान कठिनाइयोंको पार करें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-१-१९०४

---

१. सर एल० एस० जेमिसन (१८५३-१९१७) ने १९०४-१९०८ तक केप कालोनीके प्रधानमन्त्री रहे थे।

८५ आत्मत्याग

त्याग जीवनका धर्म है। यह जीवनके हर क्षेत्रमें व्याप्त है और सबका नियमन करता है। व्यापारिक भाषामें कहें तो कीमत चुकाये बिना अथवा दूसरे शब्दोंमें त्याग किये बिना हम न कुछ कर सकते हैं और न पा सकते हैं। हम जिस समाजके अंग हैं उसका यदि हमें उद्धार करना है तो हमें इसका मूल्य अदा करना होगा अर्थात् स्वार्थका त्याग करना होगा। समाजके लिए काम करते हुए जो-कुछ प्राप्त हो उसका एक भाग ही हम अपनी खातिर रख सकते हैं अधिक नहीं। बस यही त्याग है। कभी कभी हमें महँगे दाम चुकाने पड़ते हैं। सच्चा त्याग कर्मसे अधिकतम आनन्द प्राप्त करनेमें ही है — फिर उसमें जोखिम चाहे कुछ भी हो। ईसा मसीहने कलवारीमें क्रॉसपर प्राण दिये और वे ईसाई धर्मके रूपमें एक शानदार विरासत छोड़ गये। हैम्पडनने कष्ट पाया परन्तु जहाजी-कर[1] नहीं दिया। जोन ऑफ आर्कको पाखण्डी कहकर जला दिया गया परन्तु उसे अमर सम्मान मिला और उसके हत्यारे उसके लिए कलंकित हो गये। संसार उसके आत्म-त्यागका परिणाम जानता है। अमेरिकावासियोंने अपनी स्वाधीनताके लिए अपना खून बहाया।

ये दृष्टान्त हमने फर्क बतानेके लिए दिये हैं कि व्यक्तिगत रूपमें भारतीयोंको समाजका बहुत बड़ा लाभ करनेके लिए कितनी थोड़ी कुर्बानी करनी है और जिनके उदाहरण हमने दिये हैं उन्हें कितना त्याग करना पड़ा था। दक्षिण आफ्रिकामें आम तौरपर और ट्रान्सवालमें खास तौरपर भारतीय अनेक कष्ट भोग रहे हैं। ट्रान्सवालमें उनका भाग्य अधरमें झूल रहा है। उनके रोजीके साधन एक निर्योग्यतासे छीने जा सकते हैं। उन्हें अशिष्टतापूर्वक पृथक बस्तियोंमें भेजा जा सकता है। तब फिर ब्रिटिश भारतीय कौन-सा आत्मत्याग करें, जिससे उन्हें राहत मिलनेकी आशा हो सके? प्रत्येक भारतीयको इस प्रश्नपर इस तरह सोचना चाहिये मानो यह खुद उसको प्रभावित करता है। उसे सबकी भलाईके लिए धन देना चाहिए और अपना समय और शक्ति लगानी चाहिए। सबके खतरेका सामना करनेके लिए व्यक्तिगत मतभेदको भुला देना जरूरी है। अपने-अपने आराम और अपने-अपने फायदेको छोड़ना चाहिए। इसके साथ धीरज और संयम भी रखना होगा। जो सीधा और तंग रास्ता यहाँ बताया गया है उससे जरा भी इधर-उधर हुए तो कगारेपर से नीचे जा गिरेंगे — इसलिए नहीं कि हमारा पक्ष जरा भी बेजा या कमजोर है बल्कि इसलिए कि हमारे खिलाफ जो विरोध खड़ा किया गया है वह बहुत बड़ा है।

सामूहिक भावनाके बिना कभी किसी जाति या समाजने कोई सफलता प्राप्त नहीं की। राष्ट्रीय हित करनेकी इच्छा हो सकती है परन्तु केवल-मात्र इच्छा यद्यपि वह ध्येयकी ओर प्रगतिमें एक आवश्यक मंजिल है कुछ व्यापार किये बिना बेकार होती है। ध्येयकी प्राप्तिके लिए आवश्यक साधन अपनानेकी तैयारी होनी चाहिए। किसी जंजीरमें उसकी सबसे कमजोर कड़ीसे ज्यादा ताकत नहीं होती। अगर हम अलग रहकर कन्धेसे-कन्धा मिलाकर और अस्थायी निराशाओंसे विचलित हुए बिना बढ़े चलने और काम करनेके लिए तैयार नहीं हैं तो हमारे लिए

१–२. इंग्लैंड तथा वेल्समें चार्ल्सने १६३४–३७ में नौसेनाके खर्चोंके लिए संसदकी अनुमतिके बिना जहाजी कर लगा दिया था। जॉन हैम्पडन (१५९४–१६४३) ने इसके खिलाफ आन्दोलनका नेतृत्व किया, जिसमें उसे बहुत कष्ट सहने पड़े किन्तु जहाजी कर अन्ततः रद हो गया।

८८. आत्मत्याग — १

मनुष्यकी प्रकृति ऐसी है कि वह अतिशय सामान्य वस्तुको कुछ नहीं गिनता। साधारणतः हम कहते हैं कि खाये-पिये बिना आदमीकी एक घड़ी भी गति नहीं है। किन्तु ऐसा कहते समय हम इतना नहीं सोचते कि खानपानकी अपेक्षा हवा ज्यादा जरूरी है — किन्तु हम उस ओर ध्यान नहीं देते क्योंकि हमेशा श्वास लेते रहते हैं। और भूख-प्यास समय-समयपर लगती रहती है उसकी झट याद आ जाती है। इसी प्रकार आत्मत्यागको समझिए। जिन्दगी आत्मत्याग करनेसे निभती है। फिर भी उस ओर ध्यान नहीं जाता।

आत्मत्याग अनेक प्रकारका है आज हम केवल स्वार्थके त्यागका विवेचन करेंगे। स्वार्थके त्यागकी महिमा सब जानते हैं। और इस विषयमें मनुष्य जितना अधिक विचार करता है उसकी उतनी अधिक जरूरत लगती है और वह उसे समझता है। नासमझ आदमी तो जरूरी कम समझदार सोचे तो जरूरी लगे इतना ही नहीं वह उसे समझ भी सकता है और समझनेपर वैसा स्वार्थत्याग करनेके लिए तत्पर भी हो जाता है। हम यह बात बचपनसे जानते हैं और इसलिए बारबार कहते हैं कि मेहनतके बिना कुछ नहीं मिलता। किन्तु हम जैसे-जैसे बड़े होते हैं और विचार करते हैं वैसे-वैसे अपने अनुभव और इतिहासके अध्ययनसे इन साधारण वचनोंका तात्पर्य हमारी समझमें अधिकाधिक आने लगता है। टेकरी चढ़नेमें थोड़ी मेहनत पहाड़ चढ़नेमें बहुत मेहनत छोटा काम करनेमें कम जोखिम कम कष्ट बड़ा काम करनेमें बड़ी जोखिम बड़ा कष्ट। अगर हमें पहाड़ चढ़ना आवश्यक जान पड़ता है तो हम बहुत श्रमकी परवाह नहीं करते और बड़ा काम करना हो तो जोखिम और कष्टको नहीं गिनते अर्थात् जरूरत पड़नेपर त्याग करनेमें नहीं डरते।

इस मुल्कमें रहनेवाले हमारे भाई भी इस विचारसे अनजान नहीं हैं। यहाँ आकर वे जो दो पैसे कमाते हैं वह इसी त्यागका परिणाम है। घरबार छोड़ा सगे-सम्बन्धी छोड़े महासागर पार किया — इतना सारा त्यागा और भली भाँति विचार करनेके बाद। त्याग किया हिम्मत बाँधी तभी हम देशमें आ सके और स्थिति सुधार सके। अर्थात् सोच-विचारकर त्याग करनेसे अच्छा फल निकलता है इसे वे अच्छी तरह समझते हैं और इसलिए समय-समयपर त्याग करके अपनी स्थितिको सुधारनेका प्रयास करते हैं और हम आशा करते हैं कि वे सदा सोच-समझकर त्याग द्वारा सार्वजनिक और अपनी हालत रोज-रोज सुधारते ही रहेंगे।

हम आज त्याग करनेके कर्तव्यके विषयमें इसलिए लिख रहे हैं कि नेटालमें और विशेषतः ट्रान्सवालमें गोरे लोग हमारी स्थितिको अत्यन्त विषम बनाने पर तुले हुए हैं। हमारे साधारण अधिकार एकके बाद एक छीने जा रहे हैं। इसके बाद भी कोई हमारी तरफसे बड़ा संघर्ष नहीं चलाता और इसलिए गोरे हमें असहाय और निर्बल मानते हैं और उनकी मदान्धता दिन-दिन बढ़ती जाती है। यहाँकी सरकार गोरोंके हाथमें है और उन्हें नाराज करनेमें डरती है इस लिए उनकी चाहे जितनी ऊटपटांग और अन्यायपूर्ण जिद मान लेती है और उसे कायम रखती है और बड़ी सरकारको समझाती है कि लोकमतका मान रखनेके लिए ऐसा करना पड़ता है। हमारे दुर्भाग्यसे बड़ी सरकार अपनी सत्ताका प्रयोग करके [लोकमतके] ऐसे दुराग्रहके खिलाफ शक्ति जोर नहीं लगाती। भारत-सरकार, हमारी रक्षा करना जिसका खास फर्ज है, एकाध बार इसके लिए थोड़ा-सा बोलती है — केवल थोड़ा-सा। जब हमारी ओरसे दबाव डाला गया तभी लॉर्ड मिल्नरने मजदूरोंकी माँग की। उसमें एक अवसर मिला और कहा गया कि यदि [स्थानीय] भारतीयोंकी स्थिति सुधारी जाय या किसी निश्चित अवधि तक मुलतवी करके

८७ एशियाई अनुमतिपत्रों-सम्बन्धी रिपोर्ट

लॉर्ड मिलनरके अनुरोधसे कप्तान हैमिल्टन फाउलने एक ज्ञापन तैयार किया है जिसमें एशियाइयोंको दिये गये अनुमतिपत्रोंके आँकड़े बताये गये हैं। इस ज्ञापनमें विशुद्ध तथ्योंका स्पष्ट वर्णन और श्री सबसे तथा उनके मित्रोंको पूरा जवाब है। ये लोग गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे थे कि हजारों भारतीय छिपकर उपनिवेशमें घुस आये हैं। और, परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरके प्रति पूरा आदर रखते हुए हम कहेंगे यह ज्ञापन श्रीमानके तरीकेमें दिये गये इस वक्तव्यका पूरा खण्डन भी है कि बहुत-से गैर-शरणार्थी ब्रिटिश भारतीय उपनिवेशमें घुस आये हैं और उन्होंने परवाने हासिल कर लिये हैं। जैसा कि कप्तान फाउलका बयान है यह सच है कि ५७१ भारतीय अनुमतिपत्रोंके बिना उपनिवेशमें रहनेके जुर्ममें सीमाके पार भेजे गये हैं। इससे भी तो हरगिज साबित नहीं होता कि ये लोग जान-बूझकर घुस आये थे। पिछले वर्षके पूर्वार्धमें यह कहा गया था कि जब शान्तिकी घोषणा हो जायेगी और परवानोंके नियम ढीले कर दिये जायेंगे तब उपनिवेशमें प्रवेश करनेके लिए अनुमतिपत्रोंकी जरूरत नहीं होगी। रेलोंमें कोई देख-रेख भी नहीं अतः भारतीय स्वाभाविक रूपसे उपनिवेशमें आ गये थे। अब वे निकाल दिये गये हैं। ये भारतीय ब्रिटिश प्रजाजन हैं और ऐसे लोग नहीं हैं जिनसे शान्ति-रक्षा अध्यादेशके अर्थकी सीमामें समाजको कोई खतरा हो सकता हो। इस बातको देखते हुए बहुतोंको यह शंका होगी कि क्या यह कदम न्यायसंगत है। हमारी रायमें ब्रिटिश भारतीयोंके आवागमनपर पाबन्दी लगानेके लिए अध्यादेशका उपयोग गलत रूपमें किया जा रहा है। जब यह जारी किया गया था तब उसका स्पष्ट उद्देश्य ऐसे लोगोंको उपनिवेशमें आनेसे रोकना था जो राजनीतिक दृष्टिसे खतरनाक हो सकते थे — अवश्य ही भारतीयोंकी तरह सम्राटके सबसे अधिक राजभक्त माने हुए प्रजाजनोंको रोकना नहीं। उपनिवेशमें केवल ८,१२१ भारतीय हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनके विरुद्ध अध्यादेशपर अमल कितनी कठोरतासे किया गया है। सर विलियम मीन (तब श्री मीन) के कथनानुसार १८९९ में यहाँ वयस्क भारतीयोंकी आबादी १५ से ऊपर कूती गई थी। इसलिए, ७ परवानाधिकारियोंके बारेमें अभी और बतलानेकी करनी पड़ेगी। यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय प्रवासियोंपर पाबन्दी लगानेकी प्रथा पुरानी नहीं है बिलकुल नई है। पुरानी हुकूमतके कानून कुछ भी रहे हों परन्तु ब्रिटिश भारतीयोंके प्रवेशपर कतई कोई पाबन्दी नहीं थी और न उनके पंजीकरणकी धारापर सख्तीसे अमल किया जाता था। फिर भी हम परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयको श्री चेम्बरलेनको यह आश्वासन देते हुए पाते हैं कि पुराने कानून पहलेकी तरह कठोरतासे लागू नहीं किये जा रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-१-१९ ४

किया गया था उस समय लॉर्ड मिलनरने इसे "टॉच-कॉंच नीति" का नाम दिया था। फिर भी बोअर-सरकारने बेहतर यूरोपियोंके साथ जो व्यवहार किया था निर्दयतामें उसकी तुलना ट्रान्सवाल-सरकारके इस व्यवहारसे नहीं की जा सकती जो यह अपने एक प्रजा-वर्गके साथ अब कर रही है। इसीलिए भारतीयोंने अन्तिम उपायके रूपमें इस मामलेको उपनिवेशके उच्च न्यायालयमें ले जाने और यह परीक्षा करानेका बुद्धिमत्तापूर्ण फैसला किया है कि क्या सरकारको ब्रिटिश भारतीयोंको बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने देनेसे इनकार करनेका अधिकार है। ऐसा रास्ता अख्तियार करना बहुत ही जरूरी हो गया है यह बड़ा दयनीय है। किन्तु ट्रान्सवालके भारतीय लगभग दो वर्षतक इस मामलेको सर्वोच्च न्यायालयके सम्मुख नहीं ले गये और उससे फैसला लेकर मामलेको खत्म करनेके बजाय उन्होंने सरकारसे ही थोड़ा-सा न्याय प्राप्त करनेका प्रयत्न किया यह उनके लिए निश्चय ही श्रेयास्पद है। वे पूरी तरह भी चैम्बर लेनकी सलाहपर चले हैं और उन्होंने यूरोपीय व्यापारियों और सरकारसे उचित समझौता करनेकी कोशिश की है। उन्होंने केवल अपने मौजूदा हकोंके संरक्षणकी माँग की है। और, लॉर्ड मिलनरके नाम श्री चैम्बरलेनके खरीतेके बावजूद जब इतना भी उन्हें देनेसे इनकार किया गया तभी वे सर्वोच्च न्यायालयसे नया फैसला मिलता है यह आजमाइश करनेके लिए मजबूर हुए हैं।

यह भाग्यकी विडम्बना है कि भारतीय समाज उसी मामलेका सर्वोच्च न्यायालयमें ले जायेगा — और यह भी सरकारी विरोधके बावजूद — जिसके सम्बन्धमें श्री चैम्बरलेनने भारतीयोंका पक्ष लिया था और इसका समर्थन गम्भीर तर्क किया था। यहाँ तक कि जब बोअर उच्च न्यायालयका फैसला[1] आशाके विरुद्ध और ब्रिटिशोंकी मान्यताके विपरीत हुआ तब भी चैम्बरलेनने श्री क्रूगरसे कहा कि वे ब्रिटिश भारतीयोंके हकमें मामलेका एक भिन्न दृष्टिकोण पेश करेंगे। जिस बातका हम उल्लेख करते हैं वह सन् १८९८ की है। यह स्मरण होगा कि भूतपूर्व फ्री स्टेटके तत्कालीन प्रधान न्यायाधीशने ब्रिटिश सरकार और बोअर सरकारके एक निवेदनपर फैसला[2] दिया था। प्रश्न यह था कि बोअर-सरकारको एशियाई विरोधी कानून बनानेका अधिकार है या नहीं। पंचने फैसला दिया कि बोअर सरकारका सन् १८८५ का कानून ३ जिस रूपमें वह सन् १८८६में संशोधित हुआ था उस रूपमें मंजूर करनेका अधिकार है। इस फैसलेकी बिनापर बोअर सरकारने "स्वच्छताके प्रयोजनसे उनको (एशियाकी आदिम जातियोंके लोगोंको) निवासके लिए निर्दिष्ट गलियाँ मुहल्ले और बस्तियाँ बता देनेका अधिकार सुरक्षित कर लिया। लेकिन इससे समस्या पूरी तरह हल नहीं हुई, क्योंकि यह जानना तो बाकी रह ही गया था कि "निवास" शब्दका अर्थ क्या था। अर्थात् क्या इसका अर्थ यह था कि भारतीय वहाँ चाहे वहाँ रह नहीं सकते किन्तु व्यापार कर सकते हैं? ब्रिटिश सरकार कहती थी — हाँ कर सकते हैं। बोअर सरकारका खयाल दूसरा था। इसीलिए भूतपूर्व गणराज्यके उच्च न्यायालयकी पूरी न्यायसभाके सम्मुख परीक्षार्थ एक मुकदमा चलाया गया। न्यायमूर्ति मॉरिस, जॉरिसन और ईसरकी न्यायसभा बनी। न्यायमूर्ति मॉरिसने मुख्य फैसला दिया। उससे न्यायमूर्ति ईसरने तो सहमति प्रकट की किन्तु न्यायमूर्ति जॉरिसन असहमत रहे। जैसा कि फैसलेसे मालूम होगा न्यायमूर्ति मॉरिसने पूरी तरहसे ब्रिटिश या यों कहिए कि भारतीय दावेके पक्षमें तर्क दिया किन्तु यह महसूस भी किया कि वे उच्च न्यायालयके एक पहलेके सर्वसम्मत निर्णयको स्वीकार करनेके लिए बँधे हुए हैं। न्यायमूर्ति ईसरकी सहमतिका

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १-२ और ११-१७।
२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १७७-७८ और १८९-९।

लिए मजदूर भेजे जायें। हमारे अधिकारका मजदूरोंकी गुलामीसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है—
भी ऐसी शर्त पेश की गई इसपर से ऐसा अनुमान होता है कि यदि ट्रान्सवाल खानोंकी
काम करनेके लिए भारतीय मजदूर भरती करनेकी माँग वापस ले ले तो भारत-सरकार
वालमें रहनेवाली भारतीय जनताकी हालत नहीं सुधार सकती। नेटाल और ऑरेंज
कालोनीके उपनिवेशोंसे तो हमें कोई आहट ही नहीं आती मानो वहाँ दूधकी नदियाँ बह रही
ऐसा है हमारा दुर्भाग्य और इसलिए हमें कर्तव्यके विषयमें बार-बार लिखना पड़ता है।
बुजुर्गोंकी अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता और परकी आशा सदा निराशा जैसी
ऐसे दुखदायी अनुभवोंपर से याद आती है और उनका महत्त्व समझमें आता है।

इतना याद रखना चाहिए कि ब्रिटिश सरकारकी वृत्ति न्यायी है और इसका इंसाफ करते
है। राज ब्रिटिश है इसलिए ब्रिटिश राजनीति समझना हमारा फर्ज है। जैसे जैसे
राजनीति और नियमोंका अध्ययन करते हैं वैसे-वैसे किस तरह अपनी माँगें सामने रखें
समझमें आता है और यदि यह समझमें आ जाये तो फिर मुराद पूरी होनेमें बहुत
नहीं रहती। समय लगता है किन्तु बात वाजिब हो तो अन्तमें होकर रहती है। ऐसा नहीं
कि केवल भारतीय जनताको ही इन्साफ देरमें मिलता है, आयरलैंडका उदाहरण देखिये
प्रकृति ही ऐसी है। अब हमारा फर्ज यह है कि यह बात ध्यानमें रखकर प्रयत्न करें।
सुख सो मेरा सुख सबका काम सो मेरा काम ऐसा उत्तम विचार मनमें दृढ़ करके
यदि हम अपना काम करते हैं तो अन्तमें हमारी धारणा अवश्य पार पड़ेगी क्योंकि हम
माँग रहे हैं, मेहरबानी नहीं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-१-१९०४

८९. एक बेजोड़ मुकाबला

ट्रान्सवालके भारतीयोंका प्रश्न एक नई और चिन्ताजनक स्थितिमें पहुँच गया है।
उपनिवेशकी सरकारने न्यायकी पुकार सुनी-अनसुनी कर दी है। उसने न जाय न जाने दे
नीति अख्तियार करनेका फैसला किया है। यहाँतक कि भारतीयोंको काफिरोंकी बस्तियों
भी व्यापार करनेकी इजाजत नहीं है ताकि कहीं ऐसा न हो कि वे उससे अपनी आजीविका
उपार्जित कर लें। सरकारका खयाल है कि उसने *बस्ती* शब्द बदलकर *बाजार* कर
यह बड़ी रियायत दे दी है। और ऐसा करनेके बाद यह स्वाभाविक ही है कि वह
बदलेमें बस्तियोंको उन जगहोंसे भी ज्यादा दूर हटा दे जहाँ वे गोरोंकी हुकूमतमें भी
उन जगहोंमें रख दे जहाँ कमसे-कम कुछ जगहोंमें उनकी अपनी ही स्वीकारोक्तिके अनुसार
इस समय व्यापार चलाना मुमकिन नहीं है।

चिकित्सक लोग इलाजका एक तरीका जानते हैं जिसे वे अनशन-चिकित्सा कहते
ट्रान्सवाल सरकारने भारतीय मुसीबतका भी ऐसा ही इलाज अपनाया है। अगर यह भारतीयों
यथाशक्य आगे पार नहीं भेज सकती तो कोई कारण नहीं कि उन्हें शहरकी हदके बाहर
भी न रख सके जिससे या तो वे भूखों मर जायें या बिलकुल चले जायें। जब यही
इलाके अलावा दूसरे यूरोपीय व्यापारि जो कुछ पारस्परिक 'रुकावटें' कहे जाते थे

१ [illegible]

किया गया था उस समय लॉर्ड मिलनरने इसे "टॉप-कॉप नीति" का नाम दिया था। फिर भी बोअर-सरकारने इतर यूरोपियोंके साथ जो व्यवहार किया था निर्दयतामें उसकी तुलना ट्रान्सवाल-सरकारके इस व्यवहारसे नहीं की जा सकती जो वह अपने एक प्रजा-वर्गके साथ अब कर रही है। इसीलिए भारतीयोंने अन्तिम उपायके रूपमें इस मामलेको उपनिवेशके उच्च न्यायालयमें ले जाने और यह परीक्षा करानेका बुद्धिमत्तापूर्ण फैसला किया है कि क्या सरकारको ब्रिटिश भारतीयोंको बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने देनेसे इनकार करनेका अधिकार है। ऐसा रास्ता अख्तियार करना बहुत ही जरूरी हो गया है यह बड़ा दयनीय है। किन्तु ट्रान्सवालके भारतीय लगभग दो वर्षतक इस मामलेको सर्वोच्च न्यायालयके सम्मुख नहीं ले गये और उससे फैसला लेकर मामलेको खतम करनेके बजाय उन्होंने सरकारसे ही थोड़ा-सा न्याय प्राप्त करनेका प्रयत्न किया यह उनके लिए निश्चय ही श्रेयास्पद है। वे पूरी तरह श्री चेम्बरलेनकी सलाहपर चले हैं और उन्होंने यूरोपीय व्यापारियों और सरकारसे उचित समझौता करनेकी कोशिश की है। उन्होंने केवल अपने मौजूदा हकोंकि संरक्षणकी माँग की है। और, लॉर्ड मिलनरके नाम श्री चेम्बरलेनके खरीतेके बावजूद जब इतना भी उन्हें देनेसे इनकार किया गया तभी वे सर्वोच्च न्यायालयसे क्या फैसला मिलता है यह मालूम करनेके लिए मजबूर हुए हैं।

यह भाग्यकी विडंबना है कि भारतीय समाज उसी मामलेका सर्वोच्च न्यायालयमें ले जायेगा — और वह भी सरकारी विरोधके बावजूद — जिसके सम्बन्धमें श्री चेम्बरलेनने भारतीयोंका पक्ष लिया था और इसका समर्थन आखीर तक किया था। यहाँ तक कि जब बोअर उच्च न्यायालयका फैसला आशाके विरुद्ध और ब्रिटिशोंकी मान्यताके विपरीत हुआ तब भी चेम्बरलेनने श्री क्रूगरसे कहा कि वे ब्रिटिश भारतीयोंके हकमें मामलेको एक भिन्न दृष्टिकोणसे पेश करेंगे। जिस बातका हम उल्लेख करते हैं वह सन् १८९८ की है। यह स्मरण होगा कि भूतपूर्व फ्री स्टेटके तत्कालीन प्रधान न्यायाधीशने ब्रिटिश सरकार और बोअर सरकारके एक निवेदनपर फैसला दिया था। प्रश्न यह था कि बोअर-सरकारको एशियाई विरोधी कानून बनानेका अधिकार है या नहीं। पंचने फैसला दिया कि बोअर सरकारको सन् १८८५ का कानून ३ जिस रूपमें वह सन् १८८६में संशोधित हुआ था उस रूपमें मंजूर करनेका अधिकार है। इस फैसलेकी बिनापर बोअर सरकारने "स्वच्छताके प्रयोजनसे उनको (एशियाकी आदिम जातियोंके लोगोंको) निवासके लिए निर्दिष्ट गलियाँ मुहल्ले और बस्तियाँ बता देनेका अधिकार सुरक्षित कर लिया। लेकिन इससे समस्या पूरी तरह हल नहीं हुई, क्योंकि यह जानना तो बाकी रह ही गया था कि "निवास" शब्दका अर्थ क्या था। अर्थात् क्या इसका अर्थ यह था कि भारतीय वहाँ चाहे जहाँ रह नहीं सकते किन्तु व्यापार कर सकते हैं? ब्रिटिश सरकार कहती थी — हाँ कर सकते हैं। बोअर सरकारका खयाल दूसरा था। इसीलिए भूतपूर्व गणराज्यके उच्च न्यायालयकी पूरी न्यायसभाके सम्मुख परीक्षार्थ एक मुकदमा चलाया गया। न्यायमूर्ति मॉरिस, जॉरिसन और ईसरकी न्यायसभा बनी। न्यायमूर्ति मॉरिसने मुख्य फैसला दिया। उससे न्यायमूर्ति ईसरने तो सहमति प्रकट की किन्तु न्यायमूर्ति जॉरिसन असहमत रहे। जैसा कि फैसलेसे मालूम होगा न्यायमूर्ति मॉरिसने पूरी तरहसे ब्रिटिश या यों कहिए कि भारतीय दावेके पक्षमें तर्क किया किन्तु यह महसूस भी किया कि वे उच्च न्यायालयके एक पहलेके सर्वसम्मत निर्णयको स्वीकार करनेके लिए बँधे हुए हैं। न्यायमूर्ति ईसरकी सहमतिका

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १-२ और १९-२०।
२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १०७-०८ और १८१-९।

आधार भी नहीं था। न्यायमूर्ति वॉरिंग्टनको अपना निर्भीक फैसला देनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। चूँकि वे निवास सम्बन्धी व्याख्यामें ईमानदारीसे व्यापार या व्यवसायको शामिल नहीं कर सकते थे इसलिए उन्हें उच्च न्यायालयके पहले फैसलेको उलटनेमें कोई झिझक नहीं हुई।

इससे भी ब्रिटिश सरकारका उत्साह भंग नहीं हुआ। उसने भारतीयोंके हितोंकी रक्षा करने लायक काफी उपाय फिर भी कर लिए और फैसलेके खिलाफ होनेके बावजूद कार्रवाई शुरू होनेतक ब्रिटिश प्रतिनिधि बोअर सरकारको भारतीयोंको बस्तियोंमें भेजनेसे रोकनेमें समर्थ रहा। अब समय बदल चुका है और उसी प्रकार ब्रिटिश नीति भी। आगामी संघर्षको देखते हुए हम इन तीनों फैसलोंका विस्तृत विश्लेषण फिर करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २८–१–१९०४

९०. धन्यवाद, बोर्कसाहब

श्री बोर्कने भारतीय रेलगाड़ियोंमें भारतीय यात्रियोंके नियमनके बाबत जो प्रश्न किया था उसके उत्तरमें सर रिचर्ड सॉलोमनने नीचे लिखी जानकारी दी है[1]:

> भारतकी रेलगाड़ियोंमें यूरोपीय और देशी लोगोंकी यात्राका नियमन करनेकी व्यवस्थाके बारेमें मुझे कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है। मैंने माननीय सदस्यके प्रश्नकी एक नकल रेलवे-कमिश्नरको भेज दी थी। उन्होंने मुझे पत्र द्वारा सूचित किया है कि भारतीय रेलोंमें प्रथा यह है कि कोई भी देशी व्यक्ति अगर वह अपना भाड़ा दे देता है तो जिस डिब्बेमें चाहे उसमें बैठ सकता है; और यह भी कि, सब रेलगाड़ियोंमें स्त्रियोंके डिब्बे लगाये जाते हैं परन्तु यदि कोई गोरा व्यक्ति अपनी पत्नीके साथ यात्रा करना चाहे और साथ ही यह आश्वासन भी चाहे कि उसके डिब्बेमें कोई देशी व्यक्ति न रहेगा तो उसे पूरा-का-पूरा डिब्बा लेना पड़ता है।

यह जानकारी ठीक हमारे अनुमानके अनुरूप है और यद्यपि हमें श्री बोर्कके साथ सहानुभूति है कि वे जो-कुछ चाहते थे वह उन्हें नहीं मिला फिर भी माननीय सदस्य इतना कष्ट उठानेके लिए धन्यवादके पात्र तो हैं ही और हम आशा करें कि उन्हें जो उत्तर मिला है उसे मंजूर करेंगे। उन्होंने चुनौती दी थी और जो उत्तर पानेका अनुमान बाँधा था कि भारतीय रेलोंमें भेदभाव किया जाता है और, इसलिए, वैसा भेदभाव ट्रान्सवालकी रेलोंमें भी बहुत वाजिबी तौरसे किया जा सकता है इस तर्कका उलटा भी तो सही होना चाहिए। इसलिए, चूँकि भारतमें कोई भेदभाव नहीं किया जाता इसका अर्थ यह होता है कि ट्रान्सवालमें भी ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति भेदभाव नहीं किया जा सकता। श्री बोर्क एक सम्मानित पुरुष हैं। वे भेदभावकी पीड़ासे ग्रस्त हैं सही फिर भी इसी कारण वे उस स्थितिसे पीछे नहीं हटेंगे, जिसे उन्होंने जानबूझकर ग्रहण किया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २८–१–१९०४

1. देखिए "श्री बोर्कका प्रश्न", १४–१–१९०४।

११ ब्लूमफौंटीनका संकट

दक्षिण आफ्रिका सचमुच खतरों और संकटोंका स्थान है जैसा कि उसे नामवरीकी रस्म भी बताया गया है। पिछले दस वर्षोंमें उसपर मुसीबतपर मुसीबतें आई हैं। जेम्सीका विस्फोट, जर्मिस्टनके हमलेके ऐन मौकेपर ग्लेनकोके जंक्शनकी रेल-दुर्घटना और अभी हालका ब्लूमफौंटीनका प्रलयंकर तूफान — इन सबसे मालूम होता है कि दक्षिण आफ्रिकाके लोग कैसी अनिश्चित हालतमें रह रहे हैं। रॉयल होटलके छज्जेपर खड़े हुए जो लोग पानीसे घिरनेके पाँच मिनट पहले ही जब पानी हहराता-बहराता आ रहा था शायद यह सोच रहे थे कि वे एक भव्य दृश्यका आनन्द ले रहे हैं मगर, अफसोस उन पाँच मिनटोंके अन्तमें सारा का सारा विशाल भवन भहराकर भूमिसात् हो गया और यह दुःखद कहानी कहनेको सिर्फ एक या दो व्यक्ति बचे। इस मन्दीके समयमें लगभग आधे ब्लूमफौंटीनका बह जाना लगभग चार सौ लोगोंका बे-घरबार हो जाना और साठसे अधिक व्यक्तियोंका पानीमें बिलकुल समा जाना एक ऐसा आघात है जिसे सहना बहुत कठिन है। विध्वंसके इस नजारेमें राहतका खास सिर्फ यह हमदर्दी है, जो दक्षिण आफ्रिकाके हर हिस्सेसे उस दुर्भाग्यग्रस्त स्थानको हासिल हुई है। विभिन्न नगरपालिकाओंने ब्लूमफौंटीनके मेयरकी अपीलका तत्परताके साथ और उम्दा तरीकेसे उत्तर दिया है — यह उनके लिए बड़ी प्रशंसाकी बात है। और हमें अपने पाठकोंको सूचना देते हर्ष होता है कि भारतीय समाज भी पीड़ितोंके सहायतार्थ चन्दा दे रहा है। सहायता कितनी छोटी क्यों न हो यह इस अवसरके अनुकूल और बहुत ही उपयुक्त प्रयोजनके लिए होगी। इसलिए हम अपने पाठकोंसे उनकी स्थिति कैसी भी क्यों न हो अपील करते हैं कि वे अपनी जेबें टटोलें और अपना चन्दा भेजें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-१-१९०४

१२. जोहानिसबर्ग व्यापार-संघ

जोहानिसबर्ग व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) की कार्य-समितिने संघके सामने यह प्रस्ताव रखा है :

पिछली अप्रैलकी सरकारी सूचनापर, उपनिवेश-सचिव द्वारा विधान-परिषदमें पेश किये गये उसके संशोधनपर, विधान-परिषदके जाँच-आयोग नियुक्त करनेके प्रस्तावपर, और १९ दिसम्बरको हुए ट्रान्सवाल व्यापार-संघके प्रतिनिधियोंके सम्मेलनकी सिफारिशोंपर ध्यान दिया गया।

आपकी समिति अब सिफारिश करती है कि

(१) शासन-परिषद द्वारा की गई व्यवस्थाकी जो अप्रैल १९०३ की सरकारी सूचना १५१६ में शामिल है उचित आजमाइश की जाये। (२) सरकारसे निवेदन है कि उक्त सूचनाकी अन्तिम धारामें उल्लिखित अपवाद बहुत ही सीमित रूपमें मंजूर किये जायें क्योंकि यूरोपीय समाजके बीच रहनेवाले एशियाइयोंकी संख्यामें कुछ भी वृद्धि होना उस समाजकी व्यापक भावनाके विपरीत होगा। (३) युद्धसे पहले परवानोंके बिना व्यापार करनेवाले भारतीयोंके मामलोंपर संघ तबतक मत प्रकट न करे जबतक इस मामलेमें सरकार द्वारा नियुक्त आयोगकी जाँच पूरी न हो जाये। (४) किसी एशियाईको किसी गोरेके नामसे व्यापार न करने दिया जाये या ऐसे किसी व्यवसायके मुनाफेमें अपना स्वार्थ न रखने दिया जाये जिसका परवाना किसी गोरेके नामसे लिया गया हो। (५) उपर्युक्त सिफारिश १ के बावजूद और सारे प्रश्नको स्थायी और अन्तिम रूपसे निपटाने और इस मामलेको फिरसे उखाड़नेके अन्य प्रयत्नोंको रोकनेके महत्त्वको देखते हुए, समितिकी सिफारिश है कि बिना भेद-भावके तमाम एशियाई व्यापारियोंको हटाकर *बाजारोंमें* रखने और जिन लोगोंके कानूनके अनुसार मान्य निहित स्वार्थ हों उन्हींको मुआवजा देनेके औचित्यपर सरकारसे विचार करनेको कहा जाये।

समितिकी सिफारिशें निश्चित रूपसे निराशाजनक हैं। संघके पिछले इतिहासके आधार पर हमने समितिकी तरफसे अधिक राजनयिक सूझबूझका प्रस्ताव पानेकी उम्मीद की थी और हम अब भी आशा करते हैं कि संघ अपनी कार्य-समितिके प्रस्तावको माननेसे इनकार कर देगा। जब समिति एक अनुच्छेदमें कहती है कि *बाजार-सूचनाकी* आजमाइश की जाये और दूसरेमें कहती है कि इस आजमाइशके बावजूद शिष्ट भारतीय दूकानदारोंको *बाजारोंमें* निकाल दिया जाये और मुआवजा दे दिया जाये तब उसका यह तर्क समझना कठिन हो जाता है। समिति चाहती है कि सरकार निवास-सम्बन्धी अपवाद बहुत ही कम कर दे। जोहानिसबर्ग जैसे अन्तर्राष्ट्रीय शहरकी तरफसे यह बात बहुत हास्यास्पद है। किन्तु हम समितिको विश्वास दिलाते हैं कि अबतक भारतीयोंने काफी संयम रखा है और किसी भी अपवादका लाभ नहीं उठाया है। जबतक वे अपनी जैसे हैसियतकी कमी पूरी नहीं कर लेते तबतक वे अपने निवासके लिए सरकारकी उदारतापर निर्भर नहीं रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-१-१९०४

९३. आत्मत्याग — २

हम लोगोंमें से अनेकोंको अनुभव हुआ है कि ऐक्यसे सार्वजनिक काम होता है। नटालमें आजसे बीस बरस पहले भारतीयोंको इतना अधिक सताया जाने लगा था कि सरकारको विशेष आयोगकी नियुक्ति करनी पड़ी। इस आयोगने बड़ी जाँच-पड़ताल की और परिणाममें मत हमारे पक्षमें दिया। गोरोंमें अध्यवसाय और एकताका गुण पर्याप्त होनेके कारण उपद्रव जारी रहा और भारतीयोंको सिर्फ बाड़ोंमें रखनेकी बार-बार माँग हुई। उस समय भारतीय जनतामें जितना चाहिए उतना ऐक्य नहीं था इसलिए उपद्रव रुका नहीं बल्कि उलटे बढ़ता गया और स्वराज्य मिलते ही भारतीयोंको अपमानित और हैरान करनेके कायदे बनाये जाने लगे। यद्यपि भारतीय देरसे जागे फिर भी उत्साह तथा लगनसे काम करने लगे जिससे जुल्मका बढ़ना रुक गया — नहीं तो आज सब बाड़ोंमें होते। दुर्भाग्यसे यह जोश-खरोश सिर्फ लगभग तीन ही बरस रहा किन्तु इस अवधिमें बहुत लाभ हुआ और यद्यपि आज वह जोश-खरोश नहीं है फिर भी एकता बढ़ती जाती है और यह मजबूत हो जाये तो हमारी हालत सुधरे बिना नहीं रहेगी। इस हकीकतको सोचें तो आत्मत्यागका महत्त्व सहजमें समझा जा सकता है। हम लोगोंने स्वार्थका त्याग करना शुरू किया कि परमार्थ-बुद्धि सिखने लगी और उसका फल अच्छा हुआ। कुछ-न-कुछ त्याग किये बिना ऐक्य और मिलजुलकर काम नहीं हो सकता। संसारकी इमारत त्यागपर खड़ी है।

हम इस लेखकी ओर अपने नेटालवासी भाइयोंका विशेष ध्यान खींचते हैं क्योंकि वहाँ स्थिति बहुत अव्यवस्थित और खतरनाक है। आजतक यह मानकर कि सरकार जरूर न्याय करेगी हमने सत्याग्रह अपनानेका विचार नहीं किया। किन्तु यदि सरकार गोरी जनताके वशमें रहकर हमारे प्रति इन्साफ करनेमें असमर्थ या अशक्त लगे तो सारी कौमको मिलकर इसपर विचार करना और योग्य कदम उठाना नितान्त आवश्यक है। ऐसा करनेमें समय या पैसा या बादमें चैनोंका त्याग करना पड़े तो हमें आशा है कि वे बेशक करेंगे। प्रसंग बहुत नाजुक है और ऐसा अवसर फिर हाथ नहीं आता यह ध्यानमें रखकर हमारे नेटालवासी भाइयोंको अपना त्याग करनेकी भरपूर कोशिश करनी चाहिए, और हमें लगता है कि वे ऐसा करनेमें कमी नहीं करेंगे। हमारा दावा सही है। इसलिए यदि लगनसे आन्दोलन चलायें तो परिणाममें जय मिले बिना नहीं रहेगी। एक होने और समय तथा धनका त्याग करनेका यह मौका है। हमें अपना कर्त्तव्य करना ही चाहिए। बादमें जो ईश्वरकी इच्छा होगी वह होगा। बचपनमें हमने एक गाड़ीवानकी बात पढ़ी थी वह याद रखने योग्य है। गाड़ीका पहिया कीचड़में फँस गया तो वह भगवान्की प्रार्थना करने लगा। उसपर भगवान्ने कहा कि इस तरह प्रार्थना करनेसे काम नहीं चलेगा। तू मेहनत कर तो बादमें भगवान् मदद करेगा। तब गाड़ीवानने मेहनत की और पहिया निकला। हम सब इसका तात्पर्य समझ सकते हैं इसलिए इसका खुलासा करनेकी जरूरत नहीं है। हमसे जितनी बने उतनी कोशिश करें, यह हमारा कर्त्तव्य है — फल ईश्वरके हाथमें है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-१-१९१४

९४. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

पिछले सप्ताह हमने तैयब हाजी खान मुहम्मद और एफ० डब्ल्यू० राइट्ज एन० ओ० के परीक्षात्मक मुकदमेंका[1] जिक्र किया था। जैसा कि हम बता चुके हैं उस मुकदमेमें सारी बहस इस बातपर आ पड़ी कि "निवास" शब्दका क्या अर्थ किया जाये। १८८५ का कानून ३ १८८६ के संशोधनके अनुसार यह विधान करता है

> सरकारको सफाईके प्रयोजनसे उन्हें (एशियाकी आदिम जातियोंके लोगोंको) रहनेके लिए निश्चित गलियाँ, मुहल्ले और बस्तियाँ बतानेका हक होगा।

तत्कालीन ट्रान्सवाल सरकारकी तरफसे यह कहा गया था कि भारतीयोंके निवास-स्थानमें रहना भी जिसका प्रयोजन व्यापार करना हो शामिल है और, इसलिए, भारतीय निश्चित गलियों मुहल्लों और बस्तियोंमें ही व्यापार कर सकते हैं। इसके विपरीत ब्रिटिश सरकारकी यह दलील थी कि "निवास" का मतलब व्यवसायको छोड़कर रिहाइश ही हो सकता है और "सफाईके प्रयोजनसे" वाक्यांश स्पष्ट बताता है कि भारतीय व्यापारको अछूता छोड़ दिया जायेगा। अदालतकी अध्यक्षता करनेवाले न्यायाधीश श्री मॉरिसने पहलेके एक निर्णयको जो १८८८ में इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके मुकदमेमें दिया गया था अपने फैसलेका आधार बनाया। याद रहे कि इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके इस मामलेकी सुनवाई तत्कालीन ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीशके पंच-फैसला देनेके पहले हुई थी। न्यायाधीशके अपने ही विचारके अनुसार

> अदालत अधिक न्यायानुमोदित सिद्धान्तोंके अनुसार फैसला देती यदि उसने इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके मुकदमेमें किसी स्थानपर रहने और व्यापार करनेके बीच फर्क किया होता। साधारण शब्द-प्रयोगके अनुसार जहाँ कोई व्यापार करता है परन्तु सोता नहीं, वहाँ ऐसा नहीं कहा जाता कि वह रहता है।

परन्तु विद्वान न्यायाधीशने सोचा कि वे पहलेके दिये हुए निर्णयसे बँधे हैं और इसलिए यद्यपि उनका अपना अर्थ उस अर्थसे भिन्न था जो उस शब्दका किया गया फिर भी वे इस्माइल सुलेमान ऐंड कम्पनीके मुकदमेके फैसलेकी अवहेलना नहीं करना चाहते थे। अब ऐसा मालूम होता है कि गणतन्त्री संविधानकी इस धाराका उस समय पूरा उपयोग किया गया था कि, राज्यमें गोरों और कालोंमें समानता नहीं होनी चाहिए। यह मान लिया गया था कि भारतीय (दक्षिण आफ्रिकाकी) काली जातियोंके लोग हैं। ऐसी सूरतमें यह तर्क किया गया कि १८८५ का कानून ३ सुविधा देनेवाला है पाबन्दी लगानेवाला हरगिज नहीं। इस्माइल सुलेमानके मुकदमे और उपर्युक्त दलीलको काममें लेनेके बारेमें कोई कुछ भी कहे वह उसके बादके तैयब हाजी खान मुहम्मदके मामलेपर किसी भी तरह लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि मुख्य न्यायाधीशने साफ कहा था कि १८८४ के लन्दन सम्मेलनके[2] अनुसार ट्रान्सवाल सरकारको

१. देखिए "इंडियन ओपिनियन" २८-१-१९०४।
२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १८९।
३. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १९५।

ब्रिटिश भारतीयोंकी स्वतंत्रतापर प्रतिबन्ध लगानेवाला कोई कानून पास करनेका हक नहीं है। और उन्होंने यह राय दी थी कि दोनों सरकार १८८६ के संशोधनके अनुसार १८८५ के कानून ३ से बँधी हुई हैं क्योंकि उन दोनों कानूनोंके पास होनेमें ब्रिटिश सरकारकी खास रजामंदी थी। हमारा खयाल है कि इस दलीलकी तरफ न्यायाधीशोंका काफी ध्यान नहीं दिलाया गया। और उन्होंने मुकदमेमें अपना फैसला इस तरह दिया मानो कोई पंच-फैसला था ही नहीं। यद्यपि न्यायाधीश मॉरिसन भी ब्रिटिश भारतीयोंके दुर्भाग्यसे न्यायाधीश मॉरिसनके फैसलेसे सहमत हो गये तथापि उनका तर्क पूरी तरह ब्रिटिश सरकारके किये हुए अर्थके पक्षमें था। संविधानमें असमानताके सम्बन्धमें विद्वान न्यायाधीश कहते हैं

> इससे यह निष्कर्ष निकालना कि कुलियोंके खिलाफ सरकार जो भी कार्रवाई ठीक समझे कर सकती है मेरी रायमें ऐसा व्यापक अर्थ करना है जिसका विधान-सभाका कभी इरादा नहीं हो सकता था। इस धारामें रंगदार लोगोंका मतलब उन रंगदार लोगोंसे है जो उस समय यहाँ रहते थे — अर्थात् मतलब काफिरोंसे है। लोकसभा (फोक्सराट) ने जब कुलियोंके लिए अलग कानून बनाया तब उसकी यही भावना मालूम होती थी कि कुली इसमें शामिल नहीं किये गये।

किन्तु इस समय ये फैसले ध्यान देने लायक हैं। इसलिए हम इन्हें अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४–२–१९०८

९५ फिर ऑरेंज रिवर उपनिवेश

हम एक अन्य स्तम्भमें उस अध्यादेशका मसविदा प्रकाशित कर रहे हैं जिसमें रंगदार लोगोंपर व्यक्ति-कर लगानेके सम्बन्धमें बनाये गये कानून एकत्र और संशोधित किये जा रहे हैं और जो १६ जनवरीके ऑरेंज रिवर उपनिवेशके असाधारण गजटमें निकला है। उस उपनिवेशकी वर्तमान सरकारकी रंग-विरोधी प्रवृत्ति बिलकुल विलक्षण है। वहाँ बुरे-से-बुरे ढंगकी गुलामी असली तौरपर पुनरुज्जीवित की जा रही है और अध्यादेशका उक्त मसविदा दक्षिण अमेरिकाके इसी तरहके कानूनकी याद आती है। हम पत्रोंमें पढ़ते हैं कि उस देशमें जो इतना जुर्माना नहीं दे सकते वे सेवाके लिए किसी भी गोरेके जो उनका जुर्माना अदा कर दे हवाले किये जा सकते हैं और इस प्रकार, आर्डे-टेंडे इसम अमेरिकाके मसिपालके अनुसार गैर-कानूनी गुलामी बिन-रुकावट जारी रखी जाती है और कानून द्वारा मंजूर कर दी जाती है। उल्लिखित अध्यादेशके मसविदेकी धारा १३ इस प्रकार है

> इस अध्यादेशके अनुसार कर-संग्राहकके माँगनेपर कोई रंगदार व्यक्ति व्यक्ति-कर न चुका सके तो उस हालतमें कर-संग्राहक तुरन्त इसकी सूचना उस खेत या मकानके गोरे मालिक पट्टेदार या कब्जेदारको (यदि कोई हो तो) देगा और उसके बाद यदि उक्त कर चुकाया नहीं जाता या उसकी अदायगीके लिए काफी जमानत नहीं दी जाती तो जिलेका स्थानीय मजिस्ट्रेट या शान्ति-संरक्षक (जस्टिस ऑफ द पीस) जो भी वहाँ हो,

> उक्त रंगदार व्यक्तिको उक्त जिलेमें रहनेवाले किसी ऐसे गोरेकी करारबन्द सेवामें रख देगा जो उक्त कर चुकानेको रजामन्द हो। व्यवस्था यह है कि ऐसा हरएक करारनामा एक सालसे ज्यादाके लिए नहीं होगा।

इस प्रकार, यदि कोई रंगदार व्यक्ति अध्यादेशके अनुसार लगाया गया व्यक्ति-कर, अर्थात् एक पौंड वार्षिक नहीं चुकाता है तो उसे एक सालके लिए किसी ऐसे गोरेके साथ इकरारनामेके अधीन रखा जा सकता है जो कर चुकानेको तैयार हो। और यह कर १८ से ७ वर्ष तककी उम्रके हरएक रंगदार मर्दको चुकाना होगा। इसमें बीमारी या ऐसे किसी भी कारणसे कोई छूट दिखाई नहीं देती और ऐसा कठोर कानून बनाना — भले ही वह दक्षिण आफ्रिकाकी वतनी जातियोंपर ही लागू क्यों न होता हो — हमारे लिए गुलामीका कारण होगा। हमारे लिए अपनी भावनाओंको रोकना कठिन हो जाता है जब हमें पता चलता है कि यह विधि भारतीयोंपर भी लागू होता है क्योंकि २ री धारामें हम पढ़ते हैं

> रंगदार व्यक्ति शब्द इस अध्यादेशके उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जिनके बोधक होंगे उनमें अरब चीनी और दूसरे एशियाई और ऐसे ही अन्य सब लोग भी शामिल होंगे जो कानून या रिवाजसे दक्षिण आफ्रिकामें रंगदार माने जाते हैं।

बात इतनी सी ही नहीं है कि उपनिवेश अपने दरवाजे भारतीयोंके प्रवेशके लिए बन्द रख रहा है बल्कि जो थोड़ेसे भारतीय घरेलू नौकर इस उपनिवेशमें अपने शान्तिपूर्ण धन्धे कर रहे हैं उनको लेकर भी उसके लिए ब्रिटिश भारतीयोंपर नये-नये अपमान लादते जाना जरूरी है। क्या इसीकी खातिर लड़ाई मोल ली गई थी और करोड़ों रुपये और हजारों जानें बरबाद की गई थीं? लॉर्ड मिलनरको दयालुतापूर्ण और उदार विचार रखनेका श्रेय प्राप्त है। उन्होंने कई बार कहा है कि उन्हें रंगके सम्बन्धमें कोई पूर्वग्रह नहीं है। तब क्या वे इस अध्यादेशको मंजूरी दे देंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४–२–१९०४

१६ ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय व्यापारी

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने विधान-परिषदके प्रस्तावके अनुसार अब सर्वश्री हुनी लेरिअन स्मी और चैमनका एक आयोग नियुक्त कर दिया है। श्री चैमने उसके मन्त्री हैं। यह आयोग

> उन एशियाइयोंके मामलोंका विचार करेगा जो लड़ाई छिड़नेके समय या उससे ठीक पहले बिना परवानोंके पृथक बस्तियोंके बाहर ट्रान्सवालके शहरोंमें व्यापार कर रहे थे और जाँच करके यह रिपोर्ट देगा कि ऐसे व्यापारियोंकी संख्या क्या है और पृथक बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेकी अनुमति दी जानेके कारण वे जिन निहित स्वार्थोंका दावा करते हैं वे दावे कैसे हैं और उनका क्या मूल्य है।

आयोगके सदस्योंके बारेमें हमें कुछ कहना नहीं है। मन्त्री श्री चैमने भारतीयोंकी नजरमें भारतीय अनुभव और निष्पक्ष भाव रखनेवाले सज्जन हैं। श्री हुनी हटफर-निर्देशक और लेरिअन राजस्वके निरीक्षक हैं। यह मान लेना काफी निरापद है कि ये सज्जन बिना किसी पक्षपातके काम करेंगे। श्री स्मी एक योग्य बैरिस्टर हैं और निर्वाचक-सूचियोंके सुधारका अच्छा काम कर रहे हैं। उनकी कानूनी तालीमसे दूसरे सदस्योंको विषयकी सीमामें रहने और उसके सम्बन्धमें कोई कानूनी मुद्दे उठें तो उनका सामना करनेमें मदद मिलनी चाहिए। किन्तु आयोगकी उपयोगिताके सम्बन्धमें कुछ दिलचस्पी पैदा होती है क्योंकि भारतीयोंने एक परीक्षात्मक मुकदमा छेड़ दिया है। अगर उसका फैसला उनके पक्षमें होता है जैसा कि होना चाहिए, तब तो आयोगका परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा। इसलिए यह जाहिर है कि मुकदमेका नतीजा निकलनेतक आयोगकी नियुक्ति स्थगित रखी जाती तो ज्यादा अच्छा होता। ट्रान्सवाल खास तौरपर आजकल बहुत खुशहाल नहीं है और यह दुःखकी बात है कि बहुत-सा धन व्यर्थकी छानबीनमें बरबाद कर दिया जायेगा। आयोगके विचारणीय विषय ऐसे हैं कि लड़ाई छिड़नेसे ठीक पहले शब्दोंका अर्थ करनेमें भी स्मीकी कानूनी योग्यता काफी खर्च होगी। उनकी मर्यादामें आनेवाला कौन समझा जायेगा? आयोगके सदस्य ऐसी तारीख कैसे मुकर्रर करेंगे जो उनकी रायमें लड़ाई छिड़नेके तुरन्त पहलेकी होगी? परन्तु उन विविध भेद-भावोंकी जो अक्सर ईर्ष्या-द्वेषजन्य होते हैं और जाँचके दौरानमें जिनके सामने आनेकी सम्भावना है इस समय चर्चा करना बेकार है। पाँसा फेंका जा चुका है और अब हम आयोगकी कार्रवाईकी बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४-२-१९०४

१७ आस्ट्रेलियाके ब्रिटिश भारतीय

हम अपने पाठकोंका ध्यान श्री चार्ल्स फ्रान्सिस सीवराइटके कार्यकी रिपोर्टकी ओर आकर्षित करते हैं। ये आस्ट्रेलियाके ब्रिटिश साम्राज्य-संघके यूरोपीय कमिश्नर हैं और रिपोर्ट बम्बई *ऐडवोकेट ऑफ इंडियामें* प्रकाशित हुई है। हम मानते हैं कि श्री सीवराइट अच्छा काम कर रहे हैं और हम उनके शुभ व्रतमें पूरी सफलता चाहते हैं। श्री सीवराइटने ऐसा पत्र प्रकाशित किया है इससे जाहिर होता है कि आस्ट्रेलियामें भी जहाँ उस दिन नष्ट हुए जहाजके कर्मचारी अपनी चमड़ीके रंगके कारण उतरनेसे रोक दिये गये हैं ऐसे यूरोपीय मौजूद हैं जिन्हें उस सम्बन्धी कानून बनानेपर और इस प्रश्नपर सर्वसाधारणका रवैया देखकर हृदयसे [illegible] होती है। हम दक्षिण आफ्रिकाके उपनिवेशियोंसे अपील करते हैं कि क्या वे समयके चिह्न नहीं पहचानेंगे और साम्राज्य-निष्ठोंकी हैसियतसे इस प्रश्नपर भारतमें रहनेवाले करोड़ों लोगोंकी भावनाओंका खयाल करना ठीक नहीं समझेंगे? अगर वे भारतवासियोंके दक्षिण आफ्रिकामें आना करना या बसना पसन्द करनेपर अत्यन्त अपमानजनक पाबन्दियाँ लगाकर उनकी भावनाओंको आघात पहुँचाते रहेंगे तो केवल समय आनेकी देर है कि भारत और उपनिवेशोंके बीच स्थायी मनोमालिन्य हो जायेगा और इन उपनिवेशोंकी राममें इस समय भारत भले ही नगण्य दिखाई देता हो परन्तु जल्दी ही ऐसा समय आयेगा जब उन्हें भूल स्वीकार करनी पड़ेगी। शायद तब भूल सुधारना संभव नहीं रह जायेगा। आदान-प्रदानकी नीति ही एकमात्र व्यावहारिक नीति है। उपनिवेशी तो संसारके अन्य सब लोगोंसे अधिक व्यावहारिक सामान्य बुद्धि रखनेवाले माने जाते हैं। अगर उसे वे इस प्रश्नमें लगायें तो उनकी समझमें आ जायेगा कि जो-कुछ वे लेते हैं उसके बदलेमें थोड़ा-सा भी दें तो यह बुद्धिमत्ता ही होगी।

श्री सीवराइटने एक लोकमापक तैयार किया है। उसे भी हम अन्यत्र छाप रहे हैं। उन्होंने जनमतके लिए अपील की है। यह एक नाजुक मामला है। हमारे विचारसे इस शुभ कार्यको पूरा नैतिक समर्थन मिलना चाहिये। परन्तु आस्ट्रेलियाकी समस्या वही होना जरूरी नहीं जो दक्षिण आफ्रिकामें है इसलिए उसका बँटवारा नहीं किया जा सकता। प्रत्येक समाजको अपना उद्धार आप करने देना चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि सब अपने-अपने साधन जुटायें और हमारी रायमें कारगर सहयोग इसी तरह किया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४–२–१ ४

१८. श्री डोमन टेलूकी अकाल मृत्यु

हमें यह सूचित करते हुए बहुत दुःख होता है कि जोहानिसबर्गने सावधान और अति चतुर भारतीय भाई श्री डोमन टेलू बवामीमें यह फानी दुनिया छोड़ गये हैं। जोहानिसबर्गके हमारे सब भारतीय उन्हें अच्छी तरह जानते हैं। असलमें वे मसगेनीके रहनेवाले थे परन्तु पुरुषार्थ करके अपना भाग्य आजमानेके लिए वे जोहानिसबर्ग पहुँचे थे। वहाँ सफल प्रयास द्वारा अपने सुनारके धंधेमें और दूसरे व्यापारमें मामूली पैसा कमाकर वे जमीनके मालिक बन गये थे। उनकी कुछ जमीन नेटालमें भी है। वे अपने पुरुषार्थसे थोड़ी-बहुत अंग्रेजी सीखे थे और अपने सदुद्योग तथा धर्मके मार्गदर्शनसे उन्होंने हिन्दीका अभ्यास किया था। वे धर्माभिमानी थे और हिन्दू धर्मकी उन्नतिके लिए सदा आतुर रहते थे। साधारण सार्वजनिक कामोंमें वे बहुत उत्साह दिखाते थे। माँ-बापकी गरीबीके कारण और नेटालमें साधारणतया भारतीयोंपर गुजरने वाली आफतोंमें पले-पुसे होनेके कारण वे संकटके समयमें धीरजसे किन्तु दृढ़तासे काम लेना सीखे थे। यह शिक्षण जोहानिसबर्गमें उनके बहुत काम आया था।

वे जिस कामका जिम्मा लेते थे उसमें सदा आग्रही रहते थे। परन्तु उस आग्रहको दूरमें रखकर काम करनेके लिए वे हमेशा आतुर थे। लड़ाईसे पहले और लड़ाईके बाद भी वे भारतीयोंके सार्वजनिक काममें आग्रहपूर्वक हाथ बँटाते थे। लड़ाईके बाद अनुमतिपत्र (परमिट) के मामलेमें निःस्वार्थ भावसे और बहुत सफाईके साथ वे हमारे स्वदेशी भाइयोंको (अनुमति-पत्र) दिलाने और उनके दूसरे दुःख दूर करनेके लिए अपना लगभग पूरा समय लगाते थे। बाजार लोगोंकी मुसीबत दूर हुई और अंग्रेजी राज्यमें हमारी स्थिति अच्छी होनेकी आशा भंग हो गई तब हमारी लड़ाई चलानेके लिए सब भाइयोंको एकत्र करनेमें उन्होंने कोई भी प्रयास बाकी नहीं रखा था। दूसरोंके साथ उनके पुरुषार्थके कारण भारतीय संघ (इंडियन असोसिएशन) नामक सभाकी स्थापना हुई थी और उस सभाके कोषमें सैकड़ोंकी रकम जमा करानेमें वे मौजमजासे निवृत्त होकर दिन-रात लगे रहते थे। वे और भी कई सार्वजनिक काम करना चाहते थे। उनकी मृत्युसे भारतीय कौमका एक अच्छा आदमी उठ गया है। वे *इंडियन ओपिनियन*के एक एजेंट थे और अपने कामकी क्षति देकर हर हफ्ते पचास प्रतियाँ खुद जाकर बेचते थे और उनकी दस्तूरी (कमिशन) तक नहीं लेते थे। जोहानिसबर्गके भारतीयोंके प्रति तथा श्री डोमनके परिवारके प्रति हम अपनी समवेदना प्रकट करते हैं और परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि वह उनकी आत्माको मुक्ति दे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ६-२-१९०४

११ श्रमके प्रश्नपर लॉर्ड हैरिस

डेली मेलसे लेकर अन्यत्र हम एक मुलाकातके समाचार छाप रहे हैं जो उसके प्रतिनिधिने नेटालके भूतपूर्व गवर्नर लॉर्ड हैरिससे की है। लॉर्ड महोदय आजकल जोहानिसबर्गमें हैं और संयुक्त स्वर्ण-क्षेत्र (कॉन्सॉलिडेटेड गोल्डफील्ड्स) के अध्यक्ष हैं। उन्होंने मुलाकात करनेवालेको बाहरसे मजदूर लानेके बारेमें अपने विचार बताये हैं और उनका खयाल है कि इंग्लैंडमें उसका जो विरोध किया जा रहा है वह बहुत अनुचित है। उन्होंने अपने कथनके समर्थनमें यह तर्क बताया है कि वेस्ट इंडीज और दूसरे देशोंमें अबसे पहले बाहरसे लगातार गिरमिटिया मजदूर लाये गये हैं। लॉर्ड महोदयसे इससे कहीं अच्छे तर्ककी आशा की जाती थी क्योंकि हमें निश्चय है वे अपरिचित हो नहीं सकते कि वेस्ट इंडीज और ट्रान्सवालमें तथा दूसरे देशोंके श्रम-अध्यादेशों और उस श्रम-अध्यादेशके बीच बहुत बड़ा अंतर है जिसे ट्रान्सवाल-सरकार चाहती है ब्रिटिश सरकार बिना पसोपेश के मंजूर कर ले। सबको मालूम है कि वेस्ट इंडीज गोरे श्रमिकोंके लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि वहाँकी आबोहवा बड़ी कष्टदायक है जबकि ट्रान्सवालका जलवायु बिलकुल अच्छा है और यहाँ गोरे मजदूरोंको जैसा काम वे इंग्लैंडमें करनेके आदी हैं वैसा ही करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। किसीने कभी यह नहीं कहा है कि ऐसे मजदूरोंके लिए यहाँका जलवायु उपयुक्त नहीं है। आपत्ति एकमात्र यह है कि गोरे मजदूर बहुत महँगे हैं। श्री मॉर्लेने यह बताकर आर्थिक दलीलको निपटा दिया है कि खानोंको थोड़े मुनाफेसे सन्तोष करना चाहिए और जो खानें गोरे श्रमिकों द्वारा बिलकुल चलाई ही नहीं जा सकतीं उनमेंसे सोना निकालनेकी उतावली करनेकी जरूरत नहीं है। फिर बात दूसरे देशों और ट्रान्सवालके गिरमिटिया-कानूनोंमें अन्तरकी। या यह अन्तर उतना ही है जितना स्वतन्त्रताके और गुलामीके इकरारनामोंमें होता है। जहाँतक हमें मालूम है ब्रिटिश उपनिवेश-वादके इतिहासमें मजदूरोंके लिए कभी ऐसा कठोर, ऐसा व्यापक और ऐसा अन्यायपूर्ण गिरमिटिया कानून मुश्किलसे मिलेगा जैसा ट्रान्सवालका श्रमिक आयात अध्यादेश (लेबर इम्पोर्टेशन ऑर्डिनेंस) है। वेस्ट इंडीज और अन्यत्र जो गिरमिटिया मजदूर जाते हैं वे गुलाम बनकर नहीं जाते बल्कि ज्यों ही उनका इकरारनामा पूरा हो जाता है वे उस देशमें बसने और साधारण नागरिक अधिकार भोगनेके लिए स्वतंत्र हो जाते हैं। इसलिए हमारा नम्र निवेदन है कि लॉर्ड हैरिसका वेस्ट इंडीज और दूसरे देशोंके उदाहरण देना उचित नहीं है।

भारत-सरकारके रुखपर लॉर्ड महोदयकी टिप्पणियाँ और भी रोचक और शिक्षाप्रद हैं। लॉर्ड महोदय कहते हैं

> भारतीय दृष्टिकोणसे मेरा खयाल है, भारत-सरकारका रुख जब कुछ भी हो, गुणमें उसने भूल की थी। व्यापारी और कुली बिलकुल अलग-अलग लोग हैं। भारतके लिए एक उत्तम बात होती अगर भारतसे ट्रान्सवालको आना-जाना होता रहता। दोनों देशोंके बीच निश्चय ही बहुत-सा व्यापार खड़ा हो जाता और कुली ट्रान्सवालको अपने परिश्रमका लाभ देकर, अपने रुपये लेकर — वह पूँजी लेकर जिसकी भारतको जरूरत है — अपने गाँवोंको लौट जाते।

रोने-चिल्लानेसे कोई काम नहीं और हमारे खयालसे जिम्मेदारीका तकाजा पालन करना केवल सिमथके ब्रिटिश भारतीय दुकानदारोंका स्पष्ट कर्तव्य है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-२-१९०४

१०१ पत्र डॉ० पोर्टरको

२१ से २४ कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी ११, १९०४

डॉ० सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
पो० ऑ० बॉक्स १०४९
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर

मैं आपको भारतीय बस्तीकी भयंकर हालतके बारेमें लिखनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। कमरोंमें अवर्णनातीत भीड़भाड़ दिखाई पड़ती है। सफाई करनेवाले बहुत अनियमित रूपसे मैले पाते हैं और बस्तीके अनेक निवासी मेरे दफ्तरमें आकर शिकायत कर गये हैं कि अब सफाईकी हालत पहलेसे भी बहुत बुरी है।

बस्तीमें काफिरोंकी भी बहुत बड़ी आबादी है जिसका वस्तुतः कोई औचित्य नहीं है।

मैंने जो-कुछ सुना है उससे मेरा विश्वास है कि बस्तीमें मृत्युसंख्या बहुत बढ़ गई है और मुझे लगता है कि आज जो हालत है यह यदि बनी रही तो आज हो या कल कोई संक्रामक बीमारी फैले बिना नहीं रह सकती।

मैं जानता हूँ सफाई-सम्बन्धी सुधारोंमें आप बहुत बढ़े-चढ़े हैं। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि मेहरबानी करके आप एक बार खुद वहाँ जायें और सफाईके समान ही बस्तीके घनेपनकी समस्या भी उचित रूपसे हल करा दें। यदि आपको मेरा सुझाव ठीक लगे और मैं कुछ काम आ सकूँ तो मुझे आपके साथ जानेमें खुशी होगी।

मैं यह और कहना चाहता हूँ कि आज जो हालत है उसके लिए बस्तीके निवासी किसी प्रकार जिम्मेदार नहीं हैं।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ..-८-१९०४

१०२ पत्र डॉ० पोर्टरको

२१ से २४ कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी १५, १९०४

डॉ० सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

आप पिछले शनिवारको भारतीय बस्ती देखने गये और उसकी ठीक-ठीक सफाईके काममें दिलचस्पी ले रहे हैं इसके लिए मैं आपका बहुत ही आभारी हूँ। मैं वहाँकी स्थितिके बारेमें जितना अधिक विचार करता हूँ वह मुझे उतनी ही बुरी मालूम होती है। और मेरा खयाल है कि यदि नगर-परिषद असमर्थताका रवैया अपना लेती है तो वह अपने कर्तव्यसे च्युत होती है और मैं यह भी जरूर आदरपूर्वक कहता हूँ कि लोक-स्वास्थ्य समितिका यह कहना किसी भी तरह उचित नहीं हो सकता कि वहाँ न तो भीड़ भड़क्केको रोका जा सकता है और न गन्दगीको। मुझे विश्वास है कि इस मामलेमें बरबाद किया गया एक-एक पल विपत्तिको जोहानिसबर्गके नजदीक लाता है और उसमें ब्रिटिश भारतीयोंका कोई भी दोष नहीं है। जोहानिसबर्गके सब स्थानोंमें से भारतीय बस्ती ही शहरके सारे काफिरोंको भरनेके लिए क्यों चुनी जाये यह मेरी समझमें ही नहीं आता। जहाँ लोक-स्वास्थ्य समितिकी सफाई-सम्बन्धी सुधारकी बड़ी-बड़ी योजनाएँ बेशक बहुत प्रशंसनीय और कदाचित् आवश्यक भी हैं वहाँ मेरी नम्र रायमें भारतीय बस्तीकी गन्दगी और अत्यधिक भीड़-भाड़के मौजूदा खतरेका सामना करनेके स्पष्ट कर्तव्यकी भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। मैं महसूस करता हूँ कि इस समय कुछ सौ पौंड खर्च कर देनेसे शायद हजारों पौंडकी बचत होगी क्योंकि यदि दुर्भाग्यवश बस्तीमें कोई छूतकी बीमारी फैल गई तो लोगोंमें घबराहट पैदा हो जायेगी और इस समय जो बुराई बिलकुल रोकी जा सकती है उसके इलाजके लिए तब तो रुपया पानीकी तरह बहाया जायेगा।

मुझे आश्चर्य नहीं है कि आपके अमलेको बहुत काम करना पड़ता है इसलिए वह बस्तीकी सफाईका पूरा काम करनेमें असमर्थ है क्योंकि आपको जो चीज चाहिए और जो मिल नहीं सकती वह है हरएक मकानके लिए एक सफैया। जो काम सबपर छोड़ दिया जाता है वह किसीका भी नहीं होता। आप बस्तीके प्रत्येक निवासीसे सफाईकी देखभाल करनेकी आशा नहीं रख सकते। अभीसे पहले हरएक बाड़ेका मालिक अपने बाड़ेकी ठीक सफाईके लिए जिम्मेदार माना जाता था और यह बहुत स्वाभाविक भी था। मैं स्वयं जानता हूँ कि इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक बाड़ेके साथ एक सफैया लगा रहता था और वह उसकी बराबर देखभाल रखता था और मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि बाड़ोंकी जो हालत इस समय है उसके मुकाबिलेमें वे अच्छी और आदर्श अवस्थामें रखे जाते थे।

आप मुझसे उपाय सुझानेके लिए कहते हैं। मैंने तो इस मामलेको टाला था और अगर नगर-परिषद कोई उचित ढंग अपना ले तो मुझे सन्देह नहीं कि स्थितिमें तुरन्त सुधार हो सकता है। और उसके लिए नगर-परिषदको कुछ खर्च भी न करना पड़े और शायद कुछ पौंडकी बचत भी हो जाये। बाड़ोंके मालिकोंका बोझ घटानेके लिए — छः महीने या तीन महीनेके

लिए — पट्टे दे दिये जायें। पट्टोंमें ठीक-ठीक लिख दिया जाय कि हर बाड़में या हर कमरेमें कितने आदमी रखे जायेंगे। पट्टेदार कीमत आँकनेवालों द्वारा आँकी गई कीमतका मान लीजिए, ८ फीसदी चुकायें और जिस बाड़ेका उन्हें पट्टा दिया गया हो उसकी सफाईके लिए उन्हें सख्तीके साथ जिम्मेदार बनाया जाये।

तब सफाईके नियमोंपर कठोरतासे अमल कराया जा सकता है। एक या दो निरीक्षक बाड़ोंको रोज देख सकते हैं और नियम भंग करनेवाले लोगोंके साथ सख्तीसे पेश आ सकते हैं।

यदि यह विनम्र सुझाव मान लिया जाये तो आपको दो-तीन दिनमें बहुत सुधार दिखाई देगा और आप थोड़ी-सी कलम चलाकर गन्दगी और भीड़-भाड़का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। नगर-परिषद भी व्यक्तियोंसे किराया वसूल करनेकी झंझटसे बच जायेगी।

अवश्य ही मेरे सुझावके अनुसार नगर-परिषदको बस्तीसे काफिरोंको हटा देना होगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि भारतीयोंके साथ काफिरोंको मिला देनेके बारेमें मेरी भावना बहुत ही प्रबल है। मेरे खयालसे यह भारतीय लोगोंके साथ बड़ा अन्याय है और मेरे देशवासियोंके सुप्रसिद्ध धीरजका भी बेजा तौरपर नपानेवाला है।

यद्यपि अस्वच्छ क्षेत्रमें शामिल किये गये दूसरे भागोंमें मैं स्वयं नहीं गया हूँ फिर भी मुझे बड़ा अन्देशा है कि वहाँ भी यही हालत होगी और मैंने ऊपर जो सुझाव दिया है, वह दूसरे भागोंपर भी लागू होगा।

मुझे भरोसा है कि आप इस पत्रको उसी भावनासे अंगीकार करेंगे जिस भावनासे यह लिखा गया है और मुझे आशा है कि मैंने अवसरकी विकटताको देखते हुए आवश्यकतासे अधिक जोरदार भाषाका उपयोग नहीं किया है। कहनेकी जरूरत नहीं कि इस दिशामें मेरी सेवाएँ पूरी तरहसे आपके और लोक-स्वास्थ्य समितिके सुपुर्द हैं। और मुझे कोई शक नहीं कि सफाईके मामलेमें भारतीय समाज क्या-कुछ कर सकता है यह कर दिखानेका अगर नगर परिषद उसे उचित मौका भर दे दे तो मेरे मनमें बहुत भूल न होगी।

आप इस पत्रका जैसा चाहें उपयोग कर सकते हैं।

अन्तमें मैं आशा करता हूँ कि समाजके सामने जो खतरा है उसका कोई उपाय तुरन्त खोज निकाला जायेगा।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ९–४–१९०४

१०३. सर गॉर्डन स्प्रिग ईस्ट लन्दनमें

सर गॉर्डन स्प्रिग[1] दुबारा चुने जानेके लिए ईस्ट लन्दनमें सिर-तोड़ कोशिश कर रहे हैं। यह ऐसा ही है, जैसे कि डूबता तिनकेका सहारा लेता है। पहले कभी उन्होंने वतनी निर्वाचकोंके सामने उनकी बस्तीमें भाषण नहीं दिया परन्तु चूँकि ईस्ट लन्दनके लोगोंने उनको सूखा जवाब दे दिया मालूम होता है इसलिए उन्होंने वतनी मतदाताओंकी बस्तीमें जाकर उनकी सभामें भाषण देनेका निश्चय किया। परन्तु सर गॉर्डनके दुर्भाग्यसे सभाने उन परममाननीयके प्रति सर्वसम्मतिसे अविश्वास प्रकट कर दिया। सभाके वक्ताओंमें से एकने उन्हें ठीक ही याद दिलाया कि उन्होंने वतनियोंके लिए कुछ नहीं किया और केप उपनिवेशमें ईस्ट लन्दन ही एक ऐसी जगह है जहाँ वतनियोंको पैदल-पटरियोंपर चलनेका अधिकार नहीं है। वक्ताने सर गॉर्डनपर ठीक ही दोष लगाया कि उन्होंने उपर्युक्त नागरिक नियमोंकी मंजूरी दी थी और वे (सर गॉर्डन) यही टाल-मटोलका जवाब दे सके कि यह नगरपालिकाका मामला है और वे नगर-परिषदकी कार्रवाईके न्यायाधीश नहीं बनना चाहते। लेकिन हमारे लिए तत्काल दिलचस्पीकी चीज तो यह है कि ईस्ट लन्दनके महापौरने इस प्रश्नपर अप्रत्यक्ष प्रकाश डाला। उन्होंने कहा

> किसी हदतक नियमन करनेवाले कानूनोंका कारण जलपान-गृहोंका फिरसे खुलना है, क्योंकि जब वतनी लोग शराब पिये होते हैं तब वे किसीका यहाँतक कि गोरी महिलाओंका भी लिहाज नहीं करते। बहुत सम्भव है जलपान-गृह फिरसे बन्द कर दिये जायें तो नियम पालन करानेकी जरूरत ही न होगी।

अगर हकीकत वही है जो महापौरने बताई है तो जहाँतक वतनियोंका सम्बन्ध है नियमोंके लिए कुछ बहाना दिखाई देता है यद्यपि हमारी समझमें नहीं आता कि ऐसे लोगोंको नशेमें चूर होने और गड़बड़ी मचाने तथा रुकावट डालनेके लिए मुकदमे चलाकर सजा क्यों नहीं दी जा सकती। ठीक तरीका तो निस्सन्देह कुछ इसी तरह और जुर्म-सम्बन्धी साधारण नियमोंके अनुसार, इस बुराईसे निपटनेका होगा। कुछ भी हो ईस्ट लन्दनमें रहनेवाले मुट्ठीभर भारतीयोंपर तो यह नियम लागू करनेका ऐसा कोई बहाना हो नहीं सकता क्योंकि उनके खिलाफ किसीने नशेबाजी करने या रुकावट डालनेका कभी कोई इलजाम नहीं लगाया है। जहाँतक हमारी जानकारी है ईस्ट लन्दनके भारतीयोंमें नशेबाजीकी कभी कोई वारदात नहीं हुई है। हमें मालूम हुआ है कि ईस्ट लन्दनके भारतीय संघने इस मामलेमें वहाँकी नगर-परिषदसे निवेदन किया है और हम सच्चे दिलसे आशा रखते हैं कि अगर इन नियमोंको जारी करनेका कारण वही है जो महापौरने प्रकट किया है, तो जहाँतक वे ब्रिटिश भारतीयोंपर लागू होते हैं उन्हें रद कर दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८–२–१९०४

1. सर गॉर्डन [illegible] प्रधानमन्त्री। १[illegible] से भी [illegible] बार प्रधानमन्त्री हुए थे।

१०४. फिर पीटर्सबर्ग

पीटर्सबर्ग जो गत वर्ष ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोंको तंग करनेमें अगुआ बना था[1] उसने ही ओरसे अपनी नीति चला रहा है। नवनिर्मित नगर-परिषदने उत्पीड़न कायम रखनेकी उत्सुकतामें अब एक प्रस्ताव पास किया है कि फेरीवालोंको भी सताये बिना व्यापार न करने दिया जाये। नगर-परिषदके एक सदस्य श्री कौंसने यह प्रस्ताव किया है:

> एक उपनियमका मसविदा तैयार किया जाये जिसमें यह बताया जाये कि सिवा उन जगहोंके, जो उनके लिए खास तौरसे अलग कर दी गई हैं, एशियाई अथवा रंगदार लोगोंको अन्यत्र व्यापार करनेके लिए कोई परवाने न दिये जायेंगे।

श्री विर्सेंगने प्रस्तावका अनुमोदन किया और, *पीटर्सबर्ग रिव्यू* आगे लिखता है, यह तय हुआ कि यदि लेफ्टिनेंट गवर्नर उपनियमकी तसदीक कर दें तो उसके भंगकी सजा २ पौंड जुर्माना या छः महीनेकी कैद होनी चाहिए। किसी फेरीवालेसे पृथक बस्तीमें ही फेरीको सीमित कैसे रखवाया जा सकता है यह समझना कठिन है। श्री क्रूगरकी सरकारने यद्यपि अनेक निर्दयतापूर्ण कार्य किये थे तथापि वह कभी इतनी दूरतक नहीं गई, जितनी पीटर्सबर्गकी नगर परिषद जाना चाहती है। पीटर्सबर्गकी नगर-परिषदमें अनेक वकील हैं और यह आश्चर्यकी बात है कि उनमें से किसीको कभी नहीं सूझा कि नगर-परिषद ऐसी अन्यायपूर्ण सत्ता धारण करनेकी चेष्टा करके जो कानून द्वारा उसे प्राप्त नहीं है अपने आपको हास्यास्पद बना रही है। इस प्रस्तावपर विचार किया जाये तो इसका तर्क सम्मत अर्थ यह होगा कि किसी विशेष अभ्यारोपके लम्बी-चौड़ी आवश्यकताके बिना ब्रिटिश भारतीय बन्धनमें आ जायेंगे क्योंकि कोई भारतीय अपनी बस्तीकी सीमाके भीतर ही अपने मालकी फेरी लगा सकता है तो यह कहना जरा भी अनुचित न होगा कि वह अपने *बाजारके* भीतर ही घूम-फिर सकेगा और *बाजारकी* सीमाके बाहर कभी नहीं जायगा। हमें शक नहीं है कि पीटर्सबर्गकी नगर-परिषदके सयालसे नगर-परिषदकी सत्ताका इस तरह अर्थ लगाना आश्चर्य होगा। किन्तु हमें आशा है कि सर आर्थर लाली इस परिषदको उपहास और असम्भव स्थितिसे बचायेंगे और उससे साफ-साफ कह देंगे कि प्रस्तावित उपनियमको मंजूरी नहीं दी जा सकेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-२-१९०४

[1] देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २९४ और ३११-१२।

१०५ पत्र डॉ० पोर्टरको

२१ से २४ कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी २, १९०४

डॉक्टर सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

मैं आपके आजकी तारीखके पत्रके लिए आभारी हूँ।

मेरे जिस पत्रके कुछ हिस्सोंपर आपने आपत्ति की है उसे लिखनेका मेरे लिए एक ही कारण था कि सफाईके उद्देश्य-साधनमें मदद मिले और मेरे अपने देशवासियोंकी सेवा हो सके। मैंने जो-कुछ कहा है उसमें से कुछ भी मैं वापस नहीं लेता क्योंकि अगर जरूरत हो तो मेरे प्रत्येक कथनकी पुष्टि की जा सकती है।

किन्तु मैं आपका यह कथन दुरुस्त किये बिना नहीं रह सकता कि भारतीय लोग काफिरोंको किरायेदार रख रहे हैं। उन्हें उप-किरायेदार रखनेका तो अधिकार ही नहीं है।

मैं यही आशा रख सकता हूँ कि मौजूदा हालत जल्दी ही खतम हो जायेगी।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ९-४-१९०४

१०६ नगरपालिका सम्मेलन और भारतीय व्यापारी

पिछले सप्ताह जोहानिसबर्गमें ट्रान्सवालके नगरपालिका-सम्मेलनकी जो बैठक हुई उसमें जोहानिसबर्ग-परिषदके प्रतिनिधि श्री जॉर्ज फॉकनरने नीचे लिखा प्रस्ताव पेश किया:

> इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि विधान-परिषदके सामने एक नया एशियाई कानून लाया जानेवाला है और यह कि यह प्रश्न स्थानीय शासन संस्थाओंके लिए इतने बड़े महत्वका है, ट्रान्सवालकी नगरपालिकाओंका यह सम्मेलन अपनी राय जाहिर करता है कि यहाँके निवासियोंके लिए सबसे सन्तोषजनक नीति यह होगी कि तमाम एशियाइयोंको *बाजारोंमें* रख दिया जाये और जो पिछली सरकार द्वारा पहले दिये हुए परवानोंके अनुसार बाहर व्यापार करता हो उसे वाजिब मुआवजा दिया जाय; और यह भी कि तमाम स्थानीय अधिकारियोंको ऐसे उपनियम बनानेकी अनुमति दी जाये जो रंगदार लोगोंसे सम्बन्धित मामलोंको नियन्त्रित करने और *बाजारों* तथा निवास-स्थानों आदिके लिए स्थान मुकर्रर करनेके वास्ते जरूरी हों।

यह प्रस्ताव पास हो गया। केवल श्री गॉडफ्रेने इसके विरुद्ध मत दिया।

प्रस्तावमें नम्रतापूर्वक माँग की गई है कि व्यापार और निवासके लिए तमाम एशियाई लोग *बाजारोंमें* रख दिये जायें जो लड़ाईसे पहले परवानोंकी रूसे व्यापार करते थे उन्हें मुआवजा दिया जाये और नगरपालिकाओंको इन मामलोंको विनियमित करनेका अधिकार दिया जाये। ठेठ शब्दोंमें प्रस्तावका अर्थ यह है कि ब्रिटिश भारतीयोंको भूखों मारा जाये ताकि वे इस देशको छोड़ दें। श्री गॉडफ्रेके शब्दोंमें एशियाइयोंको *बाजारोंमें* रखनेका विचार उन्हें वहाँ बसानेका इतना नहीं है जितना कि उनसे बिलकुल पिण्ड छुड़ानेका है। ब्रिटिश भारतीयोंने पूर्ण रूपसे सिद्ध कर दिया है कि तथाकथित *बाजार* निवास या व्यापारके लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं। ब्रिटिश भारतीयोंको देशसे सर्वथा निकाल देना उन्हें तंग-तंग करके तिल-तिल मारनेकी अपेक्षा दयाका काम होगा। श्री कॉन्स्टेबल नगरपालिकाओंके लिए जो सत्ता चाहते हैं उसका आदर्श ऑरेंज उपनिवेशका ब्लेकफोंटेन है। उपनगरके नगरपालिका-उपनियमोंकी हम कुछ समय पहले चर्चा कर चुके हैं और, हमारे खयालसे हम सिद्ध कर चुके हैं कि किस तरह उन नियमोंके अधीन रंगदार लोग निरे माल-असबाब जैसे बन जाते हैं।

हमें भय है कि श्री कॉन्स्टेबलकी न्याय-भावनाको प्रेरित करना बेकार होगा। वे आत्मरक्षाके थोथे धर्मके पुजारी हैं। और जैसा कि हममें भी कितने ही लोग विद्वेष और हठधर्मिता वश होकर करते हैं उन्हें अपनी अन्तःकरणको समझा लेने और इस तरह सन्तोष दिला देनेमें कोई कठिनाई नहीं होती कि यह महान कानून चाहता है ब्रिटिश भारतीयोंको बरबाद कर दिया जाये। इसी कानूनके उन अंग्रेजोंने जो शायद अधिक समबुद्धिवाले थे और, इसलिए, निर्णय करनेके अधिक योग्य थे दूसरे अर्थ किये हैं। उनका खयाल था कि इस कानूनमें एक दूसरे और उच्चतर कानूनकी मर्यादा कमी हुई है। अर्थात् हमें अपनी रक्षा इस तरह करनी चाहिए जिससे दूसरे लोगोंके अधिकारोंका अतिक्रमण न हो। श्री कॉन्स्टेबलके देशवासियोंने भी उक्त मर्यादासे निकलनेवाला यह सीधा-सादा नतीजा निकाला है कि जब हमारा ऐसे लोगोंसे पाला पड़े तो जो हमारी तरह आचरण नहीं करते हैं और हमें सन्तोष हो जाये कि हम ठीक रास्तेपर हैं तब हमें ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे वे ऊँचे उठकर हमारी सतहपर आ जायें न कि वे कुचल दिये जायें। क्या हम उनसे और उनके मित्रोंसे कह सकते हैं कि वे इस पहलूपर विचार करें?

परन्तु भारतीय व्यापारियोंके प्रति विरोधकी इस बढ़ती हुई तीव्रताका रहस्य क्या है? यह नहीं है कि भारतीय हितोंके प्रभुत्वकी संख्या बढ़ रही है बल्कि यह है कि जिन सज्जनोंने पहले विरोध भड़काया था वे एशियाइयोंके दमनके सम्बन्धमें अपनी माँगें अधिकाधिक जोरदार करते जा रहे हैं।

क्या भारतीयोंने इसके लिए कोई कारण दिया है? उत्तर बेशक नकारात्मक है। फिर क्या चीज है जिसने द्वेषाग्निको प्रज्वलित किया है? सभामें बोलनेवालोंने इसका उत्तर दे दिया है। उन्होंने सरकारकी मदद करनेके प्रस्तावका समर्थन किया है। सरकारकी मदद क्यों? क्या वह एशियाई विरोधी है? इसलिए क्या उसे इस नीतिमें आम लोगोंकी हिमायतकी जरूरत है? हम इतनी दूर नहीं जायेंगे कि यह कहें कि सरकार जान-बूझकर एशियाइयोंके विरुद्ध है। परन्तु श्वेत-संघोंके महानुभावोंको अनुभवसे पता लग गया है कि अगर वे जोरसे और लगातार एशियाइयोंके विरुद्ध चिल्लायेंगे तो वस्तुतः जो-कुछ वे चाहते हैं वह उन्हें मिल जायेगा। इसलिए कुदरती तौरपर अपनी माँगोंके बारेमें उनका हौसला बढ़ गया है। उन्होंने १८८५ के कानूनपर अमलकी माँग की और उत्तरमें *बाजार*-सूचना आ गई। उन्होंने एशियाइयोंको पृथक बस्तियोंमें भिजवाना चाहा और कई स्थानोंपर *बाजार* कायम हो गये हैं। हम और भी उदाहरण दे

सकते हैं जिनमें सत्ताधारी गोरोंके विरोधके सामने झुके हैं। सरकारके इस झुक जानेका अर्थ लोगोंने आन्दोलन जारी रखनेका निमन्त्रण समझा तो ठीक ही समझा। उत्तरमें श्री कॉन्स्टेबलका प्रस्ताव मौजूद है। लॉर्ड मिलनरने एशियाइयोंके अधिकारोंके साथ खिलवाड़ किया तो हमारे कौंसलरोंके लिए गंगाजलमें बैठे बच्चेकी तरह मचल रहे हैं कि "हम तो लेकर ही छोड़ेंगे।" लॉर्ड मिलनरने एशियाई-विरोधी कानूनोंको इस तरह बदल देनेका वचन दिया है कि वे ब्रिटिश संविधानके अनुरूप हो जायें। नगरपालिका-सम्मेलनने बता दिया है कि वह किस प्रकारका परिवर्तन चाहता है। वह तो भी कुनरका भी मात कर देना चाहता है। कस्तक जो ब्वेसर गोरे (एटर्नीज) कहे जाते वे उन्हें शिकायत थी कि पुरानी सरकारके दिनोंमें शासनके मामलोंमें उनकी कोई बात नहीं चलती थी। अब उनकी सुनवाई होने लगी है, तो वे उसे उसी तरीकेपर इस्तेमाल करना चाहते हैं जिसके विरुद्ध वे गला फाड़-फाड़कर चिल्लाते थे। जिन ब्रिटिश भारतीयोंका उन्होंने पुरानी हुकूमतसे लड़नेमें सहर्ष सहयोग किया उन्हींको वे अब सम्मिलित झंडेके नीचे विदेशी (एटलोण्डर) बना देना चाहते हैं। और यह है सराफत और वफादारीके बारेमें उनका खयाल!

इस सम्मेलनकी सारी तुच्छतापूर्ण कार्यवाहीके बीच भी श्री लॉवका भाषण मरुभूमिमें हरियाली जैसा था। वे साफ-साफ और दृढ़तासे बोले। उन्होंने प्रस्तावका विरोध किया और अपने विरोधके पक्षमें ऐसी दलीलें दीं जिनसे किसी भी आदमीको जो पक्षपातसे रंगा हुआ न हो सन्तोष हो जायेगा। भारतीय समाज श्री लॉवका उनकी स्पष्टोक्ति और न्यायकी हिमायतके लिए आभारी है। और जबतक उनके जैसे आदमी हैं, हमारा विश्वास बना रहेगा कि जो पक्ष वास्तवमें न्यायपूर्ण है अन्तमें उसकी ही जीत होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २५–२–१९०४

१०७ ट्रान्सवालके लिए भारतसे मजदूर

सर जॉर्ज फेरारने पिछले सप्ताह खान-संघकी वार्षिक बैठकमें खानोंके वर्षभरके कामकी जो उत्तम समीक्षा प्रस्तुत की उसमें स्वभावतः ही उन्होंने मजदूरोंके सवालकी विस्तृत चर्चा की है। उन्होंने जो बातें कहीं उनसे मालूम होता है कि खानोंके लिए भारतसे गिरमिटिया मजदूर जुटानेकी अब भी कोशिश हो रही है। उन्होंने कहा

> सम्भव है कि हम अपने कार्यका विस्तार भारततक कर सकें परन्तु अभीतक भारत-सरकारका रुख विरोधका है। वह हमारे यहाँ मजदूर भेजनेको तो तैयार है, परन्तु उन्हें लौटा देनेकी हमारी शर्तोंपर आपत्ति करती है। फिर भी जब यह समझमें आ जायेगा कि इन खानोंमें करार पूरा हो जानेके बाद मजदूरोंके लौट जानेसे उनके अपने देशकी खुशहाली कितनी बढ़ जाती है तब भारत-सरकारको आज जो आपत्तियाँ हैं वे शायद भारतीय साम्राज्यके ही हितकी खातिर न उठाई जाय।

यह अजीब बात है कि लोग अपने पहलेसे बने विचारोंके समर्थनमें कैसी दलीलें ढूंढ़ लेते हैं। भारत-सरकार एकमात्र भारतीय साम्राज्यके हितोंकी खातिर आपत्तियाँ न उठायेगी यह कोई नया विचार नहीं है। लॉर्ड हैरिस जितना अधिक जानकारी रखनेकी आशा की जा सकती है पहले ही यह और इससे ज्यादा कह चुके हैं। इसलिए सर जॉर्ज फेरारके भी वैसे ही विचारसे हमें आश्चर्य नहीं होता। लेकिन अगर वे भारी महत्वाकांक्षा देखें तो उन्हें तुरन्त पता चलेगा कि

१०९. विक्रेता-परवाना अधिनियम

डर्बनकी नगर-परिषदने फिर एक बार साबित कर दिया है कि व्यापारियोंके लिए विक्रेता-परवाना अधिनियम अत्याचारका कैसा भयंकर बेलन है। कार्रवाईसे मालूम होता है कि कोई श्री जे० एस० बुल्कमन पिछले तीन वर्षोंसे व्यापार कर रहे हैं। परन्तु इस साल परवाना-अधिकारीके जी में आया और उसने उनका परवाना नया करनेसे इनकार कर दिया। इसके कोई कारण नहीं बताये गये और, इसलिए, पीड़ित व्यापारी श्री एस्क्यूकी सेवाएँ प्राप्त करके अपीलके प्रक्रियामें से गुजरा है जिसकी कानूनमें गुंजाइश है। किन्तु श्री एस्क्यू अन्धकारमें भटक रहे थे क्योंकि उन्हें यह मालूम नहीं था कि किस बिनापर उनके मुवक्किलकी रोटी छीनी गई थी। उन्होंने सिर्फ अनुमान लगाया था कि उनके मुवक्किलका बहीखाता ठीक तरहसे नहीं रखा गया था और अब वे निश्चित रूपसे जानना चाहते थे कि इनकारीका कारण यही था या नहीं। इसलिए महापौरने परवाना-अधिकारीकी रिपोर्ट माँगी मगर श्री एस्क्यूको उसे देखनेकी इजाजत नहीं थी क्योंकि वह गुप्त थी। श्री एस्क्यूने विरोध किया परन्तु व्यर्थ। अन्तमें श्री बर्नके रूपमें उन्हें एक ऐसे परिषद-सदस्य मिल गये जो चुपचाप बैठने और किसी मनुष्यको सुनवाईका मौका दिये बिना सजा देनेके निर्दय अन्यायमें शरीक होनेको तैयार नहीं थे। जब महापौरने विरोधमें यह कहा कि उक्त दस्तावेज प्रकट नहीं किया जा सकता तब श्री बर्नने धमकी दी कि यदि महापौर अपने एतराज पर अड़े रहेंगे तो वे भविष्यमें अपीलें सुननेका काम नहीं करेंगे। यह धमकी ऐसी थी जिसकी महापौर महोदय उपेक्षा नहीं कर सकते थे और इसलिए उन्होंने यह कह कर बीचका मार्ग निकाल लिया कि मामलेपर समितिमें विचार किया जायेगा। इसलिए श्री एस्क्यूने ठीक ही हस्तक्षेप किया और कहा कि यह तो मध्य युगमें लौट जानेकी बात हुई। हमें तो मालूम नहीं कि मध्य युगमें भी सुनिश्चित कानूनी तरीके होते हुए, इस तरहकी शोकजनक हालत होने दी जाती थी। अवश्य ही यदि किसी मनुष्यको अपील करनेका अधिकार है तो उसे उन कागजातोंको देखनेका भी हक होना चाहिए जो मिसलमें मौजूद हों। श्री एस्क्यूने सोमनाथके जिस मुकदमेका[1] हवाला दिया उसका फैसला करते हुए न्यायाधीश मेसनने नगर-परिषदकी कुछ साल पहलेकी मनमानी कार्रवाईपर कुछ चुभते हुए उद्गार प्रकट किये थे। परिषदने अपीलकर्ताको मिसल देखनेकी इजाजत देनेसे इनकार कर दिया था और मामलेपर समितिमें अर्थात् अपीलकर्ताकी पीठके पीछे विचार किया था। किन्तु इस अवसर पर परिषदने समितिका आश्रय जरूर लिया और कुछ समयकी प्रसवपीड़ाके बाद इस प्रस्तावको जन्म दिया कि श्री एस्क्यू कागजात देख सकते हैं। उनमें टिप्पणी संक्षिप्त थी — बही-खाता असन्तोषजनक परवाना नहीं दिया गया। फिर श्री एस्क्यूने यह साबित करनेको शहादत पेश की कि बहीखाता योग्य हिसाबनवीसने रखा था और, इसलिए, नगर-परिषदको अपना अधिकार काममें लाकर परवाना-अधिकारीको परवाना जारी करनेका आदेश देना चाहिए। परन्तु नगर-परिषद इतनी आसानीसे न्याय करनेको राजी नहीं की जा सकती थी। इसलिए उसने अपीलको खारिज कर दिया परन्तु श्री एस्क्यूको सुझाया कि वे परवाना-अधिकारीको फिरसे अर्जी दें।

दक्षिण आफ्रिकाके प्रमुख और आदर्श शहरकी नगर-परिषद इस प्रकार अपनेको जलील करे और जो मामले अपीली अदालतके रूपमें उसके सामने आयें उनपर निष्पक्ष विचार करनेकी

१ देखिए खण्ड ३, पृ० २।

अपनी अयोग्यताका इकबाल करे, यह खेदजनक कलंककी बात है परन्तु इसमें आश्चर्य ज़रा भी नहीं है। कसूर विधान-मण्डलका है। उसने नगर-परिषदोंको अत्यन्त निरंकुश सत्ता दी है, और जब उसके दुरुपयोगपर कोई नियन्त्रण नहीं रहा तब डर्बन जैसे सुव्यवस्थित स्थानकी नगर परिषदसे भी उसके उपयोगका लोभ संवरण नहीं हो सका। जो सदस्य अपीलें सुनने बैठते हैं उन्हें कानूनकी तालीम नहीं है। उनमें से कुछ प्रतिस्पर्धी व्यापारी हैं और जब उनके अपने स्वार्थ निहित हों तब उनसे निष्पक्ष निर्णय देनेकी आशा रखना उचित नहीं है। इसलिए जबतक विक्रेता-परवाना अधिनियम उपनिवेशकी कानूनकी पुस्तकको कलंकित करता रहेगा तबतक उपनिवेशके लोगोंको उन्हीं अशोभनीय कार्रवाइयोंके दुहराये जानेके लिए तैयार रहना होगा जिनकी तरफ जनताका ध्यान दिलानेका कटु कर्तव्य हमें अदा करना पड़ा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-२-१९०४

११० जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्ती

अन्यत्र हम वह प्रतिवेदन छाप रहे हैं जो अस्वच्छ क्षेत्र-अधिग्रहण अध्यादेश (इन-सैनिटरी एरिया एक्सप्रोप्रिएशन ऑर्डिनेन्स)के मातहत बेदखल भारतीयोंको बसानेके नये स्थानके सम्बन्धमें लोक-स्वास्थ्य समितिने दिया है। प्रतिवेदनसे प्रकट होता है कि जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदकी लोक-स्वास्थ्य समितिने अपना विचार बदल दिया है। यह कुतूहलजनक बात है कि कैसे सरकार और सार्वजनिक संस्थाएँ अब भी समय-समयपर एशियाई-विरोधी नीति बदलती जाती हैं। पूर्व-निर्धारित सिद्धान्तोंसे हटनेके लिए बाहरका जरा-सा दबाव भी, भले वह कितना ही स्वार्थपूर्ण क्यों न हो काफी प्रलोभन बन जाता है। बहुत दिन नहीं हुए, हमने अपने पाठकोंको सूचित किया था कि नगर-परिषदकी लोक-स्वास्थ्य समितिने एशियाई *बाजार*के लिए वर्तमान काफिर-बस्तीके स्थानकी सिफारिश की है। भारतीयोंने इसका विरोध किया। विरोधके अनेक आधारोंमें से एक यह था कि वह *बाजार* वर्तमान बस्तीसे बहुत दूर होगा। परन्तु समितिको एक और अर्जी दी गई। उस अर्जीमें परिषदके सुझावको नापसन्द किया गया था क्योंकि अर्जदारोंकी रायमें वह स्थान उपर्युक्त बस्तियोंके बहुत नजदीक था। अर्जी पर ११ व्यक्तियोंके हस्ताक्षर थे जिनमें से बहुतसे विवस्टन मेफेयर और फोर्ड्सबर्गके निवासी बताये जाते हैं। भारतीयोंका विरोध बेशक बेकार था परन्तु लोक-स्वास्थ्य समिति इन ११ अर्जदारोंके विरोधकी अवहेलना नहीं कर सकती थी। इसलिए वह कुछ महीने पहले प्रकट किये अपने ही मतसे मुकर गई है और यह सुझाव लेकर सामने आई है कि जिस स्थानको पिछली सरकारने कभी भारतीय और चीनी बस्तीके लिए तजवीज की थी उसे एशियाई *बाजार* के लिए ले लिया जावे और समिति दलील देती है कि

> जिस भूमिका इस *बाजार*के स्थानके लिए उपयोग करनेकी अब तजवीज की गई है, वह वही है जो इस कामके लिए कई वर्षोंसे सुरक्षित कर रखी गई है। इसलिए इस कामके लिए इस स्थानके उपयोगके विरुद्ध आपत्तियाँ उतनी प्रबल नहीं हैं जितनी शहरसे उतने ही फासलेके अन्तरके किसी अन्य स्थानके खिलाफ उठाई जा सकती हैं।

प्रस्तावित स्थानको ब्रिक्स्टनसे पूरी तरह अलग रखनेके लिए यह प्रस्ताव है कि

> स्थानका नक्शा इस तरहका बनाया जाय कि एशियाई बाजार और ब्रिक्स्टनके बीचकी पश्चिमी सीमापर लगभग दो सौ फुट चौड़ी जगह साफ तौरपर छूटी रहे।
>
> और पश्चिमी तथा उत्तरी सीमाओंपर बस्तीके निवासियोंको सीधे ब्रिक्स्टन पहुँचनेसे रोकनेके लिए एक अलंघ्य बाड़ खड़ी कर दी जाये।

लोक-स्वास्थ्य समिति यह और कह सकती थी कि यह स्थान जिसकी अब वह सिफारिश कर रही है वही है जिसके बारेमें युद्धसे पहले ब्रिटिश सरकारने बहुत जोरदार विरोध प्रकट किया था जिसके खिलाफ तत्कालीन उप राजप्रतिनिधि श्री एमॅरिस इवान्सने तीव्र निन्दायुक्त प्रतिवेदन लिखा था और जिसे अन्तमें पिछली सरकारने भी अस्वीकार कर दिया था। क्या अब उस स्थानमें इतना अद्भुत सुधार हो गया है? अथवा चौक बाजार और इस स्थानके बीचका फासला इन तीन वर्षोंमें इतना घट गया है कि ब्रिटिश राज्यमें अब यह उपयुक्त बन गया? १८९९ में डाकघरसे यह फासला ४½ मील था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१-१९०४

१११. मलायी बस्ती

जोहानिसबर्गकी मलायी बस्तीके बारेमें जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदकी सामान्य उद्देश्य-समितिकी सिफारिश निम्नलिखित है:

> इस सिफारिशमें जिस जमीनका उल्लेख है उसका कुल क्षेत्रफल १८,८८५ एकड़ होता है। आयोगकी सिफारिश है कि यह जमीन केवल दक्षिणके तिकोने भागकी ४१ एकड़ भूमिको छोड़कर, जिसका अधिकांश इस समय मलायी बस्तीके कब्जेमें है परिषदके अधिकारमें होनी चाहिए। इस भू भागके विषयमें आयोग सिफारिश करता है कि यह सरकारकी सम्पत्ति रहे और रेलवेकी भावी आवश्यकताओंके लिए सुरक्षित रखा जाये। खास हुआ है आयोगका सुझाव यह है कि जबतक रेलवेको जरूरत न हो तबतक यह जमीन परिषदके नियन्त्रणमें रहे और वही इसका इस्तेमाल करे। लोक-स्वास्थ्य समितिने आयोगकी सिफारिश मान ली है; परन्तु उसने अपनी ओरसे यह सिफारिश की है कि, उसमें एक शर्त डालकर साफ कर दिया जाये कि जिन मलायी लोगोंके अधिकारमें इस समय यह जमीन है उन्हें परिषद जब भी हटाना जरूरी या वांछनीय समझे तब उन्हें हटाने और मुआवजा देनेका खर्च रेलवे-प्रशासन या सरकारको उठाना चाहिए। और यह भी कि जबतक मलायी लोगोंका कब्जा रहे तबतक मलायी बस्तीके सम्बन्धमें सफाईकी या दूसरी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए परिषदको कोई इमारतें खड़ी करनेकी जरूरत मालूम हो तो उन इमारतोंका मुआवजा परिषदको दिया जाये।

इसलिए इस स्थानके निवासियोंको अपने हितोंकी रक्षा करनेके सम्बन्धमें बहुत सावधान रहना पड़ेगा। सफाईकी दृष्टिसे इस स्थानके विरुद्ध किसीने कभी कानाफूसी भी नहीं की है। यहाँके निवासी बहुत साफ-सुथरे ढंगसे रहते हैं। उन्होंने काफी अच्छे मकान बनाये हैं। उनमें

से मुझने ईंटोंकी इमारतें भी बना ली हैं और यदि उन्हें उनके स्थानोंसे हटाया गया तो यह क्रूरता होगी। अब समय आ गया है कि सरकार ट्रान्सवालके रंगदार लोगोंको निवासकालकी निश्चितता और उनके दर्जेके बारेमें आश्वासन प्रदान करे। जब यह बस्ती बसाई गई, तब वहाँ जंगल-मात्र था। अब अगर वह फूलती-फलती जगह बन गई है तो उसका कारण वहाँ रहनेवाले लोगोंकी मेहनत है। सरकारका कर्तव्य है कि उनके परिश्रम और लगनकी कद्र करे। हम देखते हैं कि इस बस्तीके बाड़ोंका किराया ७ शिलिंग ६ पेंससे बढ़ाकर १ पौंड माहवार कर दिया गया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-३-१९०४

११२ प्रवासी-प्रतिबन्धक प्रतिवेदन

अन्यत्र हम उस दिलचस्प विस्तृत और योग्यतापूर्ण प्रतिवेदनके मुख्य मुद्दे दे रहे हैं जो श्री स्मिथने तैयार किया है और माननीय उपनिवेश-सचिवको दिया गया है।

विभिन्न मुद्दोंकी जाँच करनेसे पहले हम श्री स्मिथका ध्यान एक ऐसी बातकी ओर खींचना चाहते हैं जो हमें प्रतिवेदनका एक-मात्र दोष मालूम होती है अन्यथा यह प्रतिवेदन उपनिवेशमें प्रवासपर प्रतिबन्ध लगानेके सर्वमरक कामका एक ऐसा सार है जिसपर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। श्री स्मिथकी लेखन-शैली जोरदार है परन्तु हमें आदरपूर्वक कहना होगा कि किसी सरकारी रिपोर्टमें नाटकका या अखबारका ढंग अपनाना शोभा नहीं देता। जाँचके समय होनेवाली देरके सम्बन्धमें मुसाफिरोंकी शिकायतोंका जिक्र करते हुए वे कहते हैं

> ताप मौसममें लंगर डालनेके स्थानपर सामानकी पिटारी जिसे बंदेमर गौबा-ठेबेदर बड़े रहनेवाले व्यक्तिके लिए वस्तुस्थितिका महत्त्व नहीं होता। सम्बन्धित अधिकारी काम निपटाकर दूर किनारेपर आ जानेको उत्सुक होगा यह बात उसे मालूम नहीं होती। वह किसीसे (कदाचित् किसी लौटे हुए उपनिवेशीसे) विभागकी निन्दा सुनता है और आसानीसे उसके स्वरमें-स्वर मिला देता है। फिर, कड़वी भावनाओंसे भरा हुआ वह विभागकी त्रुटियोंपर आलोचना लिखने और अखबारोंमें भेजनेके लिए, और भावी यात्रियोंकी दशा सुधारनेके हेतु अव्यावहारिक सुझाव तैयार करनेमें अपनी परोपकार-वृत्तिका उपयोग करनेके लिए अपने होटलकी ओर दौड़ पड़ता है।
>
> और लीजिए
>
> मैं पहले ही बता चुका हूँ कि ऐसे यात्रियोंसे किसी राहतकी आशा रखना बेकार है जो सारे दाँव-पेंच जानते हैं।

प्रतिवेदनके बीच-बीचमें ऐसे सजीव अंश आते हैं जिनके पढ़नेमें बेशक मजा आता है, मगर हमारी रायमें सरकारी प्रतिवेदनको जैसा होना चाहिए वैसे तथ्यपूर्ण कागजातमें ऐसी सामग्रीकी गुंजाइश नहीं है। इसके अतिरिक्त जो शैली उन्होंने अपनाई है उससे भी स्मिथकी चिढ़ चिढ़ाहट जाहिर होती है। वैसे व आसानीसे विचलित नहीं होते और जिन लोगोंसे उनके दफ्तरका

१ प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारी सी० हैरी स्मिथ।

मालूम होता है उन सबके साथ बड़ा शिष्ट व्यवहार करते हैं। हमारे खयालसे जनताको शिकायतें करनेका पूरा हक है। कभी-कभी शिकायतें माकूल नहीं होतीं अक्सर जोरदार भाषामें प्रकट की जाती हैं और जब-तब बढ़ा-चढ़ा कर भी की जाती हैं। दुर्भाग्यसे यह ऐसी हालत है जिसे ठीक नहीं किया जा सकता और इस उसूलपर कि जिसका इलाज नहीं हो सकता उसे बर्दाश्त करना चाहिये उन अफसरोंसे जिन्हें अप्रिय कर्तव्य पालन करने पड़ते हैं, यह अपेक्षा की जाती है कि वे जनताकी ऐसी बात सहन कर लें और उसकी खिल्ली न उड़ायें। हमारे कहनेका यह मतलब हरगिज नहीं है कि श्री स्मिथको शिकायतका जवाब देनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए थी। हमारा ऐतराज उसके तरीकेपर है।

स्वयं प्रतिवेदनको लें तो श्री स्मिथ अपने मुल्कके बारेमें इस बातपर क्षम्य गर्व करते हैं कि १८९७ का मूल प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियम "रद कर दिया गया है और उसके स्थान पर नया और अधिक व्यापक कानून उस जगहपर बन गया है जिसके सुझानेका सम्मान मुझे (उन्हें) प्राप्त है।" हमारे लिए यह समझना आसान नहीं है कि इस बातपर गर्व करनेका कारण क्यों होना चाहिए। जो लोग रोजी कमानेके लिए उपनिवेशमें आते हैं और जिनका एकमात्र दोष शायद उनकी गरीबी या चमड़ी है, उन्हें न आने देना कभी कोई आनन्ददायक कर्तव्य नहीं हो सकता और श्री स्मिथ जैसे उदार प्रकृतिके मनुष्यके लिए तो वह खास तौरपर दुःखद होगा। उनके प्रतिवेदनसे हमें ज्ञात होता है कि वे ६,७६१ भावी प्रवासियोंको सफलतापूर्वक रोक सके। इनमें से १,२४४ ब्रिटिश भारतीय थे जिनमें २४ स्त्रियाँ और १७ बच्चे शामिल हैं। दरअसल चूंकि प्रवास अधिनियम उपनिवेशका कानून है और श्री स्मिथ वे अधिकारी हैं जिन्हें उसपर अमल करानेका काम सौंपा गया है। इसलिए वे उन लोगोंका जो इस कानूनकी कसौटी पर पूरे न उतरें वापस लौटानेके सिवा कुछ कर नहीं सकते। परन्तु इससे यह प्रकट होता है कि स्वयं कानून कितना कड़ा है और उसका ब्रिटिश भारतीयोंपर कितना भयंकर असर हो रहा है क्योंकि यह याद रखना चाहिए कि इन लोगोंने लम्बी समुद्र यात्रा की थी और नेटालका टिकट लेनेमें शायद यह सोचकर, कि वे किसी ब्रिटिश उपनिवेशमें उतरनेसे रोके नहीं जायेंगे अपने पास जो-कुछ था सो सब लगा दिया था। यद्यपि यह कानून है फिर भी लाखों भारतवासियोंने इस कानूनका हाल शायद ही सुना होगा इसलिए वह कि आज इस सिद्धान्तको हजम नहीं कर सकते कि साम्राज्यके विभिन्न भागोंमें एक ही झंडेके नीचे साम्राज्यके नागरिकोंके अधिकारोंमें इस तरहका भेद हो सकता है।

जाँचके बाद प्रवेश पानेवाले प्रवासियोंमें १,८६९ भारतीय जिनमें १९५ स्त्रियाँ और ४० बच्चे थे २१ चीनी १ मिस्री १८ यूनानी ८ सिहली १ सीरियाई और ८ तुर्क थे। प्रवेश पानेवाले भारतीयोंमें १५८ने शैक्षणिक परीक्षा पास की। यह कुल प्रवेश पानेवालोंकि दशमांशसे कम है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि नया कानून अभी तो अमलमें आया ही है इसलिए हमें आगे अपेक्षा है कि श्री स्मिथके आगामी प्रतिवेदनमें शिक्षा-सम्बन्धी जाँचमें पास होनेवालोंकी संख्या बहुत घटी हुई दिखाई देगी।

श्री स्मिथने यह दिलचस्प जानकारी दी है

"इन बारह महीनोंमें कोई २६९ प्रमाणपत्र (अधिवासके) जब्त किये गये और जो लोग उन्हें साथ ले उन्हें राह बता दी गई।"

यह देखते हुए कि इस वक्त एसे हजारों प्रमाणपत्र चल रहे हैं जिन प्रमाणपत्रोंका दुरुपयोग हो गया है उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। फिर भी इससे जाहिर होता है कि विधान-मण्डलने भारी बुद्धिमानीका प्रयोग जनताके रास्तेमें कानूनसे बचनेके लिए प्रलोभन रखनेमें

किया है। संसार भरमें सभी प्रतिबन्धक कानूनोंका यही इतिहास है, जब प्रतिबन्ध व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और गतिविधियोंपर हो तब तो यह खास तौरपर सही उतरता है।

प्रतिवेदन और भी पूर्ण होता यदि श्री स्मिथ अपने संक्षिप्त विवरणमें उन कारणोंको शामिल कर देते जिनके आधारपर इच्छुक प्रवासियोंको उपनिवेशमें घुसनेसे रोका गया है। प्रतिवेदनमें एक चीज और भी छोड़ दी गई मालूम होती है। वह है कि जो ब्रिटिश भारतीय इस विभागकी परीक्षा पास करनेके बाद १८९७ के पश्चात् उपनिवेशमें प्रविष्ट हुए, उन्हें भी उपनिवेशसे निकाला जा रहा है भले ही वे बस गये हों। नये आनेवालोंके सम्बन्धमें कानूनके कठोर परिपालनके विरुद्ध हम बहुत अधिक न भी कहें फिर भी हम यह जरूर महसूस करते हैं कि जो लोग उपनिवेशमें बस चुके हैं उन्हें खदेड़ देनेका प्रयत्न करके विभाग बहुत ही ज्यादती करेगा। सभ्य मनुष्योंको अपराधियोंकी भाँति उपनिवेशसे बाहर निकाल देना — खास तौरसे तब जब कि यह ज्ञात हो जाये कि जिस विभागने उन्हें उपनिवेशमें प्रवेश करने दिया वही उन्हें खदेड़ रहा है — शायद ही न्याय्य है। हम इस प्रश्नकी तहमें नहीं जायेंगे कि १८९७ के बाद वे कैसे और क्यों यहाँ जमनेमें सफल हुए। यद्यपि उन्होंने कानूनी शर्तोंको पूर्णतः पूरा नहीं किया फिर भी यह स्वीकृत तो है ही कि वे इस देशमें चोरीसे नहीं आये बल्कि श्री स्मिथके मातहत काम करनेवाले अफसरों द्वारा अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करनेके बाद प्रविष्ट हुए। इसलिए हमें विश्वास है कि जहाँतक उपनिवेशके ब्रिटिश भारतीय निवासियोंका सम्बन्ध है श्री स्मिथ अपना हाथ रोक लेंगे भले वे १८९७ के पहले उपनिवेशमें रहे हों या नहीं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१-१९०४

११२. एशियाई व्यापारी-आयोग

ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके सामने लड़ाईसे पहले उत्पन्न हुए निहित स्वार्थोंके बारेमें अपने दावे पेश करनेका एक बड़ा कठिन कार्य है और इस बातको देखते हुए कि आयोग अपनी प्रारम्भिक बैठक १४ तारीखको करनेवाला है, उसकी विचारणीय विषयावलीका अध्ययन करना बेजा नहीं होगा।

विषयावलीका क्षेत्र काफी व्यापक है परन्तु इस मामलेमें विषयोंका इतना सामान्य होना कई पेचीदगियाँ और यह सवाल उत्पन्न करता है कि निहित स्वार्थ किसे माना जाये?

प्रथम तो आयुक्तोंको

कुछ खास एशियाइयोंके मामलोंका विचार करना है और जाँच करके प्रतिवेदन देना है कि ऐसे व्यापारियोंकी संख्या कितनी है और पृथक बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेकी इजाजतके मामलेमें जिन निहित स्वार्थोंका उन्होंने दावा किया है वे किस प्रकारके और कितने मूल्यके हैं।

इस प्रकार, आयुक्तोंको व्यापार करनेके सवालपर विचार करनेकी कोई सत्ता नहीं है। वे सिर्फ परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरको प्रतिवेदन दे सकते हैं। विषयावलीका अक्षरशः अर्थ लिया जाये तो ज्ञात होगा कि उन निहित स्वार्थोंकी कीमत आँकनेका या यह निश्चय करनेका भी अधिकार नहीं है कि वे किस प्रकारके हैं। यह तो इतनी ही सूचना

क्षात्मक मुकदमा दायर होनेसे पहले हुई थी और यदि परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर सरकारको मुकदमेका फैसला होनेतक अपना विचार-विमर्श स्थगित रखनेका अधिकार नहीं देते तो हम सहज ही समझ सकते हैं कि मामलेको स्थगित रखनेकी माँगका निर्णय करनेमें आयुक्तोंको विषम स्थितिका सामना करना पड़ेगा। फिर भी भारतीय व्यापारियोंसे यह आशा रखना सहज निर्दयता होगी कि जब उन्हें परीक्षात्मक मुकदमेको ध्यानमें रखते हुए दावे पेश करनेसे होने वाली असुविधा और खर्चसे बचनेकी पूरी उम्मीद है तब वे अपने दावे दाखिल करें। इसलिए यह विश्वास रखा जाना चाहिए कि आयुक्त यह गुत्थी सुलझा सकेंगे और परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरके बताये हुए फर्जके अनुरूप भारतीयोंके साथ न्याय करनेमें समर्थ होंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१-१९०४

११४ युक्तिसंगत

श्री कॉन्स्टेबलके प्रस्तावके सम्बन्धमें जोहानिसबर्गके नगरपालिका-सम्मेलनकी[1] कार्रवाईकी हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। उनका प्रस्ताव यह है कि तमाम एशियाई व्यापारियोंको हटाकर अलग बस्तियोंमें भेज दिया जाये परन्तु मुआवजा केवल उनको ही दिया जाये जिनके पास लड़ाईसे पहले *बाजारों* या बस्तियोंसे बाहर व्यापार करनेके परवाने थे। इसपर हमारे सहयोगी *साउथ आफ्रिकन गार्जियन*ने एक बहुत युक्तिसंगत लेख लिखा है, जिसका तर्क अकाट्य है। *गार्जियन* ठीक ही कहता है कि अगर चीनियोंका गुलामोंकी शक्लमें चीनसे यहाँ हमला होने वाला है तो मुट्ठी-भर ब्रिटिश भारतीयोंको परेशान करनेका कोई कारण नहीं हो सकता। यह दलील इस बातसे प्रबल हो जाती है कि स्वयं जोहानिसबर्गने ही जिसकी ओरसे श्री कॉन्स्टेबल बोले चीनी आक्रमणके पक्षमें निर्णय किया है। हम अपने सहयोगीका तर्क उसीके शब्दोंमें देते हैं:

> इस आन्दोलनमें किसी सिद्धान्तकी प्रेरणाका अभाव इस बातसे सिद्ध होता है कि इसे जोहानिसबर्गके व्यापारियोंने आगे बढ़ाया है और वे ही ट्रान्सवालमें चीनियोंके गुलामोंके, ऐसी पाबन्दियोंके साथ जो उन्हें व्यापार करनेसे अलग रखें ट्रान्सवालमें लानेका समर्थन करनेमें सबसे अधिक क्रियाशील रहे हैं। इन लोगोंको समाजके नैतिक कल्याणकी चिन्ता नहीं है। वे इतना ही चाहते हैं कि जो व्यापार इस समय भारतीयोंके पास जाता है वह इनकी कोठियोंमें आने लगे। जहाँ वे एक लाख या इससे अधिक ऐसे मंगोलोंको लानेकी हिमायत करते हैं जिनसे राष्ट्रीय जीवन भ्रष्ट और पतित होगा वहाँ यह आग्रह भी करते हैं कि थोड़े-से ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको उनके व्यापारका विरोध न करनेके लिए बाध्य किया जाये और उन्हें विरोध न करनेसे जो घाटा रहे उसका ट्रान्सवालके लोग मुआवजा चुकायें। ट्रान्सवालके लोग एशियाइयोंको यूरोपियोंसे अलग रखने और जहाँतक हो सके, जातीय संकरताको रोकनेके लिए तो बखूबी ऐसा कर सकते हैं; किन्तु यदि चीनियोंको लाखोंकी संख्यामें लाना है तो फिर ट्रान्सवालमें सभ्यताका ऊँचा स्तर कायम

१ देखिए पृष्ठ १४१।

सकते थे कि निरीक्षकोंकी संख्या बढ़ा दी गई है। परन्तु इतना करना काफी नहीं है। अगर [अधिग्रहणके पूर्व][1] बस्तीकी स्थिति ऐसी होती जैसी हमने बताई है, तो ब्रिटिश भारतीयोंकी आदतों और सफाईकी अवहेलनापर सब तरफसे शोर [मच गया होता[2]]। पहले टाउन मेयर ओ'मियाराने छेड़ी थी और जिसे अब अस्वच्छ क्षेत्र कहा जाता है जिसमें यह बस्ती शामिल है उसकी निन्दा की थी। डॉ॰ पोर्टरने उसी तानको पकड़ा और बस्तीका चित्र काले-से-काले रंगमें पेश किया। मेयर ओ'मियारा और डॉ॰ पोर्टर दोनोंका कहना था कि इस इलाकेके — और खास तौरपर बस्तीके — अस्तित्वसे नगरका स्वास्थ्य सदा संकटापन्न रहता है और उन्होंने सलाह दी कि सारी बस्तीका सफाया कर देनेमें एक क्षण भी खोया न जाये। फिर भी बस्ती वहीं बनी है — सिर्फ वह पहलेसे बहुत बदतर हो गई है और इससे इनकार न तो लायक डॉक्टर महोदय कर सकते हैं और न नगर-परिषद। तब संकटापन्न का अर्थ क्या हो सकता था इसका अनुमान प्रत्येक पाठक स्वयं लगा सकता है। इसके अलावा जोहानिसबर्गके अखबारोंमें छपे समाचारोंसे प्रकट होता है कि नये स्थानका बन्दोबस्त और सुधार पूर्ववत् ही दूरकी बातें हैं। लोक-स्वास्थ्य समितिके प्रस्तावपर ब्रिक्स्टन और जोहानिसबर्गके दूसरे भागोंके निवासियोंने रोष प्रकट किया है। नगर-परिषदसे एक शिष्टमण्डल मिला है और उसके सामने एक अर्जी भी पेश की गई है। इसलिए लोक-स्वास्थ्य समितिका ताजा प्रस्ताव हरगिज अन्तिम नहीं इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह बात नहीं कि इसका बड़ा महत्त्व है क्योंकि यदि हम यकीन न समझे हों तो ब्रिटिश भारतीय ऐसे स्थानपर जानेसे साफ इनकार कर देंगे जो व्यापारके लिए बिलकुल निकम्मा हो। उसपर १८९९ में जो आपत्तियाँ की गई थीं वे आज भी उतनी ही ठीक हैं। परन्तु शिष्टमण्डलसे ऐसी शिक्षा मिलती है जिसे समझ लेना अच्छा है। स्वास्थ्य-समितिकी सलाह है कि मौजूदा काफिर बस्तीका उपयोग भारतीयोंको बसानेके लिए किया जाये। ब्रिक्स्टनके महानुभावोंने इस प्रस्तावका विरोध किया था और उन्हें सफलता मिली थी। अब वे दूसरी सिफारिशपर फिर ऐतराज कर रहे हैं और हमें मालूम हुआ है कि नगर-परिषदने इस उद्देश्यसे कि प्रस्तावित स्थानका वैयक्तिक रूपसे निरीक्षण कराया जाये लोक-स्वास्थ्य समितिका प्रस्ताव स्वीकार करनेके बजाय उसपर विचार स्थगित कर दिया है। इसलिए यदि लोक-स्वास्थ्य समितिकी सिफारिश ताकपर रख दी जाये तो हमें जरा भी आश्चर्य नहीं होगा। इस स्थितिमें ब्रिक्स्टन और आसपासके इलाकेके निवासियोंको अपनी आपत्तिपर आग्रह भर रखना है बस वह मान ली जायेगी। इस बीच गरीब भारतीयोंको धीरजके साथ प्रतीक्षा ही करनी होगी। प्रार्थियोंने जो दलीलें दी हैं वे [ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति यूरोपीयोंके वर्तमान रुखके][4] बिलकुल अनुरूप हैं। हम सरसरी तौरपर [यह ध्यान रखें][5] कि श्री ब्राउन नामके एक पादरीने प्रार्थियोंके प्रवक्ताका काम किया था। इन लोगोंका कहना है कि हमारी स्त्रियों और हमारे बच्चोंके लिए इस जिलेमें रहना असम्भव और खतरनाक होगा। यह जानना मनोरंजक होगा कि ये सज्जन इतने साल जिलेमें कैसे रह सके क्योंकि याद रखना चाहिए कि काफिर बस्ती और भारतीय बस्ती यहाँ इस वक्त हैं नहीं उन्हें १ सालसे अधिक हो गये हैं और पड़ोसमें यूरोपीय बिना किसी खतरेके रह सके हैं और वहाँ रहना उन्हें असम्भव नहीं मालूम हुआ क्योंकि काफिरोंको पड़ोसमें रखनेका सवाल अब पहली दफा नहीं उठा है। प्रार्थी यह भी कहते हैं

१ देखिए खण्ड ३ पृष्ठ ९८ और आगे।
२–३, ४–५. कोष्ठकोंके शब्द हमारे हैं; मूलमें यहाँ शब्द छूट गये हैं।

यद्यपि इस प्रकार एशियाइयोंके लिए स्थान मिल जायेगा फिर भी (यूरोपीय) समाजका एक बहुत बड़ा वर्ग बरबाद हो जायेगा क्योंकि नगरसे और रोजगार मजदूरोंके स्थानसे थोड़े फासलेके भीतर मुनासिब कीमतपर और जमीन उपलब्ध नहीं है।

यह तो सचमुच हँसीकी बात है। उन (यूरोपीयों) को वहाँ से हटानेके बारेमें तो कोई प्रश्न ही नहीं उठाया गया। सच तो यह है कि उन्हें अपनी हालत बेहतर बनाने और अपने-अपने घरबार बनानेके लिए हर तरहकी सुविधाएँ दी गई हैं। जो लोग ट्रेपसे इतने अन्धे हो गये हैं कि न्याय और अन्यायमें बिलकुल भेद नहीं कर सकते उनसे बहस करना बेकार है। उनका सुझाव है कि भारतीयोंको पहाड़ीके दक्षिणमें किसी ऐसे स्थानपर भेज दिया जाये जहाँ नगरसे उनका सब सम्बन्ध कट जाये और रहें तो मुश्किलके साथ। जब उन्हें इस एतराजका सामना करना पड़ता है कि पहाड़ीके दक्षिणके स्थान सब खानोंके इलाकेमें होनेके कारण सुरक्षित हैं तब वे कहते हैं कि चूँकि सरकारको खानोंके इलाकेका उतना हिस्सा ले लेनेका अधिकार है, जो सड़कें बनाने और ढेर लगाने वगैरहके लिए जरूरी हो और चूँकि नगर-परिषदने नगरका कचरा जमा करनेके लिए उसका कुछ भाग पहले ही ले लिया है इसलिए वह जिसे नगरका विष्ठा कचरा समझती है उसे भी वहाँ जमा कर सकती है।

उपनिवेश-सचिव इन सज्जनोंके जिनके प्रतिनिधि श्री लावन हैं, और भारतीयोंके बीचमें जिन्हें मौजूदा बस्तीके अधिकसे-अधिक निकट निवास-स्थान पानेका कानूनी हक है, आखिरी पंच हैं। मनुष्य होनेके नाते भारतीयोंका अधिकार है, कि उनकी वर्तमान असमंजसकी स्थिति समाप्त की जाये और उन्हें ऐसी स्थितिमें रख दिया जाये कि वे अपना गुजारा कर सकें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १७-३-१९०४

११६ फिर पैदल-पटरियाँ

जबसे ट्रान्सवालपर गोरोंका कब्जा हुआ है तभीसे इस देशके एशियाई-विरोधी कानूनोंके बारेमें सरकारसे बराबर आवेदन-निवेदन किये जाते रहे हैं। इन कानूनोंमें पुराना नगर-नियम भी है, जो रंगदार लोगोंको अपल-बगलके पैदल रास्तोंका इस्तेमाल करनेसे रोकता है। गत वर्षके ब्रिटिश भारतीय संघने लेफ्टिनेंट गवर्नरका ध्यान इस नियमकी ओर आकर्षित किया था और परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयने कहा था कि वे एशियाई-विरोधी कानूनोंको बेतरतीब निपटाना नहीं चाहते बल्कि सारे प्रश्नपर एक साथ विचार किया जायेगा। इसी बीच उन्होंने उनसे मिलनेवाले शिष्टमण्डलको विश्वास दिलाया कि पुलिस ब्रिटिश भारतीयोंको नहीं सतायेगी। परन्तु ट्रान्सवालसे खबर मिली है कि पुलिस कमिश्नरने पैदल रास्तों-सम्बन्धी उपनियम लागू करनेकी हिदायतें जारी कर दी हैं। अबतककी नीति इस तरह अचानक त्यागनेका कारण यह है कहा जाता है कि एक काफिरने कुछ बदमाशी की। मामला श्री बाग डर बर्गके सामने आया और उन्होंने उस (काफिर) को बरी कर दिया। दिलचस्पी रखनेवाले कुछ लोगोंने सोचा कि इस मामलेमें ठीक-ठीक न्याय नहीं किया गया है। अखबारोंको बहुत ही आवेशपूर्ण भाषामें लिखे हुए पत्र भेजे गये। लीडरने अपने स्तम्भ खोल दिये और वतनी-विरोधी प्रकार नीतिकी बकवास करके आन्दोलनको प्रोत्साहित किया। इसका जो परिणाम हुआ वह हम देख रहे हैं और यदि वतनी लोगोंके विरुद्ध कोई नियम लागू किये जाते हैं तो भारतीय सहित

अन्य रंगदार लोग भी स्वभावतः उनकी चपेटमें आ जाते हैं। कमिश्नरने दोनोंमें कोई भेद करनेसे इनकार कर दिया है और इसका भारतीयोंको परिणाम भोगना पड़ेगा। पुलिस कमिश्नरने कृपा करके हिदायतोंमें यह जरूर जोड़ दिया है कि १९ २के २८ वें अध्यादेशके अनुसार मुक्त बतनियों और ऊँची श्रेणीके रंगदार लोगोंके साथ कोई छेड़छाड़ न की जाये। इसलिए पुलिसको बहुत ही कष्टप्रद कर्तव्य पूरा करना होगा। उसे ऊँची श्रेणीके और दूसरे रंगदार लोगोंकी पहचान करनेमें प्रवीण बनना पड़ेगा। स्पष्टतः ऐसी कोई कसौटी तो तय नहीं की गई, जिससे पता लगे कि उच्च श्रेणीका रंगदार मनुष्य कौन है। इसलिए यह निर्णय पूरी तरहसे पुलिसके विवेकाधीन रहेगा। पुलिस कमिश्नरको शायद यह नहीं सूझा कि ऐसी हिदायतोंसे बहुत बड़ी मात्रामें चिढ़ और असुविधा उत्पन्न हुए बिना नहीं रहेगी। जिन नियमोंका क्षेत्र इतना अनिश्चित है उनकी अपेक्षा सब सम्बन्धित लोगोंके लिए यह कहीं बेहतर होगा कि नियम जैसे हैं वैसे ही लागू किये जायें और पैदल-पटरियोंपर चलनेसे सभी रंगदार लोगोंको मना कर दिया जाये। यह कठोर उपाय हो सकता है परन्तु यदि ट्रान्सवाल-सरकारको रंग-विरोधी नीतिका अनुसरण करना है तो हमें और कोई हल दिखाई नहीं देता। नये नियम इस बातका एक अतिरिक्त दृष्टान्त उपस्थित करते हैं कि किस प्रकार ब्रिटिश भारतीय समाजकी यह शिकायत उचित सिद्ध हो रही है कि ट्रान्सवालके पुराने एशियाई-विरोधी कानून पहलेसे कहीं ज्यादा सख्तीसे काममें लाये जाते हैं क्योंकि जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका सम्बन्ध है, पैदल-पटरी सम्बन्धी नियम बोअर राज्यमें बिलकुल निःसत्व थे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १७–३–१९ ४

११७. पत्र डॉ० पोर्टरको

२१ से २४ कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
मार्च १८, १९ ४

डॉ० सी० पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ० पोर्टर,

सार्थका कच्चा लेखा[1] जैसा मेरे पास आया है वैसा ही आपको भेजता हूँ। मुझे मालूम हुआ है कि इस हालतमें बस्तीमें लगभग १५ भारतीय पड़े हैं। उनमेंसे बहुतेरे कंगाल हैं। एक आदमी मर गया है और उसकी लाशको किसीने हटाया नहीं है या कोई हटानेकी स्थितिमें ही नहीं है।

क्या आप कृपा करके इस मामलेमें दिलचस्पी लेंगे? स्वयंसेवक बहुत काम कर रहे हैं और बीमारोंकी देखभाल की जा रही है। चन्दा इकट्ठा करनेकी भी कोशिश की जा रही

१. यह उपलब्ध नहीं है। परन्तु गांधीजीने *आत्मकथा* (गुजराती १९५२, पृष्ठ २८८) में कहा है कि [illegible] लिखे हुए इस [illegible] आशय यह था [illegible] फैल गया है। [illegible] करना चाहिए, वर्ना तो परिणाम भयंकर होगा। [illegible]

है। लेकिन मैं आशा करता हूँ, इसी बीच आप भी जो-कुछ जरूरी हो वह सब करनेकी कृपा करेंगे।

मुझे ज्ञात हुआ है कि ये आदमी खानोंसे आये हैं, जहाँ वे काम करते रहे हैं। अगर आप बस्तीके खाली बाड़ोंमें से एक बाड़ा अस्थायी अस्पतालके कामके लिए दे दें तो इसकी बहुत सराहना की जायेगी। मैं मानता हूँ कि इन लोगोंकी देखभाल करना नगर-परिषदका फर्ज है। फिर भी भारतीय समाज चन्दा इकट्ठा करेगा और इसके लिए आंशिक रूपसे व्ययको [illegible] कर लेगा। डॉ० गॉडफ्रे जो हालमें ही ग्लासगोसे लौटे हैं, सम्भवतः मुफ्त या नाम-मात्रकी फीस लेकर बीमारोंकी देखभाल करेंगे। *लेकिन मैं मामला पूरी तरह आपके हाथोंमें छोड़ता हूँ।*

आपका सच्चा
मो० क० गांधी

[विशेष कथन]

मार्चकी पहली तारीखको एक छोटासा रुक्का लिखकर डॉ० पोर्टरको सूचना दी गई थी कि मेरी रायमें प्लेग फैल गया है। ८ मार्चका पत्र उसका उत्तर है।

उस पत्रकी नकल नहीं रखी गई थी और वह सम्भवतः डॉ० पोर्टरके पास है, इसलिए स्वास्थ्य-कार्यालय नकल नहीं दे सकता।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, ९-४-१९०४

११८. “स्टार” के प्रतिनिधिको भेंट[3]

जोहानिसबर्ग
मार्च २१, १९०४

प्रसिद्ध भारतीय वकील श्री मो० क० गांधी जो प्लेग-समितियोंमें काम कर चुके हैं और जो वर्षतक स्वयंसेवकके तौरपर प्लेग-पीड़ितोंके परिचारक रहे हैं। उन्होंने आज प्रातः स्टारके प्रतिनिधिसे मुलाकातमें कहा कि भारतीय समाजने सम्बन्धित अधिकारियोंको लगभग दो मास पूर्व चेतावनी दे दी थी कि उन्हें बड़े सन्देहजनक चिह्न दिखाई दे रहे हैं। इसके बाद डॉ० पोर्टरको एक और पत्र भेजा गया, जिसमें कहा गया था कि प्लेगके चिह्न दिखाई देने लगे हैं। चार दिन बाद श्री गांधीने बयान दिया कि उन्हें डॉ० पोर्टरसे इस आशयका पत्र मिला कि स्वास्थ्य अधिकारीको उनके कथनके समर्थनमें कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ा। किन्तु गुरुवारको श्री गांधीको सूचना मिली कि कुछ भारतीय “मृत या मरणासन्न” स्थितिमें रिक्शागाड़ियों द्वारा लाकर बस्तीमें डाले जा रहे हैं। अधिकारियोंको सूचित करनेके बाद श्री गांधी डॉ० गॉडफ्रे, डॉ० पेरारा और एक स्वास्थ्य-निरीक्षकको साथ लेकर मलिन स्थानोंमें गये और उन्होंने एक मकानमें, जिसे भारतीय समाजने स्वयं अलग कर दिया था, प्रवेश करनेपर १४ बीमार

१. यह पत्र-व्यवहार [illegible] सब अखबारोंको दे दिया गया था।
२. यह उपलब्ध नहीं है।
३. यह भी [illegible] २६-३-१९०४ के *इंडियन ओपिनियन*में प्रकाशित हुई थी।

देते। भारतीयोंने आपसमें स्वेच्छासे चन्दा जमा किया था और कुछ पुरुष स्वयंसेवक-परिचारकोंकी देखरेखमें बीमारोंको अपेक्षाकृत आरामसे रख दिया गया था। उस कामचलाऊ अस्पतालको डॉ॰ गॉडफ्रेने तुरन्त अपने नियन्त्रणमें ले लिया और यह इंतजाम किया कि दवा-दारू जाननेवाला कोई एक शुश्रूषक सारी रात वहाँ मौजूद रहे। श्री गांधीका कहना है कि शनिवारको सुबह टाउन क्लार्कने उनसे मिलकर कहा कि वे नगर-परिषदकी ओरसे कोई आर्थिक दायित्व तो नहीं ले सकते लेकिन अनुरोधके अनुसार व स्टेशन रोडवाले सरकारी गोदामको अस्थायी अस्पतालके तौरपर काममें लानेकी इजाजत दे देंगे और जिला-सर्जन डॉ॰ मैकेंजी व्यवस्थाकी देखरेख करेंगे तथा मरीजोंकी बाकी डॉ॰ गॉडफ्रेपर छोड़ दी जायेगी। प्राप्त मकानको स्वयंसेवकों द्वारा साफ कराया गया उसमें कृमिनाशक दवा छिड़की गई, २५ खाटें लाई गईं और साढ़े तीन बजे तक बीमार उसमें दाखिल कर लिये गये। डॉ॰ मैकेंजीने व्यवस्था की थी कि परिचारिका-बहन बेस्टको परिचारकोंके कामकी देखभाल करनेके लिए दाइयोंके निवासस्थानसे यहाँ भेजा जाये। इस समयतक डॉक्टरोंकी राय नहीं बन पाई थी कि लक्षण किस रोगके हैं। परन्तु बीमारीके जोरके कारण डॉ॰ मैकेंजी बादमें इस नतीजेपर पहुँचे कि रोगी निमोनियाके प्लेगसे पीड़ित हैं। भर्ती किये गये २५ रोगियोंमें से रविवारकी रातको सिर्फ ५ जिन्दा बचे। इनमेंसे १ राइटफोंटीनके छूतके रोगोंके अस्पतालमें भेज दिये गये। श्री गांधीने अपने बयानमें आगे कहा कि भारतीय समाजने प्लेगको फैलनेसे रोकनेके लिए प्रत्येक उपाय जो किया जा सकता था, किया है और अबतक उसने हर मामलेकी खबर दी है। एक जन-साधारणकी हैसियतसे बोलते हुए श्री गांधीने अपना यह विचार प्रकट किया कि यदि ठीक-ठीक सावधानी बरती जाती तो बीमारी फैली न होती। वे उन स्थानोंपर रोगियोंकी सेवा करते रहे हैं, जहाँ प्लेगसे असाधारण मौतें हुई हैं परन्तु जो लोग बीमारोंके सम्पर्कमें आये उनकी खूब सावधानी रखनेके कारण रोग पृथक किये हुए स्थानतक ही सीमित रहा है। अन्तमें श्री गांधीने कहा मेरी रायमें प्लेग फैलनेका एकमात्र कारण अस्वच्छ क्षेत्रकी गन्दगी और भीड़-भाड़की हालत थी। इधरकी वर्षाने उसे और भी बढ़ा दिया था। मैं नहीं समझता कि रोगके कीटाणु बाहरसे ही आये होंगे। प्लेग एक उग्र प्रकारके निमोनियासे अधिक कुछ नहीं है। उसके फैलनेका दोष भारतीय समाजपर बिलकुल नहीं है। सरकारी तन्त्र ही दोषपूर्ण है और, मैं पूरे और उचित आदरके साथ कहता हूँ कि यदि लोक-स्वास्थ्य समिति अधिक कार्य-कुशल होती तो प्लेग फैलता ही नहीं। अब तो सिर्फ एक ही बात की जा सकती है कि अस्वच्छ क्षेत्रकी सारी इमारतें जला दी जायें और लोगोंको एक अस्थायी शिविरमें ले जाया जाये और उन्हें भोजन दिया जाये। इसमें खर्च तो होगा परन्तु यह करने लायक होगा।

[अंग्रेजीसे]

स्टार २१-३-१९०४

११९. ब्रिटिश भारतीय उद्यम

हमारे सहयोगी *नैटाल ऐडवर्टाइज़रने* अपने विशेष संवाददाताका एक पत्र छापा है जिसमें विक्टोरिया प्रान्तके ब्रिटिश भारतीय जमीन-मालिकोंके प्रश्नकी चर्चा की गई है।

नेटालमें भारतीयोंके पास कुछ जमीन रहे चाहे वह थोड़ी ही हो इस खयालसे ही संवाददाताको बड़ा रोष है। उसके दुर्भाग्यसे उसके पेश किये हुए तर्क और तथ्य सब यह जाहिर करते हैं कि उस प्रान्तमें भारतीयोंका बसना और जमीनोंका मालिक होना स्वयं प्रान्तके लिए बड़ा वरदान सिद्ध हुआ है।

उक्त पत्रमें जो तथ्य दिये गये हैं उनकी चर्चा करनेसे पहले हम एक भूल सुधार देना चाहते हैं। उसका लेखक समझता है कि भारतीयोंके हाथोंमें बहुत जमीन चली गई है। मगर हम कह सकते हैं कि अबतक जमीनके ज्यादातर हिस्सेके मालिक यूरोपीय ही हैं। विशाल बागान उन्हींके हैं और वे भव्य भवन भी जो सब भारतीय मजदूरोंके कारण ही संभव हुए हैं। अवश्य ही यहाँ-वहाँ भारतीयोंके हाथोंमें जमीनके एक-दो टुकड़े होनेसे ही यह भय उचित नहीं हो जायेगा जो लेखक पैदा करना चाहता है। कुछ भी हो आखिर लेखकको भारतीयोंकी बाबत कहना क्या है? वह कहता है

> जो कोई जिलेमें सफर करेगा उसे यह स्वीकार करनेमें कठिनाई न होगी कि यह जिला कमसे-कम उपनिवेशका सबसे अधिक परिश्रमपूर्वक जोता-बोया जिला है। कुछ वर्ष पहले उत्तरी तटवर्ती पट्टी इतनी समृद्ध दिखाई नहीं देती थी। इतनी अधिक जमीनमें काश्त होनेसे पहले सालके इस समयमें उमगेनी और टुगेलाके बीचमें जो कुछ दिखाई देता था वह था — गर्मीकी धूपसे भूरी पड़ी घासका बड़ा मैदान। आज कुदरती घासका क्षेत्र नगण्य होता जा रहा है और वह बरसातकी बहुतायतके कारण बसन्तकी हरियालीकी तरह हरा-भरा है; और जब फसलें पकनेवाली हैं तब लोग कहते हैं कि इतनी अच्छी फसलें पहले कभी नहीं हुई थीं।

कोई भी इससे यही सोचता कि इन हालातमें बधाई दी जानी चाहिए परन्तु लेखक इन्हें खेदजनक समझता है, क्योंकि प्रान्तकी खुशहालीका कारण भारतीय उद्यम है। उस प्रदेशका बंजर और उजाड़ होना तो पसन्द होता लेकिन हराभरा और उपनिवेशको अच्छी आमदनी देनेवाला होना पसन्द नहीं है जिसमें सैकड़ों गोरी ठण्डाके यूरोपीय किसानोंका मजा चखना सम्भव हुआ है। इसके अलावा लेखक स्वीकार करता है कि बहुतसी जमीन भारतीयोंको यूरोपीय मालिकोंने पट्टेपर दी है। इसका अर्थ यह है कि यूरोपीय किसान अबतक भारतीय हरकारोंका आवश्यक लिए मौका न रहें तबतक वे स्वयं जमीनसे लाभ नहीं उठा सकते। फिर यह भी याद रखना चाहिए कि अगर कोई भारतीय किसी जमीनका मालिक बन भी गया है तो मूल यूरोपीय मालिकके जमीन बेच देनेके कारण ही। और यद्यपि हमारे सहयोगीके संवाददाताने इस कारण उनकी देखभाली बताया है फिर भी निष्पक्ष लोग यह समझेंगे कि इससे बेचनेवालोंको ही नहीं बल्कि सामान्य समाजको भी लाभ हुआ है, क्योंकि बेचनेवालोंने भारतीयोंको जमीनपर काम करनेका मौका देकर उपनिवेशकी समृद्धिको बढ़ाया है।

... अभ्यर्थियोंमें संवाददाताने जो तर्क और तथ्य पेश किये हैं उनसे लेखकमें ... और आर्थिक नीतिको समझनेकी शक्तिका अभाव प्रकट होता है। अच्छे आचरण- ... और परिश्रमी लोग किसी भी समाजकी मूल्यवान सम्पत्ति समझे जाते। ... हैं ... न खाने न खाने दे की नीतिसे संचालित हो रहे हैं इसीलिए वहाँ हमें इस प्रकारके लोगोंके विरुद्ध चिल्लाहट सुनाई देती है। अन्ततः हमारा खयाल तो यह है कि सादे जीवन और परिश्रमी लोगोंसे रहित समाज बहुत समयतक टिक नहीं सकेगा और जिस भूमिपर वह रहता है उसके साधनोंसे पूरा लाभ भी नहीं उठा सकेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-३-१९०४

१२० जोहानिसबर्गमें प्लेग[1]

भारतीय समाजका महान काम

लगभग दो महीने हुए, जोहानिसबर्गमें प्लेगका पता लगा था। (यह कहना सही नहीं होगा कि प्लेग फैल गया है)। भारतीयोंने अधिकारियोंको चेतावनी दी थी कि यदि नगर-परिषदके अधिकार कर लेनेके बाद तथाकथित अस्वच्छ क्षेत्रकी जो हालत हो गई है उसका उपाय न किया गया तो उन्हें महामारीकी अपेक्षा करनी ही होगी। क्योंकि २६ सितम्बरके बाद नगर-परिषदने किरायेके मकानोंके आकारका लिहाज रखे बिना उस इलाकेमें किरायेदार रख लिये थे। इसलिए वहाँ इतनी भीड़-भाड़ हो गई है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। परिषद द्वारा बाड़ोंको साफ न रख सकनेके कारण इस मध्यमें और वृद्धि हो गई है। मकान-मालिकोंके हाथोंसे जिम्मेवारी छीन ली जानेके कारण वे एक-एक बाड़ेमें ५०-५ या इससे भी ज्यादा लोगोंके रहनेपर काबू नहीं रख सके। उदाहरणके लिए, गत वर्ष २६ सितम्बरसे पहले भारतीय बस्तीमें ९६ मकान-मालिक ठीक सफाईके लिए जिम्मेवार थे। नगर-परिषदने नियन्त्रण अपने हाथमें ले लिया तो इसका मतलब यह था कि उसे कमसे-कम ९६ मेहतर रखने चाहिए थे। यह परिषद कर नहीं सकती थी या करना नहीं चाहती थी। कुछ भी हो जो इलाका पहले कभी इतना अस्वच्छ नहीं था कि उसके अभि बहनकी जरूरत हो उसे अब परिषदने ऐसा बना दिया है। इसीलिए उपर्युक्त चेतावनी दी गई थी। इसपर, हाल ही हवामें असाधारण नमी आ गई, जिससे तेज निमोनिया फैल गया जो आसानीसे संक्रामक हो सक[illegible] है। और इस रोगने अस्वच्छ क्षेत्रमें अनुकूल स्थिति पाकर बहुत ही भयंकर रूप धारण क[illegible] और यह [illegible]वाला प्लेग बन गया। ज्योंही लोग ऐसे बीमार पड़े त्योंही अधिक[illegible] सूचना [illegible] परन्तु चार दिनकी जाँचके बाद वे इस नतीजेपर पहुँचे कि [illegible] नहीं। [illegible] दिनके बाद संकटकी स्थिति आ गई। कुछ भारतीय मरणासन्न [illegible] लाये [illegible]। खबर फिर अधिकारियोंको दी [illegible] अब समाजने [illegible]। उसने अनुभव किया कि उसका [illegible] पीछे — के [illegible] हो सके। और [illegible] तत्परतासे

1. [illegible] ये ... संवाद ... पीटर्स[illegible]

डॉक्टरी सहायता दी गई। डॉक्टर पोर्कके अभी-अभी ग्लासगोसे आये थे। उन्होंने अपनी सेवाएँ समाजको मुफ्त रूपमें सौंप दीं। बादमें उसी दिन (शुक्रवारको) स्वास्थ्य-निरीक्षक मौकेपर पहुँचे और उन्होंने सहायताका हाथ बढ़ाया। लेकिन अभीतक वे सरकारी तौरपर जिम्मेदारी लेनेमें असमर्थ थे। कुछ मकानोंको कब्जेमें लेकर अस्थायी अस्पताल बना दिया गया। जिन्होंने इस अस्पतालका दृश्य देखा है — उन मरीजोंको तड़पते हुए, जिन्हें कभी बीमार होना ही नहीं था, डॉ॰ पोर्कके, जो नवतमीत और नौजवान शिक्षित भारतीयोंको भारी खतरा उठाकर मुस्तैद बने हुए तथा उन छोटे-छोटे कमरोंमें भरे १४ मरीजोंकी सावधानताके साथ सेवा करते हुए और उन मरीजोंको एकके बाद एक मौतके मुँहमें समाते हुए — वे उस दृश्यको कभी भूलेंगे नहीं। वह दृश्य भीषण भी था और प्रेरणाप्रद भी — भीषण उस दारुण शोकान्त घटनाके फलस्वरूप और प्रेरणाप्रद इसलिए कि उससे समाजके प्रसंगानुकूल उठ खड़े होने और संगठन करनेके सामर्थ्यका दर्शन हुआ। जहाँ एक वार्डमें बीमारोंकी देखभाल की जा रही थी वहीं दूसरे वार्डमें एक बहुत बड़ी आम सभा हो रही थी। गरीब-अमीर सबने मिलकर कोई एक हजार पौंड चन्दा जमा किया ताकि समाजके उपयोगके लिए एक स्थायी अस्पताल खड़ा किया जा सके। जिस ढंगसे गरीबोंने आगे आकर चन्दा दिया वह उनके लिए बहुत ही श्रेयास्पद है।

शनिवारको प्रातःकाल ऐसा मालूम हुआ कि अधिकारियोंने स्थितिको समझा है। उन्होंने एक बहुत बड़े गोदामको जो पुराना चुंगीघर था अस्थायी अस्पतालके लिए दे दिया। फिर भी टाउन क्लार्कने उस समय कोई आर्थिक दायित्व लेनेसे इनकार कर दिया और बिस्तर, चटाइयाँ वगैरा जुटानेका काम समाजपर छोड़ दिया। किन्तु भारतीयोंको रुपये-आने-पैसेकी गिनती करते रहनेकी गुंजाइश नहीं थी और उन्होंने इंतजाम अपने हाथमें ले लिया। जिला सर्जनने बड़ी कृपा करके एक बहुत अच्छी तालीम पाई हुई दाई दे दी और अन्तमें २५ रोगियोंमें से पाँचको संक्रामक रोगोंके अस्पतालमें पहुँचा दिया गया है और प्लेग फैल जानेकी सरकारी तौरपर घोषणा कर दी गई है। इस प्रकार, नगर-परिषदको समयपर सहायतार्थ आनेके लिए गरीबोंकि मक्खियोंकी तरह मरनेका दृश्य देखनेकी जरूरत हुई है। फिर भी किसी व्यक्ति-विशेषका कोई दोष नहीं है क्योंकि अलग-अलग सभी भलाई करनेको उत्सुक रहे हैं। इस भयंकर दुर्घटनाके लिए दोषी वह निष्प्राण भारी-भरकम नगर-निगम है, जो लाल फीतेसे बँधा हुआ है और अमलनामोंपर पनपता है। बस्तीके चारों ओर अब घेरा डाल दिया गया है, यद्यपि दूसरे जिलोंमें भी प्लेगकी घटनाएँ हुई हैं। परन्तु भारतीय समाज अपने कष्टोंको अपनी परम्पराओंके योग्य धीरतापूर्ण धैर्यके साथ सहन कर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-३-१९०४

हमारी नम्र सम्मतिमें संवाददाताने जो तर्क और तथ्य पेश किये हैं उनसे केवलमात्र मानसिक दुर्बलता और आर्थिक नीतिको समझनेकी शक्तिका अभाव प्रकट होता है। अच्छे आचरणवाले निर्व्यसनी और परिश्रमी लोग किसी भी समाजकी मूल्यवान सम्पत्ति समझे जाते। उपनिवेश ही "न आये न जाने दे" की नीतिसे प्रभावित हो रहे हैं, इसीलिए वहाँ हमें इस प्रकारके लोगोंके विरुद्ध चिल्लाहट सुनाई देती है। वस्तुतः हमारा खयाल तो यह है कि सादे जीवन और परिश्रमी लोगोंसे रहित समाज बहुत समयतक टिक नहीं सकेगा और जिस भूमिपर वह रहता है उसके साधनोंसे पूरा काम भी नहीं उठा सकेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-३-१९०४

१२० जोहानिसबर्गमें प्लेग[1]

भारतीय समाजका महान कार्य

लगभग दो महीने हुए, जोहानिसबर्गमें प्लेगका पता लगा था। (यह कहना सही नहीं होगा कि प्लेग फैल गया है)। भारतीयोंने अधिकारियोंको चेतावनी दी थी कि यदि नगर-परिषदके अधिकार कर लेनेके बाद तथाकथित अस्वच्छ क्षेत्रकी जो हालत हो गई है उसका उपाय न किया गया तो उन्हें महामारीकी अपेक्षा करनी ही होगी। क्योंकि, २६ सितम्बरके बाद नगर-परिषदने किरायेके मकानोंके आकारका लिहाज रखे बिना उस इलाकेमें किरायेदार रख लिये थे। इसलिए वहाँ इतनी भीड़-भाड़ हो गई है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। परिषद द्वारा बाड़ोंको साफ न रख सकनेके कारण इस गन्दगीमें और वृद्धि हो गई है। मकान-मालिकोंके हाथोंसे जिम्मेदारी छीन ली जानेके कारण वे एक-एक बाड़ेमें ५०-५० या इससे भी ज्यादा लोगोंके रहनेपर काबू नहीं रख सके। उदाहरणके लिए, गत वर्ष २६ सितम्बरसे पहले भारतीय बस्तीमें ९६ मकान-मालिक ठीक सफाईके लिए जिम्मेदार थे। नगर-परिषदने नियन्त्रण अपने हाथमें ले लिया तो इसका मतलब यह था कि उसे कमसे-कम ९६ मेहतर रखने चाहिए थे। यह परिषद कर नहीं सकती थी या करना नहीं चाहती थी। कुछ भी हो जो इलाका पहले कभी इतना अस्वच्छ नहीं था कि उसके बारेमें शिकायतकी जरूरत हो उसे अब परिषदने ऐसा बना दिया है। इसीलिए उपर्युक्त चेतावनी दी गई थी। इसपर, हाल ही हवामें असाधारण नमी आ गई, जिससे तेज निमोनिया फैल गया, जो आसानीसे संक्रामक हो सकता है। और, इस रोगने अस्वच्छ क्षेत्रमें अनुकूल स्थिति पाकर बहुत ही भयंकर रूप धारण कर लिया और यह निमोनियावाला प्लेग बन गया। ज्योंही लोग ऐसे बीमार पड़े त्योंही अधिकारियोंको फिर सूचना दी गई परन्तु चार दिनकी जाँचके बाद वे इस नतीजेपर पहुँचे कि ये प्लेगके रोगी नहीं हैं। चार दिनके बाद संकटकी स्थिति आ गई। कुछ भारतीय मरणासन्न अवस्थामें बस्तीमें लाये गये। मामलेकी खबर फिर अधिकारियोंको दी गई। परन्तु अब समाजने मामला अपने हाथमें भी ले लिया। उसने अनुभव किया कि दफ्तरी ढर्रे — लाल फीते — के कारण शायद तुरन्त कार्रवाई न हो सके। बीमारोंको तत्काल

1. यह "हमारे निजी संवाददाता द्वारा" रूपमें छपा था।
2. देखिए "रंग और संघर्ष," फरवरी १८, १९०४।

लोगोंको भेजना विचारपूर्वक होता है और मारवाड़में होनेवाली बातोंमें अनिवार्य त्रुटियोंकी शिकायतोंपर तत्काल ध्यान दिया जाता है। पूरी बस्ती इस हफ्तेमें खाली हो जायेगी और इमारतें जलाकर राख कर दी जायेंगी। इस तरह जो काम पिछले साल २६ सितम्बरको जब कथित अस्वच्छ क्षेत्रकी बेदखली की जा रही थी होना था इस समय भयभीत मनःस्थितिमें अंधाधुंध सर्वपर हो रहा है।

क्लिप्सप्रूटमें भी बर्जेस बीमेकी देखरेखमें है। जनताके जो प्रिय बन गये हैं वे डॉ. विलियम गॉडफ्रे वहाँ नगर-परिषदकी ओरसे सहायक चिकित्सा-निरीक्षक नियुक्त कर दिये गये हैं और निस्सन्देह कुछ ही दिनोंमें बीमा व्यवस्थित रूपसे चलने लगेगा।

जोहानिसबर्गके अधिकारी सहूलियतसे काम ले रहे हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश प्रिटोरियाको छोड़कर ट्रान्सवालकी दूसरी जगहोंके बारेमें यही बात नहीं कही जा सकती। डॉ. पेक्सके अनुसार, पीटर्सबर्ग, क्लार्क्सडॉर्प और पॉचेफस्ट्रूममें केवल प्लेगकी रोकथाम ही नहीं की जा रही है, भारतीय-समाजकी दुरवस्थासे पूरा-पूरा लाभ उठाकर उनका उन्मूलन करनेकी कोशिश की जा रही है। व्यापारिक ईर्ष्या खुलकर खेल रही है और प्लेगकी रोकथामके बहाने भारतीय व्यापारकी जड़ें उखाड़ी जा रही हैं। जैसे बने वैसे उनकी राहमें रोड़े अटकाये जा रहे हैं। किन्तु भारतीय धीरज और बहादुरीसे इन तकलीफोंका सामना कर रहे हैं। यूरोपीय व्यापारियोंकी बन आई है। किन्तु यदि भारतीय शान्त बने रहे तो उन्हें हानि पहुँचानेवाले लोगोंके प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे। क्लार्क्सडॉर्पमें भारतीयोंका सन्तप्त हो उठना ठीक ही था। अन्यथा वहाँ परिस्थिति बहुत विषम हो जायेगी किन्तु श्री रिच[1] वहाँ पहुँच गये हैं और मामला सद्भावसे सुलझ गया है। भारतीयोंके लिए यह समय अपने अधिकारोंपर अड़नेका नहीं है कष्ट भोगकर अपनी जिम्मेदारी समझनेका है। प्लेग पहले उनमें फैला था। रोगियोंकी सर्वाधिक संख्या भी उन्हींमें है। जनताका निष्कर्ष यह है कि इस अनिष्टकी जड़ भारतीय ही हैं। यह सही-गलत जो हो इसे मानना तो होगा ही। और भारतीय समाज धैर्यपूर्वक कष्ट सहकर य दिन काट रहा है यह ठीक ही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-४-१९०४

१. एल० डब्ल्यू० रिच, उस समय गांधीजीके मुंशी।

१२१ प्लेग[1]

जोहानिसबर्ग
मार्च १, १९०४

आजतकके आँकड़े ये हैं

गोरे

निश्चित रोगी ९

संदिग्ध रोगी १

रंगदार

संदिग्ध ४

एशियाई

निश्चित ५

संदिग्ध १

वतनी

निश्चित ९

संदिग्ध २९

निश्चित प्लेग रोगियोंकी मृत्युसंख्या

गोरे	एशियाई	वतनी
१	४७	९

लगभग ये सभी आँकड़े प्लेग फैलनेकी जानकारी हो चुकनेके बादके हैं, अर्थात्, [illegible] २०वीं तारीखके बाद बहुत कम नये लोग बीमार हुए हैं। पहले दो दिन ही जब बीमारोंको समेटा जा रहा था मृत्युसंख्या अधिक रही। और, एशियाइयोंके अधिक संख्यामें बीमार होने तथा मरनेके कारणोंका पता भी इससे लग जाता है। निमोनियाकी बीमारीने प्लेगका रूप पहले भारतीयोंमें धारण किया। डॉक्टरोंने उस मामलेको मामूली माना। सावधानियाँ नहीं बरती गईं। यह चेतावनी देनेके बावजूद कि यह प्लेग है, अधिकारियोंको भरोसा नहीं हुआ। और छूत फैली। इससे सबक यह मिलता है कि मामूली मामलोंमें भी साधारण सावधानी बरती जानी चाहिए। हर बीमारी कम ज्यादा संक्रामक होती है। फिर छूत-नाशक औषधियोंको अच्छी तरह छिड़कने और, उस घरमें ही सही बीमारको अलग करनेमें क्या बिगड़ता है।

यह दंतकथा कि केवल भारतीय-बस्तीमें ही छूत है, अभीतक चलाई जा रही है और शायद यह अच्छी बात है। इससे लोगोंको संतोष होता है और उनमें निरर्थक भय नहीं फैलता।

जब घेरा डाला गया तब बस्तीमें १,१६१ भारतीय थे। इनमें से ८ से ऊपर निम्न भूतमें दूर किये गये हैं। यह स्थान जोहानिसबर्गके मार्केट-स्क्वेयरसे लगभग १२ मील है। जिन भारतीयोंको दुर्भाग्यवश पृथक् (क्वारंटीन) में रहना पड़ा है उनके व्यवहारसे अधिकारी पूरी तरह संतुष्ट हैं। वे भी अपनी तरफसे भारतीयोंको आवश्यक सुविधायें दे रहे हैं। धार्मिक आग्रहोंका आदर किया जाता है। घेरेके लोगोंको भोजन काफी उदारतापूर्वक दिया जाता है।

१. यह "हमारे जोहानिसबर्ग संवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें प्रकाशित हुआ था।

लोगोंको भेजना विचारपूर्वक होता है और मारवाड़में होनेवाली बातोंमें अनिवार्य त्रुटियोंकी शिकायतोंपर तत्काल ध्यान दिया जाता है। पूरी बस्ती इस हफ्तेमें खाली हो जायेगी और इमारतें जलाकर राख कर दी जायेंगी। इस तरह जो काम पिछले साल २१ सितम्बरको जब कथित अस्वच्छ क्षेत्रकी बेदखली की जा रही थी होना था इस समय भयभीत मनःस्थितिमें धड़ाधुम सर्वपर हो रहा है।

क्लिप्सप्रूटमें भी बर्जेस सीमेकी देखरेखमें है। जनताके जो प्रिय बन गये हैं वे डॉ॰ विलियम्स बॉक्सबर्गसे वहाँ नगर-परिषदकी ओरसे सहायक चिकित्सा-निरीक्षक नियुक्त कर दिये गये हैं और *निस्सन्देह कुछ ही दिनोंमें बीमा व्यवस्थित रूपसे चलने लगेगा।*

जोहानिसबर्गके अधिकारी सहृदयतासे काम ले रहे हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश प्रिटोरियाको छोड़कर ट्रान्सवालकी दूसरी जगहोंके बारेमें यही बात नहीं कही जा सकती। डॉ॰ पेक्सके अनुसार, पीटर्सबर्ग क्रूगर्सडॉर्प और पचिफस्ट्रममें केवल प्लेगकी रोकथाम ही नहीं की जा रही है, भारतीय-समाजकी दुरवस्थासे पूरा-पूरा लाभ उठाकर उनका उन्मूलन करनेकी कोशिश की जा रही है। व्यापारिक ईर्ष्या खुलकर खेल रही है और प्लेगकी रोकथामके बहाने भारतीय व्यापारकी जड़ें उखाड़ी जा रही हैं। जैसे बने वैसे उनकी राहमें रोड़े अटकाये जा रहे हैं। *किन्तु भारतीय धीरज और बहादुरीसे इन तकलीफोंका सामना कर रहे हैं। यूरोपीय व्यापारियोंकी* बन आई है। किन्तु यदि भारतीय शान्त बने रहे तो उन्हें हानि पहुँचानेवाले लोगोंके प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे। क्रूगर्सडॉर्पमें भारतीयोंका सन्तप्त हो उठना ठीक ही था। लगता था परिस्थिति बहुत विषम हो जायेगी किन्तु श्री रिच[1] वहाँ पहुँच गये हैं और मामला सद्भावसे सुलझ गया है। भारतीयोंके लिए यह समय अपने अधिकारोंपर अड़नेका नहीं है कष्ट भोगकर अपनी जिम्मेदारी समझनेका है। प्लेग पहले उनमें फैला था। रोगियोंकी सर्वाधिक संख्या भी उन्हींमें है। जनताका निष्कर्ष यह है कि इस अनिष्टकी जड़ भारतीय ही हैं। यह सही-गलत जो हो इसे मानना तो होगा ही। और भारतीय समाज धैर्यपूर्वक कष्ट सहकर य दिन काट रहा है, यह ठीक ही है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-४-१९ ४

१. एल० डब्ल्यू० रिच उस समय गांधीजीके मुंशी।

१२२ प्लेग

आखिर जोहानिसबर्गमें प्लेग फैल गया है। अबतक लगभग ६ व्यक्ति उसके शिकार हो चुके हैं जिनमें ४६ एशियाई हैं ६ गोरे और ४ वतनी। रोगियोंमें मृत्यु-संख्या एक तरहसे सौ फीसदी रही है। यह एक भयंकर वस्तुस्थिति है। भारतमें ऐसा नहीं होता और पहले कभी दक्षिण आफ्रिकामें भी ऐसा नहीं हुआ। इसलिए जोहानिसबर्गके प्लेगकी किस्म अबतक देखी गई किस्मोंमें सबसे ज्यादा घातक है। फिर, उसके शिकार इतने थोड़े समयमें मरे हैं कि विश्वास नहीं होता। जो पहले-पहले थोड़ीसी खाँसी और हलका-सा ज्वर मालूम होता है वही कुछ घंटोंमें या दूसरे दिन तेज बुखार, थूकमें खून और जोरकी छटपटाहटमें बदल जाता है। रोगीका कष्ट भयंकर होता है। तीसरे दिन सन्निपात और मौत आती है। अन्तिम स्थितिमें बीमार इतना थक जाता है कि यद्यपि उसके मुखपर घोर पीड़ा झलकती है तो भी वह बेचारा उसे वाणी द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। हमारे संवाददाताने इसका कारण बताया है। जोहानिसबर्गकी लोक-स्वास्थ्य समिति अब अपनी पूरी ताकतसे लगी है परन्तु इससे उसकी पिछली गफलतका दोष मिट नहीं जाता — मिट नहीं सकता। उसे डॉ० पोर्टरके नाम लिखे गये पत्रमें समयपर चेतावनी दे दी गई थी और, हमें मालूम हुआ है वह अध्यक्षतक पहुँचा भी दी गई थी किन्तु उसपर ध्यान ही नहीं दिया गया। स्थानके बारेमें झगड़नेमें कीमती वक्त बरबाद कर दिया गया। इस बीचमें नगर-परिषदके कर-संग्राहक भीड़-भाड़ सम्बन्धी नियमोंकी परवाह न करके अस्वच्छ क्षेत्रमें किरायेदारोंको ठूँसते रहे। सफाईकी सर्वथा उपेक्षा की गई। किरायेदार भी व्यक्तिशः इस मामलेमें कुछ कर नहीं सकते थे। ट्रान्सवालके लोग अब इसकी भारी कीमत चुका रहे हैं।

लेकिन हमें गड़े मुर्दे उखाड़ना पसंद नहीं। विशेष प्लेग-अफसर डॉ० पेक्स और डॉ० मैकेंजी[1] बड़े साहस और निष्ठासे इस विभीषिकासे लड़ रहे हैं। समितिने खतरेको अनुभव कर लिया है इसलिए वह अपनी कोशिशोंमें कोई कोर-कसर नहीं रख रही। उसने इन डॉक्टरोंको असीम सत्ता दे दी है और इनको निरीक्षकोंके अच्छे अमलेकी सहायता प्राप्त है। उनका प्लेगपर अच्छा काबू हो गया है और अब उसकी भयंकरता मिट गई है। लोक-स्वास्थ्य समितिने इस प्रकार अपनी मुजरिमाना गफलतका प्रायश्चित्त कर लिया है। लेकिन अफसोसके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि इस दोषसे भारतीय समाज मुक्त नहीं ठहराया जा सकता। अन्य समाजोंकी अपेक्षा उसपर जो दण्ड पड़ा है उसका वह हमें भय है थोड़ा या बहुत पात्र है ही। भारतीयोंको सफाईकी अपेक्षा और भीड़भाड़के विरुद्ध नाराजगी जाहिर करनी चाहिए थी। यह बहाना नहीं किया जा सकता कि नगर-परिषदने ऐसी स्थिति पैदा होने दी। जहाँ हम अक्सर राजनीतिक हेतुसे किये जानेवाले अतिशयोक्तिपूर्ण आरोपों और तीव्र आक्षेपोंसे अपने देशवासियोंकी रक्षा करनेमें सबसे आगे हैं वहाँ अगर अपने कर्तव्यपर दृढ़ रह कर उनके दोष उनको न बतायें तो अपने पेशेके प्रति वफादार नहीं होंगे। भारतीयोंमें करीब ४० व्यक्तियोंका बीमार होना इस बातका निश्चित प्रमाण है कि हमारे गरीब तबकेके देशभाइयोंके निवासस्थानोंमें कितनी कम सफाई रखी जाती है।

१ जिला सर्जन जिन्हें नगर परिषदने इसी कार्यके लिए नियुक्त किया था।

क्या लोक-स्वास्थ्य समितिकी तरह उन्होंने भी प्रकृतिके प्रति अपने अपराधका कोई प्रायश्चित किया है? हमें आदरके साथ 'हाँ' कहनेमें खुशी है। जब परिषद सोई हुई थी तब वे जाग गये। जिस क्षण उन्हें अनुभव हो गया कि रोग अत्यन्त भयंकर रूपमें शुरू हो गया है उसी क्षण उन्होंने प्रशंसनीय परिश्रम और धैर्यके साथ काम शुरू कर दिया। उन्होंने एक कामचलाऊ अस्पताल खोला और चन्दा इकट्ठा किया। रोगियोंकी सेवा और दूसरे जरूरी कामोंके लिए स्वयंसेवक आगे बढ़े। बीमारीकी हरएक घटनाकी जानकारी अधिकारियोंको दी गई और अपने ऊपर लगाई गई विशेष पाबन्दियोंका अत्यन्त सहिष्णुतासे पालन किया गया। यह सब समाधानकारक और श्रेयास्पद है। इससे उनकी कानून और व्यवस्थाके पालनकी वृत्ति प्रकट होती है और यह भी जाहिर होता है कि उनपर अत्यधिक पाबन्दियाँ लगाना अथवा उन्हें अत्यधिक कठिनाइयोंमें डालना किसी भी विचारसे उचित नहीं होगा। जो समाज नियन्त्रणमें रह सकता है उसके भीतरी दोष आसानीसे दूर किये जा सकते हैं। परन्तु यदि भारतीय समाज कोई स्थायी पाठ नहीं सीखेगा और इस अग्नि-परीक्षाके बाद भी किसी देखरेख अथवा नियन्त्रणके बिना स्वेच्छासे सफाईके नियमोंपर अच्छी तरह ध्यान नहीं देगा तो उसको जो दण्ड मिला है वह बहुत थोड़ा ही होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-४-१९०४

१२३. ट्रान्सवालका एशियाई व्यापारी-आयोग

मार्च १६ को एशियाई व्यापारी-आयोगकी पहली नियमित बैठक हुई थी। *जोहानिसबर्ग स्टार*से हम उसकी कार्रवाई एक अन्य स्तम्भमें उद्धृत कर रहे हैं।

आयुक्तोंने निर्णय किया है कि उन्हें उन ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके दावोंपर विचार करनेका अधिकार नहीं है जो यह साबित नहीं कर सकते कि वे लड़ाईसे ठीक पहले पृथक बस्तियोंके बाहर परवाना लेकर व्यापार कर रहे थे और लड़ाई छिड़ जानेके कारण अपना व्यवसाय छोड़नेको मजबूर हुए थे। इसका अर्थ यह है कि जो लोग ट्रान्सवालमें १५ वर्षसे व्यापार करते थे परन्तु जिन्होंने या कहिए कि अगस्त १८९९में अपना व्यवसाय खतम कर दिया था उनकी आयुक्तोंके आगे कोई हैसियत नहीं है और यदि इस सीमित विचार-क्षेत्रके अन्तर्गत आयुक्तोंके प्रतिवेदनपर ही मामला खत्म हो जाता है तब तो परवानोंके बगैर इस समय व्यापार करते हुए सैकड़ों भारतीय व्यापारी अपना व्यापारका अधिकार खो देंगे और फलस्वरूप बिलकुल बरबाद हो जायेंगे। *परन्तु यह निर्णय भले ही कठोर दिखाई*[1] देता हो आयुक्तोंके सामने कोई दूसरा मार्ग नहीं था। सच तो यह है कि हमने अपने पाठकोंको इसके लिए पहले ही तैयार कर दिया था जब हमने कुछ समय पूर्व इस मसलेकी चर्चा की थी। आयोगके विचारणीय विषयोंकी सूचीकी भाषामें अस्पष्टताकी गुंजाइश नहीं रखी गई है। उसमें केवल यह कहा गया है कि आयुक्त उन लोगोंके मामलोंपर विचार करेंगे जो बस्तियोंके बाहर परवानोंके बिना लड़ाई छिड़नेके समय या उसके ठीक पहले व्यापार कर रहे थे। हमें आशा है कि सरकारने विचारणीय विषयोंकी तैयार करते समय कभी ऐसे किसी

१. देखिए "एशियाई व्यापारी-आयोग," १०-३-१९०४ ।

१२४. नेटालमें विक्रेता-परवाना अधिनियम

उस दिन वीनेनमें सात भारतीय व्यापारियोंने परवाना-अधिकारीके निर्णयके विरुद्ध स्थानिक निकायमें अपील की। परवाना-अधिकारीने विक्रेता-परवानोंकी सातों अर्जियाँ नामंजूर कर दी थीं। जो शहादत पेश की गई उससे मालूम होता है कि उक्त व्यापारियोंमें से एक बारह सालसे दूकान कर रहा है; दूसरे भी पुराने दूकानदार हैं जिनके पास कई सालसे व्यापार करनेके परवाने हैं। चूँकि परवाना-अधिकारीने फिरसे परवाने देनेसे इनकार कर दिया था इसलिए स्थानीय निकायमें अपील की गई थी। एक अर्जदारने इस मामलेकी गवाही दी कि उसके पास आठ वर्षसे परवाना है और उसका बही-खाता उसके समय-समयपर रखे हुए कच्चे हिसाबके आधारपर उसका अंग्रेज मुनीम लिखता है। दूसरोंके बही-खातोंकी भी यही प्रणाली है। दो दिनतक इन मामलोंकी सुनवाई करनेके बाद निकायने फैसला दिया कि चूँकि उसका उनके हिसाब रखनेके तरीकेसे सन्तोष नहीं हुआ है, इसलिए उसने परवाना-अधिकारीका फैसला बहाल रखा है। अगर व्यवस्था इसी ढंगकी रही तो हमें बहुत अन्देशा है कि लगभग प्रत्येक भारतीय दूकानदारका सफाया हो जायेगा। इस बातको सभी जानते हैं कि छोटे दूकानदारोंकी बही-खाता रखने लायक स्थिति नहीं होती। उनका लेन-देन सब नकद होता है। वे क्रय और विक्रय बहुत-कुछ नकद करते हैं और उन लोगोंसे बही-खाता रखनेकी अपेक्षा करना ही भारी गलती होगी। प्रस्तुत मामलेमें इन लोगोंने अंग्रेजी भाषामें बही-खाता रखनेका प्रयत्न किया है। स्पष्ट है कि निकाय उनसे यह अपेक्षा करता है कि वे योग्य मुनीमोंकी मार्फत रोजमर्राका बही-खाता रखें। इसका अर्थ है ६ या ७ पौंड या इससे भी अधिक माहवारी खर्च। जो छोटे-छोटे व्यापारी अपने व्यवसायमें १०-१५ पौंड माहवार मुश्किलसे बचा पाते हैं वे शायद इस प्रकारका महँगा शौक नहीं कर सकते। यदि स्थानीय निकाय इस तरहका स्पष्टतः बेहूदा नियमका आग्रह रखेंगे कि अंग्रेजी भाषामें योग्य मुनीमों द्वारा ही दैनिक बही-खाता लिखाया जाये तो इसका नतीजा होगा उपनिवेशमें कमसे-कम छोटे भारतीय व्यापारियोंका सफलतासे खात्मा। क्या विक्रेता-परवाना अधिनियम इस दृष्टिसे ही पास किया गया था? निकायके फैसलेसे कानूनमें संशोधनका प्रश्न फिरसे उठ खड़ा हुआ है। जब विक्रेता-परवाना अधिनियम पास किया गया था उस समय ही नगरपालिकाओंको दी हुई सत्ताका दुरुपयोग करनेकी प्रवृत्ति मौजूद थी। उसके बाद भी चेम्बरलेनका उलहना आया और उसका वांछित परिणाम भी हुआ; परन्तु वह केवल क्षणिक था। इसलिए जबतक विक्रेता-परवाना अधिनियममें कुछ ऐसे निश्चित अधिकार शामिल नहीं किये जाते जिनसे पीड़ित पक्ष सर्वोच्च न्यायालयतक पहुँच सके या उन धाराओंकी व्याख्या नहीं कर दी जाती जिनसे परवाने नामंजूर किये जा सकते हैं तबतक इस मामले जैसे हमने ऊपर बताये हैं समय-समयपर होते ही रहेंगे। यदि लोगोंके निहित स्वार्थोंका आदर करना है तो यह मामला सरकारके गम्भीर विचार करनेके लायक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-४-१९०४

परिणामकी कल्पना नहीं की होगी क्योंकि उपनिवेश-सचिव और लॉर्ड मिलनरने भी बार-बार कहा है कि सरकार उन भारतीयोंके व्यापारको छेड़ना नहीं चाहती जो लड़ाईसे पहले व्यापार कर रहे थे — चाहे उनके पास परवाने रहे हों या नहीं। जिन थोड़ेसे भारतीयोंने १८९९ में किसी तरह व्यापारके परवाने हासिल कर लिये थे उनमें और जिन्होंने परवाने तो हासिल नहीं किये थे परन्तु फिर भी व्यापार कर रहे थे उनमें बिलकुल फर्क नहीं हो सकता। बोअर सरकारके जमानेसे वे ऐसा गैरकानूनी तौरपर कर रहे थे परन्तु उस गैरकानूनी कार्रवाईको ब्रिटिश सरकारने पैदा किया था और वही उसका पोषण कर रही थी क्योंकि उसकी नजरमें १८८५ का कानून ३ सर्वथा घृणास्पद था। इसलिए लड़ाईसे पहलेके १५ वर्षोंमें भारतीयोंको ब्रिटिश संरक्षणमें विश्वास रखने दिया गया यहाँतक कि वे जब चाहें बाहर ट्रान्सवाल छोड़कर चले जाते और फिर वापस आ जाते कारोबार स्थापित करते उसे बेच देते और फिर जब चाहते तब पुन: स्थापित कर लेते थे। इसलिए पृथक बस्तियोंसे बाहर कानूनके विरुद्ध व्यापार करनेके अधिकारमें एक निहित स्वार्थ पैदा कर दिया गया था और यद्यपि यह निःसन्देह एक असाधारण स्थिति है फिर भी है तो एक सच बात। जब यह स्थिति मौजूद थी तभी लड़ाई छिड़ गई, और लड़ाईके कारणोंमें एक १८८५ का कानून ३ भी था। इसलिए भारतीयोंका यह सोचना बहुत स्वाभाविक था कि लड़ाईमें जीत होनेपर यह कानून खत्म हो जायेगा और यह निष्कर्ष भी निकलता है कि यदि ब्रिटिश भारतीय १८९९ के पहले कानून तोड़कर व्यापार कर सकते थे तो अब तो उनका दावा और भी प्रबल है क्योंकि इस बातका जरा भी महत्त्व नहीं कि वे लड़ाईके ठीक पहले व्यापार कर रहे थे या नहीं। कसौटी यह है कि लड़ाईसे पहले वे कभी ट्रान्सवालमें व्यापार करते थे या नहीं और अगर करते थे तो कमसे-कम अब भी उन्हें उस नीतिके अनुसार व्यापार करनेका हक है जिसका अनुसरण ब्रिटिश सरकारने बोअर-हुकूमतके दिनोंमें किया था क्योंकि जो भी भारतीय लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें प्रवेश करता था और अपना व्यापार जमा लेता था वह जानता था कि वह जब चाहे तभी व्यापार स्थापित कर सकता है और उसे भंग करके फिर जमा सकता है। इसलिए हम महसूस करते हैं कि यदि ब्रिटिश भारतीयोंके साथ न्याय करना है तो आयोग-की विषयावलीको बहुत व्यापक बनाना पड़ेगा। एशियाइयोंके पर्यवेक्षक श्री बर्जेसने आयोगके सामने गवाही देते हुए साफ-साफ बयान किया था कि लड़ाईके बाद ऐसे बहुत कम भारतीयों (?) को परवाने दिये गये थे जो प्रमाण देकर उनको यह सन्तोष नहीं करा सके कि वे लड़ाईसे पहले पृथक बस्तियोंके बाहर ट्रान्सवालमें व्यापार कर रहे थे। इसलिए जिन भारतीयोंको पृथक बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेके परवाने इस वक्त मिले हुए हैं, वे सब (जैसा कि ब्रिटिश भारतीय संघ हमेशा कहता रहा है) श्री बर्जेसके बयानके अनुसार व्यापार करनेके अपने अधिकारोंको पहले ही साबित कर चुके हैं। यद्यपि इसमें पुनरुक्तिका खतरा है, फिर भी हम कह सकते हैं कि इन परवानोंको जारी करते समय कोई शर्त नहीं लगाई गई थी और न्याय और अन्यायकी हमारी दृष्टिके अनुसार, यदि एक भी ब्रिटिश भारतीय व्यापारीको जो इस समय पृथक बस्तियोंके बाहर ट्रान्सवालमें व्यापार कर रहा है छेड़ा गया तो यह अन्याय होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-४-१९०४

१२४ नेटालमें विक्रेता-परवाना अधिनियम

उस दिन डीनेगमें सात भारतीय व्यापारियोंने परवाना-अधिकारीके निर्णयके विरुद्ध स्थानिक निकायमें अपील की। परवाना-अधिकारीने विक्रेता-परवानोंकी सातों अर्जियाँ नामंजूर कर दी थीं। जो शहादत पेश की गई उससे मालूम होता है कि उक्त व्यापारियोंमें से एक आठ सालसे दूकान कर रहा है, दूसरे भी पुराने दूकानदार हैं जिनके पास कई सालसे व्यापार करनेके परवाने हैं। चूँकि परवाना-अधिकारीने फिरसे परवाने देनेसे इनकार कर दिया था इसलिए स्थानीय निकायमें अपील की गई थी। एक अर्जदारने इस आशयकी गवाही दी कि उसके पास आठ वर्षसे परवाना है और उसका बही-खाता उसके समय-समयपर रखे हुए कच्चे हिसाबके आधारपर उसका अंग्रेज मुनीम लिखता है। दूसरोंके बही-खातोंकी भी यही प्रणाली है। दो दिनतक इन मामलोंकी सुनवाई करनेके बाद निकायने फैसला दिया कि चूँकि उसको उनके हिसाब रखनेके तरीकेसे सन्तोष नहीं हुआ है इसलिए उसने परवाना-अधिकारीका फैसला बहाल रखा है। अगर व्यवस्था इसी ढंगकी रही तो हमें बहुत अन्देशा है कि लगभग प्रत्येक भारतीय दूकानदारका सफाया हो जायेगा। इस बातको सभी जानते हैं कि छोटे दूकानदारोंकी बही-खाता रखने योग्य स्थिति नहीं होती। उनका लेन-देन सब नकद होता है। वे क्रय और विक्रय बहुत-कुछ नकद करते हैं और उन लोगोंसे बही-खाता रखनेकी अपेक्षा करना ही भारी सख्ती होगी। प्रस्तुत मामलेमें इन लोगोंने अंग्रेजी भाषामें बही-खाता रखनेका प्रयत्न किया है। स्पष्ट है कि निकाय उनसे यह अपेक्षा करता है कि वे योग्य मुनीमोंकी मार्फत रोजमर्राका बही-खाता रखें। इसका अर्थ है ६ या ७ पौंड या इससे भी अधिक माहवारी खर्च। जो छोटे-छोटे व्यापारी अपने व्यवसायमें १०-१५ पौंड माहवार मुश्किलसे बचा पाते हैं वे शायद इस प्रकारका महँगा शौक नहीं कर सकते। यदि स्थानीय निकाय इस तरहके स्पष्टतः बेहूदा नियमका आग्रह रखेंगे कि अंग्रेजी भाषामें योग्य मुनीमों द्वारा ही दैनिक बही-खाता लिखाया जाये तो इसका नतीजा होगा उपनिवेशमें कमसे-कम छोटे भारतीय व्यापारियोंका सरलतासे खात्मा। क्या विक्रेता-परवाना अधिनियम इस दृष्टिसे ही पास किया गया था? निकायके फैसलेसे कानूनमें संशोधनका प्रश्न फिरसे उठ खड़ा हुआ है। जब विक्रेता-परवाना अधिनियम पास किया गया था उस समय ही नगरपालिकाओंको दी हुई सत्ताका दुरुपयोग करनेकी प्रवृत्ति मौजूद थी। उसके बाद भी वेम्बरसेन्तका मुकदमा आया और उसका वांछित परिणाम भी हुआ, परन्तु वह केवल क्षणिक था। इसलिए जबतक विक्रेता-परवाना अधिनियममें कुछ ऐसे निश्चित अधिकार शामिल नहीं किये जाते जिनसे पीड़ित पक्ष सर्वोच्च न्यायालयतक पहुँच सके या उन कारणोंकी व्याख्या नहीं कर दी जाती जिनसे परवाने नामंजूर किये जा सकते हैं तबतक ऐसे मामले जैसे इनका ऊपर बताये हैं समय-समयपर होते ही रहेंगे। यदि लोगोंके निहित स्वार्थोंका आदर करना है तो यह मामला सरकारके गम्भीर विचार करनेके लायक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २-४-१९०४

१२५. पत्र : जोहानिसबर्गके अखबारोंको[1]

कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
अप्रैल ५, १९०४

महोदय,

श्री रॉयने[2] अगर उनके बारेमें यह समाचार सही है तो इस बातसे इनकार किया है कि स्वास्थ्य-अधिकारी अथवा लोक-स्वास्थ्य समिति दोनोंमें से किसी को भी कभी प्लेगके बीमारोंकी सूचना दी गई थी। इस इनकारको देखते हुए और इसलिए कि अब (देरसे ही सही) लोक-स्वास्थ्य समितिकी कोशिशसे डॉ. पेक्स और डॉ. मैकेंजी की सहायता और प्लेगके प्रकोपका पता लगनेके बाद मध्य मौसमके कारण बीमारी काबूमें आ गई है और इसलिए जनता निर्विकार होकर निर्णय करनेकी स्थितिमें है, मैं श्री रॉयकी सम्मतिसे डॉ. पोर्टर और अपने बीचका पत्र-व्यवहार प्रकाशनार्थ भेजनेका साहस करता हूँ।

इससे पता चलेगा कि आनेवाली घटनाओंकी काफी चेतावनी पिछली ११ फरवरीको अर्थात् हम लोगोंमें प्लेगके अस्तित्वका सरकारी तौरपर पता लगनेके ठीक १ महीना और ६ दिन पहले दे दी गई थी। उसे १५ फरवरीको जोरदार शब्दोंमें (जो मेरे लयालसे बादकी घटनाओंसे बिलकुल उचित सिद्ध हुए हैं) दुहरा दिया गया था। १ मार्चको डॉ. पोर्टरको एक पत्र लिखा गया था जिसमें अन्तमें निश्चित सूचना दी गई थी कि मेरी नज़र रायमें प्लेग वस्तुतः फैल गया है।

क्या इससे अधिक निश्चित बात और कोई हो सकती थी? इसका शायद एक ही जवाब है। जो सूचना दी गई थी वह गैरसरकारी थी और एक साधारण व्यक्तिकी तरफसे थी। परन्तु क्या मुर्दाघरके कागजातमें उसका कारण समर्थन उपलब्ध नहीं था जिससे हमें सरकारी तौरपर बताया गया है, यह सिद्ध होता था कि अस्वच्छ क्षेत्रमें मृत्यु-संख्या गैर-मामूली तौरपर बढ़ गई है? नहीं साहब सरकारी तौरपर जोरदार उपाय किये जानेके पहले तो उस दारुण शोकान्त घटनाके प्रत्यक्ष दर्शनकी जरूरत थी जो पिछले महीनेकी १८, १९ और २० तारीखोंको घटित हुई! जो साफ तौरपर सरकारी कर्तव्य था वह स्वयंसेवकोंको पूरा करनेके लिए छोड़ दिया गया था। जबतक रॉयने अपना बाड़ा पार्क रोपियोंपर जमा किया था इसलिए उन स्वयंसेवकोंको एक प्रकारका नरक-कुण्ड ही सौंपा गया था।

मुझे अस्वच्छ क्षेत्रके उस सजीव यद्यपि काल्पनिक वर्णनकी याद दिलानेकी जरूरत नहीं जो १९०२ के मध्यमें मेजर ओ'मियाराने किया था और जिसे १९०३ में डॉ. पोर्टरने दुहराया था। लोक-स्वास्थ्यके लिए उस समय भी खतरा इतना तात्कालिक समझा गया था कि नगर-परिषदको सलाह दी गई थी कि वह अविलम्बनकी कार्रवाईके लिए उस समयतक प्रतीक्षा न करे जबतक जोहानिसबर्गकी निर्वाचित परिषद प्राप्त नहीं हो जाती। १९०३ में

१. इस वक्तव्यपत्रके साथ गांधीजीने डॉ. पोर्टरके नाम लिखे गये अपने ११, १५ तथा २० फरवरी और १८ मार्चके पत्रोंकी नकलें जोहानिसबर्गके अखबारोंको भेजी थीं। वे सब इस खण्डमें यथास्थान तिथि-क्रमसे दिये गये हैं।

२. लोक-स्वास्थ्य समितिके अध्यक्ष।

१ अप्रैलके दिन परिषदको अधिग्रहणका अधिकार मिला था। उस समय उसे अधिकार था और उसका स्पष्ट कर्तव्य भी था कि वह, जिन लोगोंको बेदखल किया जाता था उनके बसानेके लिए कोई स्थान निश्चित करती। वह अपने कर्तव्यमें चूक गई। उसने ६ जून १९ ४ को अधिग्रहणके इरादेकी सूचना दी परन्तु वह अस्वच्छ क्षेत्रके लोगोंके बसानेके स्थानकी व्यवस्था फिर भी न कर सकी। २६ सितम्बर १९ ४ को उसने कब्जा ले लिया। उस दिन वह अगर हरएक किरायेदारकी मालिक-मकान न बन जाती और दस्तूरी (कमीशन) पानेवाले अपने कर उगाहकोंको यह अधिकार न दे देती कि जितने भी किरायेदार अर्जी दें उन सबको वे मकान किरायेपर दे सकते हैं और जैसा वह अब व्यवहारमें आकर कर रही है उसी तरहका व्यवहार उस इलाकेके साथ करती तो क्या करदाताओंको यह २ हजार पौंडका जुर्माना देना पड़ता? क्या भारतीयोंकी ही सही कीमती जानें जातीं? क्या स्मृतिके रूपमें बचे सिर्फ एक सदस्यको छोड़कर एक सारेके-सारे परिवारका सफाया हो जाता?

इतनेपर भी आम तौरसे बाहरी जिलामें कष्टोंकी उग्रता भारतीयोंको ही महसूस कराई जा रही है। उनको मण्डियोंमें काम करनेसे वंचित किया जाता है और अपनी रोजी कमानेसे रोका जाता है। अगर वहाँ प्लेग न हो तो भी उन्हें पृथक (क्वारंटीन) में रखा जाता है या कमसे-कम शहरोंसे बहुत दूर एकान्त शिविरोंमें भेज दिया जाता है। उनके सब कामोंको मैं उचित नहीं बताना चाहता। इसके विपरीत मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे देशवासियोंमें से गरीब तबकेके लोग देखरेखके बिना सफाईके नियमोंका पालन नहीं करते। परन्तु मेरा यह निवेदन जरूर है कि वे लोक-स्वास्थ्यके रक्षक नहीं हैं। वे अपना कर्तव्य पालनमें चूके हैं, तो व्यक्तिगत रूपमें और उसी रूपमें उन्होंने कष्ट भी पाये हैं। लोक-स्वास्थ्य समितिका काम है कि वह स्वास्थ्यके नियमोंका पालन कराये न कि उन्हें बुरी तरहसे ताड़े जैसा कि उसने पिछले २६ सितम्बरसे किया है।

मैंने आपकी शिष्टताका लाभ मात्र लोक-कल्याण और अपने देशवासियोंके दोहरे हितोंके खातिर उठाया है।

आपका, आदि,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-४-१९ ४

१२६. पत्र ई० एफ० सी० लेनको

[जोहानिसबर्ग]
मार्च ८, १९१४

श्री अर्नेस्ट एफ सी लेन
गृह-कार्यालय (ऑफिसेज ऑफ दि इंटीरियर)
केप टाउन

प्रिय श्री लेन

मैंने संघ-सरकारके *गजट* में विवाह-सम्बन्धी घोषणा देखी है जिसके मुताबिक उन लोगोंके लिए जो अपना विवाह-संस्कार अपने मुस्लिम या यहूदी विवाह-अधिकारियों द्वारा कराना चाहते हैं अपने इस विचारकी सूचना प्रकाशित करना लाजिमी है। मुझे पता नहीं कि यह घोषणा जान-बूझकर की गई है और सरकारकी भावी नीतिका पूर्व-संकेत करनेवाली है, अथवा यहूदियोंके लिए जरूरी हुई है और उसमें जिस नेटाल विवाह-कानूनका उल्लेख किया गया है उसके अनुसार मुसलमानोंका उल्लेख करना आवश्यक हो गया है। अगर पहली बात है तो मैं जनरल स्मट्सका[1] ध्यान इस तथ्यकी ओर खींचना चाहता हूँ कि मैंने भारतीय समाजकी ओरसे जो-कुछ निवेदन किया है, वो यह है कि भारतीय धार्मिक रीति-रिवाजोंके अनुसार जो एक-पति-पत्नी विवाह हो चुके हैं उन्हें कानून-सम्मत करार दिया जाये और भविष्यमें भी ऐसे विवाह वैध माने जायें। विचाराधीन विवाह-सम्बन्धी घोषणासे विवाहके निर्णय विधि इत्यादिके प्रकाशनका ऐसा दौर शुरू हो जायेगा जो हिन्दू और मुस्लिम दोनोंके रीति-रिवाजोंके सर्वथा विरुद्ध है। और न ऐसे प्रकाशनकी आवश्यकता ही है क्योंकि उक्त दोनों मजहबोंमें विवाह-संस्कार अत्यन्त उपचारपूर्वक किये जाते हैं जिसके फलस्वरूप धोखाधड़ीवाले विवाह असम्भव हो जाते हैं। मुझे लगता है कि जब आयोगकी सिफारिशोंको अमली शक्ल देनेके लिए कानूनका मसविदा बनाया ही जा रहा है तभी मुझे यह बात जनरल स्मट्सके ध्यानमें ला देनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त श्री मेलरको श्री बर्टनने जो उत्तर दिया है उसमें मैंने देखा है कि रेलवे विभागमें काम करनेवाले गिरमिटिया भारतीयोंसे तीन पौंडी करकी किस्तोंके रूपमें अपनी मजदूरीमें से कुछ रकम कटवा दी है। मेरा नम्र निवेदन है कि आयोगने इस करके बारेमें जो रुख जाहिर किया है उसका तथा अदायगीकी इस प्रणालीको जारी रखनेका मेल नहीं बैठता। जिन विषयोंपर आयोगको सिफारिशें करनी थी उनमें से एक मुख्य विषय ३ पौंडी कर था। निवेदन है कि कमसे-कम आयोगका विवरण प्राप्त होनेके समयतक सरकार यह कटौती रोके रहती तो अच्छा होता। और चूँकि आयोग इस करको खतम कर देनेके बारेमें ऐसी जोरदार सिफारिशें पेश कर चुका है मैं पूरी आशा करता हूँ कि सम्बन्धित अधिकारियोंको अगर अभीतक हिदायतें नहीं दी गई हैं तो अब दे दी जायेंगी कि वे कटौतीपर आग्रह न करें क्योंकि मेरी यह धारणा है कि यदि सरकारने इस करको रद करनेका विधेयक पेश किया तो पिछला कर वसूल न किया जायेगा।

आपका सच्चा,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ५९५७) से।

१. जॉन क्रिश्चियन स्मट्स (१८७०–१९५०) बोअर-युद्धके एक सेनापति, उपनिवेश सचिव और शिक्षा-मन्त्री (१९०७), प्रतिरक्षा, खान और गृहमन्त्री (१९१) और प्रधानमन्त्री (१९१९–२४ और १९३९)।

१२७ ट्रान्सवालमें प्लेग[1]

यद्यपि इस अभिशापने उपनिवेशका पूरी तरह पिण्ड नहीं छोड़ा है फिर भी अब इसकी भयानकता हट गई है और सरकारी तौरपर विज्ञापित किया गया है कि चूँकि निमोनियावाला प्लेग अब गिल्टीवाले प्लेगमें बदल गया है इसलिए प्लेगकी जो थोड़ीसी घटनाएँ हो सकती हैं उनके इतनी घातक होनेकी आशंका नहीं है। इस कारण आतंकित होनेकी तो जरूरत नहीं है किन्तु फिर भी जोहानिसबर्गके बाहर ऐसे कदम उठाये जा रहे हैं जो दो बातोंके आधार पर ही उचित कहे जा सकते हैं — या तो प्लेग बढ़ रहा है या जो गैर-मामूली पाबन्दियाँ खास तौरपर एशियाइयोंपर ही लागू की जा रही हैं उनके पीछे कोई छिपा हेतु है। स्पष्ट ही डॉ. पेक्सने जब यह कहा था कि दूरस्थ जिलोंमें जो कदम उठाये जा रहे हैं उनका हेतु प्लेगको रोकनेकी अपेक्षा भारतीयोंका उन्मूलन करना अधिक है तब उन्होंने सच ही कहा था। मिसालके तौरपर क्रूगर्सडॉर्पमें जहाँ प्लेगकी एक भी घटना नहीं हुई और जहाँ पृथक बस्तीमें रहनेवाले भारतीयोंका स्वास्थ्य उत्तम था अधिकारी अचानक इस निर्णयपर पहुँच गये कि उन्हें बस्तीके तमाम निवासियोंको शहरसे दूर किसी स्थानपर हटा देना चाहिए। स्वभावतः उन गरीब लोगोंने ऐसी मनमानी कार्रवाईपर रोष प्रकट किया। परन्तु यह देखते हुए कि भारतीयोंको बहुत बड़ा द्वेष भाव सहना पड़ रहा है और उनमें सबसे पहले प्लेग फैलनेके कारण वह और भी बढ़ गया है उस वक्त यह उचित समझा गया कि लोग अधिकारियोंकी इच्छाके अनुसार चलें। इसलिए श्री रिच क्रूगर्सडॉर्प गये और उन्होंने लोगोंको स्थिति समझाई। फलतः अब चाइसे दूकानदारोंको छोड़कर वे सभी शहरसे दूर एक अस्थायी शिविरमें बस गये हैं। परन्तु बात इतनी ही नहीं है। बस्तीके अधिकांश निवासी जिन्हें इस तरह हटाया गया है फेरीवाले हैं। वे इस हुक्मके कारण बिलकुल बरबाद हो गये हैं और इस समय मिक्षाके दानपर गुजर कर रहे हैं क्योंकि नगरपालिकाने लोगोंको खिलाने-पिलानेका भार नहीं लिया है। व्यक्तिगत रूपमें लोग फेरीवालोंसे वास्ता न रखें तो इसमें किसीका जोर भले ही न हो; किन्तु नगरपालिकाकी उनके लिए मंडीके दरवाजे बिलकुल बन्द करनेकी कार्रवाईके लिए क्या कहा जाये? यह कठोर, अनावश्यक और गैरकानूनी मालूम होती है। पीटर्सबर्गमें भी स्थिति बहुत-कुछ ऐसी है। परन्तु भारतीयोंके विरुद्ध युद्ध छेड़नेवालोंकी सूचीमें पॉचेफस्ट्रम सबसे आगे है। जब दो या तीन भारतीय जोहानिसबर्गसे रेलगाड़ी द्वारा वहाँ पहुँचे तो उन्हें पॉचेफस्ट्रमके अधिकारी पृथक बस्तीमें ले गये। फिर बस्तीके लोगोंके बीच उनकी उपस्थितिको बहाना बनाकर सारी बस्तीको सूतक (क्वारंटीन) में रखा गया और इस प्रकार भारतीय व्यापारको पूरी तरह उजाड़ दिया गया। याद रहे कि नगरके भागोंको अछूता छोड़ दिया गया है क्योंकि

१. [illegible]

यूरोपीय मुहल्लोंके लिए उनकी जरूरत है। जब सरकारसे अपील की गई तब उसने कहा कि इस मामलेमें कोई सहायता देनेकी सत्ता उसके पास नहीं है। हाइडेलबर्गमें नगरपालिकाने मस्जिदमें नमाजकी मनाही करके बहुत ही खतरनाक रवैया इख्तियार किया था। खुशीकी बात यह है कि अब उसकी अक्ल ठिकाने आ गई है और उसने बड़ी कठिनाईके बाद अब मनाही वापस ले ली है। परन्तु इन उदाहरणोंसे ट्रान्सवालकी भारतीय आबादीके कष्टोंकी कुछ कल्पना हो सकती है। सिर्फ जोहानिसबर्ग और प्रिटोरियामें ही अधिकारी कुछ विवेकशील और विचारवान रहे हैं।

जोहानिसबर्गमें पृथक बस्तीकी सारी आबादी अब क्लिपस्प्रूटमें हटा दी गई है। यह जोहानिसबर्गसे १२ मीलसे भी ज्यादा दूर है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे स्थान मोहक है और तम्बुओंमें रहनेसे लोगोंको फायदा भी बहुत होगा। सारा शिविर श्री टॉमकिन्सनकी देखरेखमें है। श्री बर्जेस उनके सहायक हैं और लोगोंको नगरपालिकाके खर्चसे भोजन दिया जाता है। जो भोजन-सामग्री दी जाती है उसकी मात्रा निम्नलिखित है। कुछ चीजोंको छोड़कर इसे काफी ठीक समझा जा सकता है

१ डबल रोटी या १ पौंड आटा
½ पौंड चावल
½ पौंड मांस या मछली हड्डीके साथ
२ पेन्सकी तरकारी दालके साथ (अन्नाहारियोंके लिए)
१½ पेन्सकी तरकारी (मांसाहारियोंके लिए)
१ डिब्बा दूध प्रति बालिग प्रति पखवारा
½ औंस चाय या काफी
१ औंस दाल
१ औंस घी या सरसोंका तेल
१ औंस नमक रोज
१ औंस चीनी
१ औंस मसाला
½ औंस इमली
¼ औंस मिर्च
५ पौंड लकड़ी और कोयला
१ मोमबत्ती फी तम्बू, रोज
१ पट्टी साबुन फी तम्बू रोज
२ डिब्बियाँ दियासलाई, फी तम्बू फी सप्ताह

शिविरमें सोलह सौ भारतीय रह रहे हैं जिनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल हैं। एक मील दूर काफिरोंका शिविर है। यह ध्यान देने लायक है कि जब लोगोंको बस्तीसे हटाया गया उस समय वहाँ नियमोंके विरुद्ध लगभग डेढ़ हजार काफिर पाये गये और वे सब नगरपालिकाके किरायेदार थे। इस तरह लोगोंको अचानक हटानेसे हजारों पौंडका नुकसान हुआ है। इसमें अतिशयोक्ति नहीं है क्योंकि सभी लोग रोजाना मजदूरी कमानेवाले श्रमिक हरगिज नहीं हैं। खासी हैसियतके लगभग बीस दुकानदार हैं और धोबियोंकी दुकानें भी हैं जिनके ग्राहकोंकी संख्या बहुत बड़ी है। प्लेग समितिने प्लेग फैलनेके समय सात सौ पौंड धुलाईके कपड़े बस्तीसे बाहर निकाल कर साफ — छूत-रहित — किये थे और ग्राहकोंको पहुँचाये थे। दुकान

डॉ॰ पोर्टरको लिखे गये पत्रोंमें तो केवल आनेवाली विपत्तिकी चेतावनी दी गई थी परन्तु एक बार भी यह कभी नहीं कहा गया था कि प्लेग वास्तवमें फैल गया है।

श्री मैकफ़ैनिने[1] सन्दिग्ध मृत्युओंका ब्योरा देनेकी मेरी असमर्थताका जिक्र करते हुए एक ही मुलाकातका[2] हवाला दिया है। बात यों हुई थी। मेरे सामने बाड़ोंके नाम और नम्बर नहीं थे। मैंने उस मुंशीको फोन किया जिसे इस मामलेमें कुछ जानकारी थी और उसी समय वहीं श्री मैकफ़ैनको कमसे-कम तीन आदमियोंके नाम बताये गये जो मेरी रायमें प्लेगसे मरे थे। बाड़ोंके नम्बर भी बताये गये थे।

मैंने कभी नहीं कहा है कि काफिरोंको भारतीय बस्तीमें पहले-पहल उस समय लाया गया जब कि बस्तीपर परिषदका अधिकार हो गया था और मैं मुक्त रूपसे स्वीकार करता हूँ कि मेरे कुछ देशवासियोंने काफिरोंको किरायेदारके रूपमें रखा था। परन्तु मैंने कहा है, और उसे दुहरानेका साहस करता हूँ कि २६ सितम्बरके बाद उनसे बस्तीको पाट दिया गया और मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि कई बाड़ोंमें जिनमें उस तारीखसे पहले काफिर कभी नहीं रहे थे उस तारीखके बाद वे भर दिये गये। यदि उस तारीखको जो अधिक भीड़ थी उसे परिषद दूर नहीं कर सकती थी तो मेरी रायमें उसमें कुछ भी बढ़ती करना असम्य था। और यह बात कि बस्तीमें भारतीय और काफिर दोनोंकी संख्यामें वृद्धि हुई, साबित की जा सकती है। बस्तीमें ९६ बाड़े थे। मान लीजिये कि छ बाड़े खाली थे। उन्हें घटा दिया जाये तो २ मार्च १९ ४ को बस्तीमें प्रति बाड़े ३५ निवासीसे ऊपर थे। और यदि इनमें आप कमसे-कम १   और जोड़ दें (यह मेरे खयालसे उन लोगोंकी संख्या है जो मार्च मासमें बस्ती छोड़ गये थे) तो प्रति बाड़ा ४५ हो जाते हैं।

मेरी सबसे बड़ी शिकायत यह नहीं है कि लोक-स्वास्थ्य समिति प्लेग फैलनेकी घोषणा करनेमें चूक गई, परन्तु यह है कि वह या नगर-परिषद आगेकी बात सोच कर उस विपत्तिका उपाय करनेका अपना फर्ज अदा न कर सकी जिसकी चेतावनी उसे १९ २ में मिल चुकी थी १९ ३ में दुहराई गई थी और पिछली फरवरीमें और जोरके साथ दोहराई गई थी यद्यपि कमसे-कम पिछले २६ सितम्बरको वह कारगर तरीकेपर अपना कर्तव्य पालन करनेकी स्थितिमें थी।

आपका,
मो॰ क॰ गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २३-४-१९ ४

१. [illegible]।

२. यह मुलाकात गांधीजी द्वारा १ मार्चको डॉ॰ पोर्टरको पत्र लिखनेके तीन बाद हुई थी।

भरा है तो वे उस देशकी तरफ बेतहाशा दौड़ पड़ेंगे। परन्तु यह दुःखकी बात है कि वे अपने उपनिवेशोंमें आकर बसनेवाले सिख सिपाहियों या उनके देशवासियोंका स्वागत करनेके लिए बिलकुल तैयार नहीं हैं। औपनिवेशिक नेताओंको यह खयाल होना वांछनीय है कि उनका यह असंगत रवैया कुछ ऐसा है जिसमें सुधार होना चाहिए। सब जैसे ही रहना और बदलेमें कुछ देना नहीं यह लेनेवालेके लिए बहुत सन्तोषजनक हो सकता है परन्तु इसे न्यायपूर्ण अथवा उचित तो नहीं माना जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ९-४-१९०४

१२९ पत्र "रैंड डेली मेल" को

जोहानिसबर्ग
अप्रैल १४, १९०४

सेवामें
सम्पादक
रैंड डेली मेल

महोदय

प्लेग फैलनेके बारेमें मैंने जो वक्तव्य दिये थे उनका खण्डन करते हुए लोक-स्वास्थ्य समितिने अपने प्रतिवेदनमें[1] कुछ ऐसी बातें कही हैं, जिनके कारण थोड़ा-सा स्पष्टीकरण करनेके लिए आपसे स्थान माँगनेकी जरूरत है।

ध्यान देनेकी बात है, अब इससे इनकार नहीं किया जाता कि मैंने प्लेग फैलनेके बारेमें १ मार्चको सूचना दे दी थी।

उक्त रिपोर्टमें मेरे इस बयानका खण्डन करनेकी कोशिश की गई है कि न्यूमोनियाके अस्पतालसे १ मार्चको दी गई मेरी रायका भीषण रूपमें समर्थन हुआ है। जुलाई १९०३ से इस वर्षके फरवरी मासतक की अवधिके आँकड़े पेश किये गये हैं जिनसे प्रकट होता है कि किसी भी अकेले मासमें निमोनियासे अधिकतम मृत्यु-संख्या सात थी और इसी कारणसे औसत मृत्यु-संख्या प्रतिमास ४.७५ थी।

पिछले मार्च मासके पहले १७ दिनोंमें इसी कारणसे चौदह मृत्युएँ हुई थीं अर्थात् औसतकी दर २५.१५ प्रतिमास थी। दूसरे शब्दोंमें मेरे पत्रकी तारीखके बादके पहले पखवारेमें मृत्युसंख्या पिछले आठ मासोंकी सबसे अधिक मृत्युसंख्याकी सारे तीन गुनी थी और उसी कालकी औसत मासिक मृत्युसंख्याकी छ गुनी थी।

इसलिए मैं फिर पूछनेका साहस करता हूँ कि पिछले १ मार्चको प्रकट किये गये मतका इससे भीषण रूपमें समर्थन होता है या नहीं? यह तो ख्वामख्वाह मान लिया गया है कि मैंने जो मृत्यु-संख्या बताई है उसका १ मार्चसे पहलेके कालसे कोई सम्बन्ध है। फरवरीमें

[1] यह जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदको ११ अप्रैलको दिया गया था और १ अप्रैलको उसकी विशेष समितिकी कार्यवाहीमें शामिल किया गया था। (म्युनिसिपल कौंसिल रेकर्ड्स, अप्रैल ११, १९०४)

उल्लंघन करके ब्रिटिश भारतीयोंको अनावश्यक पाबन्दियोंका शिकार बनायें तब यह कहना पड़ता है कि "अब बस करो"। ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति अनिश्चित तो है ही प्लेगके फैल जानेके कारण और भी अधिक कठिन हो गई है। और, हमारा खयाल है कि लॉर्ड मिलनरका जो उनकी अपनी ही उपमाके अनुसार "पहरेके बुर्जपर बैठे हैं" और जिन्हें अपनी आँखोंके आगे होनेवाली सब बातोंको एक विशाल दृष्टिसे देखनेका अवसर प्राप्त है साफ फर्ज है कि वे निर्दोष भारतीयोंको प्लेगकी सावधानियोंके बहाने और अधिक सताये जानेसे बचायें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १६–४–१९०४

१३१ गल्पका महत्त्व

ट्रान्सवाल उपनिवेशके स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ० टर्नरने प्लेगके विषयमें अखबारोंके नाम प्रेषित अपने पत्रमें कहा है कि बीमारीको रोकने या उसका उपशमन करनेके लिए सीधी-सादी और साधारण पाबन्दियोंसे अधिक और कुछ करनेकी जरूरत नहीं है। उन्होंने अपनी यह राय दी है कि जो असाधारण कदम उठाये जा रहे हैं वे केवल लोगोंकी भावनाको ही तृप्ति देते हैं। इस कथनकी पूरी-पूरी परख पिछले सप्ताह जोहानिसबर्गकी भारतीय बस्तीमें लगाई गई आगसे हो गई। असलमें वह एक नाटकीय प्रदर्शन था जिसका उद्देश्य लोगोंकी कल्पनाको उत्तेजित करना था। हाँ मकान निस्सन्देह जलाकर साफ कर दिये जाने चाहिए थे किन्तु यह भावना तथ्योंके बिलकुल विपरीत है कि चूँकि वे जला दिये गये हैं इसलिए प्लेगका एक-मात्र उद्गम नष्ट हो गया है। और जैसा हमारे संवाददाताने बताया है कि बस्तीके चारों ओरके घेरे और उसके निवासियोंकी हलचलोंपर नियन्त्रणकी बात एक निरी गप्प है, जिसका पोषण किया जा रहा है — सफाईकी जरूरतें पूरी करनेके लिए नहीं बल्कि जनताकी भावनाको सन्तुष्ट करनेके लिए। बस्तीके बाहरके झोंपड़े इस बुरी तरह जोते गए स्थानके बुरेसे-बुरे हिस्सोंसे कहीं ज्यादा खराब हैं। प्लेगकी अत्यन्त घातक घटनाएँ जोहानिसबर्गके वर्गमंडलोंमें ऐंसम रोडपर हुई हैं। दूसरी घटनाएँ भी जोहानिसबर्गके अस्वच्छ क्षेत्रके भीतर, परन्तु बस्तीके बाहर हुई हैं। उन स्थानोंको छूत-रहित बनानेके सिवा कुछ नहीं किया गया। और शायद करना जरूरी भी नहीं था। वहाँ रहनेवाले लोगोंकी हलचलोंमें हस्तक्षेप नहीं किया गया। फिर भी डॉ० पैक्स चाहे कितना ही तर्क करते और कितनी ही ठोस दलीलें देते जनता का मन इतना शान्त न होता जितना बस्तीको इस तरह जला देने और उसमें रहनेवाले लोगोंको अलग रख देनेसे हुआ। किन्तु अब चूँकि ये दोनों कार्रवाइयाँ की जा चुकी हैं हम विश्वास रखें कि कमसे-कम जहाँतक जोहानिसबर्गका सम्बन्ध है, ब्रिटिश भारतीय आबादी उचित रूपसे स्वतन्त्र छोड़ दी जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १६–४–१९०४

यद्यपि प्लेगने जोहानिसबर्गका पिण्ड लगभग छोड़ दिया है फिर भी भारतीयोंके विरुद्ध पाबन्दियाँ अभी पूरी सख्तीसे लगी हुई हैं। इस कार्रवाईमें पॉचिफस्ट्रूम अगुवा मालूम होता है, जैसा कि नीचे लिखी बातोंसे स्पष्ट होगा:

१ उन एशियाइयों और रंगदार लोगोंको जो प्लेग-पीड़ित इलाकोंसे पॉचिफस्ट्रूम पहुँचें दोमें से एक बात पसन्द कर लेनेको कहा जाये — या तो वे छूत-निवारणके लिए दस दिनोंतक अलग रहें या जहाँसे आये हैं वहीं लौट जायें।

२ एशियाइयों और भारतीयोंको शहर-खाससे हटा दिया जाये।

३ पुलिस अधिकारियोंसे अनुरोध किया जाये कि वे एशियाइयों और वतनियोंको मुख्य सड़कोंसे नगरमें घुसनेसे रोकें।

४ पॉचिफस्ट्रूम और जोहानिसबर्गके बीचके स्टेशनों और जोहानिसबर्गके उत्तरके स्टेशनोंसे सभी प्रकारके फलोंका आना बन्द कर दिया जाये।

५ लोक-स्वास्थ्य उपनियमोंकी धारा ७ छ महीनेके लिए लागू कर दी जाये।

६ अपने मालिकोंके साथ आनेवाले अथवा मवेशियोंकी देखभाल करनेवाले वतनियोंको इधरसे उधर गुजरने दिया जाये बशर्ते कि उनके पास अपने मालिककी मासिक पास मौजूद हों, जिनसे यह साबित हो कि वे इसी जिलेके निवासी हैं।

इस प्रकार भारतीयोंकी गति-विधि वतनियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक कठोरतासे नियन्त्रित है हालाँकि जोहानिसबर्गसे बाहरके जिलोंमें अन्य जातियोंकी अपेक्षा भारतीयोंमें प्लेगकी प्रमुखता हरगिज ज्यादा नहीं रही है। सच तो यह है कि भारतीय प्लेगसे अधिक मुक्त रहे प्रतीत होते हैं। स्वयं जोहानिसबर्गके बारेमें भी हमने पिछले सप्ताह जो पत्र-व्यवहार छापा था उससे बिलकुल साफ जाहिर होता है कि प्लेग फैलनेका सारा दोष नगर-परिषदका है। २६ सितम्बरके बाद — जिस दिन नगर-परिषद मालिकके रूपमें वहाँ आई — वहाँ बहुत ज्यादा भीड़-भाड़ हुई। यदि यह अत्यधिक भीड़-भाड़ रोक दी जाती तो शायद उपनिवेशभर में कहीं भी बिलकुल प्लेग न हुआ होता। बस्तीमें रहनेवाले भारतीयोंने इस लज्जाजनक स्थितिपर आपत्ति की थी। उन्हें हालातसे मजबूर होकर ही बस्तीमें रहना पड़ा था। वे नगर-परिषदके किरायेदार नहीं बनना चाहते थे और उन्होंने कानूनके अनुसार बस्तीके बदलेमें दूसरे स्थानकी बार-बार माँग की थी। इसलिए यह बिलकुल स्पष्ट है कि जोहानिसबर्गमें जो भयंकर प्लेग फैला वह ऐसी परिस्थितियोंमें फैला जो भारतीयोंके काबूसे बिलकुल बाहर थीं। इन तथ्योंकी रोशनीमें यह स्वाभाविक निष्कर्ष निकलता है कि भारतीयोंपर जो विशेष प्रतिबन्ध लगाये गये हैं वे सर्वथा अनुचित और अनावश्यक हैं। केन्द्रीय सरकार लाचारीकी स्थिति बता सकती है और कह सकती है कि जबतक स्थानीय अधिकारियोंकी कार्रवाई प्लेगके नियमोंके विरुद्ध नहीं है तबतक वह उसमें दखल नहीं दे सकती। परन्तु हमारी शिकायत तो स्वयं नियमोंके विरुद्ध है खास तौरपर जब कि उन नियमोंके अनुसार दी गई सत्ताका परिषद और स्थानीय निकाय दुरुपयोग करते हैं और उसको व्यापारिक ईर्ष्याकी तृप्तिका साधन बनाते हैं। हमने अनेक बार स्वीकार किया है कि प्लेगके आतंकके दिनोंमें कुछ कष्ट अनिवार्य होता है और इस अनिवार्यताको पूरा करनेके लिए स्थानीय अधिकारियोंको पर्याप्त सत्ता देनी चाहिए। परन्तु जब पॉचिफस्ट्रूमकी भाँति स्थानीय अधिकारी सारी मर्यादाओंका

१३३. रंगके खिलाफ लड़ाई

मार्च ११ के ऑरेंज रिवर उपनिवेशके गज़टमें रजिस्टर्ड गाड़ियोंके लिए संयुक्त स्वास्थ्य निकायके ये विनियम छपे हैं:

कोई गाड़ीका मालिक जो अपनी गाड़ीको केवल रंगदार यात्रियोंको ही ले जानेके लिए इस्तेमाल करना चाहता है टाउन क्लार्कसे एक तख्ती प्राप्त कर सकता है जिसपर 'रंगदार यात्रियोंके लिए' शब्द लाल तौरपर छपे होंगे और जो बाहरकी तरफ प्रमुख रूपमें गाड़ीके पीछे या बाईं ओर लगाई जायेगी।

किसी रंगदार व्यक्तिको सिवा उन रजिस्टर्ड गाड़ियोंके, जो इसी कामके लिए अलग की गई हों और जिनपर पहचानके लिए पहले बतायी हुई रंगीन तख्ती हो किसी रजिस्टर्ड गाड़ीमें सफर नहीं करने दिया जायेगा।

हमने रंगदार लोगोंके विरुद्ध ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी सरकारके विष-भरे विरोधी रवैयेकी इतनी बार चर्चा की है कि हम अपनी बातपर जोर देनेके लिए उपर्युक्त अंशोंकी ओर अपने पाठकोंका केवल ध्यान आकर्षित कर देते हैं। अधिक टिप्पणीकी जरूरत नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १६-४-१९०४

१३४. शिविरका जीवन[1]

अप्रैल २, [१९०४]

प्लेगका आजतकका लेखा-जोखा यह है:

प्लेगके प्रमाणित रोगी — १५ गोरे, ४ रंगदार (जिनमें मलायी भी शामिल हैं), ५४ एशियाई, १५ वतनी। इनमेंसे मृत्युएँ — ७ गोरे, ५१ एशियाई, १४ वतनी।

सन्दिग्धोंमें १ गोरे, १ एशियाई और २५ वतनी हैं। ये आँकड़े जोहानिसबर्गके हैं। जर्मिस्टनमें प्लेगके प्रमाणित रोगी ५ वतनी और १ एशियाई हुए हैं। सन्दिग्धोंमें एशियाई कोई नहीं और वतनी ११ हैं। इनमें से एकमात्र बीमार एशियाई मर गया है। बेनोनीमें प्रमाणित प्लेगका रोगी केवल एक वतनी हुआ है और वह मर गया है। क्रूगर्सडॉर्पमें एक वतनी प्लेगका मरीज था और ५ संदिग्ध। संदिग्ध भी वतनी थे। उनमें से तीन प्लेगके रोगी सिद्ध नहीं हुए। इस प्रकार, देखा जायेगा कि एशियाई रोगी एक तरहसे वे ही थे जो पहले दौरमें बीमार हुए। वृद्धि ज्यादातर वतनी बीमारोंमें और थोड़ी-सी गोरे बीमारोंमें भी हुई। जोहानिसबर्गके बाहरके जिलोंमें, क्रूगर्सडॉर्पमें और बेनोनीमें कोई एशियाई बीमार नहीं हुआ। जर्मिस्टनमें एक हुआ। इस प्रकार, जिसने अबतक पहले दिया हुआ बयान कि यह बीमारी एशियाइयोंको ही खास तौरपर नहीं होती अब भी नहीं है। किन्तु क्लिपस्प्रूटके शिविरमें अभीतक आराम

1. यह "इनसाइड सेग्रिगेशन कैम्प्स" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था।

१४३. ट्रान्सवालमें परवानोंका मामला

ब्रिटिश भारतीयोंको व्यापारिक परवाने देने सम्बन्धी परीक्षात्मक मुकदमेकी सुनवाई हो चुकी और, जैसी कि आशा की थी, निर्णय सुरक्षित रखा गया है। दोनों ओर बड़े-बड़े वकील रखे गये थे। ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे सर्वश्री लियोनार्ड एसक्वेन, ग्रेगरोवस्की और डक्सबर्स थे और ट्रान्सवाल सरकारकी तरफसे सर्वश्री वार्ड, मैक्सूब और बर्न्स बेथ नियुक्त थे। मुख्य प्रश्न "निवास" शब्दकी व्याख्या करनेका था। ब्रिटिश भारतीयोंका कहना था कि सरकार द्वारा नियत की गई बस्तियों अथवा विशेष गलियोंमें ही सीमित "निवास" में व्यापार शामिल नहीं है — खास तौरसे इसलिए कि कानूनके अनुसार बस्तियोंमें रहनेकी पाबन्दी केवल सफाईके उद्देश्यसे लगाई गई है। इसके विपरीत सरकारकी दलील यह थी कि "निवास" में व्यापार भी शामिल है, खास तौरसे इस बिनापर कि हबीब बनाम फ़ीयूल[1] मुकदमेमें भूतपूर्व दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके उच्च न्यायालयने इस शब्दका यही अर्थ किया था। याद रखना चाहिए कि यह फैसला सर्वसम्मत नहीं था। यह भाग्यकी विडम्बना है कि जब भूतपूर्व गणराज्यके उच्च न्यायालयके सामने उस मामलेमें बहस हुई थी तब न्यायाधीशोंके सामने ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधि उपस्थित थे और उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंके कथनका समर्थन करनेकी कोशिश भी की थी, परन्तु, अब समय बदल गया है और साथ ही ब्रिटिश सरकार भी बदल गई है। अब वह उसी मंचपर है जिसपर भी क्रूगरकी सरकार थी। ब्रिटिश सरकारकी माँग है कि मामला खारिज कर दिया जाये और खर्च वादियोंको देना पड़े। भारतीयोंके लिए मामला अत्यन्त महत्त्वका है। उसमें जिन्दगी और मौतका है और यह शुभ है कि वे अपनी ओरसे सबसे बड़े कानून-पण्डितोंको खड़ा करनेमें समर्थ हो गये हैं। इसलिए, अब यदि उन्हें मुकदमेमें हारना ही पड़ा तो उसका कारण सर्वोत्तम कानूनी सलाहका अभाव नहीं होगा। इस समय ट्रान्सवालमें बड़ा अनुकूल अवसर है। विधानका जो प्रश्न भूतपूर्व उच्च न्यायालयके सामने नहीं उठाया जा सका था उसे अब भारतीयोंकी ओरसे श्री लियोनार्डने निर्भीकताके साथ उठा दिया है। सर रिचर्ड सॉलोमनने खुद स्वीकार किया है कि वे गणराज्यके न्यायाधीशोंके फैसलेको समझ नहीं सके। इसलिए भारतीयोंके पक्षमें बहुत कुछ है, और हम आशा करें कि निर्णय ऐसा होगा जिससे यह दुःखदायी सवाल हमेशाके लिए निपट जायेगा — और ऐसे ढंगसे कि ट्रान्सवालके सैकड़ों ब्रिटिश भारतीय व्यापारी फिरसे स्वच्छन्द होकर साँस ले सकेंगे। लेकिन अगर ब्रिटिश न्यायाधीश अपनेको पिछले उच्च न्यायालयके बहुमतके निर्णयसे बँधा हुआ समझें तो ब्रिटिश भारतीयोंको निराशामें भी एक मौका और है, अर्थात् वे ब्रिटिश साम्राज्यकी सर्वोच्च अदालत — सम्राटकी न्याय-परिषद (प्रीवी कौन्सिल) में अपील कर सकते हैं। आशा है कि इस तरहका कदम गैर-जरूरी होगा लेकिन अगर दुर्भाग्यवश अनिवार्य हो गया तो हमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटिश भारतीय पीछे न हटकर मामलेको अन्ततक ले जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ७-५-१९०४

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १।

१४३. ट्रान्सवालमें परवानोंका मामला

ब्रिटिश भारतीयोंको व्यापारिक परवाने देने सम्बन्धी परीक्षात्मक मुकदमेकी सुनवाई हो चुकी और, जैसी कि आशा की थी निर्णय सुरक्षित रखा गया है। दोनों ओर बड़े-बड़े वकील रखे गये थे। ब्रिटिश भारतीयोंकी ओरसे सर्वश्री सिमोनाई एसमैन लेगरोबलकी और डक्सबर्ग थे ट्रान्सवाल सरकारकी तरफसे सर्वश्री वार्ड मैन्सून और बर्ले बंग नियुक्त थे। मुख्य प्रश्न "निवास" शब्दकी व्याख्या करनेका था। ब्रिटिश भारतीयोंका कहना था कि सरकार द्वारा नियत की गई बस्तियों अथवा विशेष बस्तियोंमें ही सीमित "निवास" में व्यापार शामिल नहीं है — खास तौरसे इसलिए कि कानूनके अनुसार बस्तियोंमें रहनेकी पाबन्दी केवल सफाईके उद्देश्यसे लगाई गई है। इसके विपरीत सरकारकी दलील यह थी कि "निवास" में व्यापार भी शामिल है खास तौरसे इस बिनापर कि तैयब बनाम ओकूल मुकदमेमें भूतपूर्व दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यके उच्च न्यायालयने इस शब्दका यही अर्थ किया था। याद रखना चाहिए कि वह फैसला सर्वसम्मत नहीं था। यह भाग्यकी विडम्बना है कि जब भूतपूर्व गणराज्यके उच्च न्यायालयके सामने उस मामलेमें बहस हुई थी तब न्यायाधीशोंके सामने ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधि उपस्थित थे और उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंके कथनका समर्थन करनेकी कोशिश की थी परन्तु, अब समय बदल गया है और साथ ही ब्रिटिश सरकार भी बदल गई है। अब वह उसी मंचपर है जिसपर भी कूगरकी सरकार थी। ब्रिटिश सरकारकी माँग है कि मामला खारिज कर दिया जाये और खर्च वादियोंको देना पड़े। भारतीयोंके लिए मामला अत्यन्त महत्त्वका है, जीवनमें जिन्दगी और मौतका है और यह शुभ है कि वे अपनी ओरसे सबसे बड़े कानून-पण्डितोंको खड़ा करनेमें समर्थ हो सके हैं। इसलिए, अब यदि उन्हें मुकदमेमें हारना ही पड़ा तो उसका कारण सर्वोत्तम कानूनी सलाहका अभाव नहीं होगा। इस समय ट्रान्सवालमें बड़ा अनुकूल अवसर है। विचारका जो प्रश्न भूतपूर्व उच्च न्यायालयके सामने नहीं उठाया जा सका था उसे अब भारतीयोंकी ओरसे श्री सिमोनाईने निर्भीकताके साथ उठा दिया है। सर रिचर्ड सॉलोमनने खुद स्वीकार किया है कि वे गणराज्यके न्यायाधीशोंके फैसलेको समझ नहीं सके। इसलिए भारतीयोंके पक्षमें बहुत कुछ है, और हम आशा करें कि निर्णय ऐसा होगा जिससे यह दुखदायी सवाल हमेशाके लिए निपट जायेगा — और ऐसे ढंगसे कि ट्रान्सवालके सैकड़ों ब्रिटिश भारतीय व्यापारी फिरसे स्वच्छन्द होकर साँस ले सकेंगे। लेकिन अगर ब्रिटिश न्यायाधीश अपनेको पिछले उच्च न्यायालयके बहुमतके निर्णयसे बँधा हुआ समझें तो ब्रिटिश भारतीयोंको निराशामें भी एक मौका और है अर्थात् वे ब्रिटिश साम्राज्यकी सर्वोच्च अदालत — सम्राटकी न्याय-परिषद (प्रीवी कौन्सिल) में अपील कर सकते हैं। आशा है कि इस तरहका कदम गैर-जरूरी होगा लेकिन अगर दुर्भाग्यसे अनिवार्य हो गया तो हमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटिश भारतीय पीछे न हटकर मामलेको अन्ततक ले जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-५-१९०४

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १ ।

१४६. ईस्ट लन्दनके ब्रिटिश भारतीय

अन्यत्र हम इसी मासकी २ तारीखके *ईस्ट लन्दन डेली डिस्पैच*से एक अग्रलेख उद्धृत कर रहे हैं। उसका विषय वह प्रश्नोत्तर है जो श्री लिटिलटन और सर मंचरजीके बीच हुआ है। यह प्रश्नोत्तर उन सूचनाओंके बारेमें था जो ईस्ट लन्दन नगरमें रहनेवाले अनेक ब्रिटिश भारतीयोंको दी गई थीं और जिनमें उन्हें एक निश्चित समयके भीतर पृथक बस्तीमें जाकर बसनेका आदेश दिया गया था। हमारा सहयोगी ईस्ट लन्दन नगरपालिकाकी कार्रवाईको दी गई प्रसिद्धिको नापसन्द करते हुए इस मस्त परिणामपर पहुँचा है कि सर मंचरजी उपद्रवके व्यक्ति हैं। क्या हम अपने सहयोगीको याद दिलायें कि सर मंचरजी कट्टरपन-रहित विचारोंके हैं और वे तबतक किसी मामलेमें हाथ नहीं डालते जबतक उन्हें उसके न्यायपूर्ण होनेका यकीन नहीं हो जाता। स्वभावतः ही वे बहुत अच्छे कारणके बिना अपने ही देशकी सरकारको किसी परेशानीमें डालना पसन्द नहीं करेंगे। अग्रलेखको ध्यानसे पढ़नेके बाद हम स्वीकार करते हैं कि हमें सर मंचरजीके बताये हुए हालातमें और ईस्ट लन्दनकी वास्तविक स्थितिमें कोई फर्क दिखाई नहीं देता। हम कहना चाहते हैं कि सहयोगी यह कहनेमें सत्यको घटाकर बताता है और नगरपालिका तथा भारतीयों—दोनोंके साथ बराबर अन्याय करता है कि "नगरपालिकाने भारतीयों [की स्थितिका मुकाबला करनेके लिए बनती बस्तियोंसे अलग जनवास (बोर्डिंग हाउस) बनाये और नियमोंके अनुसार उन] में वहाँ जाकर रहनेका अनुरोध किया है।"[1] या कमसे-कम उसने नगरके आसपास रहनेवाले भारतीयोंको सूचना दे दी है कि वे वहाँ चले जायें। इससे पाठकके मनपर यह असर पड़ता है मानो कोई जबरदस्ती नहीं की जायगी। परन्तु भारतीयोंके नाम जारी की गई सूचनाकी इबारत यह है:

> सूचना दी जाती है कि तफ्तीश-अफसरने मालूम किया है, आप उपर्युक्त मकानमें जो नगरकी सीमाके भीतर है और जहाँ एशियाई लोग नहीं रह सकते, रहकर संशोधित नियम नं० १२, अध्याय १८ (*ईस्ट लन्दन डेली डिस्पैच* २९ अगस्त १९०१ में प्रकाशित नगर-नियम की १९०१ की सूचना नं० १ और उल्लिखित नियम) का उल्लंघन कर रहे हैं।
>
> परिषद इस सूचना द्वारा ताकीद करती है कि आप इस सूचनाके मिलनेसे १४ दिनके भीतर उपर्युक्त नियमकी शर्तोंके मुताबिक अमल करें और इसके लिए ऊपर बताया हुआ मकान खाली कर दें और एशियाइयोंके शिविरमें जाकर रहें।
>
> शिविर-अधीक्षक यह सूचना दिखानेपर आपको रहनेके लिए उपयुक्त स्थान दे देंगे।
>
> और यह भी कि इस आज्ञाका पालन न करने पर मुकदमा चलाया जायगा।
>
> ईस्ट लन्दन, तारीख १२ मार्च १९०४।
>
> आर० ई० डाउलिंग
> टाउन क्लार्क
> टॉमस बॉयड
> सफाई-निरीक्षक

१. उद्धरण का मूल अंश [illegible] *इंडियन ओपिनियन* १९-३-१९०४।

आज्ञा न माननेके साथ भारी दण्ड जुड़ा हुआ है। तब क्या सर मंचरजीने जिस ढंगसे प्रश्न पूछा वह उचित नहीं था? और फिर, हमारे सहयोगीने सर मंचरजीके मुँहमें वे शब्द भी रख दिये हैं जो उन्होंने कभी कहे ही नहीं। उनके कहनेका यह अर्थ कदापि नहीं था कि भारतीय ईस्ट लंदनसे निकाले जानेवाले हैं परन्तु उन्होंने निश्चयपूर्वक कहा था कि उन्हें बस्तियोंमें चले जानेकी सूचनाएँ मिली हैं। और यह सत्य-मात्र है। नगरपालिकाने जिस ढंगकी कार्रवाई अपनाई है उसे उचित बतानेमें *ईस्ट लन्दन डिस्पैच* उतना प्रसन्न नहीं है। *डिस्पैच*के कथनानुसार हकीकत यह है कि ईस्ट लंदनमें कुल मिलाकर भारतीयोंकी आबादी ७ सौ है जिनमें से केवल एक सौ नगरमें रहते हैं। हमारा सहयोगी आगे कहता है "नगरपालिकाका उनपर कोई नियन्त्रण नहीं है।" तो क्या भारतीय नगरपालिकाके नियमोंसे मुक्त हैं? हमने सारे नियम पढ़े हैं और हमें उनमें भारतीयोंको नगरपालिकाके नियमोंसे मुक्त होनेकी कोई बात नहीं मिली। क्या बारह हजारसे अधिक यूरोपीय आबादीमें रहनेवाले मुट्ठीभर भारतीयोंको हटानेकी जरूरत जरा भी है? यह भी याद रखना चाहिए कि ये लोग वहाँ कई वर्षोंसे रह रहे हैं। जहाँतक हम जानते हैं इन लोगोंके विरुद्ध अस्वच्छताका कोई आरोप नहीं लगाया जा सकता। बस्तीमें चार सौसे अधिक भारतीय रह रहे हैं यह बात भी ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिको मजबूत करती है कि जो लोग सुख-चैनके पाश्चात्य मानदण्डके अनुसार नहीं रहना चाहते वे अपने आप बस्तीमें रहते हैं। इसलिए यह निष्कर्ष बहुत उचित है कि जो थोड़े-से लोग नगरमें रह रहे हैं वे अच्छी साफ-सुथरी हालतमें रहते हैं। इस तर्कमें ट्रान्सवालके प्लेगको भी शामिल कर लिया गया है परन्तु जैसा कि हम पिछले अंकोंमें पहले ही बता चुके हैं भारतीयोंमें बड़ी संख्यामें बीमारीके होनेका कारण जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी पूरी-पूरी गफलत है और जोहानिसबर्ग तथा भारतीय बस्तीके बाहर भारतीयोंकी स्थिति अन्य समुदायोंसे किसी भी तरह बुरी नहीं रही है। हमारा सहयोगी स्वीकार करता है कि भारतीय कानूनका पालन करनेवाले हैं और उसने यह मंजूर करनेकी भी कृपा की है कि बौद्धिक दृष्टिसे वे सभ्य लोग हैं, और इस नाते उनकी मान प्रतिष्ठाके बारेमें गम्भीरतापूर्वक शंका नहीं की जा सकती। तब यदि वे सफाईके पाश्चात्य स्तरको नहीं पहुँच पाते तो क्या आखिरकार, उन्हें पृथक् बाड़ोंमें खदेड़े बिना सुधारकी ओर झुका देना बहुत कठिन बात है? और क्या केप टाउन डर्बन और अन्य स्थानोंका अनुभव जहाँ भारतीयोंने मौका मिलनेपर यूरोपीयोंसे सफल होनेमें कसर नहीं रखी है, हमारे सहयोगीकी शंकाओंको गलत साबित नहीं करता? हम यह खयाल किये बिना नहीं रह सकते कि यदि *ईस्ट लन्दन डिस्पैच* निर्विकार होकर स्थितिका अवलोकन करता वस्तुस्थितिको सही दृष्टिसे देखता और नगरपालिका भारतीयोंको जिस तरह अनावश्यक रूपसे जलील करना चाहती है उसके विरोधमें भारतीय समाजके कार्मोंका समर्थन करता तो वह जिस समाजके हितके लिए प्रकाशित होता है उसकी अधिक अच्छी सेवा करता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४–५–१९०४

१४७ जोहानिसबर्गमें प्लेग

जोहानिसबर्गकी जनताको यह सूचना दी गई है कि २९ अप्रैलको जोहानिसबर्गके मंडीघरमें दो यूरोपीय मिस्त्रीवाले प्लेगसे ग्रस्त हुए। रैंड प्लेग-समितिने बीमारोंको रिएटफौंटीनके छूतहे रोगोंके अस्पतालमें भेज देनेके सिवा इस महीनेकी ४ तारीखतक और कुछ नहीं किया। उसने मंडी घरको सन्देहका लाभ दिया और यह निष्कर्ष निकाला कि यदि विपरीत बात प्रमाणित न हो तो छूत बाहरी जरियासे ही आई होगी। इस प्रकार, साधारण नियमको उलट दिया गया। क्योंकि जनसाधारणके नाते हमने सदा यह समझा है कि यदि किसी खास स्थानमें प्लेग या और किसी छूतकी बीमारीसे कोई ग्रस्त होता है, तो उस स्थानको ही छूतसे ग्रस्त मानने और फिर उस स्थानमें ही छूतका कारण ढूँढनेकी कोशिश सबसे पहले जरूरी होती है। इस प्रकार डर्बन केप टाउन और दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे भागोंमें ही नहीं बल्कि संसारके शेष भागमें भी जहाँ कहीं ऐसी घटनाएँ हुई हैं, उन स्थानोंमें ताला लगा दिया गया है उन्हें सूतक (क्वारंटीन)में रख दिया गया है और उनकी छूत नष्ट की गई है। परन्तु केवल जोहानिसबर्गमें अतिप्रशंसित रैंड प्लेग-समिति उलटी गंगा बहाती है और छूतका और कहीं पता लगानेमें असमर्थ होने पर यह खोज करने लगती है कि कहीं यह स्वयं मंडीघरके भीतर ही तो नहीं है और चार दिनकी खोजके बाद यह पता लगानेमें सफल होती है कि वहाँके चूहोंपर प्लेगका असर था। उसके बाद अचानक नाटकीय ढंगसे समिति इस महीनेकी ४ तारीखको दुपहरमें मंडीके गिर्द पुलिसका घेरा लगवा देती है और मकानोंको कुछ हलके सूतकमें रख देती है। इससे बेशक लोगोंके मनपर असर होता है, काफी हलचल पैदा हो जाती है और शायद प्रशंसा भी प्राप्त होती है परन्तु हमारा खयाल है, यह बहुत कुछ वैसा ही दिखाई देता है जैसे घोड़ा निकल जानेके बाद अस्तबलमें ताला लगाना। क्योंकि इन दो घटनाओंका पता लगनेके बाद पूरे चार दिनतक मंडीके द्वारा नगरमें छूत फैलने दी जाती है। बेशक ताज्जुबकी बात तो यह है कि इस समय सारा जोहानिसबर्ग प्लेगसे पीड़ित नहीं हो उठा। लेकिन कमसे-कम इस मामलेमें प्लेगसे आम मुक्तिके लिए बधाईकी हकदार समिति नहीं है परन्तु इसका श्रेय उस शानदार मौसम और जोहानिसबर्गकी बड़ी ऊँचाईको है जो समितिकी बड़ी भूलोंके बावजूद प्लेगके कीटाणुओंको पनपने नहीं देती।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४–५–१९०४

१४८ परीक्षात्मक मुकदमेका फैसला[1]

जोहानिसबर्ग
मई १८, १९०४

निःसन्देह आप परीक्षात्मक मुकदमेमें प्रधान न्यायाधीशका दिया हुआ फैसला देख चुके हैं। एक मात्र प्रश्न था "निवास" शब्दकी व्याख्याका जो १८८५ के कानून ३ में आता है। और उसपर प्रधान न्यायाधीशने यह निर्णय दिया कि "निवास" के अन्तर्गत व्यापार-व्यवसायका स्थान नहीं आता। और उनकी इस व्याख्यासे उनके दो साथी न्यायाधीशोंने सहमति प्रकट की है। इस प्रकार पन्द्रह वर्षतक कठिन संघर्ष करनेके पश्चात भारतीय स्थिति उचित सिद्ध हुई है और अब भारतीयोंको ट्रान्सवालके किसी भी भागमें व्यापार करनेका अधिकार प्राप्त है। इस सम्बन्धमें सरकारने अपनी भूलसे पूर्वकी स्थिति स्वीकार की। आप फैसलेमें यह देखेंगे कि प्रधान न्यायाधीशको स्थानीय सरकारके इस कठोर और असंगत रुखके सम्बन्धमें जिसका समर्थक उपनिवेश-कार्यालय भी था कुछ बहुत ही कड़ी बातें कहनी पड़ी हैं। आप यह भी देखेंगे कि प्रधान न्यायाधीशकी सम्मतिमें भारतीय व्यापारियोंको ले जाकर पृथक बस्तियोंमें डाल देनेका अर्थ है उन्हें आजीविकाके साधनोंसे वंचित कर देना। यह तो जैसा उन्होंने कहा एक हाथसे देकर दूसरेसे छीन लेना ही हुआ।

इस प्रकार ब्रिटिश भारतीय संघकी वे सभी शिकायतें जो उसने १८८५ के कानून ३ के अमल और पृथक बस्तियोंकी स्थापनाके सम्बन्धमें की थीं पूरी तरह उचित सिद्ध हो गई हैं। किन्तु इस सबका परिणाम क्या होगा यह एक बहुत ही गंभीर प्रश्न है। सामान्यतः भारतीयोंकी स्थिति अब यह होनी चाहिए कि वे कठिनाइयोंका सामना करते जायें और बाकी काम करनेके लिए उपनिवेश कार्यालयपर निर्भर रहें। परन्तु दुर्भाग्यसे यहाँकी सरकार इतनी कमजोर है कि न्याय कर ही नहीं सकती। भारतीयोंको यह जीत बहुत ही महँगी पड़ी है। वे इसका लाभ न भोग पायें ऐसी आवाज अवश्य ही उठाई जायेगी और उसकी अस्पष्ट प्रतिध्वनि हमें सुनाई भी देने लगी है। और यदि सरकार भारतीयोंसे उनकी इस विजयका फल फिर छीननेके लिए एक विधेयक विधान-परिषदसे मंजूर करा लेनेकी उतावली करे तो यह कोई आश्चर्यकी बात न होगी।

किन्तु एक बात निश्चित है। पुराना कानून भारतीय-व्यापारकी दृष्टिसे भारतीयोंके प्रतिकूल है इस आधारपर नया कानून बनाना कतई उचित नहीं ठहराया जा सकता। हम सब यह जानते हैं कि पुराने कानूनसे भारतीयोंपर प्रवास और व्यापारके सम्बन्धमें कोई प्रतिबन्ध नहीं लगता। भारतीयोंका यहाँ प्रवेश तो कारगर रूपमें शान्ति-रक्षा अध्यादेशसे रुका है। और यदि भारतीय व्यापारपर प्रतिबन्ध लगाना हो तो साम्राज्यीय उपनिवेशमें एक नया कानून बनाना पड़ेगा। इसका अर्थ यह है कि भारतीयोंपर एक नई निर्योग्यता लगाई जायेगी जो पुराने शासनमें उनपर कानून द्वारा कभी लागू न थी। ऐसी निर्दयतापूर्ण है यह भाग्यकी विडम्बना! इसलिए पहले ब्रिटिश सरकार, तब यद्यपि शासन विदेशी था फिर भी भारतीयोंको संरक्षण देती थी। अब

१ यह भारतको भेजा गया लेख मालूम होता है जो इंडियामें "एक संवाददातासे प्राप्त" रूपमें प्रकाशित किया गया था। इसकी एक प्रति दादाभाईको भी भेजी गई थी जिन्होंने उसके अंश उपनिवेश-मन्त्री और भारत-मन्त्रीके नाम अपने जून ७, १९०४ के पत्रमें उद्धृत किये थे। (सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडिविजुअल्स — एन)

इकाईके पीछे सर्वशक्तिमान ब्रिटिश सरकार ब्रिटिश प्रजाके एक भागको सरक्षण देनेसे महज इसलिए इनकार करती है कि वह अपेक्षाकृत दुर्बल पक्ष है। जब ब्रिटिश भारतीयोंपर और अधिक निर्योग्यताएँ लागू करनेका कोई प्रयत्न किया जाये तो क्या उपनिवेश-कार्यालय उसे मजबूतीसे अपने पैर तले कुचलेगा? क्या भारत-सरकार अपना कर्तव्य पूरा करेगी?

[अंग्रेजीसे]

इंडिया १–७–१९ ४

१४९. अभिनन्दनपत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको[1]

हाइडेलबर्ग
मई १८, १९०४

सेवामें
परमश्रेष्ठ सर आर्थर लाली
लेफ्टिनेंट गवर्नर
ट्रान्सवाल उपनिवेश

परमश्रेष्ठकी सेवामें निवेदन है कि

हाइडेलबर्ग-निवासी ब्रिटिश भारतीयोंके हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले प्रतिनिधि इस नगरमें आपका समादरपूर्वक स्वागत करते हैं और इस अवसरका लाभ उठाते हुए यह तथ्य परमश्रेष्ठके ध्यानमें लाते हैं कि हाइडेलबर्गमें जो एशियाई *बाजार* स्थापित किया जा रहा है वह नगरसे बहुत ही ज्यादा दूर है।

यद्यपि परीक्षात्मक मुकदमेके निर्णयको देखते हुए दूरीका बहुत अधिक महत्त्व नहीं है फिर भी हम आदरपूर्वक निवेदन करते हैं कि फेरीवालों और दूसरे लोगोंके लिए वह जगह असुविधाजनक होगी।

हम यह विश्वास करनेकी धृष्टता करते हैं कि स्वच्छताके जो नियम आवश्यक समझे जायेंगे उनका पालन करनेपर सरकार हमें भारतीय परवाना-सम्बन्धी सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके फलका लाभ उठाने देगी।

हम यह तथ्य भी आपके ध्यानमें लाना चाहते हैं कि जिस बाड़ेमें मसजिद बनायी गई है वह अभीतक मुस्लिम-समाजके नाम पंजीकृत नहीं किया गया है।

अन्तमें हम कामना करते हैं कि हमारे बीच आपका समय आनन्दसे बीते। हम परमश्रेष्ठसे प्रार्थना करते हैं कि महामहिम सम्राट तथा सम्राज्ञीसे सिंहासनके प्रति हमारी वफादारी और भक्ति-भावना निवेदित करनेकी कृपा की जाये।

परमश्रेष्ठके आज्ञाकारी सेवक,
ए० एम० मायात
तथा अन्य

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २८–५–१९ ४

१. यह अभिनन्दनपत्र सर आर्थर लालीको हाइडेलबर्गके भारतीय समाजकी ओरसे [illegible] यहाँ [illegible] दिया गया था।

ट्रान्सवालके सर्वोच्च न्यायालयके मुख्य न्यायाधीशका व्यापक और विशद निर्णय ट्रान्सवाल सरकार और भारतीयों—दोनोंके अध्ययन करनेके लायक है। सरकारके लिए इस कारण कि मुख्य न्यायाधीशने सिद्ध कर दिया है—जैसा कि इतने अधिकारके साथ और कोई मनुष्य नहीं कर सकता था—कि ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति सरकारका रवैया कितना हृदयहीन और असंगत रहा है। भारतीयोंके लिए इस कारण कि उससे साबित होता है स्थानीय अधिकारियोंके कोशी देरके लिए गुमराह हो जानेपर भी ब्रिटिश संविधान और ब्रिटिश शासनमें कितनी बातें श्रेय हैं। ये अधिकारी—स्वार्थ दुर्बलता या द्वेष किसी भी कारणसे क्यों न हो—सामने आनेवाली विविध परिस्थितियोंपर ठीक-ठीक विचार करने और समान रूपसे न्यायका वितरण करनेमें असमर्थ हैं। विद्वान मुख्य न्यायाधीश चाहते तो प्रश्नके अलग-अलग पहलुओंपर ध्यान न देते। वे सरकारकी भावनाओंका लिहाज रख सकते थे। परन्तु उन्हें ऐसी दया नहीं आई। स्पष्ट है कि, उन्होंने महसूस किया न्याय और सत्यकी माँग है कि वे साफ-साफ कहें और उस शिकायतपर जो ब्रिटिश भारतीय संघ द्वारा लगातार दुहराई जाती रही है कानूनी स्वीकृतिकी मुहर लगा दें। शायद उन्होंने यह भी महसूस किया हो कि ट्रान्सवालके कानून-विभागमें ब्रिटिश राष्ट्रके मुख्य प्रतिनिधिकी हैसियतसे उनसे अपेक्षा की जाती है कि सरकारकी अपनाई असंगत स्थितिसे वे अपने-आपको पूरी तरह अलग कर लें।

कानूनकी व्याख्या करते हुए सर जेम्स रोज इन्सने कहा

> यह बिल्कुल साफ है कि विधानमण्डलके ध्यानमें उन एशियाइयोंका मामला था जो व्यापार करनेके स्पष्ट हेतुसे बसने आये थे। और अगर उसका इरादा यह होता कि इस प्रकार बसनेवालोंका व्यावसायिक काम-काज पृथक् बस्तियोंकी सीमाओंमें मर्यादित रखा जाये तो इस आशयका कोई निश्चित विधान अवश्य कर दिया गया होता। क्योंकि, यह मामला यूरोपीय और एशियाई दोनोंके लिए छोटा नहीं समान रूपसे बड़े महत्त्वका था। यदि भारतीयोंको इस देशमें बे-रोकटोक आने देने और जहाँ चाहें वहाँ व्यापार करने देनेका मंशा था तो वे गोरे दुकानदारोंके लिए निःसन्देह जबरदस्त प्रतिद्वन्द्वी हो जानेवाले थे; और यदि इसके विपरीत उनका व्यापारिक कार्य उन बस्तियोंमें ही सीमित रखा जानेको था, जिनमें वे रहते हैं जो मुख्य शहरसे बाहर स्थित हैं और जिनमें उनके सजातीय लोग ही रहते हैं तब तो व्यावहारिक कारणोंसे यही अच्छा होता कि वे व्यापार करते ही नहीं। जबकि कानून उनका व्यापारके प्रयोजनसे देशमें बसनेका हक स्वीकार करता है और यहाँ बसनेपर उनसे रजिस्ट्रीकी फीस वसूल करता है, तब यदि वह ऐसी व्यवस्थाएँ करता है जिनसे उनका व्यापार करना अव्यावहारिक और अलाभदायक हो जाता है, तो यह असंगत होगा। यह तो एक हाथसे देना दूसरेसे ले लेना हो जायेगा।

भारतीयोंने इतने जोरोंसे अपनी बात कभी नहीं कही। अब हमें इस शिकायतका जिसका सरकारने इतने जोरोंसे खण्डन किया है समर्थन प्राप्त हो गया है कि पृथक बस्तियाँ व्यापार

के कामके लिए बिलकुल बेकार है और उनका उद्देश्य केवल भारतीयोंको भूखों मारकर उपनिवेशसे निकाल देना है।

परन्तु असली बात तो थोड़ा आगे चलकर आता है। निवास सम्बन्धी व्याख्या करनेके बाद विद्वान न्यायाधीश कहते हैं

> किन्तु चर्चाओंसे एक बात स्पष्ट है और वह यह कि, ट्रान्सवालके अधिकारी कानूनका जो अर्थ अब करना चाहते हैं वह वही है जिसकी दक्षिण आफ्रिकी गणराज्यकी सरकार सदा हिमायत किया करती थी और जिसका ब्रिटिश सरकार बराबर विरोध करती रही है। ऐसी हालतमें यह बात विलक्षण लगती है कि नया कानून बनाये बिना ट्रान्सवालमें सम्राट्के कर्मचारी एक ऐसा दावा पेश करें जिसे इंग्लैंडमें सम्राट्की सरकार हमेशा कानूनकी पुस्तकके अनुसार नाजायज बताती रही है और जिसका उसने भूतकालमें दृढ़तासे विरोध किया है।

ब्रिटिश अधिकार हो जाने पर इस तरहका रवैया इख्तियार करना और यों कूगरके शासन कालमें ब्रिटिश सरकारके नामपर जो वचन दिये गये थे उन सबपर पानी फेर देना जाहिर करता है — और यह हम अत्यन्त आदरके साथ कहते हैं — कि यह ब्रिटिश परम्पराओंका शोचनीय अज्ञान है। या उससे भी बुरा उन सब बातोंसे जानबूझकर हटना है जो ब्रिटिश राज्यमें अबतक पवित्र मानी गई हैं और जिन्होंने भिन्न-भिन्न भागोंको एक सूत्रमें बाँधकर रखा है। फैसला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और निर्णयसे भारतीय दावेका पूर्ण समर्थन हो जाता है। परन्तु इस परिणामका हमारे ट्रान्सवालवासी देशभाई पूरा लाभ उठा सकें इसके लिए अब एक बातकी जरूरत है जो यह है कि समाजके प्रतिनिधि अपने सदस्योंके जोशको काबूमें रखें और व्यापार करनेके अधिकारका सौम्य उपयोग ही करें। यह फल अब पिछले पन्द्रह सालकी जबरदस्त बाधाओंसे लगातार जूझनेके बाद प्राप्त हुआ है। हम जानते हैं कि इस उपदेशपर अमल करना बहुत कठिन है। हमेशा यह नहीं कहा जा सकता कि परवानेके लिए कौन अर्जी देगा और कौन नहीं क्योंकि अधिकार सभीको है। परन्तु ऐसी कठिनाइयाँ आनेपर ही किसी समाजके वास्तविक सत्त्वकी परख होती है। अगर लोग इस विजयसे उन्मत्त होकर यत्र-तत्र-सर्वत्र व्यापारके परवानोंके लिए प्रार्थनापत्र देने लगें तो बड़ी हानि होगी और उनके निन्दक लोग अधिक प्रहार करनेके लिए ऐसी स्थितिको हथियार बनानेमें देर नहीं लगायेंगे। परिस्थिति नाजुक है मगर पूरे फलका उपभोग करना है तो नेताओंको उसका सामना करना ही होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-५-१९०८

१५१ नेटालके प्लेग-नियम

नेटालके इस महीनेकी १ तारीखके *गवर्नमेंट गज़टमें* प्रकाशित प्लेग-नियमोंसे भारतीयोंके बारेमें अकारण भय प्रकट होता है कि वे ट्रान्सवालसे प्लेग ले आयेंगे। ट्रान्सवालसे आनेवाले भारतीयों और दूसरे रंगदार व्यक्तियोंको वे उपनिवेशके सिर्फ एक स्थान — चार्ल्सटाउनमें आने देते हैं। चार्ल्सटाउनसे आगे वे तबतक नहीं बढ़ सकते जबतक उनके पास ट्रान्सवाल-सरकारका दिया हुआ यात्राका परवाना न हो और यह परवाना तबतक नहीं दिया जाता जबतक कड़ी डाक्टरी जाँच न हो जाये और जबतक वे चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-अधिकारीसे यात्रा आगे जारी रखनेका अधिकार देनेवाला परवाना प्राप्त न कर लें। ट्रान्सवालके अधिकारियोंकी कार्रवाईपर यह दोहरी सावधानी या अविश्वास क्यों होना चाहिए, सो स्पष्ट नहीं है। और यह देखते हुए कि इतना अविश्वास है, ट्रान्सवालका प्रमाणपत्र पेश करनेकी जरूरत ही क्यों होनी चाहिए? साथ ही जो लोग विटवाटर्सरैंड जिलेसे आते हैं, उनके पास ट्रान्सवालका परवाना हो या न हो वे पाँच दिनके लिए चार्ल्सटाउनमें रोक रखे जाते हैं। उपनिवेशमें रोगके अभि-गमन्त्र प्रवेश रोकनेके कामर्मे हम सरकारके प्रयत्नोंकी कद्र करने और उसके साथ सहयोग करनेके लिए सदा तैयार हैं परन्तु हमारा खयाल है कि उपर्युक्त नियम बड़े कष्टप्रद हैं और उचित नहीं हैं। वर्षके इस समयमें चार्ल्सटाउनमें रोक रखा जाना बहुत ही तकलीफ देनेवाली बात है और रेलगाड़ीमें ही सब यात्रियोंकी अथवा केवल रंगदार मुसाफिरोंकी ही डाक्टरी जाँच काफी होनी चाहिए। अगर ऐसी जाँचमें किसी व्यक्तिमें रोगका कोई लक्षण पाये जायें तो उसे अलग करके सूतकमें रखा जाना चाहिए। यह जरूरी नहीं कि उसे चार्ल्सटाउनमें ही रखा जाये बल्कि डर्बन या ऐसे ही किसी अन्य स्थानमें रखा जा सकता है। निश्चय ही किसी ऐसे संदिग्ध व्यक्तिके प्रवेशसे तो जो डाक्टरी निरीक्षण-परीक्षणमें रखा जाता है उपनिवेशमें प्लेग नहीं आ सकता। परन्तु सरकारको धन्यवाद है कि चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-अधिकारीको उसने यह अधिकार दे दिया है कि वह उपर्युक्त जाँचोंसे गुजरे बिना भी किसी पहले या दूसरे दर्जेके रंगदार मुसाफिरको अपने नियत स्थानपर जानेकी इजाजत दे दे और यद्यपि जैसा हमने दिखाया है नियम बड़े असुविधाजनक हैं फिर भी इस प्रकार दिये गये अधिकारके उदारतापूर्ण प्रयोगसे नियमोंका शान्तिके साथ निर्वाह हो सकता है। अन्तमें तो नियम बहुत कष्टप्रद साबित होते हैं या नहीं यह बहुत कुछ चार्ल्सटाउनके सम्बन्धित स्वास्थ्य-अधिकारी और उसके मातहतोंके स्वभाव पर निर्भर रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-५-१ ४

१५२ "कुली" क्या है?

नगर-नियम विधि आयोग (म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन्स लॉ कमिशन) की रिपोर्ट आयोग द्वारा तैयार किये हुए विधेयकके मसविदेके साथ आम लोगोंकी जानकारीके लिए इस मासकी १ तारीखके गवर्नमेंट गजटमें प्रकाशित कर दी गई है।[1] विधेयक स्वयं एक सावधानीसे तैयार किया हुआ अभिलेख है जिसमें अनुसूचियोंके अलावा १२६ उपधाराएँ हैं। उनमें कुछ खण्ड ऐसे हैं जिनका भारतीय समाजपर अत्यन्त मार्मिक असर पड़ता है और जिनसे उपनिवेशकी नगरपालिका-सम्बन्धी नीति गम्भीर रूपसे भंग होती है। एक दूसरे स्तम्भमें हम विधेयकके वे अंश छाप रहे हैं जिनका उपनिवेशमें बसे ब्रिटिश भारतीयोंपर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। व्याख्यात्मक उपधारामें "रंगदार व्यक्ति" शब्दोंकी व्याख्या इस तरह की गई है, जिससे "कुली" शब्दको सरकारी आधार मिल जाता है और वह इतनी अस्पष्ट है कि उससे भविष्यमें बहुत परेशानी होगी। हमारा खयाल यह था कि कुछ वर्ष पहले श्रीमती लिप्टनके मामलेमें सर वाल्टर रैगने जो आक्षेप किये थे उनके बाद विधेयकके निर्माता इस बातकी बहुत सावधानी रखेंगे कि इस शब्दका प्रयोग किस प्रकार करते हैं। इस व्याख्याके अनुसार दूसरे अर्थोंके साथ साथ रंगदार व्यक्तिका एक अर्थ "कुली" भी होगा। कुली क्या होता है? यह ठीक-ठीक कोई नहीं जानता। अगर उसे भारतीय अर्थमें लिया जाये तो वह सिर्फ मजदूर या सामान ढोनेवाला होता है। अगर आम भद्दा अर्थ लगाया जाये तो फिर प्रत्येक भारतीय — भले ही कुछ भी हो या कोई भी हो — कुली है। अगर इसका अर्थ मर्यादित रखना हो जो उपनिवेशके अधिक जानकार लोग लगाते हैं तो वह होगा गिरमिटिया भारतीय। अब ऐसी व्याख्या सहज ही की जा सकती थी जिसे देखते ही तुरन्त प्रकट हो जाता कि आयुक्तोंका इरादा "रंगदार व्यक्ति" शब्दोंमें किस वर्गके भारतीयोंको सम्मिलित करनेका है। "असभ्य जातियाँ" शब्दोंकी व्याख्या भारतीयोंके लिए अत्यन्त असन्तोषजनक और संतापकारी है। हम नम्रतापूर्वक कहना चाहते हैं कि गिरमिटिया भारतीय भी असभ्य जातिके लोग नहीं हैं परन्तु उनकी सन्तानोंको असभ्य कहकर बहिष्कृत कर देना तो समझमें ही नहीं आता। हमें उन सैकड़ों भारतीय बच्चोंका खयाल आता है जो जैसा सर हेनरी मैकैलमने कहा है, अत्यन्त चतुर और विनम्र हैं परन्तु गिरमिटिया भारतीयोंसे उत्पन्न होनेके कारण असभ्य वर्गमें गिने जायेंगे। हम इसे ब्रिटिश भारतीयोंके अनावश्यक अपमानके सिवा और कुछ नहीं समझते। किन्तु विधेयकका सबसे आपत्तिजनक पहलू है उसकी नागरिकोंकी योग्यताएँ। अबतक सामान्य कानूनके अनुसार नगरपालिकाओंका मताधिकार भारतीयोंको प्राप्त था परन्तु इस विधेयकमें यह व्यवस्था की गई है कि जो लोग १८९६ के अधिनियम ८ के अनुसार संसदीय मताधिकारके अयोग्य हैं वे नागरिक होनेके भी अयोग्य होंगे। स्वर्गीय श्री एस्कम्बने निश्चित रूपसे कहा था कि वे नगरपालिका-मताधिकारको छूना नहीं चाहते और उन्होंने संसदीय मताधिकारका उसी आधारपर संशोधन स्वीकार कर लिया था जिसपर राजनीतिक मताधिकार स्थित है। फिर भी हम आयुक्तोंको गम्भीरतापूर्वक यह प्रस्ताव करते देखते हैं कि भारतीयोंको मताधिकारसे — नगरपालिका-चुनाव-सम्बन्धी मताधिकारसे भी — सर्वथा वंचित कर दिया जाये। उन्होंने इस

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ९।

बातपर कोई ध्यान नहीं दिया कि अबतक भारतीयोंने बहुत आत्मसंयमसे काम लिया है क्योंकि उन्होंने उपनिवेशकी नागरिक सूचीमें रखे जानेके अधिकारका उपयोग नहीं किया बल्कि अधिकारको काममें लाये बिना अधिकारकी प्राप्ति-मात्रसे ही संतोष कर लिया है। आयुक्तोंने इस तथ्यसे भी अपनी आँखें बन्द रखी हैं कि भारतमें लाखों लोग नगरपालिका मताधिकारका प्रयोग कर रहे हैं। यदि यह दलील भी दी जाये कि भारतमें भारतीयोंको कोई राजनीतिक मताधिकार प्राप्त नहीं है — जिसे हम चुनौती देते हैं — तो भी उक्त तथ्यके बारेमें तो तर्ककी गुंजाइश है ही नहीं। सारे भारतमें जहाँ-तहाँ सैकड़ों नगरपालिकाएँ हैं जिनमें से अधिकतरकी शासन-व्यवस्था भारतीयोंके ही हाथमें है। यदि वे "रंगदार व्यक्तियों" और "असभ्य जातियों" की व्याख्या करनेके बाद अपने विधेयकके निर्माणमें इन शब्दोंका प्रयोग न करते तो यह आश्चर्यकी ही बात होती। वे नगर-परिषदोंको ऐसे उपनियम बनानेका अधिकार देना चाहते हैं जिनके अनुसार रंगदार व्यक्तियों द्वारा पक्की पटरियों और रिक्शागाड़ियोंका व्यवहार वर्जित होगा और वे "रंगदार व्यक्ति" के लिए नगर-परिषद द्वारा निर्धारित घंटोंमें घरसे बाहर निकलना भी जुर्म करार देंगे। विधेयकमें नगरपालिकाओंको ऐसे उपनियम बनानेका अधिकार देनेकी बात भी है जिनसे "असभ्य जातियों" के व्यक्तियोंके पंजीकरणकी प्रणाली कायम हो जायेगी और चूँकि धारामें ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह प्रकट हो कि यह केवल घरेलू नौकरोंपर ही लागू होती है, इसलिए उसका अर्थ यह है कि उन भारतीय कारकुनों और इसी तरहके दूसरे कर्मचारियोंको भी अपना पंजीकरण कराना पड़ेगा जो मिशनरी भारतीयोंकी सन्तान हैं। जो मजदूरी काम नहीं करना चाहते और जिन्हें गैरहाजिर होनेपर ढूँढ़ना बड़ा मुश्किल होता है उनकी रजिस्ट्री करना एक बात है और जो भारतीय विनम्र परिश्रमी और प्रतिष्ठित हैं, जिनका एकमात्र कसूर यह है कि वे हदसे ज्यादा काम करते हैं उनसे यह आशा रखना बिलकुल दूसरी बात है और यह अत्यन्त अपमानजनक है, कि वे अपना पंजीकरण करायेंगे और अपने साथ पंजीकरणके बिल्ले लिये फिरेंगे। अन्तमें आयुक्तोंने नगर-निगमकी तमाम बिक्रियोंपर नगर-परिषदोंकी मंजूरी जरूरी कर दी है और नगर-परिषदोंको यह अधिकार दे दिया है कि वे कोई कारण बताये बिना किसी भी ऐसी बिक्रीको स्वीकार या अस्वीकार कर दें। इससे अंगुली पकड़कर पहुँचा पकड़नेका अवसर उपलब्ध हो गया है। इस प्रकार जो बात भी ब्रिटिश संसदको सीधी भेजनेपर शायद मंजूर होनी संभव न थी वही यदि सरकारने विधेयक मंजूर कर लिया तो उनके सम्मुख इस रूपमें प्रस्तुत की जायेगी कि उनके पास उसे स्वीकार करनेके सिवा कोई दूसरा चारा ही नहीं हो सकता। ऐसी हालतमें हमें यह कहनेमें कोई संकोच नहीं कि विधेयक अत्यन्त प्रतिगामी कदम है और यदि सरकार उसको अपनाना चाहती है तो ब्रिटिश भारतीयोंको अपनी स्वतन्त्रतामें कटौतीके इस नये प्रयत्नको विफल बनानेके लिए बहुत बड़ी कोशिश करनी पड़ेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-५-१९०४

१५३ पूर्वी ट्रान्सवालके पहरेदार

पूर्वी ट्रान्सवाल पहरेदार संघ (ईस्ट रैंड विजिलैंट्स)के सज्जनोंकी सतर्कतामें कोई भूल-चूक नहीं है। परीक्षात्मक मुकदमेका फैसला जिस कागजपर था उसपर अभी स्याही भी नहीं सूखी है कि हमारे इन मित्रोंने उसके विरुद्ध हथियार उठा लिये हैं और वे सरकारसे तुरन्त ऐसा कानून बनानेका अनुरोध कर रहे हैं जिससे सरकारको एशियाई-विरोधी प्रस्तावोंके द्वारा प्रेषित उनके विचार अमलमें आ जायें। उनकी नीति संक्षेपमें इन शब्दोंमें प्रकट है : बस्तियोंके सिवा अन्यत्र न एशियाई रहें न उनका व्यापार। वे नेटालके व्यापार-संघसे भी आग्रह कर रहे हैं कि वे अपनी बैठक बुलायें और सोचें कि उस खतरेके विरुद्ध क्या कदम उठाये जायें जो उनके मतानुसार, सभीके सामने सामान्यरूपसे मौजूद है। हमारा उनसे उचित व्यवहार या ब्रिटिश न्यायके नामपर अपील करना व्यर्थ है क्योंकि उनका दोनोंमें ही विश्वास नहीं है। उन्हें एशियाइयोंकी संगति नहीं उनका स्थान चाहिए और जबतक वे यह फल प्राप्त नहीं कर लेते तबतक उपाय और साधन कैसे हैं यह विचार नहीं करेंगे। अगर खबरें सही हैं तो उनको एक ऐसा राजस्व-अधिकारी मिल गया है जो उनके इशारोंपर नाचनेके लिए काफी तैयार है क्योंकि समाचार मिले हैं कि उसने एशियाइयोंको परवाने देनेसे इनकार कर दिया है और मामला अधिकारियोंको विचारार्थ भेज दिया है। ऐसे रवैयेको देखते हुए हमने ऊपर जो चेतावनी दी है उसे ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंको हृदयंगम कर लेना चाहिए। यह जानना दिलचस्प होगा कि सरकार अब क्या करना चाहती है। अबतक वह अपने व्यवहारमें भूतपूर्व उच्च न्यायालयकी व्याख्याके अनुसार १८८५के कानून ३ की आड़ लेती रही है। अब चूँकि यह ढाल उसके हाथोंसे छूट चुकी है इसलिए क्या वह ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके मुँहका कौर छीननेका कोई और बहाना ढूँढेगी? लॉर्ड मिल्नरने श्री लिटिल्टनको आश्वासन दिया है कि पुराने कानून हर प्रकारसे भारतीयोंकी भावनाओंका लिहाज रखकर लागू किये जा रहे हैं और इसमें पहलेके मुकाबले आधी भी कठोरता नहीं बरती जा रही। निस्सन्देह जैसा कि हम कह चुके हैं यह बात तथ्योंसे सिद्ध नहीं है। परन्तु अब लॉर्ड महोदय क्या कहेंगे? पुराने कानूनसे तो भारतीय व्यापारपर कोई बन्धन लगता ही नहीं! तब वे क्या नये बंधन तैयार करेंगे? नहीं किसी अन्य कारणसे नहीं तो लॉर्ड महोदयकी राजनीतिज्ञताके कारण ही सही हम सच्चाईके साथ आशा करते हैं, वे ऐसा नहीं करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-५-१९०४

१५४ क्रूगर्सडॉर्प और ब्रिटिश भारतीय

क्रूगर्सडॉर्प नगर-परिषदने सर्वसम्मतिसे अपनी पूर्वगामी परिषदके एशियाई *बाजारके* स्थान-सम्बन्धी चुनावको व्यवहारतः रद करनेका फैसला किया है। उसका खयाल है कि वह स्थान केवल भारतीय व्यापारियोंके लिए चुना गया था और एक अन्य बस्ती बसाई जानेवाली थी जिसमें फेरीवाले और दूसरे भारतीय रहते। क्या अज्ञान इससे अधिक गहरा हो सकता है? फिर भी कोई मिलनर और उनके सलाहकारोंने भारतीयोंका भाग्य व्यवहारतः ऐसे सज्जनोंके हाथोंमें सौंप दिया है जिन्हें ब्रिटिश भारतीयोंकी परवाह नहीं के बराबर है और उतनी ही परवाह स्वयं अपनी कार्रवाइयोंकी भी है। वर्तमान नगर-परिषद मामजद किये हुए भूतपूर्व निकायके निश्चयको रद करना चाहती है और सरकारसे दूसरे स्थानके चुनावका अनुरोध कर रही है। अब चूँकि परवाने देनेका सवाल कमसे-कम फिलहाल तो खत्म कर दिया गया है, इसलिए यह मामला बड़े महत्त्वका है। साथ ही इससे यह प्रकट होता है कि क्रूगर्सडॉर्प नगर-परिषदके सदस्योंके हाथों भारतीय हितोंकी कैसी गति होनेकी संभावना है। और हमें बड़ा अन्देशा है कि जो बात क्रूगर्सडॉर्पपर लागू होती है वही शेष ट्रान्सवालपर भी होती है। महापौरने कृपापूर्वक यह सुझाव दिया था कि जो लोग इस समय तम्बुओंमें रह रहे हैं, उन्हें कड़ाकेकी सर्दीके कारण अपने-अपने घरोंको लौट जाने दिया जाये या नगर-परिषद पुरानी बस्तीपर तुरन्त कब्जा कर ले और लोगोंको नये *बाजार* या नयी बस्तीमें स्थान ग्रहण करने दे। दुःख यही है कि महापौरमें इतना साहस नहीं था कि वे उन लोगोंके प्रति मानवोचित व्यवहारकी वकालत जारी रखते और उनके साथ न्याय करनेका आग्रह करते जो कष्ट पा रहे हैं इसलिए नहीं कि यह सार्वजनिक-स्वास्थ्यका मामला है और उसको खतरा होनेके कारण इसकी जरूरत है, बल्कि इसलिए कि क्रूगर्सडॉर्प नगर-परिषदके सदस्योंके दिलोंमें गहरा रंग-विद्वेष और व्यापारिक ईर्ष्या जमी हुई है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-५-१९०४

१५५ एशियाई व्यापारी-आयोग

जोहानिसबर्गके पत्रोंमें इस आशयकी एक संक्षिप्त सूचना निकली है कि परीक्षात्मक मुकदमेके परिणामके कारण इस आयोगकी बैठकें स्थगित कर दी गई हैं। अधिकारियों द्वारा कार्रवाईसे रुपया खर्च करनेका यह एक और उदाहरण है। जो बात उन्हें पहले करनी चाहिए थी वह अब हालातसे मजबूर होकर सैकड़ा पौंड बरबाद करनेके बाद की गई है। ब्रिटिश भारतीय संघने ज्यों ही परीक्षात्मक मुकदमा दायर किया गया त्यों ही सरकारसे आयोगकी बैठकें मामलेका फैसला होनेतक स्थगित रखनेकी प्रार्थना की थी परन्तु वह किसी भी दलीलसे कायल न की जा सकी। सरकारका जो जवाब मिला था वह कुछ इतना ही था कि चूँकि आयोग विधान-परिषद द्वारा नियुक्त किया हुआ है इसलिए सरकार उसके मामलेमें दखल नहीं दे सकती। परन्तु अब चूँकि परीक्षात्मक मुकदमेका निर्णय सरकारके विरुद्ध हो गया है इसलिए वह एकाएक अपने-आपको आयोगकी बैठकें स्थगित करनेकी सत्तासे सज्जित पाती है। यह तो साफ धींगाशाहीकी अति-जैसी है। संघकी प्रार्थना बहुत ही संगत और तर्कसंगत थी और उसके पीछे खयाल था कि उससे सरकारकी सहायता होगी और खर्च बचेगा। फिर भी चूँकि उसका अर्थ यह समझा जा सकता था कि सरकार ब्रिटिश भारतीय संघकी इच्छाओंके आगे झुक गई, इसलिए उसको सामनेसे साफ इनकार कर दिया गया। अगर कोई सदस्य विधान-परिषदके अगले अधिवेशनमें यह प्रश्न पूछे तो बड़ी दिलचस्प बात होगी कि, परीक्षात्मक मुकदमा दायर हो जानेपर भी आयोग क्यों कायम रखा गया था अथवा क्या यह बात थी कि सरकारको भारतीयोंपर विजय-प्राप्तिका पूरा भरोसा था?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-५-१९०४

१५९ पत्र मंचरजी मेरवानजी भावनगरीको[1]

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
मई २५, १९ ४

सेवामें
सर मंचरजी भावनगरी संसद-सदस्य
१९६ क्रामवेल रोड
लन्दन इंग्लैंड

प्रिय महोदय

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर, सर आर्थर लालीने हाइडेलबर्गसे गुजरते हुए एक भारतीय शिष्टमण्डल द्वारा दिये गये अभिनन्दनपत्र[2] के उत्तरमें जो कहा उसका आशय यह था कि परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेके बलपर भारतीय व्यापारियोंको मनचाहा व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता बरदाश्त नहीं की जायेगी। और यह भी कि इस विषयमें कानून बनानेकी अनुमतिके लिए श्री लिटिलटनसे निवेदन किया जा चुका है।

१८८५ के कानून ३ में जिसका संशोधन १८८६ में किया गया जो भारतीय स्थिति बताई गई थी और परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेके अनुसार, जिसकी व्याख्या की गई थी वह इस प्रकार है:

(१) भारतीय बेरोक-टोक उपनिवेशमें आकर रह सकते हैं।
(२) वे उपनिवेशमें जहाँ चाहें व्यापार कर सकते हैं। उनके लिए पृथक बस्तियाँ निर्धारित की जा सकती हैं किन्तु कानून उन्हें केवल बस्तियोंमें रहनेको बाध्य नहीं कर सकता। कानूनमें इसके लिए कोई व्यवस्था नहीं है।
(३) वे नागरिक नहीं बन सकते।
(४) वे बस्तियोंके अलावा और कहीं भी अचल सम्पत्ति नहीं रख सकते।
(५) उपनिवेशमें आनेपर उन्हें ३पौंड पंजीयन (रजिस्ट्रेशन)-शुल्क देना पड़ेगा।

इसलिए, उपर्युक्त कानूनकी रूसे भी अचल सम्पत्ति रखनेपर रोकके अतिरिक्त भारतीयोंकी परिस्थिति अभी एकदम निराशाजनक नहीं है।

तथापि शान्ति रक्षा अध्यादेश (पीस प्रिज़र्वेशन ऑर्डिनेन्स) का अनुचित उपयोग करके आने-जानेकी स्वतन्त्रता बिलकुल छीन ली गई है। अध्यादेशका ऐसा उपयोग आखिरकार अन्यायपूर्ण है। यह अध्यादेश कानूनके अनुसार चलनेवाली ब्रिटिश प्रजाके लिए नहीं बल्कि विद्रोही और राजद्रोही लोगोंकी हलचलोंपर रोकथाम लगानेके विचारसे बना था।

विधान किस रूपमें पेश करनेका विचार है, अभी यह कहना कठिन है किन्तु यह देखते हुए कि उसका पेश करनेके भी पहले श्री लिटिलटनकी मंजूरी जरूरी है मुझे भरोसा है कि आप उनसे मिलकर इस प्रश्नपर चर्चा कर लेंगे। यदि एक बार उन्होंने किसी खास कार्रवाईके लिए अपनी अनुमति दे दी तो फिर राहत पाना बहुत कठिन हो जायेगा।

१ सर मंचरजी भावनगरीने इस पत्रकी एक नकल उपनिवेश-कार्यालयको भेजी थी। *इंडियाने* इसे १ जुलाई १९ ४ के अंकमें “[illegible]” शीर्षक लेखके रूपमें प्रकाशित किया था।
२. देखिए अभिनन्दनपत्र: लेफ्टिनेंट गवर्नरको, मई १८, १९ ४।

मैं यह सुझानेकी धृष्टता करता हूँ कि १८८५ का कानून ३ पूरा-पूरा रद कर दिया जाये। साथ ही पैदल-पटरियोंसे सम्बन्धित नगर-नियम और एशियाइयोंपर विशेष रूपसे निर्योग्यताएँ लादनेवाले तमाम कानून भी रद कर दिये जायें। केपकी तरहका एक प्रवासी-अधिनियम बनाया जाना चाहिए, किन्तु भारतीय भाषाओंको शैक्षणिक योग्यताकी कसौटीमें अछूत नहीं मानना चाहिए। और, नेटालकी तरह एक विक्रेता-परवाना अधिनियम बनाया जाना चाहिए। शर्त यह है कि उसमें परवानेकी अर्जियों पर स्थानीय अफसरोंके निर्णयोंके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलका अधिकार हो और वर्तमान परवाने उससे अछूते रहें — हाँ अगर दूकानें स्वच्छता और सफाईके आवश्यक मानको पूरा न करती हों तो इसमें अपवाद किया जा सकता है।

इस प्रकार प्रवासका जबरदस्त हौआ हमेशाके लिए हट जायेगा और व्यापारमें अनुचित भारतीय स्पर्धाका प्रश्न भी न रहेगा। स्थानीय अधिकारी परवानोंकी संख्याका नियमन कर सकेंगे।

भारतीयोंका इतना ही दावा है कि जबतक वे पाश्चात्य ढंगकी जरूरतोंके मुताबिक चलते हैं तबतक उन्हें व्यापार करने अचल सम्पत्ति रखने नागरिकताके अधिकारोंको भोगने आदिका अधिकार उपनिवेशके सर्वसामान्य नियमोंके अनुसार मिलना चाहिए।

मैं आपको यह भी याद दिला दूँ कि लॉर्ड मिलनर एक ही किस्मके विधानके लिए प्रतिज्ञा-बद्ध हैं, ब्रिटिश भारतीयोंपर विशेष रूपसे निर्योग्यताएँ लादनेवाले विधानके लिए नहीं। और वे इसके लिए भी प्रतिज्ञाबद्ध हैं कि शिक्षित और आसूदा भारतीय किसी भी प्रकारके प्रतिबन्धक विधानसे एकदम मुक्त रखे जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स सी० ओ० २९१ जिल्द ७८ इंडिविजुअल्स–बी।

१५७ ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

अच्छा ही हुआ कि हाइडेलबर्गके ब्रिटिश भारतीयोंने ट्रान्सवालके परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरको वफादारी-भरा मानपत्र दिया और, ऐसा करते हुए उनका ध्यान हालमें ही निर्णीत परीक्षात्मक मुकदमेकी तरफ खींचा। उसके कारण परमश्रेष्ठको सरकारी नीतिके सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण घोषणा करनी पड़ी। सर आर्थर लालीने शिष्टमण्डलको जो उत्तर दिया था उसका फोक्सरस्टके उस भाषणमें विस्तार किया जो उन्होंने अपने सम्मानमें फोक्सरस्टके लोगों द्वारा आयोजित भोजमें दिया था। परमश्रेष्ठने भारतीयोंकी वफादारी और परिश्रमशीलताकी उचित सराहना की। ट्रान्सवालमें भारतीयोंके दर्जेके बारेमें परमश्रेष्ठ बहुत संभल-संभल कर बोले। उन्होंने कहा कि जबतक उपनिवेश-मन्त्रीसे स्वीकृति न मिल जाये तबतक सरकार कुछ नहीं कर सकती। परन्तु उन्होंने यह कहनेमें कोई संकोच नहीं किया कि उन्हें गोरे निवासियोंसे बहुत ज्यादा सहानुभूति है जो एशियाई व्यापारियोंको यहाँ नहीं आने देना चाहते। उन्होंने फोक्सरस्टके लोगोंको वचन भी दिया कि वे अपने स्वदेशवासियोंकी इच्छा-पूर्तिका भरसक प्रयत्न करेंगे। अलबत्ता उनका यह वचन शर्तके साथ था। उन्होंने कहा कि सरकारकी कार्रवाई पूर्णतः न्यायके अनुसार होगी। निहित स्वार्थोंकी रक्षा करनी होगी जो लोग उपनिवेशमें पहलेसे बस गये हैं उनकी स्थितिकी व्याख्या ठीक-ठीक करनी होगी और यह भी बताना पड़ेगा कि जो लोग भविष्यमें इस देशमें प्रवेश करेंगे उन्हें भिन्न-भिन्न अयोग्यताओंका भाजन बनना होगा। ये सारी बातें बहुत सन्तोषजनक हैं। वर्तमान अनिश्चित स्थितिके स्थानमें जो भी व्यवस्था

१५६. पत्र : मंचरजी मेरवानजी भावनगरीको[1]

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
मई २५, १९०४

सेवामें
सर मंचरजी भावनगरी संसद-सदस्य
१९६ क्रामवेल रोड
लन्दन इंग्लैंड

प्रिय महोदय

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर, सर आर्थर लालीने हाइडेलबर्गसे गुजरते हुए एक भारतीय शिष्टमण्डल द्वारा दिये गये अभिनन्दनपत्र[2] के उत्तरमें जो कहा उसका आशय यह था कि परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेके बलपर भारतीय व्यापारियोंकी अबाध व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता बरदाश्त नहीं की जायेगी। और यह भी कि इस विषयमें कानून बनानेकी अनुमतिके लिए भी लिटिलटनसे निवेदन किया जा चुका है।

१८८५ के कानून ३ में जिसका संशोधन १८८६ में किया गया जो भारतीय स्थिति बताई गई थी और परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेके अनुसार, जिसकी व्याख्या की गई थी वह इस प्रकार है :

(१) भारतीय बेरोक-टोक उपनिवेशमें आकर रह सकते हैं।

(२) वे उपनिवेशमें जहाँ चाहें व्यापार कर सकते हैं। उनके लिए पृथक बस्तियाँ निर्धारित की जा सकती हैं किन्तु कानून उन्हें केवल बस्तियोंमें रहनेको बाध्य नहीं कर सकता। कानूनमें इसके लिए कोई व्यवस्था नहीं है।

(३) वे नागरिक नहीं बन सकते।

(४) वे बस्तियोंके अलावा और कहीं भी अचल सम्पत्ति नहीं रख सकते।

(५) उपनिवेशमें आनेपर उन्हें ३ पौंड पंजीयन (रजिस्ट्रेशन)-शुल्क देना पड़ता।

इसलिए, उपर्युक्त कानूनकी रूसे भी अचल सम्पत्ति रखनेपर रोकके अतिरिक्त भारतीयोंकी परिस्थिति अभी एकदम चिन्ताजनक नहीं है।

तथापि शान्ति-रक्षा अध्यादेश (पीस प्रिज़र्वेशन ऑर्डिनेन्स) का अनुचित उपयोग करके आने जानेकी स्वतन्त्रता बिलकुल छीन ली गई है। अध्यादेशका ऐसा उपयोग आखिरकार अन्यायपूर्ण है। यह अध्यादेश कानूनके अनुसार चलनेवाली ब्रिटिश प्रजाके लिए नहीं बल्कि विद्रोही और राजद्रोही लोगोंकी हलचलपर रोकथाम लगानेके विचारसे बना था।

विधान किस रूपमें पेश करनेका विचार है अभी यह कहना कठिन है किन्तु यह देखते हुए कि उनका पेश करनेके भी पहले श्री लिटिलटनकी मंजूरी जरूरी है मुझे भरोसा है कि आप उनसे मिलकर इस प्रश्नपर चर्चा कर लेंगे। यदि एक बार उन्होंने किसी खास कार्रवाईके लिए अपनी अनुमति दे दी तो फिर राहत पाना बहुत कठिन हो जायेगा।

१. सर मंचरजी भावनगरीने इस पत्रकी नकल उपनिवेश-कार्यालयको भेजी थी। [illegible]
२ जुलाई १९०४ के अंकमें [illegible] द्वारा [illegible] प्रकाशित किया था।
२. देखिए "अभिनन्दनपत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको", मई १८, १९०४।

मैं यह सुझानेकी धृष्टता करता हूँ कि १८८५ का कानून ३ पूरा-पूरा रद कर दिया जाये। साथ ही पैदल-पटरियोंसे सम्बन्धित नगर-नियम और एशियाइयोंपर विशेष रूपसे निर्योग्यताएँ लादनेवाले तमाम कानून भी रद कर दिये जायें। केपकी तरहका एक प्रवासी-अधिनियम बनाया जाना चाहिए, किन्तु भारतीय भाषाओंको शैक्षणिक योग्यताकी कसौटीमें अपूर्ण नहीं मानना चाहिए। और, नेटालकी तरह एक विक्रेता-परवाना अधिनियम बनाया जाना चाहिए। शर्त यह है कि उसमें परवानेकी अर्जियों पर स्थानीय अफसरोंके निर्णयोंके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलका अधिकार हो और वर्तमान परवाने उससे अछूते रहें — हाँ अगर दूकानें स्वच्छता और सीमाके आवश्यक मापको पूरा न करती हों तो इसमें अपवाद किया जा सकता है।

इस प्रकार प्रवासका जबरदस्त हौआ हमेशाके लिए दूर हो जायेगा और व्यापारमें अनुचित भारतीय स्पर्धाका प्रश्न भी न रहेगा। स्थानीय अधिकारी परवानोंकी संख्याका नियमन कर सकेंगे।

भारतीयोंका इतना ही दावा है कि जबतक वे पाश्चात्य ढंगकी जरूरतोंके मुताबिक बसते हैं तबतक उन्हें व्यापार करने, अचल सम्पत्ति रखने, नागरिकताके अधिकारोंको भोगने आदिका अधिकार उपनिवेशके सर्वसामान्य नियमोंके अनुसार मिलना चाहिए।

मैं आपको यह भी याद दिला दूँ कि लॉर्ड मिलनर ऐसे ही किसी विधानके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं, ब्रिटिश भारतीयोंपर विशेष रूपसे निर्योग्यताएँ लादनेवाले विधानके लिए नहीं। और वे इसके लिए भी प्रतिज्ञाबद्ध हैं कि शिक्षित और आसूदा भारतीय किसी भी प्रकारके प्रतिबन्धक विधानसे एकदम मुक्त रखे जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स सी ओ २९१ जिल्द ७८, इंडिविजुअल्स–डी।

१५७. ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

अच्छा ही हुआ कि हाइडेलबर्गके ब्रिटिश भारतीयोंने ट्रान्सवालके परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरको वफादारी-भरा मानपत्र दिया और, ऐसा करते हुए उनका ध्यान हालमें ही निर्णीत परीक्षात्मक मुकदमेकी तरफ खींचा। उसके कारण परमश्रेष्ठको सरकारी नीतिके सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण घोषणा करनी पड़ी। सर आर्थर लालीने शिष्टमण्डलको जो उत्तर दिया था उसका फोक्सरस्टके उस भाषणमें विस्तार किया था जो उन्होंने अपने सम्मानमें फोक्सरस्टके लोगों द्वारा आयोजित भोजमें दिया था। परमश्रेष्ठने भारतीयोंकी वफादारी और परिश्रमशीलताकी उचित सराहना की। ट्रान्सवालमें भारतीयोंके दर्जेके बारेमें परमश्रेष्ठ बहुत साफ-साफ कह गये। उन्होंने कहा कि जबतक उपनिवेश-मन्त्रीकी स्वीकृति न मिल जाये तबतक सरकार कुछ नहीं कर सकती। परन्तु उन्होंने यह कहनेमें कोई संकोच नहीं किया कि उन्हें गोरे निवासियोंसे बहुत ज्यादा सहानुभूति है जो एशियाई व्यापारियोंसे मेल नहीं रखना चाहते। उन्होंने खास तौरसे लोगोंको वचन भी दिया कि वे अपने स्वदेशवासियोंकी इच्छा-अनिच्छाका सम्मान प्रकट करेंगे। अलबत्ता उनका यह वचन शर्तके साथ था। उन्होंने कहा कि सरकारकी कार्रवाई पूर्ण न्यायके अनुसार होगी। निहित स्वार्थोंकी रक्षा करनी होगी; जो लोग उपनिवेशमें पहलेसे बसे हैं उनकी स्थितिकी व्याख्या स्पष्ट करनी होगी और यह भी बताना पड़ेगा कि जो लोग भविष्यमें इस देशमें प्रवेश करना चाहें, उन्हें किन-किन शर्तोंके आधारपर काम करना होगा। ये सारी बातें बहुत सन्तोषजनक हैं। वर्तमान अनिश्चित स्थितिके स्थानपर जो भी व्यवस्था

होगी हम उसका स्वागत करेंगे और यदि "निहित स्वार्थ" शब्दोंकी व्याख्या न्यायोचित की जाती है तो जो लोग ट्रान्सवालमें इस समय कारोबार कर रहे हैं उन्हें चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु दुर्भाग्यसे भूतकालको देखते हुए भविष्यके बारेमें आशा नहीं बँधती। दुर्भाग्य-ग्रस्त एशियाई व्यापारी आयोगने स्पष्ट कर दिया है कि "निहित स्वार्थों" से सरकारका मतलब क्या है। वह उन्हीं ब्रिटिश भारतीयोंके व्यापारको मान्यता देगी जो "लड़ाई छिड़नेके समय और उसके ठीक पहले ट्रान्सवालमें बस्तियोंके बाहर वस्तुतः व्यापार कर रहे थे। हम जानते हैं कि इसका अर्थ क्या है। और, हम यह भी जानते हैं कि इस अभिव्यक्तिकी आयुक्तोंने क्या व्याख्या की थी। इससे केवल उन दर्जनभर एशियाइयोंकी रक्षा होगी जो लड़ाईके समय अपना समूचा व्यापार छोड़कर डरके कारण इस देशसे चले गये थे। और यदि "निहित स्वार्थ" शब्दोंकी व्याख्या नहीं की जायेगी तो ट्रान्सवालके मुख्य न्यायाधीशके अर्थपूर्ण शब्दोंमें इसका मतलब यह होगा कि वह जो-कुछ एक हाथसे देगी जैसा वह दावा करती है उसको फिर दूसरे हाथसे छीन लेगी। परमश्रेष्ठने स्वयं यह कहकर खतरेका पूर्वाभास दे दिया है कि सरकार ब्रिटिश भारतीयोंके व्यापारकी रक्षा केवल मौजूदा परवानेदारोंके जीवनकालतक ही करेगी। जो आदमी व्यापार करता है वह जानता है कि इसका मतलब क्या है। तमाम व्यापारिक लेन-देनमें निश्चितता बहुत आवश्यक होती है और कानून बताता है कि जो भारतीय व्यापारी माल उधार माँगते हैं उनके व्यापारकी अवधि बिलकुल सुनिश्चित नहीं है और उनकी मृत्यु होते ही उनका कारोबार एकाएक बन्द हो जायेगा। फिर मानव-जीवन बड़ा अस्थिर होता है तब क्या ऐसे गोरे व्यापारी मिलेंगे जो यह सब जानते हुए भी भारतीय व्यापारियोंको कुछ भी माल उधार दे दें? यह समझना मुश्किल है कि परमश्रेष्ठ भारतीयोंकी न्यायभावना जो दाम करना चाहते हैं उसके साथ इस प्रकारके सिद्धान्तका मेल कैसे बैठ सकता है। इसलिए हमें न्याय करनेके सरकारी इरादोंका स्वागत इच्छा न होनेपर भी कुछ संयम और सावधानीसे करना पड़ता है। परमश्रेष्ठने गोरोंके व्यापारपर भारतीयोंके व्यापारके असरके बारेमें जो राय बनाई है उससे भी सान्त्वनाका कोई आधार नहीं मिलता। परमश्रेष्ठने बड़ी संख्यामें एशियाइयोंके प्रवेशकी बात नहीं है। हम उसके विरुद्ध आदरके साथ अपनी आपत्ति प्रकट करते हैं। वे अवश्य ही अच्छी तरह जानते हैं कि शान्ति-रक्षा अध्यादेश ब्रिटिश भारतीयोंतकका उपनिवेशसे बाहर रखनेके साधनके रूपमें कितनी सख्तीसे काममें लाया जा रहा है। जब चीनी मजदूर आयात अध्यादेश विधान-परिषदमें पास हो रहा था तब सरकारको यह सिद्ध करना परम आवश्यक हो गया था कि शान्ति-रक्षा अध्यादेशका प्रयोग प्रामाणिक एशियाई शरणार्थियोंके सिवा और सबको बाहर रखनेके लिए कारगर तरीकेपर किया जा रहा है। मुख्य परवाना-सचिवने एक प्रतिवेदन तैयार किया था जिसमें प्रकट होता था कि किसी भी नवागन्तुकको उपनिवेशमें प्रवेश नहीं करने दिया जाता और शरणार्थियोंतकको बहुत ही कम परवाने दिये जाते हैं। इसलिए अब परमश्रेष्ठका बड़ी संख्यामें एशियाइयोंके प्रवेशकी बात करना बहुत कठोर और अनपेक्षित मालूम होता है। परमश्रेष्ठने कहा कि

> जिन लोगोंने अपनी आँखोंसे देख लिया है वे ही यह अनुभव करते हैं कि भारतीय यहाँ रह सकते हैं—[illegible] भी नहीं [illegible]स्थामें नहीं—और गोरोंसे आगे बढ़कर उन्हें व्यापार और [illegible] [illegible] [illegible] सकते हैं।

यदि [illegible] वचन [illegible] [illegible] [illegible] होता क्योंकि यह लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदयकी जबानसे निक[illegible] [illegible]? क्या व्यापार अथवा व्यवसायका

कोई भी विभाग ऐसा है जिसमें वे एशियाइयोंसे गोरोंका बचाव हो ? व्यापारके दो ही ऐसी शाखाएँ हैं जिनमें दोनोंके बीच कोई स्पर्धा है। वे हैं, फेरी और छोटी दूकानदारी। अब फेरीके बारेमें सत्य यह है कि गोरे, विरल अपवाद छोड़कर इस कष्टप्रद कामको करनेके लिए बिलकुल तैयार नहीं हुए। जैसा कि हमारे सहयोगी स्टारने बताया है गोरे फेरीवालोंने अनेक बार प्रयत्न किये हैं परन्तु हर बार छोड़ दिये — भारतीयोंकी स्पर्धाके कारण नहीं बल्कि इसलिए कि वे इसकी परवाह ही नहीं करते। परन्तु गोरोंका एक वर्ग है जो इस कामको सफलता-पूर्वक और भारतीयोंके मुकाबलेमें कर रहा है। हमारा आशय सीरिया-निवासियों और रूसी यहूदियोंसे है। वे परिश्रमी हैं और भारी बोझा लादकर दूर-दूरतक चलनेमें आपत्ति नहीं करते और हम उन्हें यह व्यापार सफलतापूर्वक करते हुए पाते हैं। इसके अतिरिक्त यह नहीं भूलना चाहिए कि शहरोंके सिर्फ फेरी लगाकर भारतीय एक बहुत महसूस की जानेवाली आवश्यकताकी पूर्ति करते हैं और दुहरी कमाई करते हैं। वे गृहस्थोंके दरवाजोंपर ही साग-भाजी और दूसरी चीजें पहुँचा देते हैं और उनसे गोरे थोक व्यापारी आसानीसे मुनाफा भी कमा सकते हैं। चूँकि वे इस प्रकार लाभदायक सिद्ध हुए हैं इसी कारण उन्हें थोक यूरोपीय कोठियोंसे हमेशा माल मिलता है। अगर वे भारतीयोंको माल उधार देना स्थगित कर दें तो उनका अधिकांश व्यापारियोंमें फेरीवालोंके रूपमें रहना बिलकुल असम्भव हो जायेगा। और हमने जो कुछ फेरीवालोंके सम्बन्धमें कहा है वही छोटे दूकानदारोंपर लागू होता है और वह भी ज्यादा प्रबलताके साथ। वस्तुतः छोटे भारतीय दूकानदार जोहानिसबर्ग, प्रिटोरिया और कुछ दूसरे शहरोंके अलावा अन्यत्र कहीं नहीं मिलते। और छोटे यूरोपीय दूकानदारों तथा भारतीय दूकानदारोंके बीच तीव्र स्पर्धा है जिसमें भारतीयोंके मुकाबले यूरोपीय हमेशा मुनाफेमें रहते हैं। परन्तु यदि इन दो व्यवसायोंको छोड़ दिया जाय तो इन दोनों जातियोंमें कोई स्पर्धा नहीं रह जाती। उदाहरणार्थ केप उपनिवेशमें जहाँ स्पर्धा सर्वथा मुक्त है और भारतीयोंको लगभग सभी अधिकार प्राप्त हैं भारतीय व्यापारी किसी गोरे दूकानदारको नहीं हटा सके हैं। और न नेटालमें ही जहाँ इतने बड़े भारतीय आबादी है, वे ऐसा कर सके हैं। इस लिए परमश्रेष्ठके प्रति उचित आदर व्यक्त करते हुए हम कहेंगे उनका यह कथन कि भारतीय गोरोंको व्यापारसे खदेड़ते हैं अत्यन्त सीमित दायरेको छोड़कर, उचित नहीं मालूम होता। और जहाँ भारतीय किसी गोरेको खदेड़ता दिखाई देता है वहाँ भी वह उसे अपने-आपसे एक सीढ़ी ऊँचा ही उठा देता है क्योंकि वह थोकका व्यापारी बन जाता है और गोरेको फुटकर व्यापारीके बजाय थोक व्यवसायी बना देता है।

परन्तु परमश्रेष्ठका भाषण इतना ही बताता है कि अभी कितना काम करना बाकी है जिसके बाद ट्रान्सवालके भारतीय इस स्थितिमें होंगे कि जो व्यापार परीक्षात्मक मुकदमेके निर्णयके अनुसार अधिकारतः तौरपर उनका होना चाहिए उसपर वे कुछ कब्जा बनाये रखें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-५-१९०८

१५८. परीक्षात्मक मुकदमेपर "ईस्ट रैंड एक्सप्रेस"

ट्रान्सवालके परवाना-सम्बन्धी परीक्षात्मक मुकदमेके बारेमें इतना अधिक कहा जा चुका है और हमें खुद अपनी ओरसे उसके सम्बन्धमें इतना ज्यादा कहना पड़ा है कि हमारे सामने जो विभिन्न कतरनें पड़ी हैं उन्हें हम निपटा नहीं सके हैं। किन्तु उनमेंसे एकको जल्दीसे निपटा देना जरूरी है क्योंकि वह पूर्वी ट्रान्सवाल (ईस्ट रैंड)-वासियोंके आवेशकी सूचक है। किन्तु हमें यह देखकर और दुःख होता है कि हमारे सहयोगी ईस्ट रैंड एक्सप्रेसने एक अत्यन्त खतरनाक सिद्धान्तका समर्थन किया है। और यद्यपि यह सिद्धान्त इस महीनेकी १४ तारीखके अंकमें बहुत सावधानीसे बताया गया है, फिर भी अनुक्त बातोंसे यह निष्कर्ष निकले बिना नहीं रहता कि पूर्वी ट्रान्सवालके लोगोंको कानून अपने हाथोंमें लेने और अगर भारतीय उस जिलेके भीतर दूकानें खोलनेका कोई प्रयत्न करें तो उन्हें ऐसा करनेसे जबरदस्ती रोकनेका प्रबन्ध परामर्श दिया गया है। ये हथकण्डे और तरीके ब्रिटिश पत्रकारों और उन लोगोंके अनुरूप नहीं हैं जो अपनेको ब्रिटिश कहते हैं। यदि हमारा सहयोगी क्षणिक झुंझलाहटमें इतना नीचा उतर जाता है तो इसका अर्थ यह होगा कि वह एक तुच्छ-सी वस्तुके लिए उन सब बातोंको त्याग देता है जिन्हें अंग्रेज लोग पवित्र मानते हैं। हम चाहते हैं कि सहयोगी अपना पक्ष स्वयं पेश करे और हमारे कथनमें अत्युक्ति है या नहीं यह तय करनेका काम पाठकों पर छोड़ दे। फैसलेपर विचार करनेके बाद जिसकी व्याख्या उसने गलत की है, वह आगे कहता है

> यह माना जा सकता है कि एशियाई इस अवसरसे लाभ उठानेकी कोशिश करेंगे। अबतक कुली पूर्वी ट्रान्सवाल (ईस्ट रैंड)के नगरोंमें नहीं आने दिये गये हैं परन्तु ऐसा मालूम होता है कि आयन्दा कानूनन उनका विरोध नहीं किया जा सकेगा। तब हमें क्या करना है? हम सबका तरह ही दृढ़-संकल्प है कि एशियाइयोंको *बाजारोंके* बाहर व्यापार न करने देंगे। *बाजार* नगरोंसे उचित दूरीपर स्थित हैं। अबतक सामान्य रूपमें राज्य भी संरक्षण देता था क्या उसका स्थान अब ऐच्छिक कार्रवाई ले सकती है? जहाँतक पूर्वी ट्रान्सवालका सम्बन्ध है हमारा खयाल है, उसपर सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयका कोई असर नहीं होगा। इतिहास बताता है कि जब कानून किसी समाजकी रक्षा नहीं कर सकता तब आम तौरपर वह समाज ही अपनी रक्षा आप करनेका कोई मार्ग ढूँढ लेता है। तथापि जनता द्वारा कानून अपने ही हाथोंमें लेनेपर हमें दुःख होना चाहिए। *परन्तु यदि भारतीय अथवा चीनी लोग इस फैसलेके अनुसार इस जिलेके गोरोंमें व्यापार करनेका प्रयत्न करेंगे तो हमें डर है, वही होगा जो लेमापविकी भाषामें एक खेदजनक घटना मानी जायेगी। एशियाई कानून जोअर राज्यके पिछले कुछ वर्षोंमें जितना कठोर था उतना ही कठोर फिर बनाये जानेके पूर्व बारबर्टनमें कुछ एशियाइयोंने व्यापार करनेका प्रयत्न किया था। परन्तु दूसरे दिन तड़के ही उन्हें अपना माल-असबाब छोड़कर भागना पड़ा और इस तरह उनकी जानें फौजोंसे बचीं।* अवश्य ही बारबर्टन वासियोंकी इस हरकतकी घोर निन्दा की जानी चाहिए। परन्तु इस घटनासे हमारे एशियाई मित्रोंको

एक शिक्षा भी मिलती है। और वह है — नगरपालिकाओं और पुलिसके तमाम प्रयत्नोंके बावजूद अन्यत्र भी कदाचित् ऐसी घटनाएँ हो सकती हैं। ऐसी हालतोंमें व्यवस्था कायम रखनेका भार स्थानीय अधिकारियोंपर रखना उनके प्रति न्याय नहीं होगा और, इसलिए, हमें विश्वास है कि सरकार जनताकी इच्छाओंके अनुकूल कानून बनानेमें विलम्ब न करेगी।

ऐसे लेख लिखनेका अर्थ है या तो खाली धमकी देना या अपना अभिप्राय गंभीरतासे बताना। यदि पहली बात सही हो तो उस अवस्थामें हमारे सहयोगीने भारतीयोंको सही रूपमें नहीं समझा है। किन्तु यदि दूसरी बात सही हो तो ईस्ट रैंडमें भारतीयोंकी दूकानें खुलनेपर हम ईस्ट रैंडवासी गोरोंके हाथों एक-दो भारतीयोंके फाँसीपर चढ़ा दिये जानेका स्वागत करेंगे। हम साम्राज्य-हितके खयालके अलावा भारतीयोंके हितके लिए यह चाहेंगे। इससे यह समस्त प्रश्न उभर आयेगा और भारतीय भी यह जान सकेंगे कि जो ब्रिटिश झंडा अबतक सामान्य स्वतन्त्रताकी पूरी रक्षा करता रहा है वह अब भी काफी है या नहीं। इससे यह भी जाहिर हो जायेगा कि क्या भारतीय इतने कायर हैं जो ऐसी कार्रवाइयोंसे लड़खड़ा जायेंगे और इस देशसे खिसक जायेंगे। इसलिए जहाँतक भारतीयोंका सम्बन्ध है, हमें इसमें कोई शक नहीं है कि यदि ईस्ट रैंडका गोरा-समाज हमारे सहयोगीकी सलाह मान लेगा तो भारतीयोंकी स्थिति अत्यन्त मजबूत हो जायेगी। परन्तु हम उसे ऐसी ही एक घटनाकी[1] याद दिला दें जो कुछ वर्ष पहले उमतलीमें हुई थी। वहाँ एक भारतीयको व्यापारका परवाना मिला था। इसपर शहरके सब यूरोपीय चढ़ आये। उन्होंने भारतीयको धमकी दी कि यदि वह दूकान बन्द न करेगा तो वे उसकी दूकानको धक्का देंगे और खुद उससे भयंकर बदला लेंगे। सौभाग्यवश उसने अकेला होनेपर भी भीड़का सामना किया और दूकान बन्द करने या भाग जानेसे इनकार कर दिया। इतनेमें ही पुलिसकी मदद आ पहुँची। इसपर भीड़ अपनेको लाचार पाकर वहाँसे हट गई और वह भारतीय उससे छूटकर शान्तिपूर्वक अपना व्यापार जारी रख सका। हम अपने सहयोगीके विचारके लिए यह घटना पेश कर रहे हैं और उससे एक बार फिर पूछते हैं कि एक प्रतिष्ठित पत्रका कर्तव्य क्या है — जिस समाजके लिए वह प्रकाशित होता है उसमें कानून-भंगकी उत्तेजना फैलाना या उसको व्यवस्था और सद्व्यवहारकी शिक्षा देना?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-५-१९०४

१ देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ९१।

१५९. श्री डैन टेलर

जिस समय श्री मेक-कार्टीका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ उसी समय श्री डैन टेलरने एक बहुत ही जोरदार भाषण दिया जिससे सभी लोग चकित रह गये। उन्होंने सूचना दी कि वे भारतीयोंके बजाय चीनियोंको नेटालमें लानेका पूरा प्रयत्न करेंगे। १८९६ के श्री डैन टेलर[1] आजके श्री डैन टेलरसे बिलकुल भिन्न थे। वे उस समय सभी प्रकारके रंगदार मजदूरोंके विरुद्ध प्रधान आन्दोलनकारी थे। वे जाम-मालिकोंके विरुद्ध जहर उगलते थे और जो लोग तभी भारतसे आये थे उनको नेटालके किनारे उतरनेके हकका दावा करनेपर समुद्रमें फेंक देनेके लिए कृतसंकल्प थे। ये सब इतिहासकी बातें हैं।[2] परन्तु समयके साथ ढंग बदलते हैं और उसी तरह आदमी भी। और अब श्री डैन टेलरका खयाल है कि उपनिवेशकी खुशहालीके लिए किसी-न-किसी रंगदार मजदूर-वर्गकी नितान्त आवश्यकता है। अगर वे अपना प्रस्ताव स्वीकृत करा सकें तो हम अवश्य सुझाव देंगे कि भारतीय समाज एक प्रस्ताव स्वीकार करके उनको धन्यवाद दे। वे भारतीय मजदूरोंके विरुद्ध इसलिए हैं कि वे जानते हैं भारत सरकार भारतीयोंसे गुलामोंकी तरह उतना काम नहीं लेने देगी जितनेसे उनको सन्तोष हो सके। हम भारतीय मजदूरोंको गिरमिटिया बनानेका विरोध इसलिए करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि जिस रूपमें वे इस उपनिवेशमें लाये जाते हैं वह स्वर्गीय सर विलियम विल्सन हंटरके शब्दोंमें खतरनाक रूपसे दासताके निकट है। हम ३ पौंड सालाना व्यक्तिकरको कभी मंजूर नहीं कर सकते। यह कानून तो भारतीयोंसे उनकी आजादीका मूल्य वसूल करता है — उस आजादीका जो स्वर्गीय श्री एस्कम्बके शब्दोंमें उसे तब दी जाती है जब वह तुच्छ-सी मजदूरीके बदलेमें अपने जीवनके सर्वोत्तम पाँच वर्ष उपनिवेशको दे चुकता है। इसलिए यद्यपि हमारे दृष्टिकोण भिन्न हैं फिर भी हमें अपने-आपको श्री डैन टेलरसे पूर्णत: सहमत पाकर बड़ा संतोष होता है और हम सचमुच उस दिनका स्वागत करेंगे जब मौजूदा हालतोंमें भारतीयोंको गिरमिटिया मजदूरोंके रूपमें लाना बन्द कर दिया जायेगा। साथ ही इससे उपनिवेशियोंकी आँखें खुल जायेंगी और वे देख लेंगे कि स्वतन्त्र भारतीयोंकी उपस्थितिसे भी उपनिवेशकी समृद्धिमें कितनी वास्तविक वृद्धि हुई है। भारतीयोंको थोड़ी-सी निकम्मी जमीन मिल जानेपर कोसना तो बड़ा आसान है मगर जो लोग इसके विरुद्ध चिल्लाते हैं वे यह बिलकुल भूल जाते हैं कि जो जमीन भारतीयोंके हाथोंमें आ जाती है उसका चप्पा-चप्पा सचमुच बागके रूपमें परिणत हो जाता है। हमारी समझमें नहीं आता कि जिस जमीनको यूरोपीय छूना भी नहीं चाहते उसको यदि भारतीय उपयोगी बना देते हैं तो उसमें आपत्तिकी क्या बात हो सकती है। मगर हाथ-कंगनको आरसी क्या? अगर श्री डैन टेलर भारतीयोंका उपनिवेश-प्रवास बन्द करानेमें सफल हो जाते हैं तो जो बात हम एक अरसेसे तौरपर कहते रहे हैं वह भारतसे गिरमिटिया मजदूरोंके प्रवासकी मनाहीके बाद पूर्ण सार्थक हो जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-५-१[illegible]

1. देखिए खण्ड २, पृष्ठ २२६ ।
2. यह किस्सा विख्यात "[illegible]" में बताया गया है। देखिए खण्ड २, पृष्ठ १९० और आगे

१६० स्वर्गीय सर जान रॉबिन्सन[1]

लन्दनसे प्राप्त एक समुद्री तारमें बताया गया है कि स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सनके स्मारकके लिए चन्दा इकट्ठा करनेके उद्देश्यसे इस उपनिवेशके समान लन्दनमें भी एक समिति बनाई गई है। यह उचित ही हुआ है — भले इसका कारण सिर्फ यही क्यों न हो कि वे उत्तरदायी शासनमें उपनिवेशके पहले प्रधानमन्त्री थे और उपनिवेशको जिम्मेदार हुकूमत दिलानेका प्रयत्न करनेवालोंमें प्रमुख थे। परन्तु लोक-कल्याणके प्रति उनकी निष्ठा तथा आत्मत्यागके कारण उन्हें जनताके सम्मानका इससे कहीं ज्यादा हक है। स्वर्गीय सर जॉन बिलकुल अपने प्रयत्नोंसे बड़े हुए थे। उन्होंने पत्रकारके रूपमें जो काम किया उसे प्रत्येक व्यक्ति अच्छी तरह जानता है और शिक्षाशास्त्रीकी हैसियतसे भी वे दक्षिण आफ्रिकामें शायद किसीसे दोयम नहीं थे। उनके लिए पत्रकारिता धन कमाने-जैसेकी चीज नहीं थी; वे उसका उपयोग लोकमतको शिक्षित करनेके साधनके रूपमें करते थे और उसके द्वारा समाजका हितकर बल प्रदान करते थे। असलमें वे अपनी प्रतिभाका उपयोग बुद्धि-विलासके लिए नहीं, वरन् देश-हितके लिए करते थे। सार्वजनिक वक्ताके रूपमें भी वक्तृत्व-कलामें उनका स्थान शायद स्वर्गीय श्री एस्कम्बके ही बाद था यद्यपि शैली शायद उनकी ही अधिक सुसंस्कृत थी। हमें आशा है कि इस दिवंगत राजनयिककी स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके कार्यमें भारतीय समाज अपना योग प्रदान करेगा। उन्हें एक विशेष दृष्टिकोणसे भी भारतीयोंका ध्यान आकर्षित करनेका हक है और यहाँ हम कृतज्ञतापूर्वक उस अवसरका स्मरण कर सकते हैं जब स्वर्गीय सर जॉनने बीमार होनेके कारण बहुत असुविधा होनेपर भी उस सभाकी अध्यक्षता करना मंजूर किया था जो भारतीयोंने लेडीस्मिथ, मफेकिंग और किम्बर्लेकी मुक्तिकी खुशी मनानेके लिए आयोजित की थी। उन्होंने उस समय जो भाषण[2] दिया था वह प्रोत्साहनसे पूर्ण था और युद्ध-कालमें भारतीयोंने जो काम किया था उसको उसमें उदारतापूर्वक मान्यता दी गई थी। इससे उनकी विशाल-हृदयता और सहानुभूतिका परिचय मिलता था और साथ ही यह भी प्रकट होता था कि स्वयं वे तो पूर्णतः रंगभावसे अछूते थे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २८-५-१९०४

१. देखिए "सर जॉन रॉबिन्सन", ११-११-१९०३।

१६१ गिरमिटिया भारतीय

हमको प्रवासी भारतीयोंके संरक्षककी ३१ दिसम्बर १९ १ तकके सालकी रिपोर्टकी एक प्रति मिली है। इसके अनुसार उपनिवेशमें गिरमिटिया भारतीयोंकी आबादी जिसमें उनकी सन्तानें भी शामिल हैं सालके अन्तमें ८१११९ थी जब कि १८९६ में यह ३१७१२ और १९ २ में ७८ ४ थी। पिछले सालकी पैदाइशकी दर ३२११ और मौतकी दर २ ७८ थी। सबसे कम मौतकी दर १८९८ में रही यानी १४२ । और दिलचस्प बात यह है कि उसी सालमें सबसे कम पैदाइशकी दर भी दिखाई देती है यानी १९ ९। आलोच्य वर्षमें ५२ आदमी फेफड़ेसे १२८ निमोनिया और फेफड़ोंकी अन्य शिकायतोंसे और २६२ राजयक्ष्मासे मरे। ये आँकड़े कुछ असाधारणजनक हैं और इसलिए इनको सावधानीसे जाँचनेकी जरूरत है। जैसा कि रिपोर्टमें बताया गया है कोयलेकी खानोंमें भारतीयोंकी मौतकी दर अधिक ऊँची रही है। खान-खुदाईके इलाकेमें जो जोरेसे भारतीय हैं उनमें ४ मौतें हुई। इनमें से ११ राजयक्ष्माकी और ८ निमोनियाकी थीं। और यह उम्मीद है कि संरक्षक तबतक चैनसे नहीं बैठेगा जबतक कि इस मृत्यु-संख्यामें भारी कमी न हो जाये। संरक्षकके दफ्तरमें गतवर्ष १ ५१ विवाह दर्ज किये गये जिनमें २ बहुविवाह थे। पिछले साल भारतको लौटनेवाले २, २९ भारतीयोंकी बचत रुपया और जेवर मिलाकर, ३४६९ पौंड थी अर्थात् प्रति व्यक्ति १७ पौंडसे कुछ ज्यादा। इसमें अक्सर पेश किये जानेवाले इस खयालके विपरीत एक निर्णायक तर्क मिलता है कि भारतीय छोटे बड़े नगरोंमें भारत वापस जा सकते हैं और अपनी कमाईसे अपनी बाकी जिन्दगी बिना कुछ किये बिता सकते हैं या अपनी बची पूँजीको किसी अन्य व्यवसायमें लगा सकते हैं, जिससे अच्छी रोजी कमा सकें। भारत जैसे गरीब देशमें भी संजीदगीसे यह नहीं कहा जा सकता कि १७ पौंडसे एक आदमीका गुजारा बहुत दिन हो सकता है। २, २९ लौटे भारतीयोंमें से १५४२ मद्रासी और ४८७ कलकत्तावाले थे। मद्रासियोंकी बचतकी रकम थी २७४१७ पौंड अर्थात् १८ पौंड प्रति व्यक्ति और कलकत्तावालोंकी बचतकी रकम थी ७२७१ पौंड अर्थात् १५ पौंड प्रति व्यक्ति। संरक्षकने प्रवासियोंकी बचतका जो वर्गीकरण दिया है वह बड़ा दिलचस्प है। इसके अनुसार ४७ मद्रासियोंमें से प्रत्येकके पास २ रुपयेसे अधिक थे जब कि कलकत्तावालोंमें से ५ के पास ही इतने रुपये थे। २९ मद्रासियोंके पास २ रुपयेसे कम थे जब कि इतने रुपये ९ कलकत्तावालोंके पास थे। २२ मद्रासियोंके पास ५ रुपयेसे कम थे जब कि इतने रुपये ११ कलकत्तावालोंके पास थे। इस तरह कलकत्तावाले मुश्किलसे आखिर तक कमजोर उतरे हैं। इससे यह भी जाहिर है कि वे मद्रासियोंके बराबर न तो मेहनती हैं और न किफायती। अच्छा हो कि हमारे कलकत्तावाले भाई इस जरूरी तथ्यको अंकित कर लें और जो उनमें प्रभावशाली हैं वे उनको अधिक दूरदर्शिताकी आवश्यकता समझायें। ८१११९ भारतीयोंमें से ३ ११३१ गिरमिटिया थे और बाकी मुक्त हो गये थे। मालिक और नौकर शीर्षकके अन्तर्गत हमको बताया गया है कि आम तौरपर मालिक और गिरमिटिया भारतीयोंके बीच सम्बन्ध अच्छे रहे हैं और परिणामस्वरूप भारतीयोंके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है।

जो भारतीय संरक्षकके पास शिकायतें करनेके लिए जानेके इच्छुक हों उनके सम्बन्धमें नये नियम बना दिये गये हैं। पहले अगर कोई भारतीय यह साबित कर देता था कि वह संरक्षकके पास शिकायत पेश करने जा रहा है तो वह गिरफ्तारीसे मुक्त रहता था। लेकिन

नये नियमोंके अनुसार वह गिरफ्तारीसे तबतक मुक्त नहीं रह सकता जबतक कि अपने डिवीजनके न्यायाधीशसे इस आशयका कोई पास न प्राप्त कर ले। यह पास मिल भी सकता है और नहीं भी। इस प्रकार वास्तवमें उसको संरक्षक कार्यालयतक पहुँचनेके लिए अपना अभियोग प्रारम्भिक रूपमें न्यायाधीशके सामने प्रमाणित करना पड़ता है। हम यह कहे बगैर नहीं रह सकते कि यह एक ऐसी नई बात है जिसकी कोई खास आवश्यकता नहीं थी। इससे तो कहीं अच्छा होता अगर उस भारतीयको जो शिकायतें करना चाहता हो शिकायतें करनेकी अबाध रूपसे स्वतन्त्रता होती। निस्सन्देह उनमें कुछ निरर्थक शिकायतें भी होतीं परन्तु हमारे विचारमें सच्ची शिकायतोंके रास्तेमें कठिनाई पैदा करनेके बजाय उन निरर्थक शिकायतोंकी उपेक्षा करना अधिक अच्छा है।

भारतीय मजदूरोंकी माँग असाधारण गतिसे बढ़ रही है। मासके अन्ततक १५, ११ प्रार्थना-पत्र ऐसे थे जिनपर कोई कार्रवाई ही नहीं की गई थी। भारत-स्थित प्रतिनिधि इस असाधारण माँगको पूरा करनेमें बिलकुल असमर्थ है। इससे स्पष्ट है कि गिरमिटिया भारतीय मजदूरोंके बगैर इस उपनिवेशका काम बिलकुल नहीं चल सकता और फिर भी हम लोगोंको इनके विरोध में चिल्लाते और यह तर्क देते हुए सुनते हैं कि गिरमिटिया भारतीय मजदूरोंने उपनिवेशको बरबाद कर दिया है।

आत्महत्याओंके विषयमें संरक्षकका कहना यह है

> आत्महत्याओंकी संख्या जो इन आँकड़ोंमें शामिल नहीं है, इस सालमें ११ रही। इनमें २ मर्द और १ औरतें गिरमिटिया थीं जब कि ६ मर्द १ औरत और १ लड़का स्वतंत्र भारतीय थे। आत्महत्याकी प्रत्येक घटना जिन स्थितियोंमें हुई उसकी जाँच न्यायाधीश करता है और जब कभी सबूतसे ऐसा लगता है कि मौत किसी भी रूपमें मालिक या किसी नौकरके बुरे बरतावके परिणामस्वरूप हुई है तब मैं स्वयं उस कोठी में जाता हूँ और घटनाकी स्थितियोंकी जाँच करता हूँ। केवल एक ही उदाहरण इस तरहका है जिसमें सबूत इस ओर संकेत करता था; परन्तु मेरी पूरी जाँचसे इस सन्देहकी पुष्टि नहीं हुई। यह सन्देह मृत व्यक्तिके जहाजी साथियोंने पैदा किया था। मृत व्यक्ति भारतमें एक दूकानमें सहायक था और मालिकका बही-खाता रखता था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने वास्तवमें आत्महत्या इसलिए की कि गन्नेकी खेतीका काम उसके अनुकूल न था। एक औरतने एक ऐसे सम्पन्न पुरुषसे शादी कर ली थी जिसकी गिरमिटकी पहली मियाद पूरी हो चुकी थी। उस औरतके साथ व्यवहार भी अच्छा किया जाता था किन्तु उसने इसलिए आत्महत्या कर ली कि विवाहसे दो महीने पीछे उसे एक निम्न जातिके पुरुषसे सम्बन्ध कर लेनेपर पछतावा हुआ। एक आदमीने इसलिए आत्महत्या की कि उसकी पत्नी उसे छोड़कर चली गई थी। एक दूसरे व्यक्तिने अपनी पत्नीको जानसे मारनेकी कोशिश की थी और उसने ऐसा क्यों किया यह सवाल आनेपर अपने-आपको फाँसी लगा ली। इस रहस्यका पता अबतक नहीं लगा है कि एक नौ वर्षके स्वतंत्र भारतीय बालकने जो अपने पिताके भारतीय स्वामीके पशु चरा रहा था, आत्महत्या क्यों कर ली। साधारणतः गवाहोंका कहना है कि वे आत्महत्याका कोई कारण नहीं बता सकते। और जिनके बारेमें माना जाता है कि वे जानते हैं वे ही अगर कोई सूचना देनेसे इनकार करें तो बहुत-सी घटनाओंका सम्भावित कारण जानना भी असम्भव है।

इस दुःखजनक विषयमें हमने संरक्षकका पूरा कथन पेश कर दिया है और हम इस बात-पर आश्चर्य प्रकट किये बिना नहीं रह सकते कि यह मामला गम्भीर विचार किये बिना यों ही खतम कर दिया गया। गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याएँ आये सालकी चीज बन गई है और हमारे विचारमें इसके कारणकी जाँच गहराईसे की जानी चाहिए। भारतीयोंके संरक्षकका यह उत्तर कोई उत्तर नहीं है कि जिनके बारेमें माना जाता है कि वे जानते हैं वे ही अगर कोई सूचना देनेसे इनकार करें तो बहुत-सी घटनाओंका सम्भावित कारण जानना भी असम्भव है। अंग्रेजीकी एक सीधी-सादी कहावत है "जहाँ चाह वहाँ राह।" और अगर संरक्षक हमारी ही तरह अनुभव करे तो चूँकि उसको एक निरंकुश शासकके अधिकार प्राप्त हैं इसलिए उसे आत्महत्याके कारण ढूँढ़नेमें रत्ती-भर भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए। संरक्षकके बयानसे इस बातका काफी पता लग जाता है कि कहीं न कहीं खराबी जरूर है। स्वतन्त्र भारतीयोंकी ५१ २५९ जनसंख्यामें ८ आत्महत्याएँ हुईं और ३ १११ गिरमिटिया भारतीयोंमें २३। दोनोंके अनुपातोंमें यह इतनी बड़ी विषमता क्यों है? पेरिस इस बारेमें सबसे बदनाम माना जाता है। वहाँ आत्महत्याओंकी सबसे अधिक संख्या अर्थात् दस लाखमें ४२२ पाई जाती है। परन्तु गिरमिटिया भारतीयोंमें यह संख्या दस लाखमें ७४१ है। ये आँकड़े गम्भीर विचारके लिए काफी कारण उपस्थित करते हैं। हमारा खयाल है इस विषयमें रिपोर्टमें दी गई जानकारी बहुत ही थोड़ी है। आत्महत्याओंकी संख्या किस कोठीमें सबसे ज्यादा है यह बतानेके लिए एक विवरण दिया जाना चाहिए और न्यायाधीशकी जाँचमें जिस प्रकारका सबूत आदि दिया गया है कमसे-कम उसका सार भी होना चाहिए। हम इन भयंकर आँकड़ोंसे मालिकोंके विषयमें कोई परिणाम निकालना नहीं चाहते। परन्तु हम भारतीयों और मालिकोंके हितमें पूरी तरह जाँच करनेके लिए जोर अवश्य देते हैं और हमारे विचारमें कारणकी जाँचके लिए एक निष्पक्ष आयोगसे कम कोई चीज न्यायके उद्देश्यको पूरा नहीं कर सकेगी। एक आदर्श आयोगमें एक प्रतिष्ठित डॉक्टर, एक प्रवासी-निकायका नामजद व्यक्ति संरक्षक और, अगर यह सुझाव देना धर्म-विरुद्ध नहीं है तो उपनिवेशका एक सम्मानित भारतीय सम्मिलित किये जाने चाहिए। ऐसा आयोग सच्चाईतक पहुँचे बिना नहीं रह सकता। इस विषयपर जितना प्रकाश डाला जायेगा सब सम्बन्धित लोगोंके लिए उतना ही अधिक अच्छा होगा। और हम आशा करते हैं कि हमने जो बातें कही हैं उनपर अधिकारी अनुकूल विचार करेंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४–६–१९०४

१ इस सम्बन्धमें गांधीजीने दादाभाई नौरोजीसे पत्र-व्यवहार किया था, जैसा कि उनके पत्रसे प्रकट है जो उन्होंने २९ जुलाईको भारत-मन्त्रीको लिखा था: "... मेरा ध्यान नेटाल-स्थित संरक्षककी रिपोर्टकी ओर दिलाया गया है जिसमें गिरमिटिया भारतीयोंकी आत्महत्याओंकी असाधारण संख्याका उल्लेख करता है और कहता है कि "इन आत्महत्याओंका प्रमुख ऊँचा औसत साल-ब-साल कम आता है"। उसमें कॅरिंग टिपर अभिलेखके उक्त गिरमिट-विरोधी कानूनोंका भी जिक्र किया है जो यहाँ का भी कानून है। (इंडिया ऑफिस: ज्युडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स, १९०४) गांधीजीका पूरा पत्र उपलब्ध नहीं है।

१६२ प्रिटोरिया नगर-परिषद और सरकार

मालूम होता है, सरकार और प्रिटोरिया नगर-परिषद सभी महत्त्वपूर्ण विषयोंपर असहमत होनेमें प्रवीण हैं और हर मामलेमें परिषद ही बुरी तरह गलतीपर होती है। सबसे ताजा उदाहरण उसके अपने अविवादास्पद सम्बन्धमें ही है। परिषद-करदाताओंकी अधिक सेवा करनेमें तबतक असमर्थ है जबतक कि वह नगर-निगमोंकी व्यवस्थासे सम्बन्धित १९०३ के ५८ वें अध्यादेशको माननेके लिए तैयार नहीं हो जाती। परन्तु परिषद ऐसा करनेके लिए, परिषद-सदस्य श्री फेन बोहुम्मके शब्दोंमें तबतक रजामन्द नहीं है जबतक कि "उसको रंगदार लोगोंको पैदल-पटरियोंपर चलनेसे रोकनेका अधिकार न मिल जाये।" और ऐसा कोई अधिकार उक्त अध्यादेशमें रखा नहीं गया है। इसलिए सरकारने परिषदको सूचित कर दिया है कि वह या तो अध्यादेशको माननेका निश्चय कर ले या बिलकुल न माननेका, क्योंकि मामला कई महीनोंसे घिसट रहा है। उसने परिषदको बताया है कि

> जबतक वह अध्यादेशको नहीं मानती तबतक ट्रामगाड़ियाँ नहीं चला सकती, आग बुझानेके दस्तेपर या अन्य अनेक आवश्यक कामोंपर रुपया खर्च नहीं कर सकती। विशेष रूपसे वह सरकारके अतिरिक्त अन्य लोगोंसे रुपया उधार नहीं ले सकती और सरकार उसे कर्ज देनेकी स्थितिमें है नहीं।

सरकारकी इस सूचनापर परिषदने रोष प्रकट किया है और यह प्रस्ताव स्वीकार करके इस मामलेको फिर ताकमें रख दिया कि पैदल-पटरियोंसे सम्बन्धित उपनियमोंके स्वीकार हो जानेके बाद परिषद १९०३ के ५८ वें अध्यादेशको माननेके लिए तैयार हो जायेगी। यह परिषदकी दी हुई एक चुनौती है — चुनौतीसे जरा भी कम नहीं। यदि विरोधी पक्ष ट्रान्सवालकी राजधानीकी नगर-परिषद न होता तो यह कारवाई बहुत ही अड़ियलपन भरी समझी जाती। एक ओर है परिषदके कानूनी अस्तित्वका प्रश्न और स्वाधीन सरकारके सहायक उपनिवेश-सचिवके कथनानुसार कर दाताओंका हजारों पौंडका घाटा; दूसरी ओर है रंगदार लोगोंको पैदल-पटरियोंपर चलनेसे वंचित करनेका प्रश्न। एक मामूली कामकाजी निगम (कार्पोरेशन) तो किसी भी हालतमें सबसे पहले अध्यादेशके अनुसार विपुल अधिकार प्राप्त कर लेता और फिर यदि आवश्यक समझा जाता तो अपने पटरी-सम्बन्धी उपनियमोंको बनानेका आग्रह आरम्भ करता। लेकिन प्रिटोरिया नगर-परिषदने क्रम ही उलट दिया है और उस जिद्दी बालककी तरह जो रूठकर बैठकर मचल जाता है वह तबतक शान्त नहीं होगी जबतक कि उसे रंगदार लोगोंको पटरियोंपर चलनेसे रोकनेका अधिकार न मिल जाय। सरकार और परिषदके बीचमें इस झगड़ेकी प्रगतिको हम दिलचस्पीके साथ देखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ८-६-१९०८

१६३. श्री लवडे और ब्रिटिश भारतीय

श्री लवडे प्रिटोरियामें नगराध्यक्षके सम्मानमें आयोजित भोजके अवसरपर ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ फिर उमड़ पड़े हैं। प्रतीत होता है माननीय सदस्य अपने दिमागसे भारतीयोंके भ्रमको दूर करनेमें बिलकुल असमर्थ हैं। उन्होंने इस अवसरपर यह कहा है

> मैं मानता हूँ कि युद्धकालसे पहले ब्रिटिश भारतीयोंकी जो स्थिति थी वह तबतक अपरिवर्तित अनुल्लंघनीय और सुरक्षित रहनी चाहिए जबतक उत्तरदायी शासन नहीं आ जाता (तालियाँ)। यह तमाम लोगोंकी आवाज है और इसका हेतु है आत्मरक्षा। भारतकी तरफसे कुछ भी आवेदन-निवेदन हों उनका एक ही जवाब हो सकता है। इससे अधिक काले आदमियोंके लिए दक्षिण आफ्रिकामें अब स्थान नहीं है (जोरसे तालियाँ)। भारतीय इस देशसे जो रुपया खींच कर ले जाते हैं उसके बदलेमें वे इस देशमें लाते क्या हैं? असलमें तो वे बीमारियोंके सिवा कुछ लाते नहीं हैं। इन बीमारियोंपर हमें थोड़े-थोड़े समय बाद कुछ लाख पौंड खर्च करने पड़ते हैं। और, इससे बीमारियाँ नष्ट नहीं होतीं कुछ समयके लिए रुक भर जाती हैं। ऐसी है इस देशमें भारतीयोंकी स्थिति। और फिर भी ये समुद्रपारीय भावुक सज्जन कहते हैं कि हम यह स्थिति चुपचाप स्वीकार कर लें। मैं अपनी तरफसे — और सारे देशकी तरफसे भी — कह सकता हूँ कि अगर दक्षिण आफ्रिकाके द्वार पूर्वी लोगोंके हमलेके लिए खोल दिये गये तो हमारे लिए आफ्रिकाको पूर्णतः श्वेत लोगोंका देश रखना — जिसमें श्वेत लोगोंकी प्रभुता हो — असम्भव हो जायेगा (तालियाँ)। इस देशमें बड़ा भय है कि समुद्रपारकी दलगत राजनीतिके हेतु हमारा उपयोग किया जा रहा है और आगे किया जायेगा। मैं इस देशमें बहुत वर्षोंसे रहता हूँ। मुझे स्मरण है सन् १८८१ में भी हम इसी हालतमें से गुजरे थे और एक खास वर्गके राजनीतिज्ञोंने — मैं उन्हें राजनयिक नहीं कह सकता — इंग्लैंडकी दलीय राजनीतिके हेतु दक्षिण आफ्रिकी मामलोंका उपयोग किया था और उसके लिए इस देशका बलिदान किया था (तालियाँ)। हम नहीं चाहते कि हमारे घरेलू मामले इंग्लैंडकी दलीय राजनीतिके खेलकी गेंद बनाये जायें (तालियाँ)।

इस प्रकार श्री लवडे चाहते हैं कि युद्धकालसे पहले भारतीयोंकी जो स्थिति थी वह अपरिवर्तित अनुल्लंघनीय और सुरक्षित बनी रहे। इसलिए क्या वे सरकारसे यह कहलाना चाहते हैं कि वह भारतीयोंको लड़ाईके पहलेकी तरह परवानोंके बिना जहाँ वे चाहें वहाँ व्यापार करने दे और उन्हें बिलकुल किसी रुकावटके बिना उपनिवेशमें प्रविष्ट होने दे? हम उनसे आदर देकर यह भी बतानेका अनुरोध करेंगे कि भारतीय इस देशसे कितना रुपया खींच ले गये हैं और यदि वे अनुमति दें तो हम उन्हें यह बता सकते हैं कि भारतीयोंकी अधिकांश कमाई और यूरोपीय व्यापारियों और मकान-मालिकोंकी थैलियोंमें पहुँच गई है। जोहानिसबर्गमें अगर प्लेगकी महामारीका पदार्पण हुआ है उसे लेते हुए यह कहना कि भारतीय इस देशमें बीमारियाँ लिवा और कुछ लाते ही नहीं ऐसा ही है जैसा कि "लड़ाईके अड़ोस-पड़ोसमें बाजार लगाना।" और आखिरकार क्या श्री लवडे प्लेगको छोड़कर ऐसी कोई भी दूसरी बीमारी

बता सकते हैं, जिससे भारतीयोंका बचाव भी सम्भव हो? उदाहरणके लिए, मोतीझराको ही लीजिए, जो डॉक्टर टर्नरके मतानुसार प्लेगसे कहीं अधिक घातक और संक्रामक है। क्या यह सही नहीं है कि भारतीय इस बीमारीसे साफ तौरसे मुक्त हैं और इसकी छूत और मृत्युएँ अधिकतर यूरोपीयोंतक ही सीमित हैं? क्या इसीलिए माननीय सदस्य यूरोपसे लोगोंका यहाँ प्रवास बन्द कर देंगे? परन्तु ऐसे आदमीसे जो शंका-समाधान चाहता ही न हो वादविवाद करना बेकार है और यदि हमने भारतीय प्रश्नपर श्री लवडेके विचारोंकी चर्चा करनेका कष्ट किया है तो केवल इसीलिए कि हम चिन्तित हैं उनका भाषण पढ़नेवाले लोग उन सबसे भ्रमित न हो जायें जो उन्होंने आर्थिक शोषण और प्लेगके सम्बन्धमें कहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४-६-१९ ४

१६४ फोक्सरस्ट और ब्रिटिश भारतीय

भारतीय परवानाके सम्बन्धित परीक्षात्मक मुकदमेमें सर्वोच्च न्यायालयने जो फैसला दिया है उससे फोक्सरस्टके गोरे लोग बहुत ज्यादा उत्तेजित हैं। हमें यह बताया गया है कि उन्होंने पिछली २७ मईको ऐडमर्री हॉलमें एक सभा की थी यह "सभा बेहद सफल रही सभा-भवन खचाखच भरा था। उन्होंने सभामें कई प्रस्ताव पास किये जो बड़े उग्र थे। उनमें से एक प्रस्ताव द्वारा सारे ट्रान्सवालसे अपील की गई है कि वह जनमतकी माँग करे जिससे लोगोंको इस देशमें भारतीय व्यापारकी गुंजाइश और विस्तारके विरोधका मौका मिले। और फोक्सरस्टके व्यापारियोंसे कहा गया कि वे भारतीय व्यापारको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई प्रोत्साहन न दें। इन सब बातोंसे हमारा कोई झगड़ा नहीं यह कार्रवाई बिलकुल वैधानिक है और अगर आम बहिष्कार किया जाये तो भारतीय उसकी शिकायत नहीं कर सकते। मगर यह आन्दोलन बिलकुल मिथ्या मालूम होता है क्योंकि आन्दोलनकारियोंको लोगोंसे इस कार्यक्रमपर अमल करानेके अपने सामर्थ्यपर बिलकुल विश्वास नहीं है। कारण यह है कि एक ही साँसमें जहाँ वे पूरे बहिष्कारका प्रस्ताव करते हैं वहाँ सरकारसे यह भी कहते हैं कि वह भारतीयोंसे वह अधिकार छीन लेनेके लिए कानून बनाये जो सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके अनुसार उन्हें इस देशके कानूनकी रूसे प्राप्त है। नगर-निकायके सभापति श्री क्लिफर्डने सुझाव दिया कि "जबतक कानून न बने तबतक उन्हें, सीधे या टेढ़े अपने कुछ महीने निकालने ही चाहिए।" हम नहीं जानते कि इस वाक्यांशका क्या अर्थ है परन्तु हम बड़े आदरपूर्वक इतना कह सकते हैं कि अगर इसका मतलब वैधानिक उपायोंका परित्याग है तो यह श्री क्लिफर्ड जैसे जिम्मेदार पदपर आसीन सज्जनके अयोग्य है। और हम आशा करते हैं कि ट्रान्सवालके भारतीयोंकी स्थिति जिन अयोग्य कठिनाइयोंसे घिरी हुई है सरकार उनपर ध्यान देगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४-६-१ ४

१६५. जोहानिसबर्ग नगर-परिषद और ब्रिटिश भारतीय

जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदने सूचना दी है कि वह विधान-परिषदमें एक गैरसरकारी विधेयक पेश करना चाहती है। इस विधेयकमें अन्य बातोंके साथ-साथ परिषदके लिए ये अधिकार माँगे जायेंगे

> वह नगरपालिकाकी हदके बाहर वतनी और रंगदार लोगोंके लिए बस्तियाँ और एशियाइयोंके लिए *बाजार* कायम कर सके और इन बस्तियों या *बाजारोंमें* अपने बनाये उपनियम लागू कर सके। और वतनी एशियाई या रंगदार लोगोंके रहनेके लिए किसी भी बस्ती या *बाजारमें* मकानात बना सके।

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि नगर-परिषद फिलहाल उस [illegible] शर्तोंको पूरा करनेका कोई इरादा नहीं रखती जिसके अनुसार अधिगृहीत क्षेत्रसे बेदखल किये हुए लोगोंको उसके पड़ोसमें ही जगह देना उसका फर्ज है। जो सोलह सौ भारतीय बस्तीसे हटाकर क्लिपस्प्रूट भेजे गये थे उनको अभीतक उचित घर नहीं मिले हैं। उनमें से कुछ अभीतक क्लिपस्प्रूटमें तम्बुओंमें ही रहते हैं और मजबूरीकी बेकारीसे सन्तोष करते हैं। जिन्हें शहरमें वापस आनेकी इजाजत दी गई है उन्हें जोहानिसबर्गमें रहनेके अधिकारके बदले भारी किराया चुकाना पड़ता है और वह भी सिर्फ इसलिए कि नगर-परिषद अपना कानूनी फर्ज अदा नहीं कर सकी है। यह विचार तो है ही परन्तु इसके अलावा भी यदि विधान-परिषद नगर-परिषदको उपर्युक्त सत्ता दे देगी तो उससे ब्रिटिश भारतीयोंका मामला बड़ा गम्भीर हो जायेगा और यह भारतीयोंके खिलाफ एक ऐसा कदम होगा जो पुराने गणतन्त्री कानूनसे बहुत आगे बढ़ जायेगा। क्योंकि मौजूदा हालतोंमें तो सफाई-सम्बन्धी मामलोंके सिवा भारतीय *बाजारों* या बस्तियोंपर नगर-परिषदका कुछ भी नियन्त्रण नहीं है। इन स्थानोंको निश्चित करनेका अधिकार सरकार और केवल सरकारको ही प्राप्त है। और कमसे-कम उस सीमित इलाकेमें लोगोंको स्थायी सम्पत्ति रखने और अपने खुदके घर बनानेका अधिकार है। अगर नगर-परिषदके इरादे पूरे हो जाते हैं तो भारतीय भी उसी स्तरपर आ जायेंगे जिसपर वतनी लोग हैं और पूरी तरह नगर-परिषदकी दयापर निर्भर हो जायेंगे। वे निरे किरायेदार होंगे जिन्हें हटानेके लिए सूचना देनेकी भी जरूरत न होगी और लगातार हटाये जा सकेंगे। फिर इन बस्तियोंमें जमीनकी मिल्कियत खतम हो जायेगी। ऐसी स्थितिकी कल्पना भी भयंकर है। और सत्य यह है कि स्थानीय सरकार कमजोर पक्षकी रक्षा करनेमें असमर्थ सिद्ध हुई है। यदि यह बात न होती तो हम कभी यह विश्वास न करते कि नगर-परिषद ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें जो अधिकार लेना चाहती है व उन मिल भी सकते हैं। हम आशा ही कर सकते हैं कि परिषदके सदस्य लड़ाईके पहलेके दिनोंको और अपने उन वचनोंको याद रखेंगे जो उन्होंने तब विरोधी (एटलांडर) होनेकी अवस्थामें ब्रिटिश भारतीयोंको दिये थे और ईमानदार व्यक्तिके रूपमें उन्हें पूरा करके अपने कर्तव्यका पालन करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-६-१९०४

१६६. ट्रान्सवालका प्रस्तावित नया एशियाई कानून

सहायक उपनिवेश-सचिव श्री मूरने ईस्ट रैंड पहरेदार पत्रको उत्तर दिया है कि सरकार एशियाइयोंसे सम्बन्धित मौजूदा कानूनमें अर्थात् १८८६ में संशोधित १८८५ के कानून ३ में परिवर्तन करनेका विचार गम्भीरतासे कर रही है। हमें मालूम है कि सरकार पिछले अठारह महीनोंसे ऐसा विचार कर रही है — गम्भीरतासे कर रही है या नहीं यह विवादास्पद है। परन्तु हम इसका कारण भी खूब समझते हैं। अब चूँकि न्यायालयने १८८५ के कानून ३ की सरकारी व्याख्या और सरकारी नीति अमान्य कर दी है इसलिए वह इस मामलेमें गम्भीर हो गई है। श्री लिटिल्टन अनेक मामलोंमें यह दिखा चुके हैं कि वे मजबूत इरादेके व्यक्ति हैं। रोडेशियामें खानोंके मालिकोंने चीनी मजदूर लानेकी माँग की थी किन्तु उन्होंने बेझिझक यह तय किया कि वे उनकी माँगपर तबतक ध्यान न देंगे जबतक इस दक्षिण आफ्रिकी प्रदेशकी विधान-परिषद इस मामलेमें अपना दृष्टिकोण न बता दे। अब फिर उन्होंने सही या गलत यह निश्चय किया है कि ट्रान्सवालमें चीनियोंको लाना देशके लिए अच्छा है और ट्रान्सवालके लोग इसके पक्षमें हैं। इस सम्बन्धमें वे इंग्लैंड और ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य भागोंके प्रबल विरोधका सामना करनेमें भी नहीं झिझके हैं। तब क्या वे ट्रान्सवालके भारतीय कानूनके सम्बन्धमें भी अपने मतपर ही दृढ़ रहेंगे? उन्होंने सर मंचरजी भावनगरीको आश्वासन दिया है कि वे इस मामलेपर अत्यन्त गम्भीरतासे विचार करेंगे। चीनियोंको लानेका प्रश्न साम्राज्यसे सम्बन्धित प्रश्न नहीं है। ब्रिटिश प्रजाजनोंके वर्गोंपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन यह माना जा चुका है कि भारतीयोंका प्रश्न साम्राज्यसे सम्बन्धित प्रश्न है और वह बहुत महत्त्वपूर्ण भी है। इसके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा और लिखा जा चुका है। दक्षिण आफ्रिकाके बाहरके देशोंमें लोगोंका बहुत बड़ा बहुमत भारतीयोंकी माँगका समर्थक है। इसके अतिरिक्त साम्राज्य सरकार गणराज्य शासनके समयसे ही ब्रिटिश भारतीयोंके पक्षकी नीतिसे बँधी है। प्रिटोरियामें जब श्री क्रूगर शासन करते थे तब उसने भारतीयोंके अधिकारोंकी लड़ाई लड़ी थी। उसके प्रतिनिधियोंने सोच-समझकर यह वक्तव्य दिया था कि युद्धके अनेक कारणोंमें से एक था ट्रान्सवालकी ब्रिटिश भारतीयोंकी शिकायतें। ये सब बातें बहुत-कुछ श्री लिटिल्टनका सही मार्गदर्शन कर सकती हैं। साम्राज्य-हितैषी होनेके नाते वे भारतीय हितोंकी रक्षा अवश्य करेंगे। फिर वे अपने पूर्व अधिकारियों द्वारा ब्रिटिश भारतीयोंको दिये गये वचनोंसे भी बँधे हैं और हम केवल यही आशा कर सकते हैं कि १८८५ के कानून ३ के स्थानमें जो नया कानून बनाया जायेगा वह साम्राज्य-निष्ठ और उक्त वचनोंके अनुकूल होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-६-१९०४

१६७. ईस्ट लन्दनकी नकल

सुआशा अन्तरीप (केप ऑफ गुड होप) की संसदमें स्वीकृत कानूनोंको जो पिछली ३१ मईके गज़टमें प्रकाशित हुए हैं सरसरी नजरसे पढ़नेपर हमें मालूम होता है कि यूटीनेज नगरपालिका और उसकी व्यवस्थाके नियामक कानूनोंके संशोधन एकीकरण और परिवर्धनके लिए बनाये गये कानूनकी धारा १२५ द्वारा नगर-परिषदको कुछ अधिकार दिये गये हैं। इनमें इन बातोंके सम्बन्धमें उपनियम बनानेकी सत्ता भी शामिल है:

> नगरपालिकाके कुछ हिस्सोंको वतनी और एशियाई लोगोंकी रिहाइशके लिए बस्तियोंके रूपमें निर्धारित और पृथक करना और समय-समयपर उनमें परिवर्तन करना और उनको उठाना; वतनी और एशियाई लोग इन बस्तियोंमें जिन शर्तोंपर रहें और अपने निवास और अपने घोड़ों मवेशियों बैलों अथवा भेड़-बकरियोंके सम्बन्धमें जो फीस किराया और लाइसेंस-कर दें उसका नियमन करना और शामिलात जमीनको पशुओंके लिए काममें लानेका नियमन या निषेध करना। इन बस्तियोंकी हदमें दूकानों व्यापारिक स्थानों और व्यापारका नियमन करना उनकी इजाजत देना या मनाही करना। जिन सीमाओंके भीतर एशियाई और वतनी लोगोंका रहना जायज नहीं होगा उन्हें निश्चित करना और समय-समयपर बदलना।

ये पाबन्दियाँ ऐसे किसी वतनी या एशियाईपर लागू नहीं होंगी जो नगरपालिकाकी सीमाके भीतर अचल सम्पत्तिका पंजीकृत मालिक या काबिज होगा और जिसकी सम्पत्तिका नगर पालिका-सम्बन्धी कार्योंकी दृष्टिसे निर्धारित मूल्य ७५ पौंडसे कम नहीं होगा।

ये अधिकार बहुत कुछ उसी ढंगके हैं जो ईस्ट लन्दनकी नगरपालिकाको प्राप्त हैं। मालूम होता है कि केपके ब्रिटिश भारतीयोंका ध्यान इनकी तरफ नहीं गया और हमें भय है कि इसी लिए समयपर इनका विरोध नहीं किया गया। इस प्रकारकी उपेक्षापर आश्चर्य करनेकी भी जरूरत नहीं है क्योंकि एक व्यवसायी समाजसे सरकारी गजटोंको पढ़नेकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। और केप संसदमें इस कानूनको पास करनेकी समस्त कार्रवाई किसी महत्त्वपूर्ण स्थानीय अखबारमें प्रकाशित भी हुई हो — इसकी जानकारी हमें नहीं है। लेकिन हम उस सरकारके बारेमें क्या कहें जो नगरपालिकाको इतनी दूरगामी सत्ता देती है। और उस उपनिवेश-कार्यालयको भी क्या कहें जो सम्राटको ऐसे कानूनपर स्वीकृति देनेकी सलाह देता है क्योंकि वर्ग सम्बन्धी कानून होनेसे ऐसा कानून घोषित करनेके पूर्व इसपर उनकी मंजूरी जरूरी है। हम ईस्ट लन्दनके इसी तरहके कानूनकी चर्चा करते समय इतना अधिक कह चुके हैं कि यूटीनेज नगरपालिकामें उसको लागू करने पर कोई टीका-टिप्पणी करना आवश्यक नहीं समझते। परन्तु हम आशा करते हैं कि हमारे कथनकी ओर लन्दन और भारत दोनोंमें ब्रिटिश भारतीयोंके हितैषियोंका ध्यान आकर्षित होगा और कुछ राहत दी जायेगी।

हम यह भी देखते हैं कि चीनी अप्रवासी विधेयक विशेष स्वीकृतिके लिए सुरक्षित रखा गया है। हम नहीं जानते कि यह विधेयक भी इसी तरह क्यों नहीं सुरक्षित रखना चाहिए था विशेषत: जब यह सभी एशियाइयों पर लागू होता है, चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हों अथवा न हों। क्या इसका कारण यह है कि हमने जिन धाराओंका उल्लेख किया है उनकी तरफ गवर्नर और उपनिवेश

कार्यालय दोनोंका ध्यान नहीं गया? और अगर ऐसी बात है तो इससे सिद्ध होता है कि शासन-सम्बन्धी अधिकारपत्रमें किसी ऐसे अधिकारकी जरूरत है जिससे सब प्रकारके वर्ग-सम्बन्धी कानून तबतक अवैध माने जायें जबतक कि उनका एक अलग कानूनमें समावेश न हो जाये और उस कानूनका सम्बन्ध केवल ऐसे भेदभावपूर्ण कानूनोंसे ही हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-१-१९ ४

१६८. भारतीय दुभाषिये

श्री हिस्कॉकने उपनिवेश-सचिवसे पूछा कि मुझे बताया गया है कि भारतीय दुभाषिये सन्तोषजनक नहीं हैं इसलिए क्या उन्हें हटा कर उनके स्थानपर यूरोपीय दुभाषिये न रखे जायेंगे? उपनिवेश-सचिवने माननीय सदस्यके विचारसे सहमति प्रकट की परन्तु कहा कि यूरोपीय दुभाषिये मिलनेमें कठिनाइयाँ हैं। और यह भी कहा कि एक भारतीय दुभाषिया उमजेनीकी अदालतसे हटा दिया गया है क्योंकि वहाँ एक यूरोपीय मिल गया था।

इस घटनासे एक शिक्षा मिलती है। भारतीय दुभाषिये सिर्फ इसीलिए बरदाश्त किये जाते हैं कि उपनिवेशमें ऐसे यूरोपीय नहीं मिलते जिन्हें भारतीय भाषाओंका थोड़ा-सा भी ज्ञान हो। यदि उपनिवेशभरके भारतीय दुभाषिये इस तथ्यको ध्यानमें रखेंगे तो अच्छा होगा। अगर अ-भारतीय मिल सकते तो सरकार भारतीयोंको तुरन्त बर्खास्त करके उनके स्थानपर अ-भारतीय रखनेमें बिलकुल न हिचकती होती। परन्तु हम अत्यन्त परिश्रमी सार्वजनिक सेवकोंपर लगाये गये श्री हिस्कॉकके इस आरोपके विरुद्ध आपत्ति प्रकट किये बिना नहीं रह सकते कि वे सन्तोषजनक नहीं हैं। इसके विपरीत हमारी यह बहुत इच्छा है कि माननीय सदस्य हमें अपनी इस जानकारीका सूत्र बतायें। जिन लोगोंको उन्होंने बदनाम किया है उनके साथ न्याय तभी होगा। हमें यह कहनेमें कोई झिझक नहीं कि अगर भारतीय दुभाषिये सन्तोषजनक नहीं हैं तो यह बदनामी सरकारको जल्दीसे-जल्दी दूर कर देनी चाहिए। दूसरी तरफ, अगर वे योग्य परिश्रमी और ईमानदार हैं तो यह सत्य स्वीकार किया जाना चाहिए और उनपर जो आरोप लगाया गया है उससे वे मुक्त कर दिये जाने चाहिए। सही बात तो यह है कि हमने बहुत-से भारतीय दुभाषियोंके प्रमाणपत्र देखे हैं वे अपने अफसरोंके लिए नितान्त अपरिहार्य बन गये हैं। उन्होंने सिर्फ अपने ही कामसे पूर्ण सन्तोष प्रदान नहीं किया है बल्कि मुंशीगीरीका और दूसरा काम भी सँभाला है जिसे करनेके लिए वे किसी भी तरह बाध्य नहीं हैं। श्री हिस्कॉकको यह मालूम नहीं है कि भारतीय दुभाषियोंको एक भारतीय भाषामें नहीं बल्कि आम तौरपर तीन भाषाओंमें दुभाषियेका काम करना पड़ता है। इस तरह वे बहुत अधिक दिक्कतका काम करते हैं। और यह सचाई सभी जानते हैं कि अगर आप प्रथम कोटिके दुभाषिये चाहते हैं तो आप एक ही व्यक्तिमें चार भाषाओंका ज्ञान संयुक्त नहीं कर सकते। दुभाषियोंको बहुत ही कम वेतन दिया जाता है यह बदनामी भी आम है। इसलिए कम-से-कम इतना तो कहना ही पड़ेगा कि श्री हिस्कॉक उनके विरुद्ध यह आरोप न लगाते बल्कि केवल अपने पक्षके हितोंका समर्थन करके सन्तोष कर लेते जिसके विरुद्ध हमें कुछ भी कहना नहीं था तो यह मामूली बात हुई होती।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-१-१९ ४

१९९. "मर्क्युरी" और गिरमिटिया मजदूर

हमारे सहयोगी *मैरित्सबर्ग मर्क्युरीको* जो कुछ कहना होता है वह प्रायः अच्छी जानकारीके आधारपर कहता है। परन्तु ट्रान्सवालके चीनी प्रवासी सम्बन्धी अध्यादेश और गिनिडाड तथा ब्रिटिश गियानामें लागू गिरमिटिया मजदूरोंके लाये जानेका विनियमन करनेवाले अध्यादेशकी तुलनाके सम्बन्धमें उसकी जानकारी गलत है। शायद हमारे सहयोगीसे यह भूल इस कारण हुई है कि श्री वाल्फ़रने राजनीतिक कारणोंसे यह कहना उचित समझा है कि ब्रिटिश गियाना अध्यादेश और चीनी प्रवासी अध्यादेश एक समान हैं। जो लोग इस तरहकी दलीलें देते हैं उनकी जानकारीके लिए हम यह बता दें कि इन दोनों अध्यादेशोंमें उतना ही अन्तर है जितना काले और सफेदमें। ब्रिटिश गियानाके अध्यादेशमें गिरमिटियोंको अपनी बुद्धिके प्रयोगसे वंचित करनेका विधान नहीं है। उसमें यह आग्रह नहीं है कि गिरमिटिये अपने गिरमिट खत्म होनेपर देशसे चले जायें और उसमें उनको महज अनाड़ी मजदूरोंका दर्जा भी नहीं दिया गया है। उनके लिए अनाड़ी मजदूरके कामके अलावा दूसरा काम करना वर्जित नहीं है और न दूसरोंके लिए उनसे इसके अलावा दूसरा काम लेना वर्जित है। साथ ही वहाँ उनको निश्चित बाड़ोंमें रखनेकी प्रणाली[1] नहीं है जैसी चीनियोंके खिलाफ लागू की जानेवाली है। ब्रिटिश गियानाके मजदूर अपना गिरमिट खत्म होनेके बाद देशमें बसने और स्वाधीन मनुष्योंकी हैसियतसे काम करनेके लिए स्वतन्त्र हैं। चीनियोंके बारेमें ऐसा नहीं। हमें पता नहीं कि बातोंमें इस बुनियादी भेदके बावजूद क्या हमारा सहयोगी अब भी इसी रायपर अड़ा रहेगा कि फर्क सिर्फ यह है कि राजनीतिक दलके कुछ लोग ट्रान्सवालमें उस प्रणालीको मुखालिफ़ कहते हैं और उसकी निन्दा करते हैं जो दूसरे उपनिवेशोंमें खुशीसे गिरमिटिया मजदूर प्रथा मानी जाती है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-६-१९०४

१. उन्हें केवल बस्तियोंको बड़ी खानोंमें रखना जहाँ वे काम करते थे और जहाँ इकरारनामेकी शर्तों द्वारा उनके मालिक उन्हें सीमित कर देता था।

१७० इकरंगा ऑरेंज रिवर उपनिवेश

ऑरेंज रिवर उपनिवेशके १ जूनके सरकारी *गजटमें* विनबर्ग नगरके संशोधित और नये नियम दिये गये हैं। उनके नीचे लिखे अंश हम उद्धृत कर रहे हैं:

> परिषदकी मंजूरीके बगैर किसी रंगदार व्यक्तिको नगरपालिकाकी हदमें कहीं भी रहनेकी इजाजत नहीं होगी।
>
> प्रत्येक रंगदार व्यक्तिको जो नगरपालिकाकी हदमें रहता है, टाउन क्लार्क अथवा अन्य किसी नगरपालिका-अधिकारीके पूछनेपर अपनी आजीविकाका साधन बताने और उसका प्रमाण देनेमें समर्थ होना चाहिए और यह उसके लिए बाध्य है। और अगर टाउन क्लार्क या दूसरे नगरपालिका-अधिकारीको यह प्रतीति हो कि आजीविकाके उचित साधनोंका सन्तोषजनक प्रमाण नहीं दिया जा सकता तो उस रंगदार व्यक्तिके साथ विधि-संहिताके अध्याय १३१ खण्ड ९ के अनुसार व्यवहार किया जायेगा।

उक्त कानूनमें यह व्यवस्था है कि

> ऐसा कोई रंगदार व्यक्ति किसी गोरे मालिक या सरकारी अधिकारीके परवानेके बगैर मिलेगा तो उसपर ५ पौंड जुर्माना किया जा सकता है, अथवा जुर्माना न देनेपर उसको सादी या सख्त कैदकी सजा दी जा सकती है, जो १ महीनेसे अधिक नहीं होगी; अथवा (मजिस्ट्रेटकी मर्जी हो तो) वह राज्यके किसी गोरे निवासीके साथ उसके शर्तबन्द नौकरके रूपमें रखा जा सकता है। यह शर्तबन्दी एक सालसे अधिककी न होगी और अपराधीको छूट होगी कि जिस जिलेमें अपराध किया गया हो उसके भीतर अपना मालिक चुन ले।
>
> यदि कोई रंगदार व्यक्ति दैनिक या मासिक नौकरके रूपमें कामके बिना मिलेगा तो उसे टाउन क्लार्कसे चौबीस घंटेकी सूचना मिल जानेके बाद नगरकी सामिलात भूमिसे चला जाना पड़ेगा और वह परिषदकी अनुमतिके बिना वापस नहीं आ सकेगा।
>
> किसी रंगदार व्यक्तिको भी रातको नौ बजेकी घंटी बजनेके दस मिनट बाद विनबर्ग नगरके किसी सार्वजनिक स्थान या रास्तेपर नहीं रहने दिया जायेगा जबतक वह उस समयके लिए अपने मालिकका पास न लिये हो।
>
> *किसी रंगदार परवानेदारको परवानेके मसखूत बीसे अधिक रंगदार मनुष्योंको* नौकर रखनेका अधिकार नहीं होगा।
>
> टाउन क्लार्ककी लिखित अनुमतिके बिना बस्तीमें रातके दस बजे बाद कोई नाच खान-पान अथवा दूसरे सभा-समारोह नहीं करने दिये जायेंगे।
>
> सोलह वर्षकी अनुमानित आयुसे अधिकके वे तमाम रंगदार व्यक्ति जिन्हें परिषदसे नगरपालिकाकी हदमें रहनेकी इजाजत मिल गई है नौकरी करनेके लिए बाध्य होंगे। और उन्हें टाउन क्लार्कके दफ्तरमें हर महीने अपना नाम दर्ज कराना पड़ेगा और १ पेंस फी-पास देकर रिहायशी पास लेना पड़ेगा।

यदि मूल भाषा या पाठमें इसकी मनाही या रुकावट न हो तो "रंगदार व्यक्ति" अथवा "रंगदार व्यक्तियों" शब्द-समुच्चयका स्पष्ट अर्थ यह किया जाना चाहिए, और उससे यह समझना चाहिए कि वह दक्षिण आफ्रिकाके तमाम असली मर्दों और औरतोंपर लागू है और उसमें वे सब रंगदार लोग और किसी भी नस्ल या राष्ट्रके वे तमाम व्यक्ति भी शामिल हैं जो कानून या रिवाजके अनुसार रंगदार या रंगदार व्यक्ति कहे जाते हैं या व्यवहारमें ऐसे माने जाते हैं।

यह एक ऐसा निर्लज्जतापूर्ण भेदभाव है जिसका आधार केवल रंग है और वह भी अत्यन्त उग्र रूपमें। हम दावेसे कह सकते हैं कि अगर जबरदस्तीकी नौकरी गुलामी मानी जा सकती है तो यह नियम भी इतना दूरगामी है कि इसके भीतर अस्थायी गुलामी आ जाती है। जिनवर्गकी नगरपालिकाकी हदमें रहनेका मूल्य है किसी गोरे मालिककी नौकरी करना। यह स्पष्ट है कि इन नियमोंमें ब्रिटिश प्रजाजन अथवा नागरिक रंगदार व्यक्ति भी अपवाद नहीं माने गये हैं। असलमें उनमें रंगदार व्यक्तियोंकी कोई हैसियत मानी ही नहीं गई है। हम इस अखबारमें अनेक बार ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी नगरपालिकाओंके इसी प्रकारके नियम उद्धृत कर चुके हैं। हमने उनके विरुद्ध आपत्ति प्रकट की है परन्तु व्यर्थ। और कारण कुछ भी हो लन्दनमें भी कुछ नहीं किया गया है। शासकीय अधिकारपत्रोंमें उपनिवेश-कार्यालयकी स्वीकृतिके बिना इस प्रकारके कानून बनानेकी मनाही की गई है। यद्यपि खयाल यह था कि बड़ेमें छोटा समाया हुआ माना जायेगा फिर भी ऐसा मालूम होता है कि उपर्युक्त ढंगके नगरपालिका-कानूनसे बचावकी कोई सूरत है नहीं। और स्थानीय सरकार ऐसे कानूनको अपने विशेषाधिकारसे नामंजूर कर देगी इसकी कोई आशा दिखाई नहीं देती। हम आशा करते हैं कि उपनिवेश-कार्यालयका ध्यान इन नियमोंकी ओर आकर्षित होगा और, कमसे-कम रंगदार लोगोंके विरुद्ध जो नीति ब्रिटिश झंडेके नीचे और सम्राटके नामपर ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें अपनाई जा रही है उसके सम्बन्धमें कोई घोषणा तो कर ही दी जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १८–६–१९ ४

१७१. ट्रान्सवालका परवाना दफ्तर

लॉर्ड मिलनरने अन्तर उपनिवेश परिषदकी बैठकमें जो अभी हालमें प्रिटोरियामें हुई थी, अध्यक्षकी हैसियतसे परवाना-विभागके बजटपर बोलते हुए यह कहा था:

> अध्यक्षने परवाना-दफ्तरके लिए ९,५ पौंडकी मंजूरीकी चर्चा करते हुए कहा कि मेरे अपने खयालसे इस विभागकी जरूरत एक साल तक और होगी। परवाना-कार्यालयके संगठनका उपयोग जैसा शुरूमें सोचा गया था उससे कुछ भिन्न कामोंके लिए किया गया है। लेकिन फिर भी ये काम समाजके लिए बड़े लाभदायक रहे हैं। परवाना-प्रणाली प्रथमतः बेशक राजनीतिक है परन्तु जिन लोगोंको राजनीतिक कारणोंसे परवाने नहीं दिये गये हैं उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। फिर भी अवांछित प्रवासियोंकी — जिनमें कुछ यूरोपीय हैं परन्तु अधिकतर एशियाई हैं — बाढ़से बचनेका हमारा एकमात्र साधन परवाना-कार्यालय ही रहा है। अगर सन्तोषजनक ढंगका स्थायी कानून बननेसे पहले ही हम इस हथियारको छोड़ दें तो मैं नहीं जानता कि हमारे जीवनका क्या मूल्य रह जायेगा (हँसी)। अलबत्ता यह एक अस्थायी प्रणाली है परन्तु मैं यह सम्भव नहीं समझता कि इसे तुरन्त नामशेष किया जा सकता है। अगर खर्चकी यह मद जरूरी नहीं है तो हम इसका पैसा खर्च नहीं करेंगे।

जो बात हम बराबर कहते आये हैं उसका — यानी इस बातका कि शान्ति-रक्षा अध्यादेशका प्रयोग ऐसे कामोंके लिए किया जा रहा है जिनके लिए वह कभी अभिप्रेत नहीं था — ट्रान्सवालके सर्वोच्च अधिकारी द्वारा समर्थन हो गया है। और स्पष्टतः परमश्रेष्ठको हर्ष है कि "अवांछनीय लोगोंकी — जिनमें कुछ यूरोपीय हैं परन्तु अधिकतर एशियाई हैं — बाढ़" को रोकनेके लिए उनके हाथोंमें ऐसा एक हथियार आ गया है। और लॉर्ड महोदय नहीं जानते कि यदि इस हथियारका त्याग कर दिया जाये तो उपनिवेशके लोगोंके जीवनका क्या मूल्य रह जायेगा। यदि ऐसी बातें कोई राजनीतिक आन्दोलनकारी कहता तो वे हमारी समझमें आ सकती थीं परन्तु चूँकि ये राज्यके प्रमुखकी जबानसे निकली हैं — और वह भी एक ऐसे व्यक्तिकी जबानसे जो ब्रिटिश साम्राज्यके अग्रगण्य राजनयिक और पूरे-पूरे साम्राज्य-भक्त माने जाते हैं — इसलिए हृदय दुःख और विस्मयसे भर जाता है। पहले तो यहाँ अवांछनीय प्रवासियोंकी बाढ़ आ गई है यह कथन ही अत्युक्तिपूर्ण है और यह लॉर्ड महोदयके लिए अशोभनीय है। दूसरे, यह कहना निपट दुर्बलता स्वीकार करना है कि यदि यह हथियार न होता तो उपनिवेशमें लोगोंके जीवनका कोई मूल्य ही न रह जाता। और क्या आखिरकार, देशमें आबादी इतनी ज्यादा हो गई है? लॉर्ड महोदयने ट्रान्सवालमें जिस साधनका उपयोग किया है वह साधन जिन ब्रिटिश उपनिवेशोंमें नहीं है क्या उनमें से किसीमें या केपमें या नेटालमें उसके न होनेसे लोगोंके जीवन निकम्मे हो गये हैं? यह सत्य है कि प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम कुछ समय नेटालमें और एक वर्षसे केपमें लागू है। किन्तु वह ट्रान्सवालके शान्ति-रक्षा अध्यादेशके मुकाबले कुछ भी नहीं है। इसके अन्तर्गत तो कानूनी शरणार्थियोंका भी उपनिवेशमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन है यद्यपि वे ब्रिटिश प्रजाजन हैं और ट्रान्सवालमें उनकी ऊँची हैसियत है और बहुत बड़ी जमीन जायदाद है। और यदि लॉर्ड महोदयने जो-कुछ कहा है वह प्रवासके सम्बन्धमें उनके गम्भीरतापूर्वक व्यक्त

किये गये विचारोंका द्योतक है जो वह ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंके अत्यन्त अशुभ भविष्यका आभास देता है। फिर भी हम आशा करते हैं कि लॉर्ड महोदयने परिषदकी शुष्क कार्रवाईको सरस बनाने और विभिन्न विभागोंके कामको बहुत भोंडे ढंगसे चलानेवाले विद्रोही सदस्योंको खुश करनेके प्रयाससे ही ये बातें कह दी हैं। क्योंकि हम देखते हैं कि लॉर्ड महोदयने इस हथियारके बारेमें जो बातें कहीं उनपर खूब हँसी हुई थी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-६-१९०४

१७२ सिपाहीकी शूरता

हमें *ग्यान्त्से* जोंगसे तिब्बतमें एक झड़पका हृदयग्राही वर्णन देते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है। जोंगसे प्रेषित रायटरके विशेष तारमें कहा गया है,

> हमला अरुणोदयके समय शुरू हुआ। धूल भरी रंगवाली पोशाकोंके साथ दुश्मनके दो मजबूत दल, तेजीके साथ पहाड़ीसे उतर कर हमारे मोर्चेपर टूट पड़े। अंग्रेज फुर्तीसे किलेबन्दीकी आड़में चले गये — अविचलित रहा अकेला एक सिपाही। तब धर्मान्धोंका वह उमड़ता हुआ समूह — जिसमें १ जवान थे — उस निष्काम सिपाहीपर टूट पड़ा। किन्तु वह सिपाही तिब्बतियोंपर धीरजके साथ निशाना साधते हुए अपनी जगहपर अडिग रहा। उसने दुश्मनके पाँच जवानोंको गोलीसे मार गिराया किन्तु इतनेमें दो तलवारियोंने उसके टुकड़े कर दिये। अब हमलावरोंका वह दस्ता अंग्रेज फौजोंको छुपा रखनेवाली दीवारोंपर चढ़नेकी कोशिश करने लगा और दीवारके छेदोंमें व्यर्थ तलवारें घुसेड़ने लगा। किन्तु अब तो वे ढेर गोलियोंकी निरन्तर बौछार उनपर पड़ रहे थे।

इस अकेले सिपाहीकी शूरताकी स्मृति कौन-सा विक्टोरिया क्रॉस कायम रख सकता है और बहादुरीके ऐसे कितने कारनामे बिना उल्लेखके रह जाते हैं? इसी प्रकारकी बहादुरी होनी चाहिए, जिसने लॉर्ड रॉबर्ट्सको बार-बार मुक्त हृदयसे सराहना करनेके लिए प्रेरित किया। विगत साठ वर्षोंमें अंग्रेजोंने शायद ही ऐसी कोई लड़ाई लड़ी है, जिसमें भारतीय सिपाहियोंने शानदार हिस्सा न लिया हो फिर चाहे वह सशस्त्र सिपाहीकी हैसियतसे हो या पिछले बोअर युद्धके निःशस्त्र डोलीवाहक या भिश्तीकी तरह हो। लॉर्ड टेनिसनके जो शब्दोंमें

तर्क नहीं जानते वितर्क नहीं जानते
सिर्फ एक कायदा करो मरोका मानते

ये चिरस्मरणीय शब्द प्रसिद्ध 'चार्ज ऑफ दि लाइट ब्रिगेड' के बारेमें लिखे गये थे किन्तु, ढिठाई माफ हो इन भारतीय सिपाहियोंपर भी ये वैसे ही लागू होते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-६-१९०४

१७३. नेटालके सहयोगियोंसे अपील

इस मासकी ४ तारीखके अंकमें हमने नेटालके गिरमिटिया भारतीयोंकी आत्महत्याओंका जो प्रश्न उठाया था[1] उसे फिर उठानेके लिए हम क्षमा-याचना नहीं करते। हमें दुःख होता है कि नेटाल-मर्क्युरीको छोड़कर अन्य दैनिक पत्रोंने इस प्रश्नको नहीं उठाया। यह तो सीधा-सादा मानवताका प्रश्न है और इसमें सार्वजनिक समाचार-पत्रोंकी हैसियतसे उनकी दिलचस्पी न हो यह हो नहीं सकता। आयोगकी माँग करनेमें हमारा उद्देश्य सत्यको प्रकट करना मात्र है, और हम महसूस करते हैं कि यदि स्वयं मालिक लोग भी इस बातको तटस्थतासे सोचें तो वे आयोगकी नियुक्तिका स्वागत ही करेंगे। यदि एक निष्पक्ष आयोग इस निर्णयपर पहुँचे कि प्रतिवर्ष भयानक संख्यामें होनेवाली गिरमिटिया भारतीयोंकी आत्महत्याओंका मालिकोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है तो इससे उन्हें और सर्वसाधारण जनताको भी बड़ी राहत मिलेगी। दूसरी ओर, अगर वे कुछ ऐसा कर सकें जिससे ये अस्वाभाविक मौतें रुक जायें तो यह उनके लिए, और जो अभागे लोग शर्तबन्द होकर काम कर रहे हैं उनके लिए भी एक उचित दिशामें बढ़ा हुआ कदम होगा। यह कोई ऐसी बात नहीं है जिसे एक ब्रिटिश उपनिवेशमें लाचार रुख जाहिर करनेवाली कतिपय पंक्तियाँ लिखकर आई-गई कर दिया जाये। हमें कोई सन्देह नहीं कि इस बुराईका कोई-न-कोई इलाज होगा ही शर्त इतनी ही है कि उसे चिन्तापूर्वक सही ढंगसे खोजा जाये। इसलिए हम आशा करते हैं कि हमारे सहयोगी हमारे सत्य-शोधके नम्र प्रयत्नोंको पुष्ट करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १८-६-१९०४

1. देखिए “गिरमिटिया भारतीय” ४-६-१९०४।

१७४ सर मंचरजीकी सेवाएँ[1]

लोकसभामें सर मंचरजी द्वारा पूछे गये प्रश्न और श्री ब्रॉड्रिक अथवा श्री लिटिल्टन द्वारा दिये गये उनके उत्तर हम अन्य स्तम्भमें पूरे-पूरे दे रहे हैं। उनसे जाहिर होता है कि ये माननीय सदस्य क्या दक्षिण आफ्रिका क्या अन्य सुदूर राज्यों और क्या स्वयं भारतमें रहनेवाले अपने देशवासियों — सबकी कैसी अमूल्य सेवा कर रहे हैं। उक्त प्रश्नोत्तर यह भी बताते हैं कि ये सुयोग्य महानुभाव कैसी लगनसे दक्षिण आफ्रिकावासी ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें पूछताछ करते रहते हैं। जब कभी कोई बात उठानेका अवसर आता है वे उसे नहीं चूकते। वे अपना कर्तव्य जिस तरह करते हैं उसका सम्बन्धित मन्त्रियोंपर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि उन्होंने प्रस्तुत परिस्थितियोंमें जितनी विस्तृत जानकारी दी जा सकती है, उतनी विस्तृत जानकारी उन्हें देते रहनेका नियम-सा बना लिया है। उनके प्रश्नोंके उत्तर भी वे प्रायः सहानुभूतिपूर्ण रूपसे देते हैं। दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक भारतवासीकी हार्दिक प्रार्थना है कि वे दीर्घायु हों और अपनी उपस्थितिसे लोकसभाका मान बढ़ाते हुए अपने देशवासियोंकी सेवा करते रहें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-६-१९०४

१७५ बस्तियोंके बाहर भारतीय व्यापार

उपनिवेश-मन्त्रीसे पूछना है कि क्या वे जानते हैं सर आर्थर लालीने गत १८ मईको हाइडेलबर्गमें ब्रिटिश भारतीयोंके एक शिष्टमण्डलके अभिनन्दनका[3] उत्तर देते हुए यह कहा था कि सर्वोच्च न्यायालयने *हबीब मोटन* बनाम ट्रान्सवाल-सरकार परीक्षात्मक मुकदमेमें जो यह घोषित किया है कि परवानेदार व्यापारियोंको बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता प्राप्त है उसे बरदाश्त नहीं किया जायेगा और यह भी कि इस निर्णयको रद करनेका कानून पास करनेके लिए उपनिवेश-मन्त्रीसे अनुमति देनेका अनुरोध भी किया जा चुका है। यदि ऐसा हो और यदि उनसे ऐसा निवेदन किया गया हो तो क्या वर्तमान अधिकारोंमें हस्तक्षेप न करनेके लॉर्ड मिलनर द्वारा बार-बार दिये गये वचनोंको ध्यानमें रखते हुए उपनिवेश-मन्त्री महोदय ऐसा कोई भी कानून बरदाश्त करनेसे इनकार करेंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडिया २४-६-१९०४

१. मंचरजी भावनगरी।

२. ब्रिटिश भारतीय संघ, जोहानिसबर्गकी ओरसे गांधीजी द्वारा सर मंचरजी भावनगरीको भेजे गये प्रश्नका पाठ।

३. देखिए "अभिनन्दनपत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको," मई १८, १९०४।

१७६. पत्र : रेड प्लेग-समितिको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
पो. ऑ. बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जून २४, १९०४

सेवामें
सहायक-मन्त्री
रेड प्लेग-समिति
पो. ऑ. बॉक्स १०४९
जोहानिसबर्ग

महोदय

मैं विनम्रतापूर्वक आपका ध्यान अपने २९ अप्रैलके पत्रकी[1] ओर आकर्षित करता हूँ जो मॉरिस रिवर उपनिवेश और डेलागोआ-बेके प्रवेश-सम्बन्धी नियमोंके बारेमें लिखा गया था। शायद आप जानते हों कि अनुमतिपत्र दफ्तरके प्रमाणपत्रोंके बावजूद केप कालोनी जाते हुए ब्रिटिश भारतीय रेलगाड़ीमें बैठकर भी ऑरेंज रिवर कालोनीमें नहीं गुजर सकते और डेलागोआ-बेमें तो इन अनुमतिपत्रोंके होते हुए भी उन्हें प्रवेश ही नहीं करने दिया जाता।

यदि आप कृपापूर्वक इन दोनों स्थानोंमें सुविधा प्राप्त करा दें तो मेरा संघ बहुत आभारी होगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष, ब्रिटिश भारतीय संघ

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़ एल जी ९२/२११२

१. यह उपलब्ध नहीं है।

१७७ नेटाल प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम और उसका अमल[1]

इस अधिनियमके अन्तर्गत हालमें दो काफी महत्त्वपूर्ण मुकदमे मैरित्सबर्गमें चलाये गये हैं। वे दोनों ब्रिटिश भारतीयोंके खिलाफ थे। मुकदमोंकी कार्यवाहियोंके पूरे विवरण हम दूसरे स्तम्भमें दे रहे हैं। बयाल उस्मा का मामला हमें बहुत सख्त जान पड़ता है। यह देखते हुए कि अपील दर्ज कर ली गई है हम उसपर कोई लम्बी टीका-टिप्पणी नहीं करेंगे। किन्तु गवाहीसे जो तथ्य प्रकट होते हैं उनके अनुसार प्रतिवादी पाँच वर्षसे अधिक उपनिवेशमें रह चुका है और भारतसे अपनी वापसीके समय जमीनपर पाँव धरनेके पहले उसने जहाजपर किसीको आठ पौंड अदा किये हैं। इस्तगासेकी ओरसे इस गवाहीके खिलाफ कुछ पेश नहीं किया गया; किन्तु न्यायाधीशने अपराधी द्वारा दिये गये प्रमाणपर भरोसा नहीं किया और उसे दो महीनेकी कैदकी सजा दे दी — अगर अपराधीको इसके पहले देशसे निकाल दिया जाये तो बात अलग है। इसलिए यदि न्यायाधीशका फैसला बरकरार रखा जाता है तो केवल शपथपूर्वक ही नहीं बल्कि किसी अन्य प्रमाणके बलपर, जबतक कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता कि वह अधिनियम स्वीकृत होनेके पहले उपनिवेशमें रह चुका है तबतक जान पड़ता है, हरएक ब्रिटिश भारतीय नवागन्तुक माना जायेगा। यदि ऐसी दृष्टि अपनाई गई तो उपनिवेशमें किसी भी भारतीयकी स्थिति निरापद नहीं रहेगी। खैर, जबतक अपीलका फैसला नहीं हो जाता हमें इन असाधारण मामलोंपर और कुछ कहना स्थगित रखना चाहिए। फिलहाल हम सरकारसे इन मुकदमोंको रोकनेकी प्रार्थना करके सन्तोष मानेंगे क्योंकि यह उसका कर्तव्य है कि वह उपनिवेशमें निषिद्ध प्रवासियोंका चोरी-चपाटीसे घुसना रोके। हमारी नम्र सम्मतिमें जो लोग पहलेसे उपनिवेशमें हैं और जो पूर्व निवास सम्बन्धी प्रतिबन्धके रहते हुए भी प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिनियमके अन्तर्गत नियुक्त अफसरोंकी सावधानीके बावजूद यहाँ उतर चुके हैं उन्हें सताना सरासर ज्यादती करना होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २–७–१९०४

१. *इंडियन ओपिनियनका* जून २५, १९०४का अंक उपलब्ध नहीं है। अतः यदि उसमें अपीलोंका कोई ब्योरा छपा हो तो उसको देना सम्भव नहीं है।

१७८. प्रिटोरिया नगरपालिका और रंगका प्रश्न

पैदल-पटरी उपनियमोंके सवाल पर सरकार और प्रिटोरिया नगरपालिकाके बीच आमने और पत्रव्यवहार हुआ है। इसे हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं। इस मामलेमें सरकारने जो मजबूत रुख इख्तियार किया है उसपर वह बधाईकी पात्र है। उधर, प्रिटोरिया नगरपालिका जिस दृढ़तासे सरकारसे लड़ रही है उसकी भी तारीफ न करना असम्भव है। इसमें सबकी बात यही है कि ट्रान्सवालकी राजधानीकी नगरपालिका यह दृढ़ता एक ऐसे काममें दिखा रही है जो प्रत्येक समझदार आदमीको अकीर्तिकर और अयोग्य प्रतीत होगा। गम्भीरतापूर्वक यह दलील नहीं दी जा सकती कि रंगदार लोगोंको पटरियोंपर चलने देनेमें कोई सिद्धान्त खतरेमें है। निश्चय ही इसका अर्थ यह नहीं होगा कि नगरपालिका अन्य बातोंमें भी दोनों जातियोंकी समानताका सिद्धान्त स्वीकार करती है। वह तो एक बड़ा सवाल है और उसे पटरियोंके प्रश्नसे बिलकुल अलग रखा जा सकता है। प्रिटोरियाके नगराध्यक्ष अब प्रत्यक्ष देखते हैं कि नगरपालिका सरकारका विरोध जारी रख कर खुदको हास्यास्पद बना रही है, परन्तु दूसरे सदस्य जिनके वे अगुवे नेता हैं उनकी दलीलें नहीं सुनते और उन्होंने सरकारसे एक पत्र द्वारा माँग की है कि वह एक विशेष अध्यादेश बना दे जिससे प्रिटोरिया नगरपालिकाको जोहानिसबर्ग नगरपालिकाके समान अधिकार मिल जायें। सरकार और परिषदके बीच जो द्वन्द्व-युद्ध चल रहा है वह बहुत ही मनोरंजक है। हम इतनी ही आशा रख सकते हैं कि सरकार उस सिद्धान्तपर जमी रहेगी जो उसने स्थिर किया है और ऐन मौकेपर नगरपालिकाके निर्देशके आगे झुक नहीं जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २-७-१९०४

१७९. भारतीयोंके ऋणपत्र

सरकार भारतीयोंके लिए एशियाटिक कानूनी कागजातपर दस्तखत करनेके विनियमनके लिए एक विधेयक तैयार कर रही है। हम सरकारको इसपर दूसरा बधाई दे रहे हैं। यह इस बातका सबूत है कि सरकार उनकी भलाईके लिए चिन्तित है। आज कानूनोंसे कुछ मामले हमारे देखनेमें आए हैं। इनमें आवश्यक रूपसे भारतीयोंको भारतीयोंने ही नहीं ठगा बल्कि कुछ यूरोपीयोंने भी ठगा है। और इसका कारण यह रहा है कि वे भारतीय अंग्रेजी अक्षरोंमें दस्तखत नहीं कर सकते थे। बहुत बार वे अंगूठा (पॉवर ऑफ अटॉर्नी) ऐसे तैयार कर लिए जाते हैं कि हस्ताक्षर करनेवालोंको उसका मजमून मालूम ही नहीं होता। इसलिए यह विधेयक भोलेभाले लोगोंको बहुत सहायता पहुँचानेवाला होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है। विधेयकको पूर्ण बनानेके लिए हम यह सुझाव रखते हैं कि यदि दस्तखत करनेवाले व्यक्तिसे अंगूठेकी निशानी लेनेपर भी अगर दिया जाए तो यह ज्यादा अच्छा होगा। यह देखा गया है कि किसीके अंगूठेकी झूठी निशानी बनाना असम्भव है। इसलिए कोई भी व्यक्ति अपनेको दूसरा व्यक्ति बता कर धोखा न दे सके इसके बनिस्बत सबसे सुरक्षित उपाय उसके अंगूठेकी निशानी लेना ही है। क्योंकि यह हो

सकता है कि वा व्यक्ति साधारण न्यायाधीश या शान्ति रक्षक न्यायाधीश (जस्टिस ऑफ दि पीस) के सामने अपने अँगूठेकी निशानी लगाये वह वही व्यक्ति न हो जिसपर कर्जका दावा करनेका मंशा हो। यदि न्यायाधीश या शान्ति रक्षक न्यायाधीशके सामने दस्तावेजपर हस्ताक्षर किये जायेंगे तो उनका महत्त्व बहुत बढ़ जायेगा और यदि एक व्यक्तिने अपनेको दूसरा व्यक्ति बताकर धोखा दिया तो इस धोखेबाजीको साबित करना बहुत कठिन होगा। किसी न्यायाधीश या शान्ति रक्षक न्यायाधीशसे हमेशा यह जाँच करनेकी आशा रखना उचित नहीं होगा कि उसके सामने ऋणपत्रपर हस्ताक्षर करनेके लिए उपस्थित लोगोंकी शिनाख्त सही है या गलत। इसलिए हमें आशा है कि सरकार कृपा करके अपने विधेयकमें हमारा सुझाव शामिल कर लेगी और उसे पूर्ण और वास्तविक अर्थमें कारगर बनायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २–७–१९०४

१८० ट्रान्सवालकी पैदल-पटरियाँ

बॉक्सबर्ग नगर-परिषदने ट्रान्सवालकी नगर-परिषदों और नगरपालिकाओंको नीचे लिखा परिपत्र भेजा है

सज्जनो

मित्रसन्देह आप पूरी तरह जानते हैं कि यातायात-सम्बन्धी उपनियमों में एक उपधारा है, जिसमें यह व्यवस्था है कि कोई रंगदार व्यक्ति तबतक पैदल-पटरीपर नहीं चलेगा जबतक कि वह किसी लड़केको धार न कर रहा हो या किसी निजी जायदादमें प्रवेश न कर रहा हो। देखिए उपधारा १९, अध्याय २।

आप देखेंगे कि इस उपनियम-संहिताकी २ री उपधारामें व्याख्याओं के अन्तर्गत रंगदार शब्दका अर्थ है, कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसके माता-पिता किसी आदिकी आदिम जाति या उपजातिके हों।

मुझे इस पत्रके द्वारा यह बतानेका आदेश हुआ है कि मेरी परिषद चाहती है, मौजूदा कानूनके ऐसे ढंगसे संशोधित करानेमें कि उसमें सब रंगदार कौमें बिना किसी भेदके शामिल हो जायें विभिन्न नगर-परिषदों और शहरी जिला-निकायोंसे सहयोग और सहायताकी याचना की जाये।

मेरी परिषदका कहना यह है कि सार्वजनिक पैदल-पटरियोंपर दूसरी रंगदार जातियोंकी उपस्थिति भी उतनी ही आपत्तिजनक है जितनी इस देशकी आदिम जातियों की; और (जहाँतक इस परिषदका सम्बन्ध है) उसने कानूनको संशोधित और सब रंगदार जातियोंपर लागू करवानेकी दृष्टिसे स्थानीय सरकारके सहायक उपनिवेश-सचिवको यातायात उपनियमों में शामिल करनेके निमित्त निम्न संशोधन भेजा है :

किसी सड़ककी पदल-पटरियों या किसी मकानके सामने या बगलमें बने चबूतरेपर, जो पैदल-पटरीका काम देता हो तमाम रंगदार लोगोंका चलना वर्जित है।

और कहा गया है कि दूसरी नगरपालिकाओंको भी उस विशेषाधिकारका उपभोग करनेकी सुविधा हो जो जोहानिसबर्ग नगरपालिकाको है।

सहायक उपनिवेश-सचिव इसके उत्तरमें कहते हैं :

'नगर-निगम अध्यादेश जोहानिसबर्ग नगर-परिषदपर लागू नहीं होता अतः वह परिषद रंगदार लोगों द्वारा पैदल-पटरियोंके उपयोग-सम्बन्धी उपनियमको लागू कर सकती है। फिर, वह परिषद जिस घोषणाके अनुसार बनाई गई है उसकी रूसे उक्त उपनियम पुराने नगर-नियमोंके अन्तर्गत आ जाता है। मुझे अफसोस है कि आपने जो उपनियम भेजा है उसकी मंजूरीकी सिफारिश मैं नहीं कर सकता क्योंकि बॉक्सबर्ग परिषदको उसे लागू करनेकी अनुमति देनेके लिए कानूनको बदलना जरूरी होगा।

इस प्रकार यह विदित हो जायेगा कि जो अधिकार जोहानिसबर्गको प्राप्त हैं उनके उपभोगके लाभसे दूसरे सब नगर वंचित रखे जानेवाले हैं सिर्फ इसलिए कि उस नगरमें अब भी एक पुराना नगर-नियम मौजूद है और वह अभीतक वापस नहीं लिया गया है।

मेरी परिषद जोर दे रही है कि स्थानीय सरकारके सहायक उपनिवेश-सचिव इस व्यवस्थाकी जरूरतपर तुरन्त और गम्भीर रूपमें ध्यान दें और अगर इस बातपर आपकी परिषदका समर्थन प्राप्त हो जाये तो हमारे उद्देश्यकी पूर्तिका सबसे अच्छा उपाय यह होगा कि आपकी परिषद भी प्रस्ताव स्वीकार करके इसी तरहका आवेदनपत्र भेजे।

मैं इस बारेमें सहयोगके लिए आपको पेशगी धन्यवाद देता हूँ।

एक हदतक बॉक्सबर्ग-परिषदसे सहानुभूति प्रकट न करना कठिन है। ये लोग अपनी पैदल-पटरियोंपर किसी भी रंगदार आदमीको चलता देखना नहीं चाहते। जोहानिसबर्गमें तमाम रंगदार लोगोंको उन्हें इस्तेमाल करनेसे रोकनेका अधिकार नगर-परिषदको प्राप्त है तब दूसरी नगर परिषदोंको भी जोहानिसबर्ग-परिषदके समान आधारपर क्यों न माना जाये। यह स्थिति काफी तर्कसंगत मालूम होती है। जो कुछ हुआ है वह है अपना निजी संविधान प्राप्त हो जानेसे जोहानिसबर्गके लिए आम नगर-निगम अध्यादेशका मानना जरूरी नहीं है। और मसविदा बनानेवाले व्यक्तिने जोहानिसबर्गके विशेष अध्यादेशमें पुरानी हुकूमतके नगर-नियमोंका ध्यान नहीं रखा। लेकिन पीछे जब नगर-निगम अध्यादेश स्वीकृत हो गया तब अदालती शब्दकी उचित व्याख्या करके यह मामला कायदे तरीकेसे निपटाया गया। निश्चय ही सरकारके लिए अधिक साहसपूर्ण और ईमानदारीकी नीति तो यह होगी कि वह विधि-संहितामें से नियमका वह हिस्सा ही निकाल देती जिससे वतनियों के अलावा दूसरे रंगदार लोग नाहक अपमानित होते हैं। परन्तु सही हो या गलत जब सीधा रास्ता छोड़ा जा चुका है तब बॉक्सबर्गकी नगर-परिषदोंका जिन्हें यह कदम अकस्मात् उठाये जानेकी शिकायत है अब अपने दृष्टिकोणसे इसके खिलाफ आन्दोलन करना स्वाभाविक है। निःसन्देह यह एक कठिन स्थिति है। इसका एकमात्र मार्ग हमें यही मालूम होता है कि इस मामलेमें और नगर-परिषदोंकी जैसी स्थिति है वैसी ही स्थितिमें जोहानिसबर्ग-परिषदको भी रख दिया जाय। तभी पूर्ण न्याय होगा और तब दूसरी नगर-परिषदोंको अपने प्राप्त अधिकारोंसे सन्तोष करना पड़ेगा। परन्तु यह बात आश्चर्यजनक और कुछ दुःखजनक भी दिखाई देती है कि बॉक्सबर्गकी नगर-परिषद जैसी प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ जिनका लाद बना र और ऐसे लोगोंपर, जिन्होंने उनका कुछ नहीं बिगाड़ा है, अनावश्यक असमानतर अपमान लादनेमें खुशी हासिल करें। ये लोग अगर किसी चीजके हकदार हैं तो अच्छे बरतावके ही, क्योंकि ब्रिटिश भारतीयोंका विचार छोड़ भी दें तो भी यह नहीं भूल जाना चाहिए कि उन लोगोंमें ही सी सम्मान्य हबशी पीरे बड़े नाम थे और आज नगर-परिषदोंके अतीत

सदस्य बने बैठे हैं केपके सैकड़ों रंगदार लोगोंका उपयोग अपने कामके लिए किया था। तब तो उनके साथ बहुत प्यार दिखाया गया उनकी आँखोंके सामने अंग्रेजी झंडा हमेशा फहराता रखा गया थोड़ीसी जबानमें उन्हें बताया गया कि उसमें रक्षा करनेकी शक्ति कितनी है जिससे वे भाग कर उसकी गोदमें आश्रय ले बोअर अधिकारियोंके जुल्मके बारेमें हलफिया बयान दें और उनके साथ एक हो जायें ताकि उपनिवेश-कार्यालय मजबूर हो जाये और श्री क्रूगरपर दबाव पड़े। निश्चय ही इन लोगोंको यह अधिकार है कि वे कमसे-कम ट्रान्सवालके किसी भी मार्गकी पैदल-पटरियोंपर किसी तरहकी छेड़छाड़के बिना चल सकें क्योंकि इनकी सार-सँभालमें दूसरे करदाताओंकी तरह वे भी अपना भाग प्रदान करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १–७–१९ ४

१८१ ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय

पिछले मंगलवारकी शामको ट्रान्सवाल विधान-परिषदमें श्री बोर्कके प्रस्तावपर बहस हुई थी। इस प्रस्तावमें सरकारसे भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेके सम्बन्धमें कानून बनानेका अनुरोध किया गया है। माननीय प्रस्तावक महोदयने हमेशाकी-सी मामूली बातें कहीं। उन्होंने सदस्योंके सामने छोटे-छोटे गोरे व्यापारियोंके भावी विनाशका चित्र खींचा और जोर देकर कहा कि इस मामलेमें ट्रान्सवालको कोई भी कानून बनानेका अधिकार है। उन्होंने साथ ही देशमें भारतीयोंके प्रवेशके बारेमें कई बातें कहीं। परन्तु श्री हॉस्केन और डॉ॰ टर्नरने पूरी तरह साबित कर दिया कि श्री बोर्क अपने कथनोंके सम्बन्धमें जमानेसे बेहद पीछे हैं। श्री हॉस्केनने आँकड़ोंसे प्रमाणित किया कि भारतवासी नेटालके लिए एक वरदान रहे हैं और अब भी हैं एवं नेटाल भारतीयोंके कारण ही समृद्ध है। एक सदस्यने भारतीयोंपर घोर आक्षेप करते हुए कहा कि उनकी आदतें बहुत गन्दी होती हैं। इसके उत्तरमें डॉ॰ टर्नरने अकाट्य रूपमें सिद्ध किया कि जोहानिसबर्गकी जो भारतीय बस्ती अब जला दी गई है उसकी स्थितिके सम्बन्धमें दोषी एकमात्र अधिकारी ही थे। भारतीय समाजको लायक डॉक्टरका बहुत आभारी होना चाहिए कि उन्होंने सच कहनेमें संकोच नहीं किया और इन अनुचित आक्षेपोंसे भारतीयोंकी इस प्रकार रक्षा की। श्री डंकनने अकाट्य रूपमें प्रमाणित किया कि बहुत कम भारतीयोंको ट्रान्सवालमें प्रवेशकी अनुमति दी गई है और चारके सिवा बाकी सब वास्तविक शरणार्थी हैं। परन्तु श्री डंकनने सदनको अपनी सहानुभूतिका विश्वास दिलाया है और इस सारे मामलेको उपनिवेश-कार्यालयके सामने पेश करनेका वचन दिया है। अन्तमें श्री लॉवलेसका संशोधन स्वीकार कर लिया गया और उपनिवेश-सचिवके इस आश्वासनपर सन्तोष प्रकट किया गया कि मौजूदा अधिवेशनमें ही ऐसा कानून पेश किया जायेगा जिससे श्री बोर्कके भाषण और प्रस्तावमें व्यक्त इच्छाओंपर थोड़ा-बहुत अमल किया जा सकेगा। श्री डंकनको स्वीकार करना पड़ा कि ब्रिटिश सरकार लड़ाईसे पहले दिये गये वचनोंसे बँधी हुई है हमें देखना है कि ये वचन कैसे पूरे किये जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन –७–१ ४

१८२ गिरमिटिया भारतीयोंकी आत्महत्याएँ

तारसे खबर मिली है कि श्री लिटिलटनने सर मंचरजी भावनगरीसे कहा है, गिरमिटिया भारतीयों द्वारा की जानेवाली आत्महत्याओंकी संख्या बहुत नहीं है, इसलिए वे कोई जाँच नहीं करायेंगे। यदि यह खबर सही है तो हमें बेहद आश्चर्य है।

*एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका*के अनुसार, "इसके अस्तित्वको राज्यांगमें रोगोंकी उपस्थितिका लक्षण मानना ठीक ही है। ये रोग साध्य हों चाहे न हों, इस सवालपर बारीकीसे विचार होना चाहिए।" इस तरह आत्महत्याओं द्वारा होनेवाली मृत्यु-संख्याके अधिक होनेके सिवा भी यह एक ऐसी बात है जिसकी छानबीन की जानी चाहिए। प्रवासी-संरक्षक भी अपने विवरणमें उस हदतक नहीं गये जहाँतक श्री लिटिलटन गये हैं। वह मानता है कि मृत्यु-संख्या इतनी बड़ी तो है ही कि उसपर मामूली चर्चासे कुछ ज्यादा किया जाये।

मगर हम आँकड़ोंको मिलाकर देखें। स्वतन्त्र भारतीयोंकी आबादी ५१ २५० है, उसमें *आठ आत्महत्याएँ हुईं। गिरमिटिया भारतीयोंकी आबादी १० १३१ है, उसमें तेईस हुईं। ठिठक* कर सोचनेके लिए यही काफी है। *एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिकामें* भी दी हुई तालिकाके अनुसार यह संख्या सैक्सनीमें सबसे अधिक थी — अर्थात् १८८२ में ३७१ प्रति दस लाख। गिरमिटिया भारतीयोंमें यह ७४१ प्रति दस लाख है। क्या यूरोपकी और नेटालमें गिरमिटिया भारतीयोंकी अधिकतम आत्महत्याओंके आँकड़ोंका यह जबरदस्त अन्तर बिलकुल विचारणीय नहीं है? और इसपर भी जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, फिलहाल हम किसीको भी दोष नहीं देते। हमने फैसला मुलतवी रख छोड़ा है। शायद इसका कोई सीधा-सादा कारण हो और आसानीसे स्पष्टीकरण किया जा सके। श्री लिटिलटनके प्रति अधिकसे-अधिक आदर रखते हुए हमारी इतनी ही माँग है कि न्याय और मानवताके नाते इस मामलेकी तहतक जाकर सफाई की जानी चाहिए। हमें यह आशा इसलिए है कि जब सर मंचरजीने मामलेको हाथमें उठाया है तब वे उसे यों ही छोड़ नहीं देंगे बल्कि अपनी जाँच-पड़तालमें आग्रहपूर्वक लगे रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९-७-१९०४

१८३. और भी निर्योग्यताएँ

वर्जित-भूमिपर ईंटें बनाने, पत्थरकी खानें खोदने और चूनेके भट्ठे लगानेके उद्योगोंका नियमन करनेके लिए जुलाई १ के ट्रान्सवाल *गवर्नमेंट गज़टमें* एक अध्यादेशका मसविदा प्रकाशित हुआ है। अध्यादेशकी धारा १ में कहा गया है:

> इस उपनिवेशका निवासी अठारह वर्षसे ऊपरका कोई भी गोरा पुरुष किसी भी जिलेके रजिस्ट्रारके दफ्तरसे ईंटें बनाने, चूनेके भट्ठे लगाने और पत्थरकी खानें खोदनेका परवाना लेनेके लिए स्वतन्त्र होगा।

अभीतक रोक सोनेकी खदानोंतक ही लागू थी और उसके बारेमें हमने कुछ नहीं कहा। किन्तु अब भारतीयोंके लिए ईंटें बनाना भी गैर-कानूनी हो जायेगा, क्योंकि उन्हें ऐसा करनेका परवाना नहीं मिल सकेगा। अभी कुछ ही दिनों पहले श्री लिटिलटनने सर मंचरजी भावनगरीके प्रश्नका उत्तर देते हुए उन माननीय सज्जनको आश्वासन दिया था कि जो ब्रिटिश भारतीय उपनिवेशमें बस चुके हैं उनके अधिकारोंकी रक्षा पूर्ण रूपसे की जायेगी। हमारे सामने अध्यादेशका जो मसविदा है वह इस इरादेको पूरा करनेवाला नहीं दीखता। इसलिए क्या हम यह बात मान लें कि सरकार अध्यादेशको वापस लेगी या यदि वह अपने वर्तमान रूपमें पास हुआ तो श्री लिटिलटन उसपर अपने निषेधाधिकारका प्रयोग करेंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ९–७–१९०४

१८४. प्लेगकी घूँटी

प्लेगने ट्रान्सवालमें एक ऐसी घूँटीका काम किया है जिसपर भारतीयोंके प्रति अनेकानेक निर्योग्यताएँ लटका दी जायें। अब सुनाई दे रहा है कि प्लेगसे सावधानीकी आड़में भारतीय शरणार्थियोंको दक्षिण आफ्रिकी उपनिवेशोंसे यहाँ आनेके परवाने देना बन्द कर दिया गया है। यह सबसे ताजी निर्योग्यता है जो उनपर लगाई गई है। इसका एकमात्र कारण यह मालूम होता है कि जोहानिसबर्गके कुछ स्थानोंमें प्लेग-ग्रस्त चूहे पाये गये हैं। और वे भी भारतीयोंके मुहल्लोंमें नहीं, परन्तु गरीब यूरोपीयोंके मुहल्लोंमें। डर्बनमें प्लेगकी एक दो घटनाएँ होनेके बाद फिर परवानोंपर रोक शुरू की गई थी। परन्तु अब प्लेग डर्बनमें अचानक बन्द हो गया है, यह देखते हुए कोई-न-कोई बहाना आवश्यक था और उसका काम प्लेगके चूहोंसे ले लिया गया है। हमें पता नहीं कि ट्रान्सवाल-सरकारके इरादे क्या हैं। परन्तु यदि उसे प्रस्तावित कानून द्वारा अपनी मन्द उत्पीड़न नीति चलानी है तो ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति नितान्त दयनीय हो जायगी। इस सम्बन्धमें नगरके स्वास्थ्यके बारेमें डॉ. म्यूरिसनकी रिपोर्टका एक अनुच्छेद उद्धृत कर देना अच्छा होगा। इससे प्रकट हो जायेगा कि डर्बनसे ट्रान्सवालमें आनेके परवाने कितने लचर बहानेपर बन्द किये गये थे।

वे दूर रहें और दूरसे सब व्यवस्था करें तो अपने देशवासियोंकी अधिकतम सेवा कर सकते हैं। और इसलिए वे यहाँसे चले गये। यह खयाल गलत है कि जो बहादुर शेर द्वारा घायल कर दिये जानेपर अपने ही हाथसे अपनी अंगुली काटकर और अपने घावपर पट्टी बाँधकर अपने कामकाजमें इस तरह लग गया था मानो कुछ घटित ही न हुआ हो वही खतरेकी जगहसे भागनेवाला व्यक्ति होगा। यूरोपमें भी उनकी वृत्ति एक महान और ईश्वरपरायण पुरुषके योग्य रही। उन्होंने कोई अनुचित क्षोभ नहीं दिखाया अनिवार्यको मंजूर किया और अपने लोगोंको सलाह देकर रास्ता दिखाते रहे। वे अपने पीछे एक महत्त्वपूर्ण सबक छोड़ गये हैं और वह है उनकी एकनिष्ठ देशभक्ति यद्यपि वह कभी-कभी गलत दिशामें चली जाती थी। हमारा खयाल है कि आगामी पीढ़ियोंके लिए उनका सर्वोत्तम परिचय एक कट्टर देशभक्तके रूपमें होगा। खुद ब्रिटिश भारतीयोंके पास ऐसा कुछ नहीं जिसके लिए वे उक्त दिवंगत राजपुरुषको धन्यवाद दे सकें। ट्रान्सवालमें उनके बनाये कानूनकी पीड़ासे हम अब भी कराह रहे हैं। परन्तु इस कारण यह जरूरी नहीं कि हमारे देशवासी उनके महान गुणोंको स्वीकार न करें और जो लोग ऐसे महान पुरुषकी मृत्युपर शोक मना रहे हैं उनके साथ शरीक न हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१–७–१९१४

१८९. आयोजित आन्दोलन

ब्रिटिश भारतीयों और दूसरे एशियाइयोंको व्यापारिक परवाने देनेके विरुद्ध बॉक्सबर्गके व्यापारियोंकी हलचलें जारी हैं। उन्होंने संयुक्त कार्रवाईकी दृष्टिसे उपनिवेशके सब व्यापारी संघोंके नाम एक गश्तीपत्र भेजा है। बॉक्सबर्गसे छन-छनकर जो कागजात यहाँ आ जाते हैं उनमें बहुत ही असंगत बातें कही जाती हैं। उदाहरणके लिए, दूसरे संघोंसे ऐसे शब्दोंमें कहा गया है कि एशियाई व्यापारको उपनिवेशमें अबाध रूपसे जमनेकी अनुमति देकर गोरे समाजपर अन्याय किया जा रहा है और उसके लिए खतरा पैदा किया जा रहा है। यदि सुझाये गये प्रस्तावपर ध्यान दिया गया तो उससे विधान-परिषद् दुनियाकी नजरोंमें बिलकुल हास्यास्पद दिखाई देगी। क्योंकि प्रस्तावमें परिषदसे गम्भीरतापूर्वक माँग की गई है कि "जबतक एशियाइयोंके सम्बन्धमें स्थायी कानून अमलमें नहीं आता तबतक एशियाइयोंको परवाने देना बन्द कर दिया जाये। इतनेपर भी हमसे कहा जाता है कि उन्होंने इतना अच्छा एका कर लिया है कि अबतक चीनी बहुतोंके पास एक भी चीनी व्यापारी पैर नहीं जमा सका है। समझमें नहीं आता कि तब इतनी ओछी जल्दबाजी क्यों की जाती है। परन्तु हमें अपने सहयोगी स्टारके द्वारा मालूम हुआ कि उपनिवेश-कार्यालयको प्रेषित निवेदनोंमें स्थानीय सरकारके हाथ मजबूत करनेके उद्देश्यसे ऐसा जोरदार आन्दोलन चलाना अत्यावश्यक है। इस दृष्टिसे देखनेपर हमारी समझमें इस बातका अर्थ आ जाता है यह तो वास्तविक करना ही है। असली तौरपर इस तरह लोग साम्राज्य-सरकारसे कहते हैं कि अगर तुम हमें वह चीज नहीं दोगे जो हम चाहते हैं तो हम तुमसे लड़ेंगे" क्योंकि यह कहा गया है कि इस आशयका एक और प्रस्ताव भी रखा जायेगा। अगर साम्राज्य-सरकार मंजूरी नहीं देगी तो उत्तरदायी शासनके लिए आन्दोलन शुरू कर दिया जायेगा ताकि ट्रान्सवाल अपने भीतरी मामलोंका

नियन्त्रण करनेका हक प्राप्त कर सके। यह बिलकुल स्पष्ट है कि जबतक सरकार इस प्रश्नको टालती जाती है और पूरा न्याय करनेके बजाय दोनों पक्षोंको खुश करनेका विचार करती है तबतक यूरोपीय और एशियाई प्रजाजनोंके बीच शान्ति-स्थापनामें बाधा देनेवाला यह हानिकारक और अवांछनीय आन्दोलन जारी रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-७-१९०४

१८७ चीनी पहेली

चीनी व्यापारकी लड़ाई जो अनिवार्य थी पूरी तीव्रता और तत्परतासे शुरू हो गई है। बॉक्सबर्गके लोग चीनी दूकानदारोंका अपने गिरमिटिया देशबन्धुओंसे कोई लेनदेन हो इस विचारके ही खिलाफ उठ खड़े हुए हैं। इतना काफी नहीं कि उनके तमाम नागरिक अधिकार छीन लिये जाते हैं और उनको गुलाम जैसा बना दिया जाता है। और, जैसा एक चीनीने भेंटमें स्टारके प्रतिनिधिसे कहा था यह भी काफी नहीं कि उन्हें मजदूरी इतनी थोड़ी दी जाती है कि बचत बहुत थोड़ी ही होगी यद्यपि गिरमिटके अन्तमें उनके सामने भविष्य होगा — आठ दस रुपये चीनको छौट जाना। इसके अलावा बॉक्सबर्गके यूरोपीय दूकानदारोंको चीनी व्यापारसे अनाप-शनाप मुनाफा भी मिलना ही चाहिए। और गिरमिटिया लोग अपनी मजदूरीमें से जो भी खर्च करें वह यूरोपीय दूकानदारोंकी जेबोंमें जाना चाहिए। बॉक्सबर्गके ये शरीफ लोग वस्तुतः तभी समझेंगे कि उनके साथ कुछ थोड़ा-सा न्याय किया गया है अन्यथा वे कहेंगे कि चीनी मजदूरोंको यहाँ लानेकी जरूरत ही नहीं थी। और अगर चीनी दूकानदारोंको अपने देशबन्धुओंकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेकी अनुमति दे दी जाये तो यह अन्यायकी पराकाष्ठा और यूरोपीय दूकानदारोंकी हकतल्फी होगी। वे स्वीकार करते हैं कि चीनी दूकानदारोंके साथ वे बिलकुल स्पर्धा नहीं कर सकते। सीधी-सादी भाषामें इसका अर्थ यह है कि वे इन गरीब गुलामोंसे उसकी अपेक्षा बहुत अधिक दाम लेंगे जितना चीनी दूकानदार लेनेका कभी विचार करते। और इसलिए वे अपना सारा सामर्थ्य प्रभाव और बल इस बातपर खर्च कर रहे हैं कि एक भी चीनी या भीं कहिये कि भारतीय व्यापारी चीनी ग्राहकोंमें से जरा भी हिस्सा न बँटा सके। उन्होंने लेफ्टिनेंट गवर्नरको प्रार्थनापत्र दिया है और तमाम व्यापारी संघोंसे अनुरोध किया है कि वे उनके युद्धमें शरीक हों और उनके हकमें चीनी व्यापारकी एक बड़ी लोगी आन्दोलनमें उनका साथ दें। वे बहुत साफ-साफ कहते रहे हैं कि अगर सरकार उनकी मदद नहीं करेगी तो वे कानून अपने हाथोंमें ले लेंगे और टेढ़े-सीधे तरीके कायम रखकर भी एक भी चीनी दूकानदारको बॉक्सबर्गमें अपना व्यापार नहीं जमाने देंगे। इससे इस समाजकी मनोदशा विदित होती है और यह भी प्रकट होता है कि जो अधिकार केवल उन्हींके नहीं हैं उनपर वार देने या या कहिए कि उन्हें हड़पनेके इरादेसे वे किस हदतक आगे बढ़नेके लिए तैयार हैं। बिल्कुल और लाटके बच्चोंकी तरह वे चूँकि अबतक अपनी ही जिद पूरी करते रहे हैं इसलिए अब वे सारी मर्यादाएँ ही लाँघ गये हैं और सिर्फ यही समझते हैं कि वे जिस प्रकार चाहें सरकारसे अपनी शर्तें मनवानेका हक रखते हैं। क्या श्री लिटिलटन इनके आगे घुटने टेक देंगे?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-७-१९०४

१ स्पष्ट अभिप्राय चीनी मजदूरोंके उन [illegible] नेताओंका दृष्टिकोण है।

बॉक्सबर्गमें भारतीय व्यापारके सम्बन्धमें जो सभा की गई थी हम उसका विवरण नीचे उद्धृत करते हैं। इससे हमें १८९६ का डर्बनका ऐसा ही आन्दोलन[1] बहुत तीव्रतासे याद आता है। और इस सभामें प्रस्तुत और स्वीकृत दूसरे प्रस्तावमें भी बहुत तेज गर्मी बू आती है। प्रस्ताव यों है:

> बॉक्सबर्ग नगरपालिकाके निवासी इस आम सभामें प्रतिज्ञा करते हैं कि वे मौजूदा एशियाई कानूनके सिद्धान्तोंको ट्रान्सवालके लोगों द्वारा हमेशाके लिए बने अर्थके अनुसार, कायम रखेंगे और एशियाई दूकानदारोंको पृथक् बस्तीके बाहर बॉक्सबर्ग नगरपालिकामें व्यापार करने या रहनेसे रोकनेके लिए सब सम्भव उपाय काममें लेंगे; वे सरकारसे यह अनुरोध करते हैं कि जो पेचीदगियाँ पैदा हो गई हैं उन्हें देखते हुए नये कानूनमें एशियाई व्यापारकी बिलकुल मनाही कर दी जाये।

तब हम देखते हैं कि इसमें एशियाई व्यापारकी पूरी मनाहीकी प्रार्थनाके रूपमें साफ तौरपर सर्वोच्च न्यायालयका विरोध किया गया है और धमकी दी गई है कि अगर कोई एशियाई बॉक्सबर्गमें पृथक बस्तीके बाहर बसनेका इरादा करेगा तो हिंसाका आश्रय लिया जायेगा। प्रस्तावकने उदाहरण देकर बताया कि सब सम्भव उपायोंसे उनका मतलब क्या है। यह है उसका अर्थपूर्ण कथन:

> अबतक शानदार एकता और सार्वजनिक भावनाके बलपर लोगोंने नगरमें एशिया-इयोंको कोई दूकान या बाड़ा किरायेपर देनेसे इनकार किया है यद्यपि एक चीनीने ड्रीफॉन्टीनमें परवाना हासिल कर लिया है। मगर मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि, आशा है, कल सुबहतक खतरा दूर हो जायेगा और पृथक बस्तीके बाहर सारी नगरपालिकाकी सीमामें किसी भी बाड़ेका किसी एशियाईके नाम परवाना बिलकुल नहीं रहेगा (तालियाँ)। अबतक जो नैतिक दबाव इतनी सफलतापूर्वक काम गया उसमें ऐसी ताकत है। किन्तु हमें और हमलोंके लिए तैयार रहना होगा और इसलिए प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हम एशियाइयोंको प्रोत्साहन देनेका हर *सम्भव उपायसे विरोध* करेंगे। — स्टार

हमें यह कहनेकी जरूरत नहीं कि "नैतिक दबाव" का क्या अर्थ है।

सभामें उपस्थित कुछ संजीदा लोगोंको यह सहन नहीं हो सका और हमें उनमें रेव-रेड एलरनिकके भी कॉन्स्टेबलको देखकर खुशी हुई। हमारा खयाल है कि वे एशियाइयोंके कट्टर विरोधी हैं फिर भी उनकी अपनी वैधानिक बुद्धिमें यह प्रस्ताव बड़ा घिनौना मालूम हुआ और उन्होंने सुझाव दिया कि इसमें [हर सम्भव उपाय शब्द निकालकर] "प्रत्येक सम्भव वैधानिक उपाय" शब्द जोड़ दिये जायें और मनाहीकी पूरी धारा निकाल दी जाये। परन्तु श्री कॉन्स्टेबल और उनके समर्थकोंकी आवाज अरण्यरोदन ही सिद्ध हुई और वहाँ विवेकको क्रोध और द्वेषसे हार माननी पड़ी।

जैसा हमने अनेक बार कहा है यदि बॉक्सबर्गवासी महानुभाव यह समझते हों कि जबरदस्ती भरी धमकियोंसे वे किसी एक भी ब्रिटिश भारतीयको जो अपने अधिकारपर जोर देना चाहता

1. यह संकेत यूरोपीयों द्वारा भारतीयोंको डर्बनमें उतरने देनेके विरोधकी ओर है। देखिए खण्ड २ पृष्ठ १९९ और आगे।

ी डरा-धमका सकेंगे तो यह उनकी बड़ी भूल है। और हम उन्हें फिर डर्बन और अमतलीकी घटनाओंकी¹ याद दिलाते हैं। डर्बनमें स्वयंभू प्रदर्शन-समितिकी चुनौती भारतीयोंको डराने-धमकानेमें असफल रही और उसके वे जहाँसे आये थे वहाँ वापिस नहीं गये। और अमतलीमें भीड़ अकेले निर्दोष भारतीय व्यापारीको भी डराकर उसको अपनी दूकानसे नहीं हटा सकी। उसने उन लोगोंको चुनौती दी कि वे जो-कुछ बुरासे-बुरा कर सकते हैं वह कर गुजरें और वह अपनी जगहपर उस वक्ततक डटा रहा जबतक पुलिसकी मदद न आ गई और पुलिस सुपरिटेंडेंटने भीड़को तितर-बितर नहीं कर दिया।

परन्तु बॉक्सबर्गके महापौरने जो कुछ कहा वह कहीं अधिक खौफनाक था। उन्होंने सभामें उपस्थित लोगोंको समझाया कि वे उत्तरदायी शासन जल्दी ही देनेकी माँगके प्रस्तावसे सरकारको दी गई धमकी निकाल दें। उन्होंने सभामें बिलकुल स्पष्ट कहा कि उपनिवेश-सचिव श्री डंकन पूरी तरह उनके साथ मिलकर काम कर रहे हैं। हम अपने विचार पेश नहीं करना चाहते क्योंकि हम उपनिवेश-सचिवके प्रति अनजानमें भी कोई अन्याय नहीं करना चाहते। उनके शब्द ये हैं

> महापौरने तब कहा: मैं आज प्रिटोरिया गया था और आपको बता सकता हूँ कि वहाँ भी एशियाई प्रश्नपर उतनी ही तीव्र चर्चा होती है, जितनी ईस्ट रैंडमें। आपको एक क्षणके लिए भी यह नहीं सोचना चाहिए कि सरकारको जो खबरें दी जा रही हैं उनके प्रति वह उदासीन है। परन्तु सरकार यह महसूस करती है कि मौजूदा कानून जबतक है, वह एशियाइयोंको परवानोंका दिया जाना रोक नहीं सकती। परन्तु वह भरसक कोशिश कर रही है कि ऐसा कानून तुरन्त बनानेकी अनुमति ले ली जाये जिससे अब और परवाने देना रुक जाये। मुझे भय है कि अगर श्री मैकक्यूको सभाके सामने यह प्रस्ताव पेश करने दिया जाता है तो इससे सरकारका उद्देश्य व्यर्थ हो जायेगा। मैं उपनिवेश-सचिव श्री डंकन और सर जॉर्ज फेरारके कथनके आधारपर कह सकता हूँ कि गोरे लोगोंके साथ सरकारकी पूरी सहानुभूति है और इसके प्रमाणस्वरूप मुझसे कहा गया है कि यहाँ आज शामको जो प्रस्ताव पास हों वे इंग्लैंडको प्रेषित करनेके लिए तारसे प्रिटोरिया भेज दिये जायें। मुझसे कहा गया है कि इस प्रस्तावसे सरकारके हाथ मजबूत होंगे और मुझे आशा है कि हमें जल्दी ही राहत मिलेगी। उपनिवेश-सचिवने मुझसे साफ-साफ कहा है कि तीन चार दिन पहले ही इस प्रश्नके सम्बन्धमें इंग्लैंडको समुद्री तार भेजे गये हैं और सरकार इस प्रश्नको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझती है (तालियाँ)। —*स्टार*

हमने पिछले सप्ताह जो कुछ कहा था उसके समर्थनमें हम इससे अधिक प्रबल या अच्छा प्रमाण दूसरा नहीं दे सकते। हमने तब कहा था कि यह सारा आन्दोलन आयोजित है। यह दृश्य अपमानजनक है कि हम उपनिवेश-सचिवको सरकारी प्रतिनिधि होते हुए भी ऐसा पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाते हुए और ताकत वगैरा माँगते हुए आन्दोलनके पीछे खड़ा पाते हैं। इस तरहका व्यवहार तो स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरकी सरकारने भी नहीं किया था। उन्होंने भी यह नहीं कहा था कि नगर-निवासी अथवा डचेतर यूरोपीय उनके हाथ मजबूत करें। उन्होंने अपनी लड़ाई सीधी और न्यायपूर्वक लड़ी थी। तब परदेके पीछे कुछ नहीं होता था और भारतीय जानते थे कि उन्हें किस चीजका सामना करना है। इस समय जैसी स्थिति है उसमें उन्हें कुछ भी पता नहीं है कि परदेके पीछे क्या हो रहा है। महापौरने हमें भीतरी स्थितिकी

१ देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ८१।

ज़रा-सी झलक ही देखने को मिली है, परन्तु यह झलक हमें स्तब्ध और निराश करनेके लिए काफी है। जब सभाकी ये खबरें तारसे भी लिटिलटनको भेज दी जायेंगी तब वहाँ उन्हें यह बतानेके लिए कोई नहीं होगा कि ये सभाएँ प्रायः सरकारने ही बुलाई हैं और उसीने उन्हें प्रोत्साहन दिया है और सरकारकी नीति सभाकी नीति है। हजारों ब्रिटिश मंचोंसे यह घोषणा की गई है कि कुछ भी हो न्याय होना ही चाहिए। ट्रान्सवालमें अब इस कहावतमें परिवर्तन करना पड़ेगा ताकि यहाँ जो नई व्यवस्था कायम हुई है उसके साथ इसका मेल बैठ जाये और लॉर्ड सेल्बोर्नके महाप्रभुने जो बात कही है उसको देखते हुए हमें महसूस होता है कि सर जॉर्ज फेरारके एशियाई व्यापारी-आयोगकी नियुक्तिसे सम्बन्धित प्रस्तावपर भी इंग्लैंडने भारतीय व्यापारियोंकी जो शानदार वकालत की थी वह सच्चे दिलसे नहीं की गई थी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-७-१९०४

१८९. गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याएँ

गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याओंकी असाधारण संख्याके बारेमें हमने पिछले ४ जूनके *इंडियन ओपिनियनमें* जो प्रश्न उठाया था उसपर सर मंचरजीने ब्रिटिश संसदमें सवाल पूछा था और उसका जवाब भी लिटिलटनने दिया था। अब हमें इस प्रश्नोत्तरको विस्तारसे यहाँ छापनेका सुयोग प्राप्त हुआ है:

> सर मंचरजी भावनगरीने उपनिवेश-मन्त्रीसे पूछा: क्या आपका ध्यान उक्त वक्तव्यकी ओर गया है जो नेटाली प्रवासी भारतीयोंके संरक्षककी १९०३ की सालाना रिपोर्टमें दिया गया है? उसमें कहा गया है कि उक्त वर्षमें आत्महत्याओंकी घटनाएँ कमसे-कम ११ अर्थात् दस लाखमें ७४१ हुईं। क्या गिरमिटिया मजदूरोंने बहुत बड़े अनुपातमें आत्महत्याएँ कीं; और क्या स्थानीय अधिकारियोंने इस प्रकार स्वेच्छापूर्वक प्राण-त्यागके कारणोंका पता लगाया?
>
> श्री लिटिलटनने कहा: मैंने उल्लिखित रिपोर्ट देखी है। भारतीयोंमें मृत्यु-संख्या प्रति दस लाखमें ७४१ नहीं हुई जैसा कि कहा गया है, बल्कि ३८२ हुई। स्वतन्त्र भारतीयों और गिरमिटिया भारतीयोंमें मृत्यु-संख्याकी दर क्रमशः १५७ और ७६६ थी। मुझको बताया गया है कि आत्महत्याकी प्रत्येक घटना किन परिस्थितियोंमें हुई इसकी जाँच न्यायाधीशसे कराई गई और जब कभी प्रमाणोंसे यह प्रगट हुआ कि मृत्यु किसी भी तरह किसी मालिक या नौकरके दुर्व्यवहारसे हुई है तब भारतीय प्रवासी-संरक्षक उस जगहमें खुद गया और उसने उन परिस्थितियोंकी जाँच की। केवल एक ही मामलेमें गवाहीमें इस प्रकारका सबूत मिला। आम तौरपर गवाहोंने यह बयान दिया कि वे आत्महत्याका कोई कारण नहीं बता सकते। और अगर जिन लोगोंको जानकारी है वे ही कुछ न बतायें तो बहुतसे मामलोंमें सम्भावित कारण मालूम करना भी असम्भव है। मालूम होता है नेटालके भारतीयोंमें १९०२ में सामान्य मृत्यु-संख्याकी दर ३११ रही

और १९०१ में १८१। इस लिहाजसे १९०१ में मृत्यु-संख्याकी दर बिलकुल असाधारण तो नहीं थी। इस संख्यासे पेरिसकी संख्या अधिक रही है।

सर मंचरजीने आँकड़े इस अखबारसे[1] लिये गये हैं। और श्री लिटिलटनने सर मंचरजी पर ऐसी बात आरोपित की है जो हम समझते हैं उन्होंने कभी नहीं कही। और फिर उन्होंने उनके आँकड़ोंकी प्रामाणिकतासे इनकार किया है। सर मंचरजीने पूछा था कि क्या गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याओंकी संख्या प्रति दस लाखमें ७४१ नहीं है। इसमें जरा-सी भूल यह है कि सर मंचरजीका आधार ११ घटनाओंसे है। जो आत्महत्याओंकी पूरी संख्या है। इनमें से २१ आत्महत्याएँ गिरमिटिया भारतीयोंमें हुई परन्तु उनका अनुपात बिलकुल सही है। इसलिए मंचरजीके आँकड़े बिलकुल असन्दिग्ध रहते हैं और जैसा कि *डेली न्यूज़ने* बताया है जो आँकड़े श्री लिटिलटनने खुद पेश किये हैं उनसे भारतीय सदस्यके कथनकी और अधिक पुष्टि होती है। क्योंकि श्री लिटिलटनके अनुपातके अनुसार, संख्या ७४१ नहीं बल्कि ७६६ है, जब कि स्वतन्त्र भारतीयोंमें १५७ ही है। ये आँकड़े बहुत जोरदार और साथ ही दर्दनाक भी हैं। और इन भयानक आँकड़ोंके होते हुए भी श्री लिटिलटनने सरकारकी रिपोर्टमें इस मामलेका जरा-सा जिक्र आनेपर ही अपना सन्तोष प्रकट कर दिया है। हमारी विनीत रायमें उन्होंने ऐसा करके उस मुद्देको ही भुला दिया जो हमने उठाया है। हम अभीतक मालिकोंके दुर्व्यवहारको आत्महत्याओंका कारण नहीं मानते जैसा श्री लिटिलटनने ख़याल कर लिया है। परन्तु हम यह जरूर कहते हैं कि जिस स्थितिके कारण आत्महत्याओंसे इतनी अधिक मृत्युएँ होती हैं वह ऐसी है जिसकी जाँच होना मालिक और नौकर दोनोंके हितमें जरूरी है। हम जानते हैं कि विचारणीय वर्षकी संख्या असाधारण नहीं है। परन्तु यह साल-दर-साल चली आ रही है और यही स्थिति सबसे बुरी है। इसलिए हम समझते हैं कि पूरी और निष्पक्ष जाँच करनेका समय आ पहुँचा है। सम्भव है कि मालिकोंके वास्तविक दुर्व्यवहारके बजाय उस स्थितिका ही दोष हो जिसमें गिरमिटिया लोग रखे जाते हैं। यह भी हो सकता है कि उन लोगोंसे जो काम कराया जाता है वह उनके लिए जरूरतसे ज्यादा सख्त हो या जलवायु-सम्बन्धी स्थितियाँ ऐसी हों जिनसे वे ऐसे काम करनेके लिए बाध्य होते हों अथवा उन्हें सिर्फ घरकी याद ही सताती हो। कारण कुछ भी हो यह अत्यावश्यक है कि जनता ठीक-ठीक कारण जाने और इस मामलेपर भारतीयोंके मनमें जो भारी बेचैनी है उसका भी समाधान हो। इसलिए हमारी समझमें नहीं आता कि जाँचकी उचित माँगमें कदाचित् खर्चके सिवा और क्या आपत्ति हो सकती है। परन्तु हम इस बातका तो बिलकुल विचार ही नहीं करते क्योंकि हम जानते हैं कि इससे कहीं कम महत्वके मामलोंमें भारी खर्च करके भी जाँचपर जाँच मंजूर की जाती है। इसलिए हमें विश्वास है कि इस प्रश्नको यों ही नहीं छोड़ दिया जायेगा और योग्य संसद-सदस्य सर मंचरजी उपनिवेश-कार्यालयको साफ तौरपर बता देंगे कि प्रस्तावित जाँचका मतलब पहलेसे ही मालिकोंके दुर्व्यवहारका अस्तित्व मान लेना नहीं है और न उसका हेतु मालिकोंपर जरा भी आक्षेप करना है। आवश्यकता इतनी ही है कि सत्यकी खोज कर ली जाये और कुछ नहीं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-७-१९०८

1. देखिए "गिरमिटिया भारतीय", ४-६-१९०७; जोहानिसबर्ग एक्सचेंज पत्र मंचरजी भावनगरीको भी भेजी थी तो अवश्य नहीं।

१९० घर-घरके धक्के

जोहानिसबर्ग नगर-परिषदकी बैठक वतनी और एशियाई लोगोंके लिए घरोंकी व्यवस्थाके बारेमें हुई थी। उसका विवरण दिलचस्प है जिसे हम अन्य स्तम्भमें छाप रहे हैं। सभीको यह स्मरण होगा कि प्लेगके प्रकोपके दिनोंमें पुरानी भारतीय बस्ती जला दी गई थी और उसके निवासी हटाकर क्लिपस्प्रूट शिविरमें भेज दिये गये थे। परिषदके कुछ सदस्योंकी यह राय थी कि अच्छा पिण्ड छूटा और उन्होंने यह भी तय किया था कि शिविर स्थायी बस्ती है। परन्तु उन्होंने पीछे देखा कि पृथक् वासकी अवधि बीतनेके बाद शिविर-वासियोंको नगरमें लौटनेकी इजाजत दे दी गई है बशर्ते कि वे रैंड प्लेग-समितिको सन्तोषप्रद निवास-स्थान बता सकें। यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि इस प्रकार निवास-स्थानोंसे वंचित भारतीयोंके पास जमीनका टुकड़ा जैसी कोई चीज नहीं है जिसपर वे स्थायी रूपसे रह सकें। जो बस्ती जला दी गई है उसके स्थानपर कोई दूसरी जमीनतक निश्चित नहीं की गई है और चूँकि उन्हें अचल सम्पत्ति रखनेका अधिकार नहीं है इसलिए वे असमंजसकी स्थितिमें रहनेके लिए लाचार हैं। अब विवरणसे जाहिर है कि नगर-परिषद क्या करना चाहती है यह वह खुद नहीं जानती। वह जमीनतक उपयुक्त स्थानके चुनावके सम्बन्धमें जहाँ थी वहीं ही है और स्थिति यह है कि इस बीचमें किसी भी [क्षण][1] भारतीयोंको दर-दर धक्के खाने पड़ सकते हैं। मलायी बस्ती पहलेसे ही खिचपिच है और उसमें उन्हें अनाप-सनाप किराया देना पड़ता है। उनका व्यापार चौपट हो गया है। उनके पास माल नहीं है वह जला दिया गया है और उनको उसका कोई मुआवजा नहीं दिया गया है। उनकी हालत सचमुच दयनीय है और उपनिवेश-सचिवने जो उनके लिए उपयुक्त स्थानकी व्यवस्थापर जोर देनेके लिए कर्तव्यबद्ध है अभी अँगुली भी नहीं उठाई है। उधर नगर-परिषद तरह-तरहकी योजनाओंपर बेकार वादविवाद कर रही है। इस अन्यायका अन्त कब होगा?

नगर-परिषद और स्थानीय सरकारके इस उदासीनता-भरे रुखके बिलकुल विपरीत यह समुद्री तार है जो हमारे सम्मानित सहयोगीने अपने स्तम्भोंमें छापा है। कहते हैं इसमें श्री लिटिलटनने यह कहा

> हम ट्रान्सवाल-वासियोंपर भारतीय मजदूरोंको देशमें लानेकी इजाजत देनेके लिए दबाव नहीं डाल सकते परन्तु हम उन्हें समझाने-बुझानेका प्रयत्न कर सकते हैं।
>
> पृथक्करणकी नीति अदूरदर्शितापूर्ण और अमानुषिकता-भरी है।
>
> परन्तु यदि ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीयोंके उपनिवेशमें प्रवेशके रास्तेमें कठिनाइयाँ पैदा करनेका निर्णय करता है तो यद्यपि मुझे उस निर्णयसे गहरा दुःख होगा, फिर भी मैं यह खयाल नहीं करता कि जो भारतीय प्रवासी गणराज्यके कानूनके अन्तर्गत वहाँ जाने थे उनके मामलेमें वह विरोध कर सकता है, क्योंकि वह कानून बिलकुल भिन्न है।
>
> मेरा खयाल है कि सर्वोच्च न्यायालयका निर्णय कायम रखा जाना चाहिए, क्योंकि हमारे लिए अपने राष्ट्रीय गौरव और सम्मानसे असंगत स्थिति अपनाना और

१. यह मूलमें कटा हुआ है।

उन विशेषाधिकारोंको देनेसे इनकार करना जिनकी पुष्टि न्यायालयसे हो चुकी है, असम्भव है।

यह कहना असम्भव है कि इन भारतीयोंको ब्रिटिश झंडेके नीचे वे अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो उन्हें बोअर-कानूनके अन्तर्गत दिये गये थे।

मुझे पूरा विश्वास है कि ट्रान्सवालके नागरिक जो साम्राज्यसे सम्बन्ध रखनेका महत्त्व समझते हैं, अंग्रेजोंके नामके गौरवकी रक्षा उतनी ही करेंगे जितनी कोई दूसरा करता है; और ऐसे अधिकार मुक्तहस्तसे प्रदान करेंगे।

श्री लिटिल्टनका कथन उत्साहजनक है। सवाल सिर्फ यह है कि क्या उनमें इसपर अमल करनेकी शक्ति और स्थानीय सरकारके विरोधका सामना करनेकी दृढ़ता होगी? हम बराबर कहते आ रहे हैं कि ब्रिटिश अधिकारके बाद ब्रिटिश भारतीयोंके साथ किया गया व्यवहार ब्रिटिश गौरव और ब्रिटेनके राष्ट्रीय सम्मानसे मेल नहीं खाता। अब हम उपनिवेश मन्त्रीको लोकसभामें अपने स्थानसे उस विचारका समर्थन करते हुए पाते हैं। आशा है वे जैसा कहते हैं वैसा करेंगे भी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-७-१९०४

१९१ सिंहावलोकन

हमें यह घोषणा करते हुए बहुत प्रसन्नता होती है कि ट्रान्सवालके भीतर भी ब्रिटिश भारतीयोंकी गतिविधिपर रैंड प्लेग-समिति द्वारा लगाई गई प्लेग-सम्बन्धी पाबन्दियाँ अब हटा ली गई हैं और जो भारतीय उपनिवेशमें एक जगहसे दूसरी जगह सफर करना चाहें उन्हें अब अपनी डाक्टरी जाँच करवाने और पासके परवाने साथ रखनेकी जरूरत नहीं होगी। हम ट्रान्सवालमें आबाद अपने देशवासियोंको उनकी इस कष्ट-मुक्तिपर और उससे भी अधिक उनके अनुकरणीय धैर्यपर बधाई देना चाहते हैं। हमारी हमेशा यह राय रही है कि प्रतिबन्ध सर्वथा अनावश्यक थे यद्यपि हमने साथ-साथ यह सलाह भी दी है कि इन सबको सहन करना ही उनके लिए सबसे अच्छी बात है। सरकारी कथनके अनुसार प्लेग पिछले मार्चके मध्यमें शुरू हुआ था और पहले आठवार दौरके बाद उसका प्रकोप भयंकर रूपमें कभी नहीं हुआ है। पिछले तीन महीनोंमें कुछ इक्की-दुक्की प्लेगकी घटनाएँ हुई हैं और वे भी ज्यादातर वतनी लोगोंतक ही सीमित रही हैं। फिर भी साढ़े चार महीनेतक भारतीयोंने भारी हलचलके सम्बन्धमें कष्टप्रद असुविधाओंका सामना किया है। डॉक्टर पोर्टर स्पष्ट बताते हैं कि भारतीय बस्तीके बाहर प्लेगने किसी व्यक्तिका शिकार नहीं किया है और जोहानिसबर्गके बाहर शायद ही किसी भारतीयको प्लेग हुआ हो। कुछ हिस्सोंमें तो प्लेगसे एक भी भारतीय बीमार नहीं हुआ। इसके अलावा अधिकारी उनके विरुद्ध एक भी शिकायत पेश नहीं कर सके हैं। वे अधिकारियोंकी इच्छानुसार अनुशासन बरतनेके लिए तैयार और उत्सुक रहे हैं और जब उनके मकान और असबाब जला दिये गये और उनको बस्तीसे तेरह मील दूर शिविरमें अलहदा भेज दिया गया तब वे बड़बड़ाये बिना वहाँ चले गये। उपनिवेशके चिकित्सा-अधिकारी डॉ० टर्नरने विचारपूर्वक अपनी राय दी है कि जोहानिसबर्गकी बस्तीमें प्लेगके प्रकोपका दोष भार

तीर्थोंपर किसी भी तरह नहीं आता है और जो हानि हुई है उसके लिए अधिकारी ही जिम्मेदार हैं क्योंकि उन्होंने उस स्थानको स्वच्छ हालतमें रखनेके अपने प्रथम कर्तव्यकी अवहेलना की थी। सैकड़ों भारतीयोंको जो बेघर-बार हो गये हैं और जिनका माल नष्ट कर दिया गया है अभीतक कोई मुआवजा नहीं दिया गया है और न उनके पास रहनेके लिए कोई निश्चित स्थान है। हम कहना चाहते हैं कि संसारमें ऐसे बहुत कम समाज पाये जायेंगे जो उसी तरहका व्यवहार करेंगे जैसा भारतीयोंने इस अग्नि-परीक्षामें और अत्यन्त कष्टदायक कठिनाइयोंके बीच किया है। क्या सरकार इसपर ध्यान देगी? क्या रैंड प्लेग-समिति जो लोगोंके निकट सम्पर्कमें आई है भारतीयोंको उचित श्रेय देनेका साहस करेगी? क्या श्री लिटिलटन किसी भी प्रतिबन्धक कानूनपर मंजूरी देते समय इन तथ्योंपर विचार करेंगे? और क्या भारतीयोंके इंग्लैंड-स्थित मित्र अधिकारियोंको इनके सम्बन्धमें विश्वास दिलायेंगे और यह ध्यान रखेंगे कि जो काम इतनी अच्छी तरह किया गया है वह व्यर्थ न चला जाये?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-८-१९०४

१९२ सर फीरोजशाह

डाकसे आये पत्रोंसे यह अत्यन्त आनन्ददायक समाचार मिला है कि माननीय श्री फीरोजशाह मेहताको सर की उपाधि प्रदान की गई है। अगर कोई व्यक्ति इस सम्मानका पात्र था तो वे निश्चय ही सर फीरोजशाह हैं। उनकी गिनती सबसे पुराने लोक-सेवकोंमें है। वे बम्बई नगर-निगमके अध्वर्यु हैं और शायद उस महान निगमका कोई एक भी अन्य सदस्य उतनी बैठकोंमें शामिल नहीं हुआ जितनीमें वे शामिल हुए हैं। उतने लम्बे समयतक निगमकी सेवा भी किसी अन्य सदस्यने न की होगी जितने समयतक सर फीरोजशाहने की है। वे बम्बई प्रान्तके बताजके बादशाह हैं और प्रथम नेता माने जाते हैं। भारतके अन्य किसी प्रान्तमें किसी भी अन्य व्यक्तिको यह सम्मान प्राप्त नहीं है। उनको अपनी बेमिसाल योग्यता और उत्कर्षकारी प्रभावपूर्ण भाषण-शक्ति व्यवहार-कुशलता और विरोधियोंके प्रति अचूक शिष्टताके फलस्वरूप जनतामें बड़ी लोकप्रियता और सरकारमें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। उन्होंने बम्बई विधानसभाके कई कानूनोंपर अपनी छाप डाली है और कलकत्ता-स्थित इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलमें सेवाका जो थोड़ा-सा मौका मिला उसमें भी अपने लिए एक अनोखा स्थान बना लिया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सर फीरोजशाह राष्ट्रीय कांग्रेसके साथ हमेशा सम्बद्ध रहे हैं और दो बार उस संस्थाके अध्यक्ष भी बने हैं। इसलिए उनका सर बनाया जाना उन माननीय महानुभावका जितना सम्मान है उतना ही कांग्रेसका भी है। हमारा खयाल है कि सरकारने उनका सम्मान करके खुद अपना सम्मान किया है। इस तरह किसी कांग्रेस नेताका ऐसा सम्मान पहली ही बार नहीं किया गया है। माननीय श्री गोखलेको भी अभी हालमें सी° आई° ई°[१] का खिताब दिया गया है। जैसा कि पाठकोंको मालूम है, माननीय गोखले इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलमें महत्त्वपूर्ण सेवा करते आ रहे हैं। हम देखते हैं कि हाल ही में विवाह

१ देखिए खण्ड १, पृष्ठ १९५।

पानेवालोंमें माननीय जॉर्ज फेरारका[1] भी नाम है। ये सब शायद सम्मानके सूचक चिह्न हैं। मगर साथ ही इससे यह भी प्रकट होता है कि सरकार उस अच्छे कामसे पूरी तरह परिचित है जो भारतीय समाजके नेताओं द्वारा भारतके भिन्न-भिन्न भागोंमें उसके लिए किया जा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ६–८–१९०४

१९३. लॉरेंसो मार्क्विसके ब्रिटिश भारतीय

कुछ समय पूर्व 'फेयरप्ले' (इन्साफ) नामसे एक संवाददाताने हमारे सहयोगी स्टारमें लेख लिखकर लॉरेंसो मार्क्विसके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिकी तुलना ट्रान्सवालके भारतीयोंकी स्थितिसे की थी। संवाददाताके कथनानुसार डेलागोआ-बेके भारतीय यह कहते हैं:

> हम यहाँ पुर्तगाली शासनमें पूरी तरह और बिलकुल आजाद हैं और यद्यपि हम सब ब्रिटिश प्रजाजन हैं तो भी ट्रान्सवालकी अपेक्षा यहाँ हमारी हालत सौ गुनी अच्छी है।

इसपर स्टारका नियमित संवाददाता लॉरेंसो मार्क्विससे हमारे सहयोगीको लिखता है:

> सम्भव है लेखकको यह बात नयी ही मालूम हो कि संसद (कोर्टिस) की पिछली बैठकमें एक कानून समयाभावसे छोड़ दिया गया था। और अब यह अगली बैठकमें लाया जाता है। इसके अनुसार नवागन्तुक भारतीयोंपर प्रति व्यक्ति ८ पौंड वार्षिक कर लगाया जाता है। कहा जाता है कि यह कानून सरकारने मंजूर कर लिया है। अगर माननीय सदस्य श्री कारवेलोका उक्त प्रस्ताव कानून बन जाता है तो 'फेयरप्ले' महाशय अपने मित्रोंकी भर्तीके लिए पुर्तगाली इलाकेके अलावा कोई अन्य स्थान तलाश करेंगे।

अब अगर यह जानकारी जो स्टारके संवाददाताने दी है सही है तो इससे एक बार और जाहिर होता है कि डेलागोआ-बेके पुर्तगाली लोग नहीं बल्कि वे आम यूरोपीय व्यापारी भारतीयोंके विरुद्ध हैं जिनसे कि अक्सर गोरोंका दल बना है। ये ही लोग पुर्तगाली सरकारसे अपनी बात मनवानेमें सफल हो गये हैं ताकि व्यापारमें उन्हें एकाधिकार मिल जाये। ट्रान्सवालमें पिछली हुकूमतके जमानेमें उन्होंने ऐसा ही किया था और भूतपूर्व राष्ट्रपति क्रूगरको कानून मंजूर करनेके लिए मना लिया था। यूरोपीय डेलागोआ-बेमें अभी हालमें ही बड़ी संख्यामें आबाद हुए हैं और यदि उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंपर पाबन्दियाँ लगानेके लिए पुर्तगाली सरकारको राजी कर लिया हो तो हमें इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यदि श्री लिटिलटन कुछ भी दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंकी रक्षा करना चाहते हों तो उन्हें बहुत सावधान रहना पड़ेगा। और एक दफा पुर्तगाली सरकारने ब्रिटिश भारतीयों-पर प्रतिबन्ध लगाना शुरू कर दिया तो समस्या कहीं अधिक पेचीदा बन जायेगी।

1. सर जॉर्ज हर्बर्ट फैरार (१८५९–१९१५); खान उद्योग व्यवसायके अग्रणी और १९०७ से ट्रान्सवाल विधानसभाके सदस्य।

क्योंकि डेलागोआ-बे ब्रिटिश उपनिवेश नहीं है और पुर्तगालियोंके तौर-तरीके अक्सर अत्यन्त रहस्यमय होते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १–८–१९०४

१९४. पुलिस सुपरिंटेंडेंट और ब्रिटिश भारतीय

सुपरिंटेंडेंट अलेक्जेंडरने डर्बन नगर-परिषदमें एक रिपोर्ट पेश की है जो बहुत ही दिलचस्प है। उन्होंने भारतीयोंके बारेमें बहुत संतोषजनक बातें कही हैं। इस सम्बन्धमें वे लिखते हैं:

> मुझे अपनी (लगभग १६, की) बड़ी आबादीसे बरतनेमें बहुत कम परेशानी हुई। ये लोग कानून और व्यवस्थाका पालन सबसे ज्यादा करते हैं। केवल एक ही उदाहरण ऐसा है और वह है उनके पिछले मुहर्रमके ताजाना त्यौहारके दिनोंका जब उनमें से कुछ लोगोंने मेरी आज्ञाका विरोध करनेकी कोशिश की थी। लेकिन ज्यों ही उन्हें मालूम हुआ कि मेरी आज्ञाका उद्देश्य उन्हें शराबखानोंसे दूर रखना है त्यों ही उन्होंने तुरन्त माफी माँग ली।

शराबखोरीके बारेमें उनके निम्नलिखित विचारोंसे जाहिर होता है कि इस विषयमें सुपरिंटेंडेंटने जो काम किया है, उसके लिए नगर उनका कितना ऋणी है। और हम यही आशा कर सकते हैं कि वे जिस तरह पिछले पच्चीस सालसे अधिक समयसे समाजकी सेवा करते आये हैं उसी तरह समाजकी सेवा करते रहनेके लिए दीर्घकालतक जीवित रहेंगे।

> इस वर्षके दौरानमें आपकी पुलिसने १५,४१८ अपराधों और जुर्मोंका पता लगाया और उनका निपटारा किया जैसा कि आँकड़ोंसे जाहिर है। मुझे कहते खुशी होती है कि यद्यपि यहाँ एक बड़ी संख्यामें (लगभग १) यूरोपीय बेकार हैं आधी आबादी कई जातियोंके असभ्य काले लोगोंकी है और हमारे बीचमें यूरोपीय विदेशियोंकी भी एक बड़ी संख्या है फिर भी कुल मिलाकर, समाजका आचरण अच्छा रहा है। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि यूरोपीयोंमें शराबखोरी बहुत कम हो गई है। बेशक, इसका आंशिक कारण व्यापारिक मंदी भी है परन्तु निरन्तर अवलोकनसे मेरा यही खयाल ज्यादा बनता है कि शहरमें अब (नशीली चीजोंके सिवा) दूसरी तरहके जलपानोंकी व्यवस्था बहुत ज्यादा हो गई है और यही इसका बड़ा कारण है। क्योंकि अब कोई भी अपने ऐसे मित्रको, जो शराबखानेमें जाना नहीं चाहता जलपान-गृहमें ले जाता है। और जब किसीको ऐसा जलपान मिल जाता है तो उसे शराबकी इच्छा नहीं होती। मुझे ज्ञात है, शराबखानेका मालिक शिकायत करता है कि उसकी आमदनी कम हो जानेसे किराया वगैरह चुकाना कितना कठिन हो गया है। इसका एकमात्र उपाय यह है कि जायदादके मालिक अपने किराये कम कर दें जो इस समय बहुत ऊँचे हैं और जिनके कारण शराबखानेके मालिक अपने ग्राहकोंके साथ उतनी ईमानदारी नहीं बरत सकते जितनी कि, कदाचित् वे बरतना चाहते हैं। केवल इसी कारण मैंने शराब

लाभोंकि परवानोंकी संख्या कम रखनेकी बराबर कोशिश की है। और मेरे खयालसे नगर इस बातके लिए बधाईका पात्र है कि यहाँ ब्रिटेन या उसके उपनिवेशोंके इसकी बराबरीके किसी भी बन्दरगाही नगरकी तुलनामें शराबकी बिक्रीके परवाने कम हैं क्योंकि हमारे यहाँ सिर्फ ५ होटल १८ होटल और शराबखाने मिले-जुले १७ शराब खाने और ७ बोतल-भण्डार हैं। मुझे यह कहते हुए भी खुशी होती है कि ब्रिटेनके नगरोंकी अपेक्षा इस नगरमें बहुत कम यूरोपीय स्त्रियाँ मदिरापान करती हैं। पिछले साल शराबखोरीके अपराधमें १११७ यूरोपीय गिरफ्तार किये गये थे। उनमें सिर्फ २४ औरतें थीं और १९ वर्षसे कम आयुका सिर्फ एक लड़का था। इसकी तुलनामें ब्रिटेनके बन्दरगाही नगरोंके बारेमें पुलिसके आँकड़ोंसे पता चलता है कि उनमें से कुछ नगरोंमें शराबखोरीमें पकड़े गये लोगोंमें ६ प्रतिशत स्त्रियाँ थीं और १९ वर्षसे कम उम्रके लड़कोंकी संख्या एक हजारमें ५ थी। शराबखोरीके जुर्ममें पकड़े गये भारतीय और वतनी लोगोंमें स्त्रियोंकी संख्या क्रमशः ९ और १ फीसदी है।

परन्तु आज हमारा सारा जोर रिपोर्टके एक छोटे वाक्यपर ही रहेगा जिसमें सुपरिटेंडेंट कहते हैं कि "शराबखोरीमें गिरफ्तार भारतीयोंमें स्त्रियाँ ९ फीसदी हैं।" यह कोई नयी बात नहीं है। फिर भी यह सोचकर हृदय विदीर्ण होता है कि जिन भारतीय स्त्रियोंने अपने देशमें कभी यह नहीं जाना कि मदिरापान क्या होता है, वे यहाँ सड़कोंपर नशेकी हालतमें पाई जायें। कुछ मामले बेशक ऐसे होते हैं जिनपर किसीका काबू नहीं होता और पतित स्त्रियोंकी दुर्बलताकी सफाईमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है। परन्तु हमारी धारणा है कि जबतक नगरमें एक भी भारतीय स्त्री नशेकी हालतमें पाई जायेगी तबतक अवश्य ही भारतीय समाजपर लाञ्छन रहेगा। हमें समाजके अधिकारोंकी हिमायत करनेका फर्ज अक्सर अदा करना पड़ा है। आज हमारा विशेष अधिकार हो गया है कि हम भारतीय समाजका ध्यान एक बहुत प्रत्यक्ष कर्तव्यकी ओर आकर्षित करें, जिसका उसको स्वयं अपने प्रति और अपनी नारी जातिके प्रति पालन करना चाहिए। हम खुद तो चाहते हैं कि भारतीय स्त्रियोंको नगरके किसी भी शराबखानेमें शराब देना जुर्म करार दे दिया जाये परन्तु इससे भी अधिक सन्तोषजनक यह होगा कि जहाँतक भारतीय स्त्रियोंका सम्बन्ध है, समाज खुद इस अभिशापके विरुद्ध लड़ाई छेड़े और हम कोई शक नहीं कि इसमें सफलता आसानीसे प्राप्त की जा सकती है। नगरमें भारतीय संस्थायें हैं और काफी भारतीय युवक हैं, जिनके पास बहुत समय है। वे मद्य निषेधका अत्यावश्यक कार्य कर सकते हैं और इस कार्यमें सब धर्मोंके लोग उपयोगी संयम उनका हाथ बँटा सकते हैं क्योंकि उनके पास काम करनेकी सब सुविधायें हैं और उपयुक्त संगठन भी है। फिर शिक्षित भारतीय महिलायें भी हैं जो इस मामलेमें बहुत सहायक हो सकती हैं। यह बिलकुल सम्भव होना चाहिए कि छोटी-छोटी टोलियाँ हरएक भारतीय शराबखाने पर जायें और स्त्रियों और शराब बेचनेवालोंसे बात करें। क्योंकि हम नहीं समझते कि शराब बेचनेवाले भी जो ज्यादातर भारतीय हैं औरतोंके हाथ शराब बेचनेसे इनकार करनेके लिए राजी क्या न किये जायें। हमें इस प्रश्नके गुणावगुणपर विचार करनेकी जरूरत नहीं है क्योंकि इस बारेमें तो राय एक ही हो सकती है। खास तौरपर स्त्रियोंमें शराबखोरीके जो भयंकर परिणाम होते हैं उन्हें बताना जरूरी नहीं है। इस आदतमें (क्योंकि यह आदतसे कुछ भी कम नहीं है) भावी सन्ततिपर जो प्रभाव पड़ जाता है वह अक्सर अमिट होता

है और यह एक बात ही हममें इस सुझावकी पूर्तिकी समस्त शक्ति जागृत करनेके लिए काफी समझी जानी चाहिए। हमने जो सुझाव यहाँ दिया है उसपर यदि हमारे नौजवान पाठक गौर करेंगे और उसे अविलम्ब हाथमें लेंगे तो हमें प्रसन्नता होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १३–८–१९०४

१९५ पीटर्सबर्गकी बूझ-बूझ बातें

पीटर्सबर्गमें एक एशियाई-विरोधी सभा की गई थी। इसके बारेमें अन्यत्र हम एक समाचार छाप रहे हैं जो २९ जुलाईके *जूटपान्सबर्ग रिव्यू ऐंड माइनिंग जरनल*से लिया गया है। कहा जाता है कि सभामें दो सौसे तीन सौतक आदमी उपस्थित थे। उसमें जो मुख्य प्रस्ताव स्वीकार किया गया वह वैसा ही था जैसा क्लार्क्सडॉर्पमें स्वीकार किया गया था और उसमें सदाकी भाँति भ्रान्तिपूर्ण बातें कही गईं। हाँ, सभाके लिए रुचिकर बनानेके उद्देश्यसे उसमें मिर्च-मसाला भी ज्यादा मिलाया गया था। उदाहरणार्थ एक वक्ताने कहा कि भारतीयोंमें "वे गुण नहीं हैं जो नगर-निवासियोंमें वांछनीय हैं", क्योंकि उनसे "कोई स्वामी और प्रगति प्रीत ढंगकी बात नहीं बन पड़ती। एक दूसरे वक्ताने कहा "वे गाड़ियाँ नहीं रखते माल नहीं खरीदते और रुपया खर्च नहीं करते।" एक तीसरे वक्ता बोले "अगर कोई भारतीय दिनभरके कामसे ५ शिलिंग कमाता है तो वह भोजन किये बिना रह जाता है और अगर ५ पौंड कमा ले तो भी चिड़िया ही हलाल करता है।" ये वक्तव्य उन लोगोंके हैं जो आगा एक व्यावसायिक मामलोंमें संजीदा माने जाते हैं। एक वर्गके लोगोंको जानबूझकर सिर्फ उन्हें बाड़ोंमें बन्द करना उन्हें जमीन खरीदनेके अधिकारसे वंचित करना और फिर पलटकर उन्हींपर यह आरोप लगाना कि उनमें नागरिकताके वांछित गुणोंका अभाव है बहुत बढ़िया मजाक है। अगर इन योग्य वक्ताओंमें से किसीने जूटपान्सबर्ग जिलेकी सीमाके बाहर यात्रा की हो तो हम उनका ध्यान उस कामकी ओर आकृष्ट करनेका साहस कर सकते हैं जो केपटाउन डर्बन और दूसरे स्थानोंमें जहाँ उन्हें कुछ अधिकार दिये गये हैं प्रगतिशील नागरिकोंके रूपमें भारतीयोंने किया है। उन्होंने इनमें से प्रत्येक नगरमें ऐसी व्यापारिक कोठियाँ बनाई हैं जिनकी तुलना किसी भी अभारतीय कोठीसे की जा सकती है और इन स्थानोंके निर्माणमें उन्होंने यूरोपीय शिल्पकारों यूरोपीय ठेकेदारों यूरोपीय निर्माण-व्यवस्थापकों ईंट पाथनेवालों और मालियों वगैराको नौकर रखा है। इनमें से कुछ इमारतें यूरोपीयोंने भी किरायेपर ले रखी हैं। हम एक यूरोपीयका उदाहरण जानते हैं जो लगभग बीस सालतक किरायेदार रहा। इस अरसेमें भारतीय मकान-मालिकने कभी उसका किराया नहीं बढ़ाया। वह किरायेदार गरीब हो गया था और किराया नहीं चुका सकता था। उदारमना मकान-मालिकने उसपर चढ़े बकायेका किराया माफ कर दिया और मकान खाली करानेके लिए कार्रवाई नहीं की। यह बात सच्ची है कोई किस्सा कहानी नहीं। किसी सच्चे जिज्ञासुको हम व्यक्तियोंके नाम भी खुशीसे बता सकते हैं। हम पूछ सकते हैं कि क्या ये सब बातें नागरिकताके गुणोंका अभाव प्रकट करती हैं? एक वक्ताने यह भी कहा कि "एशियाई व्यापारका सही रूप है अधिकसे अधिक व्यापारी अधिकसे अधिक-बकाया" का आम सिद्धान्त लागू किया जाना। हमें स्वीकार

करना होगा कि हम इस सिद्धान्तपर आँख मूँदकर विश्वास करते हैं। हमारा खयाल है कि अनेक मामलोंमें इससे बहुत खराबी हुई है और संसारकी प्रगतिके इतिहासमें आगे भी इससे ऐसा होनेकी सम्भावना है। परन्तु दलीलकी खातिर इसे सही मानकर इसके उपयोगकी परीक्षा करके देखें। उस सभामें जो सज्जन बोले वे व्यापारियोंके प्रतिनिधि थे। भारतीयोंका अपराध यह है कि वे उनसे स्पर्धा करते हैं। वे जीवनकी आवश्यक वस्तुओंके दाम घटा देते हैं और चूँकि उनके पास औरोंकी पूँजी है, अतः उनके मालकी बिक्री अच्छी होती है खास तौरपर उन लोगोंमें जिनके पास ज्यादा पैसा नहीं होता चाहे वे यूरोपीय हों या वतनी। उस दशामें अगर भारतीय व्यापारियोंसे यूरोपीय सौदागरोंको नुकसान भी पहुँचता हो जिसे हम नहीं मानते तो भी उनसे कुल मिलाकर ट्रान्सवालके अधिकसे-अधिक लोगोंको तो फायदा ही पहुँचता है। इसके सबूतमें यह तथ्य खण्डनका भय छोड़कर पेश किया जा सकता है कि उन्हें अपने व्यवसायके लिए गरीब गोरों जितनें हद भी हैं और वतनी लोगोंकी सहायतापर निर्भर रहना पड़ता है। और आश्चर्य है कि स्वयं इस सभामें यह आवश्यक समझा गया कि "एशियाइयोंके साथ व्यापारको अनुत्साहित करनेके उपाय खोजनेके उद्देश्यसे" एक काम चलाऊ श्वेत-संघ-समिति स्थापित की जाये। इसके विधानका मसविदा तैयार करनेका काम महापौर और दूसरे लोगोंके हाथोंमें छोड़ दिया गया है। अब हम देखते हैं कि स्थानीय निकाय इस प्रकारके मामलेमें भी पक्ष ले रहा है। परन्तु हम जानते हैं कि इस सम्बन्धमें हम व्यर्थ तर्क करते हैं। जिन लोगोंकी नस-नसमें विद्वेष भरा हुआ है उनकी विवेक-बुद्धिसे अपील बिलकुल बेकार है। हम इतनी आशा ही रख सकते हैं कि जो काम शायद विवेक-बुद्धिसे नहीं हो सकता वह समय गुजरनेके साथ-साथ खुद पूरा हो जायेगा क्योंकि समय घावोंको भरनेवाली सबसे बड़ी औषधि है। और भारतीय धैर्यसे प्रतीक्षा कर सकते हैं क्योंकि न्याय उनके पक्षमें है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-८-१९०४

१९६. डर्बनके महापौर

हमें श्री एलिस ब्राउनको तिबारा मुख्य नगर-न्यायाधीश चुने जानेपर बधाई देनी है। यह शहर प्रगतिशील है और दिनपर दिन बढ़ रहा है। चूँकि इसमें अनेक देशोंके लोग रहते हैं जिनके स्वार्थ अक्सर परस्पर-विरोधी होते हैं महापौरका पद कोई पका-पकाया हलुआ नहीं है। श्री एलिस ब्राउन ऐसे सज्जन हैं जिनमें विभिन्न प्रकारकी योग्यताएँ हैं और जो बड़े परिश्रमशील हैं। जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका सम्बन्ध है वे उन्हें अच्छी तरह जानते हैं वे खुद इस समाजके सब वर्गोंसे अक्सर सम्पर्कमें आये हैं और बाजारके प्रश्नपर अपनी रायके कारण वे जरूर बदनाम हैं किन्तु दूसरी बातोंमें उनकी ख्याति न्यायपरायण और निष्पक्षकी ही रही है। बाजारके मामलेमें बहुतसे अन्य लोगोंकी तरह वे भी क्यों विवेक खो बैठे यह आसानीसे समझमें आ जाता है। उस समय वे लॉर्ड मिलनरके प्रभावमें काम कर रहे थे। भारतीयोंपर परमश्रेष्ठकी पिछले सालकी सूचना १५६का[1] प्रभाव बम गोलेके जैसा हुआ। उससे सरकारकी भारतीय-सम्बन्धी नीति पुष्ट हो गई और उसका अर्थ यह हुआ कि परम

१. देखिए खण्ड ३, पृ ३१४।

श्रेष्ठको पुराना जनराज्य-कानून स्वीकार है। स्वभावतः हमारे सुयोग्य महापौरने सोचा कि इस पर अवश्य ही ब्रिटिश मन्त्रालयसे मंजूरी मिल गई होगी। इसके अलावा उनका खयाल था कि जो बात एक शाही उपनिवेशमें की जा सकती है वहाँ उस सूचनाका विषय ही मुद्देका एक कारण था उसकी अनुमति नेटाल जैसे स्वशासन भोगी उपनिवेशमें तो अवश्य ही होनी चाहिए। अस्तु, इसी कारण उन्होंने अपना मसविदा भारतीय समाजके विरुद्ध तैयार किया था। फिर भी हमें आशा है कि वह अब भुला दिया गया होगा और अगर हमने इस गड़े मुर्देको फिरसे उखाड़ा है तो सिर्फ यह दिखानेके लिए कि वह एक अस्थायी भूल थी और उससे जो एशियाई भारतका नाम सब हरगिज जाहिर नहीं होता। हम चाहते हैं कि उनके महापौर-कालमें उन्हें और भी सफलता मिले और नगर खुशहाल हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १३–८–१९०४

१९७ हमारे पितामह

पिछली डाकसे *इंडिया*का जो अंक मिला है उसमें भारत-पितामह श्री दादाभाई नौरोजीकी[1] सतत क्रियाशीलताका पता चलता है। यदि कोई बात उनके करोड़ों स्वदेशवासियोंके लिए जरा भी फायदेकी हो तो वे उसमें नहीं चूकते। उन्होंने ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकि दर्जेके प्रश्नपर श्री लिटिलटनसे पत्र-व्यवहार किया था जो *इंडिया*में छपा है और जिसे हम अन्यत्र उद्धृत कर रहे हैं। यह उनकी क्रियाशीलताका केवल एक उदाहरण है। उनकी उम्रमें बहुतसे लोग सार्वजनिक जीवनसे छुट्टी लेने और विश्रामके अधिकारका उपभोग करनेके हकदार हो जाते हैं। परन्तु श्री नौरोजी बुढ़ापेमें भी देशके लिए काम करनेवाले बहुतेरे नौजवानोंसे बाजी मार सकते हैं। वे अपने स्वेच्छासे स्वीकृत देश-निकालेमें एक ही गुण जानते हैं और वह है उन कामोंको करनेका गुण जिन्हें वे अपने देशवासियोंके प्रति कर्तव्य समझते हैं। हम किसी अतिशयोक्तिके बिना कह सकते हैं कि केवल भारतमें ही नहीं बल्कि संसारके किसी भी भागमें जीवनकी निष्कलंक शुद्धता पूर्ण स्वार्थहीनता और पुरस्कार या प्रशंसाकी परवाह किये बिना अनवरत सार्वजनिक सेवाकी दृष्टिसे श्री नौरोजीके जोड़का दूसरा व्यक्ति मिलना कठिन होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २१–८–१९०४

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १९१।

१९८. ट्रान्सवालकी पैदल-पटरियाँ

विधान परिषदमें पिछले सप्ताह उपनिवेश-सचिव द्वारा नगर-निगम अध्यादेशमें प्रस्तावित संशोधनपर दिलचस्प बहस हुई। संशोधनमें नगरपालिकाओंको यह अधिकार दिया गया है कि

> उन वतनी लोगोंको जिनके पास १९०१ की रंगदार व्यक्तियोंको राहत देनेवाली घोषणाके मातहत मुक्तिपत्र न हों और उन रंगदार लोगोंको भी जिनका वेश सम्योचित और आचरण अच्छा न हो, सार्वजनिक मार्गकी पैदल-पटरियोंका इस्तेमाल करनेसे रोक दिया जायेगा।

इस संशोधनका विरोध श्री हिलने किया और, जैसी कि आशा की जा सकती थी समर्थन श्री लवडेने। माननीय सज्जनने कहा कि पुराने नियमोंको छेड़ा न जाये। अब पुराने नगर-नियमोंमें रंगदार लोगों द्वारा पैदल पटरियोंके इस्तेमालकी बिलकुल मनाही है। और उन्होंने कहा कि पुराने कानूनमें कुछ भी परिवर्तन करना सरकार द्वारा लोगोंके अधिकारों और विशेषाधिकारोंका अतिक्रमण करना होगा। महान्यायवादीने कहा कि पुराने कानूनके अनुसार तो यदि काफिर पटरीपर होकर दूकानमें घुस भी रहा हो तो वह इसपर भी गिरफ्तार किया जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि इस कानूनपर अमल नहीं किया जाता था और गणराज्य सरकारके दिनोंमें भी सभ्योचित कपड़े पहने हुए रंगदार लोगोंसे छेड़खानी नहीं की जाती थी। इसमें हम एक भारतीयकी मिसाल जोड़ सकते हैं जिसे धक्का देकर पटरीसे हटाया गया था और जिसने उस समयके ब्रिटिश एजेंटसे शिकायत की थी। ब्रिटिश एजेंटने भारतीयकी रक्षाका काम तुरन्त हाथमें लिया और राज्य-सचिव डॉ॰ लीड्सको एक कड़ा विरोध पत्र भेजा। उन्होंने उत्तरमें क्षमा-याचनाका पत्र भेजा और कहा कि पुलिसने भूल और अपनी फहमीसे ही पटरीपर चलनेवाले भारतीयसे छेड़खानी की है। उन्होंने ब्रिटिश एजेंटको विश्वास दिलाया कि आयन्दा ऐसी घटनाएँ नहीं होंगी। उस समय कानूनकी ऐसी शिथिलतापर भी लवडेने कोई आपत्ति प्रकट नहीं की थी। परन्तु अब जब सरकार उस शिथिलताको मान्यता देना चाहती है तब श्री लवडे और उनके मित्र कुपित हो रहे हैं। फिर भी अवश्य ही सभीको यह स्पष्ट हो जायेगा कि यद्यपि सरकारी संशोधनका उद्देश्य राहत दिलाना है तथापि यह स्थिति थूके अपमानसे कम नहीं है। क्योंकि पटरियोंके उपयोगके बारेमें भेदभाव बरतना ब्रिटिश परम्पराओंके बिलकुल विपरीत है। ऐसी बात इस बीसवीं सदीके जागृत युगमें यह भी ट्रान्सवालमें और इस सरकारके नाम पर ही सम्भव हो सकती है। और सभ्योचित पोशाक और अच्छे आचरण सम्बन्धी व्यवस्था इतनी लचीली है कि अगर पुलिसको खास हिदायतें न हों तो उसके अन्तर्गत बहुत बुराई हो सकती है। डॉ॰ टर्नर यद्यपि सरकारी सदस्य हैं, तथापि उन्होंने भी महसूस किया है कि यह सारी बात हास्यास्पद है और उन्होंने एक गोरेका अत्यन्त उपयुक्त और विनाशात्मक उदाहरण दिया जिसे उन्होंने प्रिटोरियाके सरकारी भवनके बाहर देखा था। वह अपनी जेबोंमें हाथ डाले और मुँहमें पाइप लगाये इधरसे उधर घूम रहा था और पूरे कूड़े बेरेमें सब तरफ थूक रहा था।" इसलिए यह सवाल रंगका नहीं सफाई और तन्दुरुस्तीके कायदोंका है। वाजिब बात यह होगी कि जो पटरियोंको खराब करें उन सबको सजा दी जाये और यही एक बुद्धि-सम्मत सुरक्षित और निर्दोष उपाय है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २–८–१९०४

१९९. भारत ही साम्राज्य है

हमारे सहयोगी *स्टार*में "भारत और साम्राज्य" पर एक अग्रलेख है। उसका आधार है लॉर्ड कर्जनका दिल्लीवालोंका भाषण और उसमें भारतके महत्वके सम्बन्धमें लॉर्ड कर्जनके विचारोंका समर्थन किया गया है। पत्रने उनके मुँहसे निकले हुए निम्न विचार उद्धृत किये हैं एवं उनसे अपनी सहमति प्रकट की है।

वे कहते हैं

> अगर आप अपने नेटालके उपनिवेशको किसी जबरदस्त दुश्मनके हमलेसे बचाना चाहते हैं तो आप भारतसे मदद माँगते हैं और वह मदद देता है; अगर आप पीकिंगके गोरे कूटनीतिज्ञ प्रतिनिधियोंको कत्लेआमसे बचाना चाहते हैं और जरूरत सख्त होती है तो आप भारत-सरकारसे सैनिक-दल भेजनेको कहते हैं और वह भेज देती है; अगर आप सोमालीलैंडके पागल मुल्लासे लड़ रहे हैं तो आपको जल्दी ही पता लग जाता है कि भारतीय सेना और भारतीय सेनापति उस कामके लिए सबसे ज्यादा योग्य हैं और आप उन्हें भेजनेके लिए भारत-सरकारसे अनुरोध करते हैं; अगर आप साम्राज्यकी अदन, मॉरिशस, सिंगापुर, हांगकांग, टीनसिन या शान-हाई-क्वान जैसी किसी सबसे बाहरी चौकी या बन्दरगाही कोयला-चौकीकी रक्षा करना चाहते हैं तो भी आप भारतीय सेनाकी ओर ही देखते हैं; अगर आप युगांडा या सुडानमें कोई रेलमार्ग बनाना चाहते हैं तो आप भारतसे ही मजदूरोंकी माँग करते हैं।

परन्तु हमारे सहयोगीको ट्रान्सवालमें बसे हुए भारतीयोंकी ओरसे उपनिवेशियोंको एक शब्द भी नहीं कहना है। उपनिवेशोंमें अंग्रेजोंके जो वंशज हैं उन्हें अपने ब्रिटिश जातीय होनेपर गर्व तो है और उनमें ब्रिटिश साम्राज्यसे प्राप्त विशेष अधिकारोंको भोगनेकी लालसा भी है परन्तु खास तौरपर जहाँतक ब्रिटिश भारतीयोंका सम्बन्ध है, वे उस जिम्मेदारीसे बचना चाहते हैं, जो साम्राज्यकी सदस्यतासे उनपर आ जाती है। वे भारतके साथ ब्रिटिश सम्बन्धसे मिलनेवाले गौरवको अपनाने और भारतीय सैनिकोंकी बहादुरीकी तारीफ़ पूरेसे करनेके लिए तो तैयार हैं परन्तु जब उन्हीं सैनिकोंके भाई-बन्दोंके साथ अच्छे बरतावका मामला आता है तब वे अपनको अलग रखना चाहते हैं। इसलिए यह बड़ी दयनीय बात है कि हमारे सहयोगीने लॉर्ड कर्जनके भाषण पर विचार करते समय अपने बहुसंख्यक पाठकोंके सामने मकानकि बदले भलाई का बहुत ही प्रारम्भिक और सरल कर्तव्य स्वीकार करनेका सिद्धान्त नहीं रखा। और इस तरह उसे जो अव सर मिला था उसने उसका उपयोग नहीं किया। जैसा सर मंचरजीने कहा है यह नहीं हो सकता कि उपनिवेशी लोग अनिश्चित कालतक दुस्तानीमें ३ करोड़ भारतीयोंको अपमानित करते रहें और उनकी भावनाओंको कटु बनाते रहें। धीरे-धीरे, किन्तु निश्चित रूपसे उपनिवेशियोंकी बहिष्कार-नीति भारतीय लोगोंके मानसपर गहरा असर कर रही है। और जब यह पता चल जायेगा कि भारतीयोंके लिए ब्रिटिश-नागरिकता या ब्रिटिश सम्बन्धके विशिष्ट अधिकारका

१ मुम्बई २ १९ ४-१ दिये गए भाषणमें।

भारतसे बाहर कोई वर्ग नहीं है और चाहे उनकी प्रतिष्ठा अथवा योग्यता कुछ भी हो उपनिवेशोंमें व अवांछनीय हैं तब भारत-सरकारका काम अधिकाधिक कठिन हुए बगैर नहीं रह सकेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २०–८–१९१४

२०० गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याएँ

हमने गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याओंकी ऊँची दरके बारेमें कुछ बातें लिखी थीं। उनके सम्बन्धमें अभी कुछ समयसे कुछ संवाददाता *नेटाल मर्क्युरीमें* पत्र लिख रहे हैं। इन पत्र लेखकोंने गुमनाम रहना पसन्द किया है और यद्यपि हम प्रायः इस अखबारमें छपी बातोंके बारेमें दूसरे अखबारोंमें — खास तौरपर *नेटाल विटनेस* में — प्रकाशित पत्रोंकी ओर ध्यान नहीं देते फिर भी हमारी इच्छा होती है कि सचाईके स्पष्टीकरणके लिए कुछ बातें लिखें। इनमेंसे एक पत्र लेखकने अपनेको एक गोरा बताते हुए एक पत्र लिखा है, जिसकी कोई तुक नहीं है। वह इस पत्रके सम्पादकीय विभाग और प्रबन्ध-विभागके कर्मचारियोंकी चर्चा करता है और अपने मनमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके भेदभावोंकी कल्पना करता है और अपनी यह राय देता है कि यह पत्र भारतीय समाजका प्रतिनिधित्व नहीं करता। हम इनमेंसे किसी भी आरोपका जवाब देना नहीं चाहते। यह पत्र किसीका प्रतिनिधित्व करता है या नहीं इससे उन बातोंकी सचाईमें कोई फर्क नहीं पड़ता जो हमने आत्महत्याओंके बारेमें लिखी हैं। लेकिन इस बीचमें हम "एक गोरे" का ध्यान उस विज्ञापनकी[1] तरफ खींचना चाहते हैं जो इस पत्रके सम्बन्धमें शुरू-शुरूके अंकोंमें निकला था। उसपर समाजके तमाम प्रभावशाली नेताओंके हस्ताक्षर थे और अगर पत्र लेखक सूचीको देख जानेका कष्ट करेगा तो उसे अपने अधिकांश आरोपोंका उत्तर मिल जायेगा। इससे वह उस पत्रके उद्देश्योंका भी अध्ययन कर सकेगा। लेकिन जब वह लेखक यह कहता है कि भारतीयोंकी आत्महत्याओंके विषयमें भारतीय संरक्षककी रिपोर्टपर चर्चा करनेका हमारा उद्देश्य गोरोंको बदनाम करना है तब हम ऐसे किसी भी लांछनके विरुद्ध आपत्ति प्रकट करना उचित समझते हैं। हम अपने इस विषयके[2] पहले अग्रलेखसे निम्नलिखित अंश देते हैं और इस बारेमें निर्णय "एक गोरे" और उसीकी तरह सोचनेवाले दूसरे लोगोंपर छोड़ देते हैं

> हम इन भयंकर आँकड़ोंसे मालिकोंके विषयमें कोई परिणाम निकालना नहीं चाहते। परन्तु हम भारतीयों और मालिकोंके हितमें पूरी तरह जाँच करनेके लिए जोर अवश्य देते हैं और हमारे विचारमें आरम्भकी जाँचके लिए एक निष्पक्ष आयोगसे कम कोई चीज न्यायके उद्देश्यको पूरा नहीं कर सकेगी।

हमने खेत-मालिकोंपर किसी भी प्रकारसे कोई लांछन नहीं लगाया है। हमें तो सब सम्बन्धित लोगोंके हितमें सिर्फ जाँचकी ही जरूरत है। जो आँकड़े हमने पेश किये हैं वे भयंकर हैं। इससे कोई इनकार नहीं करेगा। परन्तु आंग्ल-भारतीय न इनपर शंका की है।

१. देखिए *इंडियन ओपिनियन* ११-९-१९१३। यह विज्ञापन गुजराती, हिन्दी और तमिलमें प्रकाशित हुआ था और उसपर उन भारतोंको नीतिवाले प्रतिनिधि भारतीयोंके हस्ताक्षर थे। देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ५७० के सामने दिया गया चित्र।

२. देखिए, "गिरमिटिया भारतीय" ४-९-१९१४।

इसलिए हम तो उसका ध्यान केवल उपनिवेश-मन्त्री श्री लिटिल्टनके उस वक्तव्यकी ओर आकृष्ट कर सकते हैं जो उन्होंने इसके समर्थनमें दिया है। उन्होंने कहा है कि गैर-गिरमिटिया भारतीयोंमें आत्महत्याओंकी संख्या १० लाखमें १५७ है और गिरमिटिया भारतीयोंमें ७६६। इसलिए यदि हमने भूल की है तो उसमें हमारे साथी अच्छे-अच्छे लोग हैं और आंग्लभारतीय तथा एक गोरे के कथनोंके बावजूद हम अपने कथनपर कायम हैं और यह आग्रह करते हैं कि इस बारेमें जाँच करायी जानी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २-८-१९०४

२०१. श्री लिटिल्टनका खरीता

ट्रान्सवाल विधान-परिषदमें भारतीय व्यापारियोंके प्रश्नपर चर्चा और श्री लिटिल्टनके खरीतेका प्रकाशन — इस अति दुःखदायी विवादके इतिहासमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मंजिलके सूचक हैं। एक तरफ ब्रिटिश सरकार देखती है कि उसने ब्रिटिश भारतीयोंके जिन अधिकारोंकी रक्षा बोअर-राज्यमें इतनी जागरूकताके साथ की थी उन्हें वह अपने राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षा करते हुए छोड़ नहीं सकती। दूसरी तरफ स्थानीय सरकार और उपनिवेशी लोग भारतीयोंको जड़से उखाड़ फेंकनेपर तुले दिखाई देते हैं। सर जॉर्ज फेरारने अनेक बार जोरदार शब्दोंमें कहा है कि जब-कभी उत्तरदायी शासन आयेगा तब शायद उसका पहला काम होगा — भारतीय व्यापारियोंको मुआवजा देकर भिन्न देना। हम सब जानते हैं कि मुआवजा देनेका मतलब क्या होता है। तो इस तरह साम्राज्यके हितों और स्थानीय गोरोंके विरोधमें सीधी टक्कर है — हम इस विरोधको स्थानीय हितोंका नाम देकर गौरवान्वित नहीं करेंगे क्योंकि हमारा खयाल है कि भारतीयोंकी मौजूदगीसे गोरे समाजको किसी भी तरहका खतरा नहीं है। हमने इन स्तम्भोंमें अनेक बार कहा है कि भारतीयोंने केप और नेटाल दोनोंमें कहींसे भी जहाँ उनको ट्रान्सवालकी अपेक्षा कुछ अधिक अधिकार प्राप्त हैं, गोरे व्यापारियोंको खदेड़ा तो नहीं है। प्रत्युत वे गोरोंके साथ-साथ ईमानदारीसे अपनी रोजी कमा रहे हैं। निरर्थक द्वेष करनेवाले लोग इस बातपर विचार ही नहीं करते कि कई बातोंमें यूरोपीयोंको अपरिमित रूपसे अच्छी सुविधाएँ मिली हुई हैं और भारतीयोंमें संगठन-शक्तिका अभाव है। इन दो बातोंसे भारतीयोंकी जो हानि होती है वह उनके तथाकथित सस्ते रहन-सहनके लाभसे बहुत भारी बैठती है। परन्तु सच बात तो यह है कि कभी किसीने भी भारतीयोंकी तरफसे व्यवसायके असीमित अधिकार नहीं माँगे हैं। जरूरत सिर्फ इतनी ही है कि निहित स्वार्थोंकी पूर्ण रूपसे रक्षा की जाये और भारतीयोंको भावी व्यापारमें उचित हिस्सा दिया जाये। जब सर जॉर्ज फेरार और श्री बोर्क जैसे लोग जोर-जोरसे यह भाषण देते हैं कि भारतीयोंको व्यापार करते रहने देनेकी अवस्थामें उपनिवेशका सत्यानाश हो जायेगा तब हमें यह दृश्य ऐसा अपमानजनक दिखाई देता है जो हमें कहना चाहिए, ब्रिटिश परम्पराओंपर चलनेका दावा करनेवाले लोगोंके अयोग्य है — खास तौरसे तब जब उन्हें जरूर मालूम है कि उनके मुकाबलेमें भारतवासियोंकी संख्या नगण्य है, और उनमें से कोई-एक अकेला ही उपनिवेशके सारे भारतीयोंके व्यवसायको तीन-तीन बार खरीद सकता है। अगर इतनी बात विधानपरिषदके गैर-सरकारी सदस्योंके बारेमें न्यायपूर्वक कही जा सकती है तो हम सरकारी रवैयेके बारेमें क्या सोचें? हम उन लॉर्ड मिलनरके बारेमें क्या खयाल करें जो आज श्री लिटिल्टनसे कहते हैं कि भारतीयोंका लगभग सब कुछ छीन लिया जाये और जो लड़ाईसे पहले भारतीयोंके हितोंका समर्थन इतने जोरके

साथ करते थे और ब्रिटिश प्रजाजनोंके एक वर्गके अधिकार प्राप्त करनेके लिए दूसरे वर्गके अधिकार बेच देनेके लिए तैयार नहीं थे? लॉर्ड मिलनरको अपने कट्टर साम्राज्य-प्रेमी होनेपर गर्व है किन्तु क्या परमश्रेष्ठका साम्राज्य-प्रेम केवल दक्षिण आफ्रिका तक ही सीमित है? श्री लिटिलटनका खरीता पढ़ कर प्रसन्नता भी हुई और परेशानी भी। स्थानीय सरकार १९०२ के शुरूमें जो-कुछ देनेके लिए तैयार थी उससे अब पीछे हट गई है। पिछले सालकी बदनाम बाजार-सूचना ३५६ को उचित बताते हुए लॉर्ड मिलनरने जो कुछ करनेका वचन दिया था वह भी अब वापस ले लिया गया है। परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नर एक निष्पक्ष ढंग अपनानेके बजाय अब एशियाई-विरोधी नीतिके व्याख्याता बन बैठे हैं। यह सब दुःखद है। इसलिए श्री लिटिलटन भारतीयोंके पक्ष साम्राज्य-नीति और ब्रिटिश राजनयिकों और मन्त्रियोंके दिये हुए वचनोंका समर्थन जोरोंसे करते हैं। वे निश्चित रूपसे बताते हैं कि इस प्रश्नका एकमात्र हल ब्रिटिश भारतीयोंको वाजिब अधिकार देना ही है। परन्तु जब हम उनके अन्तिम प्रस्तावोंको देखते हैं तब हमें उनका खरीता पढ़ कर फिर दुःख होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन प्रस्तावोंसे उन्हें सिर्फ मौजूदा व्यापारिक परवानोंकी रक्षा ही अभीष्ट है और अनिवार्य पृथक्करणके सिद्धान्त और रंगके आधारपर कानून बनानेके बड़े उसूल उनसे अछूते रह जाते हैं। परन्तु यह सब बादकी बात है, क्योंकि उपनिवेश मन्त्रीको जो छोटी-सी चीज अभीष्ट है ट्रान्सवाल सरकार वह भी देनेको तैयार नहीं है। हमें कोई शक नहीं है कि विधान-परिषदका प्रस्ताव तार द्वारा ब्रिटिश सरकारको भेज दिया गया है और वह जो रुख इख्तियार करेगी उसपर बहुत कुछ निर्भर होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २७-८-१९०४

२०२ प्रार्थनापत्र : उपनिवेश-सचिवको

[सितम्बर ३, १९०४ पूर्व][1]

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय

परमश्रेष्ठ लेफ्टिनेंट गवर्नरने परमश्रेष्ठ गवर्नरको ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंके दर्जेके बारेमें इस मास ११ अप्रैलको जो खरीता भेजा है उसमें कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे मेरे संघको और दुःख हुआ है। इसलिए मुझे गवर्नर महोदयकी सेवामें नम्रतापूर्वक निम्न प्रार्थनापत्र पेश करने और यह निवेदन करनेका आदेश मिला है कि वह महामहिम सम्राट्के मुख्य उपनिवेश-मन्त्रीको भेज दिया जाये।

खरीतेमें सिफारिश की गई है कि उसमें ब्रिटिश भारतीयोंसे सम्बन्धित मौजूदा कानूनमें जो परिवर्तन सुझाये गये हैं वे तुरन्त स्वीकार कर लिये जायें। ये सुझाव दो घटनाओंके आधार पर दिये गये हैं। पहली घटना हबीब मोटन और सरकारके बीचका परीक्षात्मक मुकदमा है जिसकी वजहसे परमश्रेष्ठके शब्दोंमें आरमरजाकी समस्या है। और दूसरी वह प्रमुखता है जो इस प्रश्नको मिस्टीका जैप श्रीलनेसे प्राप्त हुई है।

[1] जिस तारीखको प्रार्थनापत्र दिया गया वह उपलब्ध नहीं है।

दूसरी घटनाको पहले मैं तो मेरा संघ निवेदन करना चाहता है कि यह बात अत्यन्त निश्चित रूपसे सिद्ध की जा चुकी है कि बस्तीके निवासी भारतीय प्लेगके आरम्भके लिए किसी भी तरह जिम्मेवार नहीं थे। मेरा संघ वस्तुतः इस मामलेमें जबान बन्द रखता, परन्तु वह उन वक्तव्योंके लिए जिम्मेवार है जो इस मामलेमें सर मंचरजी भावनगरीको भेजे गये हैं और चूँकि परमश्रेष्ठने उनकी जानकारीका खण्डन किया है इसलिए मेरे लिए अपने संघके प्रति न्याय करनेकी दृष्टिसे एक संक्षिप्त स्पष्टीकरण देना जरूरी हो गया है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि सरकारी तौरपर पिछली १८ मार्च प्लेग शुरू होनेकी तारीख घोषित की गई है। पिछले साल २१ सितम्बरको जोहानिसबर्ग नगर-परिषदने यह बस्ती अधिकृत कर ली थी। उस तारीखसे पहले बस्तीमें प्रत्येक बाड़ेका मालिक उसकी उचित सफाईके लिए जिम्मेवार था। इसलिए मालिकोंने बाड़ोंको साफ-सुथरी हालतमें रखनेके लिए नौकर रखे थे और ऐसा मालूम हुआ है कि उस तारीखतक बस्तीमें कोई संक्रामक रोग पैदा नहीं हुआ था और भारतीय समाज छूतकी या जहरीली बीमारियोंसे खास तौरसे मुक्त था। २१ सितम्बर १९०३ से सफाईका नियन्त्रण नगर-परिषदके हाथोंमें चला गया। मालिकोंको कुछ कहनेका अधिकार न तो इस बारेमें रह गया था कि बाड़ोंकी व्यवस्था किस तरह रखी जाये और न इस बारेमें कि किरायेदार कौन रखे जायें। हर बाड़ेकी सफाईके लिए एक या अधिक आदमी रखनेके बजाय नगरपालिकाने सारे इलाकेकी देखभालके लिए चन्द आदमी नौकर रख लिये। नतीजा यह हुआ कि वे इस कामको बिलकुल नहीं सँभाल सके। आबादी भी बहुत बढ़ गई, क्योंकि नगर-परिषदने बस्तीकी गुंजाइशकी परवाह न करके किरायेदार रख लिये। इस असन्तोषजनक स्थितिके बारेमें बहुत बार शिकायतें की गईं, मगर किया कुछ नहीं गया। डॉक्टर पोर्टरको आवश्यक चेतावनी देते हुए यह पत्र लिखा गया

२१ से २४ कोर्ट चेम्बर्स
फरवरी १५, १९०४

सेवामें
डॉ॰ सी॰ पोर्टर
स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी
जोहानिसबर्ग

प्रिय डॉ॰ पोर्टर,

आप पिछले शनिवारको भारतीय बस्ती देखने गये और उसकी ठीक-ठीक सफाईके कायम रखनेमें दिलचस्पी ले रहे हैं इसके लिए मैं आपका बहुत ही आभारी हूँ। मैं वहाँकी स्थितिके बारेमें जितना अधिक विचार करता हूँ यह मुझे उतनी ही बुरी मालूम होती है। और मेरा खयाल है कि यदि नगर-परिषद असमर्थताका रवैया अपना लेती है तो वह अपने कर्तव्यसे च्युत होती है और मैं यह भी जरूर आदरपूर्वक कहता हूँ कि लोक-स्वास्थ्य समितिका यह कहना किसी भी तरह उचित नहीं हो सकता कि वहाँ न तो भीड़-भड़क्का रोका जा सकता है और न गन्दगी। मुझे विश्वास है कि इस मामलेमें बरबाद किया गया एक-एक पल विपत्तिको जोहानिसबर्गके नजदीक लाता है, और उसमें शिक्षित भारतीयोंका कोई भी दोष नहीं है। जोहानिसबर्गके सब स्थानोंमें से भारतीय बस्ती ही शहरके सारे काफिरोंको भरनेके लिए क्यों चुनी जाये यह मेरी समझमें ही नहीं आता। जहाँ लोक-स्वास्थ्य समितिकी सफाई-सम्बन्धी सुधारकी बड़ी-बड़ी योजनाएँ

बेशक बहुत प्रशंसनीय और कदाचित् आवश्यक भी है, वहाँ मेरी नम्र रायमें भारतीय बस्तीकी गन्दगी और अत्यधिक भीड़-भाड़से मौजूदा खतरेका सामना करनेके स्पष्ट कर्तव्यकी भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। मैं महसूस करता हूँ कि इस समय कुछ सौ पौंड खर्च कर देनेसे शायद हजारों पौंडकी बचत होगी, क्योंकि यदि दुर्भाग्यवश बस्तीमें कोई छूतकी बीमारी फैल गई तो लोगोंमें घबराहट पैदा हो जायगी और इस समय जो बुराई बिलकुल रोकी जा सकती है उसके इलाजके लिए तब तो रुपया पानीकी तरह बहाया जायगा।

मुझे आश्चर्य नहीं है कि आपके अमलेको बहुत काम करना पड़ता है, इसलिए वह बस्तीकी सफाईका पूरा काम करनेमें असमर्थ है, क्योंकि आपको जो चीज चाहिए और जो मिल नहीं सकती वह है हरएक मकानके लिए एक सफैया। जो काम सब पर छोड़ दिया जाता है वह किसीका भी नहीं होता। आप बस्तीके प्रत्येक निवासीसे सफाईकी देखभाल करनेकी आशा नहीं रख सकते। बस्तीसे पहले हरएक बाड़ेका मालिक अपने बाड़ेकी ठीक सफाईके लिए जिम्मेदार माना जाता था और यह बहुत स्वाभाविक भी था। मैं स्वयं जानता हूँ कि इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक बाड़ेके साथ एक सफैया लगा रहता था और जो उसकी बराबर देखभाल रखता था; और मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि बाड़ोंकी जो हालत इस समय है उसके मुकाबिलेमें वे अच्छी और आदर्श अवस्थामें रखे जाते थे।

आप मुझसे उपाय सुझानेके लिए कहते हैं। मैंने तो इस मामलेको टाला था और अगर नगर-परिषद कोई उचित ढंग अपना ले तो मुझे सन्देह नहीं कि स्थितिमें तुरन्त सुधार हो सकता है। और उसके लिए नगर-परिषदको कुछ खर्च भी न करना पड़े और शायद कुछ पौंडकी बचत भी हो जाये। बाड़ोंके मालिकोंको थोड़े अरसेके लिए — छः महीने या तीन महीनेके लिए — पट्टे दे दिये जायें। पट्टोंमें ठीक-ठीक लिख दिया जाये कि हर बाड़ेमें या हर कमरेमें कितने आदमी रखे जायेंगे। पट्टेदार बोली बोलनेवालों द्वारा बोली गई कीमतका भाग लीजिए, ८ बीसरी बुकामें और जिस बाड़ेका उन्हें पट्टा दिया गया हो उसकी सफाईके लिए उन्हें सख्तीके साथ जिम्मेदार बनाया जाये।

तब सफाईके नियमोंपर कठोरतासे अमल कराया जा सकता है; एक या दो निरीक्षक बाड़ोंको रोज देख सकते हैं और नियम भंग करनेवाले लोगोंके साथ सख्तीसे पेश आ सकते हैं।

यदि यह विनम्र सुझाव मान लिया जाये तो आपको दो-तीन दिनमें बहुत सुधार दिखाई देगा और आप थोड़ी-सी कलम चलाकर गन्दगी और भीड़-भाड़का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। नगर-परिषद भी व्यक्तियोंसे किराया वसूल करनेकी झंझटसे बच जायगी।

अवश्य ही मेरे सुझावके अनुसार नगर-परिषदको बस्तीसे काफिरोंको हटा देना होगा। मैं स्वीकार करता हूँ कि भारतीयोंके साथ काफिरोंको मिला देनेके बारेमें मेरी भावना बहुत ही प्रबल है। मेरे खयालसे यह भारतीय लोगोंके साथ बड़ा अन्याय है और मेरे देशवासियोंके सुप्रसिद्ध धीरजको भी बेजा तौरपर तानवाला है।

यद्यपि आपके पत्रमें शामिल किये गये दूसरे बाड़ोंमें मैं स्वयं नहीं गया हूँ फिर भी मुझे बड़ा अन्देशा है कि वहाँ भी वही हालत होगी, और मैंने ऊपर जो सुझाव दिया है वह दूसरे बाड़ोंपर भी लागू होगा।

मुझे भरोसा है कि आप इस पत्रको उसी भावनासे अंगीकार करेंगे जिस भावनासे यह लिखा गया है; और मुझे आशा है कि मैंने अवसरकी विकटताको देखते हुए आवश्यकतासे अधिक जोरदार भाषाका उपयोग नहीं किया है। कहनेकी जरूरत नहीं कि इस दिशामें मेरी सेवाएँ पूरी तरहसे आपके और लोक–स्वास्थ्य समितिके सुपुर्द हैं। और मुझे कोई शक नहीं कि सफाईके मामलेमें भारतीय समाज जो-कुछ कर सकता है यह कर दिखानेका अगर नगर-परिषद उसे उचित मौका भर दे दे तो, मेरे मतसे बहुत भूल न होगी।

आप इस पत्रका जैसा चाहें उपयोग कर सकते हैं।

अन्तमें मैं आशा करता हूँ कि समाजके सामने जो खतरा है उसका कोई उपाय तुरन्त खोज निकाला जायेगा।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

डॉ० पोर्टरने जवाबमें यह पत्र लोक-स्वास्थ्य समितिको भेज दिया किन्तु उसने कोई कार्रवाई नहीं की। अकस्मात् असाधारण वर्षा हो गई और उससे वहाँ प्लेग फैल गया जिससे लोग इतने डर रहे थे।

इस प्रकार मेरे संघकी नम्र रायमें बस्तीमें रहनेवाले भारतीयोंने कोई कसर बाकी नहीं रखी थी। यह उनकी विशुद्ध लाचारी ही थी। दूसरी ऐसी कोई जगह नहीं थी जहाँ वे जाते। बस्ती छोड़कर नगरपर बाधा बोलना असम्भव था। तत्काल कार्रवाईकी प्रार्थना करनेपर भी अधिकृत बस्तीके बदलेमें उनके बसनेके लिए कोई स्थान मुकर्रर नहीं किया गया। बस्तीकी हालतके बारेमें डॉ० पोर्टरकी राय जिसपर मेरे संघने आपत्ति की है, १९०२ में दी गई थी और फिर भी अधिग्रहणके समयतक (अर्थात् लगभग एक वर्षतक) बस्तीको उसी अवस्थामें रहने दिया गया और कोई छूतकी बीमारी न फैली।

इस प्रकार यहाँ डॉ० जॉन्स्टन और स्वर्गीय डॉ० मैरेसने जो गवाही दी थी उसकी सचाईका प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद है। असल बात यह है कि डॉ० पोर्टरने इस बस्तीकी जो हालत बयान की है वह तभी हुई जब नगर-परिषदने उसको अपनी सम्पत्ति बना लिया और भारतीय उसकी देखभाल करनेमें असमर्थ हो गये।

इतना ही नहीं कहते हैं कि ट्रान्सवालके स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारीने प्लेग फैल जानेके सिलसिलेमें निम्नलिखित बातें कही हैं और इस प्रकार बस्तीके भारतीयोंको जिम्मेदारीसे मुक्त कर दिया है

> जोहानिसबर्गकी कुली बस्ती शर्मनाक हालतमें है और क्यों? इसलिए कि वे गरीब लोग दरबेमें मुर्गीके बच्चोंकी तरह वहाँ रहनेके लिए मजबूर हैं और अधिकारियोंने उसे बहुत ही गन्दी हालतमें रख छोड़ा है। अगर श्री रेड (विधान-परिषदके सदस्य) उसमें रहनेको विवश होते तो वे भी उतने ही गन्दे होते।

यह भी ध्यान देने लायक बात है कि ट्रान्सवालमें भारतीय इस बस्तीसे बाहर, अर्थात् जहाँ उनका अपने निवास-स्थानोंपर नियन्त्रण है दूसरी जातियोंसे ज्यादा इस बीमारीके शिकार नहीं

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४१२-१६।

हुए हैं। उदाहरणके लिए, प्रिटोरिया और पॉचेफस्ट्रूममें जहाँ भारतीयोंकी अलग बस्तियाँ हैं, भारतीय प्रायः नगण्य संख्यामें प्लेगसे बीमार हुए हैं।

प्रार्थनापत्रके इस भागको समाप्त करनेसे पहले मेरा संघ परमश्रेष्ठका ध्यान दो पुराने डॉक्टरों डॉ॰ वील और डॉ॰ स्पिंक्सकी नीचे लिखी रायकी तरफ खींचना चाहता है :

> मैं इस पत्रके द्वारा प्रमाणित करता हूँ कि मैं गत पाँच वर्षोंसे प्रिटोरिया नगरमें साधारण चिकित्सकका धंधा कर रहा हूँ।
>
> इस अवधिमें और खास तौरसे तीन वर्ष पहले, जब भारतीयोंकी संख्या सबसे ज्यादा थी उनके बीच मेरा धंधा खासा अच्छा रहा है।
>
> मैंने उनके शरीरोंको आम तौरसे स्वच्छ और उन लोगोंको गन्दगी तथा लापरवाहीसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंसे मुक्त पाया है। उनके मकान साधारणतः साफ रहते हैं और सफाईका काम वे राजी-खुशीसे करते हैं। वर्गकी दृष्टिसे विचार किया जाये तो मेरा यह मत है कि निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी तुलनामें बहुत अच्छे उतरते हैं। अर्थात् निम्नतम वर्गके भारतीय निम्नतम वर्गके यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छे ढंगसे ज्यादा अच्छे मकानोंमें और सफाईकी व्यवस्थाका ज्यादा खयाल करके रहते हैं।
>
> मैंने यह भी देखा है कि जिस समय शहर और जिलेमें चेचकका प्रकोप था — और जिलेमें अब भी है — तब प्रत्येक राष्ट्रके एक या अधिक रोगी तो कभी-न-कभी संक्रामक रोगोंके चिकित्सालयमें रहे, परन्तु भारतीय कभी एक भी नहीं रहा।
>
> मेरे खयालसे आम तौरपर भारतीयोंके विरुद्ध सफाईके आधारपर आपत्ति करना असम्भव है। शर्त हमेशा यह है कि, सफाई-अधिकारियोंका निरीक्षण भारतीयोंके यहाँ उतना ही सख्त और नियमित हो जितना कि यूरोपीयोंके यहाँ होता है।
>
> एच॰ प्रायरवील, बी॰ ए॰ एम॰ बी॰ बी॰ सी॰ (कैंटब)
>
> मैं प्रमाणित करता हूँ कि मैंने कुल-बाइटोंके मकानोंका निरीक्षण किया है। वे स्वच्छ तथा आरोग्यजनक हालतमें हैं। वास्तवमें तो वे ऐसे हैं कि उनमें कोई भी यूरोपीय रह सकता है। मैं भारतमें रहा हूँ। मैं प्रमाणित कर सकता हूँ कि वर्णित भारतीयोंकी रहनसहन उनके मकान उनके भारतके मकानोंसे कहीं बेहतर हैं।
>
> सी॰ पी॰ स्पिंक्स, एम॰ आर॰ सी॰ एस॰ और एल॰ आर॰ सी॰ पी॰ (लंदन)।

परमश्रेष्ठने पहले मुद्देके बारेमें विचार करते हुए जोहानिसबर्ग, पीटर्सबर्ग और क्लार्क्सडॉर्प तीन उदाहरण लिये हैं। जोहानिसबर्गमें ब्रिटिश भारतीयोंके मुकाबिलेमें टिका रह सका है, यह बात भेर नम्रतापूर्वक सम्मतिमें यह जाहिर करती है कि भारतीय व्यवसायमें यूरोपीयोंसे स्पर्धा करनेमें असमर्थ हैं। हाँ फुटकर व्यापारमें वह ही कर सकता है। इसमें भी वह यूरोपीयोंको भगानेमें सफल नहीं हुआ है क्योंकि सभीको यह मालूम है कि जोहानिसबर्गमें फुटकर व्यापार अधिकतर यूरोपसे आये हुए विदेशियोंके हाथोंमें है। परमश्रेष्ठको प्रति अत्यन्त आदरपूर्वक कहना होगा कि पीटर्सबर्गमें भी थोक और फुटकर दोनों ही व्यापार ज्यादातर यूरोपीयोंके हाथोंमें हैं। यूरोपीय बोर्डिंगहाउस जिनके लिए परमश्रेष्ठने कहा है कि वे पीटर्सबर्गमें केवल बार व्यवसाय ही करते हैं, मेरी नम्र जानकारीके अनुसार, फुटकर व्यवसाय भी कर रहे हैं जब कि वहाँके भारतीयोंका व्यापार फुटकर व्यापारात्मक ही सीमित है।

मेरा संघ सादर निवेदन करता है कि नेटालकी स्थितिसे तुलना करना ब्रिटिश भारतीय समाजके प्रति बड़ा अन्याय है क्योंकि नेटाल और ट्रान्सवालमें कोई समता नहीं है। नेटाल १ सालसे अधिक समयसे भारतीय मजदूर बुला रहा है और वहाँकी अधिकांश भारतीय आबादी गिरमिटिया है। इस उपनिवेशमें जिन स्वतन्त्र भारतीयोंने प्रवेश किया है उनकी संख्या दस हजारसे कम है। परन्तु यहाँ भी मेरा संघ निवेदन करता है कि फुटकर व्यापार सर्वथा भारतीयोंके हाथोंमें नहीं आया है। तमाम महत्त्वपूर्ण नगरोंमें यह अब भी यूरोपीयोंके नियन्त्रणमें है।

भारतीय नेटालके लिए कितने मूल्यवान हैं इसकी गवाही पिछले साल सर जेम्स हलेटने इन शब्दोंमें दी थी

> अरब लोग सीमित संख्यामें हैं और प्रायः सभी व्यापारी हैं। साधारण छोटा व्यापारी अरबके साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता। उपनिवेशका काफिरोंके साथ फुटकर व्यापार प्रायः सारा-का-सारा अरबोंके हाथमें है। देहाती क्षेत्रोंमें मुझे इसपर आपत्ति नहीं है, क्योंकि मैं सोचता हूँ कि साधारण गोरे युवक या युवती देहाती काफिर बस्तियोंमें वस्तु-भण्डारोंकी देख-रेखके बजाय कोई और अच्छा काम कर सकते हैं। साधारण गोरे आदमीकी आवश्यकताओंकी अपेक्षा अरब लोगोंकी आवश्यकताएँ कम हैं। वे कम मुनाफेपर माल बेचते हैं और एक खास हदतक वतनियोंके साथ यूरोपीयोंकी अपेक्षा अधिक अच्छा व्यवहार करते हैं। देहाती वस्तु-भण्डारोंमें यूरोपीय बहुत अधिक मुनाफा चाहते हैं। मोटे तौरपर देखनेपर यह खयाल बनता है कि अरब व्यापारियोंका व्यापार देहाती क्षेत्रोंके अलावा नगरोंमें भी दिनों-दिन बढ़ रहा है। उन्हें किसी हदतक गोरे निवासियोंका समर्थन मिलता है। गोरे निवासी अरबोंकी शिकायत तो करते हैं और यह कुछ-कुछ वाजिब भी है, किन्तु फिर भी वे उन्हें मदद देते हैं क्योंकि उन्हें किसी अन्य स्थानकी अपेक्षा अरबोंसे सस्ता माल मिल जाता है। परन्तु इन सब बातोंका यह अर्थ नहीं है कि गोरे लोग व्यापारसे बिलकुल निकाल दिये गये हैं। (यह बात वक्ताने जोर देकर कही)।

यहाँके अधिकांश सार्वजनिक कार्यकर्ताओंका विश्वास है कि नेटालकी समृद्धि भारतीयोंकी उपस्थितिके कारण है। कुछ वर्ष पहले विशेष आयुक्तोंने सारे प्रश्नकी खास तौरपर ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके सम्बन्धमें जिनके विरुद्ध परमश्रेष्ठने बहुत-सी दलीलें पेश करनेकी कृपा की है जाँच करके कहा था

> सूक्ष्म निरीक्षणके आधारपर हमें अपनी यह पक्की राय दर्ज करते हुए सन्तोष होता है कि इन व्यापारियोंकी मौजूदगीसे सारे उपनिवेशको लाभ पहुँचा है और उनकी *शक्ति घटानेके लिए कानून बनाना बे-इन्साफी नहीं तो नासमझी जरूर होगी।*
>
> वे लगभग सभी मुसलमान हैं जो शराबसे या तो बिलकुल परहेज करनेवाले हैं या संयमके साथ पीते हैं। स्वभावसे वे मितव्ययी और कानून-पालक हैं।

जिन ७२ यूरोपीय गवाहोंने आयोगके सामने अपनी गवाहियाँ दी उनमें से लगभग प्रत्येकने जहाँ भारतीयोंकी उपस्थितिसे उपनिवेशपर होनेवाले असरका जिक्र आया है, यह कहा है कि वे उपनिवेशकी भलाईके खयालसे अनिवार्य हैं।

परन्तु शायद सबसे ज्यादा चकित करनेवाला उदाहरण जिससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय गोरोंके प्रभुत्वके लिए वैसे खतरनाक नहीं हैं जैसे आम तौरपर समझे जाते हैं, केप उप

निवेशमें मिलता है। उस उपनिवेशमें भारतीय मजदूर कभी नहीं लाये गये परन्तु पिछले सालतक जो भी भारतीय वहाँ जाना चाहता था जा सकता था। वहाँ भारतीयोंको जमीनका मालिक बननेका अधिकार है, वे बिना किसी रोक-टोकके व्यापारिक परवाने ले सकते हैं और सम्राट्के दूसरे प्रजाजनोंको प्राप्त लगभग सभी अधिकारोंका उपभोग कर रहे हैं। फिर भी उनकी उपस्थिति यूरोपीय समाजपर किसी भी प्रकारका विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा है। हाँ उनकी मौजूदगीसे स्वस्थ स्पर्धाको प्रोत्साहन मिला है। ट्रान्सवालकी अपेक्षा केपमें कहीं अधिक भारतीय हैं परन्तु जमीनके स्वामित्वपर उनका कोई बाधक असर नहीं पड़ा है।

इसलिए मेरा संघ निवेदन करना चाहता है कि यहाँतक भूतकालीन स्थितिसे इस प्रश्न पर प्रकाश पड़ता है परमश्रेष्ठ द्वारा प्रकट किये हुए अन्देशे सही साबित नहीं होते।

ब्रिटिश भारतीयोंका विरोध ट्रान्सवालके व्यापारी वर्गतक ही सीमित है और इसलिए विशुद्ध रूपसे स्वार्थजनित है। यह मेरे संघकी नम्र सम्मतिमें इस बातसे स्पष्ट है कि भारतीयोंका बहुत-कुछ कारबार यूरोपीयोंकी सद्भावनापर निर्भर है। यूरोपीय बैंक उन्हें विश्वास-योग्य पाकर ही रुपया उधार देते हैं। यूरोपीय कोठियाँ उन्हें उधार माल बेचती हैं और यूरोपीय ग्राहक उनसे चीजें खरीदते हैं। उनके सबसे अच्छे ग्राहक डच लोग हैं। यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि बोअरोंके शासन-कालमें भी एक प्रार्थनापत्र स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरको दिया गया था जिसपर बड़ी संख्यामें डचों और अंग्रेजों दोनोंके हस्ताक्षर थे और भारतीयोंकी उपस्थितिका समर्थन किया गया था।

यह सही है कि बोअरोंके शासन-कालमें गोरे और रंगदार लोगोंकी सामाजिक और राज नीतिक समानता कभी स्वीकार नहीं की गई थी परन्तु यह प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया जायेगा कि भारतीय इन दोनोंमें से किसी भी क्षेत्रमें नहीं पड़े हैं और इनसे सावधानीसे बचते रहे हैं।

परमश्रेष्ठने जो प्रस्ताव किये हैं और जिन्हें उन्होंने रियायतें कहा है मेरा संघ उन प्रस्तावोंकी चर्चा करनेकी अनुमति माँगता है। परन्तु ये प्रस्ताव मेरे संघके विनम्र मतसे उस थोड़ीसी स्वतन्त्रता पर भी नया आघात करते हैं जो १८८५ के कानून ३के मातहत जिसका स्थान ये लेना चाहते हैं ब्रिटिश भारतीयोंको प्राप्त है।

(१) आज उस समयके कानूनका जो अर्थ लगाया जाता है उसके अनुसार भारतीय जहाँ चाहें वहाँ व्यापार करनेको स्वतन्त्र हैं। और वे रिवाजमें भी हमेशा स्वतन्त्र रहे हैं।

(२) यद्यपि उस कानूनमें एक ऐसी धारा है जिससे खास बस्तियों-मुहल्लों या सड़कोंमें ही निवास सीमित किया जा सकता है तथापि जैसा कि सर्वोच्च न्यायालयने माना है, उसपर अमल नहीं होता क्योंकि कानूनमें उसकी मंजूरी नहीं है। इसलिए ब्रिटिश भारतीय जहाँ चाहें वहाँ रहनेके लिए स्वतन्त्र हैं। वे अचल सम्पत्तिके मालिक नहीं हो सकते परन्तु पट्टे लेनेके अधिकारी हैं।

(३) एशियाइयोंके स्वतन्त्र प्रवासपर कानूनमें किसी भी तरहकी पाबन्दी नहीं है।

परमश्रेष्ठके प्रस्तावोंके अनुसार *बाजारोंसे* बाहर व्यापार करनेके परवाने सिर्फ उन्हीं लोगोंको देना जारी रखा जायेगा जो लड़ाई छिड़नेके समय व्यापार कर रहे थे और वे भी उपनिवेशमें परवानेदारके निवास-कालतक ही चलेंगे। यह शर्त ऐसी है जिससे उन थोड़ेसे व्यापारियोंका व्यापार बढ़नेकी सम्भावना भी बहुत कम हो जाती है जो युद्धारम्भके समय व्यव साय कर रहे थे। इसलिए इस प्रस्तावका अन्तिम परिणाम यही होगा कि पृथक बस्तियोंके अलावा सब स्थानोंमें ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंका पूरा खात्मा हो जायेगा।

बस्तियोंमें रहनेकी बाध्यतासे मुक्तिकी गुंजाइश तो सोची गई है। परन्तु, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बस्तियोंमें रहनेकी बाध्यताका अस्तित्व है ही नहीं — यह पैदा करनी पड़ेगी, इसलिए यह एक नई पाबन्दी होगी।

पंजीकरणसे मुक्ति नाममात्रकी होगी क्योंकि ट्रान्सवालके लगभग सभी पुराने निवासियोंने लॉर्ड मिलनरकी सलाह मानकर पंजीकरणकी फीस अदा कर दी है और प्रस्तावित प्रवास-अध्यादेशके अनुसार नये भारतीयोंको अल्पतम संख्यामें उपनिवेशमें आने दिया जायेगा। असलमें प्रत्येक भारतीयको जो शरणार्थी नहीं है, भले ही उसकी बौद्धिक योग्यता सामाजिक गुण या रहन-सहनकी आदतें कुछ भी हों उपनिवेशमें प्रवेश करनेसे रोकनेके लिए शान्ति-रक्षा अध्यादेश काममें लाया जाता है।

इसलिए सादर निवेदन है कि जिन प्रस्तावोंकी चर्चा की जा रही है उनसे किसी भी बातमें ब्रिटिश भारतीयोंको कोई रियायत नहीं मिलेगी बल्कि वे अबतक जिन अधिकारोंका उपभोग कर रहे थे उनमें भी बहुत कमी हो जायेगी।

मेरा संघ परमश्रेष्ठकी इस सलाहके लिए आभारी है कि भारतीयोंको धार्मिक कामोंके लिए अपने नामसे जमीन खरीदने दी जा सकती है। लेकिन मेरे संघको यह कहनेके लिए क्षमा किया जाये कि जब भारतीय आबादीका बड़ा भाग जबरन अलग बस्तियोंमें रख दिया जायेगा तब इस रियायतका कोई उपयोग नहीं रहेगा या बहुत थोड़ा रहेगा और अगर यह जमीन धार्मिक संस्थाओंके संचालनके लिए आमदनी करनेके उद्देश्यसे काममें नहीं लाने दी जायेगी तो उस रियायतका लाभ नहीं उठाया जा सकेगा। फिर यह प्रस्ताव बिलकुल नया भी नहीं है, क्योंकि स्वर्गीया सम्राज्ञीके प्रतिनिधियोंने स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरका ध्यान इस मामलेकी तरफ बार-बार आकर्षित किया था और उन्होंने भी राहत देनेका वचन दिया था।

परमश्रेष्ठने यह कहनेकी कृपा की है कि "ब्रिटिश भारतीय संघकी रायमें ये स्थान (नई बस्तियोंके लिए अंकित स्थानोंसे मतलब है) सर्वथा अनुपयुक्त हैं, परन्तु मेरी रायमें संघने अपना मामला पेश करनेमें अत्युक्ति की है। परमश्रेष्ठके प्रति अत्यन्त आदर व्यक्त करते हुए मेरा संघ अर्ज करता है कि उसका प्रयत्न सदा तथ्योंको जरा भी रंग चढ़ाये बिना पेश करनेका रहा है और बस्तीके नये स्थानोंके बारेमें निवेदन करते समय उसने हर बातमें अपने ऐतराजोंकी हिमायतमें निष्पक्ष प्रमाण दिये हैं। मेरे संघके ज्यादातर सदस्य बहुत पुराने अनुभवी व्यापारी हैं इसलिए वे इन स्थानोंके बारेमें विश्वासपूर्वक बात करनेका दावा भी करते हैं और सुदूर भविष्यमें ये स्थान चाहे कितने भी कीमती बन जायें मगर फिलहाल उद्देश्य-पूर्तिकी दृष्टिसे वे एक-दोको छोड़कर सभी बिलकुल बेकार हैं। क्योंकि वे ऐसे एकान्त और निर्जन हिस्सोंमें हैं जहाँ आवागमनकी कोई सुविधा नहीं है। उदाहरणके लिए पीटर्सबर्गमें नया स्थान शहरसे कोई दो मील पर रखा गया है। चूँकि यह एक छोटा-सा गाँव है इसलिए वहाँ आवागमनका कोई साधन नहीं हो सकता। फलतः यह सिर्फ एक बिलकुल नया भारतीय गाँव बसानेका ही प्रश्न है। वहाँ जो आधे दर्जन दूकानदार जायेंगे वे ही आपसमें व्यापार कर सकेंगे। यह कहना ठीक नहीं कि किसी ऐसी पृथक् बस्तीमें जाना ऐसा ही होगा जैसा लन्दनमें चीपसाइडसे हैम्स्टेड हीथमें जाना। इस कथनसे मेरे संघकी रायमें इस मामलेमें पूरी स्थिति व्यक्त नहीं होती। और ये स्थान इतनी दूर-दूर मुकर्रर किये गये हैं इस तथ्यसे ही १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत सरकारको दी गई सत्ता में कमी हो जाती है। उस कानूनमें बस्तियोंके अलावा "सड़कें और मुहल्ले" अलग करनेकी कल्पना भी है।

किन्तु सारे प्रश्नका मर्म यह है कि भविष्यकी बात सोचकर पेशगी कानून बनाया जाय और मेरा संघ यह कहे बिना नहीं रह सकता कि चूँकि भविष्यकी रक्षा नेटाल या केपके ढंगपर प्रवासी-अधिनियम बनाकर की जा रही है इसलिए जीवनके किसी भी क्षेत्रमें इस भयका कोई कारण दिखाई नहीं देता कि भारतीय यूरोपीयोंपर छा जायेंगे। सतत वर्तमान यूरोपीय आबादीके मुकाबलेमें भारतीय आबादी जो अनुमानतः १२,००० होगी सदा एक जैसी रहेगी। इस संख्यामें केवल थोड़ी-सी वृद्धि उन लोगोंसे होगी जो शिक्षा-सम्बन्धी कसौटीके अनुसार ट्रान्सवालमें प्रवेश कर सकेंगे। उदाहरणार्थ नेटालमें प्रवासी-अधिनियम पाँच सालसे लागू है। इस कालमें इस परीक्षाके अनुसार जब कि उसका एक सीधा और निश्चित रूप था केवल १५८ नये आदमी उपनिवेशमें प्रवेश पा सके हैं। जैसा परमश्रेष्ठको मालूम है, अब यह परीक्षा बहुत कड़ी और केप कानूनकी जैसी कर दी गई है। इसलिए उन लोगोंके सिवा जिन्हें अंग्रेजी भाषाका बहुत अच्छा ज्ञान हो अन्य किसीका उपनिवेशमें प्रवेश असम्भव है। और यद्यपि आम लोगोंके विद्वेषका खयाल रखते हुए मेरा संघ उन आशंकाओंसे सहमत नहीं है जो परमश्रेष्ठने प्रकट की हैं फिर भी वह तबतक इस पाबन्दीको लगानेकी बात मंजूर करनेके लिए तैयार है जबतक मौजूदा कारोबार चलानेके लिए बिलकुल जरूरी नौकरों और विक्रेताओंको उपनिवेशमें प्रवेशकी उचित सुविधाएँ दी जाती रहें।

जो लोग लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें परवानोंसे या उनके बिना कभी व्यापार नहीं करते थे उनके नाम व्यापारके नये परवाने जारी करनेके सम्बन्धमें मेरा संघ आम लोगोंका द्वेष शान्त करने और यथासम्भव यूरोपीय उपनिवेशियोंकी इच्छाएँ पूरी करनेकी दृष्टिसे एक आम कानून माननेके लिए तैयार है और ऐसे परवाने देना या न देना सरकार या स्थानीय निकायोंपर छोड़ता है। परन्तु शर्त यह होगी कि स्पष्ट अन्याय होनेकी दशामें उदाहरणार्थ जहाँ नये प्रार्थीका समर्थन अधिकांश यूरोपीय करें वहाँ सर्वोच्च न्यायालयमें अपील की जा सके। इस तरहके लिए भी शर्त यह होगी कि मौजूदा परवानोंमें कोई दखल नहीं दिया जायेगा। इसमें जहाँ मकान-दूकान साफ-सुथरी हालतमें न रखे जायें और परवानेदार हिसाब-किताब सम्बन्धी नियमों आदिका पालन न करें वहाँ अपवाद हो। इस प्रकार नये परवाने जारी करनेकी व्यवस्था रंग-भेदके आधारपर कोई अन्यायपूर्ण कानून बनाये बिना नियमित की जा सकेगी।

मेरा संघ सादर निवेदन करता है कि अचल सम्पत्तिके स्वामित्वकी मनाही जितनी अकारण है उतनी ही अन्यायपूर्ण भी। और उपनिवेशके मुट्ठी-भर भारतीयोंको स्वतन्त्रतापूर्वक जमीन खरीदनेसे रोकना स्पष्ट रूपमें ब्रिटिश परम्पराओंके विपरीत है।

मेरे संघने सरकारके उस वचनके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा है, जो उसने ४ वर्ष पहले दिया था क्योंकि उसकी नम्र सम्मतिमें ब्रिटिश भारतीयोंका मामला अपनी पात्रताके आधारपर ही बहुत जोरदार है। परन्तु मैं यह कहता हूँ कि यदि सर चार्ल्स नेपियरकी १८४३ की घोषणाके समय स्थिति आजसे भिन्न थी तो भी जब स्वर्गीय लॉर्ड रोजमीड और स्वर्गीय लॉर्ड लॉक और इसी तरह लॉर्ड मिलनरने बोअर राज्यके दिनोंमें ब्रिटिश भारतीयोंके पक्षमें बारबार कोशिशें की थीं और स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरसे अतिक्रमणसे उनके अधिकारोंकी थोड़ी या बहुत सफलताके साथ रक्षा की थी उस समय वह इतनी भिन्न नहीं थी। जब लड़ाई छिड़ी और स्वर्गीया सम्राज्ञीके मन्त्रियोंने यह घोषणा की कि ब्रिटिश भारतीयों पर लगाई गई निर्योग्यताएँ भी लड़ाईका एक कारण है तब भी परिस्थिति आजसे बहुत भिन्न नहीं थी।

इसलिए मेरा संघ महसूस करता है कि इन तथ्योंकी उपेक्षा की गई है और इस प्रकार भारतीय समाजके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार नहीं किया गया। मेरे संघका सम्मानपूर्ण निवेदन यह है कि ब्रिटिश भारतीय सम्राट्की प्रजा हैं और ट्रान्सवालके कानून-पालक और शान्ति-प्रिय निवासी

हैं। दूसरी ओर परमश्रेष्ठ सम्राट्के प्रतिनिधि और राज्यके प्रधान हैं। अतः भारतीयोंका अधिकार है कि परमश्रेष्ठ उनकी स्थितिपर निष्पक्ष रूपसे विचार करें।

इसके सिवा ब्रिटिश भारतीयोंने एक जातिके रूपमें सदा ही सम्राट्की विनम्र सेवाएँ की हैं। वे इस तथ्यकी ओर परमश्रेष्ठका ध्यान आकर्षित करनेपर क्षमा चाहते हैं। सोमालीलैंड हो या तिब्बत, चीन हो या दक्षिण आफ्रिका — सभी जगह भारतीय सिपाहियोंने ब्रिटिश सैनिकोंके साथ कन्धेसे-कन्धा मिलाकर लड़ाईमें सख्त मोर्चा लिया है। लॉर्ड कर्जनने अभी भारतकी साम्राज्य-सेवाओंका उल्लेख इन सुन्दर शब्दोंमें किया था

> अगर आप अपने नेटालके उपनिवेशको किसी जबरदस्त दुश्मनके हमलेसे बचाना चाहते हैं तो आप भारतसे मदद माँगते हैं और वह मदद देता है; अगर आप पीकिंगके गोरे कूटनीतिक प्रतिनिधियोंको कत्लेआमसे बचाना चाहते हैं और जरूरत सख्त होती है तो आप भारत-सरकारसे सैनिक-दल भेजनेको कहते हैं और वह भेज देती है; अगर आप सोमालीलैंडके पागल मुल्लेसे लड़ रहे हैं तो आपको जल्दी ही पता लग जाता है कि भारतीय सेना और भारतीय सेनापति इस कामके लिए सबसे ज्यादा योग्य हैं और आप उन्हें भेजनेके लिए भारत-सरकारसे अनुरोध करते हैं। अगर आप साम्राज्यकी अदन मॉरिशस सिंगापुर हॉंगकॉंग टीनसिन या शान-हाई-क्वान जैसी किसी बाहरी चौकी या जहाजी कोयला-चौकीकी रक्षा करना चाहते हैं; तो भी आप भारतीय सेनाको भेजते हैं; अगर आप युगांडा या सूडानमें कोई रेल-मार्ग बनाना चाहते हैं तो आप भारतसे ही मजदूरोंकी माँग करते हैं। जब स्वर्गीय मी० रोड्स आपके नव-प्राप्त रोडेशिया प्रदेशके विकासमें लगे हुए थे तब उन्होंने मुझसे सहायता माँगी। डेमरारा और नेटाल दोनोंके बगानोंसे लाभ उठानेके लिए भी आप भारतीय कुलियोंसे ही काम लेते हैं। मिस्रमें सिंचाई और नील नदीके बाँधका काम भी आप भारतके प्रशिक्षित अधिकारियोंसे ही कराते हैं। भारतके वन-अधिकारियोंकी सहायतासे ही आप मध्य आफ्रिका और स्यामके वन-साधनोंका लाभ उठाते हैं और भारतके सर्वेक्षण अधिकारियोंके द्वारा पृथ्वीके तमाम गुप्त स्थानोंकी खोज कराते हैं।
>
> हम जबतक करोड़ों भारतवासियोंसे यह नहीं मनवा लेते कि हम उन्हें मनुष्य-मनुष्यके बीचमें उचित पूर्ण न्याय, कानूनके सम्मुख समानता और अत्याचार, अन्याय तथा सब प्रकारके उत्पीड़नसे स्वतंत्रता देते हैं, तबतक हमारा साम्राज्य उनके हृदयोंको स्पर्श नहीं करेगा और विलीन हो जायेगा।[1]

सर जॉर्ज व्हाइटने कर्तव्य-परायण प्रभुसिंहकी सेवाएँ उदारतापूर्वक स्वीकार की थीं। यह व्यक्ति लेडीस्मिथके घेरेके वक्त बहुत जोखिम उठाकर भी बोअरोंकी गोलियोंकी बौछारमें एक पेड़पर बैठा रहा और अम्बुलवानाकी पहाड़ीपरसे बोअरोंकी तोपोंकी गोलाबारीके बारेमें एक बार भी चूके बिना चेतावनी देता रहा। जोहानिसबर्गमें भेषसाजाकी पहाड़ीपर बना भार तीय स्मारक भी दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईमें भारतके योगदानका सबूत है। मेरे संघकी नम्र सम्मति है कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय जो इसी जातिके हैं खास तौरपर अपने निहित

[1] लॉर्ड कर्जनके भिन्न-भिन्न भाषणोंसे मतलबका इस अवतरणमें पहले दिये गये अवतरणसे कुछ आंशिक परिवर्तन थे। वे ठीक कर दिये गये हैं। देखिए, "भारत ही साम्राज्य है" १०-८-१९०४।

स्थानों और ट्रान्सवालमें गौरव और आत्मसम्मानके साथ ईमानदारीसे रोजी कमानेके अपने अधिकारके बारेमें विशेष विचारके पात्र हैं। उन्हें हमेशा यह बात खटकती नहीं रहनी चाहिए कि ब्रिटिश शासनमें उनकी चमड़ीका रंग राजनैतिक आकांक्षाओंसे भिन्न मामूली नागरिक स्वतन्त्रताकी प्राप्तिमें भी बाधक है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-९-१९०४

२०३. पत्र "स्टार"को[1]

कोर्ट चेम्बर्स
जोहानिसबर्ग
सितम्बर १, १९०४

सेवामें
सम्पादक
स्टार

महोदय

ब्रिटिश भारतीय संघके आवेदनपत्रके बारेमें अपने सम्पादकीय लेखके सम्बन्धमें मुझे विश्वास है, आप मुझे कुछ शब्द कहने देंगे। मुझे भय है कि आपने आवेदनपत्रके सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्देपर ध्यान नहीं दिया और मेरी नम्र रायमें इस देशके पत्रकार जनताका ध्यान इस बातकी तरफ दिलाकर उसकी सेवा करेंगे कि आवेदनपत्रसे उन यूरोपीयोंके सबसे ज्यादा ऐतराजोंका पूरा समाधान हो जाता है, जो भारतीयोंका असमर्यादित प्रवास नहीं चाहते और उन्हें नये परवाने दिये जानेके विरुद्ध हैं। संघ केपके नमूनेपर एक प्रवासी-प्रतिबन्धक कानून जारी करनेके सर आर्थर लालीके प्रस्तावको स्वीकार करता है और एक ऐसा सुझाव देता है जिससे स्वार्थ आपत्ति करनेवालों, अर्थात् स्थानीय अधिकारियोंको नये परवाने जारी करनेपर नियन्त्रण प्राप्त होगा। क्या भारतीय इससे आगे जा सकते थे? यह नहीं भूलना चाहिए कि जब स्वर्गीय श्री क्रूगरने विधानसभाके प्रस्तावों द्वारा पिछले उच्च न्यायालयके फैसलेको रद करना चाहा था तो उनका जबरदस्त विरोध हुआ था। वे ही उपनिवेशी जो उस समय विरोधी थे अब वही माँग रहे हैं जिसका उन्होंने विरोध किया था क्योंकि एशियाइयोंको परवाना देना बन्द या स्थगित करके वे सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयको ही ठुकरा देना चाहते हैं। अगर स्वार्थने ब्रिटिश न्यायकी सुन्दर भावनाको अस्थायी रूपसे अन्धा न बना दिया होता तो ऐसी बात किसी ब्रिटिश देशमें असम्भव होती। और फिर भी ब्रिटिश भारतीय संघ आम लोगोंके इस भावको मान्यता देकर जबरदस्त खतरेके बाद महँगी कीमत चुकाकर प्राप्त की हुई विजयके फलको बहुत कुछ छोड़ देनेके

[1] यह *इंडियन ओपिनियनमें* इस शीर्षकसे पुनः छापा गया था : "ब्रिटिश भारतीय संघ : श्री गांधीका पत्र"।

लिए तैयार है। मैं खुद किसी भी आयोगके जो नियुक्त किया जाये फैसलेसे नहीं डरता क्योंकि मेरा विनम्र किन्तु दृढ़ विश्वास है कि भारतीयोंके विरुद्ध उठाई गई बहुत-सी आपत्तियाँ वास्तवमें निराधार हैं। ट्रान्सवालमें फुटकर भारतीय व्यापारियोंकी संख्या यूरोपीयोंकी तुलनामें बहुत थोड़ी है। परन्तु मेरी समझमें आयोगकी नियुक्ति अनावश्यक है और उससे प्रश्नका निपटारा अनिश्चित कालके लिए स्थगित हो जायेगा। यह बड़े आश्चर्यकी बात होगी यदि श्री लिटिलटन अपने तरीकेसे मुकर जायें और आयोगका फैसला मालूम होनेतक भारतीय परवानोंके प्रश्नको मुल्तवी रखें। ब्रिटिश भारतीय संघने यूरोपीयोंकी इच्छाओंकी पूर्तिका सदा प्रयत्न किया है। उन्होंने फिर एक महान प्रयत्न किया है और मेरा निवेदन है कि विशेषतः उन कड़े कानूनोंको ध्यानमें रखते हुए, जो चीफस्ट्रूममें और अन्यत्र सुझाये जा रहे हैं, इस तथ्यपर जोर देकर आप देशकी सेवा करेंगे। इस समय वक्त ही महत्त्वपूर्ण है विवाद एक ऐसी स्थितितक पहुँच गया है जहाँ कोई निश्चित निर्णय ही एकमात्र उपाय हो सकता है। विधानसभाकी बैठकपर बैठक हुई और अनेक कानून पास हुए, मगर हर बार यह सवाल ताकपर रख दिया गया। संघने निश्चित प्रस्ताव किये हैं जिनसे मेरे खयालमें माकूल हल निकल आता है और वे कमसे-कम परीक्षाके योग्य हैं। साथ ही उन प्रस्तावोंमें यह विशेषता है कि प्रश्नका निपटारा स्थानीय स्तरपर हो जाता है।

आपका, आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १०–९–१९०४

२०४. ट्रान्सवालके भारतीय

अगर हमारे सहयोगियोंको मिले हुए समुद्री तारोंमें लॉर्ड मिलनरके विचारोंका ठीक-ठीक सार दिया गया है तो हम स्वीकार करते हैं कि हम इस प्रश्नपर परमश्रेष्ठके रुखको नहीं समझते क्योंकि हमें बताया गया है लॉर्ड महोदयका खयाल यह है

> दक्षिण आफ्रिकामें रंगदार कौमोंको गोरोंके साथ समान स्तरपर रखनेकी कोशिश बिलकुल अव्यावहारिक और अनुचित गलत है। लेकिन मेरी राय है कि जब किसी रंगदार आदमीमें एक निश्चित दर्जेकी ऊँची सभ्यता उपलब्ध हो तब उसे रंगका लिहाज किये बिना गोरोंके-से विशेषाधिकार मिलने चाहिए।

अगर परमश्रेष्ठ सिर्फ इतना ही चाहते हैं तो हमें श्री लिटिलटनके खरीतेमें इससे असंगत बात कुछ भी दिखाई नहीं देती क्योंकि उन्होंने प्रस्ताव किया है कि उन लोगोंके सिवा जो परमश्रेष्ठकी बताई हुई कसौटीपर खरे उतरे, अन्य ब्रिटिश भारतीयोंका आगे प्रवास रोक दिया जाये। जो लोग पहलेसे ही इस देशमें मौजूद हैं उनके लिए परमश्रेष्ठकी तजवीज यह है कि व्यापारके लिए तो नहीं परन्तु सफाई-सम्बन्धी कारणोंसे उनके पृथक्करणकी अनुमति ही तो व्यापार करनेका प्रश्न फिर भी अनिर्णीत रह जाता है। परन्तु लॉर्ड मिलनरने स्वयं इस प्रश्नका उत्तर इन शब्दोंमें दिया है

> जहाँ देशमें पहलेसे मौजूद भारतीयोंके निहित स्वार्थोंकी रक्षाके लिए लोकमतके विरुद्ध जाकर भी कानून बनाना हमारे लिए उचित होगा वहाँ समूचे रूपमें मैं तो एशियाई प्रश्नके सम्बन्धमें इस तरीकेका कानून बनाना उचित नहीं होगा जो बहुसंख्यक यूरोपीय आबादीकी आवाजके विरुद्ध हो।

तो यदि निहित स्वार्थोंकी रक्षा करनी है तब तो श्री लिटिलटनने सचमुच इससे ज्यादा किसी चीजकी माँग नहीं की क्योंकि हमारा दावा है कि जो भी भारतीय अब ट्रान्सवालमें आबाद हैं उन्हें गणराज्यकी हुकूमतमें स्वतन्त्र व्यापार करनेकी इजाजत थी। इसलिए इस प्रकार व्यापार करनेकी योग्यता उनका निहित स्वार्थ है भले ही वे दरअसल व्यापार करते हों या न करते हों। और जो वास्तवमें आयेंगे वे तो केवल वे लोग ही होंगे जो सभ्यताका एक निश्चित दर्जा प्राप्त कर चुके हैं। इस तरह परमश्रेष्ठकी ओरसे किया गया सारा [वि]रोध[1] बेकार [हो जाता] है। परन्तु दु[र्भाग्]यवश हमने पिछले [वर्षों]में हमने ऐसी बातें सीखी हैं [जिनसे] हम कह सकते हैं, [यद्य]पि [यह कहना] दु:खदायी हो सकता है, कि लॉर्ड मिलनर जो कुछ कहते हैं वह चाहते नहीं हैं। वे ज्यादा अच्छे वर्गके एशियाइयोंको विशेष अधिकार देनेका कोई इरादा नहीं रखते। और निहित अधिकार घटते-घटते उस व्यापारतक आ गये हैं जो वास्तवमें ११ अक्तूबर १८९९ को भारतीयोंके हाथोंमें था। क्योंकि क्या एशियाई व्यापारी आयोगका यह कहना नहीं था कि उसे केवल उन्हीं भारतीयोंके मामलोंकी जाँच करनेका अधिकार है जो लड़ाई छिड़नेके समय और उसके तुरन्त बाद व्यापार कर रहे थे और वह अपने अधिकारके अनुसार उन्हीं लोगोंके मामले निपटा सकता है जो अक्तूबर १८९९ में व्यापार करते थे? अगर सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके रूपमें भगवानकी दया न होती तो इस समयतक उपर्युक्त अधिकारके अनुसार ७५ फी सदीसे ज्यादा भारतीय व्यापारियोंका अस्तित्व मिट गया होता और शायद उपनिवेश-कार्यालयने भी कुछ न किया होता। इसलिए हमारी माँग है कि नीति साफ-साफ बता दी जाये। यूरोपीय विरोधके बारेमें भी परमश्रेष्ठ इतना जोर दे रहे हैं। हमें इसपर भी आपत्ति है। इसके दो कारण हैं (पहला) ब्रिटिश प्रजाजनोंके किसी एक समूहकी ओरसे किये गये विरोधका प्रयोग किसी दूसरे समूहके अधिकारोंको छीननेके लिए नहीं किया जा सकता (दूसरा) वह विरोध स्वयं सरकार द्वारा पोषित किया जाता है। इस बारेमें श्री लिटिलटनके खरीतेसे भ्रम बिल-कुल दूर हो गया है। यद्यपि जब सर जॉर्ज फेरारकी प्रेरणासे एशियाई व्यापारिक आयोग नियुक्त किया गया तब कमजोर पक्षकी तरफसे भी डंकन और सर रिचर्ड सोलोमनने सफाई पेश की थी और यह इस न्यायसंगत प्रतीत हुई थी। किन्तु जैसा खरीतेसे मालूम होगा वे दोनों ही श्री लिटिलटनसे अधिकसे-अधिक जोरके साथ यह माँग कर रहे हैं कि वे भारतीयोंसे लगभग सब कुछ छीन लें। हम देखते हैं कि उसी तरह विधान-परिषद भी यूरोपीय भावनाकी पूर्तिका साधन है। सर जॉर्ज फेरारने प्रस्ताव रखा था कि इसपर एक आयोग नियुक्त कर और इस बीचमें भारतीयोंको नए परवाने देना बिलकुल बन्द कर दिया जाय। सरकारने उसे खुशीसे मंजूर कर लिया है। अब स्वर्गीय श्री क्रूगरके जमानेसे ही उच्च न्यायालयके फैसलोंको निकम्मा करनेके लिए प्रस्ताव पास किये तब उनपर भीषण दोषारोपण किये गये। उनका आचरण पाप किन और मनुष्यताशून्य समझा गया और उन्हें बड़ी-बड़ी गालियाँ या दी या सजा भी दी गई। लेकिन जब यही बात ब्रिटिश शासक नुमाइन्दोंकी तरफसे प्रस्तावित की जाती है तब विरोधमें एक भी आवाज नहीं उठाई जाती। ट्रान्सवालके स्वतन्त्र न्यायाधीशोंने उपनिवेशमें बाद

1. मूलमें कहीं-कहीं शब्द कटे होनेसे [ ] दिए गये शब्दों और शब्दांशोंकी पूर्ति की गई है।

तीयोंका व्यापार करनेका हक अपने सर्वसम्मत निर्णयमें जोरदार शब्दोंमें स्वीकार किया है। किन्तु अब उसीको छीननेका प्रस्ताव किया जा रहा है। इसलिए हम आशा करते हैं कि श्री लिटिलटन उस स्थितिको महसूस करेंगे जिसमें ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय हैं और यह भी अनुभव करेंगे कि स्थानीय सरकारने राग-द्वेषमें आम लोगोंके साथ पूरी तरह तादात्म्य स्थापित कर लिया है। इस कारण वह इस स्थितिमें नहीं है कि कोई निष्पक्ष राय दे सके। असल बात यह है कि सही या गलत किसी भी तरह वह बहुत बदनाम हो चुकी है। बहुत-से दूसरे मामलोंमें भी उसकी नीतिसे ट्रान्सवालके लोग गम्भीर रूपसे असन्तुष्ट हैं। इसलिए वह भारतीयोंके मामलेमें न्याय करनेसे डरती है। क्योंकि यह मामला उन लोगोंका है, जिनकी कोई आवाज नहीं है और जिनके पास सरकारको तंग करनेकी कोई ताकत भी नहीं है। हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि श्री लिटिलटनको यथेष्ट बल प्राप्त हो जिससे वे भारतीय प्रश्नके सम्बन्धमें जिसे वे "राष्ट्रीय सम्मान" कहते हैं उसकी रक्षा कर सकें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ३-९-१९०४

२०५ पत्र दादाभाई नौरोजीको[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
सितम्बर ५, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२ केनिंग्टन रोड
लन्दन इंग्लैंड

महोदय

भारतीय प्रश्नसे सम्बन्धित मामले अब नाजुक हालतमें पहुँच चुके हैं। *इंडियन ओपिनियनसे* आपको आज तककी सारी जानकारी मिल जायेगी। उसमें प्रकाशित ब्रिटिश भारतीय संघके निश्चयसे मेरी मौजूदा परिस्थिति स्पष्ट हो जायगी। संघके प्रस्ताव जितने नरम हो सकते थे उतने नरम हैं और उनमें *ब्रिटिश भारतीयोंके* कमसे-कम हक — जिनमें और कमी हो ही नहीं सकती — पेश किये गये हैं। आप देखेंगे कि उनमें उपनिवेशवासियोंकी सभी उचित मांगोंको स्वीकार किया गया है। एशियाई बस्तीवाला मुद्दा भी मान लिया गया है। किन्तु बस्तियोंके प्रश्नपर

१ दादाभाई नौरोजीने इस पत्रकी [illegible] उपनिवेश-कार्यालय (सी० ओ० २९१, खण्ड ७५, इंडिविजुअल्स) और भारत-मन्त्री (सी० ओ० २९१, खण्ड ७५, इंडिया ऑफिस) को भेजी थी। इसका [illegible] ७-१०-१९०४ के *इंडियामें* 'जोहानिसबर्ग-संवाददाता' के शीर्षकसे छपा था।

सर्वोच्च न्यायालयमें पुनर्विचार कराने और अचल सम्पत्तिकी मिल्कियतका अधिकार बिलकुल जरूरी है। यदि आवश्यक हो तो दूसरी बातकी हदतक कुछ जमीनें केवल यूरोपीयोंकी मिल्कियतके लिए सुरक्षित रखी जा सकती हैं। मैं परवानोंकी स्थिति पुनर्विचारकी जोखिम उठाकर भी स्पष्ट कर दूँ। कोई परवाना-अधिनियम हो उसमें वर्तमान परवानोंको अछूता छोड़ देना चाहिए और जो लोग परवानों या बिना परवानोंके युद्धके पहले व्यापार कर रहे थे किन्तु जिन्होंने ब्रिटिश अधिकारके बाद मुख्यतः इसलिए परवाने नहीं लिये कि उन्हें उपनिवेशमें लौटने ही नहीं दिया गया है उन्हें भी अछूता छोड़ना चाहिए। परवानोंकी जगहको नियमानुसार साफ-सुथरा रखने और हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखनेकी शर्तका पालन न हो तो बात अलग है। नये परवानोंके बारेमें सरकार अथवा नगरपालिकाके अधिकारियोंको पूरा विवेकाधिकार रह सकता है। हाँ अपीलका अधिकार तो रहेगा। इस तरह सारा प्रश्न सुलझ जायेगा। यह प्रस्ताव नेटालके ढंगका है — केवल इसमें सर्वोच्च न्यायालयको उसके स्वाभाविक अधिकारसे वंचित करनेवाली अत्यन्त अन्यायपूर्ण धाराको छोड़ दिया गया है। इस तथ्यसे बहुत-कि हर भारतीय व्यापारीकी स्थिति अनिश्चित हो गई है। यदि सुझाये प्रस्ताव स्वीकार कर लिये जायें तो किसी आयोगकी नियुक्ति अनावश्यक जान पड़ेगी। विधान-परिषदका प्रस्ताव जैसा सुझाता है उसके अनुसार परवाने मुल्तवी नहीं किये जा सकते। और यदि परवाने मुल्तवी नहीं किये जाते तो मेरी समझमें कोई मिस्टर आयोगकी नियुक्ति शायद ही स्वीकार करें। वास्तवमें आयोगकी माँगके द्वारा सीधा परोक्ष रूपमें वही प्राप्त करनेका है जिसे श्री स्मिट्सने प्रत्यक्षतः अस्वीकार कर चुके हैं। इसमें परवानोंका प्रश्न भी एक लम्बे और अनिश्चित कालके लिए टल जायेगा और यदि श्री स्मिट्सने परवानोंको मुल्तवी करनेकी बात मान ली तो भारतीय-विरोधियोंकी ओरसे किसी निश्चित विधानके लिए जल्दी नहीं मचाई जायेगी।

मैं देखता हूँ ऑरेंज रिवर कालोनीका प्रश्न अभीतक नहीं उठाया गया है। मेरा खयाल है कि इस प्रमुखताके साथ ध्यानमें रखना चाहिए, क्योंकि मेरी रायमें यह एक कलंकम कम नहीं है कि कालोनीको सबतक भारतीयोंके लिए अपने द्वार बिलकुल बन्द रखनेकी सुविधा प्राप्त है।

आपका सच्चा
मो० क० गांधी

[पुनश्च]

सर आर्थर लालो और उपनिवेश-सचिव श्री लॅकन पिछले इससे सम्बन्धके लिए रवाना हुए हैं। क्या मैं सुझाव दे सकता हूँ कि एक मिला-जुला शिष्टमण्डल उनसे मिले और उनके साथ इस प्रश्नकी चर्चा करे? सम्भवतः उनपर इसका बहुत ज्यादा प्रभाव हो सकता है और कुछ नहीं तो वे यह तो जान ही जायेंगे कि अलग-अलग दलोंके प्रभावशाली लोग इस मामलेपर बिलकुल एकमत हैं।

टाइप किये हुए मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २२६) से।

२०६. ट्रान्सवाल

हम लॉर्ड मिलनर और सर आर्थर लालीके महत्त्वपूर्ण खरीते छाप चुके हैं। श्री लिटिलटनका खरीता भी जो इनका जवाब था इन स्तंभोंमें पहले ही छापा जा चुका है। इन दस्तावेजोंसे ट्रान्सवालमें ही नहीं परन्तु दक्षिण आफ्रिकाभरमें भारतीय प्रश्नका महत्त्व प्रकट होता है। ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघने उपनिवेश-सचिवके नाम एक आवेदनपत्र प्रिटोरिया भेजा है। (इसे हम पिछले सप्ताह उद्धृत कर चुके हैं)[1]। इसमें परममाननीय लेफ्टिनेंट गवर्नरके खरीतेमें कही गई कुछ निश्चित बातोंका खण्डन किया गया है। खरीतेमें उन्होंने साफ तौरपर अपनेको एक निष्पक्ष शासककी अपेक्षा पक्षपाती ही अधिक सिद्ध किया है। उस खरीतेमें आदिसे अन्ततक व सब मुद्दे सामने आनेकी उत्सुकता है जिनकी कल्पना परममाननीय इस रूपमें कर सके हैं कि वे यूरोपीयोंके ऐतराजोंके अनुकूल हैं। उन्होंने श्री लिटिलटनको यह सलाह देनेमें भी संकोच नहीं किया है कि वे जिस सरकारके नुमाइन्दे हैं उसके नामपर ब्रिटिश भारतीयोंको बार-बार दिये गये वचन भी तोड़ दिये जायें। हमारा खयाल यह नहीं है कि राज्यके कारोबारमें ऐसे हालात हो ही नहीं सकते जिनमें एक बार दिये गये वचन भंग करना उचित हो। परन्तु इस मामलेमें ऐसा करनेके लिए जरा भी औचित्य नहीं है। सर आर्थर लालीने सर चार्ल्स नेपियरकी १८४३ की घोषणाका विवेचन किया है और उनका विचार है कि उस समयकी स्थिति आजकी स्थितिसे बिलकुल भिन्न थी। किन्तु, जैसा ब्रिटिश भारतीय संघने परममाननीयको याद दिलाया है, उस वचनपर १८९९ तक अमल किया गया था। बहुत दिन नहीं हुए, जब लॉर्ड रिपन उपनिवेश-मन्त्री थे उन्होंने अपने खरीतेमें सरकारकी जोरदार नीति यह निर्धारित की थी कि सम्राज्ञी सरकारकी यह इच्छा है कि उनके तमाम प्रजाजनोंके साथ बराबरीका बरताव किया जाये। हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमें कोई भी परिस्थिति ऐसी दिखाई नहीं देती जिससे गम्भीरतापूर्वक किये गये और दुहराये गये वादे जानबूझकर तोड़ना वाजिब माना जाये। इस बातका भी कोई कारण नहीं है कि पहले प्रश्नको बेहद बढ़ा चढ़ा कर बताया जाये और फिर अन्यायपूर्ण और भेदभावपूर्ण कानून बनानेकी बातको उचित कहा जाये। अगर ट्रान्सवालका दरवाजा भारतसे आम लोगोंके आनेके लिए बिलकुल खुला रखनेकी तजवीज हो तो ऐसा ढंग समझमें आ सकता है। परन्तु जिस साँसमें सर आर्थर लाली यह मनचाहा चित्र खींचते हैं कि अगर इस देशमें भारतके लाखों लोगोंको भर जाने दिया गया तो ट्रान्सवालकी स्थिति बड़ी भयंकर हो जायगी उसी साँसमें वे ऐसे कानूनको अपनानेकी वकालत भी करते हैं जिससे भारतीयोंका प्रवास समाप्तप्राय हो जायेगा। १ लाख गोरोंकी आबादीमें जो सतत बढ़ रही है कुछ हजार भारतीयोंको अपमानजनक पाबन्दियोंमें रखना ऐसा कृत्य है जिसे किसी ब्रिटिश उपनिवेशमें पल-भर भी बरदाश्त नहीं किया जाना चाहिए। सर आर्थर लालीने अपनी प्रातिनिधिक हैसियतसे इस तरहके कानूनकी वकालत करना उचित माना है यह स्थिति एक अत्यन्त महत्त्वकी सूचना देनेवाली है। आज भारतीय प्रश्नके बारेमें जो कुछ हुआ है वह कल किसी और प्रश्नके सम्बन्धमें भी हो सकता है। भविष्यके लिए निश्चित विषय यह सिद्धान्त होना चाहिए, जो इसकी तहमें निहित है। अगर परममाननीयके विचार ब्रिटिश शासकोंको जरा भी प्रिय हैं तो हमारी विनम्र सम्मतिमें वे उन सर्वोत्तम ब्रिटिश परम्पराओंसे पतित होनेकी निशानी हैं जिनके कारण साम्राज्यका वर्तमान रूप बना है। और जिस समय साम्राज्य-भरमें तथाकथित साम्राज्य भावना लहरा रही है उसी समय शायद उसके अवरोधके बीज भी बोये जा रहे हैं। उपनिवेशियोंके साथ नाममात्रका सम्बन्ध रखनेके लिए

१. देखिए "आवेदनपत्र: उपनिवेश-सचिवको", पृष्ठ १९४से पूर्व।

इंग्लैंडको अपने तमाम उदात्त और उत्तम आदर्शोंका बलिदान करना पड़ रहा है। ब्रिटिश भारतीय संघका आवेदनपत्र देखते हैं तो हमें वह अकाट्य मालूम होता है और यदि सरकार उसमें किये गये प्रस्तावोंको मान लेती है तो इस कठिन प्रश्नका हल बहुत ही आसान हो जाता है। हमारे खयालसे हालके परीक्षात्मक मुकदमेमें दिये गये निर्णयसे जो लाभ हुआ है मंघ उसको अपना आधार बना सकता था लेकिन चूँकि जीवन स्वयं समझौतोंका समूह है और राजनीतिमें भी नीति किसी अन्य नीतिसे अच्छी होती है इसलिए संघने प्रवासी और विक्रेता-परवानोंके मामलेमें भी बहुत ही माकूल और समझौतेके सुझाव पेश करके अच्छा ही किया है। परन्तु एक बात याद रखनी चाहिए कि वह उनकी ऐसी न्यूनतम माँग है — और होनी भी चाहिए — जिसमें और कमीकी कोई गुंजाइश नहीं है। यही स्वीकार करनेकी भारतीय समाजसे आशा रखी जा सकती है। हम शिक्षाकी कसौटीमें भारतीय भाषाओंके निषेधके विचारसे कभी सहमत नहीं हो सके हैं। यह निषेध अकारण है और यह बात हमेशा खटकती रहेगी कि कोई मिसनर और सर आर्थर लाली दोनोंने भी लिटिलटनके भारतीय भाषाओंको मान्यता देनेके सर्वथा न्याय पूर्ण प्रस्तावको नहीं माना। किन्तु शान्तिको खरीदनेके लिए और यह दिखानेके लिए कि भारतीय अत्यन्त विकट परिस्थितियोंमें भी कितने विवेकशील हैं — जैसे कि वे हमेशा ही रहे हैं — ब्रिटिश भारतीय संघ केपके ढंगका प्रवासी कानून स्वीकार करने और नये विक्रेता-परवानोंके मामलेमें सर्वोच्च न्यायालयमें अपील करनेका अधिकार रख कर पूरा नियन्त्रण सौंपनेको तैयार है। एक तरहसे इसका अर्थ भारतीयों द्वारा अपना व्यापारका अधिकार छोड़ना है। फिर भी संघने बिलकुल नहीं किया है। इसके बदलेमें संघ केवल अचल सम्पत्तिके स्वामित्वका अधिकार माँगता है। फिर भी हमें निश्चय नहीं है कि यह कोई नई बात होगी क्योंकि यह एक प्रश्न है कि १८८५ के कानून ३ में स्वामित्व-सम्बन्धी धारापर प्रहार किया जा सकता है या नहीं। संघने जबर दस्ती अलग बसानेके सिद्धान्तका भी विरोध किया है और जैसा कि सर्वोच्च न्यायालयने सिद्ध कर दिया है १८८५ के कानून ३ के अनुसार कोई और बात वांछनीय नहीं है। इस हकीकतके होते हुए यदि सर आर्थर लाली अपने प्रस्तावोंको रियायतें बतायें और फिर भी सिलसिलेवार यह कि उनपर अमल करनेमें जरा कठिनाई हो सकती है तो यह दरअसल अजीब बात है। असल बात यह है कि परमश्रेष्ठका प्रत्येक प्रस्ताव ब्रिटिश भारतीयोंकी स्वतन्त्रतापर नया प्रतिबन्ध है। परन्तु यदि ब्रिटिश भारतीयसंघके आवेदनपत्रपर न्यायपूर्ण भावनासे विचार किया जाये तो सारा विवाद कमसे-कम फिलहाल तो खतम हो सकता है और इंग्लैंडसे कोई मसौदा आर्डिनेंस भेजना गैर-जरूरी किया जा सकता है। अक्सर यह दलील दी जाती है कि स्वशासनभोगी उपनिवेशोंको कुछ कानून बनानेकी इजाजत दी गई है यह उचित हुआ तो ट्रान्सवालको भी उसी आधारपर रख दिया जाये। इसलिए हम संयोगवश इस दलीलका जिक्र कर सकते हैं कि ब्रिटिश सरकार यहाँ भी ऐसा असाधारण प्रस्ताव मंजूर नहीं हुई है जैसा सर आर्थर लालीने रखा है। यह याद रहे कि आस्ट्रेलियाने एशियाइयोंपर लागू करनेके लिए एक प्रवासी-कानून पास किया था। उस कानूनको विशेषाधिकार द्वारा रद कर दिया गया और उस उपनिवेशको सबके ऊपर एक सामान्य कानून पास करना पड़ा। स्वयं नेटालने जब एशियाइयोंके विरुद्ध विशेष कानून पास करनेका प्रयत्न किया तब उसे भी ऐसे प्रयत्नमें असफलता ही हुई थी। इसलिए यदि सर आर्थर लाली द्वारा प्रस्तावित कानून मंजूर किया ही गया तो ब्रिटिश अधिकारियोंकी तरफसे यह एक बिलकुल नये मार्गका अनुसरण होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १ – –१ ८

२०७ उत्पीड़न-यन्त्र

जहाँ ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेवाले भारतीयोंपर परवाने-सम्बन्धी प्रतिबन्ध दिनपर-दिन कठोर होते जा रहे हैं, वहाँ यूरोपीयोंको अधिकाधिक सुविधाएँ दी जा रही हैं, फिर चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हों या अन्य कोई। अब ऐसे अधिकारी नियुक्त किये गये हैं जो ज्यों ही जहाज आयेंगे त्यों ही उनमें चले जाया करेंगे ताकि जो यूरोपीय ट्रान्सवाल जाना चाहते हों उन्हें प्रतीक्षा किये बिना परवाने मिल सकें। इसके विपरीत भारतीय चाहे केपमें हों या नेटालमें या डेलागोआ-बेमें प्लेगके आधारपर ट्रान्सवालमें प्रवेश करनेसे रोके जा रहे हैं। और यह सब होता है इसका पूरा प्रमाण देनेपर भी कि वे शरणार्थी हैं। सबसे स्पष्ट उदाहरण जो हमारी जानकारीमें आया है किम्बरले और डर्बनसे आनेवाले फुटबॉलके भारतीय खिलाड़ी-दलोंसे सम्बन्धित है। हम यह सब पत्र-व्यवहार अन्यत्र छाप रहे हैं। उसको पढ़नेसे सारी बात स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। कार्यवाहक मुख्य सचिव यह नहीं समझ सके कि ब्रिटिश भारतीय खिलाड़ियोंको अस्थायी परवाने क्यों दिये जायें? यह स्मरणीय है कि ये सब प्रतिष्ठित लोग हैं और यूरोपीय ढंगसे रहनेका कोई महत्त्व हो तो यूरोपीय ढंग से रहते हैं। फुटबॉल एक प्रधान अंग्रेजी खेल है और हम समझते हैं कि श्री रॉबिन्सनके लिए उसका उल्लेख व्यंग्यपूर्वक करना उचित नहीं था जैसा कि उन्होंने इस पत्र-व्यवहारमें किया है। भारतीय खिलाड़ियोंको श्री सी० बर्ड मुख्य उपसचिवके प्रति बहुत ही कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि उन्होंने परवाना-सचिवको एक आवश्यक तार भेजा था। किन्तु उसपर भी ट्रान्सवालके अधिकारियोंने कोई शिष्टता नहीं दिखाई। श्री बर्ड बहुत दृढ़ थे। उन्होंने कहा: "मेटाबेले खिलाड़ी-दलमें सभी प्रतिष्ठित लोग हैं जो मुख्यतः मुन्शियोंका काम करते हैं और इनको जोहानिसबर्ग जाने देनेमें उससे अधिक खतरा मुझे दिखाई नहीं देता जितना और किसीसे हो सकता है।" इससे ज्यादा कहनेमें कुछ और कहना सम्भव न था। और चूँकि यह सिफारिश जिम्मेदार हलकोंसे हुई थी इसलिए इसपर ध्यान देना उचित था। परन्तु कदाचित् ट्रान्सवालमें लोग मध्ययुगमें रह रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-९-१९०४

२०८ पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय

पॉचेफस्ट्रूममें जो थोड़ेसे भारतीय दूकानदार अपनी रोजी कमा रहे हैं उनसे इस नगरके लोग बहुत परेशान मालूम होते हैं। पॉचेफस्ट्रूमसे प्रत्येक भारतीयको निकाल बाहर करनेकी उत्सुकतामें वे आतंकका आश्रय ले रहे हैं। अभी उस दिन एक भारतीय वस्तु-भण्डारमें आग लग गई थी। खयाल किया जाता है कि यह किसी आग लगानेवालेका काम था। अखबारोंका कहना है कि भारतीय डर गये हैं और बीमा-कम्पनियाँ भारतीयोंके जोखिमके बीमे स्वीकार नहीं करतीं। भारतीय भण्डारोंके पड़ोसमें रहनेवाले गोरे लोग भी बेचैन हो गये हैं। खुशीकी बात है कि पुलिस सतर्क मालूम होती है और इस बारेमें बहुत चिन्ता करनेका कोई कारण दिखाई नहीं देता। परन्तु हमें यह देखकर दुःख होता है कि पॉचेफस्ट्रूम नगर-परिषद भी बहावमें बह गई है और उसने ऐसा प्रस्ताव पास किया है, जो एक प्रतिनिधि-संस्थाके अयोग्य है। नगर-परिषदकी स्वास्थ्य-समितिने निम्नलिखित सिफारिश की है :

> इस बातको देखते हुए कि सरकार एशियाइयोंको *बाजारोंमें* अलग बसानेकी कोई कार्रवाई नहीं कर रही है यह परिषद नगरके तमाम एशियाइयोंको आज्ञा देती है कि वे रातको भारतीय बस्तीमें चले जाया करें और वहीं रहा करें। उक्त एशियाई व्यापारियोंको स्थानीय पत्रोंमें विज्ञापनके रूपमें एक महीनेकी सूचना दी जाये और इस अवधिमें वे परिषदके आदेशका पालन करें। और इसके अतिरिक्त अगर आवश्यक सिद्ध हो तो परिषदके प्रस्तावपर अमल करानेमें मदद देनेके लिए ५ गोरे पुलिस सिपाही भरती किये जायें और परिषद स्थानीय मजिस्ट्रेटसे आग्रहपूर्वक अनुरोध करती है कि वे इस मामलेमें भरसक सहायता दें।

जैसा कि हम पिछले अंकोंमें पहले ही बता चुके हैं १८८६ में संशोधित १८८५ के कानून ३ में ब्रिटिश भारतीयोंको बलपूर्वक अलग बसानेकी कोई सत्ता नहीं दी गई है। इसलिए यदि उपर्युक्त प्रस्तावपर अमल करानेका प्रयत्न किया गया तो परिषदका यह काम बिलकुल गैर-कानूनी होगा। मुख्य न्यायाधीशने *हबीब मोटन* बनाम सरकारके परीक्षात्मक मुकदमेमें इस धाराके सम्बन्धमें अपने फैसलेमें जो राय जाहिर की है उसके होते हुए पॉचेफस्ट्रूमकी नगर-परिषदने सहसा यह सुझाव देना कैसे ठीक समझा कि भारतीयोंको शायद जबरदस्ती अलग बस्तीमें रखवानेके लिए ५ विशेष गोरे पुलिस सिपाही भरती किये जायें — यह हमारी समझमें नहीं आता। हम आशा ही रख सकते हैं कि सरकार *उक्त प्रस्तावपर ध्यान देगी और* ऐसी किसी भी कार्रवाईके विरुद्ध नगर-परिषदको सचेत कर देगी। भारतीयोंको कानून द्वारा पूरा अधिकार है कि वे जहाँ भी चाहें वहाँ व्यापार करें और रहें और उन्हें यह भी हक है कि वे उस अधिकारके अमलमें हर तरहकी हिंसासे बचावकी आशा रखें फिर भले ही वह हिंसा पॉचेफस्ट्रूमकी नगर-परिषद जैसी कानून द्वारा निर्मित संस्थाकी तरफसे ही क्यों न हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-९-१९०८

२०९. केपके भारतीय

शुभाशा अन्तरीप (केप ऑफ गुडहोप) के पिछले १ अगस्तके सरकारी *गज़टमें* उपनिवेशके स्थानापन्न प्रशासक परमश्रेष्ठ मेजर जनरल एडमंड स्मिथ बुलककी जारी की हुई निम्नलिखित घोषणा छपी है :

> मैं इस घोषणा द्वारा यह घोषित और प्रकट करता हूँ कि इसकी तारीखसे किसी अरब, भारतीय या और अन्य एशियाईका, चाहे वह किसी भी राष्ट्रका क्यों न हो, पूर्वोक्त इलाकों (अर्थात् पीलैकालैंड सहित ट्रान्सकाई; प्रवासी टैम्बूलैंड और बॉम्वानालैंड सहित टैम्बूलैंड; पूर्वी और पश्चिमी भागों सहित पौंडोलैंड; पोर्ट सेंट जॉन्स; पूर्व ग्रीक्वालैंड) — में से किसीमें भी प्रवेश करना तबतक कानून-सम्मत नहीं होगा जबतक कि उसको स्थानीय मजिस्ट्रेटका हस्ताक्षरयुक्त विशेष परवाना या आदेश न मिला हो और उसपर ट्रान्सकाई इलाकेके मुख्य मजिस्ट्रेटकी मंजूरी न हो। कोई ऐसा व्यक्ति किसी ऐसे परवानेके बिना उक्त इलाकोंमें से किसीमें प्रवेश करेगा तो वह अपराध सिद्ध होनेपर जुर्मानेका जो २ गिनीसे ज्यादा न होगा या जुर्माना न देनेकी सूरतमें सादी या कड़ी कैदकी सजाका पात्र होगा जिसकी अवधि एक महीनेसे अधिक नहीं होगी और उसे उस इलाकेसे तुरन्त चले जानेका हुक्म दिया जायेगा। और यदि ऐसा व्यक्ति ऐसा हुक्म नहीं मानेगा तो वह कसूर साबित होनेपर और जुर्मानेका देनदार होगा जो २ गिनीसे अधिक नहीं होगा और ऐसे इलाकेकी सीमासे तुरन्त हटा दिया जायेगा।

हम नहीं जानते कि भारतीयोंने केप उपनिवेशमें यह प्रतिबन्ध लगाने लायक क्या काम कर डाला है। सही बात यह है कि केपमें भारतीयोंकी आबादी थोड़ी है और केपके राजनीतिज्ञोंने अक्सर यह शेखी बघारी है कि उन्होंने उस उपनिवेशमें जो कुछ किया है वह रंगद्वेषसे प्रेरित होकर नहीं। श्री स्प्रिगने अश्वेत मताधिकारके प्रश्नपर *ब्लूमफॉन्टीन फ्रेंडको* जो उत्तर लिखा है अभी तो उसकी स्याही भी नहीं सूखी है फिर भी हमें केपके सरकारी *गज़टमें* उक्त घोषणा पढ़नेको मिल गई है। श्री स्प्रिगर कहते हैं कि केपके लोग इस बातके लिए बिलकुल राजी हैं कि इस देशके वतनियोंको मताधिकार प्राप्त हो और उसके लिए व्यक्तिकी योग्यता उसकी चमड़ीके रंगसे नहीं परन्तु उसकी सभ्यताकी मात्रासे परखी जाये। यदि यह सच है तो उपर्युक्त मातहत इलाकोंमें भारतीयोंके प्रवेशकी यह मनाही समझमें नहीं आती। अगर केपवासी भारतीयोंके लिए केपमें रहना जुर्म नहीं है तो उनके लिए उसके मातहत इलाकोंमें प्रवेश करना क्यों जुर्म होना चाहिए? बेशक ऐसी विशेष परिस्थितियोंकी कल्पना की जा सकती है जिनमें ऐसा व्यवहार उचित समझा जाये, परन्तु निश्चय ही घोषणामें इस बारेमें बिलकुल कुछ नहीं कहा गया है। इसलिए हमारा यह नतीजा निकालना बिलकुल ठीक ही है कि यह मनाही केवल भारतीयोंके विरुद्ध की गई है। हम इसे भारतीय समाजका विचारहीन अपमान समझते हैं और यह केपके सामुद्रिक द्वार नये प्रवासी भारतीयोंके लिए लगभग बन्द कर देनेसे गम्भीरतर हो गया है। दुर्भाग्यवश ब्रिटिश प्रजाजनोंके नाते भारतीयोंके अधिकारोंपर किये गये इस आघात इसमें उस रंग-विरोधी लहरकी तीव्र गन्ध है जो इस समय दक्षिण आफ्रिकामें चल रही है और जिसका आरम्भ पिछले साल ट्रान्सवाल-सरकारकी १९०३ की

सरकारी-सूचना १५६ से हुआ था। हमें आशा है कि केपके ब्रिटिश भारतीयोंने इस घोषणाका विरोध किया होगा और वे तबतक चैन नहीं लेंगे जबतक यह रद न कर दी जाये या किसी असाधारण परिस्थितिके आधारपर उचित सिद्ध न कर दी जाये। ऐसी घोषणाएँ कुल मिलाकर इतनी हुई हैं कि हम उनसे ऊब गये हैं और उनके विरुद्ध कोई कारगर उपाय भी दिखाई नहीं देता। अगर निर्धारित मार्गसे — जैसे विधान-परिषद द्वारा — कानून पास करनेका सवाल होता तो अधिकार-पत्रके अधीन ब्रिटिश सरकारकी मंजूरी लेनी पड़ती परन्तु जैसा इस मामलेमें हुआ है, घोषणा द्वारा कानून बनानेपर ऐसा कोई नियन्त्रण नहीं है। गवर्नर विधान-मण्डलकी सहायताके बिना कार्रवाई करता है और उसके आदेशोंमें कानूनकी शक्ति होती है। ये घोषणाएँ जारी होनेसे पहले ब्रिटिश सरकार (डाउनिंग स्ट्रीट) के अधिकारियोंके सामने पेश नहीं की जातीं। इसलिए इसका अर्थ यह है कि कभी-कभी सम्राटके सीधे नियन्त्रित इलाकोंमें भारतीयोंके उत्पीड़नके यन्त्रको चलाना जितना आसान होता है उतना वहाँ नहीं जहाँ उचित रूपसे निर्मित कानूनी संगठन है। यह एक सवाल है। हम इसे इंग्लैंडके उन राजनीतिज्ञोंके विचारार्थ प्रस्तुत करते हैं, जिन्हें भारतके बाहर ब्रिटिश भारतीयोंके दर्जेके साम्राज्यीय सवालमें दिलचस्पी है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १७–९–१९०४

२१० स्वर्गीय श्री प्रिस्क

श्री प्रिस्ककी मृत्युने हमारे बीचसे एक विनम्र सत्पुरुष और बहुत ही योग्य पत्रकारको उठा लिया है। परलोकगत महानुभावने अपने विशिष्ट क्षेत्रमें शान्तिपूर्ण और निरभिमान तरीकेसे समाजके लिए बहुत-कुछ किया था। पत्रकारका जीवन कभी सुख चैनका जीवन नहीं होता। उसपर वे जिम्मेदारियाँ होती हैं जिनका आभास जनताको समुचित खयाल भी नहीं होता। एक तरफ तो उसे अपने मालिकोंको खुश रखना पड़ता है और दूसरी ओर लोकमतका प्रतिनिधित्व करना होता है। ऐसा करनेमें उसे बड़ा त्याग करना पड़ सकता है। उसको अक्सर परस्पर विरोधी स्वार्थोंसे निबटना पड़ता है और उसके सामने जो मामले आते हैं उनपर जनताके दृष्टिकोणसे ही नहीं बल्कि अपने दृष्टिकोणसे भी विचार करना पड़ता है और जब उसके अपने ही शुद्ध अन्तःकरणसे मान्य विचार किसी खास मामलेमें लोकमतके विपरीत होते हैं तब स्थिति बड़ी नाजुक हो जाती है। किन्तु श्री प्रिस्क पत्रकारोंके रास्तेमें आनेवाली सभी विघ्न-बाधाओंको सुरुचित रूपसे पार कर जाते थे और अपना कर्तव्य दृढ़तासे पालते थे। हमें अच्छी तरह याद है कि जब नेटालमें भारतीय अकाल-पीड़ितोंके लिए चन्दा शुरू किया गया था तब उन्होंने किस उत्साहपूर्ण रूपसे हमारी सहायता की थी। हमारे अनेक पाठकोंको उन विशेष व्यंग्य-चित्रोंका स्मरण होगा जो *नेटाल मर्क्युरीमें* परिशिष्टांकके रूपमें निकाले गये थे और यह भी स्मरण होगा कि उस अखबारमें अकाल-सम्बन्धी साहित्यको कितना अधिक स्थान दिया गया था। हम श्री प्रिस्कके परिवारके प्रति अपनी आदरपूर्ण समवेदना प्रकट करते हैं और आशा रखते हैं कि उनका कार्य योग्य व्यक्तिको सौंपा जायगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १७–९–१९०४

२११ पीटर्सबर्गके भारतीय

हमारे सहयोगी स्टारमें यह सूचना छपी है कि एशियाई प्रश्नपर कार्रवाई करनेके लिए पीटर्सबर्गमें एक श्वेत-संघ स्थापित किया गया है। इसकी कार्य समितिमें तीन नगर-परिषदके प्रतिनिधि हैं, चार स्थानीय बोअर-बीरोनिगिंग (फेनिजन) के और चार अन्य प्रमुख नागरिक हैं। और यह कि नगर-परिषदकी बैठकमें यह निर्णय किया गया है कि नगरपालिकाओंको काम-काजके घंटे नियमित करनेका अधिकार दिलानेके सम्बन्धमें सरकारसे प्रार्थना की जाये। पीटर्सबर्ग जैसे रंगविद्वेषके गढ़में श्वेत-संघ बनानेका विचार पैदा हुआ इसपर हमें कोई आश्चर्य नहीं। हम इतना ही कह सकते हैं कि इन प्रवृत्तियोंके कारण हमारी समझमें नहीं आते क्योंकि लॉर्ड मिलनरने अत्यन्त सख्तीसे उन थोड़ेसे भारतीय शरणार्थियोंका प्रवेश भी रोक दिया है जिन्हें हर महीने अपने घरोंको लौट आनेकी इजाजत थी। जैसा कि हमारे पाठकोंने अवश्य देखा होगा परमश्रेष्ठने तो एक भारतीय फुटबॉल खिलाड़ी-दलको ट्रान्सवालकी पवित्र सीमामें प्रवेश करनेकी अस्थायी अनुमति भी नहीं दी। तब यदि श्वेत-संघ पचिफस्ट्रूमके पहरेदार-संघकी तरह ट्रान्सवालवासी भारतीयोंको आतंकित करना नहीं चाहते तो वे अपने अस्तित्वका औचित्य सिद्ध करनेके लिए और क्या करेंगे? नगर-परिषदकी काम-काज बन्द करनेके घंटोंको नियमित करनेकी प्रस्तावित कार्रवाईके साथ हमारी सहानुभूति है। हमें मालूम हुआ है कि पचिफस्ट्रूमके भारतीय इस मामलेमें अगुआ बने हैं और उन्होंने फैसला किया है कि उनकी दूकानें उसी समय बन्द की जायेंगी जिस समय यूरोपीय दूकानें बन्द होती हैं। हम इतनी ही आशा रख सकते हैं कि पीटर्सबर्गके भारतीय अपने पचिफस्ट्रूमके भाइयों द्वारा उपस्थित किये गये बढ़िया उदाहरणका अनुसरण करेंगे और नगर-परिषदके लिए ऐसे कोई उपनियम बनाना अनावश्यक कर देंगे। उनके लिए ऐसी कार्रवाई शोभास्पद और सामयिक होगी और शायद इससे यह सिद्ध करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी कि वे प्रस्तावित श्वेत-संघके भावी सदस्योंकी भावनाओंसे यथासंभव समझौता करनेके लिये उत्सुक हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १७–९–१९०४

२१२. पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय

अन्यत्र हम एक प्रशंसनीय पत्र छाप रहे हैं जो पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय संघके मन्त्री श्री मुहम्मद रहमानने ट्रान्सवाल लीडरको भेजा है। इस पत्रसे स्पष्ट मालूम होता है कि पहरेदार संघका जोश कितना प्रबल है और भारतीय लोग गोरोंकी इच्छाओंकी पूर्ति करनेके लिए किस सीमातक तैयार हैं। परन्तु उस पत्रका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश उसमें दी गई यह जानकारी है कि पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय व्यापारियोंने अपनी दूकानें उसी समय बन्द करनेका फैसला किया है जिस समय यूरोपीय करते हैं। यह कदम किसी दबावके बिना उठाया गया है और हमारा खयाल है कि यह ठीक दिशामें है और दूसरे नगरोंके ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंके लिए अनुकरणीय है। असलमें उनका मामला तो वैसे ही बहुत मजबूत है लेकिन पॉचेफस्ट्रूमके भारतीयोंकी इस ताजी कार्रवाईसे उनकी स्थिति और भी मजबूत हो गई है। हमें आशा है कि श्री मुहम्मद रहमानने यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाजनोंसे इस सद्भावके बदलेमें कुछ-न-कुछ सद्भाव दिखानेकी जो प्रार्थना की है उसका समुचित उत्तर मिलेगा क्योंकि हर हालतमें उन्हें भी रक्षाके लिए उसी झंडेपर निर्भर रहना है जिसके संरक्षणमें ब्रिटिश भारतीय रहते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-९-१९०४

२१३. पत्र : दादाभाई नौरोजीको[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६, कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
सितम्बर १९, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२ केनिंग्टन रोड
लन्दन, एस० ई०
इंग्लैंड

प्रिय महोदय,

भारतीय परिस्थितिके बारेमें इस हफ्ते जो सरकारी रिपोर्ट प्राप्त हुई है उसमें मैंने देखा है कि श्री लिटिलटनने भारतीय-बाजारोंके लिए जगहोंके प्रश्नपर जोर दिया है।

आपने देख ही लिया होगा कि सर आर्थर लालीके खरीतेके उत्तरमें दिये गये ब्रिटिश भारतीयोंके निवेदनमें यह बात दुहराई गई है और मामला आँखोंसे ओझल न हो जाये

१. दादाभाई नौरोजीने इस पत्रका पूरा पाठ एक पत्रके साथ उपनिवेश-मन्त्री और भारत-मन्त्रीको भेजा था। (सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडिविजुअल्स-एन और सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडिया ऑफिस)।
२. देखिए "भारतीय बस्तियाँ-ट्रान्सवाल" "(सितम्बर १, १९०४ के पूर्व)"।

इसलिए मैं इस तथ्यपर फिर जोर देता हूँ कि चुनी गई अधिकतर जगहें निश्चय ही व्यापारके अयोग्य हैं। यह वक्तव्य प्रतिष्ठित यूरोपीयोंकी बिलकुल स्वतन्त्र साक्षीके बिना नहीं दिया गया और वे सारी रिपोर्टें परमश्रेष्ठकी सेवामें भेज दी गई हैं। अगर कहीं चुनी गई जगहें जरा भी अच्छी हैं तो केवल क्रूगर्सडार्पमें इसलिए जिन्हें वहाँ चाहिए वे उन्होंने वहाँ बिना किसी जोर-जबरदस्तीके अर्जियाँ दे दी हैं। दूसरे स्थानोंमें जहाँ नयी जगहें तय की गई हैं, अर्जियाँ कमसे कम दी ही नहीं गईं।

तथापि मुख्य बात तो अनिवार्य पृथक्करणको टालनेकी है। यहाँतक *बाजारोंके* सिद्धान्तका सवाल है उपयुक्त स्थानोंमें *बाजारोंके* लिए जगह निश्चित करके लोगोंको जमीनें लेने पर राजी *किया जा सकता है। और समस्या अपने आप हल हो जायेगी।*

मुझे उम्मीद है कि आप केवल प्रशासक (ऐडमिनिस्ट्रेटर) की घोषणापर, जो बिना अनुमतिपत्रके ट्रान्सकीवान क्षेत्रमें भारतीयोंके प्रवेशका निषेध करती है *प्रिविम ओपिनियनका* अपमेक्ष देखेंगे। यह एक नया प्रतिबन्ध है जिसका कारण समझमें आना कठिन है। पूर्वीमें जिन क्षेत्रोंका उल्लेख है वे केपके मातहत हैं।

आपका सच्चा
मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (सी० एन० २२६१) से।

२१४ कुछ और बातें: सर आर्थर लालीके खरीतेके विषयमें

लन्दनसे इस सप्ताह प्राप्त सरकारी रिपोर्टोंसे बहुत स्पष्ट मालूम होता है कि परमश्रेष्ठने ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिके बारेमें कैसा अन्यायपूर्ण रवैया इख्तियार किया है। सर भावनगरीने दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको घटिया दर्जेके एशियाई बतानेपर रोष प्रकट किया है। इसलिए उत्तरमें परमश्रेष्ठने अपने खरीतेके साथ वह पत्रव्यवहार जोड़ दिया है जो पीटर्सबर्गके दिनोंमें *रैंड डेली मेलमें* छपा था और जिसपर कुछ भारतीयोंने हस्ताक्षर किये थे। जब भारतीय बस्तीके चारों तरफ घेरा डाल दिया गया तब इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि बस्तीके कुछ भारतीयोंने अपने रहन-सहनको बाकी लोगोंके रहन-सहनसे ज्यादा अच्छा *समझकर यह सोचा कि बाकी लोगोंपर कीचड़ उछालकर वे अपने लिये कुछ फायदा हासिल* कर लेंगे और इसलिए उक्त पत्र लिखा। परन्तु परमश्रेष्ठ जो सही स्थिति स्वयं जानते हैं जानकारीका उपयोग करके नगरसेत पत्रप्रेषकोंकी अतिशयोक्तियाँ ठीक कर सकते थे। परमश्रेष्ठको मालूम होना चाहिए था कि पत्रमें उन भारतीयोंका उल्लेख था जो पृथक बस्तीमें रह रहे थे और जो आम तौरपर बस्तीसे बाहर रहनेवालोंसे बेशक नीचे दर्जेके हैं। उन्हें मालूम होना चाहिए था कि वे सारे भारतीय समाजके प्रतिनिधि नहीं थे और न हो ही सकते थे और स्वयं पत्र-व्यवहारसे प्रकट होता है कि पत्र लिखनेवालोंको भी जो पृथक् बस्तीमें रह रहे थे निम्नतम वर्गके कुछ भारतीयोंकी श्रेणीमें रखे जाने और पृथक बस्तीमें घेर दिये जानेके विचारपर रोष था। इस दृष्टिकोणसे उनका खयाल बिलकुल ठीक था क्योंकि हमने उस बस्तीमें अच्छे ढंगसे रहनेवाले कई लोगोंको देखा है और हम उन्हें जानते हैं। उनमें से कुछके पास खास अच्छे बने हुए पक्के मकान हैं। इसलिए परमश्रेष्ठके *प्रति उचित आदर रखते हुए भी यह कहा जा सकता* है कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको "घटिया दर्जेके एशियाई बताना दुर्भाग्यपूर्ण" है।

हमारे सहयोगी *नेटाल ऐडवर्टाइज़रने* सर आर्थर लालीके नेटाल-सम्बन्धी इस वर्णनका खण्डन किया है कि ज्यों ही कोई नेटालकी सीमाको लांघता है, उसका यह खयाल मिट जाता है कि वह एक यूरोपीय देशमें ही यात्रा कर रहा है। हमारा सहयोगी इसे "अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन" बताता है और हम भी उसके इस भावको प्रतिध्वनित किये बिना नहीं रह सकते। पाइनटाउन और चार्ल्सटाउनके बीचके रेलवे स्टेशनोंके सिवा आपको मुख्य लाइनपर बहुत थोड़े भारतीय चेहरे दिखाई देंगे और अगर आपको स्टेशनोंपर कुछ कुली दिखाई देते हैं तो इसका कारण यह है कि रेलवेके अधिकारियोंको गिरमिटिया भारतीय मजदूर रखनेमें सुभीता रहता है। इसलिए यदि यह कोई बुराई है तो उपनिवेशने इसे स्वयं ही स्वीकार किया है और परम श्रेष्ठके तिरस्कार करने पर भी वह ऐसा करता रहेगा।

दादाभाई नौरोजीको जो यह बयान भेजा गया था कि "एशियाई-*बाजारोंकी* जगहें व्यापारके लिए बिलकुल निकम्मी हैं" उसपर भी लिटिलटनने निश्चित सम्मति मांगी थी। परमश्रेष्ठने इस मामलेको कुछ ही पंक्तियोंमें इस तरह टाल दिया है:

> ब्रिटिश भारतीय संघका कहना है कि ये जगहें बिलकुल अनुपयुक्त हैं। परन्तु मेरी रायमें उसने अपना पक्ष प्रस्तुत करनेमें अत्युक्ति की है। नगर निवासियोंने जो आपत्तियाँ उठाई हैं वे भी अयुक्तिसंगत हैं। मेरे खयालसे चुनाव अच्छा हुआ है।

हम कहना चाहते हैं कि परमश्रेष्ठने अधिकांश नये स्थानोंको देखा नहीं है। ब्रिटिश भारतीय संघने आरोप दुहराया है और कमसे-कम यह बात बहुत अन्यायपूर्ण है कि परमश्रेष्ठ उन स्थानोंको देखे बिना ही ऐसा बयान दें जैसा उन्होंने दिया है। यह उन भद्रव्यक्तियोंकी गवाहीके खिलाफ है जो अपने नगरोंके प्रतिष्ठित यूरोपीय व्यापारी या डॉक्टर हैं और निष्पक्ष निर्णय देनेके लिए सर्वथा अधिकारी हैं। ये लोग हैं जिन्होंने अधिकांश स्थानोंका व्यापारके लिए बिलकुल अयोग्य और सफाईके खयालसे भी प्रायः अनुपयुक्त कहकर निकम्मा करार दिया है। कुछ भी हो इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि किसी एक उदाहरणमें भी बाजारोंके लिए सड़कें या मुहल्ले निर्धारित नहीं किये गये हैं बल्कि हर जगह बस्तियाँ अलग कर दी गई हैं और उन्हें *बाजारोंका* गलत नाम दे दिया गया है।

अगर हमने परमश्रेष्ठके खरीतेपर फिर कुछ विस्तारसे चर्चा की है तो यह दिखानेके लिए ही कि राज्यके प्रधान द्वारा स्थितिके बारेमें पक्षपातपूर्ण रुख इख्तियार कर लेनेके कारण भारतीयोंकी स्थिति कितनी विषम हो गई है। अभीतक महत्त्वपूर्ण बातचीत चल रही है। प्रश्नका निर्णय नहीं हुआ है और हम इस हकीकतपर जोर देना ठीक समझते हैं कि ब्रिटिश भारतीयोंने कभी स्थितिके बारेमें अतिशयोक्ति नहीं की है और जहाँ-कहीं उनसे बन पड़ा है उन्होंने यूरोपीयोंकी भावनाके सामने झुकनेकी रजामन्दी दिखाई है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-९-१९ ४

२१५. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
दिसम्बर २६, १९०४

सेवामें
माननीय श्री दादाभाई नौरोजी
२२, केनसिंगटन रोड
लन्दन द०-पू० इंग्लैंड

प्रिय महोदय

मुझे आपके दो पत्र मिले। मैं उनके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। श्री उमरने भी आपने जो सलाह अपने पत्रोंमें दी है मुझे बताई। अवश्य जब जरूरत आन पड़ेगी मैं अपनी खत-किताबत अलग-अलग करनेका प्रयत्न करूँगा। आपके सुझावके मुताबिक निशान लगाकर *इंडियन ओपिनियन* आपके पास सीधा भेजा जाये ऐसा मैंने श्री नाजरको लिख दिया है। सरकारने लिख भेजा है कि वह ब्रिटिश भारतीय संघके सबसे ताजा निवेदनके मुताबिक विधान बनानेका इरादा नहीं रखती। इससे मालूम होता है कि सरकार अब अपने उद्देश्यकी पूर्तिसे ही सन्तुष्ट नहीं होगी अर्थात् भविष्यमें होनेवाले भारतीय प्रवासपर प्रतिबंध लगाने और नये अर्जदारोंको परवाना देनेका नियमन करके ही नहीं मान जायेगी। साफ है कि उसका इरादा ब्रिटिश भारतीयोंपर लागू होनेवाले कानून बनानेका सिद्धान्त स्थापित करनेका है। यदि ऐसा हो तो यह बहुत ही भयानक बात है और इससे श्री चेम्बरलेनकी नीति उलट जायेगी। अगर ट्रान्सवालके लिए भेदभावपूर्ण कानून बनानेकी मंजूरी दे दी गई तो केप और नेटाल भी निस्सन्देह उसका अनुसरण करेंगे।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६२) से।

२१६ भारतके पितामह

इंडियाका जो अंक पिछली डाकसे प्राप्त हुआ है उसमें हाल ही में ऐम्स्टर्डम अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलनमें किये गये श्री नौरोजीके स्वागतका सुन्दर वर्णन है।

इंडियाका विशेष संवाददाता कहता है

> अध्यक्ष हुए वान कोलने सम्मेलनमें उपस्थित लोगोंसे अनुरोध किया कि वे अपने स्थानोंसे उठकर सम्मान व्यक्त करनेके लिए मौन खड़े हो जायें। उसके बाद एक अद्भुत और अत्यन्त प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित हुआ। जब श्री दादाभाई नौरोजी धीरे धीरे चलकर मंचके बीचमें पहुँचे तब वह महान श्रोता-समुदाय जो उस विशाल भवनमें भरा हुआ था, उनके सम्मुख मौन और नम्रशिर खड़ा हो गया। यद्यपि यह कार्य सीधा-सादा था तथापि जिस गम्भीरता और सर्वसम्मत रूपसे यह किया गया उससे यह अत्यन्त प्रभावशाली बन गया था खास तौरसे यह स्मरण करते हुए कि यह सम्मान इतनी भिन्न जातियों और राष्ट्रोंके इतने अधिक प्रतिनिधियों द्वारा किया गया था। तब श्री नौरोजी जिन लोगोंके प्रतिनिधि थे उनके प्रति इस प्रकार ओजपूर्ण सम्मान प्रदर्शित करनेके बाद स्वयं उस प्रतिनिधिके सम्मानमें एक जबरदस्त और उत्साहपूर्ण प्रदर्शन किया गया। उस विशाल श्रोता-समुदायका ध्यान भारतकी जनतासे हटकर श्री दादाभाई नौरोजीके गौरवपूर्ण व्यक्तित्वपर केन्द्रित हो गया। उनके जीवन-भरके प्रयत्नोंके सम्बन्धमें जो-कुछ कहा गया था वह सब श्रोताओंने याद किया और अपने हृदयकी भावना अपनी हर्षध्वनियों तालियों और स्वागत तथा प्रशंसासूचक नारोंके द्वारा प्रतिध्वनित की। यह अभिनन्दन देरतक और तल्लीनताके साथ जारी रहा। जिन लोगोंने अन्तर्राष्ट्रीय एकताके इस महान प्रदर्शनको देखा उन सबपर उसकी अमिट छाप पड़ी। यह एकता एक राष्ट्रसे दूसरे राष्ट्रतक ही नहीं, बल्कि एक महाद्वीपसे दूसरे महाद्वीपतक फैल गई है।

प्रत्येक भारतीयको यह जानकर गर्व होना चाहिए कि भद्रेय श्री दादाभाईको जिन्हें भारतवासी प्रेमपूर्वक भारतका पितामह कहते हैं, यूरोपके लोग कितनी इज्जत करते हैं। श्री दादाभाईका जन्म ४ सितम्बर १८२५ को हुआ था। पिछले ४ सितम्बरको उनकी उन्यासीवीं वर्षगाँठ मनाई गई। भगवान् करे, वे अभी और बहुत वर्ष जीवित रहें और नौजवान पीढ़ीको देशके लिए त्याग और सेवाके कार्योंकी प्रेरणा देते रहें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १–१०–१९ ४

२१७. ट्रान्सवाल श्वेत-संघ

एक दूसरे स्तम्भमें हम पीटर्सबर्गमें स्थापित ट्रान्सवाल श्वेत-संघकी नियमावली छाप रहे हैं। उसके उद्देश्य हैं

> एशियाइयोंके विरुद्ध इस देशके समस्त श्वेत निवासियोंका संयुक्त मोर्चा बनाना, एशियाई व्यापारियोंको परवाने देने या नये करनेका काम नियमित और नियन्त्रित करनेके लिए कानून बनवाना और उन्हें नगरों और देहाती क्षेत्रोंको खाली करने और खास तौरपर अलग किये गये *बाजारोंमें* रहने और व्यापार करनेके लिए मजबूर करना।

अन्य तीन उद्देश्योंका अभिप्राय उन दोनों उद्देश्योंकी पूर्ति करना है जो हमने अभी उद्धृत किये हैं। संघ नाराज होकर जोरशोर-भर मचायेगा। इसके सिवा उसके सब प्रयत्न व्यर्थ होंगे क्योंकि देशमें एशियाइयोंकी भरमार हो ही नहीं रही। यह बात दूसरी है कि संघ हजारों चीनी गिरमिटिया मजदूरोंका जिनकी देशमें बाढ़ आ रही है, प्रवेश रोकनेके लिए कुछ उछल-कूद करे। क्योंकि एशियाइयोंका चाहे वे ब्रिटिश प्रजाजन हों या और कोई, स्वतन्त्र प्रवास लॉर्ड मिलनरने कारगर रूपमें रोक दिया है। यहाँतक कि जिन लोगोंने पुरानी हुकूमतको उपनिवेशमें रहनेकी इजाजतके मूल्यके रूपमें ३ पौंडकी रकम चुका दी है उनका प्रवेश भी बन्द कर दिया गया है। जहाँतक परवानोंके नियमन और नियन्त्रणका सम्बन्ध है ब्रिटिश भारतीय संघने स्वयं इन दोनों बातोंके बारेमें प्रस्ताव किया है। अब रही एशियाइयोंको शहरों और देहाती क्षेत्रोंसे हटाने और *बाजारोंमें* रहनेके लिए मजबूर करनेकी बात सो हम यह कल्पना नहीं कर सकते कि यदि इन महाशयोंके हाथोंमें परवानोंका पूरा नियन्त्रण आ जायेगा तो इसकी गम्भीरतापूर्वक जरूरत पड़ेगी। यह ध्यान देने लायक बात है कि श्वेत-संघमें पीटर्सबर्गकी नगर-परिषदके प्रतिनिधियोंकी बहुत प्रमुखता है। जोहानिसबर्गके पत्रोंका कहना है कि ट्रान्सवाल श्वेत-संघकी स्थापनाके साथ-साथ उस प्रार्थनापत्रपर हस्ताक्षर करानेकी तैयारियाँ भी की जा रही हैं जो पचिफ्स्ट्रूम पहरेदार-संघकी ओरसे भेजा गया है और वह इस पत्रमें पहले ही छप चुका है। मान लीजिए कि उसपर ट्रान्सवालके प्रत्येक बालिग यूरोपीय मर्दके हस्ताक्षर हो जाते हैं तो क्या इससे बस्तीका प्रस्ताव — और उसका अर्थ इसके सिवा दूसरा कुछ नहीं है — कानून-सम्मत या न्याय-संगत हो जायेगा? अथवा क्या सम्राटकी सरकारका यह स्पष्ट कर्तव्य नहीं होगा कि वह इस प्रार्थनापत्रके बावजूद ब्रिटिश भारतीयोंके निहित स्वार्थों और अधिकारोंकी रक्षा करे?

ब्रिटिश अखबार और ब्रिटिश भारतीयों सम्बन्धी सरकारी रिपोर्ट

उपर्युक्त बातोंके बिलकुल खिलाफ सरकारी रिपोर्टपर इंग्लैंडके अखबारोंकी लगभग सर्वसम्मत राय पढ़कर हर किसीको बड़ी प्रसन्नता होती है।

> उन्हें बोअर-शासनमें अलग बस्तियोंसे बाहर व्यापार करनेका जो अधिकार प्राप्त था उसको उनसे छीन लेना दुनियाकी नजरोंमें अपने आपको गिरा देना और उन लोगोंके प्रति एक अन्यायपूर्ण हरकतकी मंजूरी देना होगा जिन्हें ट्रान्सवालके गोरे निवासियोंकी तरह ही साम्राज्य-सरकारसे न्यायपूर्ण व्यवहार प्राप्त करनेका हक है।

भारतीय दूकानोंमें द्वेषभावपूर्ण इरादेसे आग लगाई जाये तो भी उनके बारेमें चौड़-धूप करना मजदूरका काम नहीं।

हमें मालूम हुआ है कि पीटर्सबर्गमें भी एक ऐसी ही घटना हुई है। वहाँ एक भारतीय दूकान जला दी गई है। हमारे पास अभीतक पूरे तथ्य नहीं आ पाये हैं परन्तु हम ट्रान्सवाल सरकारका ध्यान इस विचित्र बातकी तरफ खींचना चाहते हैं कि दोनों स्थानोंपर ये घटनाएँ एक साथ हुईं। पॉचेफस्ट्रूममें पहरेदार-संघकी क्रियाशीलताके साथ-साथ एक भारतीय दूकानमें आग लगती है। पीटर्सबर्गमें श्वेत-संघकी रचनाके बाद तुरन्त ही एक भारतीय दूकान जलती है और हमारे खयालसे इन दोनों स्थानोंकी यह प्रवृत्ति सर आर्थर लाली और लॉर्ड मिलनरके भाषणोंका सीधा परिणाम है। उनसे उपद्रवियोंको असाधारण प्रोत्साहन मिला है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१-१९०४

२१९. ट्रान्सवालके गरम स्नानागार

ट्रान्सवालके वार्मबाथ्स [गरम स्नानागारों]–से एक भाईने हमें गुजरातीमें शिकायत भेजी है कि अधिकारी ब्रिटिश भारतीयोंको इस प्रसिद्ध रोग-निवारक जलके उपभोगकी सुविधाएँ नहीं देते। वह कहता है कि यदि कोई भारतीय उसका उपयोग करना चाहता है तो उसे सिर्फ काफिरोंके लिए अलग रखे गये स्नानागारोंमें चले जानेका निर्देश कर दिया जाता है। यह मालूम होता है कि उसने भारतीयोंके लिए एक स्थान बनानेका प्रस्ताव रखा था लेकिन उसका स्वागत नहीं किया गया। हमें विश्वास है कि अगर हमारे संवाददाताके कथनमें कुछ भी सचाई है तो सरकार इस कठिनाईका तुरन्त उपाय करेगी और जो भारतीय इस जलका उपयोग करना चाहें उनको उचित सुविधा प्रदान करेगी।

हम ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीय संघका ध्यान इस पत्रकी ओर आकर्षित करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१-१९०४

२२०. केपके भारतीय

हम एक अन्य स्तम्भमें केप-सरकार द्वारा केप टाउनके ब्रिटिश भारतीय संघके मन्त्री श्री ए० कादिरको लिखित पत्र छापते हैं। यह उस शिकायतके सम्बन्धमें है जो संघने प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियमके अमलके बारेमें की थी। पत्र काफी शिष्टतापूर्ण है परन्तु उसके पक्षमें इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। सरकारने एक भी महत्त्वपूर्ण बातमें कोई रियायत नहीं दी है और उसी कानूनकी आड़ ली है जिसके विरुद्ध राहत माँगी गई थी। संघने एक बहुत ही युक्त प्रार्थना की थी कि स्थानीय भारतीय व्यापारियोंको अपने नौकर भारत लौट जानेपर बदलेमें दूसरे नौकर भारतसे लानेकी कुछ सुविधा दी जाये। उत्तर यह दिया गया है कि ऐसा नौकर यदि कोई यूरोपीय भाषा नहीं जानता तो उपनिवेशमें प्रविष्ट नहीं हो सकता। ऐसा ही उत्तर उपनिवेशमें बसे हुए व्यक्तियोंको उनके नाबालिग बाइवोंके सम्बन्धमें दिया गया है परन्तु उत्तरमें प्रश्नको केवल टाला ही गया है। जैसा कि पत्रके प्रारम्भिक

अनुच्छेदमें कहा गया है, यदि सरकार वास्तवमें इस बातके लिए उत्सुक है कि "कानूनका अमल इस तरह हो जिससे किसी व्यक्ति या समाजके किसी विशेष समूहको, चाहे वह किसी भी वर्ग, रंग या धर्मका हो, अनावश्यक कष्ट न हो" तो सरकारको वांछित दिशामें राहत देनेकी काफी सत्ता प्राप्त है। केपके कानूनकी एक धारामें विशेष छूटकी गुंजाइश रखी गई है और निश्चय ही हमारा यह विचार है कि अगर यहाँ बसे हुए व्यापारियोंका कुछ भी खयाल किया जाये तो उन्हें बाहरसे नौकर लानेका हक होना चाहिए। नौकरोंको किसी यूरोपीय भाषामें लिखना आता हो या न आता हो उन्हें प्रतिबन्धोंके साथ और नागरिकताके पूरे अधिकार दिये बिना उपनिवेशमें प्रवेशकी इजाजत दी जा सकती है। परन्तु यदि पूरा निषेध लागू किया जाता है तो उसका यह अर्थ होता है कि यहाँ बसे हुए भारतीयोंकी स्थिति दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक विषम होती जायेगी और चूँकि देशी नौकर मिलना बन्द हो जायेगा जैसा कुछ समयमें होना निश्चित है। हम आशा करते हैं कि ब्रिटिश भारतीय संघके मन्त्री इस मामलेको तबतक न छोड़ेंगे जबतक पूरा न्याय नहीं किया जाता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-१०-१९०४

२२१. एक अच्छा उदाहरण

हम श्री उमर हाजी आमद झवेरीका हार्दिक स्वागत करते हैं जो देशसे लम्बे अरसेतक दूर रहने और यूरोप तथा अमरिकाके लम्बे भ्रमणके बाद लौटे हैं। हमारे खयालसे श्री उमरने इस महाद्वीपका दौरा करके बहुत बुद्धिमानी की है। हमारे व्यापारी इन देशोंमें जितना अधिक जायेंगे, व्यापार और जीवनके दूसरे क्षेत्रोंमें उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त कर सकेंगे। केवल तफरीह करनेके लिए नहीं बल्कि ज्ञानप्राप्त करने और विचारोंको उदार बनानेके लिए यूरोप और अमेरिकाकी यात्रा करनेके बाद मनुष्य अनेक कठिनाइयोंका सामना कर सकता है, खास तौरसे ऐसी कठिनाइयोंका जैसी दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके सामने दरपेश हैं। और श्री उमरने इस बारेमें दूसरे व्यापारियोंके लिए अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है। हमें आशा है श्री उमर अपनी यात्रामें प्राप्त ज्ञानका पूरा उपयोग करेंगे और, जहाँ भी जरूरत होगी, उसपर अमल करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-१०-१९०४

२२२ एक बेअंग्रेजियत अंग्रेज मजिस्ट्रेट

एक विश्व-यात्री जो अपनेको "एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट" कहते हैं नेटालमें भ्रमण कर रहे हैं। उन्होंने *नेटाल मर्क्युरी*के द्वारा जनताके सामने अपने संस्मरण पेश किये हैं। प्रशंसात्मक स्वरमें डर्बनका वर्णन करनेके बाद "एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट" कहते हैं :

> लेकिन इसके बावजूद अपनी दृष्टिसे देखनेपर डर्बनकी जानकारीके साथ-साथ मुझे एक-दो खेदजनक बातोंकी जानकारी भी हुई है। इस गोरोंके शहरमें भारतीयों और अरबोंको इतना प्रमुख स्थान कैसे प्राप्त हो गया? अवश्य ही वे हमारी तरह सम्राट्के प्रजाजन हैं परन्तु फिर भी गोरा गोरा ही है और काला काला ही। कह नहीं सकता यह कहानी है या सत्य — किन्तु मुझे बताया गया है कि डर्बनके एक अत्यन्त भव्य भण्डारका मालिक अपने कोनेपर स्थित एक छोटे अरब सौदागरकी दूकानको सम्मानपूर्वक प्राप्त करना चाहता था। उसने अपने वकीलको यह पूछनेके लिए भेजा कि क्या वह उसका व्यवसाय खरीद सकता है और यदि हाँ, तो किस कीमतपर। अरबने उत्तर दिया कि अभी उसकी इच्छा अपना कारोबार बेचनेकी नहीं है परन्तु यदि पड़ोसी अपनी दूकानकी कीमत बतावे तो वह उसे खरीदनेके बारेमें तुरन्त विचार करेगा।

दूसरी बात जिसपर लेखक खेद प्रकट करता है, यह है कि डर्बनकी पुलिसमें काफिर क्यों रखे जायें। अगर यात्रीने डर्बनके इतिहासकी काफी पूछ-ताछ की होती तो शायद उन्हें पता चल गया होता कि जैसा वे कहते हैं डर्बन यद्यपि गोरोंका शहर है फिर भी भारतीयोंकी उपस्थितिसे ही यह सुन्दर और भव्य बना है। उन्हें मालूम हो गया होता कि "एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट" जैसे आदमियोंको जीवनकी सारी आधुनिक सुविधाएँ प्राप्त हो सकें इसलिए डर्बन नगर-निगम गिरमिटिया भारतीयोंको एक बहुत बड़ी संख्यामें नौकर रखता है। अब रही दूसरी खेदजनक बात। बेचारे काफिर सिपाहीके बचावमें हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि उन्हींकी उपस्थितिसे डर्बन अपराधोंसे अपेक्षाकृत अधिक मुक्त है। इसका कारण यह नहीं कि काफिर पुलिस यूरोपीय पुलिससे अधिक दक्ष है बल्कि यह है कि नगर कम वेतनके काफिरोंको नियुक्त न करे तो उसके लिए आवश्यक संख्यामें पुलिस रखना असम्भव है। नगरकी पुलिसमें भारतीय और काफिर न होते तो शायद डर्बन ही न होता — फिर चाहे वह गोरोंका हो या कालोंका। तब ऐसी अविवेकपूर्ण ईर्ष्या क्यों? अथवा दक्षिण आफ्रिकाके जलवायुमें ही कुछ ऐसा तत्त्व छिपा हुआ है, जिसके प्रभावसे मनुष्य अपनी परम्पराओंको भूल जाता है?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१ -१ ४

२२३ पत्र गो० कृ० गोखलेको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़ रिसिक व एंडर्सन स्ट्रीट
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जनवरी २, १९०४

प्रिय प्रोफेसर गोखले

आपकी व्यस्तता जाननेके कारण मैंने जानबूझकर आपको समय-समय पर नहीं लिखा है किन्तु कांग्रेस अधिवेशनकी निकटताके कारण अब ऐसा करना सम्भव नहीं है और मैं परिस्थितिके सम्बन्धमें लन्दनमें प्रकाशित सरकारी रिपोर्टकी एक प्रति इसके साथ भेज रहा हूँ। यह केवल ट्रान्सवालके बारेमें है और सारा भार ट्रान्सवालकी स्थितिकी ओर ही लगाता है। समस्त आशाओंके विपरीत लॉर्ड मिलनर, जो युद्ध प्रारम्भ होनेके समय ब्रिटिश भारतीय और अन्य पीड़ितोंके पक्षपाती थे एकदम उलट गये हैं। यह उनके खरीतेसे स्पष्ट है। युद्धके पहले ट्रान्सवालमें भारतीयोंको जो थोड़े-बहुत अधिकार प्राप्त थे उनसे भी व उन्हें वंचित करनेके लिए बिलकुल तैयार हैं। मैं खरीतोंके उत्तरमें ब्रिटिश भारतीय संघका आवेदन नत्थी कर रहा हूँ। इससे प्रकट होगा कि भारतीय किस सीमा तक जानेके लिए उद्यत हैं। उसमें आप देखेंगे कि वे अचल सम्पत्तिपर अधिकारके बदलेमें भारतीय प्रवासपर प्रतिबन्ध और स्थानीय अधिकारियों द्वारा परवानोंका नियमन माननेके लिए राजी हैं जो यूरोपीयोंकी लगभग समूची माँग है। चूँकि सरकार भेदपूर्ण विधानके सिद्धान्तको प्रतिष्ठित करना चाहती है मुझे भय है कि केवल इसीलिए प्रस्ताव ठुकरा दिया गया है। ब्रिटिश भारतीय संघका यह कथन है कि विधान जैसा भी हो सबपर लागू होना चाहिए। ट्रान्सवाल सरकार ऐसा नियम बनाना चाहती है जो सिर्फ एशियाइयोंपर — सब ही व ब्रिटिश प्रजा हैं या नहीं हैं — लागू हो। जैसा कि आप जानते हैं, ऐसा विधान बनानेकी अनुमति स्वशासित उपनिवेशोंको भी नहीं दी गई है उदाहरणार्थ केप और नेटाल यद्यपि इन दोनों जगहोंमें सरकारने ऐसा विधान बनानेका विचार किया था।

सरकारी रिपोर्टमें सर मंचरजीके आवेदन (परिशिष्ट—क)में तीन पौंडका पंजीयन-शुल्क वार्षिक बताया गया है। वास्तवमें यह एक ही बार लिया जाता है।

परवानोंके बारेमें परीक्षात्मक मुकदमेके[1] बादसे भारतीयों और यूरोपीयोंकी स्थिति एक हो गई है।

फोर्ड्सबर्ग पासोंका चलन खत्म कर दिया गया है।

ऑरेंज रिवर कालोनीमें कानून अत्यधिक कड़ा है और अभीतक उसे हटानेके लिए कुछ नहीं किया गया है।

नटालका विक्रेता-परवाना अधिनियम बहुत अधिक कठिनाई उत्पन्न कर रहा है। यह स्थानीय अधिकारियोंको मनमानी ताकत देता है किन्तु सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलका अधिकार नहीं देता।

मुझे आशा है कि आप *इंडियन ओपिनियन* पढ़ते रहे हैं जो एकदम ठीक-ठीक जानकारी देता है।

१ हबीब मोटन बनाम ट्रान्सवाल सरकार देखिए "[illegible]" पृष्ठ १४ १९ ८।

ट्रान्सवाल और लंदनके दूसरे समाचारपत्रोंका खयाल है कि ट्रान्सवालमें कठोर बरतावका असर भारतीयोंके मनपर बहुत खराब होगा और उससे भारतीयोंकी राजभक्तिपर बहुत दुष्प्रभाव पड़ेगा। इससे प्रकट है कि दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति न्यायके लिए भारतमें मुखर और लगातार आन्दोलन होना चाहिए। अतएव मैं सोचता हूँ कि अबतक इस विषयपर जितना ध्यान दिया गया है कांग्रेसको उसपर उससे अधिक ध्यान देना चाहिए और दुर्व्यवहारको जारी रखनेका विरोध करते हुए सारे भारतमें आम सभाएँ भी होनी चाहिए।

आशा है आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। आपका उत्तर पाकर बहुत प्रसन्नता होगी।

आपका सच्चा,

मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४१ ३) से।

२२४. जोहानिसबर्गकी पृथक बस्ती

हम अन्यत्र जोहानिसबर्गकी अलग बस्तीके अति विवादग्रस्त प्रश्नपर लोक-स्वास्थ्य समितिकी रिपोर्ट प्रकाशित कर रहे हैं। हमारे पाठकोंको याद होगा कि यह लोक-स्वास्थ्य समितिकी चौथी रिपोर्ट है और इसमें समितिकी सारी मक्कारी खुल गई है और वह अपने असली रूपमें प्रकट हो गई है। यह रिपोर्ट अप्रत्यक्ष रूपसे सर आर्थर लालीके इस दावेका पूरा जवाब है कि एशियाई बाजारोंके स्थानोंका चुनाव बहुत अच्छा किया गया है और उनमें बसनी और यूरोपीय दोनोंके व्यापारिक विकासकी गुंजाइश है। पहले तो लोक-स्वास्थ्य समितिने मलायी बस्तीके बहुत पास ही एक स्थान निश्चित किया था। फिर उसने उस स्थानकी सिफारिश की जिसको बोअर-सरकारने चुना था और अब उसने वह जगह तय की है जो प्लेग फैलनेके समय पृथक-शिविरके रूपमें इस्तेमाल की गई थी और जो जोहानिसबर्गसे तेरह मील दूर स्थित है। यदि समितिकी सिफारिशोंपर अमल किया गया तो लगभग पाँच हजार भारतीय जिनमें कुछ पुराने व्यवसायियोंके अलावा सब फेरीवाले और व्यापारी शामिल हैं उसी स्थानमें हटा दिये जायेंगे। और इसके कारण बताते हुए समितिका कहना है :

> यदि वर्तमान स्थितिको जारी रहने दिया गया तो कुछ प्रकारके उद्योग — जवाहर आदि छोटे व्यापारियों और दस्तकारोंके उद्योग — जिनसे अन्यथा काफी बड़ी संख्यामें यूरोपीयोंको रोजगार मिलता, अनिवार्य रूपसे एशियाइयोंके हाथोंमें चले जायेंगे और उसके परिणामस्वरूप स्वावलम्बी यूरोपीय आबादीके विकासमें बहुत बाधा आयेगी।"

यह आश्चर्य है कि जो दलीलें पहले कभी नहीं सोची गईं, वे अब ढूंढ़-ढूंढ़ कर ऐसी नीतिके समर्थनमें पेश की जा रही हैं जो खुले शब्दोंमें कमजोर जातियोंकी नीति है। हम अज्ञानके कारण भी समझे बिना कहते हैं कि जोहानिसबर्गमें कोई भारतीय दस्तकारवर्ग है ही नहीं। यह सच है कि थोड़ेसे उपेक्षित बढ़ई और उनसे भी कम ईंट-पथेरे हैं। परन्तु वे किसी भी तरहकी प्रतिस्पर्धामें नहीं पड़ना चाहते। जोहानिसबर्गके भारतीय वहाँ कमसे-कम १८९६ से रह रहे हैं क्योंकि उसी समय जनगणना की गई थी और उनकी आबादी अब भी लगभग उतनी ही है जितनी कि उस समय थी। फिर भी भारतीय किसी भी क्षेत्रसे यूरोपीयोंको निकालनेमें समर्थ नहीं हो सके

है। गोरोंका जोहानिसबर्ग आज भी गोरोंका ही है और इतनेपर भी लोक-स्वास्थ्य समितिको अचानक पता लगा है कि भारतीय आबादीकी उपस्थितिसे स्वावलम्बी यूरोपीय आबादीके विकासमें बहुत बाधा आयेगी यद्यपि यूरोपीय आबादी सतत बढ़ रही है, जब कि शान्ति रक्षा अध्यादेशके दुरुपयोगके कारण भारतीयोंकी आबादी घट रही है और अवश्य ही घटती जायेगी। समितिके पक्षमें जनगणनाके जो आँकड़े पेश किये गये हैं वे बिलकुल भ्रमोत्पादक हैं, और इंग्लैंडमें ही प्रचारित करनेके उद्देश्यसे दिये जा सकते थे क्योंकि स्थानीय लोगोंको तो शायद उनसे गुमराह नहीं किया जा सकता। यह बयान गलत है कि ट्रान्सवालकी रंगदार आबादी गोरी आबादीसे पहले ही से ७१ ८३ और २२ १७ के अनुपातमें अधिक है। हमें मानना होगा कि जोहानिसबर्गकी लोक-स्वास्थ्य समिति जैसी प्रतिनिधि संस्थाकी तरफसे ऐसी गलत बयानीके लिए हम तैयार नहीं थे। ट्रान्सवालकी विशाल वतनी आबादी और रंगदार आबादीमें क्या सम्बन्ध हो सकता है, यह हमारी समझमें नहीं आता और अगर लोक-स्वास्थ्य समितिने केवल भारतीयोंका ही विचार करनेका कष्ट किया होता जिनके लिए अलग बस्ती कायम की जायेगी तो यह निषेधात्मक रूपमें सिद्ध किया जा सकता था कि भारतीयों द्वारा यूरोपीयोंका स्थान ले लेनेका भय काल्पनिक है, क्योंकि जोहानिसबर्गमें ८४ गोरोंके मुकाबिलेमें भारतीय आबादी ७ से कुछ ही अधिक होगी। और ट्रान्सवालमें जहाँ भारतीयोंकी आबादी १ से कुछ ही अधिक है वहाँ यूरोपीय आबादी १ है। एक ओर भारतीय स्पर्धासे यूरोपीयोंके विनाशकी बात करना और दूसरी ओर अंग्रेज जनताके सामने वतनी आबादीको शामिल करके आँकड़े पेश करना और अनुपातकी भयंकर विषमता दिखाना एक बड़ी सार्वजनिक संस्थाके योग्य नहीं है। और फिर समितिने एक ओर जोहानिसबर्गके और दूसरी तरफ नेटाल और पीटर्सबर्गके बीच तुलनाकी है। यह सर आर्थर लालीकी जैसी तुलनाका दूसरा उदाहरण है।[1] हम विवादके इस पहलूकी पहले ही चर्चा कर चुके हैं और हमने नम्रतापूर्वक यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि यह सारा विवाद भारतीयोंके पक्षमें जाता है। अब समिति निडर होकर कहती है कि यूरोपीय व्यापारमें ब्रिटिश भारतीयोंका बिलकुल कोई हिस्सा नहीं होना चाहिए और बाजार यूरोपीयोंसे आबाद बस्तीके पास-पड़ोससे बिलकुल अलग रखा जाय। और इसी कारण समितिने भारतीयोंको ले जाकर बास देनेके लिए क्लिपस्प्रूटका जंगल चुना है, जहाँ वे आपसमें एक दूसरेसे और थोड़ेसे काफिरोंसे ही व्यापार कर सकते हैं। इसके सिवा और कहीं फेरी या व्यापार नहीं कर सकते। परन्तु काफिर लोग भारतीयोंके ग्राहक नहीं हो सकते क्योंकि वे ज्यादातर मजदूर हैं। इस कारण उन्हें सुबह जल्दी ही शहर जाना और रातको शायद आठ बजेके करीब लौटना होगा। ऐसी सूरतमें यह सम्भव नहीं होगा कि वे उस समय एशियाइयोंके पास जायें और उनसे खरीददारी करें। वे स्वभावतः अपनी जरूरी चीजें शहरसे खरीदेंगे। गन्दगीका आरोप भी फिर पेश किया गया है। समिति कहती है किसी भी प्रकारके देखरेखके तरीकेसे इन लोगोंसे सार्वजनिक स्वास्थ्यके उपनियमोंका पालन कराना असम्भव है। हम समितिको चुनौती देते हैं कि वह इस कथनका समर्थन आँकड़े देकर करे। हम यह चाहते हैं कि भारतीयोंके विरुद्ध लोक-स्वास्थ्य उपनियमोंके मातहत कितने मुकदमे चलाये गये हैं और कितने मामलोंमें उन्होंने नियमोंका पालन करनेमें गफलत की है, यह आँकड़े देकर बताया जाये। जहाँतक हमें मालूम है और हमें जोहानिसबर्गके भारतीयोंकी कुछ जानकारी है हमें बड़ा आश्चर्य होगा यदि पूरे सालमें ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध छः मुकदमे भी चलाये गये हों। और हम दावेसे यह

[1] देखिए "इंडियन ओपिनियन" सितम्बर १, १९०४ और "सर आर्थर लाली और ब्रिटिश भारतीय", सितम्बर २४, १९०४।

सकते हैं कि शायद ही किसी मामलेमें एक ही आदमीपर दुबारा मुकदमा चलाया गया होगा। सफाई-दारोगाने दक्षिण आफ्रिकाभरमें यह बात जोर देकर कही है कि भारतीय सौदे होते हैं और कानूनी आज्ञाओंके पालनके लिए तैयार रहते हैं। समिति कहती है कि हालमें हुए प्लेगके प्रकोपसे और उनसे सम्बन्धित घटनाओंसे यह साबित हो गया है कि खुद शहरके भीतर स्थित बस्तीका कारगर तौरपर पृथक्करण मुश्किल है। किन्तु डॉ॰ पेक्सने अपनी रिपोर्टमें कहा है कि भारतीय बस्तीके गिर्द सफलतापूर्वक घेरा डाल कर प्लेग जड़से मिटा दिया गया। इसलिए या तो उनका कहना गलत था या लोक-स्वास्थ्य समितिका कहना गलत है। डॉ॰ पेक्सको उनके शानदार कामपर बधाई दी गई है। और अब यह अप्रत्यक्ष अर्थ लगाना उनका अपमान करना है कि नगरके भीतर स्थित होनेके कारण बस्तीका कारगर तौरपर पृथक्करण असम्भव था। हम लोक-स्वास्थ्य समितिके इस लापरवाहीसे दिये गये बयानका भी खण्डन करते हैं कि भारतीय खास तौरपर चेचकके शिकार होते हैं। नेटालका अनुभव बताता है कि बात ऐसी नहीं है। और प्लेगके बारेमें भी हमें इस आरोपपर बहुत आपत्ति है कि भारतीयोंको अवश्य ही प्लेग अधिक होता है। प्लेग जो भारतीय बस्तीमें शुरू हुआ और जिसके लिए लोक-स्वास्थ्य समिति ही जिम्मेदार थी उस बस्तीतक ही सीमित रहा और यदि उस बस्तीके बीमारोंकी संख्याको निकाल दिया जाये तो पता चलेगा कि भारतीय दूसरोंकी अपेक्षा प्लेगके अधिक शिकार नहीं हुए। लोक-स्वास्थ्य समितिका अन्तिम कारण — गरीब गोरों और गरीब भारतीयोंके बीच सामाजिक सम्पर्क — एक तुच्छ तर्क है। प्रथम तो दोनोंमें बिलकुल कोई सामाजिक सम्पर्क नहीं है। दूसरे, हम यह जानना चाहेंगे कि गोरोंके सामाजिक हलकेमें भारतीयोंकी उपस्थितिसे क्या मदद मिली है भारतीय समाजका कौनसा खास दोष है जो गोरोंने पिछले १७ वर्षोंमें उनसे ग्रहण किया है। और दोनों वर्गोंके साथ-साथ रहनेकी घटना किसी भी तरह जोहानिसबर्गके लिए विशेष नहीं है। वे केप टाउन, किम्बरले, डर्बन, मॉरिशस, लंका और भारतमें साथ-साथ रहते रहे हैं। भारतीयोंके विरुद्ध यह आरोप कहीं भी नहीं लगाया गया; कहीं भी भारतीयोंको बिलकुल अलग रख देनेके पक्षमें यह दलील नहीं दी गई। इससे अच्छा तो यही होगा कि इस तरह धीरे-धीरे उत्पीड़नके बजाय जैसा कि लोक-स्वास्थ्य समितिने प्रस्ताव किया है एक बार ही कानून बनाकर भारतीयोंको हमेशाके लिए जोहानिसबर्गके बाहर निकाल दिया जाये। यहाँ रहनेवाली आबादीके साथ या तो अच्छा बरताव किया जाये या उसे इस देशसे खदेड़ दिया जाये। उनको देशसे निकालनेकी कार्रवाई सख्त तो होगी लेकिन यह संखियाका जहर जैसा देकर धीरे-धीरे, किन्तु निश्चित रूपसे प्राण लेनेकी क्रियाकी अपेक्षा कहीं अधिक सदय होगी। और यह जहर है, समाजको उसकी प्रवृत्तियोंके क्षेत्रसे मीलों दूर एक बाड़ेमें खदेड़ देना और फिर पोषणके अभावमें मरने देना।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१-१९०४

२२५ विक्रेता-परवाना अधिनियम

नेटाल परवाना अधिनियम अभीतक नेटालके भारतीय दुकानदारोंके सिरोंपर डेमाक्लीजकी तलवारकी तरह लटक रहा है। जबतक यह गैर-ब्रिटिश विधि उपनिवेश विधि संहिताको कलंकित कर रही है तबतक भारतीय दुकानोंका व्यापारिक सम्पत्तिके रूपमें कोई मूल्य नहीं है। श्री हुंडामलको जो बड़े पुराने व्यापारी हैं और जिनका सारा व्यापार ऊँचे तबकेके यूरोपीयोंमें है डर्बनके एक प्रमुख बाजारकी दुकान खाली करनेकी सूचना दी गई। वे वेस्ट स्ट्रीटकी दूसरी दुकानमें चले गये। उनके ३१ दिसम्बरतक व्यापार करनेका बदस्तूर परवाना उनके पास है। इसलिए परवाना अधिकारी द्वारा स्थान-परिवर्तनका पंजीयन करनेतक उन्होंने व्यापार बन्द नहीं किया। अधिकारीने स्थान-परिवर्तनके पंजीयनसे इनकार कर दिया। तब भी वे व्यापार करते रहे और उन्होंने अपीलकी सूचना दायर की। न्यायालयमें ऐसी सूचना स्थितिको जैसा-का-तैसा छोड़ देती है। किन्तु परवाना-अधिकारीकी निरंकुश सत्ता है। श्री हुंडामलका व्यापार जारी रखना उसे अपनी शानके खिलाफ लगा। इसलिए उसने उन्हें न्यायाधीशके सामने पेश किया। हमारी विनम्र रायमें न्यायाधीशने एकदम अनुचित निर्णय किया कि प्रतिवादीने अधिकारियोंकी उपेक्षा करके व्यापार जारी रखा है और उसपर २ पौंडका अधिकतम जुर्माना कर दिया। अपील दायर की गई है और इसलिए हम इस असाधारण निर्णयपर और कुछ कहनेसे अपनेको रोक रहे हैं। हम इतना ही कहेंगे कि यदि निर्णय सही है तो सम्राटकी किसी भी प्रजाको देशके कानूनपर अपनी समझके अनुसार चलनेका साहस नहीं हो सकता। हम सरकारका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं क्योंकि यह उदाहरण बताता है कि जबतक कानून नहीं बदला जाता तबतक नेटालके गरीब भारतीय व्यापारियोंको चैन नहीं मिल सकता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-१-१९०४

२२६ प्रीतिभोजमें भाषण

यह भाषण गांधीजी और डर्बनके भारतीय समाजके अन्य नेताओंके सम्मानमें दिये गये एक प्रीतिभोजके सिलसिलेमें किया गया है

[जनवरी १, १९०४]

श्री गांधीने आत्म-बलिदानका विवेचन करके जापानके सम्राट और लोगोंका उदाहरण देकर बताया कि किसी भी राष्ट्रकी उन्नति उसके व्यक्तियोंके आत्मत्यागपर आधारित है।

उपस्थित सज्जनों द्वारा इस विषयपर कुछ प्रश्न पूछे जाने पर उन्होंने उनका खुलासा भी किया।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-१-१९०४

२२७ हुंडामलका परवाना

इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुकदमेका अभीतक फैसला नहीं हुआ है। हमने अपने पिछले अंकमें इसके विषयमें लिखा था[1] तबसे अबतक वह दूसरे दौरमें पहुँच गया है। यह स्मरणीय है कि प्रतिवादी हुंडामलपर जब न्यायाधीशके सामने परवानेके बिना व्यापार करनेका आरोप लगाया गया तो उसने दरख्वास्त की कि इस मामलेको तबतक स्थगित कर दिया जाये जबतक नगर-परिषद उसकी अपीलका फैसला नहीं कर देती किन्तु वह व्यर्थ गई। श्री हुंडामलने अपना परवाना वे स्ट्रीटसे वेस्ट स्ट्रीटमें बदलनेकी प्रार्थना की थी जो परवाना अधिकारीने नामंजूर कर दी थी। उक्त अपील उसी नामंजूरीके विरुद्ध थी। बुधवार ७ अक्तूबरको अपील सुनी गई और श्री मुलकाईके स्वांग और प्रार्थीकी ओरसे श्री रिन्कके सुन्दर भाषणके बाद खारिज कर दी गई। परवाना-अधिकारीने अपनी इनकारीके ये दो सबब दिये कि प्रार्थीके पास पहलेसे ही पाँच परवाने हैं और वेस्ट स्ट्रीटमें एशियाई व्यापारियोंकी संख्यामें वृद्धि करना अभीष्ट नहीं है। मालिकोंकी नौकरी बचानेके उत्साहमें परवाना-अधिकारीने जो मिथ्याचार करना उचित समझा उसका श्री बर्नेने जो परिषदके एकमात्र वकील सदस्य हैं हिम्मतके साथ पर्दा फाश किया। वे परवाना-अधिकारीसे यह कबूल करा सके कि पाँच परवाने दूकानोंके परवाने नहीं फेरीके परवाने थे। जब यह पूछा गया कि इस बातका उल्लेख कारण-वक्तव्यमें क्यों नहीं किया गया तो परवाना-अधिकारीने कहा कि उसे इसकी जरूरत महसूस नहीं हुई। श्री बर्नेका विचार है कि ऐसे महत्वपूर्ण तथ्यके उल्लेखको छोड़नेमें परिषद और जनताको गुमराह करनेके प्रयत्नकी तीव्र गंध आती है। परवाना अधिकारीने जो दूसरा कारण दिया हम अत्यन्त विनम्रभावसे कहते हैं कि वह कम कष्टदायक नहीं था। वेस्ट स्ट्रीटमें लगभग १   यूरोपीय भण्डारोंके मुकाबिलेमें भारतीय भण्डार केवल आठ हैं। इसलिए यदि यह केवल अनुपातका प्रश्न हो तो यह कहना बहुत कठिन है कि उस सड़क-पर भारतीय परवानोंपर सम्पूर्ण निषेध लागू करनेकी घड़ी आ गई है। किन्तु परिषदके सामने श्री रिन्कने जो तथ्य असन्दिग्ध रूपसे सिद्ध किये उनसे स्पष्ट होता है कि इस मामलेमें कितनी बेदर्दीसे बेइन्साफी की गई है और कितने खुले तौरपर प्रश्न जातीय आधारपर तय किया गया है। क्योंकि यह प्रमाणित कर दिया गया है कि प्रार्थीने सन् १८ ५ से जब-तब डर्बनमें व्यापार किया है वह भारतीय और जापानी रेशम तथा नफीस चीजें बेचता है, इस व्यापारकी यूरोपीय भण्डारोंसे स्पर्धा नहीं है उसकी सारी ग्राहकी यूरोपीयों और सो भी ऊँचे तबकेके यूरोपीयोंमें है जिस मकान या जायदादपर उसका कब्जा है वह सुन्दरता और स्वच्छताकी दृष्टिसे सर्वथा ठीक है वह स्वयं संस्कृत है और भारतीय समाजमें ऊँचा दर्जा रखता है लगभग एक दर्जन यूरोपीय पेढ़ियोंने उसे इस विवादास्पद क्षेत्रमें व्यापार करनेकी अनुमति पानेके योग्य और हर तरह ठीक व्यक्ति कहा चालीससे अधिक यूरोपीय सज्जनोंने उसके आवेदनका जोरदार समर्थन किया। यह प्रमाणित किया गया कि वह वेस्ट स्ट्रीटमें व्यापार करता भी था किन्तु पट्टेकी अवधि समाप्त हो जाने और मालिकको स्वयं मकानकी जरूरत होनेके कारण उसे वह छोड़ना पड़ा था। अत: जीविकोपार्जनका अवसर छीने जानेका एकमात्र आधार उसकी चमड़ीका रंग हुआ। हमें आश्चर्य नहीं कि श्री रिन्कने इसका आवेशयुक्त विरोध किया कि जो बात किसी यूरोपीयमें होनेपर

[1] देखिए विक्रेता-परवाना अधिनियम अक्तूबर ८ १ ४

अप्रशंसनीय व्यापारिक जोखिम मानी जाती नहीं उसके अर्जदारोंके लिए अयोग्यताका कारण मानी गई। यहाँ यह ध्यानमें रखना है कि भारतीय गृह-स्वामीके हितका कोई विचार नहीं किया गया। अक्सर उस पर यह ताना मारा जाता है कि वह समयकी गतिके साथ कदम नहीं रखता और केवल झोपड़ियाँ बनाता है। अब प्रस्तुत उदाहरणमें उसने भण्डार बनानेमें कई हजार पौंड खर्च किये और भण्डार आकृतिकी शोभनीयतामें भी वेस्ट स्ट्रीटके अच्छेसे-अच्छे भण्डारोंसे होड़ कर सकता है। और आश्चर्य है, उसके इस साहसका नतीजा निकला सर्वनाशकी सम्भावना और जो श्रेष्ठ पश्चिमीय स्तरके मुताबिक रहनेका प्रयत्न कर रहा है उस अर्जदारके दिवालिया हो जानेकी सूरत। और यह उन मामलोंमें से एक है जिनके बारेमें स्वर्गीय श्री एस्कम्बका खयाल था कि इन्हें परवाना अधिनियम कभी हाथ भी नहीं लगा सकता। उन्होंने इसे पेश करनेके समय जो भाषण दिये थे हम नीचे उनके अंश और तत्सम्बन्धी स्वर्गीय सर हेनरी बिन्सकी भविष्यवाणी उद्धृत कर रहे हैं। अन्यायकी इस कथाके अन्य पहलुओंपर हमें आगामी अंकमें विचार करना पड़ेगा क्योंकि हमें मालूम हुआ है कि अपीलकर्त्ता सर्वोच्च न्यायालयमें परिषदके स्थानान्तरणको नियन्त्रित करनेके अधिकारका प्रश्न उठा रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १५–१–१९ ४

२२८. श्री मदनजीतका सम्मान

इंडियन ओपिनियन के मालिक श्री मदनजीतकी भारत-यात्राके उपलक्षमें उनको विदाई देनेके लिए डर्बनमें एक समारोह किया गया था। उसमें गांधीजीने एक भाषण दिया था जिसकी संक्षिप्त रिपोर्ट यह है

[अक्तूबर १५, १९ ४]

श्री गांधीने १८९४ में जब श्री मदनजीत इस देशमें आये तबसे आजतकके उनके जीवनके बारेमें संक्षिप्त जानकारी दी और उनके धीरज और लगनका बखान किया कि वे किस प्रकार छापेखानेकी आर्थिक स्थितिके विषम होते हुए भी मुश्किलें सहकर तन मन धनसे मेहनत करके भारतीयोंके लाभके लिए निकलनेवाले पत्र *इंडियन ओपिनियन*को चलाते रहे हैं। इसके बाद उन्होंने सबको छापेखानेकी कुछ परिस्थितियोंसे वाकिफ किया।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २२–१०–१९ ४

२२९. जोहानिसबर्ग नगर-परिषद

नगर-परिषदने लोक-स्वास्थ्य समितिकी बहुत महत्वपूर्ण रिपोर्टपर विचार कर लिया है और समितिके दिये हुए क्रियात्मक सुझाव सर्वसम्मतिसे मान लिये हैं। इस बारेमें उसकी यह सर्वसम्मति दुःखजनक है। इसके अन्तर्गत अनिवार्य पृथक्करण-अध्यादेश स्वीकृत होनेकी अवस्थामें भारतीय और मलायी दोनों ही बतनी बस्तीके नजदीक क्लिपस्प्रूटकी खेतीपर, जो जोहानिसबर्गसे ११ मील दूर है, बसाये जायेंगे। श्री क्विनने प्रस्ताव नगर-परिषदको सौंपते हुए इन आधारों-पर उसको उचित बताया कि भारतीय सफाईके नियमोंका पालन नहीं करते। यदि काफिर क्लिपस्प्रूट भेजे जाते हैं तो भारतीयोंको भेजनेका तो और भी जोरदार कारण है क्योंकि उनका पड़ोस काफिरोंसे भी बुरा है और भारतीय व्यापार भारतीयों और काफिरोंतक सीमित है, इसलिए इतने ज्यादा फासलेपर बसा दिये जानेपर भी उन्हें कोई कठिनाई न होगी।

पहली आपत्ति किन्हीं तथ्योंपर आधारित नहीं है। श्री क्विनने समर्थनमें कहा है कि भारतीयोंके खिलाफ मुकदमे भी चलाये जाते हैं तो भी वे फिर अपने पुराने अभ्यासपर वापस आ जाते हैं। हम इन महाशयकी बातका खण्डन करते हैं और सार्वजनिक रूपमें कहते हैं कि किसी भारतीयके खिलाफ सफाईका कोई ऐसा मुकदमा नहीं चला जिसका स्वामी असर नहीं हुआ हो। हम यह भी कहेंगे कि जहाँ भी ठीक तरहसे देखरेख रखी गई है वहाँ भारतीय नियमोंके निहायत पाबन्द साबित हुए हैं। दूर न जाकर हम प्रिटोरियाकी बस्तीका उदाहरण देंगे और हाइडेलबर्गके भारतीयोंकी अवस्था बतायेंगे। पहले मामलेमें निरीक्षण सहृदयतापूर्ण किन्तु दृढ़ है। इस कारण बस्तीकी सफाई पूरी तरह वैसी है जैसी इन बस्तियोंमें आबाद भारतीयोंकी किस्मको देखते हुए वांछनीय कही जा सकती है। दूसरे मामलेमें भी शहरके बीचोंबीच रहनेवाले भारतीय दुकानदारोंकी सफाई इतनी ही अच्छी है। बस्ताकी उठाई दूसरी आपत्ति पहलीसे कम कमजोर नहीं। क्योंकि यदि भारतीय सफाई-सम्बन्धी नियमबद्ध माननेवाले हैं तो उनको पड़ोसी बनानेमें कोई ऐतराज नहीं हो सकता। उनमें न तो दुर्गुण ही होते हैं और न वे काफिर-बीयर ही पीते हैं। तीसरा आक्षेप तथ्योंकी निरी तोड़-मरोड़ है। यह कहना अन्यायपूर्ण है कि भारतीय व्यापार काफिरों और भारतीयोंतक सीमित है। ट्रान्सवालमें शुरू-शुरूमें आकर बसनेवाले भारतीय व्यापारी भारतीयोंमें व्यापार करनेकी दृष्टिसे इस देशमें नहीं आ सकते थे क्योंकि तब भारतीय यहाँ थे ही नहीं और यह सबको मालूम है कि डच लोगों और गरीब गोरे लोगोंमें भारतीयोंका बड़ा व्यापार है। इस ऐतराजकी तहमें यह महत्वपूर्ण मान्यता है कि क्लिपस्प्रूटकी खेती गोरे लोगोंके व्यापारके लिए बिलकुल उपयुक्त नहीं है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि काफिर बस्ती पास होनेका मतलब भारतीयोंको काफिरोंका व्यापार मिलना नहीं है। इसका और कुछ नहीं तो एक सीधा-सादा कारण यह है कि काफिर लोग बस्तीमें केवल रातके समय रहेंगे और शहरसे व्यवसायके समयके बाद लौटेंगे। इसलिए यदि भारतीयोंको इतनी बड़ी दूरीपर बसाना सर्वथा अन्यायपूर्ण है तो मलायी बस्तीके निवासियोंको हटाना तो और भी बड़ी बेइन्साफी होगी। सफाईकी दृष्टिसे पुरानी भारतीय बस्तीको रद करनेका कुछ कारण हो सकता है परन्तु मलायी बस्तीके रहनेवालोंके खिलाफ तो कानोंकान कुछ नहीं कहा गया है। उनमें से अधिकांश लोग जैसा कि नामसे प्रकट है मलायी हैं और वे साफ-सुथरे रहनेवाले परिश्रमी और पूरी तरह कदाचार लोग हैं। उस स्थानपर अब कई सालसे उनका कब्जा है। बोअर-राज्यके दिनोंमें उनसे यह जगह छीन लेनेका प्रयत्न ब्रिटिश सरकारकी कोशिशोंके कारण विफल हो गया था। पता अब य गरीब लोग उसी ब्रिटिश सरकारके नामपर बातकी बातमें बेदखल कर दिये

जायेंगे और जंगलमें रहनेको मजबूर किये जायेंगे? यह कल्पना ही घृणास्पद है और हम आशा करते हैं कि श्री लिटिलटन उन लोगोंके जिनका एकमात्र अपराध उनकी भूरी चमड़ी है, अधिकारोंकी सामूहिक बलिमें शरीक नहीं होंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-१-१९ ४

२३०. डॉ० पोर्टरका निशाना ठीक ठिकानेपर

प्रतिभाशाली डॉ० पोर्टर जोहानिसबर्गके कई स्थानोंकी गन्दी हालतपर विद्वत्तापूर्ण प्रतिवेदन लिखनेमें फिर व्यस्त हैं। पहलेके अन्य इलाकोंकी तरह ही मौजूदा मामलेमें भी उन्होंने जोहानिसबर्गकी उस बस्तीका जो फैरेरासके नामसे विदित है, अत्यन्त भयंकर और सनसनीदार चित्र खींचा है। उन्होंने नगर-परिषदको अत्यन्त जोरदार शब्दोंमें सूचना दी है कि उनके द्वारा वर्णित इलाकोंकी अविलम्ब पूरी सफाई की जानी चाहिए। वे कहते हैं

> इन इलाकोंमें अनेक घर, झोंपड़ियाँ, कमरे, सहन और गलियाँ हैं जो खराब व्यवस्था, जगहकी कमी, मामूली ठीक-ठीक सफाईकी सुविधाओंके अभाव और अपनी बहुत बुरी और टूटी-फूटी अवस्थाके कारण आसपासके निवासियोंकी तन्दुरुस्तीके लिए न सिर्फ खतरनाक और हानिकारक हैं बल्कि आम तौरपर नगरपालिकाके लिए एक बड़ा गम्भीर खतरा भी हैं।

अब यह स्वीकार किया गया है कि यह इलाका जैसा है वैसा कमसे-कम पिछले दो सालसे पड़ा है। अगर यह इतना गन्दा है और हम इससे इनकार नहीं करते कि यह इतना गन्दा है तो मामला इससे पहले हाथमें क्यों नहीं लिया गया? हमें बहुत बड़ा अन्देशा है कि महीनोंतक यह प्रतिवेदन सिर्फ टाउन क्लार्कके दफ्तरकी अलमारियोंमें पड़ा रहेगा और हालत बहुत कुछ वही बनी रहेगी जो आज है, यद्यपि हमें मौजूदा खतरेका सामना करनेके लिए जरूरत शब्दोंकी नहीं कार्रवाईकी है। बेशक प्रतिवेदन दिलचस्प है और उसे पढ़कर दुःख भी होता है। शायद इसका उद्देश्य यह भी हो कि बूढ़ी औरतें डर जायें और अपने मकानों और आस-पासकी हालतोंके बारेमें सावधान रहें। अगर यह बस्ती इतनी भयंकर कलंक बनी है तो इसके लिए अधूरे उपाय उपयुक्त नहीं हैं। इसमें जो इमारतें हैं उन्हें एक क्षणकी देर किये बिना जला देना चाहिए, किन्तु हमें बहुत अन्देशा है कि अन्य इलाकेके बारेमें जो अनुभव हुआ है वह फैरेरास बस्तीके मामलेमें दुहराया जायेगा। यह जानकारी दिलचस्प होगी कि इस सारे इलाकेकी आबादी १,८१२ है जिसमें से २८८ भारतीय, ५८ सीरियाई, १६५ चीनी, २९५ केपवासी, ७५ काले और ९१ (या आधेसे अधिक) गोरे हैं। कच्चे बाड़ेकी आबादीमें २५५ कुली, १७ सीरियाई, १२१ चीनी, १९२ केपवाले, ११ काले और ७४१ गोरे हैं।

इस प्रकार, इन इलाकोंमें भारतीयोंकी अपेक्षा गोरोंकी तादाद अधिक है और नगर-परिषदका सबसे ज्यादा है। और यद्यपि किसी अन्य जगहके लोगोंकी अपेक्षा गोरोंके विरुद्ध कार्रवाई ज्यादा जल्दी है फिर भी हमारा मन माननेके लिए यह खयाल नहीं होता कि कोई ऐसी बात होगी। इस प्रतिवेदनका उपयोग ब्रिटिश भारतीयोंपर और अधिक निर्योग्यताएँ लगानेके लिए किया जायेगा। लोक-स्वास्थ्य समितिने उनको जोहानिसबर्गसे लगभग ११ मील दूरके इलाकेमें रहनेके लिए मजबूर करनेके उद्देश्यसे इस प्रतिवेदनका उपयोग पहले ही शुरू कर दिया है। नगर-परिषदने

इस स्थानकी उचित सफाईकी ओर ध्यान नहीं दिया। प्रतिवेदनसे उसकी इस निष्क्रियताकी निन्दा होती है। जब अस्वच्छ क्षेत्र आयोग मुकर्रर किया गया था तब यह बस्ती सार्वजनिक स्वास्थ्यके लिए खतरनाक समझी गई थी। परन्तु चूँकि जोहानिसबर्गमें जो कुछ किया जाता है, गगनचुम्बी पैमानेपर ही किया जाता है उसके नीचे कुछ नहीं इसलिए स्वच्छता-सम्बन्धी उचित नियन्त्रण नगर-परिषदकी शानके खिलाफ था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-१-१९०४

२३१. लॉर्ड मिलनर

यह लगभग निश्चित मालूम होता है कि लॉर्ड मिलनर जल्दी ही दक्षिण आफ्रिकासे सदाके लिए विदा हो जायेंगे। कहना कठिन है कि इस महादेशमें परममेष्ठके कार्यके सम्बन्धमें इतिहासका निर्णय क्या होगा। उन्होंने युद्धको सफलतापूर्वक समाप्त कराया इससे परममेष्ठका एक विधायात्मक राजनीतिज्ञके रूपमें गौरव पानेका अधिकार सुनिश्चित हो गया है। अत्यन्त नाजुक समयमें तमाम लोगोंके बीच वे ही सबसे अधिक मजबूत आदमी निकले और हारों और युद्ध-संचालक सेनापतियोंके चिन्ताजनक संवादोंके बावजूद वे बिलकुल दृढ़ और युद्धकी सफल समाप्तिके संकल्पमें अटल रहे। परन्तु हमें भय है कि उसके परिणामके सम्बन्धमें अपनी दूरदर्शितापर उनकी जो अजेय श्रद्धा थी उससे उनको पुनर्निर्माणके कठिनतर कार्यमें पथ-प्रदर्शन नहीं मिला। और वास्तवमें यह भी नहीं कहा जा सकता कि परममेष्ठको भविष्यका सही अनुमान हो गया था। लॉर्ड मिलनरने ऐसी आशाएँ बाँधी जो कभी पूरी होनेवाली नहीं थीं और उन्होंने एक कमजोर बुनियादपर ऊपरसे भारी-भरकम इमारत खड़ी कर डाली। नतीजा यह हुआ कि देशमें शासनका खर्च बहुत बढ़ गया और आय काफी नहीं हुई। लॉर्ड महोदयने शासनकी हर तफसीलपर बराबर ध्यान दिया और खूब परिश्रम किया। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि मजदूरों वतनी कार्यों और एशियाइयोंकी जैसी कठिन समस्याएँ सन्तोषजनक ढंगसे हल हो गई। चीनी मजदूर बुलानेका प्रश्न अभीतक प्रयोगकी स्थितिमें है और अभी इधर या उधर कोई निश्चित मत प्रकट करना बहुत असामयिक होगा। वतनी लोगों और एशियाइयोंके प्रश्नके बारेमें जो अस्थिर नीति अपनाई गई उससे दोनों ही पक्ष सन्तुष्ट नहीं हुए और लॉर्ड महोदयके हाथों एशियाइयोंके तो राष्ट्रीय सम्मान को भी क्षति पहुँची। इस प्रकार लॉर्ड मिलनरको प्रथम श्रेणीके रचनात्मक राजनीतिज्ञका दर्जा मिलना धकाप्सद है।

लन्दनके अखबारोंसे हमें पता चलता है कि इंग्लैंडमें बहुत जल्दी सत्तामें परिवर्तन होगा। अगर यह सच हो तो यह जानना दिलचस्प होगा कि आनेवाली सरकार साम्राज्य और अनुदार दलके प्रति लॉर्ड मिलनरकी सेवाओंके बदले क्या करना चाहती है। हमें मालूम है कि कुछ महीने हुए, यह खबर उड़ी थी कि लॉर्ड महोदय सम्भवतः कलकत्तेमें लॉर्ड कर्जनके उत्तराधिकारी होंगे। उस सूरतमें बेशक वे उदारदलीय मन्त्रियोंके हस्तक्षेपसे बिलकुल मुक्त हो जायेंगे और साम्राज्यवादी दृष्टिसे इस प्रकारकी प्रतिष्ठा प्रदान करनेके अलावा अनुदारदलीय सरकारके पास लॉर्ड महोदयको देनेके लिए इससे अच्छी कोई चीज नहीं है। इसलिए यह अटकल दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए कुछ स्थायी दिलचस्पीकी चीज है। हम सोचते हैं कि ब्रिटिश भारतीय प्रजनार हाल ही में प्रकाशित सरकारी रिपोर्टमें श्री लिटिल्टनके नाम भेजे गये खरीतेके लेखक

महोदय अब वाल्सरामकी गद्दीपर स्थानान्तरित हो जायेंगे तब भी क्या उनमें यह प्रबल भारत विरोधी द्वेष भाव बना रहेगा जिससे यह दस्तावेज रंगा हुआ है?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २२–१–१९०४

२३२ स्माइडसबर्गके भारतीय

स्माइडसबर्गके अधिकारियोंने भारतीयोंको सूचना दी है कि वे सात दिनके भीतर खोलेके लिए बाजारमें चले जायें अन्यथा उनपर आज्ञा-भंगका मुकदमा चलाया जायेगा। कुछ समय पूर्व इसी प्रकारकी धमकी पॉचेफस्ट्रममें दी गई थी परन्तु उसका कुछ परिणाम नहीं निकला। ट्रान्सवालके मुख्य न्यायाधीशके जोरदार फसलेको देखते हुए हर किसीका खयाल यही होता कि भारतीयोंको छेड़ा नहीं जायेगा। मगर मालूम होता है कि बात ऐसी होने वाली नहीं है। ऐसी परिस्थितिमें हमारे देशवासियोंके सामने एक ही उपाय है कि वे चुपचाप बैठें और घटनाओं पर निगाह रखें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २२–१–१९०४

२३३ भारतीय दुभाषिये

भारतीय दुभाषियोंका उपनिवेशसे निकालनेके बहाने जान्लेमें नेटाल इण्डियन-परिषद एड़ी चोटीका जोर लगा रही है। गिरमिटिया भारतीयोंकी तो उसे बुरी तरह जरूरत है मगर सरकारी नौकरीमें यह इने-गिने भारतीय दुभाषियोंका रहना भी बर्दाश्त नहीं कर सकती। परिषदके इससे पहलेके प्रस्तावका सरकारने यह उत्तर दिया है कि एकसे अधिक भारतीय भाषाएँ बोल सकनेवाले यूरोपीय इन नौकरियोंके लिए नहीं मिल पाते और यह जरूरतको देखते हुए अपर्याप्त है। इसपर उसने नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया है।

> यह परिषद जोर देकर अपनी यह सम्मति दुहराती है कि अगर उचित वेतन दिये जायें तो ऐसे यूरोपीय मिल सकते हैं जो एकाधिक भारतीय बोलियाँ बोल सकते हैं और यह कि सरकार उपनिवेशके तरुण यूरोपीयोंको भारतीय बोलियोंकी जानकारी हासिल करनेके लिए वैसा ही प्रोत्साहन दे जैसा जूलू भाषाके विद्यार्थियोंको दिया जाता है।

सरकारने इसका भी उत्तर दिया है कि जहाँ-जहाँ मुमकिन है, यूरोपीयोंको रखनेका प्रयत्न हो रहा है किन्तु बाधाएँ कम होती नहीं दिखती। इस तरह अपनी नौकरियोंकी सुरक्षितताके लिए भारतीय दुभाषियोंको सरकारका नहीं भारतीय बोलियाँ जाननेवाले यूरोपीयोंकी कमीका अहसान मानना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २२–१–१९०४

१ देखिए "भीतिकारक दुरुपयोग," २१–५–१९०४।

श्री ढुंडामलका मामला अब केवल व्यक्तिगत प्रश्न नहीं समझा जा सकता यह ऐसा मामला है जिसमें व्यापक हित निहित हैं। जबतक यह केस चलेगा तबतक मजिस्ट्रेटके फैसलेके खिलाफ सर्वोच्च न्यायालयमें की गई अपीलका फैसला कायम हो जायेगा। परन्तु पिछले सप्ताहकी कार्रवाईपर मामूली नहीं अधिक ध्यान देनेकी जरूरत है। नगर-परिषदके निर्णयके बावजूद परन्तु वकीलोंकी प्रमुख फर्मकी कानूनी सलाहके अनुसार, श्री ढुंडामल नगरमें व्यापार करनेके लिए दिये गये परवानेके बलपर कारोबार चलाते रहे। इसलिए परवाना-अधिकारीने उनका नाम फिर सम्मन जारी किया और उनपर वेस्ट स्ट्रीटके मकानके सम्बन्धमें परवानेके बिना व्यापार करनेका अभियोग लगाया। अभियुक्तने अपीलकी सुनवाई होनेतक कार्रवाई स्थगित रखनेकी अर्जी दी। मजिस्ट्रेटने यह स्वीकार कर ली और अभियोक्ता-पक्षके इस कथनको नहीं माना कि अभियुक्त अदालतका अपमान करके व्यापार कर रहा है। फिर भी मजिस्ट्रेटने एक अत्यन्त असाधारण आदेश दिया कि अगर अभियुक्त व्यापार करनेकी अनुमति प्राप्त न कर ले तो उसकी दूकान जबरदस्ती बन्द कर दी जाये।

इसलिए जो चीज उन्होंने एक हाथसे दी उसे दूसरे हाथसे छीन लेनेकी कोशिश की क्योंकि अगर दूकान बन्द ही करनी थी तो कार्रवाईको स्थगित करनेका क्या महत्त्व हो सकता था? यदि मजिस्ट्रेटको सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेके बारेमें इतना यकीन था तो उन्होंने कार्रवाई स्थगित ही क्यों की? परन्तु यह मुद्दा महत्त्वपूर्ण होते हुए भी इस प्रश्नके सामने महत्त्वहीन हो जाता है कि मजिस्ट्रेटने जो आदेश दिया उसको उसे देनेका कोई अधिकार भी था या नहीं। हमें मालूम हुआ है कि श्री ढुंडामलके वकीलोंने मजिस्ट्रेटको लिखित सूचना दी है कि उन्होंने अपने अधिकारसे बाहर काम किया है और अगर दूकान जबरदस्ती बन्द कर दी गई तो उसके लिए वे व्यक्तिगत जिम्मेदार होंगे। हमारा सदा यह खयाल रहा है कि श्री स्टुअर्ट एक निष्पक्ष गम्भीर और न्यायपरायण न्यायाधीश हैं। परन्तु हमें यह बातके साथ कहना पड़ता है कि उन्हें जो अधिकार प्राप्त हैं उनके सम्बन्धमें उनके ज्ञानपर हमारा विश्वास बहुत हिल गया है। हम यह कल्पना नहीं कर सकते कि उन्होंने यह काम जो हमारी नम्र रायमें निर्णयकी एक गम्भीर भूल है, जानबूझकर किया है। क्योंकि अगर उनके फैसलेपर अमल किया जाये तो उसका असर यह होगा कि हम फिरसे उस मध्य युगमें पहुँच जायेंगे जिसमें प्रजाजनोंकी स्वतन्त्रता केवल न्यायाधीशोंकी सनकपर निर्भर रहती थी और उन न्यायाधीशोंके अधिकार और सत्ता केवल उनकी सद्बुद्धिसे ही मर्यादित होते थे।

किन्तु महान् नगर-परिषद और एक छोटेसे नागरिकके बीच यह अशोभनीय भाव क्यों होना चाहिए? थोड़े दिनतक उस गरीब व्यापारीको न छेड़ा जाये तो अवश्य ही इसमें किसी सिद्धान्तको खतरा नहीं है। रोज चन्द शिलिंगकी बिक्री करके वह उतने ही समयमें वेस्ट स्ट्रीटके दूसरे व्यापारियोंकी आमदनी बहुत नहीं घटा सकता। उन्होंने उसके विरुद्ध कोई ऐतराज नहीं किया है। हम श्री एलिस ब्राउन और नगर-परिषदके दूसरे सदस्योंसे पूछते हैं कि क्या एक गरीब आदमीको इस तरह सताना उस महान् संस्थाकी शानके अनुरूप है?

व्यापारको नियमित करनेके परिषद्के अधिकारपर हम आपत्ति नहीं करते। हमने जब-कभी बन्दगन हुई है, भारतीय लोकमतको रास्ता दिखाने और शान्त करनेमें विनम्र सहायता देना गया माना विशेष अधिकार समझा है। हमारा खयाल है कि विशेष व्यवसायोंके लिए विशेष इलाके मुकर्रर करना परिषदके लिए सामान्यतः बिलकुल ठीक होगा। परन्तु इन

तरहके सारे संरक्षण जबतक काफी असरदार न रखे जायें तबतक ही उद्देश्यको विफल करनेवाले होते हैं। हम भारतीयोंको इस विचारसे सहमत करनेमें परिषदके साथ सहर्ष सहयोग करेंगे कि वेस्ट स्ट्रीट बहुत-कुछ यूरोपीय व्यापारियोंके हाथोंमें रहनी चाहिए। परन्तु एक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक शर्त यह है कि जो भारतीय वहाँ पहलेसे व्यापार कर रहे हैं उनकी और भारतीय मकान-मालिकोंकी भी पूरी तरह रक्षा की जानी चाहिए और जो भारतीय वेस्ट स्ट्रीटकी बढ़िया दूकानोंकी प्रतिष्ठाके अनुरूप सफाई और सजावटकी आवश्यकताएँ पूरी करनेको तैयार हैं और जिनका व्यापार मुख्यतः यूरोपीयोंके साथ है, उनका वहाँ व्यापार करना निषिद्ध न किया जाये। मगर यह सच है कि आपत्ति रंगके विरुद्ध नहीं है और यदि भारतीय लोग यूरोपीयों जैसा स्तर रखें तो वांछनीय नागरिकके रूपमें उनका स्वागत किया जायेगा तब तो सचमुच उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। अब हकीकत यह है कि स्ट्रीट भारत [illegible] है और विचाराधीन मामलेमें उपर्युक्त सारी कसौटियोंपर पूरे उतरते हैं। क्या हम नगर-परिषदसे यह अपील नहीं कर सकते कि वह अपने हाथ रोक ले और भारतीयोंके इस सन्देहसे मुक्त हो जाये कि श्री हुंडामलपर मुकदमा चलाकर वह उनको और उनके द्वारा भारतीय दूकानदारों और मकान-मालिकोंको सता रही है। ये सब लोग उत्सुकतापूर्वक उन नाटकीय स्थितियोंको देख रहे हैं जिनमें से यह मामला गुजर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१-१९०४

२३५. पीटर्सबर्गके भारतीय

पीटर्सबर्गसे हम आशयका समाचार मिला है कि पुरानी भारतीय बस्तीमें जो अभी हाल ही में वतनी बस्ती बना दी गई है, रहने और व्यापार करनेवाले भारतीय सरसरी तौरपर बेदखल किये जा रहे हैं। उन गरीबोंके संघर्षका इतिहास बहुत सीधा-सादा है, यद्यपि वह अत्यन्त वेदनापूर्ण है। पिछले साल ही उनके बरबाद कर दिये जानेकी नौबत आ गई थी। तब उन्होंने मामला उच्चाधिकारियोंतक पहुँचाया और पीटर्सबर्गके स्थानिक निकायने कार्रवाई रोक दी। निकायकी सत्ता सीमित थी और उन लोगोंके प्रति और कुछ नहीं किया जा सका। इस सालके शुरूमें निकायने सरकारसे प्रार्थना की कि वह भारतीय बस्तीको उठा दे और उसकी जगह वतनी बस्ती बना दे। भारतीयोंके अधिकारोंका कोई खयाल किये बिना ऐसा ही किया गया। वतनी बस्तीके नियमोंके अनुसार वहाँ वतनियोंके सिवा कोई अन्य व्यक्ति न तो बस सकता है और न व्यापार कर सकता है। इस सत्ताके अधीन निकाय भारतीयोंको बेदखल करनेकी कोशिश कर रहा है। एशियाई-संरक्षक श्री चैमनेके हस्तक्षेपसे निकायकी कार्रवाई अस्थायी रूपसे रोक दी गई थी। परन्तु मालूम होता है अन्तमें निकायकी जीत हुई, और अब वह अन्यथा कानून-निर्माणकी प्रक्रिया द्वारा निर्दोष व्यापारियोंकी सम्पत्ति और अधिकारोंको जब्त कर लेनेकी स्थितिमें है। इस कार्रवाईको अच्छी तरह स्पष्ट करनेके लिए हमारे पास "डकैती"[1] के सिवा और कोई शब्द नहीं है। इन व्यापारियोंने अच्छे भंडार बनानेमें हजारों पौंड खर्च किये हैं। हम जानते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें मजदूरी कितनी महँगी है। मंगोला

१. मूलमें [illegible] है। [illegible] हो गया है।

कोई मुआवजा नहीं मिलनेवाला है। यह सच है कि वे अपनी इमारतें हटा सकते हैं। फिर नीलामीमें व्यापारी भी जानते हैं कि इस तरह हटाये जानेवाले लोहे-लक्कड़की क्या कीमत होती है। निकासकी कार्रवाईसे ये लोग बरबाद हो रहे हैं। और सरकार कहती है कि वह लाचार है!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१०-१९ ४

२३६ स्वर्गीय श्री डिग्बी, सी० आई० ई०[1]

श्री विलियम डिग्बी सी० आई० ई० के निधनसे भारतीयोंका एक ऐसा समर्थक उठ गया जिसका स्थान भरना कठिन है। उनका भारतीय पक्षको सामने रखनेका तरीका मर्म और सम्यक् ज्ञानसे भरा हुआ होता था। भारत-विषयक उनका अद्वितीय अनुभव प्रतिद्वन्द्वियोंको उत्तर देते समय सदा उनका अच्छा साथ देता था। वे इंडियन पोलिटिकल एजेंसीके संस्थापक और *इंडिया* पत्रके जो उत्तम सेवा कर रहा है प्रथम संपादक थे। किसीका दर्जा कम बताये बिना हम कह सकते हैं कि उक्त पत्रिकाका संपादन दिवंगत श्री डिग्बीके मुकाबिलेमें कभी नहीं किया गया है। उन्होंने अपने विपुल लेखनके द्वारा सदा विभिन्न भारतीय प्रश्नोंको जनताके सामने रखा। स्वर्गीय श्री डिग्बीके कुटुम्बके शोकमें हम अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-१ -१९ ४

२३७, पत्र दादाभाई नौरोजीको[2]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
अक्तूबर ३१, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, केनिंग्टन रोड
लंदन एस० ई०, इंग्लैंड

प्रिय महोदय

आपका १९ सितम्बरका पत्र मिला। उसके साथ आपने प्लेग फैलनेके बारेमें मेरे पिछले ४ अप्रैलके पत्र[3] से सम्बन्धित श्री लिटिल्टनके पत्रकी प्रतिलिपि भी नत्थी की है। मैं तो

1. श्री विलियम डिग्बी (१८४९-१९ ४) भारतकी आर्थिक समस्याओंके प्रामाणिक व्याख्याता, लेखक; *प्रॉस्परस ब्रिटिश इंडिया* ('समृद्ध ब्रिटिश भारत') और भारतकी राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिके सदस्य थे।
2. दादाभाई नौरोजीने इस पत्रका क्या भाग उस पत्रमें उद्धृत किया है जो उन्होंने भारत-मन्त्रीको नवम्बर २२, १९ ४ को भेजा था (सी० ओ० २९१ खण्ड ७५, इंडिया ऑफिस)।
3. यह पत्र उपलब्ध नहीं है, किन्तु अनुमान है कि गांधीजीने अपने ९-४-१९ ४ के "लोकेशन" संबंधी लेखकी एक नकल दादाभाई नौरोजीको भेजी थी।

जानता हूँ उसे देखते हुए परमश्रेष्ठ लॉर्ड मिलनरका उत्तर पढ़कर बड़ा दुःख होता है। इस विषयमें परमश्रेष्ठके नाम एक पत्र[1] लिखनेकी स्वतन्त्रता ले रहा हूँ किन्तु तबतक यह कह दूँ कि मुझे अपने ४ अप्रैलके पत्रसे कुछ वापस नहीं लेना है। और यह लिखते हुए मुझे अपनी जिम्मेदारीका पूरा भान है और मैं यह सोच-समझकर लिख रहा हूँ। साथमें मैं *इंडियन ओपिनियनकी* यह प्रति[2] नत्थी कर रहा हूँ जिसमें डॉ॰ पोर्टर और मेरे बीचका सारा पत्रव्यवहार दिया हुआ है। मेरी नम्र सम्मतिमें उससे निर्णयात्मक रूपसे यह प्रकट हो जाता है कि प्लेग कैसे फैला। नगर-परिषदकी ओरसे बेदखली सितम्बर, १९०३ में की गई थी और प्लेगका फैलना सरकारी तौरपर २० मार्च अर्थात् परिषदके कब्जा लेनेके छः महीनेके बाद घोषित हुआ था। जैसा कि पत्रव्यवहारसे मालूम होगा पहली चेतावनी ११ फरवरी[3] को दी गई थी। १५ फरवरी[4] को निश्चित सुझाव दिये गये ताकि आपत्तिसे बचा जा सके। और मैं अधिकसे-अधिक आदरपूर्वक फिर भी जितना जोर देकर कह सकता हूँ यह कहनेका साहस करता हूँ कि उस तारीखके बाद परिस्थितिको सुधारनेके लिए कुछ भी नहीं किया गया। सचमुच पिछली १८ मार्चके बाद भी बस्तीमें प्लेगके बीमार ला-लाकर पटके जा रहे थे और मैंने उसकी सूचना नगर-परिषदको दी थी। १९ मार्चको टाउन क्लार्कने खबर दी कि अस्थायी अस्पतालकी तरह काममें लानेके लिए वह सरकारी गोदाम और एक परिचारिका देनेके सिवा २१ मार्चके पहले न बीमारोंकी जिम्मेदारी ले सकता है और न कोई आर्थिक जिम्मेदारी उठा सकता है। यह स्थान पहले चुंगी-नाका था। बीस स्वयंसेवक वहाँ लगा दिये गये। जगह भलीभाँति साफ की गई और भारतीय स्वयंसेवक परिचारकोंने जो बीमार आ रहे थे सबको भरती करके रात-दिन काम किया। जब डॉक्टर पेक्स और डॉक्टर मैकेंजी अस्पताल देखने आये तब उनकी समझमें परिस्थितिकी गम्भीरता आई और २० तारीखको उन्होंने ज्यादासे ज्यादा कारगर कार्रवाई की। इस बीच क्या खाट क्या दवा-दारू, क्या भोजन — हर चीजका सारा प्रबन्ध भारतीयोंने किया था। यहाँ यह कहना न्यायोचित ही होगा कि इसके बाद नगर परिषदने खर्च पूरा किया है। वैसे यह सब अप्रस्तुत है और यदि मैंने भारतीयों द्वारा किये गये कामपर जोर दिया है तो वह यह दिखानेके लिए है कि मैं कटु अनुभवसे कह रहा हूँ और उसमें आवेशका अभाव नहीं है। यदि आपके पत्रव्यवहारमें पेश आँकड़े सही हैं — भले ही मैंने जो नतीजे निकाले हैं उन्हें स्वीकार नहीं किया गया किन्तु आँकड़ोंका किसीने खण्डन नहीं किया — तो मैंने अपने पिछले ४ अप्रैलके पत्रमें जो कहा है, उसमें कुछ कम कहना तो वह सत्यके पक्षकी सेवा न होगी। मैंने उसमें कहा है कि यदि जोहानिसबर्गकी नगरपालिका घोर उपेक्षा न करती तो प्लेग कभी न फैलता। मार्चकी भयंकर मृत्युसंख्याके लिए हर हालतमें उसे ही जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए, और किसीको नहीं। परिस्थितिकी गम्भीरता समझने पर उसने आपत्तिका मुकाबिला करनेमें पैसा पानीकी तरह खर्च किया इसके लिए अनेक धन्यवाद किन्तु उस कामसे नुकसान तो कदापि नहीं बदला जा सका। यह सच है कि बहुत पहले सन् १९०१ में ही बस्तीको गन्दा घोषित करते हुए लम्बे सरकारी विवरण तैयार कर लिए गये थे किन्तु फिर भी वह २६ सितम्बर, १९०३ तक उसी स्थितिमें बनी रहने दी गई और उस अवधिमें प्लेग नहीं फैला। यह विचित्र लग सकता है कि प्लेग उस समय

१. देखिए, अगला शीर्षक।
२. ९-४-१९०४ का अंक, देखिए "पत्र: जोहानिसबर्गके अखबारोंको" अप्रैल ५, १९०४।
३. देखिए "पत्र: डॉ॰ पोर्टरको" फरवरी ११, १९०४।
४. देखिए "पत्र: डॉ॰ पोर्टरको" फरवरी १५, १९०४।

फैला तब बस्ती पूरी तरह नगर-परिषदके अधिकारमें आ गई, तब वह जो चाहती थी सो पा गई और साथ-साथ उसे बस्तीको नितान्त साफ-सुथरी रखनेका अवसर मिल गया। मुझे भय है कि परम माननीयको प्लेगके उद्भवके सम्बन्धमें एकदम गलत जानकारी दी गई है। मामला खतम हो गया है। भारतीयोंने नाहक कष्ट भोग लिया है किन्तु मेरे द्वारा कही गई बातें कागजोंसे जाँची जा सकती हैं। मेरा खयाल है डॉ॰ पेक्सका विरोध *ब्रिटिश मेडिकल जर्नलके* सम्पादकीयके इस अंशके सन्दर्भमें है स्पष्ट है कि डॉ॰ पेक्सने जब यह कहा था कि दुरस्त किलोंमें जो कदम उठाये जा रहे हैं उनका हेतु प्लेगको रोकनेकी अपेक्षा भारतीयोंका उन्मूलन करना अधिक है, तब उन्होंने सच ही कहा था[1]।" डॉ॰ पेक्सने सचमुच ऐसा कहा हो चाहे नहीं अखबारोंमें उन्होंने ऐसा कहा यह खबर थी। प्रस्तुत उल्लेख अखबारकी खबरके आधारपर किया गया है।

मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर भी आकर्षित करना चाहता हूँ कि विधान-परिषदके सदस्य और उपनिवेशके स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ॰ टर्नरके कथनसे इस दावेकी अक्षरशः पुष्टि हो जाती है कि इस भयानक प्रकोपकी जिम्मेदारी नगर-परिषदपर है।

इस पत्रका आप जो उपयोग उचित समझें करें।

आपका सच्चा,
मो॰ क॰ गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (सी॰ डब्ल्यू॰ २२११)से।

२१८. पत्र उपनिवेश-सचिवको

[जोहानिसबर्ग]
अप्रैल ११, १९०४

सेवामें
निजी सचिव
परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त
जोहानिसबर्ग

महोदय

यदि आप यह पत्र परमश्रेष्ठके सामने रखनेकी कृपा करें तो मैं बहुत आभार मानूँगा।

माननीय श्री लाइटलटनने अपने पत्रके जवाबमें श्री लिटिल्टनसे प्राप्त पत्रकी एक प्रतिलिपि मुझे भेजी है और उसके साथ जोहानिसबर्गमें प्लेग फैलनेसे सम्बन्धित पिछली ४ अप्रैलको उन्हें लिखा गया मेरा पत्र भी नत्थी किया है। इस विषयमें परमश्रेष्ठके खरीतेका एक अंश भी लिटिल्टनने उद्धृत किया है और चूँकि उसमें मेरे द्वारा दिये गये वक्तव्योंका जिक्र है, मैं उसके जवाबमें अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करके परमश्रेष्ठका कुछ समय लेनेकी धृष्टता कर रहा हूँ।

परमश्रेष्ठने कहा है

मैं इस वक्तव्यको पूर्णतः अनुचित मानता हूँ कि जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी उपेक्षाके बिना हालमें हुए प्लेगका फैलना सम्भव नहीं था। जोहानिसबर्ग परिषदने अत्यधिक

[1] देखिए "इण्डियन ओपिनियन" ९-४-१९०४।

तो अक्षम्य परिस्थितिको पहलेसे भांपकर सचमुच बीमारी होनेके एक वर्षसे भी पूर्व तैयारियाँ करके काफी दूरदर्शिताका परिचय दिया है।

बीमारीको भांपकर रीटफॉन्टीनमें अस्पताल वगैरा बनाकर परिषदने तैयारी की इससे कभी इनकार नहीं किया गया किन्तु मैं अत्यन्त नम्रताके साथ निवेदन करता हूँ कि एक प्रतिबन्धक उपाय तो बकरी का बिलकुल छोड़ दिया गया अर्थात् तथाकथित अस्वच्छ-क्षेत्रकी सफाईपर ध्यान नहीं दिया गया।

परमश्रेष्ठने अपने खरीतेमें भी कहा है

बहुत बड़ी हदतक बस्तीके निवासियों और मालिकोंके विरोधके कारण ही उसपर कब्जे और उसकी सफाईमें देर होती गई, यहाँतक कि प्लेग फैल गया।

मैं नम्रतापूर्वक परमश्रेष्ठका ध्यान इस तथ्यकी ओर खींचना चाहता हूँ कि सरकारी तौरपर प्लेगकी घोषणाके पाँच महीने पहले अर्थात् पिछले वर्ष २६ सितम्बरको कब्जा हो चुका था। और इसलिए [बस्तीको] खाली कराना पूरी तरह नगर-परिषदके हाथकी बात थी। सम्बन्धित भारतीयोंका उस दिनसे कब्जा लेने या खाली करानेके प्रति कोई विरोध नहीं था इतना ही नहीं वरन् स्वयं मैंने कई बार उनकी ओरसे नगर-परिषद तथा उपनिवेश-सचिव दोनोंसे नई जगहके लिए प्रार्थना की। परमश्रेष्ठको स्पष्टतया यह बताया गया है कि कब्जा प्लेग फैलनेके बाद किया गया था। क्योंकि परमश्रेष्ठ अपने खरीतेमें आगे कहते हैं

कब्जा लेनेकी तिथितक भारतीय कुप्रबन्धके अनुसार थे इसलिए यह बात कि बस्तीमें भीड़भाड़ रहनेकी हालतका सबब औपनिवेशिकोंकी नगर-परिषदकी लापरवाही थी सत्यकी स्पष्ट तोड़-मरोड़ ही कही जा सकती है।

अगर कब्जा प्लेगके फैलनेके बाद किया जाता तो सत्यकी तोड़-मरोड़ करनेका निमित्त बननेका आरोप मैं स्वीकार कर लेता। किन्तु जैसा कहा जा चुका है तथ्य यह है कि कानूनी और वास्तविक रूपमें भी परिषदने पिछले वर्ष पहली अक्टूबरको कब्जा लिया और अस्वच्छ क्षेत्रके निवासियोंके सुझावके विपरीत तथा आदमियोंकी कमीके कारण बस्तीकी समुचित स्वच्छता बनाये रखनेकी हालतमें न होनेके बावजूद परिषद एकदम हर किरायेदारकी मालिक बन गई। उसने किराया वसूल करनेके लिए दफ्तर खोल दिया और सारा-का-सारा पूर्व-प्रबन्ध अपने हाथमें ले लिया।

नई सत्ताके हाथमें परिस्थिति इतनी असह्नीय हो गई कि वे निवासी जिनके खिलाफ परमश्रेष्ठ द्वारा उल्लिखित सरकारी विवरणोंमें बार-बार गन्दगीका आरोप लगाया गया था मेरे पास शिकायतें लेकर आये और इसलिए मैंने इस वर्षकी ११ फरवरीको — अर्थात् प्लेगकी बाकायदा घोषणाके एक महीनेसे भी पहले — उनकी ओरसे डॉ॰ पोर्टरको लिखा

मैं आपको भारतीय बस्तीकी भयंकर हालतके बारेमें लिखनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। कमरोंमें अधिकाधिक भीड़-भाड़ दिखाई पड़ती है। सफाई करनेवाले बहुत अनियमित रूपसे भेजे जाते हैं और बस्तीके अनेक निवासी मेरे दफ्तरमें आकर शिकायत कर गये हैं कि अब सफाईकी हालत पहलेसे भी बहुत बुरी है।

बस्तीमें काफिरोंकी भी बहुत बड़ी आबादी है, जिसका वस्तुतः कोई औचित्य नहीं है।

मैंने जो-कुछ सुना है उससे मेरा विश्वास है कि बस्तीमें मृत्यु-संख्या काफी बढ़ गई है और मुझे लगता है कि आज जो हालत है वह यदि बनी रही तो आज हो या कल कोई संक्रामक बीमारी फैले बिना नहीं रह सकती।

१५ फरवरीको डॉ॰ पोर्टरके नाम दूसरे पत्रमें मैंने पहले पत्रमें उल्लिखित मुद्दोंपर विस्तारसे लिखा और कुछ सुझाव देनेकी धृष्टता भी की किन्तु १८ मार्चतक कुछ नहीं किया गया — यद्यपि १ मार्चको मैंने डॉ॰ पोर्टरको किसी नई सूचनामें कहा था कि मेरी रायमें प्लेग वास्तवमें फैल चुका है।

मैं परमश्रेष्ठके अवलोकनार्थ जो पत्रव्यवहार पत्रोंमें प्रकाशित हुआ था उसकी पूरी नकल नत्थी कर रहा हूँ। मुख्य तथ्योंको आजतक चुनौती नहीं दी गई, और चूँकि मैं बस्तीके निवासी पिछले वर्षसे जिसमें से गुजरे हैं, ऐसी हर परिस्थितिको जानता हूँ मुझे विनयपूर्वक यह कहनेपर बाध्य होनेकी जरूरत जान पड़ती है कि जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी असभ्य उपेक्षाके बिना प्लेग कभी नहीं फैल सकता था। अस्वच्छ क्षेत्रकी सारी आबादीको स्थानान्तरित करनेकी बड़ी-बड़ी योजनाओंके मुकाबलेमें सामने पड़े हुए तात्कालिक कामकी पूरी उपेक्षा की गई।

अन्तमें मैं यह कह सकता हूँ कि श्री गोरेजीको लिखनेमें सत्यकी सेवा और अपने देश-वासियोंकी अन्यायपूर्ण आरोपके समक्ष सुरक्षाके अतिरिक्त मेरी और कोई अभिलाषा नहीं थी।

मुझे विश्वास है कि इस पत्रके विषयकी महत्ताको परमश्रेष्ठका मूल्यवान् समय लेनेका पर्याप्त कारण माना जायेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (सी॰ डब्ल्यू॰ २२६४—२,१४५) से।

२३९ तार उपनिवेश-सचिवको

[जोहानिसबर्ग]
अगस्त ६, १९०४

सेवामें
उपनिवेश-सचिव
[प्रिटोरिया]

श्री रॉबिन्सन सूचित करते हैं, लॉर्ड सेल्बोर्न भारतीय समितिसे प्रिटोरिया मुकामके समय अभिनन्दनपत्र स्वीकार करेंगे। क्या कृपया कोई महोदयसे तारीख मालूम करेंगे।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज़ ९२/२ एल॰ जी॰ ९१ एशियाटिक्स १९ २ १९ १ फाइल सं॰ २।

सम्मेलनमें अनेक प्रकारके मामलोंकी चर्चा की गई, जिनमें से थोड़ा सम्बन्ध भारतीयोंसे था। कुछ समय हुआ सम्मेलनने इस आशयका एक प्रस्ताव पास किया था कि सब भारतीयोंको पास रखने चाहिए। किन्तु कारण यह नहीं बताया गया। शायद गैर-गिरमिटिया भारतीय आबादीका अपमान करनेके सिवा अन्य कोई कारण नहीं था। सरकारने उत्तरमें कहा है कि सम्मेलन जैसा चाहता है वैसा कानून पास करनेके लिए सरकार तैयार नहीं है। इसलिए पादरी श्री स्कॉटने तजवीज पेश की कि वह प्रस्ताव सरकारके पास वापस भेजा जाये। अध्यक्षने बताया कि अगर भारतीयोंपर बहुत अधिक पाबन्दियाँ लगाई गईं तो शायद भारत सरकार कोई आपत्ति करे। परन्तु श्री स्कॉटने कहा कि उस सूरतमें नेटाल मजदूर जुटानेके लिए दूसरे साधन काममें आ सकता है। हम चाहते हैं कि ऐसा हो। तभी यहाँ रहनेवाली भारतीय आबादीके बारेमें कोई ठीक समझौता हो सकेगा। इसके अलावा उपनिवेश भारतीय मजदूरोंका आर्थिक मूल्य अनुभवसे जानेगा। रस्किनने सही कहा है कि आर्थिक तत्वके रूपमें मनुष्यको केवल मशीन समझकर अध्ययन नहीं करना चाहिए, परन्तु उसके सम्बन्धमें विचार उसके सारे मानसिक गुणोंको ध्यान रखकर करना चाहिए। इस दृष्टिसे देखा जाये तो हम मानते हैं कि भारतीय मजदूर संसारमें सबसे अधिक दक्ष हैं। वे कदमें छोटे हो सकते हैं, सुस्त हो सकते हैं कमजोर हो सकते हैं परन्तु वे अत्यन्त संतोषी शिकायत न करनेवाले धैर्यवान और दीर्घकालतक कष्ट सहनेवाले होते हैं। इसलिए, अपने मालिकोंको तकलीफ नहीं देते और भरोसेका काम करनेवाले होते हैं। अगर कोई दूसरे मजदूर लाये जायेंमें चाहे अस्थायी तौरपर ही क्यों न हो तो भी भारतीय मजदूरोंके सभी विशेष गुणोंकी जिनको हमने गिनाया है, कद्र की जायेगी। और उनके गुणोंके कारण उनका मूल्य ऊँचा आँका जायेगा। परन्तु जब तक उपनिवेशके लिए भारतीय मजदूरोंकी रखना जरूरी है तबतक उपनिवेशियोंको उन्हीं पाबन्दियोंसे सन्तोष करना चाहिए जिन्हें पहलेसे लगाया जा चुका है और उनमें प्रत्येक भारतीयको पास रखनेके लिए मजबूर करनेकी अपमानजनक पाबन्दी न बढ़ानी चाहिए। श्री मैकक्लिस्टलने संयोगवश कहा था कि अधिकतर एशियाई विटिश प्रजाजन नहीं हैं बल्कि अरब हैं। कुछ भारतीय बेशक अपनेको अरबी सौदागर कहते हैं, परन्तु इन महाशयके लिए इतना बड़ा अज्ञान प्रकट करनेका यह कोई कारण नहीं है। इस उपनिवेशमें अरबी शब्दका उपयोग मुसलमानके अर्थमें होने लगा है क्योंकि मुस्लिम धर्मका उदय अरबमें हुआ था।

दूसरा मामला जिसपर सम्मेलनमें विचार किया गया मजदूरोंकी कमीका था। इस प्रकार सम्मेलनमें एक तरफ तो यह चाहा गया कि भारतीयोंपर और अधिक पाबन्दियाँ लगाई जायें और दूसरी तरफ मजदूरोंकी कमीकी शिकायत की गई। भारतकी भी अपनी सीमाएँ हैं और हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि वह मजदूरोंकी भरतीके लिए कोई अक्षय क्षेत्र है। स्वयं भारतमें आन्तरिक प्रवासकी एक व्यापक प्रणाली है और वहाँसे बर्मा और सिंगापुरकी तरफ एक अजस्र धारा बह रही है। उसमें लंका मॉरिशस और फीजी-सहित दूसरे उपनिवेश भी मिला दीजिये। भारतीय मजदूरोंको प्राप्त करनेवाले अनेक प्रतिस्पर्धियोंमें नेटाल सिर्फ एक है। इसलिए अगर मजदूरोंपर अत्यधिक प्रतिबन्ध लगानेके कारण उनके मार्गमें बाधा आ जाये तो उसे आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हमें कोई शंका नहीं कि नये प्रवासी-कानूनसे मजदूरोंकी

उपनिवेशपर बहुत असर पड़ेगा क्योंकि उसके द्वारा गिरमिटिया लोगों और उनके बच्चोंपर स्वतन्त्र होनेके बाद तीन पौंडका वार्षिक कर लगा दिया गया है। उपनिवेशको भारतीय मजदूरोंकी जरूरत है और फिर भी वह उसके अनेक स्वाभाविक परिणामोंसे बचना चाहता है। हमारे खयालसे यह असंगत स्थिति रास्तेकी जितनी बड़ी रुकावट है उतनी जैसा सम्मेलनमें कुछ वक्ताओंका खयाल था यह समस्या नहीं कि नये प्रवासी पुरुषोंके साथ प्रतिशत कितनी स्त्रियाँ हों।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९०४

२४१ रंगमें भंग

ट्रान्सवालका तथाकथित एशियाई राष्ट्रीय सम्मेलन (एशियाटिक नेशनल कन्वेन्शन) अगर किया भी गया तो उसे जोहानिसबर्गके प्रतिनिधियोंके बिना ही करना होगा। यह हैमलेट [नायक]-के बिना हैमलेट [नाटक]-के अभिनयके समान होगा। इस स्वर्ण-नगरी के वाणिज्य-संघ और व्यापार-संघ दोनोंने किसी भी ऐसे सम्मेलनसे सम्बन्ध रखनेसे इनकार कर दिया है जिसका उद्देश्य भी मिलनके सम्बन्धोंमें बेगुनाह लोगोंकी सम्पत्ति नष्ट करना हो। इन संघोंका कहना है कि सम्मेलनके संयोजकोंने जो प्रस्ताव रखे हैं वे इतने कड़े हैं कि कोई ब्रिटिश समुदाय उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि उनके पीछे नीयत यह है कि ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको मुआवजा दिये बिना *बाजारोंमें* हटा दिया जाये और निहित स्वार्थोंकी कोई परवाह न की जाये। श्री बोर्क और श्री लवडेने जो इलाज सुझाया है वह पचिफस्ट्रूम पहरेदार संघके लिए भी अत्यन्त तेज है यद्यपि जैसा हमारे पाठक जानते हैं यह संघ उस समय भी भारतीयोंका पूरी तरह विरोधी था जब भारतीय प्रश्नपर सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। हम दोनों व्यापार-संघों और पचिफस्ट्रूम संघको बधाई देते हैं कि उन्होंने न्यायपर कायम रहनेका साहस किया। अन्धे और विवेकरहित विरोधके बीचमें प्रतिनिधि-संस्थाओं द्वारा प्रकाशित गम्भीर विचारों और भावोंकी सराहना करते हुए हमें राहत मिलती है। हमें सन्देह नहीं कि यदि ब्रिटिश भारतीय कुछ समय और रुकें थोड़ा और धैर्य रखेंगे और पूर्णत: शान्तचित्त रहेंगे तो बाकी सब काम अपने आप हो जायेगा। जैसा स्वर्गीय प्रोफेसर मैक्समूलर कहा करते थे किसी नये सत्यको लोगोंके गले उतारने और उनके पहलेसे बने हुए खयालोंको मिटानेका एकमात्र उपाय यही है कि उसे अथक रूपमें बार-बार दुहराया जाये। इसलिए हमारा कर्तव्य स्पष्ट है। हमें मौका हो चाहे न हो यह दिखाते ही रहना चाहिए कि भारतीयोंका मामला मजबूत है और भारतीयोंने कभी कोई ऐसी माँग नहीं की जो औचित्यके साथ स्वीकार न की जा सके और जिसका गोरे व्यापारियोंके हितों और गोरे प्रभुत्वसे विरोध हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९०४

२४२. ट्रान्सवालकी रेलोंमें रंगदार यात्री

जोहानिसबर्गके अखबारोंमें परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त और रैंड अग्रगामी संघ (रैंड पायोनियर्स) का एक दिलचस्प पत्रव्यवहार प्रकाशित हुआ है। उसका विषय है, ट्रान्सवालके वतनी लोगोंका मध्य दक्षिण आफ्रिकी रेलोंपर पहले और दूसरे दर्जोंमें यात्रा करना। लॉर्ड मिलनरने रैंड अग्रगामी संघको विश्वास दिलाया है कि आयन्दा छूटके प्रमाणपत्र-प्राप्त लोगोंके सिवा और किसी वतनीको रेलोंमें पहले या दूसरे दर्जेमें यात्रा नहीं करने दी जायेगी और निरीक्षकों और स्टेशनमास्टरोंको हिदायत कर दी गई है कि रंगदार मुसाफिरोंको गोरे मुसाफिरोंसे अलग रखा जाये। रैंड अग्रगामी संघने अपनी माँग वतनी लोगोंतक ही सीमित रखी है परन्तु मुख्य व्यवस्थापक श्री प्राइसने जो हिदायतें जारी की हैं, उनके अन्तर्गत ब्रिटिश भारतीयों-सहित सब रंगदार लोग आ जाते हैं। अलबत्ता यह जानकर कुछ सन्तोष होता है कि प्रतिष्ठित ब्रिटिश भारतीयोंको कठिनाईके बिना पहले या दूसरे दर्जेके टिकट मिल जाया करेंगे। प्रयोगके तौरपर प्रिटोरिया-पीटर्सबर्ग मार्गपर रंगदार मुसाफिरोंके लिए विशेष डिब्बे जोड़े जायेंगे। तिलका ताड़ कैसे बनाया जा सकता है इसका यह एक उदाहरण है। और अगर अलग-अलग जातियोंके लिए अलग-अलग डिब्बे रखने हैं तो तर्ककी दृष्टिसे वतनी लोगों चीनियों ब्रिटिश भारतीयों केपके रंगदार लोगों बोअरों अंग्रेजों और जर्मनों वगैरा सबके लिए अलग डिब्बे होने चाहिए। उस सूरतमें बेशक यह सवाल होगा कि इस लाइनको कमाऊ कैसे बनाया जाये। परन्तु ट्रान्सवालकी भावनाका चाहे वह उचित हो या अनुचित सम्मान कैसे किया जाये इसके मुकाबलेमें यह बहुत छोटी बात होगी। मगर, मजाककी बात छोड़िए। यदि भेद रखना है तो हमारे खयालसे तीन अलग तरहके डिब्बोंकी जरूरत होगी अर्थात् यूरोपीयों वतनियों और एशियाइयोंके लिए। मुख्य व्यवस्थापकका जारी किया गया परिपत्र तो सचमुच चिढ़ानेवाला है और हमें पूरा यकीन है कि हमने जो-कुछ सुना है वह अन्तिम बात नहीं होगी। रैंड अग्रगामी संघने पहले ही अपना असन्तोष जाहिर कर दिया है और वह नहीं मानता कि ट्रान्सवालके वतनी लोगोंको पहले या दूसरे दर्जेमें जरा भी सफर करने दिया जाये। वह माननेसे इनकार करता है कि जिनके पास छूटके प्रमाणपत्र हैं और जिनके पास नहीं हैं, उनमें कोई भेद है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ५-११-१९०४

२४३. पत्र : दादाभाई नौरोजीको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़ रिसिक और एंडर्सन स्ट्रीट
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
नवम्बर ५, १९०४

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२ केनिंगटन रोड
लंदन

प्रिय महोदय

आपका ११ अक्तूबरका पत्र मिला। मैं आपको सर विलियम सर मंचरजी और पूर्व भारतीय संघको साप्ताहिक चिट्ठी अक्सर भेजता हूँ। प्लेग-सम्बन्धी पत्रव्यवहारपर लॉर्ड मिलनरको लिखे गये अपने पत्रकी[1] प्रति इसके साथ नत्थी कर रहा हूँ।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी एन २२६४-१) से।

२४४. लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र[2]

[नवम्बर ५, १९०४]

ब्रिटिश भारतीयों द्वारा लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र भेंट करनेका मुख्य समारोह शुक्रवार, ११ नवम्बरको तीसरे पहर पौने तीन बजे किया गया। उस पुराने अनुभवी सिपाहीने मानपत्रपर हस्ताक्षर करनेवाले लोगोंका स्वागत बड़े सौजन्यसे किया और सारा आयोजन सन्तोषपूर्वक सम्पन्न हुआ। मानपत्रकी प्रतिलिपि यह थी :

सेवामें

फ़ील्ड मार्शल परममाननीय कंधहार, वॉटरफोर्ड और प्रिटोरियाके अर्ल रॉबर्ट्स के जी के पी जी सी बी जी सी एस आई जी सी आई ई ओ एम वी सी
प्रिटोरिया।

लॉर्ड महानुभाव

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले ट्रान्सवाल-निवासी ब्रिटिश भारतीयोंके प्रतिनिधि इस देशमें यहाँ आपने हाल ही में साम्राज्यके लिए परिश्रम किया है, आपका काउंटेस रॉबर्ट्सका और लेडी एलीन और एडविना रॉबर्ट्सका सादर स्वागत करते हैं।

१. देखिए "पत्र : लॉर्ड मिलनरको" अक्तूबर ११, १९०४।
२. यह "हमारे विशेष संवाददाता द्वारा" प्रेषित रूपमें छापा गया था।

हमारे लिए यह कम गर्वका विषय नहीं है कि भारतने ही साम्राज्यको आधुनिक कालका सबसे बड़ा सिपाही दिया है, जिसमें सिपाहीकी कठोरता और साधुकी कोमलताका सामंजस्य है।

हम भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि वह आपको काउंटेस रॉबर्ट्सको और परिवार भरको अपना अनुग्रह प्रदान करे और साम्राज्यको दीर्घ कालतक आपकी अनुभवी सलाहोंका लाभ मिलता रहे।

प्रिटोरिया नवम्बर ९, १९०४।

भारतके हिन्दू और मुसलमान सेवक,

अब्दुल गनी
हाजी मुहम्मद हाजी जुसब
हाजी हबीब हाजी दादा
एम० एस० कुवाड़िया
इस्माइल आमद मुल्ला
अमृतलिंग चेट्टी
आमद हाजी तैयब
महमद कसीब
हाजी उस्मान हाजी अब्बा
मो० क० गांधी

यह मानपत्र कामदार सुन्दर-सुनहले अक्षरोंमें लिखा गया था और कुमारी ऐला एम विंसिससने जिनके हाथोंमें यह काम सौंपा गया था इसके लिए एक बिलकुल मौलिक नमूना सोचा था। मानपत्रका बाईं ओरका सारा भाग भारतके सुन्दर पक्षी मोरके हूबहू चित्रने घेर लिया है। अक्षर भी बहुत सुन्दर हैं और सारी सजावट एक कलाकृति है। मानपत्र ठोस चाँदीके डिब्बेमें बन्द था जिसपर कमलके फूल खुदे हुए थे। मानपत्र और डिब्बा दोनों ही उस विशिष्ट प्राप्तिकर्ता और भारतीय समाजके अनुरूप थे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-११-१९०४

२४७ एडविन आर्नोल्ड-स्मारक

एडविन आर्नोल्ड-स्मारक समितिके जारी किये हुए परिपत्रकी एक प्रति हमें मिली है। समितिका —

> खयाल है कि सर एडविनके कामका सबसे उचित सम्मान यह होगा जिससे उनका नाम प्राच्य साहित्यके प्रति उनकी महान सेवाओंके साथ जुड़ जाये। यह उनका विशेषाधिकार था कि अपनी काव्य-प्रतिभा   और पूर्वी सभ्यता, रीति-रिवाजों और भावनाओंपर अपने सजीव और प्रदीप्त गद्य-लेखोंके द्वारा उन्होंने यूरोप और अमेरीकाके पाश्चात्य लोगोंको पूर्वके लोगोंका अधिक ज्ञान कराया और इस प्रकार उनमें आपसी दिलचस्पी और हमदर्दी पैदा की, जिससे दोनोंके कल्याण और सुखकी वृद्धि हुए बिना नहीं रह सकती।   इसलिए समिति ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयमें प्राच्य साहित्यमें प्रवीणता प्राप्त करनेके लिए छात्रवृत्ति या छात्रवृत्तियाँ देना अथवा पुरस्कारोंकी स्थापना करना चाहती है।

समितिमें परम माननीय लॉर्ड रेसी अध्यक्षके रूपमें हैं और सर आगा खाँ सर मंचरजी मेरवानजी भावनगरी सर जॉर्ज बर्डवुड परममाननीय जोसेफ चेम्बरलेन वायकाउंट हयाशी श्री रूडयार्ड किपलिंग और दूसरे लोगोंके नाम भी हैं। चन्दा श्री हेनरी एस० किंग ऐंड कं०   ९, कॉर्नहिल लन्दनके पतेपर भेजा जा सकता है। अगर हमारे कोई पाठक हमारे पास अपना चन्दा भेजेंगे तो हम *इंडियन ओपिनियनमें* खुशीसे उसकी प्राप्ति स्वीकार करेंगे और उसको समय-समयपर खजानचीको भेज देंगे। सर एडविनकी पूर्व और पश्चिमके प्रति सेवाओंकी अभी-तक काफी कद्र नहीं की गई है। समय ही बतायेगा कि उनकी ये सेवायें कितनी बड़ी थीं। पश्चिमी मानसपर अकेले एशियाकी ज्योति (*लाइट ऑफ एशिया*) ग्रन्थकी छाप ही सदाके लिए अमिट हो गई है। कहा जाता है कि अपने मानसके पूर्वी झुकावके कारण ही उन्हें राजकविका पद नहीं मिल पाया। इसलिए हमें आशा है कि हमारे पाठक भारतीय और यूरोपीय दोनों इस स्मारक-कोषमें बहुतायतसे चन्दा भेजेंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १२-११-१९ ४

१. इसमें खुद गांधीजीने ५ पौंड ५ शिलिंग चन्दा दिया था।

२५० लार्ड रॉबर्ट्स और ब्रिटिश भारतीय

हम लॉर्ड रॉबर्ट्सको रजत मंजूषासह मानपत्र भेंट करनेपर ट्रान्सवालवासी स्वदेश भाइयोंको बधाई देते हैं। हम इस मानपत्रकी प्रतिलिपि और मंजूषाका विवरण एक दूसरे स्तम्भमें छाप रहे हैं।[1] उनका यह कार्य बहुत ही शोभाजनक था। जैसा कि मानपत्रपर हस्ताक्षर करनेवालोंने कहा है, भारतीयोंके लिए यह कुछ कम गर्वकी बात नहीं कि साम्राज्यकी इस जमानेका सबसे बड़ा सिपाही भारतने दिया है। अपनी कठोर सैनिकताके बावजूद लॉर्ड रॉबर्ट्समें दयालुता बहुत अधिक है। उन्होंने बोअर युद्धके दिनोंमें कैदियोंके प्रति बरतावमें बहुत ज्यादा लिहाजसे काम किया। भारतीय सिपाहियों और भारतसे सम्बन्धित सभी बातोंमें उन्होंने सदा सहानुभूतिपूर्ण रख किया है और ट्रान्सवालके भारतीयाने इस देशमें आनेपर लॉर्ड महोदयका सम्मान किया यह बिलकुल उचित ही था।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १२-११-१९०४

२५१ तार दादाभाई नौरोजीको

[जोहानिसबर्ग
नवम्बर १८, १९०४]

सेवामें

दमकाव[2]

लंदन

सारे ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी बृहद् सभा। एशियाई सम्मेलनकी कार्यवाहियोंके विरोधमें प्रस्ताव क्योंकि ब्रिटिश प्रजाजनों और मर्दों — वतनियों और भारतीयों — में अन्तर नहीं किया गया [और] सम्मेलनके प्रस्तावों पर अमलका अर्थ जब्ती और बरबादी सम्मेलनके आरोपकी खुली जाँचकी माँग सामान्य आधार पर — जातीयपर नहीं — प्रवास प्रतिबन्ध सिद्धान्त स्वीकृत कानून घुमाया गया कि स्थानीय निकाय नये व्यापारिक परवाने दें जिनपर सर्वोच्च-न्यायालयमें अपील की जा सके।

ब्रिटिश भारतीय

[अंग्रेजीसे]

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स सी ओ २९१ खण्ड ७९, इंडीविजुअल्स-एन।

१ यह पत्रक नवम्बर १९, १९०४के अंकमें इस टिप्पणीके साथ छापा गया था : "हमें खेद है कि चित्र पिछले अंकमें शामिल करनेसे छूट गई थी।" देखिए "अभिनन्दनपत्र : लॉर्ड रॉबर्ट्सको" नवम्बर १९, १९०४।

२. दादाभाई नौरोजीका तारका पता। दादाभाईने तारकी प्रति उपनिवेश-सचिवके पास भेजी। (सी० ओ० २९१, खण्ड ७९, इंडीविजुअल्स-एन) इंडियन ओपिनियनने अपने नवम्बर २५, १९०४के अंकमें तारको निम्नलिखित रूपमें प्रकाशित किया था

जोहानिसबर्ग
नवम्बर १८, १९०४

ट्रान्सवाल भरमें बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंकी जोहानिसबर्गमें एक विशाल सभा हुई है और

२५२. मुख्य न्यायाधीश और ब्रिटिश भारतीय

उस दिन सर हेनरी बेलने कहा कि अदालत भवनमें जानेवाले भारतीयोंका व्यवहार जाहिरा तौरपर अनादरपूर्ण होता है, क्योंकि उससे अदालतके प्रति सम्मानका कोई बाहरी लक्षण प्रकट नहीं होता। वे अपनी पगड़ी या टोपी नहीं उतारते क्योंकि उनका रिवाज इसके विपरीत है, और जूते उतारे नहीं जा सकते क्योंकि ऐसा करना असुविधाजनक होता है। महानुभावने निर्णय दिया कि प्रत्येक भारतीयको अदालतमें घुसनेपर सलाम करना होगा। अगर यह नहीं किया जायेगा तो इस अदालतका अपमान समझा जायेगा। हम महानुभावका ध्यान आदर पूर्वक इस तथ्यकी ओर आकर्षित करते हैं कि पगड़ी बाँधना या भारतीय टोपी लगाना ही आदरका चिह्न है। क्योंकि जैसे यूरोपीय रिवाजके अनुसार किसी स्थानमें प्रवेश करने पर टोप उतारना आवश्यक होता है, वैसे ही भारतीय रिवाजके अनुसार पगड़ी बाँधे रखना या टोपी पहने रहना जैसी भी स्थिति हो आवश्यक होता है। आदरका अभाव भारतीयोंकी विशेषता नहीं है और हम महानुभावको विश्वास दिलाते हैं कि सलाम न करनेमें उनका आशय अनादर करना नहीं हो सकता। सलाम तभी होता है जब सलाम करनेवाले और लेने वाले दोनोंकी आँखें मिलें और यह अदालत-भवनमें सम्भव नहीं क्योंकि वहाँ तो न्यायाधीश अपने सामने पेश मामलेमें व्यस्त होता है। हमारी रायमें केवल यह एक बात सम्भव है कि गवाहके कठघरेमें जानेपर भारतीयसे बेशक सलाम कराया जाये। मगर हमारे खयालसे यह चेतावनी आवश्यक नहीं है क्योंकि गवाहके कठघरेमें प्रवेश करनेपर प्रत्येक भारतीय स्वभावसे ही अदालतके प्रति समुचित सम्मान व्यक्त करता है। फिर भी भारतीय मुकदमेबाजोंके लिए यह अच्छा ही है कि जब अदालतोंमें जानेका मौका पड़े तब वे महानुभावकी हिदायतोंको ध्यानमें रखें। हमें किसी भी हालतमें किसीको इस सन्देहका भी अवसर नहीं देना चाहिए कि हम न्यायाधीशों अथवा दूसरे अधिकारियोंका कोई अनादर करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १९-११-१९०४

इसमें ११ नवम्बरको प्रिटोरियामें हुए "कमीशन" की गुप्त बैठक [illegible] सम्बन्धी कार्रवाईके विरोधमें प्रस्ताव पास किये गये हैं।

विरोधका आधार यह है कि इस "कमीशन" ने [illegible] और भारतीयोंसे, जो [illegible] भाग हैं, कोई सम्पर्क नहीं किया।

इसमें घोषित किया कि यदि "कमीशन" के प्रस्तावोंपर अमल किया गया तो [illegible] और भारतीय [illegible] समाप्त होंगे।

इसके अतिरिक्त उसने "कमीशन" के [illegible] और [illegible] — [illegible] नहीं — [illegible] स्वीकार किया। यह [illegible] कि [illegible] कानून [illegible] निजी [illegible] अनुसार [illegible] नियम [illegible] करते हैं, किन्तु [illegible] में [illegible] की जा सके।

२५३. ऑरेंज रिवर उपनिवेश और ब्रिटिश भारतीय

८ तारीखको ब्लूमफॉन्टीनमें जो किसान-सम्मेलन हुआ था उसमें ऑरेंज रिवर उपनिवेशके परमश्रेष्ठ गवर्नरने उस उपनिवेशके भारतीय-विरोधी कानूनके बारेमें निम्नलिखित विचार प्रकट किये :

> इस उपनिवेशमें एशियाइयोंके आगमनके बारेमें बात यह है कि मेरे लिए इस सवालको थोड़ा छेड़ना भी बहुत खतरनाक है। क्योंकि ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें हमारे इंग्लैंडवासी लोगोंकी भावना बहुत तीव्र है परन्तु मैं इतना कह सकता हूँ कि जनूनमें पिछली सरकारके मंजूर किये हुए कानूनमें फिलहाल कोई परिवर्तन नहीं होगा और न अभी कोई परिवर्तन करनेका हमारा खयाल है।

तो अब हमें उपनिवेशके ब्रिटिश भारतीयोंकी निर्योग्यताओंके बारेमें राज्यके प्रधानकी तरफसे एक निश्चित घोषणा मिल गई है। इसलिए जाहिर है कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें प्रवेश करते ही भारतीयोंपर जो अपमानजनक प्रतिबन्ध लगा दिये जाते हैं, उनसे कोई राहत नहीं मिलेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-११-१९०४

२५४. लॉर्ड नॉर्थब्रुककी मृत्यु

गुजरातकी दोपहरको माननीय लॉर्ड नॉर्थब्रुककी मृत्युका समाचार पढ़कर हमें अत्यन्त खेद हुआ। बरसोंसे हम लोग लॉर्ड नॉर्थब्रुकका नाम सुन रहे हैं। लॉर्ड मेयोका खून होनेके बाद लॉर्ड नॉर्थब्रुक भारतके वाइसराय और गवर्नर जनरल बने।[1] उनके समयमें हमेशा याद रखने लायक दो ऐतिहासिक घटनाएँ हुईं — हमारे युवराज (प्रिन्स ऑफ वेल्स) ने भारतकी यात्रा की[2] और बड़ौदा-नरेश श्री मल्हारराव गायकवाड़ गद्दीसे उतारे गये। हमारे लिए विशेष दुःखका कारण यह है कि हम लोगोंके प्रति उनकी बहुत सद्भावना थी। १८९७-९८में जब दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय प्रतिनिधि लन्दनमें थे इन माननीय महोदयने अनेक प्रसंगोंपर उन्हें उत्तम परामर्श दिया था और आवश्यकता प्रतीत होनेपर खासी सहायता भी दी थी। इतना ही नहीं बल्कि यह भी कहा था कि यदि हमारा प्रश्न कभी लॉर्ड-सभामें उठाना पड़े तो वे पूरी सहायता देंगे। इसके बाद उनकी सहानुभूतिके पत्र अर्जेन्ट भी आया करते थे।[3] हमारा विश्वास है कि यहाँकी कांग्रेस उपयुक्त प्रस्ताव स्वीकृत करके अपने कर्तव्यका पालन करेगी। जोहानिसबर्गमें ट्रान्सवालके भारतीयोंने उपयुक्त प्रस्ताव स्वीकृत किया यह बड़ा अच्छा किया है। इसमें हमारी पूरी सहमति है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १९-११-१९०४

१. सन् १८७२ से ७६ तक भारतके वाइसराय।

२. सन् १८७५ में।

३. ब्रिटिश [illegible] सर्वसम्मत निर्णय नहीं पहुँच सकी।

२५५ हुंडामलका परवाना

जैसी कि हमें आशा थी श्री हुंडामल अपीलमें जीत गये हैं और इस विजयपर हम उन्हें और उनके वकील श्री विन्स दोनोंको बधाई देते हैं। किन्तु विद्वान मुख्य न्यायाधीशके फैसलेसे यह बिलकुल स्पष्ट है कि संघर्ष किसी प्रकार खतम नहीं हुआ है। अपीलका फैसला करीब करीब एक गौण मुद्देपर हुआ है। न्यायाधीशने यह राय दी है कि श्री हुंडामलको परवानेके बिना व्यापार करनेके आरोपमें सम्मन भेजनेमें भूल की गई है क्योंकि उनके पास परवाना था। परन्तु उन्होंने अपीलमें उठाये गये इस मुद्देपर निर्णय देनेसे इनकार किया है कि परवाना-अधिकारीको किसी खास स्थानमें व्यापारको सीमित करनेका हक है या नहीं। इसलिए भारतीय समाजको काफी चिन्ता और भयके साथ नये सालको शुरू करना है। ब्रिटिश उपनिवेशमें ऐसी हालत नहीं रहने दी जानी चाहिए और हमें भरोसा है कि जल्दी ही इस कानूनमें संशोधन कर दिया जायेगा। स्वर्गीय श्री एस्कम्बने कहा था कि उन्होंने नगर-परिषदको व्यापक सत्ता इसलिए दी थी कि उन्हें उसकी सौम्यतापर भरोसा था। हमें यह कहते हुए दुःख होता है कि डर्बन नगर-निगमने अनेक अवसरोंपर उन अपेक्षाओंको गलत साबित किया है और यदि इस उपनिवेशका प्रमुख नगर-निगम उन्हें उचित सिद्ध नहीं कर सका तो उससे छोटी संस्थाओंसे क्या अपेक्षा रखी जा सकती है? सभी मानते हैं कि विक्रेता-परवाना अधिनियम दमनका एक भयंकर साधन है। तब क्या हम अपने विधानमण्डल-सदस्योंसे यह अपील नहीं कर सकते कि वे स्थानीय अधिकारियोंसे यह प्रलोभन छीन लें? तभी परवानोंके जारी करनेके कामको नियमित और नियन्त्रित रखना पूरी तरह सम्भव होगा और शायद कहीं अधिक सन्तोषजनक ढंगसे। अपीलसे दूसरा विचार यह उत्पन्न होता है कि अपनी जीतके बावजूद भी हुंडामलकी हार ही हुई है। केवल अभियोग-पक्षकी समझसे और, हम आदरपूर्वक कह सकते हैं मजिस्ट्रेटके उतावलीमें दिये गये फैसलेके कारण ही उन्हें भारी खर्च उठाना पड़ा है। यह मान लिया गया है कि मुकदमा गलतीसे चलाया गया था। फिर भी श्री हुंडामलको इस गलतीका नुकसान उठाना पड़ा है। यह संघर्ष असमान है और इसके आर्थिक पहलूको कभी नजरअन्दाज नहीं करना चाहिए। नगर-परिषदसे कमसे-कम इतना करनेकी तो अपेक्षा रखी ही जा सकती है कि उसकी गलतियोंके कारण इन गरीब लोगोंको जो खर्च उठाना पड़े वह उन्हें वापस कर देगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६-११-१९०४

२५९ एशियाई विरोधी सम्मेलन और ब्रिटिश भारतीयोंकी सभा

इसी मासकी १ तारीखको प्रिटोरियामें हुए एशियाई-विरोधी सम्मेलनके कुछ उल्लेखनीय परिणाम हुए हैं जिनकी कल्पना संयोजकोंने शायद कभी नहीं की थी। कुछको छोड़कर बाकी सब दक्षिण आफ्रिकी समाचारपत्रोंने भी उसकी कार्रवाई मनमानी और अन्यायपूर्ण बताई है और उसकी निन्दा की है। लन्दन टाइम्सने इस बारेमें अगुआई की है और कहा है कि कार्रवाईसे प्रतिनिधियोंमें राजनयिक चतुराईका अभाव प्रकट होता है। उसने यह भी कहा है कि इस प्रकारके आन्दोलनसे चाहे वह कितना ही तीव्र हो साम्राज्य-सम्बन्धी कर्तव्योंकी अवहेलना नहीं करने दी जा सकती और श्री लिटिलटनने अपने खरीतेमें इस प्रश्नपर जो प्रस्ताव रखे हैं उनका त्याग नहीं किया जा सकता एवं ब्रिटिश भारतीयोंको हानि नहीं पहुँचाई जा सकती। हमने सम्मेलनके बारेमें सब समाचार पढ़े हैं। हमें जिस बातसे सबसे अधिक दुःख हुआ है वह यह है कि अगर कार्रवाईका यह सार ठीक है तो हमारे खयालसे उससे वक्ताओंका निपट अज्ञानी होना प्रकट होता है। ब्रिटिश भारतीयोंके बारेमें और साम्राज्य-सरकारके इरादोंके बारेमें जो अनर्गल बातें कही गई हैं। हमने सुना है कि जो भाषण दिये गये वे अत्यन्त उत्तेजक थे और संवाददाताओंने उनको बहुत नरम बना दिया है। हमें बताया गया है कि कुछ वक्ताओंने तो साम्राज्य-सरकारको भी चुनौती दी। जैसे जहाँतक यूरोपीयों और भारतीयोंका सम्बन्ध है, यह मान लिया गया है कि यूरोपीय प्रमुख हिस्सेदार रहेंगे वैसे ही क्या यह तथ्य नहीं है कि जहाँतक साम्राज्य-सरकार और उपनिवेशोंका सम्बन्ध है, साम्राज्य-सरकारकी आवाज प्रमुख है? एक बोअर प्रतिनिधिने कहा था वे जो चाहें सो सब उन्हें मिलना ही चाहिए। यदि सम्मेलनके सदस्योंका यही दावा हो तो एक अत्यन्त गम्भीर प्रश्न उपस्थित होता है कि उस सम्बन्धका क्या महत्त्व है जिसमें एक पक्षको सब-कुछ लेना जरूरी हो और दूसरे पक्षको सब-कुछ देना। साम्राज्यका वर्तमान रूप न्याय और औचित्यकी नींवपर बना है। उसने सबलसे निर्बलकी रक्षा करनेकी चिन्ता और समताके सम्बन्धमें संसारव्यापी ख्याति प्राप्त की है। युद्धकी अपेक्षा शान्ति और रचनात्मक कामोंसे ही उसने अपना वर्तमान रूप प्राप्त किया है। और, हम कहना चाहते हैं यदि सम्मेलनके सदस्य यह समझते हों कि उनके स्वार्थोंकी पूर्तिके लिए साम्राज्य-सरकारकी निश्चित नीति अचानक बदल ही जायेगी और उनके कहनेसे ही श्री विनके शब्दोंमें साम्राज्य-सरकार यह लूटपाट कर डालेगी तो वे बड़ी भूल कर रहे हैं। इसलिए यद्यपि सम्मेलनकी हिंसापूर्ण कार्रवाईसे ब्रिटिश भारतीयोंमें डर पैदा होनेकी जरूरत नहीं है फिर भी यह अच्छा ही हुआ कि ब्रिटिश भारतीय संघने सम्मेलनकी कार्रवाईपर विचारके लिए तुरन्त उपनिवेश-भरके भारतीयोंकी सार्वजनिक सभा[1] बुला ली। हमने पिछले सप्ताह जो पूरा विवरण प्रकाशित किया था उससे जाहिर होता है कि सभामें बहुत लोग उपस्थित थे। उसमें उपनिवेशके तमाम हिस्सोंके प्रतिनिधि आये थे और उसकी कार्रवाई बिलकुल सौम्य किन्तु साथ ही काफी जोरदार हुई थी। श्री अब्दुल गनीने अपने भाषणमें स्पष्ट किया कि प्रिटोरियाके सम्मेलनमें उन हालतोंकी कल्पना कर ली गई थी जो कभी थीं ही नहीं और फिर उनका इलाज शुरू कर दिया गया था। यह भी अच्छा हुआ कि उन्होंने इस तथ्यपर जोर

१. १० नवम्बरको एशियाई-विरोधी सम्मेलनकी कार्रवाईपर आपत्ति प्रकट करनेके लिए बुलाई गई सभा।

(*इंडियन ओपिनियन*, नवम्बर १९, १९०४)

दिया कि सम्मेलनने ब्रिटिश प्रजाजनों और गैर-ब्रिटिश प्रजाजनोंके भेदकी ओर, साथ ही दक्षिण आफ्रिकाके देशी लोगों और ब्रिटिश भारतीयोंके भेदकी भी बिलकुल उपेक्षा की है। इन दो मौलिक तथ्योंकी अवहेलनाका भारतीयोंकी जितनी हानि हुई है उतनी और किसी बातसे नहीं हुई। जिन सज्जनोंका भारतीयोंका ट्रान्सवालसे निकास देनेमें स्वार्थ है उन्हें यह अनुकूल हो सकता है कि वे भारतीयोंको पहले तमाम एशियाइयोंमें शामिल करें और फिर एशियाइयोंको दक्षिण आफ्रिकाके देशी लोगोंके साथ मिलायें एवं इस प्रकार असली मुद्देको गड़बड़ीमें डाल दें। उनके लिए ऐसा करना कुछ उचित है, क्योंकि सर आर्थर लाली भी अपने तरीकेमें इस विचारके शिकार हो गये हैं। परन्तु हमें विश्वास है कि अब जब कि सम्मेलनमें उपस्थित अधिकतर लोगोंके असली इरादे साफ-साफ मालूम हो गये हैं हम चाहेंगे कि श्री लायुल मनोने जिन भेदोंपर जोर दिया है ब्रिटिश सरकारके अधिकारी भी उन्हें स्वीकार करें। ब्रिटिश भारतीय संघने जिन प्रस्तावोंको सभामें दुहराया है हम उनकी तरफ भी अधिकारियोंका ध्यान खींचते हैं। यदि हमें यह कहनेकी अनुमति हो तो हम कहेंगे कि उन्होंने इस पेचीदा सवालका पूरा और साथ ही राजनीतिज्ञतापूर्ण हल सुझाया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६-११-१९०४

२५७. रोगका घर

हम फेरैराज बस्तीके बारेमें डॉ० पोर्टरका सजीव विवरण उद्धृत कर रहे हैं। इससे मालूम होगा कि यह स्थान जोहानिसबर्गकी पुरानी भारतीय बस्तीकी अपेक्षा सफाईकी दृष्टिसे बेहद खराब है। यह ब्रिटिश संविधानकी ताकत भी है और साथ ही कमजोरी भी कि उसके अन्तर्गत कानूनी अधिकारके बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता भले ही वह साफ तौरपर सार्वजनिक हितमें ही क्यों न हो। जोहानिसबर्ग प्लेग-समितिका पता चला है कि इस स्थानमें प्लेग फैले या न फैले उसे कानूनन वह उपाय अमलमें लानेका अधिकार नहीं है जिसे श्री मिलनने अग्नि चिकित्सा कहा है। और, इसलिए, जोहानिसबर्गको बरसातके मौसममें दुबारा प्लेग फैलनेकी जोखिम उठानी ही होगी। हमें आशा है कि इस विषम स्थितिका कोई उपाय ढूँढ़ा जायेगा और जल्दी ही फेरैराज बस्तीकी सीमाके भीतरके इलाकेका योग्य सुधार किया जायेगा। डॉ० पोर्टरके दिये हुए आंकड़ोंसे अध्ययनकी रोचक सामग्री मिलती है। सारे इलाकेकी आबादीमें २८८ भारतीय ५८ सीरियाई, १६५ चीनी २९७ केपवाले ७५ काफिर और ९२९ गोरे हैं। इनमें से डॉक्टर पोर्टरके कथनानुसार सही तौरपर गन्दे इलाकेकी आबादीका बँटवारा यहाँ देते हैं। भारतीय २५५, सीरियाई १७ चीनी १२६, केपवाले १९२, काफिर ११ और गोरे २४१। इस प्रकार हम देखते हैं कि नीचे दर्जेके लोग सभी जातियोंमें लगभग समान हैं। किन्तु हमारे खयालसे असली अपराधी मकान-मालिक हैं। जबतक उनको भारी किराया मिलता है तबतक उन्हें इस बातकी जरा भी परवाह नहीं होती कि बेचारे किरायेदारोंपर क्या बीतती है या वे कैसे रहते हैं। और, मकान-मालिक खून चूसनेकी कार्रवाई इसीलिए कर सके हैं कि जोहानिसबर्ग नगर-परिषद बहुत ज्यादा लापरवाह है। परिषद बहुत पहले ही इस स्थानका मामला तय कर सकती थी। यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि इस मामलेमें मकान-मालिक भारतीय बिलकुल नहीं हैं बल्कि यूरोपीय हैं। मगर इस कथनसे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि इन यूरोपीय

मकानमालिकोंसे जो फेरेरास बस्तीमें भरे हैं उसी वर्गके भारतीय मकान-मालिकोंमें कोई खास भूम ज्यादा है। यह तो सिर्फ इस बातका सबूत है कि मानवका स्वभाव सर्वत्र एक-सा ही होता है, चाहे उसकी चमड़ी गोरी हो या भूरी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६-११-१९०४

२५८. बॉक्सबर्गके ब्रिटिश भारतीय

बॉक्सबर्गकी भारतीय बस्तीमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंको नीचे लिखी सूचना मिली है:

सूचना

> बॉक्सबर्गकी एशियाई बस्तीमें रहनेवाले एशियाइयोंको याद दिलाया जाता है कि उनकी किरायेदारी केवल अस्थायी और १९०३ की सरकारी आज्ञा सं० ११७१ के अनुसार एक महीनेकी पूर्व सूचनापर समाप्य है। इसलिए जो व्यक्ति स्थायी इमारतें बनायेंगे वे अपनी ही जोखिमपर बनायेंगे और यदि किसी समय बस्तीका स्थान बदला गया तो उन्हें उससे जो भी हानि होगी उसका मुआवजा पानेका हक नहीं होगा।

निवासियोंको यह याद दिलाना आवश्यक नहीं था कि उनकी किरायेदारी अस्थायी है, परन्तु सूचनासे कुछ ऐसा अर्थ निकलता है जो अशुभ-सूचक है। यह समझना कठिन है कि ये गरीब लोग इससे उबर क्यों सकेंगे जायें। बस्तीकी स्थितिपर कोई ऐतराज नहीं किया जा सकता उसमें आवश्यकतासे अधिक भीड़ नहीं है और वह शहरसे पृथक है। लोगोंको कदाचित् पहलेसे यहाँ रहने दिया जा रहा है और जो बात गणराज्य सरकारने कभी नहीं की या जिसे वह कभी नहीं कर सकी वही अब ब्रिटिश सरकारके शासनमें की जा रही है या करनेकी धमकी दी जा रही है। यद्यपि स्वर्गीय श्री क्रूगरके शासनमें ऐसी सब किरायेदारियाँ अस्थायी थीं तथापि किसीने कभी किरायेदारोंके कब्जेमें हस्तक्षेपका विचारतक नहीं किया था। सूचनामें यह नहीं कहा गया है कि लोगोंको किसी निश्चित समयपर हट जाना होगा परन्तु स्थायी इमारतें बनानेके विरुद्ध चेतावनी दी गई है। अतएव भारतीय अच्छे ढंगसे रहनेकी इच्छासे उपयुक्त मकान बनाने लगे हैं और यह सूचना इसीका परिणाम है। इस प्रकार कृत्रिम रूपसे अधिक अच्छे ढंगके जीवनके प्रतिकूल परिस्थितियाँ पैदा की जाती हैं और फिर उनसे जो परिणाम होते हैं उनके लिए दोष दिया जाता है उन लोगोंको जिन्हें ऐसी निर्योग्यताओंका भार उठाना पड़ता है। बॉक्सबर्गके पहरेदार लोग फिर भी तिरस्कारपूर्वक अँगुली उठाकर कह सकेंगे कि भारतीय भवन-निर्माणपर खर्च नहीं करते और सम्मोचित ढंगसे नहीं रहते। वे लोग यह भूल जायेंगे कि भारतीयोंकी यह दशा परिस्थितियोंकी मजबूरीके कारण है। इस अद्भुत अवस्थाका अन्त कब होगा? यदि सरकार इन लोगोंको हटाना ही चाहती है तो उन्हें स्पष्ट दीर्घकालीन और निश्चित सूचना देना असम्भव क्यों होना चाहिए? और जिन लोगोंने सूचनासे पहले ही कीमती इमारतें बना ली हैं उनके सम्बन्धमें वह क्या करना चाहती है? हम सरकारसे न्याय और उचित व्यवहारकी याचना करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २६-११-१९०४

२५९. दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके सम्बन्धमें

"आंग्ल भारतीय"

हमारी मेजपर समीक्षाके लिए एक रोचक लेख पड़ा है। यह १ नवम्बरके *रैंड डेली मेल*में छपा था। उसका शीर्षक था "असली भारतीय खतरा"। इसका लेखक एक "आंग्ल भारतीय" है। लेखकने भारतीयोंको बिलकुल बहिष्कृत करनेके पक्षमें बड़ी ही अजीब दलीलें दी हैं। वह कहता है

> चूँकि देशके रूपमें ट्रान्सवालके भविष्यकी खातिर यह आशा की जानी चाहिए कि भारतीय व्यापारियोंको दूर रखनेके लिए मूर्ख-नगरीकी-सी प्रतिबन्ध-प्रणाली कभी नहीं समझी जायेगी।

फिर वह कहता है

> इसका कारण कोई भारतीय भावना या सफाई, तन्दुरुस्ती या सदाचारका खयाल या कोई अन्य सद्भावपूर्णता नहीं है। जो एशियाइयोंको जानते हैं उनका विश्वास है कि उनका बाहर रहना ही दक्षिण आफ्रिकाके लिए बेहतर है। यह सावधानी आत्मरक्षाकी स्वाभाविक भावनासे प्रेरित है।

फिर लेखक वह कारण बताता है जिससे वह भारतीयोंको खतरनाक समझता है, और कारण यह है

> एक लाख भारतीयोंको दक्षिण समुद्रके किसी वीरान टापूमें रख दीजिए और दूसरे टापूमें एक लाख काफिरोंको। दोनोंको एक शताब्दीतक अपने अपने प्रकारके उपाय करनेके लिए छोड़ दीजिए। इस अवधिके अन्तमें आप देखेंगे कि काफिर तो मिट्टीकी झोपड़ियोंवाले गाँवमें बैठे बीयर शराब पी रहे हैं और भारतीयोंने एक राज्य कायम कर लिया है, कुछ शहर बना लिये हैं, जहाजोंका बेड़ा तैयार कर लिया है और दूसरे देशोंके साथ व्यापार स्थापित कर लिया है एवं ऐसी संस्कृति तथा ऐसे धर्मका विकास कर लिया है जो कई बातोंमें पश्चिममें उपलब्ध किसी भी संस्कृति और धर्मकी बराबरीके हैं।

इस तरहका तर्क बड़ा भ्रामक है। लेखकने स्पष्ट ही कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्योंकी और इतिहासके अनुभवकी भी अवहेलना की है। हमें श्री लिटिल्टन बताते हैं कि दक्षिण आफ्रिका गोरोंका देश नहीं है और जबतक यूरोपीयों और काफिरोंके बीच संख्याकी बड़ी असमानता काफिरोंके पक्षमें रहती है तबतक यह बहुत आश्चर्यकी बात है, कोई व्यक्ति दक्षिण आफ्रिकाको गोरोंका देश कैसे कह सकता है। अभी उस दिन श्री लिटिल्टनने कहा था कि ऐसा न होता तो वे चीनियोंको ट्रान्सवालमें लानेकी मंजूरी कभी न देते। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि, पसन्द हो या नहीं, गोरे लोग दक्षिण आफ्रिकामें खालिस अन्ततक मालिक बनकर रहना चाहते हैं। वे शारीरिक काम नहीं करना चाहते। ऐसी परिस्थितियोंमें दक्षिण आफ्रिकाकी अर्थ-व्यवस्थामें अवश्य ही काफिरोंका बहुत महत्त्वपूर्ण भाग रहेगा और जबतक दक्षिण आफ्रिकामें ऐसी परिस्थितियाँ रहेंगी तबतक दूसरे लोगोंका स्थान भी वहाँ अवश्य रहेगा। अगर ऐसा न होता तो

निश्चय ही वे दक्षिण आफ्रिकामें कभी न आये होते। लेखकने पूर्वी आफ्रिकाका उदाहरण देकर यह बताना चाहा है कि किस प्रकार वहाँ भारतीय आ गये हैं। यह बयान भ्रमोत्पादक है क्योंकि इसमें जो कुछ कहना अभीष्ट है उसको देखते हुए यह सही नहीं है। अर्थात् पूर्वी आफ्रिकामें भारतीयोंने गोरोंकी जगह नहीं ली है। वहाँ जिस तरहकी जलवायु और जमीन है उससे गोरे निवासी आकर्षित नहीं हो सके हैं और इसलिए देशका विकास करनेके लिए भारतीयोंको प्रोत्साहन दिया गया है। लेखक द्वारा भारतीयोंकी यह प्रशंसा भारतीय मानसके लिए हर्षप्रद है परन्तु वह सर्वथा भ्रामक है। वस्तुतः हम चाहते थे कि हम इस सारी स्तुतिके पात्र होते। जहाँ इसमें बहुत-कुछ सचाई है वहाँ हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जब जब यूरोपीय और भारतीय पारस्परिक सम्पर्कमें आये हैं तब-तब यूरोपीयोंने ऊँचे दर्जेकी संगठन-शक्ति कदाचित् ऊँचे दर्जेकी साम्प्रदायिक वृत्ति और उत्कृष्ट दूरदर्शिताका परिचय दिया है। परिणाम यह है कि एक वर्गके रूपमें भारतीयोंका दर्जा नीचा रहा है। लेखकने यूरोपका उदाहरण पहले क्यों नहीं दिया? वहाँ भारतीयोंके प्रवासपर बिलकुल पाबन्दी नहीं है, तो भी वहाँ भारतीय एक भी गोरेको अपदस्थ करनेमें समर्थ नहीं हो सके हैं। इसका कारण स्पष्ट है। वहाँ न उनका कोई उपयोग है और न उनकी कोई माँग है। इसके विपरीत दक्षिण आफ्रिकामें ऐसे काम हैं जिन्हें गोरे करना नहीं चाहते और काफिर कर नहीं सकते। इसी कारण भारतीयोंके लिए दक्षिण आफ्रिकामें रहना सम्भव हो सका है। कुछ उदाहरणोंमें एक-दूसरेके क्षेत्रमें हस्तक्षेप हो सकता है। लेकिन आम तौरपर प्रत्येक जातिको अपना स्तर और अपना धंधा मिल गया है। हमारे खयालसे किसीका यह कहना दुस्साहस ही है कि गोरोंका स्थान भारतीयों द्वारा ले लेनेका कोई गम्भीर खतरा है। इस तर्ककी तरह ही जिसपर हम विचार कर रहे हैं चौंकानेवाले तर्कोंका उद्देश्य यह है कि असली मुद्दा गड़बड़में पड़ जाये और समस्याका उचित हल रुक जाये। दूरदर्शिताका काम यह है कि आगेकी बात सोचकर उसके पक्ष या विपक्षमें व्यवस्था की जाये। परन्तु जहाँ कोई खतरा न हो वहाँ खतरेकी कल्पना कर लेना पागलपन-भरी दूरदर्शिता है। किसीका यह कहना नहीं है कि दक्षिण आफ्रिकामें एशियासे या यों कहिये कि संसारके किसी भागसे आनेवाले प्रवासियोंपर बिलकुल पाबन्दी ही न लगाई जाये। उचित प्रतिबन्ध प्रस्तावित हुए हैं और यदि उनपर अमल नहीं हुआ तो इसमें केवल उन लोगोंका कसूर है जो आंग्ल भारतीय के विचारोंसे सहमत हैं। यह आंग्ल भारतीय भारतमें रह चुका है इसलिए संसारमें अन्य किसीकी भी अपेक्षा उसे ज्यादा मालूम होना चाहिए कि उसके लेखमें जिस खतरेकी भविष्यवाणी की गई है वह केवल भ्रम है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१२-१९०४

२९० प्रार्थनापत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको

जोहानिसबर्ग
दिसम्बर १, १९०४

सेवामें
परमश्रेष्ठ स्थानापन्न लेफ्टिनेंट गवर्नर
प्रिटोरिया

अब्दुल गनी अध्यक्ष ब्रिटिश भारतीय संघ जोहानिसबर्गका प्रार्थनापत्र।

सविनय निवेदन है कि

प्रार्थी आदरणीय रैंड प्लेग-समितिके सामने पेश किये गये ब्रिटिश भारतीयोंके कुछ दावोंके सम्बन्धमें आदरपूर्वक महामहिमके समक्ष उपस्थित होना चाहता है। ये दावे उस माल-असबाबसे सम्बन्ध रखते हैं जो इस वर्ष जोहानिसबर्गमें प्लेग फैलनेपर उक्त समितिके आदेशसे नष्ट कर दिया गया था।

जोहानिसबर्गकी पूर्व भारतीय बस्तीमें प्लेग फैलनेका पता लगनेके बाद उसके निवासियोंको कुछ दिनोंके लिए घेरेमें रखा गया था। बादमें उन्हें क्लिप्सप्रूटके एक पृथक शिविरमें हटा दिया गया था। क्लिप्सप्रूट ले जानेकी कार्रवाई बहुत थोड़े समयकी सूचनापर की गई थी। जब बस्तीके लोगोंको क्लिप्सप्रूट हटाया गया उन्हें आम तौरपर बिस्तरके अलावा कोई सामान ले जाने नहीं दिया गया। उन्हें आदेश दिया गया था कि वे अपनी सब कीमती चीजें माल-सामान और यहाँ तक कि पलंग भी वहीं छोड़ जायें।

इसके विरोध करनेपर जिला प्लेग-अधिकारी डॉ. पेक्सने उन्हें आश्वासन दिया था कि समिति नष्ट किये जानेवाले सारे मालका मुआवजा चुकायेगी, इसलिए भारतीयोंको कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इसी समझौतेपर भारतीय अपने साथ कोई सामान लिये बिना क्लिप्सप्रूट चले गये थे। मालिकोंके विरोधके बावजूद कुत्ते-बिल्ली जैसे घरेलू जानवरोंको भी मार डाला गया था और अधिकतर पेटियोंकी भी यही हालत की गई थी। डॉ. पेक्सके आश्वासनके बावजूद रैंड प्लेग-समितिने अपनी जिम्मेदारीसे इनकार कर दिया है। इनकारी जिस आधारपर की गई वह दावेदारोंको भेजे गये पत्रोंमें स्पष्ट किया गया है। समितिके सहायक मन्त्री दावोंको अस्वीकार करते हुए लिखते हैं

> मुझे आपको सूचित करनेका निर्देश हुआ है कि कमेटीकी सलाहपर चलते हुए, समिति इस प्रकारका मुआवजा चुकानेका दायित्व स्वीकार नहीं कर सकती। प्लेग-सम्बन्धी नियमोंके अनुसार, कोई भी ऐसी वस्तु जिसमें गिल्टीवाले अथवा फुफ्फुसीय प्लेगकी छूत लग जानेकी सम्भावना हो, या जिससे गिल्टीवाले अथवा फुफ्फुसीय प्लेगकी छूत फैलनेकी आशंका हो छूत रहित की जा सकती है और यदि किसी कारणसे छूत रहित करना असम्भव हो तो उसे नष्ट किया जा सकता है। समितिको सलाह दी गई है कि इन विनियमों (रेग्युलेशन्स) के अनुसार अपने अधिकारों या कर्तव्योंके पालनके लिए उसे जो काम करने पड़े उनके लिए उसपर क्षतिपूर्तिका दायित्व नहीं है।

मेरे संघका आदरपूर्वक निवेदन है कि समितिकी कानूनी स्थिति कुछ भी हो वह अपने उस एकमात्र अधिकारीके जो उस संकटके समय जनताकी सुरक्षाके लिए जिम्मेदार था दिये हुए वचनका आदर करनेके लिए नैतिक दृष्टिसे बाध्य है। अगर ऐसा वादा न किया गया होता तो यह सन्देहजनक है कि वहाँके निवासियोंने जिस तरह बिना किसी शिकायतके अपना सामान छोड़ दिया था उस तरह, प्लेग-अधिकारीकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए, वे उसे छोड़ते। जो सामान नष्ट किया गया उसमें सूखे अनाज और दालके भरे हुए बोरे और डिब्बोंमें बन्द खाद्य-पदार्थ भी थे जिन्हें चिकित्सा-सम्मेलनने छूत न फैलानेवाला करार दिया है। लकड़ी और धातुकी घरेलू साज-सज्जाको भी नष्ट कर दिया गया था। यह तो नहीं कहा जा सकता कि ऐसी चीजें छूत रहित नहीं की जा सकती थीं।

लम्बी वार्ताओंके बाद समितिने उस सामानके दावोंको मंजूर कर लिया है जिसे उसने बस्तीकी दूकानोंसे निकालकर काममें ले लिया था। एक समय तो इन दावोंको भी लगभग अस्वीकार कर दिया गया था। यह भी स्वीकार कर लिया गया है कि जो सामान काममें लाया गया वह उसी किस्मका था जिस किस्मका कुछ सामान नष्ट किया गया था। दूसरी खाद्य-वस्तुओंको काममें लानेके बदले नष्ट कर देनेका कारण यह बताया गया है कि समिति पृथक् शिविरोंमें जरा-सी भी छूतकी जोखिमको टाल देना चाहती थी। सच तो यह है कि कुछ सामान जिसपरछूट भी भेजा गया था। वहाँके निवासी बस्तीकी दूकानोंका सामान स्वयं खपा लेनेको बिलकुल तैयार थे।

सामान खरीदीकी माँगें भी सबसे समान या निष्पक्ष रूपसे नहीं की गई यह उल्लेखनीय है। समितिकी खरीददारी कुछ गिने चुने दूकानदारोंतक ही सीमित रही। इस प्रकार, कुछ भाग्यशाली लोग अपनी दूकानोंके सारे मालसे छुट्टी पा गये। और उनके दावे दूकानोंतक ही सीमित होनेके कारण उन्हें उसका पूरा भुगतान मिल गया। परन्तु उनके कम भाग्यशाली भाइयोंको बिलकुल ही कुछ नहीं मिला। –

बहुतसे लोग अपना सामान इस तरह पूरा-पूरा नष्ट कर दिये जानेके कारण लगभग कंगाल बन गये हैं।

इसलिए मेरा संघ महामहिमसे हस्तक्षेपका अनुरोध करता है। हमें विश्वास है कि ऐड प्लेग-समितिके आदेशसे जो माल नष्ट किया गया था उसके मूल्यके सम्बन्धमें पूर्व भारतीय बस्तीके निवासियोंके दावोंपर महामहिम अनुकूल विचार करानेकी कृपा करेंगे।

और न्याय तथा दयाके इस कार्यके लिए प्रार्थी कर्तव्य समझकर सदा दुआ करेंगे।

(ह) अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन १-१२-१९०४

२६१ पत्र "स्टार"को[1]

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
[जोहानिसबर्ग]
सितम्बर ६, १९०४

महोदय

आपके ८ तारीखके अंकमें श्री टी० स्माइलनबर्गके नामसे जो पत्र प्रकाशित हुआ है, उसके सिलसिलेमें मैं उसके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करनेकी स्वतन्त्रता लेता हूँ। मैं श्री स्माइलनबर्गके दिये हुए आँकड़ोंको स्वीकार नहीं करता। मैं नहीं मानता कि इस समय पीटर्सबर्गमें ४९ भारतीय व्यापारी हैं। भारतीय बस्तीसे अलग पीटर्सबर्ग नगरमें भारतीयोंके केवल २८ वस्तु-भंडार हैं और इनमें कुछके मालिक एक ही भारतीय हैं। मैंने अपने पहले बयानमें संशोधन करनेका प्रयत्न किसी तरह भी नहीं किया। मैंने उसमें इस बातका कथन किया था कि युद्धके पहले और उसके बाद नगरमें कारोबार करनेवाले भारतीय व्यापारियोंकी संख्याके अनुपातमें बहुत विषमता है। युद्धके पहले जो लोग परवानोंके बिना व्यापार करते थे वे कानून भंग करनेवाले नहीं कहे जा सकते। और खास तौरसे श्री स्माइलनबर्ग तो ऐसा कह ही नहीं सकते क्योंकि वे ठीक-ठीक हालत जानते हैं और उन्हें भय देनेके लिए कहा जाय तो शायद उन्होंने यह परिस्थिति पैदा करनेमें मदद भी की थी। यह सच है कि भारतीय परवानोंके बिना व्यापार करते थे परन्तु वे वकीलोंकी सलाहसे गणराज्य सरकारकी जानकारीमें परवानोंका शुल्क देनेका लिखित वादा करके और ब्रिटिश सरकारके संरक्षणमें ऐसा करते थे। अगर यह कानूनका भंग करना था तो मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं इस शब्दका अर्थ नहीं जानता। युद्धके पहले नगरके अन्दर कमसे-कम २१ भारतीय वस्तु-भण्डार थे। उनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं। सम्भवतः उनकी संख्या इससे ज्यादा थी परन्तु मैं अभी जो संख्या और नाम दे रहा हूँ उनके बारेमें मेरे पास अकाट्य प्रमाण मौजूद हैं। जिस मूल सूचीसे ये नाम लिये गये हैं वह सरकारके सामने पेश करनेके लिए मार्च १९०३ में बनाई गई थी। मैं समझता हूँ कि मैंने श्री स्माइलनबर्गको जाँच-पड़ताल करनेके लिए काफी सामग्री दे दी है। अगर मेरे आँकड़े गलत हों तो मुझे उनमें सुधार स्वीकार कर लेनेमें खुशी होगी। इसके विपरीत अगर

१. यह "श्री स्माइलनबर्ग और ब्रिटिश भारतीय संघ" [illegible] लिखा गया था।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

१. देखिए अगला शीर्षक।

उनमें कोई गलती न निकाली जा सके और आप समझें कि मेरा वक्तव्य सही प्रमाणित हो गया है तो मुझे आशा है आप भी स्थानिकसर्वकांश ५ पौंड अमुक करके भारत-हाउसको दे देंगे। एक बात और कहकर मैं समाप्त कर दूँगा। आपको कष्ट देनेमें मेरा उद्देश्य जनताके सामने सत्य और केवल सत्य पेश करना है। श्री स्थानिकसर्वकांश पीटर्सबर्गके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए सुपरिचित हैं। मुझे कोई सन्देह नहीं कि उनकी नीयत अच्छी है। और, मेरे संघने राष्ट्रीय सम्मेलनमें कही गई बातोंको उठाकर जहाँ-कहीं भी आवश्यक हो उनका प्रतिवाद करना जो अपना कर्तव्य समझा है वह इसलिए कि मेरा विश्वास है, इस विवादमें जानकारीका अभाव सबसे ज्यादा उपद्रवकारी है।

ऊपर जिन वस्तु-भण्डारोंका संकेत किया गया है वे हैं

हासिम मोती ऐंड कं (३) तार मुहम्मद तैयब (२) महमद मूसा भायात (२) अहमद इब्राहीम भाई अब्दुल्लतीफ अली कासिम सुलेमान कासिम तैयब उस्मान मुहम्मद ऐंड कं (२) गनी हासिम हाजी मुहम्मद, तैयब हाजी खान मुहम्मद (१) जनीज अहमद उस्मान हासिम मुहम्मद अमेचन्द इब्राहीम मुहम्मद और मजीद।

आपका, आदि,
अब्दुल गनी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११–१२–१९०४

२६२ रैंड प्लेग-समिति

ब्रिटिश भारतीय संघने स्वाभापन्न लेफ्टिनेंट गवर्नरके नाम जो आवेदनपत्र[1] भेजा है उसे हम दूसरे स्तम्भमें प्रकाशित कर रहे हैं। गत मार्चमें जोहानिसबर्गमें प्लेगकी बीमारी फैलनेपर रैंड प्लेग-समितिके निर्देशसे जो सामान नष्ट कर दिया गया था उसके सम्बन्धमें समितिके सामने कुछ दावे दायर किये गये हैं संघका आवेदनपत्र इन्हीं दावोंके सम्बन्धमें है। उससे रैंड प्लेग-समितिकी क्षुद्रता और तमाम नैतिक दायित्वोंकी हृदयहीन उपेक्षापर प्रकाश पड़ता है। आवेदकोंके कथनानुसार, भाक-असबाब जलानेके पहले डॉ॰ पेक्सने निश्चित वादा किया था कि सामानके मालिकोंको मुआवजा दिया जायेगा और अगर यह सच हो कि लकड़ीकी साज-सज्जा धातुकी चीजें और सूखे खाद्य-पदार्थोंसे भरे बोरेके-बोरे जला दिये गये थे तो यह सत्यानाश अवश्य ही लोगोंके स्वास्थ्यको खतरेसे बचानेके लिए उतना न किया गया होगा जितना उनकी कल्पनाको प्रभावित करने और उनकी भावनाओंको तुष्ट करनेके लिए किया गया होगा। यह मान लेना मयानक होगा कि लोहेका पलंग या लकड़ीका साज-सामान भी ठीक तरहसे छूतसे रहित नहीं किया जा सकता था। यह स्मरणीय है कि जब पहले-पहल नेटालमें प्लेग फैला तब नेटाल सरकारने भारत सरकारसे पूछा था कि क्या उसके बंगालसे चावल तथा अन्य खाद्य पदार्थों द्वारा प्लेगकी छूत फैलनेकी सम्भावना है। भारत-सरकारने उसे विशेषज्ञोंका यह अभिमत सूचित किया था कि भारतके प्लेग-ग्रस्त जिलोंसे भी चावलके बोरे और ऐसे ही अन्य खाद्यपदार्थ भेजनेमें छूत फैलनेका कोई खतरा नहीं है।

[1] देखिए "प्रार्थनापत्र : लेफ्टिनेंट गवर्नरको" दिसम्बर १, १९०४।

फिर, बस्तियोंके लोग इसलिए तैयार थे कि वहाँ जो खाद्यपदार्थ पाये गये थे वे उनको ही बाँट दिये जायें। इस सबके बावजूद सारेके-सारे सामानका जो विनाश किया गया उससे सार्वजनिक सुरक्षा जरा भी बढ़ी हो इसमें हमें बहुत सन्देह है। कुछ भी हो अगर रैंड प्लेग-समितिने गरीब लोगोंका माल जला डालनेका आनन्द लेना पसन्द किया था तो अब वह उसका मूल्य चुकानेकी जिम्मेदारीसे बच नहीं सकती। उपर्युक्त परिस्थितियोंमें कानूनी संरक्षणका सहारा लेकर मुआवजेको टालनेकी कोशिश करना हमारे नम्र विचारमें नितान्त अपयशजनक है। हम यह बात दस बार दुहरायेंगे कि प्लेग जोहानिसबर्ग नगरपालिकाकी पूर्ण उपेक्षासे फैला था। यह स्वीकार किया जा चुका है कि उस संकटके समयमें भारतीयोंने अपना व्यवहार अत्यन्त आदर्श रखा। नगरपालिकाके उत्तरदायी अधिकारीके आदेशपर विश्वास करके वे अधिकारियोंको जरा भी कष्ट दिये बिना जल्दीसे-जल्दी क्लिपस्प्रूट चले गये थे। ऐसे लोगोंके न्यायपूर्ण दावे माननेसे मुकरनेका अर्थ बिना किसी औचित्यके उनकी सम्पत्तिको जब्त कर लेना है। जब घेरा डाला गया तब बस्तीमें थोड़ेसे अभागे लोग बचे थे। उनका सारा माल-असबाब जला देना एक हृदयहीन और, रैंड प्लेग-समिति जैसी महान संस्थाके लिए अयोग्य कार्रवाई थी। जो लोग क्लिपस्प्रूट चले गये थे और जिन्हें अमुक प्रतिबन्धमें रखा गया था और अपना रोजमर्राका धंधा करनेसे रोक दिया गया था वे सहानुभूति और ज्यादा अच्छे सलूकके पात्र हैं। हमें आशा है कि स्थानापन्न लेफ्टिनेंट गवर्नर महोदय श्री अब्दुल गनीके आवेदनपत्रपर ध्यानपूर्वक विचार करेंगे और मुआवजा चुकानेका आदेश देकर ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति न्याय करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १ -१२-१९ ४

२६१ पीटर्सबर्गके भारतीय

श्री अब्दुल गनीने हाल ही में जोहानिसबर्गकी एक सार्वजनिक सभामें भाषण करते हुए पीटर्सबर्गमें युद्धके पहले और बाद व्यापार करनेवाले भारतीय व्यापारियोंकी जो संख्या बताई थी उसे पीटर्सबर्गके श्री क्लाइनेनबर्गने स्टारमें प्रकाशित एक पत्रमें चुनौती दी है। अपने कथनके समर्थनमें श्री क्लाइनेनबर्गने कुछ आँकड़े दिये हैं और गर्वपूर्वक घोषणा की है कि यदि उनके आँकड़ोंको गलत सिद्ध कर दिया जाये तो वे ५ पौंड स्टर्लिंग जो मारस्ट हाउसको भेज दिया जायेगा। शर्त यह है कि अगर ये आँकड़े ठीक सिद्ध हो जायें तो दूसरा पक्ष भी उतनी ही रकम दण्डमें देनेके लिए तैयार हो। श्री अब्दुल गनीने तत्परताके साथ स्टारको पत्र लिखा है जिसमें यह चुनौती स्वीकार की गई है। हमें आश्चर्य है कि इतना अनुभव रखते हुए भी श्री क्लाइनेनबर्ग दूसरोंके दिये हुए आँकड़ोंमें भ्रान्त हो गये। वास्तवमें अगर युद्धके पहले ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंको दिये गये परवानोंकी संख्या प्रत्यक्ष व्यापार करने वालोंकी असली संख्या जाननेकी कोई कसौटी होती तो हमें मालूम होता कि सारे ट्रान्सवालमें मुश्किलसे १ भारतीय व्यापारी थे। मगर असल बात दूसरी ही थी। इस देशके बारेमें जानकारी रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको मालूम है कि बस्तियोंके बाहर ट्रान्सवालमें १ से बहुत अधिक ब्रिटिश भारतीय व्यापारी अपना कारोबार चला रहे थे। यह स्थिति इसलिए सम्भव हुई थी कि ब्रिटिश एजेंटने परवानोंसे रहित भारतीय व्यापारियोंको कृपापूर्वक संरक्षण प्रदान किया था। इस तरह भारतीयोंकी सभामें जो यह कहा गया था कि ट्रान्सवालकी इस

बस्तीके सर्वोच्च व्यक्ति भी सही जानकारी नहीं रखते और अपना मतामत बनानेके पहले अपने तथ्योंका भलीभाँति अध्ययन नहीं करते उसका यह घटना एक प्रमाण है। और भी स्थानिकवर्ग यह भी भूलते हैं कि माल-दफ्तर (रेवन्यू ऑफिस)ने उन्हें भारतीय परवानोंकी जो संख्या दी है, उसमें पीटर्सबर्गकी भारतीय बस्तियोंमें रोजगार करनेवाले भारतीय व्यापारी भी शामिल हैं जिनकी संख्या बड़ी है। इन भारतीय बस्तियोंमें व्यापार करनेवाले लोग इस विचारमें बिलकुल शामिल नहीं हैं। सम्मेलनकी कार्रवाईका लक्ष्य वे रोजगार थे जो भारतीय बस्तियों या बाजारोंके बाहर स्थित हैं। इसलिए हम आशा करते हैं कि या तो भी स्थानिकवर्ग औचित्य और न्यायके नाते अपनी गलती स्वीकार कर लेंगे या अगर वे भी उपर्युक्त गलतीका स्पष्टीकरण स्वीकार न करते हों तो अपने कथनको प्रमाणित करनेका प्रयत्न करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१२-१९०४

२६४ पत्र दादाभाई नौरोजीको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़ रिसिक और एंडर्सन स्ट्रीट
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
दिसम्बर १, १९०४

सेवामें
श्री दादाभाई नौरोजी
२२ केनिंगटन रोड
लंदन, द० पू०
इंग्लैंड

प्रिय महोदय,

इंडियन ओपिनियन[1] अपने जीवन-कार्यकी तीसरी मंजिलमें प्रवेश किया है। जो महत्त्वपूर्ण कदम इसके सम्बन्धमें उठाया गया है उसकी बातसे आपको थकाऊँगा नहीं। इस महीनेमें सारी तफसील उसमें प्रकाशित होगी तब आप देख लेंगे। ऐसा विचार किया गया है कि अब उसमें इंग्लैंडसे सार्वजनिक दिलचस्पीकी एक साप्ताहिक या पाक्षिक चिट्ठी हो किन्तु उसमें दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय प्रश्नकी लंदनमें समय-समयपर होनेवाली प्रतिक्रियाका खास तौरपर जिक्र हो। क्या आप किसी ऐसे सज्जनका नाम सुझा सकेंगे जो यह काम कर सकें और यदि कर सकें तो किस दरपर। इस सप्ताह प्रश्नसे सम्बन्धित मुझे कुछ विशेष नहीं कहना है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० २२६५) से।

१. यह अंश संभवतः कार्यालय प्रतिलिपिमें अंग्रेजी छोड़ दिया गया है।
२. देखिए "नयी बात", दिसम्बर २४, १९०४।

२९५. श्री हुंडामलका मुकदमा[1]

दिसम्बर १४, १९०४

श्री गांधीने दरख्वास्त की कि यदि अपीलमें श्री हुंडामल खर्चसहित मुकदमा जीतें तो जो कुछ दूसरे खर्च हों उन्हें वे चुकायें; नहीं तो कांग्रेस खर्च दे; शर्त यह है कि वह ५ पौंडसे अधिक न हों और जो जुर्माना हुआ है उसे श्री हुंडामल चुकायें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-१२-१९०४

२९६. फिर हुंडामलका परवाना

एक प्रसिद्ध विज्ञापनके गंभीर (टब)में मचले बैठे बालककी भाँति नगर-परिषद तबतक खुश न होगी जबतक वह श्री हुंडामलका परवाना छीन कर उसे बरबाद नहीं कर देगी। इसलिए उस अभागे व्यापारीके नाम फिर सम्मन जारी कर दिया गया और हमारे राजनीतिक मजिस्ट्रेट श्री स्टुअर्टने एक असाधारण फैसलेमें उन्हें दोषी पाया और २ पौंड जुर्मानेकी अधिकसे-अधिक सजा दे दी। श्री स्टुअर्टने यह बात सुना दी कि अभियुक्त कानूनी सलाहके अनुसार काम कर रहा है और उससे पूछा कि अगर यूरोपीय लोग कानूनका पालन करते हैं तो भारतीयोंको क्यों नहीं करना चाहिए? हमारी समझमें नहीं आता कि यूरोपीयों या भारतीयोंके बीचके भेदका कानूनकी व्याख्यासे क्या वास्ता है। फिर श्री स्टुअर्ट यह सुझाव देते हैं कि भारतीयोंको रोमकी इस कहावतका अनुसरण करना चाहिए कि "रोममें रहो तो रोमवासियोंकी तरह बसो।" हम चाहते हैं हमारे साथ इस सलाह देनेवालोंका बरताव रोमवासियोंका जैसा ही होता। मालूम होता है यह बात कहते समय श्री स्टुअर्टको यह कभी नहीं सूझा कि यूरोपीयोंको अपने परवाने बदलवानेमें कोई कठिनाई नहीं होती। किन्तु हमें मालूम हुआ है कि अपीलकी सूचना दे दी गई है; इसलिए जनताको यह निर्णय करनेका दुबारा मौका मिलेगा कि श्री स्टुअर्टके अन्तःकरणमें राजनीतिकी भावना न्यायकी भावनापर कहाँ तक विजयी होती है। चूँकि मामला विचाराधीन है, इसलिए मुकदमेके गुण-दोषोंका विचार हमें नहीं करना चाहिए।

हमारे सहयोगी *नेटाल मर्क्युरी*ने इस मामलेपर ऐसे विचार प्रकट करना उचित समझा है जो उसकी न्यायपरायणताकी सामान्य ख्यातिके अनुरूप नहीं है। हमारा सहयोगी कहता है:

> हुंडामलके मामलेसे स्पष्ट हो जाता है कि परवानोंकी मंजूरीके मामलेमें भारतीयोंने स्थानीय अधिकारियोंसे लड़नेका संकल्प कर लिया है। मामला अदालतके विचाराधीन है और उसपर आज सुबह फैसला दिया जायेगा; इसलिए मुझे उसके बारेमें कुछ नहीं कहना है। असलमें जबतक फैसला घोषित न कर दिया जाये ऐसा करना नियमविरुद्ध होगा; लेकिन इस साधारण प्रश्नपर मैं कह सकता हूँ कि यह बहुत स्पष्ट है कि

1. श्री हुंडामलके फौजदारी मुकदमेमें [illegible] दिसम्बर १४ को विचार किया।

नागरिक अवश्य ही मामला अपनी इच्छाओंके अनुसार निपटानेकी माँग करेंगे। मगर व्यापारके मामलेमें भारतीय लोग नागरिकोंकी इच्छाओंका विरोध करते हैं जिसका उदाहरण ग्रीन स्ट्रीटकी मनहूस काफिर-मंडी है, और तब उनपर पहलेसे कहीं अधिक कठोर ढंगकी पाबन्दियाँ लगा दी जाती हैं, तो उन्हें आश्चर्य न होना चाहिए। मुझे ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंका पूरा खयाल है। परन्तु भारतीयोंको आम तौरपर समझ लेना चाहिए कि अगर वे बाधक होंगे और इस सवालपर अपनी इच्छाएँ थोपेंगे और इस नगरपर मॉरिशसकी तरह छा जाना चाहेंगे तो वे देखेंगे कि सभी वर्गोंके गोरे लोग उनके खिलाफ एक हो गये हैं। यह अच्छा है कि यह बात साफ-साफ बता दी जाये। इस नगरके नागरिक, जिन्होंने इसे बनाया है और जिनपर इसकी जिम्मेदारी है, भारतीयोंके बनाये नहीं बनेंगे। वे ऐसा संगठन बनाकर सही रास्तेपर चल पड़े हैं जो यह आग्रह करेगा कि नगर-परिषद इस ढंगपर काम करे या ऐसी सत्ता प्राप्त करे जिससे भारतीयोंके लिए धोखेबाजीकी गुंजाइश न रहे और भारतीय समाज कुछ-कुछ बँध जाये। ग्रीन स्ट्रीटकी काफिर-मंडीके बारेमें जो रवैया इख्तियार किया गया है, अकेला वही समाजके रोषको भड़कानेके लिए काफी है और एकबार कानूनी अधिकार निश्चित हो जानेके बाद परवानोंके बारेमें विरोध करनेसे परिस्थितिमें सुधार नहीं होगा।

हमारे सहयोगीने ग्रीन स्ट्रीटकी काफिर-मंडीको हुंडामलके मुकदमेसे मिला दिया है, जिससे उसका दूरका भी सम्बन्ध नहीं है। और उसने हुंडामलके मुकदमेको भारतीय परवानोंके सारे प्रश्नसे जोड़ दिया है और फिर नागरिकोंको भारतीयोंके खिलाफ भड़काया है।

काफिर-मंडी ऐसी खटकनेवाली चीज है जिसके पक्षमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इस मामलेको उसके गुण-दोषोंके आधार पर निपटाना है। परन्तु एक व्यक्तिके दुराग्रहके लिए सारी जातिको दोष देना ठीक नहीं होगा। यह कहना भी ठीक नहीं है कि नागरिकोंकी उचित इच्छाओंका दृढ़तापूर्वक विरोध करनेका विचार बाँध रखा गया है। हम मानते हैं कि परवाने बदलनेके कामका नियमन होना चाहिए। परन्तु मौजूदा मामलेमें हमारा खयाल है कि नगर परिषदकी कार्रवाई मनमानी द्वेषपूर्ण अत्याचारपूर्ण और अन्यायपूर्ण है। श्री हुंडामलका पक्ष नैतिकताकी दृष्टिसे अत्यन्त सबल है। उनका मकान बढ़िया हालतमें है और अपनी श्रेणीमें वेस्ट स्ट्रीटके अच्छेसे-अच्छे मकानके मुकाबलेमें अच्छा ठहर सकता है। वे स्वयं बहुत ही साफ-सुथरी आदतोंके व्यक्ति हैं। उनका व्यापार ऊँचे दर्जेके यूरोपीयोंमें है और उनपर बहुत-सी यूरोपीय कोठियोंका विश्वास है। कानून उनके पक्षमें दिखाई देता है। तब वे इनसाफकी रूसे जिस बातके हकदार हैं उसके लिए क्यों न लड़ें? और यदि नगर-परिषदका सारा जोर उनके खिलाफ अन्यायपूर्ण ढंगसे लगा दिया जाता है और आम भारतीय इस पीड़ित व्यापारीके सहायतार्थ एक हो जाते हैं तो ऐसा करना उनका कर्तव्य ही है और हमारे खयालसे हमारे सहयोगीको भारतीयोंके न्याय-प्राप्तिके प्रयत्नकी नुक्ताचीनी करनेके बजाय सराहना करनी चाहिए। जब इस सिद्धान्तपर अमल हो जाये तब भारतीयोंसे अपील करनेका समय आयेगा कि वे नगर परिषदकी इच्छाओंकी पूर्ति करें।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १७-१२-१९०४

२६९ कोयलेकी खानोंके गिरमिटिया मजदूर

नेटालकी कोयलेकी खानोंके गिरमिटिया मजदूरोंकी स्थितिपर हम अन्यत्र *विटनेस*के प्रतिनिधिकी रिपोर्ट छाप रहे हैं। यदि ये आरोप सच हैं तो उनसे पता चलता है कि स्थिति भयंकर है। हमारे सहयोगीने जाँचकी माँग की है। हम उसके इस अनुरोधमें उसके साथ हैं। खान मालिकोंको इसका स्वागत करना चाहिए। लेकिन अगर जाँच की जाती है तो हमें विश्वास है कि वह पूरी सार्वजनिक और पूर्णत: निष्पक्ष होगी। विश्वास जमानेके उद्देश्यसे आयोगमें प्रमुखता गैर-सरकारी सदस्योंकी होनी चाहिए और, यदि हम यह कह सकें तो उनमें एक प्रतिष्ठित भारतीय भी हो। इस उपनिवेशमें गिरमिटिया मजदूरोंकी सामान्य स्थिति सन्तोषजनक है और यदि सन्देहके भी कारण दूर कर दिये जायें तो इससे उसकी नेकनामीमें वृद्धि ही होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १७-१२-१९०४

२७० पाँचेफस्ट्रूमकी सभा

प्रस्तावोंमें गलतबयानियाँ

अब हम पाँचेफस्ट्रूमकी आम सभामें पास किये गये प्रस्तावोंको लेना चाहते हैं और बताना चाहते हैं कि वे गलतबयानियोंसे कितने भरे हुए हैं।

हम एक-एक प्रस्ताव क्रमानुसार लेंगे।

पहला इस वक्तव्यसे प्रारम्भ होता है

> जब कि इस देशकी सरकार और इंग्लैंडकी सरकारने निर्णय कर लिया है कि एशियाइयोंको गिरमिटपर ही प्रवेश करनेकी अनुमति होनी चाहिए और एशियाइयोंके प्रवासका नियमन करनेके लिए एक श्रमिक-आयातक अध्यादेश (लेबर इम्पोर्टेशन ऑर्डिनेन्स) पास हो गया है।

अब न ब्रिटिश सरकारने और न ट्रान्सवाल सरकारने निर्णय किया है कि एशियाई प्रवास केवल गिरमिटपर ही हो सकता है। एशियाइयोंके प्रवासका नियमन करनेके लिए भी कोई श्रमिक-आयातक अध्यादेश पास नहीं हुआ। जो वास्तवमें हुआ है सो यह है। इस वर्ष ११ फरवरीको "ट्रान्सवालमें अकुशल अयूरोपीय श्रमिकोंके प्रवेशके नियमनके लिए" एक अध्यादेश सन् १९०४ का नं० १७ स्वीकृत किया गया। वास्तवमें यह बिलकुल ही अलग प्रस्ताव है और ऐसा है जिससे मामलेका नमूना रूप बदल जाता है। इसके अतिरिक्त इसी अध्यादेशके खण्ड १४ में हम पढ़ते हैं

> गवर्नर द्वारा स्वीकृत रेलमार्गोंके बनाने या अन्य सार्वजनिक कामोंके लिए नियुक्त उन ब्रिटिश भारतीय मजदूरोंपर इस अध्यादेशमें कही गई कोई भी बात लागू नहीं होगी जिन्हें इस उपनिवेशमें लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा प्रवेश दिया गया है, सिवा इसके

कि यह प्रवेश सदा उन नियमोंके अनुसार होगा जिन्हें विधान-परिषद स्वीकार करे; और भी, सिवा इसके कि श्रमिकोंकी अपने मूल-देशमें वापसी आवश्यक परिवर्तनोंके साथ एसे ब्रिटिश भारतीयोंपर लागू होगी।

इस तरह इस अध्यादेशके मार्गदर्शक नियमोंका न केवल सिर्फ "अकुशल यूरोपीय श्रमिकोंसे तात्पर्य है और ब्रिटिश भारतीय श्रमिक अध्यादेशकी कार्य-परिधिसे साफ तौरपर न केवल बाहर बताये गये हैं बल्कि उनकी विशेष परिस्थितियोंसे निपटनेके लिए विधान-परिषद्में विशेष नियम बनाना आवश्यक होगा। और, ब्रिटिश भारतीयोंका निर्बाध प्रवेश — इस वाक्यांशमें यह गृहीत है कि देशमें भारतीय बड़े पैमाने पर प्रवेश करते रहे हैं। तथ्य यह है कि वास्तविक शरणार्थियोंको छोड़कर ब्रिटिश भारतीयोंका प्रवेश एकदम बन्द कर दिया गया है।

हमारे पाठकोंको यह भलीभाँति याद होगा कि कुछ ही महीने पहले प्रमुख अनुमतिपत्र सचिवने उच्चायुक्तको सूचित किया था कि किसी नये भारतीयको उपनिवेशमें प्रवेश नहीं करने दिया जाता और अनुमतिपत्र वास्तविक शरणार्थियोंको इक्के-दुक्के दिये जाते हैं।

दूसरे प्रस्तावमें कहा गया है

> जबकि एशियाइयोंको खुले हाथों व्यापार-परवाने दिए जानेसे पीटर्सबर्गमें गोरोंकी अपेक्षा एशियाइयोंकी संख्या तिगुनी है।

पीटर्सबर्गमें युद्धके पहले २१ भारतीय भण्डार थे, तथ्य यह है। इस समय यह संख्या २८ है। हम कहनेकी स्वतन्त्रता लेते हैं कि पीटर्सबर्गमें गोरोंके भण्डार १४ से अधिक हैं।

प्रस्ताव सं. ३ एशियाइयों द्वारा किरायेपर लिये गये भण्डारों और जमीनोंसे लगी हुई जायदादोंकी कीमतें गिरनेका उल्लेख करता है। तथ्य फिर यही है कि वास्तवमें भारतीयों द्वारा किरायेपर लिये गये भण्डारों और जमीनोंसे लगी हुई जायदादोंकी कीमतें बढ़ गई हैं कारण सीधा है कि उनका अच्छा किराया मिलता है।

और अधिक तफसीलमें जानेकी जरूरत नहीं है। यदि प्रस्तावोंमें वैसी हमने ऊपर बतायी हैं, ऐसी अतिशयोक्तियाँ हैं तो नतीजा साफ निकलता है कि उनपर बोलनेवाले वक्ताओंकी अनावधानोंमें पीछे नहीं रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, १७-१२-१९०४

२७१ पत्र "स्टार"को[1]

[जोहानिसबर्ग]
दिसम्बर २४, १९०४ के पूर्व

सेवामें
सम्पादक
स्टार

महोदय

पिछले शनिवारको विधान-परिषदके सदस्य श्री लवडेने पीटर्सबर्गमें आयोजित एक एशियाई-विरोधी सभामें जो भाषण किया उसमें उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंपर बड़ा जहरीला आक्रमण किया है। क्या मैं उसके सिलसिलेमें आपके सौजन्यका लाभ उठानेकी अनधिकार चेष्टा कर सकता हूँ? श्री लवडेने मेरे उस भाषणका जवाब देनेकी कृपा की जो मैंने भारतीयोंकी सार्वजनिक सभामें[2] किया था। और अपनी आलोचनाकी गर्मीमें वे गालियों और अंधाधुंध बयानोंपर उतर आये। इतना अधिक अंधाधुंधी मैंने उनके जैसी उत्तरदायी स्थितिके किसी व्यक्तिमें नहीं देखी। उन्हें मुझपर "हठवादपूर्ण निरंकुश और दुष्टतामय असत्य वक्तव्य देने और पूर्णीय छल-कपटसे काम लेनेका" आरोप मढ़नेमें कोई संकोच नहीं हुआ है। परन्तु उनके स्तर पर उतरनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है। फिर भी मैंने अपने भाषणमें जो-जो बातें कही थीं उनमें से हरएकको फिरसे दुहराता हूँ और कोई बात वापस नहीं लेता। आपकी अनुमतिसे मैं उनके अनेकानेक प्रमाणोंमें से कुछ यहाँ देनेका प्रयत्न करूँगा। श्री लवडेने मेरे भाषणके उस हिस्सेपर नाराजगी जाहिर की है जिसमें मैंने शिकायत की थी कि उन्होंने राष्ट्रीय सम्मेलनमें १८८४ के समझौतेका इतिहास बताते हुए यह हकीकत प्रकट नहीं की कि उस समय उपनिवेशमें ब्रिटिश भारतीय मौजूद थे और उन्होंने यह भी नहीं बताया था कि १८८५ का कानून ३ वस्तुस्थितिके गलत रूपमें पेश किये जानेके कारण स्वीकार किया गया था। अगर आपने और आपके सहयोगियोंने उक्त सम्मान्य महाशयके भाषणका विवरण जरा भी सही प्रकाशित किया था, तो मेरा कथन पूरी तरह सच है। स्टारमें प्रकाशित विवरणके अनुसार श्री लवडेने यह कहा था

> जब १८८१ का समझौता हुआ था, उस समय ट्रान्सवालमें भारतीय थे ही नहीं; और इसमें जरा भी शक नहीं कि उस समझौता-पत्रके लेखकोंके सामने जिनकी बैठक प्रिटोरियामें हुई थी एशियाइयोंका प्रश्न कभी उपस्थित हुआ ही नहीं। उस समझौतेकी सब धाराओंके अध्ययनसे साफ जाहिर हो जाता है कि उसमें सिर्फ गोरी कौम और देशके वतनियोंका ही विचार किया गया था। रोक-थामके कानूनका प्रस्ताव तो सर्वप्रथम भारतीय व्यापारियोंके आने और १८८१ के समझौतेके बदलेमें १८८४ का समझौता स्वीकार होनेके बाद ही पेश किया गया था।

इस प्रकार, अगर श्री लवडेके भाषणका विवरण सही छापा गया है तो उन्होंने दावा किया है कि चूँकि १८८४ के पहले यहाँ कोई भारतीय आये नहीं थे इसलिए वतनियोंके अलावा

१ यह इंडियन ओपिनियनमें "श्री लवडे और ब्रिटिश भारतीय संघ" शीर्षकसे छपा था।

२ यह नवम्बर १० को जोहानिसबर्गमें हुई थी। देखिए इंडियन ओपिनियन १९-११-१९०४।

शब्द केवल यूरोपीयोंके लिए ही लागू हो सकते थे। इसके उलटे सच बात यह है कि १८८४ के समझौतेके स्वीकृत होनेके पहले ही भारतीय प्रवासी यहाँ मौजूद थे। मैंने आपके विवरणको दूसरे पत्रोंके विवरणोंसे मिला कर देखा है और सार रूपमें वह उनसे मिलता है। इसलिए, जहाँतक मेरा सम्बन्ध है मेरी यह शिकायत पूरी तरह न्यायोचित है कि श्री लवडेने इस प्रश्नका इतिहास पेश करते हुए एक महत्त्वकी हकीकत छोड़ दी थी। अब जहाँतक उस गलतबयानीका सम्बन्ध है जिसके आधारपर १८८५ का कानून ३ पास किया गया मैं एक अर्जीका निम्नलिखित अंश उद्धृत करता हूँ। यह अर्जी उन अनेकानेक अर्जियोंमें से एक है जिनके आधारपर हमारी पूर्वगामी सरकारने ब्रिटिश सरकारको उक्त धाराको कानूनी रूप देनेकी अनुमति प्रदान करनेके लिए राजी किया था। अर्जीके अंश ये हैं

> सारे समाजपर इन लोगोंकी गन्दी आदतों और अनैतिक आचारसे उत्पन्न कोढ़, उपदंश तथा इसी प्रकारके अन्य घृणित रोगोंके फैलनेका जो खतरा आ खड़ा हुआ है।

और भी

> चूँकि ये लोग पत्नियों या स्त्री-रिश्तेदारोंके बिना राज्यमें आते हैं, नतीजा साफ है। इनका धर्म सब स्त्रियोंको आत्मारहित और ईसाइयोंको स्वाभाविक शिकार मानना सिखाता है।

इन अर्जियोंपर उत्तरदायी लोगों और जनताके प्रतिनिधियोंने हस्ताक्षर किये थे। और इन अंधाधुंध अन्यायपूर्ण और असत्य बयानोंके कारण ही १८८५ का अधिनियम ३ मंजूर किया गया था। श्री लवडेने अपना कथन फिरसे दुहरा देना उचित समझा है कि एक अरब व्यापारी ४ पौंड सालानासे ज्यादा खर्च नहीं करता। उन्होंने अपने समर्थनमें एशियाई व्यापारी आयोग (एशियाटिक ट्रेडर्स कमीशन) की कार्रवाईका हवाला दिया है। मगर उस आयोगके सदस्योंने ऐसी कोई बात कही ही नहीं। पॉचिफस्ट्रममें उन्होंने और भी जोरोंसे अपनी बात कही है। इसलिए मैं फिरसे उस कथनका खण्डन करता हूँ और सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि श्री लवडेकी अपेक्षा मुझे इस बातका ज्ञान ज्यादा होना चाहिए कि भारतीय व्यापारी कितना खर्च करता है। कुछ लोगोंको तो सालमें नहीं महीनेमें ४ पौंडतक सिर्फ किराया ही दे देना पड़ता है। क्या श्री लवडे किसी एक भी भारतीय व्यापारीसे परिचित हैं? उन्होंने कभी भारतीय व्यापारियोंके बहीखाते देखे हैं? क्या उन्होंने एशियाई आयोगकी रिपोर्ट पढ़ी है? मैं खुशीके साथ उनके सामने २ भारतीय व्यापारियोंके बहीखाते पेश करनेको तैयार हूँ क्या अब वे उन्हें देखना पसन्द करेंगे? मैं इस बयानका खण्डन करता हूँ कि भारतीय व्यापारियोंके कर्मचारियोंको २ शिलिंग माहवारसे ज्यादा नहीं मिलता। मैं उनके सामने ऐसे भारतीय कर्मचारियोंके नाम रखनेको तैयार हूँ जिन्हें भोजन और निवासके खर्चके अलावा १ पौंड माहाना वेतन मिलता है। श्री लवडेने मेरे इस वक्तव्यको कि किसी भारतीयको देशमें आनेकी अनुमति नहीं दी जाती "धृष्टतामय असत्य" बताया है। अगर मैंने गलती की है तो परवाना-विभागके मुख्य सचिवने भी यही किया है। आपको याद होगा कुछ ही महीने पहले मुख्य सचिवने लॉर्ड मिलनरको रिपोर्ट दी थी कि किन्हीं भी नये भारतीयोंको उपनिवेशमें आनेकी अनुमति नहीं दी जाती। उन्होंने यह भी कहा था कि परवाने सिर्फ बहुत कम संख्यामें प्रामाणिक शरणार्थियोंको दिये जाते हैं। श्री लवडेने इस बयानके विरोधमें प्रिटोरिया और पॉचिफस्ट्रूमका उदाहरण देते हुए कहा है कि युद्धके बादसे प्रिटोरियामें भारतीय प्रवासियोंकी आबादी दूनी हो गई है युद्धके पहले जहाँ १५२ व्यापारी ही थे वहाँ अब ९ से १ तक हैं। यह बिलकुल निराधार है। प्रिटोरियामें भारतीयोंकी आबादी बढ़ी जरूर है किन्तु वह दुगुनी नहीं हुई। इस बढ़तीका कारण यह है कि उपनिवेशके दूसरे हिस्सोंके

लोग यहाँ आ गये हैं क्योंकि दूसरी जगहोंमें उन्हें न तो परवाने मिले और न रोजी कमानेके कोई दूसरे साधन ही। परवाना-अधिकारीके कथनानुसार, उपनिवेशमें १ से ज्यादा भार तीय नहीं हैं। १८९६ में ट्रान्सवालमें लगभग १ भारतीय थे और निस्सन्देह १८९९ में यह संख्या बहुत बढ़ गई होगी। माननीय सज्जनने आगे कहा है कि युद्धके पूर्व पीटर्सबर्गमें १२ भारतीय दूकानें थीं आज उनकी ४९ दूकानें हैं। इसके खिलाफ मैं यह कहनेकी ढिठाई करता हूँ कि युद्धके पूर्व सिर्फ शहरमें ही २१ दूकानें थीं आज २८ हैं। इसके बाद भी उन्होंने कहा है

> भारतीय हमसे कहते हैं कि उनके कुछ अधिकार हैं; उन्हें वे स्वतन्त्रताका घोषणा-पत्र कहते हैं। परन्तु क्या भारतमें भारतीयों और गोरोंके बीच कोई भी सामाजिक व्यवहार होता है? वहाँ किसी तरहका कोई व्यवहार नहीं है।

यह प्रश्न बेकार ही उठा दिया गया है। भारतीयोंने यहाँ कोई सामाजिक व्यवहार शुरू करनेकी माँग नहीं की। उन्होंने सिर्फ व्यापारकी उचित सुविधाओंके प्राथमिक अधिकारका सामान्य प्रतिबन्धोंके अन्तर्गत प्रवासकी उचित सुविधाओंका सम्पत्ति रखने और आवागमनकी स्वतन्त्रता पानेका दावा किया है। परन्तु भी सज्जनकी जानकारीके लिए मैं बता दूँ कि भारतमें भारतीयों और अंग्रेजोंके बीच कुछ हदतक सामाजिक सम्बन्ध भी है। कूचबिहारके महा-राजा द्वारा आयोजित सहभोज (बॉल-डान्स) में सर्वश्रेष्ठ यूरोपीय समाज सम्मिलित होता है। वाइसराय और गवर्नरोंके कार्यक्रमों और भोजोंमें सब वर्गोंके भारतीयोंको आमन्त्रित किया जाता है। भारतके मुख्य शहरोंमें समय-समयपर जो दरबार हुआ करते हैं वे शहंशाहकी अंग्रेज प्रजाके बराबर ही भारतीय प्रजाके लिए भी खुले होते हैं। अगर मैं यह सब कह रहा हूँ तो सिर्फ इसलिए कि हमारे सबसे पुराने परिषद-सदस्यका शोचनीय अज्ञान प्रकट हो जाये अपने देशभाइयोंके दिलोंमें सामाजिक कार्योंमें भाग पानेकी जरा भी इच्छा जागृत करनेके लिए नहीं। उपनिवेशके गोरे आदमियोंकी सामाजिक व्यवस्थामें अपने-आपको ठूँसनेकी हमारी कोई इच्छा नहीं है। यह विषय मेरे लिए बड़ा दर्दभरा है इसलिए इसका अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं। पॉचिफस्ट्रममें इन माननीय महाशयने जो भाषण किया उसे ललकारे बिना छोड़ देना असम्भव था। परन्तु रंग-भेद सम्बन्धी प्रश्नपर विचारके समय अगर उन्होंने सब बातोंका सच्चा रूप देखनेमें अपने-आपको बिलकुल असमर्थ न बना लिया हो तो मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि वे अपनी न्याय तथा औचित्यकी बुद्धिका प्रयोग करें। मैं उनसे सिर्फ यह कहूँगा कि वे अपने इतिहास और तथ्योंका अध्ययन करें। ब्रिटिश भारतीय संघके प्रस्तावोंपर भी जिन्हें मैं बहुत ही नर्म और उचित समझनेकी धृष्टता करता हूँ वे विचार करें। और बादमें वे अपने आपसे पूछें कि क्या वे अपनी पवित्रता कलंकित नहीं कर रहे हैं? जिन लोगोंपर उनका इतना नियन्त्रण है उन्हें गलत रास्तेपर भटका नहीं रहे हैं? देशमें उनकी जो उत्तरदायी हस्ती है उसके प्रति अन्याय नहीं कर रहे हैं? और जिस साम्राज्यकी प्रजा होनेका वे दावा करते हैं उन्हें अभिमान है उसकी कुसेवा नहीं कर रहे हैं?

आपका, आदि,
अब्दुल गनी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-१२-१ ४

२७२ अपनी बात[1]

इंडियन ओपिनियन अपने जीवनके डेढ़ बरसके छोटेसे कालमें अपने कार्यकी तीसरी मंजिलमें प्रवेश कर रहा है। इसके संचालकने देशभक्ति-पूर्ण उद्देश्योंसे प्रेरित होकर, अत्यल्प साधनोंके साथ यह कार्य आरम्भ किया था। पत्रके सम्पादनके लिए उन्हें शुद्ध स्वैच्छिक और अवैतनिक सहायतापर निर्भर रहना पड़ा। यह सहायता उन्हें तत्परताके साथ मिली। संचालकका इरादा था कि साधारण छपाईसे जो लाभ हो उससे पत्रका अपेक्षित घाटा पूरा करके पत्रको स्वावलम्बी बना लिया जाये। मगर ऐसा हुआ नहीं। यद्यपि यह पत्र एक सच्ची जरूरत पूरी करता था फिर भी जिसे व्यापारिक माँग कहा जा सकता है उसको पैदा करनेकी जरूरत थी। दूसरे शब्दोंमें पत्रको न सिर्फ अपनी सामग्री जुटानी थी बल्कि पाठक भी खोजने थे। इसके अलावा पाँच सौ से अधिक प्रतियाँ भेंटमें भेजनी पड़ती थीं। यह बहुत बड़ी बाधा थी। इसलिए आर्थिक सहायता माँगनी पड़ी। नेटाल भारतीय कांग्रेस और ब्रिटिश भारतीय संघने यह सहायता दी और भेंटकी प्रतियोंकी छपाई तथा उनके भेजनेके खर्चकी मदमें कुछ रकमें देना स्वीकार किया।

फिर भी पत्र सर्वजनकी मगर-मच्छकी भाँति जो भी आमदनी हुई, उसे खाता गया और अभी यह और माँगता ही था। स्थितिको सँभालना केवल पुरुषार्थमय उपायोंसे सम्भव था। छुटपुट प्रयत्न बेकार थे। अधिक राहतकी दवाएँ खतरनाक थीं। तब सिर्फ यह एक उपाय रह गया कि निष्ठावान कार्यकर्ताओं और मित्रोंसे एक नयी और क्रान्तिकारी योजनाको इख्तियार करनेका अनुरोध किया जाये। उनको वर्तमानको नहीं बल्कि भविष्यको देखना था अपनी जेबोंका नहीं बल्कि पत्रका खयाल पहले रखना था। और वे ऐसा क्यों न करते? *इंडियन ओपिनियनका* ध्येय सम्राट एडवर्डकी यूरोपीय और भारतीय प्रजाओंमें निकटतर सम्बन्ध स्थापित करना था। उसका ध्येय लोकमतको शिक्षित करना गलतफहमीके कारणोंको दूर करना भारतीयोंके सामने उनके अपने दोष रखना और उन्हें, जब कि वे अपने अधिकारोंकी प्राप्तिका आग्रह कर रहे हैं, उनका कर्तव्य-पथ दिखाना था। यह समस्त एक साम्राज्यीय और शुद्ध आदर्श था और इसकी पूर्तिके लिए कोई भी व्यक्ति निःस्वार्थ भावसे प्रयत्न कर सकता था। इसलिए यह कुछ कार्यकर्ताओंको अच्छा लगा।

संक्षेपमें योजना यह थी। अगर शहरके भीड़-भड़क्केसे दूर जमीनका कोई काफी बड़ा टुकड़ा ऐसा मिल जाये जिसपर मकान बनाकर छापेखानेकी कल और मशीनें रखी जा सकें तो हरएक कार्यकर्ताको भी रहनेके लिए जमीन मिल सकती है। इससे बहुत खर्च उठाये बिना ही स्वच्छ और आरोग्यप्रद अवस्थाओंमें रहनेकी समस्या भी सरल हो जायेगी।

कार्यकर्ताओंको हर महीने उतना रुपया पेशगीके तौरपर दिया जा सकता है, जितना कि उनके एक महीनेके जरूरी खर्चके लिए काफी हो और सालके अन्तमें सारा लाभ उनके बीच

१. यह मसविदा ११-२-१९०५के अंकमें एक परिशिष्टके साथ परिशिष्ट रूपमें पुनः छापा गया था

* निम्न लेख हमारे दिसम्बर २४, १९०४के अंकमें प्रकाशित हुआ था और चूँकि हम उन पाठकोंकी माँगकी पूर्तिके लायक प्रतियाँ नहीं छाप सके थे हम इसे अब परिशिष्ट रूपमें प्रकाशित करते हैं। हम आशा है हमारे और मित्रोंकी सारी जिम्मेदारी वे अपनी प्रतियाँ मुफ्त वितरणके लिए देंगे। (इं० ओ०)

बाँटा जा सकता है। इस तरह प्रबन्धकोंको हर सप्ताह बहुत बड़ी रकम जुटानेकी जरूरत न होगी। कार्यकर्ताओंको यह भी सहूलियत दी जा सकती है कि अगर वे चाहें तो अपने मकानकी जमीन लागत-मूल्यपर खरीद लें।

ऐसी अच्छी अवस्थाओं और सुन्दर स्थितियोंमें जिनके कारण मेटाल्का भाग उद्यान उपनिवेश (गार्डन कालोनी) पड़ा है, रहते हुए कार्यकर्ता अधिक सादा और प्राकृतिक जीवन बिता सकते हैं। साथ ही यहाँ रस्किन और टॉल्स्टायके विचारोंका शुद्ध व्यापारिक सिद्धान्तोंके साथ समन्वय भी किया जा सकता है। या यह भी हो सकता है कि अगर कार्यकर्ता चाहें तो वे शहरी जिन्दगीकी कृत्रिमता फिरसे पैदा कर लें। फिर भी आशा तो यह की जा सकती है कि हमारी योजनाकी तहमें जो भावना है और कार्यकर्ता जिन परिस्थितियोंमें रहेंगे उनका उनके ऊपर शिक्षाप्रद प्रभाव होगा। वहाँ यूरोपीय और भारतीय कार्यकर्ता ज्यादा मजदूरी और भाई-चारेके साथ मिलजुलकर रहेंगे। यह भी सम्भव है कि रोजाना काम करनेका समय घटाया जा सके। हरएक कार्यकर्ता खूब अपनी खेती कर सकता है। अंग्रेज कार्यकर्ता इस तानेको झूठा साबित कर सकेंगे कि दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले अंग्रेज जमीन जोतना और अपने हाथसे काम करना नहीं चाहते। वहाँ उन्हें ऐसे कामके लिए सब सहूलियतें उपलब्ध होंगी और कमियाँ कोई न होंगी। भारतीय कार्यकर्ता जो अभी कोल्हूसे कामके लिए निरन्तर गुलामोंकी तरह परिश्रम किया करते हैं अपने यूरोपीय भाईका अनुकरण करके स्वस्थ मनोरंजनकी शान और उपयोगिता समझ सकेंगे।

सब लोगोंको प्रेरणा देनेवाली तीन बातें होंगी — *इंडियन ओपिनियन*के रूपमें एक आदर्शके लिए काम करना निवासके लिए पूरी तरहसे स्वास्थ्यप्रद वातावरण और अत्यन्त अनुकूल शर्तोंपर तुरन्त जमीन पानेकी सम्भावना और योजनामें सीधा ठोस स्वार्थ और हिस्सा।

संक्षेपमें यही हमारे तर्ककी रूपरेखा थी जो अब कार्यरूपमें परिणत की जा चुकी है। छापाखाना नॉर्थ कोस्ट लाइनके फीनिक्स स्टेशनके पास जमीनके एक बड़े टुकड़ेपर ले जाया गया है। वहाँ अंग्रेज और भारतीय कार्यकर्ता योजनाको कार्यान्वित करनेमें लगे हुए हैं। अभी उसके नतीजेका अनुमान लगानेका समय नहीं आया है। क्योंकि प्रयोग बड़ा साहसपूर्ण है और उसमें बहुत महत्त्वके परिणाम सन्निहित हैं। हमें किसी भी ऐसे व्यापिकेतर सगठनका ज्ञान नहीं है जो उपर्युक्त सिद्धान्तोंके अनुसार चलाया जाता हो या चलाया गया हो। अगर यह सफल हुआ तो हम जरूर यही खयाल करेंगे कि यह अनुकरणके योग्य होगा। हम अर्थमलिक रूपसे भिन्न रहे हैं और इस पत्रके कार्यकर्ता-मण्डलमें से कोई भी सामग्रीके लिए विशेष श्रेयका दावा नहीं करता। इसलिए हम मानते हैं कि जनताके सामने सारी बात प्रकट कर देना ही उचित है। जनताका समर्थन हमें बहुत प्रोत्साहन देगा और निस्सन्देह योजनाकी सफलतामें बहुत सहायक होगा। हम दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले दोनों महान समाजोंसे अनुरोध कर सकते हैं और हमें विश्वास है कि वे इस योजनाको सफल बनानेमें व्यवस्थापकोंकी सहायता करेंगे। हमारा विश्वास है कि योजना सफल बनाने योग्य है।

[अंग्रेजी से]

इंडियन ओपिनियन २४-१२-१९०४

२७३ जाँचके योग्य मामला

भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंको मारने-पीटनेके सम्बन्धमें हाल ही लेडीस्मिथमें जो मुकदमे चले हैं उनकी कार्रवाइयाँ सहयोगी *नेटाल विटनेस* प्रमुखताके साथ प्रकाशित करता आ रहा है। रैमजे कोयला-खानके एक यूरोपीय भूगर्भ-प्रबन्धकके विरुद्ध खानके एक भारतीय गिरमिटिया मजदूरको मारने-पीटनेके आरोपमें जो मुकदमा चला उसकी कार्रवाईके लिए *नेटाल विटनेस*ने अपने इसी १९ तारीखके अंकमें डेढ़ कालम स्थान दिया है। इसके लिए वह बधाईका पात्र है। प्रबन्धकको अपराधी करार दिया गया है। राज्यकी ओरसे सार्जेन्ट लेम्मियरने निर्भीकताके साथ जो बयान दिया उसके मुताबिक मारपीट संगीन थी। साथ-साथ एक स्त्रीके बेचे जानेकी भी बात उठी थी। अगर यह सच है तो भारी कलंककी बात है। सन्तोष इस बातका है कि इस उपनिवेशमें इस सार्जेन्टके समान सरकारी वकील मौजूद हैं, जो अपने कर्त्तव्यसे विचलित नहीं होते। तथापि सरकार द्वारा इस सारे मामलेकी सावधानीके साथ जाँच की जानेकी जरूरत है। मुकदमेकी कार्रवाई पढ़नेसे मनपर एक बुरा प्रभाव रह जाता है। निष्पक्ष जाँचसे सचाई प्रकट हो जायेगी और, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, कोयला-खान कम्पनीको इस जाँचका स्वागत करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-१२-१९०४

२७४ पॉचेफस्ट्रूमके पहरेदार और ब्रिटिश भारतीय

पॉचेफस्ट्रूमके पहरेदार (पॉचेफस्ट्रूम विजिलैंट्स) फिर जाग्रत हो रहे हैं। वे अपने शहरसे सब भारतीयोंको बिलकुल निकाल देना चाहते हैं। अपने पहले जोश-खरोशके बाद हमें याद होगा वे बहुत-कुछ ठंडे पड़ गये थे और अपने अंग्रेजोंके मित्रोंके विरोध करनेपर भी उन्होंने फैसला किया था कि जिन भारतीयोंको बाजारोंमें खदेड़ा गया है उन्हें मुआवजा दिया जाये। परन्तु अब साफ मालूम होता है कि उन्हें अपनी उस नर्मीपर पछतावा हुआ है। अब वे कानूनको अपने हाथमें लेना और पॉचेफस्ट्रूममें आतंकका राज्य जमाना चाहते हैं। भारतीय किसीको हानि नहीं पहुँचाने और कानूनका पालन करनेवाले लोग हैं। फिर भी पहरेदार उनकी धार्मिक भावनाओंकी अवहेलना करेंगे। वे अपने शहरमें भारतीयोंका मसजिद नहीं बनाने देना चाहते। जो लोग भारतीयोंके साथ किसी भी प्रकारका कारोबार करेंगे वे उनका जीवन दूभर कर देंगे। गृहस्थोंको सामाजिक बहिष्कारके द्वारा भारतीयोंसे सौदा न खरीदनेके लिए बाध्य किया जायेगा। इसी प्रकार व्यापारी उनके साथ व्यापार न करेंगे। और भू-स्वामियोंको अपने भारतीय किरायेदारोंको बेदखल कर देना होगा। स्वार्थकी दृष्टिसे तो भारतीयोंको इस प्रकारके उन्माद पूर्ण विरोधका स्वागत ही करना चाहिए, क्योंकि वह अपनी ही हिंसासे मर जायेगा। परन्तु साम्राज्य-सम्बन्धी दृष्टिसे पॉचेफस्ट्रूमके पहरेदारों की कार्रवाइयोंकी जितनी भी निन्दा की जाये थोड़ी होगी। ब्रिटिश शासनका इतिहास वैधानिक विकासका इतिहास है। ब्रिटिश तरीकेके पीछे कानूनकी इज्जत करना लोगोंके स्वभावका हिस्सा बन गया है। हमारे "पहरेदार" लोग उस शानदार अधिकारको ही भूल रहे हैं और इस तरह वे ब्रिटिश शासनके प्रति अपनी

अखबारोंके दावेको झूठा साबित कर रहे हैं जिसके बलपर ही वे वाणीकी इतनी स्वतन्त्रताका उपभोग कर रहे हैं, जितनी कि संसारमें और कहीं नहीं है। परन्तु उन्होंने इस वाणी-स्वतन्त्रताको वाणी-स्वैरता समझनेकी गलती की है। क्या हम उनसे अनुरोध कर सकते हैं कि वे थोड़ी संजीदगीसे काम लें?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-१२-१९०४

२७५ एक नया साप्ताहिक

जोहानिसबर्गसे रैंड रेंट पेयर्स रिव्यू नामके एक नये साप्ताहिक पत्रका प्रकाशन आरम्भ हुआ है। उसका मुद्रा-वाक्य है—“जनता सत्य है”। पत्रकी छपाई-सफाई अच्छी है। एशियाइयोंके प्रश्नपर उसने जो विचार प्रकाशित किये हैं उनसे मालूम होता है कि यह एक बहुत उपयोगी और स्वतन्त्र पत्र होगा। अलबत्ता शर्त यह है कि उसका आरम्भ जिस रूपमें हुआ है वह आगे जारी रहे। उसमें प्रकाशित विचार निम्नलिखित हैं—

> जोहानिसबर्ग डाकघरसे तीन मीलके अन्दर ही एक टेकरीपर एक स्तम्भ खड़ा हुआ है, जिसके नीचे अनेक बस्तियोंका तीव्रताके साथ विकास हो रहा है। उस स्मारकस्तम्भके पास ही एक छोटा-सा कब्रिस्तान है। उसमें अनेक कई बड़े-बड़े ढोके हैं और एक पत्थरका टुकड़ा है जिसपर खुदा हुआ है— लाइलाही इल्लिल्लाह मुहम्मद रसूलिल्लाह (अल्लाहके सिवा कोई परमात्मा नहीं और मुहम्मद उसका पैगम्बर है)। उस कब्रिस्तानमें हमारे भारत-साम्राज्यके काले सैनिकोंकी लाशें दफन हैं। इन्होंने अपनी जानें ट्रान्सवालमें ब्रिटिश प्रजाजनोंकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ते-लड़ते कुरबान की थीं। हम इसका खयाल अपनी नगर-परिषद्के सदस्योंकी २ नवम्बरकी पहली बैठकमें दिये गये मतोंकि और इससे अगले सप्ताह प्रिटोरियामें नागावार (बॉरिस-हाउस) में हुई ट्रान्सवालके सब हिस्सोंके प्रतिनिधियोंकी बैठकके सिलसिलेमें कर रहे हैं। इस बैठकमें एकके बाद एक कई सदस्योंने खड़े होकर ऐसे प्रस्ताव पास करनेकी चीख-पुकार मचाई थी, जिनके अमलमें आनेसे हमारे भारतीय प्रजाजन इस उपनिवेशमें कोई भी अधिकार पानेसे वंचित हो जायेंगे। उन्हें सिर्फ वे ही अधिकार रहेंगे जो गिरमिटिया मजदूर बनाकर लाये गये चीनी कुलियोंको प्राप्त हैं। हमें लगता है कि जो लोग प्रस्ताव बनानेके लिए विधान खोजनेका प्रयत्न करते हैं उनकी भाषामें कुछ सुधार और कुछ अधिक विचारशीलताकी जरूरत है। जब कि इस तरहके दुर्भाव मौजूद हैं क्या ताज्जुब कि लॉर्ड कर्जनने लॉर्ड मिलनरके स्थानपर यहाँ आनेसे इनकार कर दिया। और अगर ब्रिटेनके अधिकारियोंके सामने ट्रान्सवालको उत्तरदायी शासन देनेमें देरी करनेका कोई कारण है, तो वह कोई दूसरा नहीं केवल यह भय है कि कहीं इस अधिकारका प्रयोग उन लोगोंके विरुद्ध न किया जाये जिन्होंने ब्रिटिश सरकारको यह उपनिवेश प्राप्त करनेमें मदद की है। सभी जानते हैं कि बोअर लोगोंने व्यापार करनेवाले एशियाइयोंको परवानोंके जरिये कुछ रियायतें दी थीं। परन्तु अब

सहूलियतोंको न तो न्यायोचित माना जाता था और न पूर्ण। यह तथ्य इंग्लैंडके सामने समस्त हस्तक्षेपकी जरूरतके एक अतिरिक्त कारणके रूपमें जोरोंके साथ पेश किया गया था। उन तर्कोंको पेश करनेवाले लोग उन्हें भूल जानेके लिए भले ही उत्सुक दिखलाई पड़ते हों मगर इंग्लैंड उन्हें इतनी जल्दी नहीं भूल सकता। और यूरोपीयोंके अलावा "किसीको कोई अधिकार नहीं" दिये जायें इस विचारहीन चिल्लाहटके बीचमें अधिकतर गोरोंकी वह आवाज अब भी अनेक लोकप्रिय ब्रिटिश परिवारोंमें साफ-साफ गूंज उठती है। रैंड (ट्रान्सवाल) का सौभाग्य है कि वहाँ बहुतसे योग्य और सम्मान्य व्यक्ति मौजूद हैं जो पूर्वग्रहोंको न्यायकी खरी भावनापर हावी न होने देंगे।

हम अपने सहयोगीको उसकी निर्भीक विचार-स्वतंत्रताके लिए और न्याय-परायणताके साहसके लिए बधाई देते हैं। हमारी कामना है कि उसे पूरी सफलता प्राप्त हो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २४-१२-१९ ४

२७६. सालाना लेखा-जोखा

जो व्यापारी अपनी साल-ब-साल हालतका लेखा-जोखा नहीं करता वह मूर्ख माना जाता है। मिशनरियोंकी एक भजन-पुस्तकमें उपदेश किया गया है कि "अपने वरदानोंको एक-एक करके गिनो" और देखो कि भगवानने हमारे लिए कितना किया है। इसलिए अगर हम दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले अपने देशभाइयोंकी स्थितिका जिसके कारण हमारा अस्तित्व आवश्यक हुआ है संक्षेपमें सिंहावलोकन करें तो यह एक अच्छे उदाहरणका अनुसरण होगा और हमारा यह कार्य परिपाटीके बिलकुल अनुकूल होगा। तथापि हमें खेद है कि हम इस महाखण्डमें अपने स्वदेशवासियोंके लिए बहुतसे वरदानोंकी गिनती नहीं कर सकते। हमें अपने आसपास छाई काली घटाओंके बीच उनको यहाँ-वहाँ चीरनेवाली शुभ किरणोंकी ओर ध्यान खींचकर कुछ मात्र बताकर ही सन्तोष मान लेना होगा।

हम नेटालसे ही आरम्भ करें। जहाँतक नये कानूनका सम्बन्ध है वहाँ स्थिति पहले जैसी ही है। परन्तु एशियाई-विरोधी कानूनोंके अमलकी प्रवृत्ति निश्चित रूपसे ऐसी पाबन्दीकी ओर रही है जो अक्सर कष्टदायी हदतक पहुँचती है। नया प्रवासी-अधिनियम लोगोंको अब भी बड़ा अधिक कष्ट पहुँचा रहा है। भारतीय यात्रियोंको लेकर आनेवाले जहाजोंका निरीक्षण पहलेसे बहुत सख्त हो गया है। "अधिवासी" शब्दका अर्थ बहुत संकुचित कर दिया गया है और बहुतसे सुपात्र भारतीयोंको, यद्यपि वे पहले इस बस्तीमें रह चुके हैं बाहर रखा जा रहा है। विक्रेता-परवाना अधिनियमसे लोगोंको बहुत कष्ट हुआ है और अब भी हो रहा है। हालमें एक मुकदमेकी याद अभी ताजी ही है। एक पुराने व्यापारीको, जो अपने वस्तुभण्डारको साफ-सुथरा रख कर प्रथम कोटिके यूरोपीय ढंगके भण्डारका मान बना रखता था इसलिए सताया गया कि उसने अपने वस्तुभण्डारको कुछ ही दुकानोंके फासलेपर एक स्थानसे दूसरे स्थानमें हटा देनेका साहस किया। कारण यह है कि दूकान हटाकर वेस्ट स्ट्रीट ले जाई गई है जिसे नगर-परिषद भारतीयोंके साथ व्यापारके लिए नहीं बल्कि सिर्फ यूरोपीय दुकानदारोंके लिए सुरक्षित रखना चाहती है। नगर-परिषद और भारतीय-समाजके बीचके इस प्रश्नका निबटारा

२७७ हमारी कसौटी

हम पिछले अंकमें अपनी स्थितिके विषयमें लिख चुके हैं। हमने उसमें यह भी लिखा था कि यहाँ जो लोग काम करते हैं उनमें तीन अंग्रेज हैं। अपने पाठकोंको हमने जो नया कदम उठाया है, उसका अधिक अन्दाज हो जाये इस हेतुसे इन तीन अंग्रेजोंने कौन-सा जोखिम उठाया है, वे कौन हैं और किसलिए प्रेसमें आये हैं यह हम बताना चाहते हैं।

इनमें से एकका नाम श्री वेस्ट[1] है। वे छापाखानेके कामके खासे जानकार हैं। जोहानिसबर्गमें उनका छापाखाना था। वहाँ उनकी आमदनी ठीक थी और उनके अधीन कितने ही लोग थे। *ओपिनियन*पर जब वास्तविक संकट पड़ा उस समय वे २४ घंटेमें तैयारी करके अपना काम बन्द करके चले आये।[2] ये सज्जन इस समय खाने-पहनने लायक लेकर, अन्तमें लाभ होगा[3] ऐसा विश्वास रखकर रहते हैं और अपना ही काम मानकर सुबहसे शामतक मेहनत किया करते हैं।

दूसरे श्री किचन[4] हैं। वे बिजलीके ठेकेदार थे। उनकी अपनी पेढ़ी थी और वे अच्छी कमाई करते थे। नये परिवर्तनकी खबरसे उनका मन उत्साहित हुआ। उन्होंने देखा कि *ओपिनियन*का ध्येय बहुत अच्छा है। पैसेका उन्हें लोभ नहीं है, और जिस पद्धतिसे फीनिक्समें रहना है वह सरल सस्ती और सरस है इसलिए वे अपना धंधा छोड़कर केवल निर्वाहके योग्य मिलनेवाले पैसेमें सन्तोष मानकर प्रेसमें शामिल हो गये।

तीसरे श्री पोलक[5] हैं। वे अभी *क्रिटिक* समाचारपत्रके सहसम्पादक हैं। उन्हें अच्छा वेतन मिलता है किन्तु अत्यन्त सादे विचारके होनेके कारण तथा यह मानकर, कि *इंडियन ओपिनियन*में वे इच्छानुसार अत्याचारके विरुद्ध अपनी भावना प्रकट कर सकेंगे उन्होंने अपरकी नौकरी छोड़नेकी सूचना अपने प्रधानको दे दी है और अगले वर्षके प्रारम्भमें यहाँ आ पहुँचेंगे। इस बीच अखबारके

१. अल्बर्ट वेस्टसे गांधीजीकी पहली मुलाकात जोहानिसबर्गके एक निरामिष-भोजनालयमें हुई। वेस्टका जन्म लिंकनशायरके एक कृषक-कुटुम्बमें हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा साधारण हुई थी। बादमें श्री वेस्ट फीनिक्स आश्रममें गांधीजीके साथ काम करने चले आये और उनकी माता, बहन कुमारी एडा और पत्नी भी आश्रममें रहने लगीं। श्री वेस्ट सत्याग्रह आन्दोलनमें गिरफ्तार भी हुए। देखिए *आत्मकथा* (गुजराती), भाग ४ अध्याय १६।

२. छापाखाना पहले डर्बनमें स्थापित हुआ था। फिर १९०४ में वह फीनिक्समें लाया गया।

३. पहले उनका वेतन और १० पौंड मासिक वेतन निर्धारित हुआ था। किन्तु जब प्रेस आत्मनिर्भर नहीं हुआ और फीनिक्स ले जाया गया तब सबके प्रति मासिक भोजन-खर्चके सिवा अलग वेतन ३ पौंड मासिक तय किया गया।

४. श्री हर्बर्ट किचन एक बिजलीमिस्त्री थे। उन्होंने श्री नाजरकी मृत्युके बाद *इंडियन ओपिनियन*का सम्पादन किया। कुछ दिनों गांधीजीके साथ रहे और बोअर युद्धमें उनके साथ काम किया।

५. श्री हेनरी एस० एल० पोलकसे भी गांधीजीकी भेंट वेजिटेरियन रेस्टराँमें हुई थी। पोलकने ही गांधीजीको रस्किनकी पुस्तक अन टु *दिस लास्ट* पढ़नेको दी थी जिससे प्रभावित होकर गांधीजीने फीनिक्स आश्रमकी स्थापना की। गांधीजीकी सलाहपर पोलकने वकालतकी शिक्षा ली और उनके सहयोगीकी तरह काम करने लगे। किचनके बाद *इंडियन ओपिनियन*के सम्पादक हुए। दक्षिण आफ्रिकी संघर्षमें मदद करनेके लिए भारत और इंग्लैंड गये तथा सत्याग्रह आन्दोलनमें कारावास भोगा।

अबतक नहीं हुआ है। यह मामला पुनर्विचारके लिए सर्वोच्च न्यायालयके अधीन है। परन्तु इतना तो बहुत साफ है कि अगर नेटाल परवाना-अधिनियमका मंशा भारतीयोंको जरा भी शान्ति देनेका है तो उसमें ऐसा परिवर्तन किया जाना चाहिए कि सर्वोच्च न्यायालयको न्याय-सम्बन्धी सब निर्णयोंपर पुनः विचार करनेका स्वतः सिद्ध अधिकार फिर मिल जाये — भले ही वह निर्णय देनेवाला अफसर कोई भी क्यों न हो वह मजिस्ट्रेट या परवाना-अधिकारी कुछ भी क्यों न कहलाता हो। भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंकी हालतकी जब-तब समीक्षा करना जरूरी होता है। लेजीस्लेचरमें हालमें हुए मुकदमोंकी जिनकी ओर हमारे सहयोगी *नेटाल विटनेस*ने विशेष ध्यान आकर्षित किया है जाँचकी आवश्यकता है। नेटालवासी भारतीयोंके बच्चोंकी शिक्षाका प्रश्न अत्यन्त महत्त्वका है। भूतपूर्व शिक्षा-अधीक्षक श्री बार्नेटने ठीक ही कहा है कि अगर केवल गोरे लोगोंके हितका ही खयाल किया जाये तो भी उन बच्चोंकी उपेक्षा करनेमें बैरियत नहीं हो सकती। भारतीय बच्चोंको उपयुक्त शिक्षा देनेके लिए या तो साधारण स्कूलोंके द्वार खुले रखने चाहिए, या नये स्कूलोंकी स्थापना होनी चाहिए। यहाँ हम उल्लेख कर दें कि साधारण पाठ्यक्रममें भारतीय भाषाओंकी शिक्षा जोड़ देना वांछनीय होगा। उपनिवेशमें दुभाषियोंका काम जिस तरह चल रहा है वह बिलकुल सन्तोषजनक नहीं है फिर भी उसमें दुभाषियोंका कोई दोष नहीं। अगर भारतीय नवयुवकोंको भारतीय भाषाओंकी शिक्षा दी जाये तो योग्य दुभाषिये प्राप्त करनेका यह एक सस्ता तरीका होगा।

जहाँतक ट्रान्सवालकी बात है वह अब भी भारतीय समाजके लिए सर्वाधिक चिन्ताका विषय बना हुआ है। वहाँ अभी किसी बातका फैसला नहीं हुआ। १८८५ का कानून[?] कठोरताके साथ कार्यान्वित किया जा रहा है। सच तो यह है कि वर्तमान सरकार कानूनकी मर्यादाको भी लाँघ गई है। भारतीयोंको ट्रान्सवालसे बाहर रखनेके लिए उसने शान्ति रक्षा अध्यादेशका जो कि एक शुद्ध राजनीतिक कानून है प्रयोग किया है। प्रामाणिक शरणार्थियोंको भी देशमें आनेसे रोका जाता है। *हबीब मोटन बनाम महान्यायवादी*के मुकदमेसे भारतीय व्यापारियोंको एक तरहकी राहत मिली है और वे बिलकुल नामशेष हो जानेके खतरेसे बच गये हैं। परन्तु उस मुकदमेकी जीतसे ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध एक हिंसात्मक आक्रमणात्मक और अज्ञानमय आन्दोलनको जन्म मिला। उसकी परिसमाप्ति उस एशियाई-विरोधी सम्मेलनमें हुई, जो अब काफी बदनाम हो चुका है और जिसमें कठोर तथा ब्रिटिश आदर्श-विरोधी कार्रवाइयोंकी सिफारिश की गई है। और, उत्तेजक भाषणों द्वारा उसका समर्थन किया गया। श्री लवडेने एक भाषण देकर ख्याति कमायी और उनके उस भाषणने ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षको एक तीखा प्रत्युत्तर देनेके लिए बाध्य कर दिया। श्री लवडेने श्री अब्दुल गनीके वक्तव्यका प्रतिवाद करनेका प्रयत्न किया परन्तु श्री अब्दुल गनीने उन्हें फिर चकरा दिया है। उन्होंने *स्टार*को एक पूर्ण और बिना लाग-लपेटका प्रतिवाद[1] लिख भेजा है। इस तरह यद्यपि ब्रिटिश भारतीय संघ गन्दी परिस्थितियाँ सामने रखकर बहुधा लोगोंके अनर्गल वक्तव्योंका मुकाबला कर सका है फिर भी स्थिति तो उग्र बनी ही है। पचिफस्ट्रूम और अन्य स्थानोंके लोग स्थानीय भारतीयोंके बहिष्कारकी भाषामें उलझ रहे हैं और भारतीयोंकी धार्मिक भावनाओंपर आघात भी कर रहे हैं। इसी बीच सदा परिवर्तित होती रहनेवाली नीतिका अवलम्बन करके मूल्यवान समयका नाश किया जा रहा है। लॉर्ड मिलनर न्यायके पक्षमें युद्ध रहनेमें असफल हुए हैं और उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकार, गोरे-गुमार भरे स्वार्थी आन्दोलनसे प्रभावित होकर पराजित कर दिये हैं।

1. देखिए "पत्र : स्टारको", दिसम्बर १४, १९०४ के पूर्व; खण्ड ४, पृष्ठ ४४।

सौमाग्यसे भारत सरकारने दृढ़ता दिखलाई है और आशा की जा सकती है कि शीघ्र ही कठिनाइयोंका कोई उचित हल निकल आयेगा।

ऑरेंज रिवर उपनिवेश अपनी औपनिवेशिक नीतिमें सर्वथा अडिग रहा है। वह ब्रिटिश भारतीयोंका विरोधी है, इसकी उसके निवासियोंको कोई चिन्ता नहीं। युद्ध तो दूसरोंके साथ-साथ भारतीयोंके लिए भी लड़ा गया था। ब्लूमफॉंटीनपर यूनियन जैक फहराता हुआ भी ब्रिटिश भारतीयोंको कोई संरक्षण प्रदान नहीं करता। ब्रिटिश भारतीय अछूतोंके समान दूर रखे जाते हैं।

केप उपनिवेशके भिन्न-भिन्न भागोंके लिए भिन्न-भिन्न कानूनोंका विचित्र नजारा दिखलाई पड़ता है। फलतः केप टाउनमें रहनेवाले भारतीय तो नागरिक-जीवनकी साधारण स्वतन्त्रताका उपभोग करते हैं परन्तु ईस्ट लन्दनमें उन्हें पैदल-पटरियोंपर चलने और ट्रान्सकाईके अधीनस्थ राज्यमें प्रवेशकी भी अनुमति नहीं है। हमारा पक्का विश्वास है कि यह प्रतिक्रियावादी नीति ट्रान्सवालमें लॉर्ड मिलनरकी *बाजार*-सूचनाकी सीधी उपज है। उसके द्वारा उन्होंने दुनियाको बता दिया कि ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंको सामान्य संरक्षण भी प्राप्त होनेवाला नहीं है। फिर अगर शुभाशा अन्तरीपके स्वशासित उपनिवेशने शीघ्रतापूर्वक और भरसक इस उदाहरणका अनुकरण किया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

वर्षके अन्तमें ब्रिटिश भारतीयोंके लिए स्थिति ऐसी विषम है। परन्तु मुसीबतके फल मीठे होते हैं। मुसीबत उसका ज्यादा नुकसान करती है जो उसे ढाता है, बनिस्बत उसके कि जिसपर वह ढाई जाती है। एक विद्वान धर्मात्मा पुरुषने कहा है

> इस भौतिक जीवनकी मुसीबत सहना मनुष्यके लिए अच्छा है, क्योंकि वह उसे हृदयके पवित्र एकान्तकी ओर वापस ले जाती है और केवल वहीं वह देखता है कि वह तो अपने ही मूल प्रवृत्ति निर्वासित है।

इसलिए अगर हम अपनी मुसीबतका सही-सही उपयोग करें तो उससे हमें पता चलता है कि हमें वह पवित्र करेगी और सही रास्ता दिखायेगी। निराशाके लिए कोई कारण नहीं है। हमारा काम केवल यह है कि जिसे हम सही और न्यायपूर्ण समझते हैं उसे बराबर करते रहें और परिणाम भगवानपर छोड़ दें जिसकी अनुमति या जानकारीके बिना पत्ता भी नहीं हिलता।

अगर हमें यह कहनेके लिए माफ किया जाये तो हमारा विश्वास है कि *इंडियन ओपिनियन* समाजका एक ऐसा मित्र और वकील है जो कभी पैर पीछे न हटायेगा। हमने यथाशक्ति अपने देशवासियोंकी सेवा करनेका प्रयत्न किया है। और चूँकि हम विश्वास करते हैं कि आखिरकार सत्य और न्यायकी विजय होगी और चूँकि ब्रिटिश जनताकी सद्बुद्धिपर हमें आस्था है, इसलिए, यद्यपि आज घटाएँ काली दिखाई देती हैं हम सफलताकी प्रत्येक आशाके साथ अपने देशभाइयों और अपने अन्य सब पाठकोंके लिए कामना करते हैं —

नव वर्ष मंगलमय हो!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ३१-१२-१९०४

अबतक नहीं हुआ है। यह मामला पुनर्विचारके लिए सर्वोच्च न्यायालयके अधीन है। परन्तु इतना तो बहुत साफ है कि अगर नेटाल परवाना-अधिनियमका मंशा भारतीयोंको जरा भी शान्ति देनेका है तो उसमें ऐसा परिवर्तन किया जाना चाहिए कि सर्वोच्च न्यायालयको न्याय-सम्बन्धी सब निर्णयोंपर पुनः विचार करनेका स्वतःसिद्ध अधिकार फिर मिल जाये — भले ही यह निर्णय देनेवाला अफसर कोई भी क्यों न हो, वह मजिस्ट्रेट या परवाना-अधिकारी कुछ भी क्यों न कहलाता हो। भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंकी हालतकी जब-तब समीक्षा करना जरूरी होता है। लेडीस्मिथमें हालमें हुए मुकदमोंकी जिनकी ओर हमारे सहयोगी *नेटाल विटनेस*ने विशेष ध्यान आकर्षित किया है, जाँचकी आवश्यकता है। नेटालवासी भारतीयोंके बच्चोंकी शिक्षाका प्रश्न अत्यन्त महत्त्वका है। भूतपूर्व शिक्षा-अधीक्षक श्री बार्नेटने ठीक ही कहा है कि अगर केवल गोरे लोगोंके हितका ही खयाल किया जाये तो भी उन बच्चोंकी उपेक्षा करनेमें बुद्धिमत्ता नहीं हो सकती। भारतीय बच्चोंको उपयुक्त शिक्षा देनेके लिए या तो साधारण स्कूलोंके द्वार खुले रखने चाहिए, या नये स्कूलोंकी स्थापना होनी चाहिए। यहाँ हम उल्लेख कर दें कि साधारण पाठ्यक्रममें भारतीय भाषाओंकी शिक्षा जोड़ देना वांछनीय होगा। उपनिवेशमें दुभाषियोंका काम जिस तरह चल रहा है, वह बिलकुल सन्तोषजनक नहीं है; फिर भी उसमें दुभाषियोंका कोई दोष नहीं। अगर भारतीय नवयुवकोंको भारतीय भाषाओंकी शिक्षा दी जाये तो योग्य दुभाषिये प्राप्त करनेका यह एक सस्ता तरीका होगा।

जहाँतक ट्रान्सवालकी बात है, वह अब भी भारतीय समाजके लिए सर्वाधिक चिन्ताका विषय बना हुआ है। वहाँ अभी किसी बातका फैसला नहीं हुआ। १८८५ का कानून ३ कठोरताके साथ कार्यान्वित किया जा रहा है। सच तो यह है कि वर्तमान सरकार कानूनकी मर्यादाको भी लाँघ गई है। भारतीयोंको ट्रान्सवालसे बाहर रखनेके लिए उसने शान्ति रक्षा अध्यादेशका जो कि एक शुद्ध राजनीतिक कानून है, प्रयोग किया है। प्रामाणिक शरणार्थियोंको भी देशमें आनेसे रोका जाता है। *हबीब मोटन* बनाम *महान्यायवादी*के मुकदमेसे भारतीय व्यापारियोंको एक तरहकी राहत मिली है और वे बिलकुल नामशेष हो जानेके खतरेसे बच गये हैं। परन्तु उस मुकदमेकी जीतसे ट्रान्सवालमें ब्रिटिश भारतीयोंके विरुद्ध एक हिंसात्मक आक्रमणात्मक और अज्ञानमय आन्दोलनको जन्म मिला। उसकी परिसमाप्ति उस एशियाई-विरोधी सम्मेलनमें हुई, जो अब काफी बदनाम हो चुका है और जिसमें कठोर तथा ब्रिटिश आदर्श-विरोधी कार्रवाइयोंकी सिफारिश की गई है। और, उत्तेजक भाषणों द्वारा उसका समर्थन किया गया। श्री लवडेने एक भाषण देकर ख्याति कमायी और उनके उस भाषणने ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षको एक तीखा प्रत्युत्तर देनेके लिए बाध्य कर दिया। श्री लवडेने श्री अब्दुल गनीके वक्तव्यका प्रतिवाद करनेका प्रयत्न किया, परन्तु श्री अब्दुल गनीने उन्हें फिर चकरा दिया है। उन्होंने *स्टार*में एक पूर्ण और बिना लाग-लपेटका प्रतिवाद[1] लिख भेजा है। इस तरह यद्यपि ब्रिटिश भारतीय संघ सच्ची परिस्थितियाँ सामने रखकर बहुधा लोगोंके अनर्गल वक्तव्योंका मुकाबला कर सका है, फिर भी स्थिति तो उग्र बनी ही है। पॉचेफस्ट्रूम और अन्य स्थानोंके लोग स्थानीय भारतीयोंके बहिष्कारकी बातें उठा रहे हैं और भारतीयोंकी धार्मिक भावनाओंपर आघात भी कर रहे हैं। इसी बीच सदा परिवर्तित होती रहनेवाली नीतिका अवलम्बन करके मूल्यवान समयका नाश किया जा रहा है। लॉर्ड मिलनर न्यायके पक्षमें दृढ़ रहनेमें असफल हुए हैं और उन्होंने ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकार, चीख-पुकार भरे स्वार्थी आन्दोलनसे प्रभावित होकर पराजित कर दिये हैं।

१. देखिए "द स्टार", सितम्बर २४, १९०४ के पूर्व; पृष्ठ ४३९-४४।

सौभाग्यसे भारत सरकारने दृढ़ता दिखलाई है और आशा की जा सकती है कि शीघ्र ही कठिनाइयोंका कोई उचित हल निकल आयेगा।

ऑरेंज रिवर उपनिवेश अपनी औपनिवेशिक नीतिमें सर्वथा अडिग रहा है। वह ब्रिटिश भारतीयोंका विरोधी है, इसकी उसके निवासियोंको कोई चिन्ता नहीं। युद्ध तो दूसरोंके साथ-साथ भारतीयोंके लिए भी लड़ा गया था। ब्लूमफौंटीनपर यूनियन जैक फहराता हुआ भी ब्रिटिश भारतीयोंको कोई संरक्षण प्रदान नहीं करता। ब्रिटिश भारतीय अछूतोंके समान दूर रखे जाते हैं।

केप उपनिवेशके भिन्न-भिन्न भागोंके लिए भिन्न-भिन्न कानूनोंका विचित्र नजारा दिखलाई पड़ता है। फलतः केप टाउनमें रहनेवाले भारतीय तो नागरिक-जीवनकी साधारण स्वतन्त्रताका उपभोग करते हैं परन्तु ईस्ट लन्दनमें उन्हें पैदल-पटरियोंपर चलने और ट्रान्सकाईके अधीनस्थ राज्यमें प्रवेशकी भी अनुमति नहीं है। हमारा पक्का विश्वास है कि यह प्रतिक्रियावादी नीति ट्रान्सवालमें लॉर्ड मिलनरकी बाजार-सूचनाकी सीधी उपज है। उसके द्वारा उन्होंने दुनियाको बता दिया कि ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंको सामान्य संरक्षण भी प्राप्त होनेवाला नहीं है। फिर अगर सुभाषा कस्तूरीनके स्वशासित उपनिवेशने शीघ्रतापूर्वक और भरसक इस उदाहरणका अनुकरण किया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

वर्षके अन्तमें ब्रिटिश भारतीयोंके लिए स्थिति ऐसी विषम है। परन्तु मुसीबतके फल मीठे होते हैं। मुसीबत उसका ज्यादा नुकसान करती है जो उसे लाता है बनिस्बत उसके कि जिसपर वह ढाई जाती है। एक विद्वान धर्मात्मा पुरुषने कहा है

> इस भौतिक जीवनकी मुसीबत सहना मनुष्यके लिए अच्छा है क्योंकि वह उसे हृदयके पवित्र एकान्तकी ओर वापस ले जाती है और केवल वहीं वह देखता है कि वह तो अपने ही मूल गृहसे निर्वासित है।

इसलिए अगर हम अपनी मुसीबतका सही-सही उपयोग करें तो उससे हमें पता चलता है कि हमें वह पवित्र करेगी और सही रास्ता दिखायेगी। निराशाके लिए कोई कारण नहीं है। हमारा काम केवल यह है कि जिसे हम सही और न्यायपूर्ण समझते हैं उसे बराबर करते रहें और परिणाम भगवानपर छोड़ दें जिसकी अनुमति या जानकारीके बिना पत्ता भी नहीं हिलता।

अगर हमें यह कहनेके लिए माफ किया जाये तो हमारा विश्वास है कि *इंडियन ओपिनियन* समाजका एक ऐसा मित्र और वकील है, जो कभी पैर पीछे न हटायेगा। हमने यथाशक्ति भर अपने देशवासियोंकी सेवा करनेका प्रयत्न किया है। और चूँकि हम विश्वास करते हैं कि आखिरकार सत्य और न्यायकी विजय होगी और चूँकि ब्रिटिश जनताकी सद्बुद्धिपर हमें आस्था है, इसलिए, यद्यपि आज घटाएँ काली दिखाई देती हैं हम सफलताकी प्रत्येक आशाके साथ अपने देशभाइयों और अपने अन्य सब पाठकोंके लिए कामना करते हैं—

नव वर्ष मंगलमय हो!

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ३१-१२-१९०४

२७७ हमारी कसौटी

हम पिछले अंकमें अपनी स्थितिके विषयमें लिख चुके हैं। हमने उसमें यह भी लिखा था कि यहाँ जो लोग काम करते हैं उनमें तीन अंग्रेज हैं। अपने पाठकोंको हमने जो नया कदम उठाया है, उसका अधिक अन्दाज हो जाये इस हेतुसे इन तीन अंग्रेजोंने कौन-सा जोखिम उठाया है वे कौन हैं और किसलिए प्रेसमें आये हैं यह हम बताना चाहते हैं।

इनमें से एकका नाम श्री वेस्ट[1] है। वे छापाखानेके कामके खासे जानकार हैं। जोहानिसबर्गमें उनका छापाखाना था। वहाँ उनकी आमदनी ठीक थी और उनके अधीन कितने ही लोग थे। *ओपिनियन*पर जब वास्तविक संकट पड़ा उस समय वे २४ घंटेमें तैयारी करके अपना काम बन्द करके चले आये। ये सज्जन इस समय खाने-पहनने लायक लेकर, अन्तमें लाभ होगा' ऐसा विश्वास रखकर रहते हैं और अपना ही काम मानकर सुबहसे शामतक मेहनत किया करते हैं।

दूसरे श्री किचन[2] हैं। वे बिजलीके ठेकेदार थे। उनकी अपनी पेढ़ी थी और वे अच्छी कमाई करते थे। नये परिवर्तनकी खबरसे उनका मन उत्साहित हुआ। उन्होंने देखा कि *ओपिनियन*का ध्येय बहुत अच्छा है। पैसेका उन्हें लोभ नहीं है और जिस पद्धतिसे फीनिक्समें रहना है वह सरल सस्ती और सरस है इसलिए वे अपना धंधा छोड़कर केवल निर्वाहके योग्य मिलनेवाले पैसेमें सन्तोष मानकर प्रेसमें शामिल हो गये।

तीसरे श्री पोलक[3] हैं। वे अभी *क्रिटिक*[4] समाचारपत्रके सहसम्पादक हैं। उन्हें अच्छा वेतन मिलता है किन्तु अत्यन्त सादे विचारके होनेके कारण तथा यह मानकर, कि *इंडियन ओपिनियन*में वे इच्छानुसार अत्याचारके विरुद्ध अपनी भावना प्रकट कर सकेंगे उन्होंने उसकी नौकरी छोड़नेकी सूचना अपने प्रबन्धकको देदी है और अगले वर्षके प्रारम्भमें यहाँ आ पहुँचेंगे। इस बीच अखबारके

१. अल्बर्ट वेस्टसे गांधीजीकी पहली मुलाकात जोहानिसबर्गके एक भोजनालय-गृहमें हुई। वेस्टका जन्म लिंकनशायरके एक कृषक-कुटुम्बमें हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा साधारण हुई थी। बादमें श्री वेस्ट फीनिक्स आश्रममें गांधीजीके साथ काम करने चले गये और उनकी माता, बहन कुमारी एडा और पत्नी भी आश्रममें रहने लगीं। श्री वेस्ट सत्याग्रह आन्दोलनमें गिरफ्तार भी हुए। देखिए *आत्मकथा* (गुजराती) भाग ४ अध्याय १६।

२. छापाखाना सन् के वर्षमें स्थापित हुआ था। फिर १९०४ में वह फीनिक्समें ले जाया गया।

३. पहले आधा लाभ और १० पौंड मासिक वेतन निर्धारित हुआ था। किन्तु जब प्रेस आत्मनिर्भर नहीं हुआ और फीनिक्स ले जाया गया तब वर्ष या अधिक मेहनताने बिना उनका वेतन ३ पौंड मासिक कर दिया गया।

४. श्री हर्बर्ट किचन एक विद्युत-यन्त्रविद थे। उन्होंने श्री नाजरकी अकाल मृत्युके बाद *इंडियन ओपिनियन*का सम्पादन किया। कुछ दिनों गांधीजीके साथ रहे और बोअर युद्धमें उनके साथ काम किया।

५. श्री हेनरी एस॰ एल॰ पोलकसे गांधीजीकी भेंट वेजिटेरियन रेस्तराँमें हुई थी। पोलकने ही गांधीजीको रस्किनकी पुस्तक *अन टु दिस लास्ट* पढ़नेको दी थी जिससे प्रभावित होकर गांधीजीने फीनिक्स आश्रमकी स्थापना की। गांधीजीकी सलाहपर पोलकने वकालतकी शिक्षा ली और उनके सहयोगीकी तरह काम करने लगे। कितने ही वर्ष *इंडियन ओपिनियन*के सम्पादक रहे। दक्षिण आफ्रिकासे लौटनेके बाद कुछ दिन भारत और इंग्लैंडमें रहे तथा स्वराज्य आन्दोलनमें सहायता दी।

६. ट्रान्सवाल *क्रिटिक*।

और भी

चूँकि ये लोग पत्नियों या स्त्री-रिश्तेदारोंके बिना राज्यमें आते हैं नतीजा साफ है। इनका धर्म सब स्त्रियोंको आत्मारहित और ईसाइयोंको स्वाभाविक शिकार मानना सिखाता है।

ये वक्तव्य हम जिसे उचित और न्यायसंगत बयान मानते हैं उससे मेल नहीं खाते। जिस तरहके आरोप हमने उद्धृत किये हैं उनका प्रतिवाद करनेका कष्ट उठाना अनावश्यक है। तो फिर, जैसा कि हम कह चुके हैं, श्री लवडे कथनीयको न कहने और अकथनीयको कहनेके अपराधी हुए हैं। और व्यक्तिगत दुर्गुणोंका असम्बद्ध विषय छेड़कर असली मुद्देसे लोगोंका ध्यान बँटानेका प्रयत्न करना उनके लिए शोभास्पद न था।

अब रही अरब व्यापारियों द्वारा सालमें ४०पौंडसे ज्यादा खर्च न करनेकी बात। यह कहना गलत है कि भारतीय व्यापारी सालमें ४ पौंडसे ज्यादा खर्च नहीं करता। अगर श्री लवडेके कथनानुसार, उसके पास पाँच सहायक हों जैसे कि बहुधा होते ही हैं और प्रत्येकको २४ पौंड सालाना दिया जाता हो तो यह आरम्भिक खर्च ही १२० पौंड हो गया। उसका अपना व्यापारका खर्च व्यक्तिगत खर्च भाड़ा और कर इसके अलावा है। किसी भी हालतमें अनुभवके आधारपर हम यह अपेक्षा नहीं करते कि श्री लवडे श्री गांधीकी चुनौती स्वीकार करेंगे।

ट्रान्सवालमें वर्तमान भारतीयोंकी संख्याके बारेमें और इस कथनके विषयमें कि उपनिवेशमें उनका आना लगातार जारी है हम एक अन्य लेखमें[1] अपने विचार व्यक्त कर चुके हैं। हमें सिर्फ इतना ही कहनेकी जरूरत है कि मुख्य परवाना-सचिवके प्रमाण हमारे पास मौजूद हैं और उनके अनुसार श्री लवडेके तथ्य गलत हैं। *प्रिटोरियामें* वस्तु-भण्डारोंकी संख्याका जिक्र करते हुए श्री लवडेने यह कहकर अत्यन्त असावधानी दिखाई है कि उनकी संख्या बहुत बढ़ गई है। सच बात यह है कि *प्रिटोरियामें* युद्धके समयसे भारतीय वस्तु-भण्डारोंकी संख्या लगभग ? भी नहीं घटी है जब कि गोरोंके भण्डारोंकी संख्या इतनी ही बढ़ी है। बस्तीकी बात बिलकुल जुदा है और झूठा डर पैदा करनेके उद्देश्यसे उसका यहाँ जबरदस्ती घसीट लाना उचित नहीं था। तो फिर, अगर श्री लवडे अपने ही शहरके बारेमें गलत जानकारी रखते हैं तो उनसे ट्रान्सवालके अन्य शहरों दक्षिण आफ्रिकाके अन्य उपनिवेशों और स्वयं भारतके बारेमें सच्ची स्थितिकी जानकारी रखनेकी अपेक्षा कैसे की जा सकती है? भारतीयोंपर असत्यका जो आरोप लगाया गया है उसपर एक दूसरे लेखमें विचार करनेका हमारा इरादा है। हम यह बतानेका भी प्रयत्न करेंगे कि जो व्यक्ति इस प्रकारके विषयमें अपना मत देनेके पूर्णत योग्य हैं वे बहुत भिन्न विचार रखते हैं और हम सब उचित सम्मानके साथ निवेदन करते हैं कि श्री लवडे उसके योग्य नहीं हैं।

श्री लवडेने कहा था कि भारतमें सरकारी वकीलको कैदियोंपर फिरसे मुकदमा चलानेके फैसलोंको रद करने और मामलोंको ऊँची अदालतोंमें ले जानेके कतिपय अधिकार प्राप्त हैं क्योंकि भारतमें झूठी गवाही देना उचित बात मानी जाती है। झूठी गवाहीका प्रश्न तो दूर रहा श्री लवडेको यह जानकर आश्चर्य होगा कि भारतमें सरकारी वकीलको ट्रान्सवालके महान्यायवादीकी अपेक्षा ज्यादा अधिकार प्राप्त नहीं हैं और वास्तवमें उसके अधिकार इतने व्यापक हैं ही नहीं।

परन्तु अबतक श्री लवडेने अपनी जानकारीपर विचार नहीं किया है क्योंकि उन्होंने इस मुख्य तथ्यका जिक्र ही नहीं किया कि इन सरकारी वकीलोंमें से बहुतसे भारतीय रहे हैं और हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण और अर्थगर्भित बात है जो छोड़ दी गई है।

१ देखिए "एक स्पष्टीकरण" दिसम्बर २४, १९०४ के पूर्व।

८

अब कुछ भारतीयोंके मताधिकारके विषयमें। यह बात सत्य है कि उन्हें एक बहुत निश्चित मताधिकार प्राप्त है। भारतके प्रायः प्रत्येक महत्त्वके कस्बेमें नगरपालिका या स्थानीय-निकाय मौजूद है। उसका चुनाव अंशतः या पूर्णतः करदाता करते हैं जिनमें बहुमत भारतीयोंका है। इसलिए, वहाँ आरम्भ ही नगरपालिका-मताधिकारसे होता है। फिर विभिन्न प्रदेशोंकी धारा सभाओंके कुछ सदस्योंका चुनाव निगमोंके सदस्य करते हैं और ये निगम-सदस्य स्वयं करदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रीतिसे चुने जाते हैं। इस तरह वहाँ एक अप्रत्यक्ष राजनीतिक मताधिकार भी है। अतः "भारतीय मताधिकार" शब्दोंके प्रयोगमें हम अपने अधिकारोंकी मर्यादाके भीतर ही हैं। इसलिए सदाके समान श्री लवडेका यह कहना भी गलत ही है कि भारतमें "किसी तरहकी प्रातिनिधिक संस्थाएँ हैं ही नहीं और सब उपस्थित लोगोंको मालूम है कि भारतीय सैनिक सत्ता द्वारा शासित हैं एवं इसमें भारतीयोंके धर्म और जातिप्रथा सहायक हैं। यहाँ भारतीयों और गोरोंके बीच कोई सामाजिक व्यवहार नहीं है यह कहते हुए भी लवडे उन विशाल स्वागत-समारोहोंको भूल जाते हैं जो वाइसराय और सरकारकी ओरसे किये जाते हैं और जिनमें समाजके दोनों पक्ष आपसमें मिलते-जुलते हैं। और कूच-बिहारके[1] राजा द्वारा आयोजित सहनृत्यों (बॉल डान्स) जैसे समारोहोंकी स्मृति भी उन्हें नहीं रहती जिनमें गोरे और भारतीय दोनों बराबरीकी हैसियतसे शामिल होते हैं। परन्तु ये सब बातें यहाँ अप्रासंगिक हैं क्योंकि दक्षिण आफ्रिकाका भारतीय समाज गोरोंके साथ सामाजिक व्यवहार कतई नहीं चाहता और न उसने कभी इसकी माँग ही की है। वह मानता है कि अनेक कारणोंसे यह अनावश्यक और अनुचित है।

अफसरोंके भोजनालयोंमें तो भारतीयोंका सत्कार होता ही है। सम्राटके निजी मित्र और अंगरक्षक कर्नल सर प्रतापसिंहका उदाहरण इसका प्रमाण है। और, निस्सन्देह, गोरे सैनिक ऊँची श्रेणीके भारतीय अफसरोंको सलाम भी करते हैं।

भारतीयों और गोरोंके सम्बन्धसे वर्णसंकर जातिके उत्पन्न होनेका प्रश्न भी स्पष्ट कारणोंसे सभामें पेश किया गया था। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि जिसे भारतीय जीवन और भारतीय रीति-रिवाजोंकी जानकारी न्यूनतम भी है वह व्यक्ति भी इस प्रकारका तर्क पेश करनेका कभी स्वप्न तक न देखता। अतएव हम इस विषयको तूल न देंगे।

तथापि श्री लवडेने सर मंचरजी भेरवानजी भावनगरीका जिस तिरस्कारपूर्ण ढंगसे जिक्र किया है उसके बारेमें हमें एक बात कहनी है।

श्री लवडेने कहा

इंग्लैंडके लोग अपने-आपको इतना भूल गये हैं कि उन्होंने एक काले आदमीको ब्रिटिश संसदका सदस्य चुन लिया है। इस देशके निवासी ऐसा कदापि न करेंगे। वे अपने रंगको इस हदतक नहीं भूलेंगे।

परन्तु ऐसे अभद्र कथनका कोई क्या उत्तर दे सकता है? हम समझते हैं कि जिस निर्वाचकगणने स्वर्गीय लॉर्ड सैलिसबरी द्वारा मखौल उड़ानेपर भी दादाभाई नौरोजीको संसदका सदस्य चुना था उन्होंने लगभग ४ करोड़ ब्रिटिश जनताके संचित राजनीति-ज्ञानका उचित परिचय दिया था। हमें केवल एक और गलतीका खण्डन करना है। श्री मीम्मनने कहा था कि जोहानिसबर्गमें भारतीय घरोंमें मेज-कुर्सियाँ बनाते और उन्हें गोरे कारीगरोंकी स्पर्धामें खुले बाजारमें बेचते हैं। मुँहफट भाषामें कहें तो यह असत्य है। जोहानिसबर्गमें इस पैमानेपर काम करनेवाला कोई भारतीय कारीगर नहीं है। निश्चय ही ऐसे वक्तव्यकी बेहूदगी स्वतः ही काफी स्पष्ट है।

१. बंगालकी एक भूतपूर्व देशी रियासत।

इस वक्तव्यसे हमें उस व्यापारीकी कहानी याद आती है जिसने एक दिन अपने गस्ती गुमास्तेसे कहा था : काम लाओ हो सके तो ईमानदारीसे लाओ मगर काम लाओ। मालूम होता है कि पॉचिफस्ट्रूमकी सभाके वक्ताओंके मनमें ऐसी ही कल्पना प्रबल थी। मानो उन्होंने एक-दूसरेसे कहा था : जोरदार भारतीय-विरोधी भावना पैदा करो हो सके तो ईमानदारीसे पैदा करो मगर पैदा करो।"

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-१-१९०५

२७९ श्री क्लाइनेनबर्ग और श्री अब्दुल गनी

हमने अपने प्रतिष्ठित सहयोगी जोहानिसबर्ग स्टारके स्तम्भोंको सावधानीके साथ देखा है परन्तु उसमें हमें अभीतक यह दिखाई नहीं दिया कि श्री टी० क्लाइनेनबर्गने भारतीय संघके अध्यक्षकी चुनौती स्वीकार की हो। श्री गनीने अपने विरोधीको मौका दिया है कि वे भारतीयोंकी आम सभामें कही गई बातोंका खण्डन करें। अगर श्री क्लाइनेनबर्ग इस मौकेका लाभ उठाना चाहते है, तो हमें इसकी जानकारी प्राप्त करके खुशी होगी। हमें यह प्रतीत होता है कि श्री क्लाइनेनबर्ग इस मामलेको जहाँका तहाँ छोड़ देनेसे सिर्फ श्री अब्दुल गनी और साधारण जनताके प्रति ही नहीं बल्कि स्वयं अपने प्रति भी अन्याय करेंगे। हम यह जानते हैं कि श्री क्लाइनेनबर्ग कितने इज्जतदार व्यक्ति हैं। अतः हमें यह विश्वास है कि उनका श्री गनीकी चुनौतीकी उपेक्षा करनेका कोई इरादा नहीं है। हमें कोई सन्देह नहीं है कि अगर श्री क्लाइनेनबर्ग यह देखते हैं कि श्री गनीके तथ्योंका प्रतिवाद करनेके प्रयत्नमें वे एक गम्भीर गलती कर गये हैं तो उनमें श्री गनीके दिये हुए आँकड़ोंको सही मानने और अपने वक्तव्यको वापस लेनेका नैतिक साहस अवश्य होगा। स्वयं श्री गनीने खुले तौरसे जाहिर कर दिया है कि अगर उनका दोष पाया जायेगा तो वे खुशी और पूरी माफी माँगनेको तैयार हैं। ऐसी स्थितिमें हमें कोई कारण दिखलाई नहीं पड़ता कि जो बात एक-दूसरे पक्ष द्वारा उपस्थित तथ्योंके खण्डन और समर्थनके बाद इतनी सरलताके साथ तय की जा सकती है उसका यथासम्भव शीघ्रसे-शीघ्र कोई अन्तिम फैसला क्यों न हो जाये।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-१-१९०५

२८० पॉचिफस्ट्रूमका ओछापन

पॉचिफस्ट्रूमके व्यापारी जिनका उस स्थानसे केवल एक क्षुद्र और अस्थायी सम्बन्ध है या जो उधर सर्वत्र भारतीय-विरोधी पूर्वग्रह प्रदर्शित हैं या आवेदित किए जा रहे हैं। पहले वे ऐसे काम करते हैं जिनके लिए वे अपने अपेक्षाकृत सुखद अवस्थामें पूरी तरह लज्जित हुए होंगे। उस सम्माननीय समाचारपत्रसे हम सूचना दी है कि पॉचिफस्ट्रूम स्थानमें किसी दुर्भावनाके बिना भारतीय व्यापारियोंकी आज-कलकी जानकारियाँ वापस ले ली हैं। हम उसका उदाहरण हमने कभी और कहीं भी नहीं सुना है। हमें बताया गया है कि ये छोटे-छोटे नगर जो हमारे उपर्युक्त नगरके भाग्यके स्थानिक पुरोधा या आगरके मालिक हुए गए हैं संसार प्रसिद्ध पौर्ड नगरनिगमोंसे प्रतिनिधि हैं। अगर इन नगरनिगमोंके प्रधान अधिकारी इस नक्शेका सुरीलापूर्ण और असामाजिक कार्रवाईपर अपनी नाखुशीकी मुहर लगा दें तो हमें बहुत आश्चर्य होगा।

हम आशा करते हैं कि एजेंट और प्रधान कार्यालयोंके प्रबन्धक दोनों इन पंक्तियोंको देखेंगे और हम भारतीय व्यापारियोंको भी जोरदार सलाह देते हैं कि वे प्रधान कार्यालयोंको अपने आवेदन भेजें। इस विषयमें पॉचेफस्ट्रूमके लोगोंकी जो नीति बनती जा रही है वह नितान्त अविदित है। अब यह देखना शेष है कि ट्रान्सवालके अन्य भागोंमें उसका समर्थन कहाँतक किया जाता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-१-१९०५

२८१ प्लेग

ईस्ट लंदनसे खबर आई है कि वहाँ दो गोरोंको प्लेग हो गया है। ऋतु गर्म और वर्षाकी है इसलिए यह प्लेग फैलनेका वक्त है। हमारा एक संवाददाता जो लिखता है उसके अनुसार हम लोग अभी जागृत नहीं हुए। डॉ. म्यूरिसनकी हमदर्दी पूरी है। व हम लोगोंको सहायता देना चाहते हैं। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि उनके द्वारा दिये गये अवसरका लाभ लें। केवल स्वार्थमें अथवा आलस्यमें पड़े रहकर हमें जो करना चाहिए वह न करेंगे तो हमें भय है कि भविष्यमें पछतानेका समय आयेगा। पहलेकी तरह एक समिति नियुक्त करके घरोंमें जाँच करनेकी और जहाँ गन्दगी हो वहाँसे उसे हटानेका प्रयत्न करनेकी पूरी आवश्यकता है। और हमें आशा है कि अगुआ लोग इस दिशामें तुरन्त कदम उठायेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ७-१-१९०५

२८२ डर्बनमें सार्वजनिक पुस्तकालयका उद्घाटन

नीचे दी हुई रिपोर्ट गांधीजीके उस भाषणकी है, जो उन्होंने [illegible] समाज संस्थापक स्वर्गीय श्री [illegible]की स्मृतिमें स्थापित पुस्तकालयका उद्घाटन करते हुए दिया था।

[डर्बन
जनवरी १, १९०५]

उन्होंने अपने भाषणमें पुस्तकालयकी स्थापना करनेवालोंको कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि डर्बन जैसे बड़े शहरमें, जहाँ भारतीयोंकी भारी आबादी है, एक अच्छे पुस्तकालयकी निस्सन्देह ही जरूरत है। और इसे पूरा करनेके लिए कुछ समय पहले डर्बनके अग्रगण्य व्यापारियों और नागरिकोंने प्रयत्न करके हीरक-जयन्तीकी यादगारमें उसी नामका एक पुस्तकालय खोला था। किन्तु बादमें पर्याप्त सार-सँभाल और दिलचस्पीके अभावमें वह बंद हो गया। उन्होंने आशा प्रकट की कि इस पुस्तकालयकी हालत वैसी नहीं होगी बल्कि दिनपर-दिन अच्छी होगी

१. [illegible] – चिकित्सा अधिकारी।

२. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५०। हीरक-जयन्ती पुस्तकालयका साज-सामान और पुस्तकें नये पुस्तकालयको दे दी गईं।

और इसके संस्थापक आज सरीखी उमंग सदा बनाये रखेंगे और पुस्तकालयको स्थायी बनानेका प्रयत्न करते रहेंगे।

इसके बाद पुस्तकें कौन-सी रखी जायें और वाचनका समय कौन-सा तय किया जाये — इस बारेमें श्री गांधीने अनेक महत्त्वके सुझाव दिये। उन्होंने रविवारके दिन विशेष रूपसे पुस्तकालयमें आकर मूक अभिन्न — पुस्तकों — के बीचमें बैठकर उनसे लाभान्वित होनेका आग्रह भी किया।

फिर उन्होंने उपस्थित सज्जनोंसे हमारे *इंडियन ओपिनियन*के बारेमें दो शब्द कहकर भाषण समाप्त किया और पुस्तकालयका उद्घाटन सम्पन्न हुआ।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-१-१९०५

२८३. पत्र : गो० कृ० गोखलेको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़ रिसिक और एंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जनवरी १३, १९०५

सेवामें
माननीय प्रो० गोखले
पूना

प्रिय प्रोफेसर गोखले,

इंडियन ओपिनियन निकल रहा है, यह आप जानते हैं। अब यह एक ऐसा कार्यक्षेत्र बनता जा रहा है जिसमें मैं अपने विचारसे आपकी सक्रिय सहानुभूतिके लिए औचित्यपूर्वक प्रार्थना कर सकता हूँ। मैं आपको सब-कुछ साफ-साफ लिखना चाहता हूँ क्योंकि आप मुझे इतनी अच्छी तरह जानते हैं कि गलतफहमी नहीं हो सकती। जब मैंने देखा कि श्री मदनजीत बिना आर्थिक सहायताके पत्रको और नहीं चला सकते और चूँकि मैं जानता था कि वे पूर्णरूपेण देशभक्तिकी भावनासे प्रेरित हैं मैंने अपनी बचतका अधिकांश उन्हें सौंप दिया। किन्तु यह काफी नहीं हुआ अतः तीन महीने पहले मैंने सारी जिम्मेवारी और व्यवस्था ले ली। अब भी श्री मदनजीत नाममात्र मालिक और प्रकाशक हैं क्योंकि मेरा विश्वास है कि उन्होंने समाजके लिए बहुत-कुछ किया है। फिलहाल मेरा अपना दफ्तर *इंडियन ओपिनियन*के काममें लगा है और मुझपर लगभग १५ पौंडकी जिम्मेवारी आ चुकी है। कुछ अंग्रेज मित्रोंके सामने जो मुझे घनिष्ठ रूपसे जानते हैं मैंने संलग्न पत्रमें वर्णित योजना रखी। उन्होंने विचारको उठा लिया और इस समय उसपर पूरी तरह अमल किया जा रहा है। यद्यपि इसमें फर्ग्युसन कॉलेज पूनाके संस्थापकोंके आत्मत्यागके मुकाबिलेका आत्मत्याग दिखायी नहीं पड़ता फिर भी मैं कह सकता हूँ कि यह उसका बुरा अनुकरण नहीं है। अंग्रेज मित्रोंको इस निर्भयतासे सामने आते देखना मेरे लिए एक बड़ी ही खुशीकी बात हुई है। वे साहित्यिक नहीं हैं किन्तु खरे, ईमानदार और स्वतन्त्र विचारके लोग हैं। इनमेंसे हरएकका — अपना काम या धन्धा था और वह ठीक तरह चल रहा

था। फिर भी उनमें से किसीने केवल निर्वाह-खर्च लेकर, कार्यकर्ताकी तरह सामने आनेमें तनिक-सा भी आगा-पीछा नहीं किया — जिसका अर्थ यह है कि सुदूर भविष्यमें लाभ होनेकी आशासे तीन पौंड प्रतिमास उन्होंने अभी लेना स्वीकार किया है।

यदि मुझे आमदनी होती रही तो मेरा यह भी इरादा है कि एक ऐसी पाठशाला खोलूँ जो दक्षिण आफ्रिकामें किसीसे कम न हो और जो मुख्यतया भारतीय बच्चोंके और फिर दूसरे बच्चोंके शिक्षणके लिए हो। ये सब बच्चे पाठशालाके अहातेमें बने छात्रावासमें रहेंगे। इसके लिए भी स्वेच्छासे सामने आनेवाले दो कार्यकर्ताओंकी जरूरत है। यहाँ एक अथवा दो अंग्रेज पुरुषों और स्त्रियोंको इस काममें अपना जीवन खपानेको प्रेरित किया जा सकेगा। किन्तु भारतीय शिक्षकोंकी आवश्यकता अनिवार्य है। क्या आप ऐसे किन्हीं दो स्नातकोंको प्रेरित कर सकेंगे जिनमें पढ़ानेकी योग्यता हो जिनका चरित्र निष्कलंक हो और जो केवल निर्वाह-खर्चपर काम करनेको तैयार हो जायें? जो आना चाहें वे पहले दर्जेके खाते-पीते व्यक्ति होने चाहिए। मुझे कमसे-कम दो या तीन व्यक्ति चाहिए। किन्तु ज्यादाकी गुंजाइश भी निकाली जा सकती है। जब पाठशाला जमने लगेगी तब स्वच्छताके आधारपर कहींमें चिकित्साके लिए एक आरोग्य भवन जोड़नेका इरादा है। किन्तु मेरा तात्कालिक उद्देश्य *इंडियन ओपिनियन*को लेकर है। मैंने उसके बारेमें जो कहा है यदि आप उस सबको ठीक समझें तो कृपया सम्पादकके नाम प्रकाशनके लिए एक उत्साहवर्धक पत्र भेजें और यदि कुछ समय निकाल सकें तो उसके लिए कभी-कभी छोटा ही सही लेख भेजते रहें। मैं ऐसे अवैतनिक अथवा वैतनिक संवाददाताओंके लिए भी चिन्तित हूँ जो अंग्रेजी गुजराती हिन्दी और तमिलमें साप्ताहिक टिप्पणियाँ दें। यदि यह महँगा हो जाता है तो मुझे कदाचित् केवल अंग्रेजी टिप्पणियोंसे संतुष्ट होना पड़े — उनका अनुवाद तीनों भारतीय भाषाओंमें किया जा सकेगा। क्या आप ऐसा या ऐसे कोई संवाददाता सुझा सकेंगे? भारतीय प्रश्नको लेकर आपकी तरफ क्या कुछ किया जा रहा है — साप्ताहिक टिप्पणियोंमें समाचार-पत्रोंसे तत्सम्बन्धी विज्ञप्तियोंके अंश लेकर, इसका अन्दाज देना चाहिए और उनमें ऐसी बातें होनी चाहिए, जो दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको दिलचस्प लग सकें। पत्रमें लिखे गये विषयके हितमें यदि आवश्यक जान पड़े तो आप अपनी मर्जीके मुताबिक पत्रकी बातें पूरी या अंशतः जाहिर कर सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ होंगे।

आपका विश्वस्त

मो० क० गांधी

१ संलग्न

दफ्तरी अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४१ ४) से।

१ यह उपलब्ध नहीं है।

यह खयाल आम तौरपर फैला दिखाई पड़ता है कि सत्यपरायणता — सत्यकी अनन्त खोजकी बाह्य अभिव्यक्ति — एक ऐसा सद्गुण है जो भारतीयोंके स्वभावमें पाया ही नहीं जाता। इस मान्यतामें मतभेदकी सम्भावनाके लिए कोई गुंजाइश ही नहीं। भ्रान्तिकी सम्भावनाके लिए कोई अवकाश नहीं। बस भारतीयको एकदम ठग बदमाश झूठा आवारा — सारांश यह कि ऐसा मनुष्य ठहरा दिया जाता है *जो इन्सानके प्रत्येक लिहाजसे रहित है।*

इस देशमें जो भारतीय आये हैं उनके बीच कोई फर्क नहीं किया जाता। सब आँख मूँदकर "कुली या अरब" की कोटिमें रख दिये जाते हैं और उनपर एक समान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष झूठा होनेका कलंक लगा दिया जाता है। यह भुला दिया जाता है कि दक्षिण आफ्रिकामें सामान्यतः भारतीयोंके दो मुख्य वर्ग हैं — एक तो गिरमिटिया मजदूरोंका और दूसरा व्यापारियोंका। गिरमिटिया भारतीयोंमें लगभग आधे नीची जातियोंके लोग हैं। वे भारतमें अपने अभ्यस्त वातावरण और अपने निवास-स्थानके नैतिक प्रतिबन्धोंसे जुदा कर दिये गये हैं। फलतः भारतमें *उन्होंने अपने लिए चरित्रका जो मानदण्ड स्थिर कर रखा था उससे उनका पतन हो जाना* ठीक वैसे ही सम्भव है जैसे कि इसी प्रकारकी परिस्थितियोंमें पड़े किन्हीं भी दूसरे लोगोंका। इस सम्बन्धमें एक बहु-प्रचारित पुस्तिकाके[1] निम्नलिखित अंश उद्धृत कर देना ज्यादा अच्छा होगा

> इस उपनिवेशमें मैं जिससे भी मिला हूँ हरएकने भारतीयोंकी असत्यवादिताकी बात कही है। कुछ हदतक मैं इस आरोपको स्वीकार भी करता हूँ। परन्तु अगर मैं इस आपत्तिका उत्तर यह कहकर दूँ कि दूसरे वर्ग भी खास तौरसे इन अर्थमें भारतीयोंकी हालतोंमें रखे जानेपर, ज्यादा अच्छे नहीं ठहरते तो यह मेरे लिए बड़े अल्प सन्तोषकी बात होगी। फिर भी अन्देशा है कि मुझे उस तरहके तर्कका सहारा लेना ही होगा। मैं चाहूँगा तो बहुत कि वे ऐसे न हों परन्तु यह सिद्ध करनेमें अपनी पूरी असमर्थता कबूल करता हूँ कि वे मनुष्य नहीं मनुष्यसे कुछ ज्यादा हैं। वे मुश्किलोंकी मजदूरीपर नेटाल आये हैं (मेरा मतलब सिर्फ गिरमिटिया भारतीयोंसे है)। वे अपने-आपको एक विचित्र स्थिति और प्रतिकूल वातावरणमें पाते हैं। *जिस क्षण वे भारतसे रवाना होते* हैं उसी क्षणसे अगर वे उपनिवेशमें बस जाते हैं तो सारे जीवन उन्हें बिना किसी *नैतिक शिक्षाके रहना पड़ता है। हिन्दू हों या मुसलमान उन्हें नाम-लायक कोई नैतिक* या धार्मिक शिक्षा बिलकुल ही नहीं दी जाती। और वे खुद इतने पढ़े-लिखे होते नहीं कि दूसरोंकी सहायताके बिना स्वयं शिक्षा प्राप्त कर लें। ऐसी हालतमें वे झूठ बोलनेके छोटेसे-छोटे प्रलोभनके भी शिकार हो सकते हैं। होते-होते उन्हें झूठ बोलनेकी लत पड़ जाती है बीमारी हो जाती है। वे बिना किसी कारणके बिना किसी फायदेकी आशाके, झूठ बोलने लगते हैं। सचमुच तो वे जानते ही नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। वे जिन्दगीकी एक ऐसी मंजिलपर पहुँच जाते हैं जहाँ कि उनकी नैतिक शक्तियाँ उपेक्षाके कारण बिलकुल मन्द पड़ जाती हैं तब क्या उन लोगोंपर दया करनेकी अपेक्षा

१ "कुली मिशन" दिसम्बर १८९४, संलग्न पत्र १, पृष्ठ १४२-४६ ।

उनका तिरस्कार करना उचित है? क्या उनके साथ दयाके अयोग्य बदमाशों जैसा बरताव किया जायेगा या उन्हें ऐसा असहाय प्राणी माना जायेगा जिन्हें हमदर्दीकी बुरी तरहसे जरूरत है? क्या कोई ऐसा वर्ग देखनेमें आता है, जो इसी तरहकी परिस्थितियोंमें उनके समान ही व्यवहार नहीं करेगा?[1]

जहाँतक भारतीय व्यापारियोंका सम्बन्ध है हम दावेके साथ कहते हैं कि उनमें किसी भी दूसरी जातिके किसी भी व्यापारीसे ज्यादा झूठ बोलनेकी वृत्ति नहीं है। शायद दूसरे व्यापारी लोगोंसे उनमें झूठ बोलनेकी वृत्ति कम ही है। कारण यह है कि वे उतनी विलासी आदतोंके लोग नहीं हैं जितने कि उनके अधिक जटिल सभ्यतावाले प्रतिस्पर्धी। इसलिए पेटके हितके लिए झूठ बोलनेकी प्रेरणा उन्हें इतनी ज्यादा नहीं होती।

और यहाँ हम बेधड़क कह देना चाहते हैं कि कम संस्कारी अंग्रेजोंकी एक दुर्भाग्यपूर्ण विशेषता यह है कि जब वे किसी ऐसी वस्तुके सम्पर्कमें आते हैं, जो उनके लिए अपरिचित हो और जिसके वे अभ्यस्त न हों तब वे उसकी प्रकृतिकी छानबीन नहीं करते। परन्तु उसे जीवनके प्रति अपने दृष्टिकोणसे भिन्न चीज मानकर ठुकरा देते हैं और जितनी भी बुराइयोंकी कल्पना कर सकते हैं उन सबको उसमें आरोपित कर देते हैं।

हम समझते हैं कि इस प्रसंगमें यह जान लेना फायदेमन्द होगा कि कुछ प्रतिष्ठित अंग्रेजोंने भारतीयोंकी सत्यपरायणताके बारेमें सार्वजनिक रूपसे क्या कहा है।

भारतीय जीवनका अच्छा-खासा अनुभव रखनेवाले एक अंग्रेज सर जॉर्ज बर्डवुडका कथन है:

> नैतिक सत्यनिष्ठा बम्बईके (ऊँचे) सेठिया वर्गका उतना ही बड़ा गुण है, जितना कि स्वयं इयूरोनिक[2] जातिका। संक्षेपमें भारतके लोग किसी असली अर्थमें हमसे ओछे नहीं हैं। कुछ झूठे — हमारे लिए ही झूठे — मापदण्डोंसे, जिनपर विश्वास करनेका हम ढोंग करते हैं, नापी जानेवाली बातोंमें तो वे हमसे आगे ही हैं।[3]

श्री पिनकॉट कहते हैं:

> तमाम सामाजिक बातोंमें अंग्रेज लोग हिन्दुओंके गुरु बननेके प्रयत्न करनेकी अपेक्षा उनके चरणोंके पास बैठने और शिष्य बनकर उनसे शिक्षा लेनेके ही बहुत अधिक योग्य हैं।

और सत्य निस्सन्देह एक सामाजिक सद्गुण है।

एल्फिन्स्टनने कहा है:

> हिन्दुओंमें किसी समुदायके लोग इतने चरित्रहीन नहीं हैं जितने कि हमारे अपने बड़े-बड़े नगरोंके निकृष्ट लोग।

सर जॉन माल्कॉमका कथन है:

> मैंने देखा है कि जहाँ भारतीय हमारी भाषा जानते थे या जहाँ उन्हें किसी कुशल और विश्वस्त व्यक्तिके द्वारा शान्तिपूर्वक बात समझा दी गई वहाँ नतीजेसे

१. देखिए "खुली चिट्ठी" दिसम्बर १८९४, खण्ड १, पृष्ठ १८०—८१।
२. अर्थात्, स्वदेशाभिमान या अन्धा-मुल्क भक्ति।
३. देखिए "खुली चिट्ठी" दिसम्बर १८९४, खण्ड १, पृष्ठ १५८।
४. देखिए "खुली चिट्ठी" दिसम्बर १८९४, खण्ड १, पृष्ठ १५९।

यही सिद्ध हुआ कि पहले जो झूठ बोला गया था उसका कारण भय था या गलत-फहमी। मुझे इससे उलटा अनुभव शायद ही कभी हुआ हो। मेरा यह आशय हरगिज नहीं है कि हमारी भारतीय प्रजा दूसरे राष्ट्रोंकी अपेक्षा जो संसारमें लगभग ऐसा ही स्थान रखते हैं इस दुर्गुणसे अधिक मुक्त है; परन्तु यह तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि उसमें असत्यकी लत दूसरोंसे ज्यादा नहीं है।

सर चार्ल्स ई॰ ईलियट के॰ सी॰ एस॰ आई॰ लेफ्टिनेंट गवर्नर, बंगालने अपनी पुस्तक *दि पीपल ऑफ इंडिया*में लिखा है

> अक्सर कहा जाता है कि भारतवासी सत्यसे बिलकुल परिचित नहीं। मैंने उन्हें ऐसा नहीं पाया। निस्सन्देह अपने निजी गाँवोंके लोकमतसे दूर — अदालतोंमें — रिश्वत देनेपर या मामलेमें कोई दूसरी दिलचस्पी पैदा होनेपर गवाह झूठी गवाहीकी आश्चर्य-जनक उड़ानें भरते हैं और इस तरह अपराधी बनते हैं; परन्तु अपने ही गाँवोंमें अपने ही लोगोंके बीच जब सत्यसे उनको ही हानि पहुँचती हो तब भी मैंने शायद ही किसीको झूठ बोलते देखा है।

प्रोफेसर मैक्समूलरने कहा है कि अंग्रेज व्यापारियोंने उनसे बार-बार कहा है कि

> व्यापारिक प्रतिष्ठा भारतमें दूसरे किसी देशसे ऊँची है और वहाँ शायद ही कभी कोई पावनेकी हुंडी नकारी जाती है।

दूसरी जगह वे कहते हैं

> (कर्नल) स्लीमन बताते हैं कि लोग अपनी पंचायतोंमें स्वभाववश और धार्मिक भावनासे सत्यपर दृढ़ रहते हैं। और, वे कहते हैं मेरे सामने सैकड़ों मामले ऐसे आये जिनमें आदमीकी सम्पत्ति स्वतन्त्रता और जान झूठ बोलनेपर निर्भर थी और उसने झूठ बोलनेसे इनकार कर दिया। क्या कोई इंग्लैंडका न्यायाधीश भी यही बात कह सकता है?

कर्नल स्लीमनके साथ-साथ प्रोफेसर मैक्समूलर बताते हैं कि जो भी व्यक्ति भारतीय ग्राम समाजोंके जीवनसे अनभिज्ञ है, जैसा कि लगभग प्रत्येक अंग्रेज होता है वह भारतीयोंके सामाजिक और आचार-सम्बन्धी पहलुओंपर कोई भी मत देनेके बिलकुल अयोग्य है क्योंकि हिन्दुओंके सब स्वाभाविक सद्गुण उनके ग्राम-जीवनके साथ सम्बद्ध हैं।

हम समझते हैं कि हम ऐसे लोगोंके काफी उद्धरण दे चुके जो अपने अनुभवके आधारपर सही राय देने और इस आरोपकी पूरी झुठाई सिद्ध करनेमें समर्थ हैं कि सभी भारतीयोंमें आम तौरसे सत्यका अभाव है। जहाँ-कहीं भी सत्यपर दृढ़ रहनेमें कोई चूक हुई है उसका अक्सर यही कारण रहा है कि भारतीयोंको नैतिक नियन्त्रणके सब सूत्रोंसे दूर कर दिया गया। सर जॉर्ज कैम्पबेलका कथन तो यहाँतक बताया गया है कि हमारे अधिकारमें कोई प्रान्त जितने लम्बे समयतक रहता है झूठी गवाही उतनी ही आम और गम्भीर बन जाती है।

हम [illegible] हालकी सार्वजनिक सभाका थोड़ा-सा उल्लेख करके इसे समाप्त करेंगे। श्री लवडेने पूर्वीय छल-कपट असत्य और चालबाजीके बारेमें बहुत-कुछ कहा है। उन्होंने यह भी कहा है कि लार्ड मेकॉले क्लाइवके सम्बन्धमें कहा था इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतके छल-कपटकी [illegible] [illegible] लग गई।

हम नम्रतापूर्वक बताना चाहते हैं कि इतिहास-लेखकोंमें से मेकॉले एक ऐसे इतिहास-लेखक हैं जिनकी पुस्तकें अब अपनी सचाई या घटनाओंके तथ्य-मात्रके यथावत् वर्णनके लिए नहीं पढ़ी जातीं बल्कि लेखककी साहित्यिक शैली और गुणोंके लिए पढ़ी जाती हैं। फिर भी जब मेकॉलेका उद्धरण दिया ही गया है तो हम उनके निम्नलिखित शब्द उद्धृत करनेके लिए कोई क्षमा-याचना नहीं करते। ये शब्द अभी आज और सदा-सर्वदा — जबतक भारत और इंग्लैंड एक साथ बँधे हुए हैं — सार्थक रहेंगे।

> मैं एक सम्पूर्ण समाजको अफीम खिलानेकी अपने हाथोंमें ईश्वर द्वारा सौंपे हुए एक महान् राष्ट्रको सिर्फ इसलिए मदहोश और पंगु बना देनेकी सम्मति कभी न दूँगा कि वह हमारे नियन्त्रणमें रहनेके अधिक उपयुक्त बन जाये। उस सत्ताका क्या मूल्य जिसकी नींव दुर्गुणोंपर, अज्ञानपर और दुःख-दैन्यपर रखी गयी हो; जिसका संरक्षण हम उन अत्यन्त पवित्र कर्तव्योंको भंग करके ही कर सकते हों जिनके लिए हम शासकोंकी हैसियतसे शासितोंके प्रति जिम्मेदार हैं; और जिन कर्तव्योंके रूपमें साधारणसे अधिक राजनीतिक स्वतन्त्रता और बौद्धिक प्रकाशके बदलेके नाते हमें उस जातिका ऋण चुकाना है जो तीन हजार वर्षके निरंकुश शासन और पुरोहितोंकी धूर्ततासे अधःपतित हो गई है? *अगर हम मानव-जातिके किसी अंगको अपने ही बराबर स्वतन्त्रता और सभ्यता प्रदान करनेको तैयार नहीं हैं, तो व्यर्थ ही स्वतन्त्र हैं, व्यर्थ ही सभ्य हैं।*'

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-१-१९०५

२८५ भारतीय कांग्रेस और रूसी जेम्स्त्वो[1]

एक तुलना – १

सर विलियम वेडरबर्न और सर हेनरी कॉटनको लन्दनसे विदाई देनेके पूर्व नवम्बर २०, १९०४ को वहाँके निवासी हमारे भारतीय भाइयों और यूरोपीय मित्रोंने वेस्टमिन्स्टर पैलेस होटलमें एक भोज दिया था और कई विशिष्ट महानुभावोंको निमन्त्रित किया था। उस अवसरपर भाषण भी दिये गये थे। सर हेनरी कॉटनने अपने भाषणमें भारतीय कांग्रेस और रूसी जेम्स्त्वोकी थोड़ी-सी तुलना की थी और उसके बादके जो समाचार प्राप्त हुए हैं उनके आधारपर उनकी तुलना कुछ विचार उत्पन्न करती है।

भारतीय कांग्रेस क्या है, उसकी पैदाइश, उसका कार्य और कार्यों एवं सरकारपर उसका प्रभाव — इन सब बातोंके बारेमें प्रत्येक भारतीयको सामान्य जानकारी है और न हो तो होनी चाहिए। कांग्रेसकी स्थापनाको आज बीस वर्ष हो चुके हैं। उसका पहला अधिवेशन बम्बईमें हुआ था और उस समय हमारे भारतीय नेताओंकी होंस और हिम्मतको देखकर दीर्घदर्शी लोगोंको भरोसा हो गया कि यह संस्था भारतको जीवन देनेमें अवश्य समर्थ होगी। कांग्रेसका यह मूल खास तौर

१. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ १६४।

२. रूसी प्रान्तीय जेम्स्त्वो सभाएँ, जो रूसी जिलोंमें राज-व्यवस्था नियंत्रित करती थीं और बोल्शेविकों द्वारा सन् १९१७ में भंग कर दी गईं।

से ध्यानमें रखनेकी आवश्यकता है। इस प्रकारकी कांग्रेस स्थापित की जानी चाहिए, ऐसी लॉर्ड डफरिनकी मान्यता थी। उन्होंने इस सम्बन्धमें अपने विचार श्री ह्यूमको बताये और श्री ह्यूमको यह बात बहुत पसन्द आई। इसलिए उन्होंने इसपर भारतके प्रसिद्ध पुरुषोंसे परामर्श किया और फलस्वरूप यह कांग्रेस कायम की गई। यह बात याद रखना आवश्यक है क्योंकि कांग्रेसके शत्रु जो अनेक आरोप लगाते हैं उनका निवारण करनेमें यह काम देगी। कांग्रेसकी स्थापना होनेपर विशेषतः तानाशाह, संकुचित-दृष्टि और उद्दण्ड अधिकारी अत्यन्त आतंकित हो गये। क्योंकि वे यह ताड़ गये थे कि कांग्रेस दिनों-दिन जोर पकड़ती जायेगी और लोग उसे माता मानकर उसके अधिवेशनोंमें निडरतासे अपनी भावनाएँ प्रकट करेंगे। और इस कारण तानाशाही और उद्दण्डता वे रोक-टोक न चला पायेंगे। वे घबरा उठे और अपने समाचारपत्रोंके द्वारा अपना रोष प्रकट करने लगे तथा राज्यके प्रति वफादार कांग्रेसपर यह मानकर अमर्यादित अनुचित एवं अशोभनीय आरोप लगाने लगे कि ऐसा करनेसे कांग्रेस देरतक नहीं टिक सकेगी। ये अधिकारी और उनके अखबार नेताओंका पानी पी-पीकर कोसने लगे और यह बतानेका प्रयत्न करने लगे कि यह संस्था राज-द्रोही है और यदि सरकार इसे कुचल न देगी तो राज्यका नुकसान होगा। लॉर्ड रिपनके[1] समयमें दलीलोंका जो वाग्युद्ध हुआ उससे उनकी आँखें खुल गई और यह साबित हो गया कि भारतीय अपना हित समझ सकते हैं यही नहीं अपने लिए प्रामाणिक योजना तैयार कर सकते हैं। कांग्रेसकी स्थापना होनेपर ये विचार पूरी तेजीसे याद आये और सरकारपर भी इसका दबाव पड़ने लगा। दूसरी ओर कांग्रेसमें आपसी फूट पैदा करनेके इरादेसे हिन्दुओं और मुसलमानोंकी बात होने लगी और हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच भी बंगाली पंजाबी और मद्रासी आदिकी फब्तियाँ उड़ाकर फूट डालनेकी भरसक कोशिशें तेजीसे की जाने लगी। थोड़े ही समयमें इन विघ्नसन्तोषियोंने इतनी चीख-पुकार मचाई कि लॉर्ड डफरिन जैसे धीर-गम्भीर राजनयिकपर भी उसका प्रभाव पड़ गया। और, उन्होंने कलकत्तेसे विदा होनेसे पूर्व सेंट एन्ड्रूजके भोजमें भाषण देते हुए कांग्रेसके सम्बन्धमें अपना दुर्भाव प्रकट किया जिस पर आंग्ल-भारतीयोंने तालियाँ बजाकर उन्हें सम्मानित किया। अलबत्ता स्वर्गीय श्री ब्रेडलॉने जब इस सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त किये तब लॉर्ड डफरिनने लिखकर उनका समाधान करना उचित समझा। परन्तु यह बात दूसरी है। हमें तो फिलहाल यही देखना है कि ऐसी-ऐसी मुसीबतोंके होते हुए भी हमारे नेता हिम्मत नहीं हारे, बल्कि मनको स्थिर रखकर अपना कर्तव्य पूरा करते चले गये। परिणामतः आज उन्होंने यह समय ला दिया है कि कांग्रेसकी महत्ता उसके शत्रुओंको भी स्वीकार करनी पड़ती है और बड़े अधिकारियोंको भी उसकी सूचनाओंपर ध्यान देना पड़ता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १४–१–१९०५

१. लॉर्ड रिपन, भारतके वाइसराय, १८८०–८४ और उपनिवेश मंत्री १८९२–९५।

२. चार्ल्स ब्रैडला (१८३३–१८९१), एक सुविख्यात स्वतन्त्र-चेता ब्रिटिश संसद्के सदस्य और मजदूर नायक। भारतीय मामलोंमें वे बहुत दिलचस्पी रखते थे और उन्होंने १८८९ में भारतीय विधान-परिषदोंके सुधारके लिए एक विधेयकका मसविदा बनाया था। वे १८८९ में कांग्रेसके तृतीय अधिवेशन (बम्बई) में शामिल हुए थे। जब गांधीजी इंग्लैंडमें पढ़ रहे थे उन दिनों वे भी ब्रैडलॉकी अन्त्येष्टिमें सम्मिलित हुए थे।

२८६ प्लेग और शराब

पंजाब सरकारकी शराब-सम्बन्धी रिपोर्टमें बताया गया है कि पंजाबमें प्लेगके डरसे लोग बहुत शराब पीने लगे हैं — और आबकारी-करमें बहुत बड़ी वृद्धि हो गई है। उसमें यह भी बताया गया है कि शराब पीनेसे प्लेग नहीं होता यह मानकर जिन-जिन गाँवोंमें लोग शराब पीने लगे हैं उन-उन गाँवोंमें प्लेग और भी अधिक जोरसे फैला है तथा मनुष्योंकी बरबादी अधिक हुई है। किन्तु जिन गाँवोंमें लोग शराब पीते ही नहीं हैं उन गाँवोंमें प्लेगसे बहुत कम हानि हुई है। इस रिपोर्टसे यह तो साबित नहीं होता कि शराब पीनेवालोंको प्लेग नहीं होता परन्तु यह तो साफ-साफ साबित होता है कि शराब पीनेसे पूरा-पूरा नुकसान होता है। जोहानिसबर्गमें डॉ॰ मेकेन्ज़ीका जो प्लेगके अस्पतालके मुख्य अधिकारी थे विचार भी यही है कि शराब पीनेसे प्लेगका जोर बढ़ता है घटता नहीं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १४-१-१९ ५

२८७ जोहानिसबर्गमें प्लेग[1]

जोहानिसबर्ग
जनवरी १८, १९०५

मालूम होता है जोहानिसबर्गमें प्लेग भड़क उठा है। एक फेरीवाले मुसलमानके बेटेको कुछ दिन पहले सोफर स्ट्रीटमें बीमारी हो गई थी। शनिवारको उसके डॉक्टरने अधिकारियोंको सूचना दी। रविवारको उसे प्लेगके अस्पतालमें ले गये और वह जवान आज गुजर गया और दफना दिया गया। उसके शवको धार्मिक रीतिसे क्रिया करनेका मौका नहीं आया क्योंकि वह दफन कर दिया गया था बल्कि अधिकारी लोग उसे खुशीसे दे देते।

यह घटना हमपर दुबारा चुनौती आई है। इसलिए हमारे सब भाई नीचेके नियम याद रखेंगे तो बड़ा काम होगा। नहीं तो बहुत बड़ा नुकसान होगा। इतना ही नहीं बल्कि हमारे खिलाफ अधिक कड़ा कानून बनानेमें यह घटना नजीर दलीलके पेश की जायगी।

१ किसीको यह न समझना चाहिए कि सरकार रोगीको अस्पतालमें ले जाकर दुःख देगी।

२ बुखार या इसकी बीमारी अकस्मात् हो जाये तो तुरन्त सरकारको खबर दी जाये।

३ डॉक्टरकी सलाह तुरन्त ली जाये।

४ डरें भी जरा नहीं और जहाँ हैं वहीं बना रहें।

५ जो व्यक्ति प्लेगके रोगीके सम्पर्कमें आये हों वे छिपें नहीं बल्कि प्रकट हो जायें और अपने कपड़े आदि सफाईके लिए दे दें।

६ अनाज वैसा पकानेकी चीजें गोदामी कोठरी दूकानमें भरी हुई कदापि न रखें।

[1] यह "इंडियन ओपिनियन"के गुजराती विभागमें प्रकाशित किया गया था।

७. दूकानका माल घरमें जरा भी न रखें।

८. घरको बहुत ही साफ रखें।

९. प्रत्येक घरमें या कोठरीमें खुले उजालेका और हवाका आवागमन होना चाहिए।

१ खिड़कियाँ खुली रखकर सोयें।

११ पहनने और सोनेके कपड़े साफ रखे जायें।

१२ आहार हलका और सादा हो।

१३ वासनें बन्द रखनी चाहिए।

१४ पाखानेमें जहाँ बाल्टियाँ रखी जाती हों वहाँपर सदैव सूखी मिट्टी और राख रखी जाये और प्रत्येक व्यक्ति शौचके बाद उसमें से मिट्टी या राख लेकर अच्छी तरहसे मैलेपर डाले ताकि वह ढक जाये और उस पर मक्खी आदि न बैठें।

१५ पाखाने और पेशाबकी जगह बहुत साफ-सुथरी रखी जानी चाहिए।

१६ घरके फर्श और अन्य भागोंको कीटाणुनाशक घोल मिलाकर गरम पानीसे खूब धोया जाये।

१७ जहाँ प्लेगका रोग हुआ हो वहाँका कोई सामान ठीक-ठीक साफ किये बिना अन्यत्र उपयोगमें न लाया जाये।

१८ एक साधारण कोठरीमें दोसे अधिक व्यक्ति न सोयें।

१९ रसोई बनानेकी या भोजन करनेकी जगहोंमें और जहाँ खानेकी चीजें रहती हों वहाँ बिलकुल न सोना चाहिए।

२ घरमें चूहे न आ सकें इस तरह घरमें या दीवारोंमें सीमेंट आदि लगायें। विशेषतः यह सावधानी रखी जाये कि चूहे खानेकी वस्तुओं तक न पहुँचें।

२१ जिनको हमेशा दिन-भर घरमें बैठकर काम करना पड़ता हो उनको स्वच्छ वायुमें जाकर दो-तीन मील तक चलनेका व्यायाम करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २१-१-१९ ५

२८८. पत्र जे० स्टुअर्टको[1]

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़ रिसिक व ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
जनवरी १९, १९०५

श्री जे० स्टुअर्ट
आवासी न्यायाधीश
डर्बन

प्रिय श्री स्टुअर्ट

मैं *इंडियन ओपिनियन* पत्रकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यह अठारह महीनोंसे निकल रहा है। इस अवधिमें मेरा इससे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यह दक्षिण आफ्रिकाके दो महान् समाजोंके बीच दुभाषियेकी तरह काम करता है इसलिए मेरी नम्र सम्मतिमें यह एक मूल्यवान सेवा कर रहा है। उसका उद्देश्य साम्राज्य-भावनाका पोषण है और यद्यपि यह दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंकी शिकायतोंपर जोर देता है और उसे जोर देना भी चाहिए, वह प्रायः भारतीय समाजकी भावनाओंको नरम बनाता है और उसे साफ तौरपर उसकी त्रुटियाँ बतानेमें कभी नहीं चूकता। किन्तु अब अपने नये रूप और नये घरमें यह इससे बहुत अधिकका प्रतीक है। अब यह उस योजनाका प्रतीक है, जिसका संक्षिप्त वर्णन संलग्न है[2] और यह सफल हो गई तो सम्भव है व्यवसायके तरीकोंमें यह क्रान्ति-सूचक हो। कुछ भी हो चार स्वतन्त्र यूरोपीयोंने अपने धन्धे जिनमें वे लगे थे इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए छोड़ दिये हैं और उतने ही भारतीयोंने भी वैसा ही किया है[3] उनकी यह बात आपके मनको भायेगी। किन्तु इन आत्म-त्यागोंके बावजूद योजनाकी सफलताके लिए सार्वजनिक सहयोगपर अवलम्बित रहना पड़ेगा। मुझे लगता है आप कई तरहसे इस प्रयासमें मदद कर सकते हैं। एक तरीका है उसका ग्राहक बन जाना और कभी-कभी नामसे या गुमनाम उसमें लेख लिखना। वार्षिक मूल्य नेटालमें १२ शि० ६ पैं० और नेटालके बाहर १७ शि० है। कार्यालय फीनिक्स नेटालमें स्थित है। यदि आपको *इंडियन ओपिनियनका* उद्देश्य ठीक जान पड़े और यह जिस योजनाका प्रतीक है वह आपको

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ४८९-९०।

२. यह उपलब्ध नहीं है। किन्तु ऐसा मालूम होता है कि यह वही पत्र है जो गांधीजीने जोहानिसबर्गसे २१ जनवरीके आस-पास *इंडियन ओपिनियनके* फीनिक्स स्थानान्तरणके बारेमें लिखा था। गांधीजीने अपने दिसम्बर १, १९०४ तक लगातार मित्रोंको लिखे गये पत्रोंमें जो उल्लेख किया है उससे सिद्ध होता है कि यह सम्भवतः "अपनी बात" शीर्षक *इंडियन ओपिनियनके* स्थानान्तरणकी सूचना या अलगसे मुद्रित पर्चियाँ थीं।

३. उनका संकेत हर्बर्ट किचिन, अल्बर्ट वेस्ट, तथा हेनरी पोलक और भारतीयोंमें छगनलाल गांधी, आनन्दलाल गांधी और मगनलाल गांधीकी ओर इशारा है। छगनलाल और मगनलाल १९०२में गांधीजीके साथ दक्षिण आफ्रिका गये थे।

सहारा देनेके योग्य लगे तो क्या ऊपरकी दो प्रार्थनाओंके सिवा कृपया उत्साह देनेवाला एक पत्र मुझे लिख भेजेंगे जिसे मैं प्रकाशनके लिए सम्पादकोंको दे सकूँ?

आपका विश्वस्त
मो० क० गांधी

पुनश्च : मैं सोचता हूँ आप जब-तब पत्रके लिए अराजनैतिक विषयोंपर लिख सकेंगे।[1]

मो० क० गां०

मूल अंग्रेजीसे अनुवादित : कुमारी केली फैरिंग डर्बनके सौजन्यसे।

२८९. भारतीयोंकी उदारता और उसका परिणाम

पाठक इस अंकके एक अन्य स्तम्भमें पीटरमैरित्सबर्गके मुख्य पुलिस-अधिकारी और पीटरमैरित्सबर्गकी ब्रिटिश भारतीय-समितिका पत्रव्यवहार देखेंगे। यह एक साजसज्जा-युक्त अग्निशामक दल (फायर ब्रिगेड) बनानेकी योजनाको चलानेके लिए समितिके चन्देके बारेमें है। यह पत्रव्यवहार कुछ सप्ताह पहले हुआ था और इससे भारतीय चरित्रके एक ऐसे पहलूपर दिलचस्प प्रकाश पड़ता है जिसकी उपेक्षा अबतक पीटरमैरित्सबर्गके गोरे निवासियोंने सावधानीके साथ की है। आशा है कि इन दो पत्रोंमें जिन तथ्योंका उल्लेख है उनका अन्य समाचारपत्र अधिक व्यापक प्रचार करेंगे क्योंकि यह बहुत वांछनीय है कि हमारे विरोधी पीटरमैरित्सबर्गके ब्रिटिश भारतीय समाजका रुख सही-सही समझ लें।

हमें मालूम हुआ है कि नगरपालिका अग्निशामक दलकी योजनाके लिए आवश्यक आर्थिक सहायता देनेमें असमर्थ रही और, जहाँतक हम जानते हैं इसी कारण यह योजना विफल हो गई।

परन्तु जो बात हम स्पष्ट करना चाहते हैं यह है कि जिस समय कप्तान जोन्सने प्रस्ताव किया और श्री रहमानने उसे स्वीकार किया उस समय अनेक भारतीय व्यापारी और वे भी जो योजनाके कोषमें सबसे ज्यादा चन्दा देते पहलेसे ही आगका बीमा कराये हुए थे।

परिणामको दृष्टिमें रखते हुए हम चाहते हैं कि इस विषयको बहुत सावधानीके साथ समझ लिया जाये क्योंकि इससे पीटरमैरित्सबर्ग "पहरेदार दल" की बदलेकी वृत्तिकी कुछ मनहूस पृष्ठभूमिके सामने यहाँके ब्रिटिश भारतीय समाजके हेतुओंकी निःस्वार्थता अत्यन्त स्पष्ट रूपमें अंकित हो जाती है।

अपने ७ जनवरीके अंकमें हमने पीटरमैरित्सबर्गके एक आग-बीमेके एजेंटकी एक कार्रवाईकी ओर तत्काल ध्यान आकर्षित किया था कि उसने कुछ ब्रिटिश भारतीय व्यापारियोंकी पालिसियोंको जिनके द्वारा उनके स्थानोंका आग-बीमा किया गया था पहले सूचना दिये बिना रद कर दिया। ये पालिसियाँ अभी कई महीनोंतक समाप्त होनेवाली नहीं थीं। मालूम हुआ है कि यह भला आदमी दुनियाकी एक सबसे पुरानी आग-बीमा कम्पनीका प्रतिनिधित्व करता है। कमसे-कम छः बड़े व्यापारियोंपर इसका असर पड़ा है और उनके मकानों-दूकानोंका अब आग-बीमा नहीं

१. यह अंग्रेजीमें हाशियेमें है। शेष पत्र, जो [illegible] व्यक्तियोंको भेजा गया, [illegible] दोनोंके समान ढंगसे लिखा हुआ है।

२९० भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और रूसी ज़ेम्स्त्वो

एक तुलना – २

प्रत्येक चतुर राज्यकर्ता अपनी प्रजाकी सही परिस्थिति एवं उसके सुख-दुःख जाननेके लिए
त्सुक होता है और ऐसे ही चाहे-बहुत अंशमें हमारे माननीय सम्राट एडवर्ड एवं रूसके ज़ार
ी हैं। दोनों सम्राटोंकी ख्वाहिश एक-सी ही है परन्तु उसकी पूर्तिके लिए अलग-अलग किस्मकी
ोशिशें करनी पड़ती हैं। हम लोगोंके सौभाग्यसे भारतीय अधिकारियोंमें रूसी अधिकारियोंके समान
मद नहीं है और उनकी सत्ता भी एक-सी नहीं है। मतलब यह है कि भारतीय अधिकारीको
नुरूप कुछ नियम पालने पड़ते हैं और रूसी अधिकारी जिस हदतक अपने पदका घमंड और
च्छाचार दिखा सकता है उस हदतक भारतमें सम्भव नहीं। सार यह है कि भारतका अधिकारी
ादा करे तो भी प्रजाका उत्पीड़न उस सीमातक नहीं कर सकता जिसतक रूसी अधिकारी
र सकता है। फिर भी रूसी और भारतीय प्रजाके कई कष्ट एक समान ही हैं। यद्यपि रूसके
ष्ट भारी हैं और उससे तुलना करनेपर भारतके कष्ट उतने कठिन नहीं हैं फिर भी भारतीय
जाको अपने दुःख साधारण प्रतीत होते हैं ऐसी बात नहीं है। और यह आसानीसे समझने
ोग्य बात है। रूस देशमें अधिकारी और प्रजाके बीच चमड़ीके रंगका बोलीका धर्मका अथवा
ात-पाँतका अन्तर नहीं है। भारतमें अधिकारी इनमें से प्रत्येक बातमें जनतासे भिन्न हैं। इसलिए
रायापन (नहीं होना चाहिए फिर भी) प्रतीत होता है और इस वजहसे कष्टोंसे जितना उचित
उससे अधिक खेद स्वभावतः होता है। फिर भी दोनों देशोंमें प्रजा और अधिकारियोंके बीच
समभाव रहता है और वह प्रजाको बहुत अखरता है। जनता यह मानती है कि राजा और
जाका आपसी सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ होना चाहिए, परस्पर विश्वास होना चाहिए, और एक-
सरेके सुख-दुःखमें प्रत्येकको भाग लेना चाहिए तथा प्रेम और ममताका व्यवहार रखना चाहिए
—संक्षेपमें राजा और प्रजाका हित एक ही होना चाहिए और प्रजाके सुखी होनेपर ही राजा
ुखी माना जाना चाहिए। राजा सत्ता धारण करता है किन्तु सत्ताका दुरुपयोग किया जाये
ो राजा एवं प्रजा दोनोंकी हानि होती है इसी कारण चतुर शासक अपनी प्रजाकी स्थिति
ौर उसके सुख-दुःखको जाननेके लिए उत्सुक रहता है।

पुराने राज्य आम तौरसे आजके मुकाबिले बहुत ही छोटे होते थे इसलिए राजा आसानीसे अपनी
रजाकी देख-भाल कर सकता था। परन्तु ज्यों-ज्यों राज्य विशाल बनते गये त्यों-त्यों अधिका-
रियोंकी नियुक्तिकी आवश्यकता बढ़ती गई। फलस्वरूप आज सभ्य संसारमें हर जगह राजा केवल
ामके रह गये हैं और अधिकारी लोग अनिवार्य एवं महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। बिना अधिकारीके राजा
ही हो सकता अधिकारी यह समझते हैं। इसलिए स्वभावतः ही वे अपने महत्त्वमें और रोबदाब
थवा सत्तामें खलल न हो ऐसे उपाय करते रहते हैं। नतीजा यह होता है कि वे अपने कर्तव्यके
ुकाबले स्वार्थका महत्त्व अधिक समझने लगते हैं और प्रजाके सुख-दुःखकी ओर आवश्यक ध्यान
हीं देते। इससे प्रजामें बेचैनी पैदा होती है और प्रजाकी शिकायत सुनने या आलोचना
हनेका धैर्य अधिकारियोंमें न होनेकी वजहसे असन्तोष पैदा हो जाता है। ऐसा होनेपर अधि
ारियोंका घमंड तोड़नेके लिए और अपने स्वत्वोंको सुरक्षित रखनेके लिए प्रजा यथाशक्ति
रिश्रम करती है और योजनाएँ बनाती है। जहाँपर राज्य-शासन अच्छा होता है वहाँपर
ेसे उदाहरण कम दीखते हैं और जहाँपर ढीला होता है वहाँपर अधिक। रूस और भारतकी

राजनीतिमें बड़ा अन्तर है; दोनों देशोंके लोगोंकी स्थितियों और भावनाओंमें अन्तर है; परन्तु यदि कहीं संस्थामें थोड़े-से किन्तु विशेष सत्ताधारी हैं। और इससे जनता और उनके बीचका सम्बन्ध सौभाग्यजनक नहीं है। भारत और रूसकी परिस्थितियाँ भिन्न हैं फिर भी लोगोंकी भावनाएँ और माँगें कई बातोंमें एक ही हैं यह बात ऊपर जो-कुछ कहा गया है, उससे स्पष्ट हो गई होगी। कारण है, दोनों देशोंमें राजा और प्रजाके बीच अयोग्य और थोड़ा सम्बन्ध। जिस प्रकार कारण समान है उसी प्रकार परिणाम भी समान है।

कुदरत एक आश्चर्य है। गत नवम्बर मासमें बम्बईमें भारतीय कांग्रेसमें चर्चा-योग्य विषयों पर खुला विचार हुआ। उसी समय रूसमें वहाँकी स्थानिक संस्थाओंने जो जेम्स्त्वो कही जाती हैं अपनी भावनाओं और माँगोंकी घोषणा की। कांग्रेसमें प्रस्तुत किये जानेवाले प्रस्तावोंपर प्रान्तोंकी स्थानिक सभाओंमें पहलेसे चर्चा की गई थी और बादमें वे मुख्य कमेटीकी ओरसे घोषित किये गये थे। जेम्स्त्वोके प्रस्ताव सेंट पीटर्सबर्गमें प्रकाशित किये गये थे और उनके पक्षमें ३४ में से ३१ स्थानिक जेम्स्त्वो संगठनोंकी सम्मति प्राप्त हुई थी।

(अपूर्ण)[1]

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २१-१-१९०५

२९१. प्लेग[2]

जोहानिसबर्ग,
जनवरी २३, १९०५

मैं पिछले सप्ताह प्लेग फैलनेके समाचार और उसके सम्बन्धमें कुछ नियम लिख चुका हूँ। इस बीच समाचार प्राप्त हुआ है कि डर्बनमें प्लेगकी छः या आठ घटनाएँ हो चुकी हैं। इनमें भारतीय और काफिर ही हैं। यह साफ दीखता है कि हम लोगोंमें प्लेग फैलनेमें देर नहीं लगती। यदि प्लेगने घर कर लिया तो फिर घूमना-फिरना बड़ा कठिन होगा। इसलिए मैं पिछले सप्ताह जो नियम दे चुका हूँ उनके पालनमें किसीको भी चूकना नहीं चाहिए।

जो लड़का प्लेगसे गुजर गया था उसके मामा उसे देखने आये थे। वे डरसे भागकर प्रिटोरिया चले गये। नतीजा यह हुआ कि उनके ऊपर बहुत मुसीबत आई। उनको तथा उनके परिवारको टीके लगाये गये और वे थोड़े दिन पृथक (क्वारंटीन) में भी रखे गये। यदि वे भागते नहीं और अधिकारियोंकी देख-रेखमें यहीं रहे होते तो उनको इतनी तकलीफ न उठानी पड़ती।

इधर मलायी बस्तीकी हालत कितनी ही बातोंमें बहुत बिगड़ गई है। लोग लापरवाह बन गये हैं और कई तो सफाई रखनेकी आवश्यकता नहीं समझते। एक समिति नियुक्त की गई है जो हर रविवारको घरोंकी देखभालके लिए निकलती है। और अब ऐसा विचार किया गया है कि यदि लोग उसकी बात ध्यान न धरें तो अधिकारियोंको सूचित कर दिया जाय। निस्सन्देह ऐसा

१. यह लेखमाला आगे कभी पूरी नहीं की गई।
यह "हमारे संवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें छपा था।
२. देखिए "जोहानिसबर्गमें प्लेग" १८-१-१९०५।

करना अधिक अच्छा है। यदि इस समय हमारी गन्दगी कुछ भी छिपाई जायेगी और बादमें प्लेग फैल जायेगा तो मलायी बस्ती भी भारतीय बस्तीकी तरह मिट जायेगी और हम लोगोंको हाथ मलकर बैठ जाना पड़ेगा। इसलिए इस समय जो लोग मलायीसे निकलना न चाहते हों उनके नाम सूचित करना उनके अपने एवं दूसरोंके निजी लाभके लिए अच्छी दवा पिलानेके समान है।

यहाँके डॉक्टरसे विनती की गई है कि प्लेगके अस्पतालमें किसी भारतीयकी मृत्यु हो तो उसकी खबर हम लोगोंको तुरन्त दी जाये। इस विनतीको उन्होंने स्वीकार किया है। ऐसा करनेका उद्देश्य यह है कि शवके मिल जानेपर उसकी क्रिया धार्मिक रीतिसे की जा सके।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-१-१९०५

२९२ पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय

एक अन्य स्तम्भमें हम अपने पॉचेफस्ट्रूमके संवाददाताका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण वक्तव्य प्रकाशित करते हैं। सम्मेलनमें दो बिलकुल साफ गलतबयानियाँ की गई थीं — एक तो पीटर्सबर्गके बारेमें और दूसरी पॉचेफस्ट्रूमके बारेमें। इन दोनों नगरोंके सम्बन्धमें वक्ताओंने साहसपूर्वक कहा कि भारतीय यूरोपीय व्यापारपर छाये जा रहे हैं और उनकी वर्तमान संख्या युद्धके पहलेकी संख्यासे बहुत ज्यादा है। जहाँतक पीटर्सबर्गका सम्बन्ध है, आस्तिका भण्डाफोड़ हो चुका है। श्री क्लाइनेनबर्गने अबतक साबित नहीं किया कि श्री अमुक अमुकके स्मरणमें[1] प्रकाशित वक्तव्य असत्य है। अब हमें पॉचेफस्ट्रूमसे एक विवरण मिला है और यह देखते हुए कि हमारे संवाददाताने शहरकी सीमामें व्यापार करनेवाले वर्तमान ब्रिटिश भारतीय दूकानदारोंके नाम दिये हैं, हम समझते हैं कि जनताको यह विवरण सन्तोषजनक मान लेना चाहिए। हमारे लिए तो वह सन्तोषजनक है ही। मगर यह सच भी हो कि अब पॉचेफस्ट्रूममें या किसी दूसरी जगहमें भी भारतीय दूकानदारोंकी संख्या पहलेसे अधिक है तो भी इस कारण उनके अधिकारोंकी छानबी क्वापि नहीं की जा सकती। परन्तु चूँकि ऐसे समसनीखेज वक्तव्य दिये गये हैं जिनमें सचाई बिलकुल नहीं है इसलिए जनताके सामने सच्ची बातें पेश करना और भारतीय-विरोधी दलकी अतिशयोक्तियोंसे इस प्रश्नके भारतीय पक्षको हानि पहुँचनेसे बचाना ठीक ही होगा। तथापि इस सारे मामलेका सबसे दुःखजनक भाग यह है कि जो लोग नेता होनेका दावा करते हैं उन्होंने अपने सामने रखे गये मामलोंकी सत्यताकी छानबीन करनेमें भी अपने-आपको नितान्त अयोग्य सिद्ध किया है। साथ ही उन्होंने भारतीय-विरोधी बातोंके ढूँढ़नेकी उत्सुकतामें जो भी कपोल-कल्पना सामने रखी गई वह स्वीकार कर ली है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-१-१९०५

१. देखिए "श्री॰ स्मरणमें" दिसम्बर २४, १९०४ के पूर्व।

२९३. प्लेग

हम बरसात आनेके साथ-साथ प्लेगकी अफवाहें और प्लेगसे दरअसल बीमार होनेकी घटनाएँ भी सुनते हैं। हमें एक बार फिरसे अपने भारतीय मित्रोंका ध्यान डर्बन टाउनके स्वास्थ्य-अधिकारीके उस पत्रकी ओर आकर्षित करना होगा जो हमने इन स्तम्भोंमें प्रकाशित किया था। हमें यह खयाल होता है कि यह अवसर भारतीयोंके लिए अपनी क्षमता दिखानेका और नेताओंके लिए आगे आने और साधारण लोगोंका सफाईके नियमोंका सख्तीसे पालन करनेके लिए कहनेका है। प्लेग निस्सन्देह गरीबी और गन्दगीकी उपज है। हम जानते हैं कि ज्यादा गरीब वर्गके भारतीय सभी जरूरी कार्रवाइयाँ नहीं कर सकते। उदाहरणके लिए, वे सम्भवतः स्वास्थ्यप्रद स्थानोंमें अच्छे हवादार कमरों और मकानोंमें नहीं रह सकते। परन्तु इन सब बातोंके लिए गुंजाइश छोड़नेके बाद भी बहुत-सी बातें ऐसी रहती हैं जो समुचित सहयोग और नरमीसे समझाने बुझानेसे करायी जा सकती हैं। और हमें आशा है कि समाज अवसरके अनुकूल व्यवहार और जरूरी एहतियाती कार्रवाई करेगा। साथ ही हम अपने भारतीय स्वास्थ्य-अधिकारीका ध्यान भी वेस्टर्न वले और ईस्टर्न वले[1] की हालतकी ओर खींचना चाहेंगे। इन दोनों स्थानोंकी ओर तुरन्त ध्यान देना जरूरी है। भारतीय इनकी अवस्था नहीं सुधार सकते। परिषदको चाहिए कि वह साहसपूर्ण कदम उठाये और या तो इन दोनों स्थानोंको हमेशाके लिए सुधार दे या मिटा दे। कुछ भी हो, ये बस्तियाँ दक्षिण आफ्रिकाके इस प्रमुख नगरपर आक्षेप-रूप हैं। जोहानिसबर्गसे प्राप्त अशान्तिकारी समाचारोंसे भी हमें सावधान हो जाना चाहिए और हमें कोई शक नहीं कि वहाँके भारतीय अपना कर्तव्य पूरा करेंगे और पिछले वर्ष जो प्लेग फैला था उसकी पुनरावृत्तिको रोकनेमें अधिकारियोंको हर सम्भव तरीकेसे मदद देंगे। हमें बताया गया है कि मलायी बस्तीकी हालतकी ओर अधिकारियोंका ध्यान कई बार खींचा जा चुका है। यद्यपि इस बस्तीको इसके निवासी बहुत अच्छी हालतमें रखते हैं और मकान अच्छे बने हैं, फिर भी यह तथ्य न भुलाया जाना चाहिए कि भस्मीभूत बस्तीकी लगभग समस्त भारतीय आबादी इस समय इसी बस्तीमें एकत्र है और अगर वहाँ प्लेग फैलता है तो जोहानिसबर्गकी नगर-परिषद अपने आपको दोषमुक्त नहीं कर सकेगी। अबतक वह भारतीय बस्तीके जल जानेसे बेघरबार हुए लोगोंको स्थायी निवासस्थान देनेके अपने कर्तव्यका पालन करनेमें असफल रही है। अब अगर उसने मलायी बस्तीमें भीड़-भाड़ कम नहीं की तो वह लोक-स्वास्थ्यकी संरक्षिकाकी हैसियतसे अपने कर्तव्यके पालनमें और भी असफल होगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २८-१-१९०५

१. पश्चिमी दलदल और पूर्वी दलदल।

२९४ क्या काफिर महसूस करता है?

जोहानिसबर्गकी नगर-परिषद कुछ दिनोंसे वतनी साइकिलवालोंके प्रश्नपर विचार कर रही है। पिछले सप्ताह निर्माण-समितिने एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी और यह सलाह दी थी कि एक ऐसा उपनियम मंजूर किया जाये जिसके अनुसार साइकिलका परवाना रखनेवाला और नगरपालिका-क्षेत्रमें साइकिलकी सवारी करनेवाला प्रत्येक वतनी अपनी बाईं भुजामें एक नम्बर पड़ा हुआ बिल्ला लगाये जो साफ तौरसे दिखाई दे। यह बिल्ला उसे परवानेके साथ दिया जाये। जोहानिसबर्ग जैसे एक सर्वसमाजी नगरमें परिषदका भारी बहुमतसे ऐसा कड़ा उपनियम पास करना दक्षिण आफ्रिकामें रंग-विद्वेषकी भावना प्रबल होनेपर भी हमारे लिए दुःखमय आश्चर्यकी बात है। श्री हैगरमानने उपनियमका जोरदार समर्थन किया और श्री मैकी निवेन और श्री फिबनने हलका-सा विरोध। श्री हैगरमानने इस विधानपर उपनियमको उचित बताया कि उन्हें वतनी और गोरे साइकिल सवारोंमें भेद करना ही होगा। उन्होंने कहा — "बिल्ला सामनेकी ओर होना चाहिए। वतनियों और गोरोंके बीच पहचानके लिए चिह्न रखना बिलकुल जरूरी है। स्वभावतः इन शब्दोंसे कुछ हँसी भी हुई क्योंकि श्री हैगरमानके विपरीत दूसरे सदस्य वतनियोंको बिल्लेके बिना ही गोरोंसे अलग पहचान लेनेमें पूर्णतः समर्थ थे। हमारे खयालसे श्री हैगरमान इस कहावतकी सचाई सिद्ध करते हैं कि जिन्होंने अत्याचार सहे हैं वे उनसे बचनेके बाद अत्याचार-पीड़ितोंके प्रति सहानुभूति रखनेके बजाय दूसरोंको उत्पीड़न करनेमें प्रसन्नता अनुभव करते हैं। श्री हैगरमान रूसमें अपने सहधर्मियोंपर होनेवाले अत्याचारोंका विरोध करनेमें कभी हिचकिचाहट नहीं दिखाते। फिर क्या वतनी उनसे यह सवाल नहीं पूछ सकते क्या हमारे कोई भावनाएँ नहीं हैं? फिर भी हमें तो श्री हैगरमानके विचारोंकी अपेक्षा नगर-परिषदके बहुसंख्यक सदस्योंके द्वारा प्रकट किये गये भावोंकी अधिक चिन्ता है। नगर-परिषदके प्रति पूरा आदर रखते हुए हम कहते हैं कि परिषदकी बैठकमें जो भाषण किये गये उनकी ध्वनि अत्यन्त निन्द्य थी। उससे श्री निवेन फिबन रॉकी और पिमला असमय और भी अधिक सम्माननीय सिद्ध होता है। इनमें अपना विश्वास व्यक्त करनेका साहस था और उन्होंने अनावश्यक और दुराग्रहपूर्ण अपमानसे वतनियोंकी रक्षा करनेमें आगा-पीछा नहीं किया। आम तौरपर हमारी इच्छा ऐसी बातोंकी मीमांसा करनेकी नहीं रहती जो इस पत्रके क्षेत्रके अन्दर खास तौरसे नहीं आतीं। परन्तु परिषदकी कार्रवाई हमारे खयालसे इतनी अपमानजनक है कि अगर हम दक्षिण आफ्रिकाके समाजके हितमें अपना विनम्र विरोध व्यक्त न करें तो हम अपने कर्तव्यसे च्युत ही जायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४-२-१९०५

२९५ हुंडामलका मामला

हुंडामलका मामला अब आखिरी मंजिलमें आ गया या यों कहें कि नये दौरकी पहली मंजिलमें पहुँच गया है। अब हुंडामल व्यक्ति दृष्टिसे ओझल हो गया है परन्तु भारतीय व्यापारी-समाज उसके स्थानमें आ गया है। *हुंडामल बनाम सम्राट-सरकार*के परीक्षात्मक मुकदमेमें सर्वोच्च न्यायालयने आखिरी निर्णय दे दिया है और डर्बन नगर-परिषदकी क्षणिक जीत हो गई है।

हमने "क्षणिक" शब्दका प्रयोग जानबूझकर किया है। हम सोच ही नहीं सकते कि पक्षपात और अन्यायकी विजय भी कभी स्थायी हो सकती है। ऐसा निष्कर्ष इतिहास और दर्शनकी तमाम शिक्षाओंके विपरीत होगा।

क्या कोई भी व्यक्ति ऐसा है जो यह कहनेका साहस करे कि डर्बन नगर-परिषदने इस तमाम मनुष्योंको न्याय प्रदान करनेकी जरा भी इच्छा या प्रवृत्ति दिखाई है? उसने उनका सर्वनाश करनेके प्रत्येक साधनका प्रयोग किया है क्योंकि परवाना-अधिकारीके शब्दोंमें "वेस्ट स्ट्रीटमें एशियाइयोंको और परवाने नहीं देने चाहिए।" सरकारी तौरपर तो उसके इन शब्दोंपर नापसन्दगी जाहिर की गई है, परन्तु हमारे पास यह विश्वास करनेका पर्याप्तसे ज्यादा कारण मौजूद है कि खानगी तौरपर नगर-परिषदके सदस्योंने इसका समर्थन किया है।

कभी-कभी ऐसे मौके आते हैं जब जो बात हृदयके निकटतम होती है, वह ओठोंके भी निकटतम होती है। और हमें भय है कि यद्यपि नगर-परिषदने सरकारी तौरपर खण्डन किया है फिर भी परवाना-अधिकारीका मत ही उसके मालिकोंका जोरदार मत है। और शायद अनजाने ही यह रहस्य प्रकट कर दिया गया है। तब सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयका असर यह है कि वेस्ट स्ट्रीटको गोरे व्यापारियोंके लिए बिलकुल सुरक्षित कर दिया जाय और उस [illegible] बाजारमें व्यापार करनेके लिए परवानेकी "अभी कोई भारतीय न दे।

परन्तु हम पूछते हैं — क्या इस मामलेको यहींका-यहीं पड़ा रहने दिया जा सकता है? क्या ऐसी हालत जारी रहने देनेकी हिम्मत भी आ सकती है? हम समझते हैं — हरगिज नहीं। इस समय हम मामलेके कानूनी गुण-दोषकी चर्चा नहीं करते। परन्तु सर्वोच्च न्यायालयका यह निर्णय विचित्र है। यही उसमें भी कुछ अधिक मालूम होता है कि व्यापारका परवाना रखनेवाले किसी भारतीयका परवाना केवल उसी शहरकी सीमामें एक स्थानसे दूसरेमें बदले जानेसे ही रद किया जा सकता है। कुछ भी हो हमें लगता है कि मामला और ऊँचे न्यायालयमें ले जानेके लिए काफी महत्त्वपूर्ण है। सम्भवतः दूसरी दलीलें भी पेश की जा सकती हैं जिनके फलस्वरूप वर्तमान परिस्थितियोंमें कुछ परिवर्तन होगा।

जिस समय सर्वोच्च न्यायालयके सामने यह मामला रखा जा रहा था उसी समय नगर-परिषदके भवनमें एक असाधारण प्रस्ताव विचार किया जा रहा था। डर्बन निगमने वेस्ट स्ट्रीटमें हुंडामल-दुकान नीलामका आयोजन किया है और ऐसा दिखलाई पड़ता है कि यह गोरोंकी [illegible] उसकी ओर [illegible] सफल हो गई है। इन [illegible] तरीकोंसे कुछ प्रगट करनेकी कोशिश की गई है परन्तु अभी प्रतिफल पर्याप्त नहीं हुआ है क्योंकि [illegible] और भी ज्यादा [illegible] भावना उत्पन्न होगी जो अनिच्छा होनेपर भी न्याय करनेपर [illegible] और परिस्थितियोंको अपनी आवश्यकताओंके अनुरूप बनानेके लिए बाध्य करेगा।

हमने जिस अपान्तर प्रसंगका उल्लेख किया है वह था वेस्ट स्ट्रीटके मकानके बारेमें परवाना-अधिकारीके परवाना न देनेके निर्णयके विरुद्ध नगर-परिषदमें श्री हुंडामलकी अपील। श्री बर्नेके सामयिक ऐतराजके बावजूद नगर-परिषदने परवाना-अधिकारीका परवाना न देनेका निर्णय बहाल रखा है और यद्यपि उसने परवाना-अधिकारीके दिये हुए कारणसे सार्वजनिक रूपमें असहमति प्रकट की है फिर भी उसने उस अस्वीकृत कारणके बदले अपना निजी कारण कोई नहीं दिया है।

परन्तु इस सुनवाईके सिलसिलेमें एक और आश्चर्यजनक प्रश्न उठता है। महापौरने यह असाधारण मत प्रकट किया है कि परवाना-अधिकारीका विवेक-प्रयोगका अधिकार निरंकुश है, ऐसा नहीं कि कानूनी मर्यादाओंके भीतर ही अमलमें लाया जाये जैसी कि श्री हुंडामलके वकीलने दलील दी है। इस फैसलेके कानूनी पहलूकी समीक्षा करना हमारे क्षेत्रके बाहर नहीं है। हम इसे सिर्फ दर्ज कर सकते हैं। मालूम पड़ता है कि यह संघर्ष अति भीषण होगा। दरअसल भारतीय समाजको या तो लड़ना होगा या मृत्युके मुखमें जाना पड़ेगा। अब यह सिर्फ श्री हुंडामलके सर्वनाशका प्रश्न नहीं रहा है। ऐसा परिणाम शोचनीय तो होगा परन्तु अपेक्षाकृत महत्त्वहीन होगा। इस मामलेका सम्बन्ध एक व्यक्तिके विशेषाधिकारोंके संरक्षणकी अपेक्षा अधिक बड़ी चीजसे है। सारे भारतीय व्यापारी समाजके सम्मुख विनाशका खतरा आ उपस्थित हुआ है। श्री हुंडामलके साथ जो-कुछ हुआ है वह प्रत्येक अन्य भारतीय व्यापारीके साथ हो सकता है। जबतक कानूनकी यह नई व्याख्या कायम है तबतक किसी भी भारतीयके व्यापारका मूल्य उसकी एक दिनकी आमदनीके बराबर भी नहीं है।

सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयका शुद्ध परिणाम यह है — सभी जानते हैं कि गोरे लोग भारतीय व्यापारियोंको एक-एक करके मिटा देना चाहते हैं। फैसला यह दिया गया है कि परवाने केवल खास मकानोंके लिए दिये जाते हैं और वे बदले नहीं जा सकते। फलतः मकान-मालिक अपने किरायेदारसे मनमाना किराया वसूल कर सकता है और व्यापारी पूरी तरहसे असहाय रहता है। वह या तो अनिवार्य रूपसे मकान-मालिकके हाथों नष्ट हो जाये या दूसरा मकान खोजे। अगर वह दूसरा उपाय पसन्द करता है तो उसका परवाना रद हो जाता है और उसका व्यापार करनेका विशेषाधिकार छिन जाता है। वह फिर परवाना नहीं ले सकता जो अब नया परवाना माना जायेगा। क्योंकि ठीक जैसे एशियाई लोगोंको वेस्ट स्ट्रीटमें व्यापार करनेके नये परवाने देना (गैर-सरकारी तौरपर) अनावश्यक माना जा सकता है, उसी तरह शहरके हरएक व्यापारी मुहल्लेमें भी उसके लिए रोक हो सकती है। और वह दीपककी लौमें पतिंगेके समान पूर्णतः नष्ट हो जायेगा।

यह विषय व्यक्तिगत रूपसे विचार करनेका नहीं बल्कि दक्षिण आफ्रिका-भरके सम्पूर्ण भारतीय समाजके मिलकर विचार करनेका है। युद्धका क्षेत्र अस्थायी तौरपर ट्रान्सवालसे हटकर नेटाल चला गया है। जो बात अर्मनमें लागू होती है वह सारे उपनिवेशमें लागू होती है और आज जो नेटालमें लागू है वह असम्भव नहीं सारे दक्षिण आफ्रिकामें लागू हो जाये। बुरे उदाहरणका अनुसरण शीघ्रतासे किया जाता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११–२–१९०५

२९६ क्या यह अपेक्षित है?

पिछले अंकोंमें हमने पचिफस्ट्रूमके कारनामोंकी चर्चाको काफी जगह दी है। ऐसा हमने पचिफस्ट्रूमके विचार-केन्द्र होनेके नाते उतना नहीं किया जितना इस नाते किया है कि हम उस नगरको दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय समाजके प्रति जो दुर्भावनापूर्ण रुख है उसका बहुत-कुछ नमूना मानते हैं। जब "स्वच्छ न्याय" (लिंच-लॉ) के नामसे विदित अवैध विधानके अन्ध भक्त कानूनको हाथमें लेकर अमरिकाकी जनताके कुछ कम अभागे हब्शियोंकी बलि चढ़ा देते हैं तब अंग्रेज उनके प्रति निरपेक्ष घृणाका भाव प्रकट किया करते हैं। प्रत्यक्ष है कि पॉचिफस्ट्रूम इसी तरह ब्रिटिश सभ्यताकी सीमारेखाका उल्लंघन करनेके लिए प्रयत्नशील है क्योंकि नगरमें एक मसजिदके निर्माणके विषयमें हमने यह पढ़ा है: "यदि भारतीयोंने जनताकी भावनाओंकी उपेक्षा करना जारी रखा तो सम्भवत इस मामलेको लेकर बखेड़ा खड़ा हो जायगा जैसा कि लोग इस बारेमें उपनिवेशके साथ सम्मतियाँ प्रकट कर चुके हैं। न्यायोचित क्या है यह एक बात है और किस बातपर अमल आ जायगा यह दूसरी बात है।" ये शब्द हमारे सहयोगी पॉचेफ्स्ट्रूम बजटके हैं। इस वक्तव्यके दो अर्थ नहीं हो सकते। इसका सीधा अर्थ यहाँतक कानून जानेकी बाधा देता है उससे आगे बढ़नेकी प्रेरणा बना है। हम खयाल करते हैं कि यह मान लिया गया है कि पॉचिफस्ट्रूम नगर-परिषदको मसजिदका निर्माण रोकनेका कानूनी अधिकार नहीं है। तब क्या हमारा सहयोगी कानूनके अलावा दूसरे तरीकोंसे मसजिदका निर्माण रोकनेकी धृष्टतापूर्ण सलाह देना चाहता है? यह महान् ब्रिटिश जातिकी न्यायनिष्ठाकी परम्पराके अनुरूप नहीं है। किन्तु हम निराश होकर ऐसा कुछ सोच रहे हैं कि कहीं दक्षिण आफ्रिकियोंने ब्रिटिश राष्ट्रीय सम्मानके मूलभूत सिद्धान्तोंको तिलांजलि तो नहीं दे दी?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-२-१ ५

२९७ पीटर्सबर्गके व्यापारी

हम अन्यत्र पीटर्सबर्गके संवाददाता द्वारा प्राप्त एक समाचार अन्य स्तम्भमें प्रकाशित कर रहे हैं। उसके साथ जल्दी दूकानें बन्द करनेके सम्बन्धमें मालिक-संघ और स्थानिक ब्रिटिश भारतीय समितिके बीचका पत्र-व्यवहार भी है। इस कागजातको पढ़नेसे साफ मालूम हो जायेगा कि इस विषयमें पीटर्सबर्गमें कड़ी तीव्र भावना व्याप्त है। हमने बार-बार बताया है कि एशियाइयों और यूरोपीयोंके बीच खास तौरसे व्यापारिक मामलोंमें ईर्ष्या-प्रसूत भेद-भाव किया जाता है। हमने बार-बार यह भी बताया है कि गोरे लोग भारतीय समाजपर किस तरह उत्तरदायित्व और उसका हिस्सा तो डालनेके लिए प्रयत्नशील रहे हैं परन्तु उन्हें कोई विशेषाधिकार देनेसे सावधानीके साथ बच रहे हैं। अब संयोगसे मालकी स्वभावतः कुछ ऐसा बना है कि वंचित लोग विशेषाधिकाररहित बचन और समान उत्तरदायित्व या भार वहनको बराबर नहीं मानते। और ऐसी स्थितिमें अगर भारतीय समाजने उन गोरे निवासियों द्वारा भी उन्हें समान अवसर देनेसे हठपूर्वक इनकार करते हैं लाद हुए उत्तरदायित्वको स्वीकार करना बार-बार अस्वीकार

किया है तो इसपर आश्चर्य नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि पीटर्सबर्गके भारतीय व्यापारियोंने तबतक बराबर अपने गोरे व्यापारी भाइयोंकी इच्छाओंकी पूर्ति की है जबतक कि उन्होंने उनपर विशेष निर्योग्यताएँ नहीं लादीं। परन्तु जब गोरे व्यापारियोंने उनका बहिष्कार करने और उनको शहरसे निकालनेके तरीके शुरू किये तब भारतीय व्यापारी यह महसूस करने लगे कि उन्हें अपने-आपको शेष समाजसे पृथक समझना चाहिए। इसका परिणाम उस पत्रव्यवहारमें मिलेगा जिसका उल्लेख हमने किया है। अगर गोरे व्यापारी चाहते हैं कि भारतीय व्यापारी उनकी स्थापित की हुई रीति-नीतिका पालन करें तो उन्हें अपना व्यवहारका तरीका बदलना होगा। दोनों ही ओरसे आदान प्रदान होना आवश्यक है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११–२–१९०५

२९८ रंगदार लोगोंका मताधिकार

इस अंकमें एक अन्य स्तम्भमें ४ तारीखके जोहानिसबर्ग स्टारमें प्रकाशित एक लम्बी खबरके कुछ अंश दिये जा रहे हैं। यह खबर ट्रान्सवालमें हुई रंगदार लोगोंकी एक सभाके बारेमें है। इस सभामें एक प्रस्ताव पेश किया गया था जिसमें सम्राट-सरकारसे प्रार्थना की गई थी कि जो संविधान अब बनाया जा रहा है उसका निर्माण करते समय ट्रान्सवालमें सम्राटकी रंगदार प्रजाके न्यायपूर्ण अधिकारों और विशेषाधिकारोंको न तो भुलाया जाये और न उनमें काट छाँट की जाये। हम सिर्फ इतना कह सकते हैं कि राजनीतिक विस्मरणसे आत्मरक्षाके प्रयत्नमें रंगदार समाजके साथ हमारी पूरी-पूरी सहानुभूति है। एक समय था जब कि स्वर्गीय श्री रोड्सने अपना यह प्रसिद्ध मत प्रकट किया था कि जैम्बेजीके दक्षिणमें प्रत्येक सभ्य व्यक्तिको मताधिकार प्रदान किया जाना चाहिए। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह आदर्श इधर कुछ दिनोंसे शीघ्रताके साथ बदनाम होता जा रहा है। आजकल आदर्श सम्मुख रखनेका दोषी बनना रिवाजके विरुद्ध है और कोई रखे तो उसके अनुसार आचरणकी बेधर्मी दिखाना अपराध है। हमने अभी हालमें ही देखा है कि किस प्रकार मजदूरी-आयोगने एक सरकारी रिपोर्ट निकाली है और यह सिफारिश की है कि जिन रंगदार लोगोंको मताधिकार दिया जा चुका है उनका यह अधिकार केवल राज्यके चुनावोंके लिए कायम रहना चाहिए परन्तु जब संघीय संसदके चुनावोंका मौका आये तब यह उनसे वापस ले लिया जाना चाहिए। इसके स्पष्ट अन्यायपर ओर देनेकी जरूरत नहीं है। यह रंगदार लोगोंके प्रति दक्षिण आफ्रिकी गोरे निवासियों द्वारा इख्तियार किये हुए आम रुखसे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। दुर्भाग्यवश रंग-विद्वेषके मामलोंमें लोगोंसे तर्कके द्वारा सत्य स्वीकार करवाना लगभग असम्भव है। जहाँ अन्य पूर्वग्रहका शासन होता है वहाँ न्याय नहीं होता। हमें भय है कि ट्रान्सवालके रंगदार समाजको अपने उन अधिकारोंको जिन्हें हम न्यायोचित समझते हैं स्वीकार करानेके लिए अभी बहुत दिन प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। हमें भरोसा है कि वे इस अविचारपूर्ण व्यवहारके प्रति अपना विरोध और अपनी माँगोंमें निहित न्याय्यता पर आग्रह जारी रखेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११–२–१९०५

२९९. काफिरोंपर आक्रमण

काफिर गोरोंकी तरह बाइसिकलपर बैठते हैं, यह जोहानिसबर्गकी नगर-परिषदसे देखा नहीं गया और इसलिए उसने अपनी पिछली बैठकमें प्रस्ताव किया है कि जिस काफिरको बाइसिकल रखनेका अनुमति-पत्र मिला है या मिले वह बाइसिकलपर शहरमें घूमते समय साफ दिखाई दे इस तरह बायें हाथपर एक नम्बर-युक्त बिल्ला लगाये।

आजकल ट्रान्सवालका राजकाज ऐसा चल रहा है कि इस प्रस्तावसे हमें आश्चर्य नहीं होता। आज हम इस विषयपर इसलिए लिखते हैं कि अपने भारतीय भाइयोंको यह याद दिला दें (यद्यपि याद दिलाना नितान्त आवश्यक नहीं जान पड़ता) कि आजकलका जोहानिसबर्ग लड़ाईके पहलेके जोहानिसबर्गसे बहुत भिन्न है। जिनके हाथमें इस समय सत्ता है उनमें से अधिकतर लोग लड़ाईका आरम्भ होनेसे पहले इतर गोरे (एटलांडर) कहलाते थे और इनसाफकी माँगके सम्बन्धमें बहुत प्रयत्नशील रहा करते थे। ये दूसरे देशोंके निवासी ब्रिटिश प्रजा बनकर ब्रिटिशोंके योग्य अधिकार प्राप्त करनेकी भरसक कोशिश करते थे और अंग्रेज रूसी जर्मन आदि सबके-सब एक हो गये थे। उस समय बोअर राज्य था और ये लोग यह चिल्ला-चिल्लाकर कान फाड़े डालते थे कि इन्साफ नहीं किया जाता। भारतीयोंके विरुद्ध बोअर-सरकारको उत्तेजित करनेवाले ये ही ब्रिटिश प्रजाजन थे। और फिर किस प्रकार बोअर-सरकार भारतीयोंके विरुद्ध कानून बना सकती है यह बतानेवाले भी ये ही ब्रिटिश प्रजाजन थे। अन्तमें लॉर्ड मिलनर और श्री चेम्बरलेनके द्वारा लड़ाई करानेवाले भी ये ब्रिटिश प्रजाजन ही थे। लड़ाईके बाद खरा इन्साफ होगा और रंग-भेद या जातिभेद कानूनसे हटा दिये जायेंगे — लड़ाईके समय इस प्रकार ढोल पीटनेवाले भी ये ही ब्रिटिश प्रजाजन थे। यह था नाटकका एक अंक।

दूसरे अंकमें सब कुछ भुला दिया गया और ये ही ब्रिटिश प्रजाजन स्वार्थसाधनमें लीन हो गये। फिर आया तीसरा अंक। उसमें भारतीयोंके प्रति सरेआम दुश्मनी बताई जाने लगी और इस समय चालू चौथे अंकमें अत्याचारपूर्ण कानून बनाये जाने लगे हैं एवं अमलमें वह भी पूरी सख्तीके साथ आने लगे हैं।

यह सारा प्रताप इसी ब्रिटिश प्रजाका समझिए। यह आक्रमण जिस प्रकार भारतीयोंपर हुआ है उसी प्रकार काफिरों और रंगदार लोगोंपर नियमित रूपसे होगा और इसलिए यदि एकपर आक्रमण हो तो दूसरेको सचेत हो जाना चाहिए कि देर-सबेर वह भी इस फन्देमें अवश्य ही फँसेगा। अर्थात् आज काफिरोंके लिए इस किस्मका कानून बनाया गया है यदि कल वह भारतीयोंपर लागू हो जाये तो वह अधिक अचम्भेकी बात न होगी।

खूबी यह है कि ऐसे निर्दयतापूर्ण कानूनकी बात प्रस्तुत करनेवाली अन्य देशीय प्रजा अभी-अभी कुछ-ही समय पहले कथित ब्रिटिश प्रजा बनी है। श्री लैंगरमान[1] इस प्रस्तावपर बहुत बोले और जोशमें काफिरोंका रंगतक भूल गये जिसपर सभामें खूब हँसी हुई। उन्होंने कहा बिल्ला सामने लगाना चाहिए ताकि काफिर गोरा न समझ लिया जाये। ऐसी विचारपूर्ण बात भी लैंगरमान ही कह सकते हैं और हमारी ओरसे उन्हें बधाई है कि उन्होंने यह सूचना दी कि बिल्ला सामने न होगा तो कभी काफिर भूलमें गोरा समझ लिया जायेगा। किन्तु श्री

१. नगर-परिषदके सदस्य।

लैंगरमान कौन है इस सम्बन्धमें थोड़ी जानकारी हो तो उनके कथनका यथोचित वजन हो सकता है। श्री लैंगरमानको अपने रूसी भाइयोंके लिए बड़ी हमदर्दी है इसलिए वे रूसी राज्यपर बहुत टीका करते हैं। प्राकृतिक नियम है कि जो व्यक्ति अन्याय और अत्याचारके बीच पला हो वह जब मुक्त होता है तब अपने दुःखके दिन भूलकर पाई हुई मुक्तिका अनुचित लाभ लेता है और निर्दय बन जाता है इसलिए पोलैंडसे आये हुए और इन दिनों ब्रिटिश प्रजा बने हुए यहूदियोंकी उच्छृंखल बढ़ जाये तो यह आश्चर्यकी बात नहीं है।

इस प्रस्तावपर जो चर्चाएँ की गई उनमें सन्तोषप्रद बात यह प्रतीत होती है कि सर्वश्री मेकी निवेन विलन रोंकी और विम यह नहीं भूले कि काफिर भी मनुष्य है और उनका व्यर्थमें अपमान न किया जाये यह विरोध उन्होंने किया। परन्तु नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज कोई सुनता नहीं। ऐसे ही वे भी कामयाब नहीं हो सके। फिर भी उन्होंने जनसाधारणकी विचार धाराकी परवा न करके अपने सही और उचित विचार प्रकट किये इसलिए उनको श्रेय मिलना चाहिए।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ११–२–१९०५

३०० केप कालोनीमें कसाईखानोंकी हालत

केप कालोनीके इन्स्पेक्टर कैलने वहाँके कसाईखानोंकी स्थितिपर रिपोर्ट प्रकाशित की है। वह पढ़ने योग्य है। उसने लिखा है कि उसने जिन कसाईखानोंका निरीक्षण किया उनमें से दो-एक बहुत अच्छे पाये गये। मेडलैंडमें मुख्य सड़कपर उसने दीवारके ऊपर खूँटीपर टँगी आँतें और चर्बी देखी। कोठू खाद और सड़न फर्शसे चार फुट ऊँचाईतक दीवारोंपर जम हुए थे। इन जगहोंपर यह रिवाज देखा गया कि सड़न आदिकी तहोंपर ही सफेदी पोत दी जाती है। इसलिए अब दीवारोंपर सफेदी और सड़नकी तहें जमी हुई हैं। इन्स्पेक्टरने काम करते हुए आदमियोंका निरीक्षण किया। वे गन्दे थे। उनके कपड़े बहुत मैले थे उनपर चर्बी जमी हुई थी। ये कपड़े मांससे लगते रहते थे।

हमें यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि यह सब गोरों द्वारा चलाये जानेवाले कसाई-खानोंमें देखा गया है। प्रश्न यह है कि इतने विनौतिक ऐसे अपराध क्योंकर छिपे रहे। ऐसी गन्दगीमें तैयार किये गये मासके कारण कितने आदमी बीमार पड़े होंगे। अगर इस प्रकारकी खराब स्थिति भारतीयोंकी होती तो उनकी क्या दुर्दशा की जाती? और एकदम हल्ला मचा देते कि अपराधियोंको ही नहीं किन्तु सारी भारतीय कौमको निकालकर बाहर करना चाहिए, अथवा उसके ऊपर बहुत सख्ती की जानी चाहिए। लेकिन हमारे सौभाग्यसे यह गन्दगी गोरोंकी दुकानोंमें है। अब देखना यह है कि उसका उपाय किस प्रकार किया जाता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ११–२–१९०५

३०१. कांग्रेस और लॉर्ड कर्ज़न[1]

इस सालके कांग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष सर हेनरी कॉटनने कांग्रेसके कुछ प्रस्ताव माननीय वाइसरायको खुद जाकर देनेकी सूचना दी थी। परन्तु वाइसरायने सर हेनरी कॉटनसे कांग्रेसके अध्यक्षके नाते मिलने और प्रस्तावोंको लेनेसे इनकार कर दिया। फिर भी उन्होंने यह दिखानेके लिए कि वे इस प्रकार सर हेनरी कॉटनका अपमान करना नहीं चाहते, व्यक्तिगत रूपमें मिलना स्वीकार कर लिया। मतलब यह हुआ कि कर्ज़न साहबने कांग्रेसका अपमान करनेमें रत्ती-भर आगा-पीछा नहीं किया। 'इंडिया' समाचारसे यह भी मालूम पड़ता है कि इस प्रकार सर हेनरीसे न मिलनेका हेतु यह था कि यदि एक बार उनसे मिलते तो बादमें अन्य अध्यक्षोंसे भी मिलना होगा। और, ऐसे ही कारणसे पहले भी लॉर्ड लैन्सडाउनने इनकार किया था। तब फिर पिछली परिपाटीको कर्ज़न साहब किस प्रकार तोड़ सकते थे? पुरानी परिपाटी कायम इस प्रकार रिवाजके रास्तेमें करोड़ों मनुष्योंकी भावनाको ठेस पहुँचेगी यह प्रश्न हमारे वाइसराय साहबके मनमें पैदा नहीं हुआ। फिर भी जिस प्रकार कांग्रेसने २० वर्ष निकाले हैं उसी प्रकार अब भी निकालेगी और दिनोंदिन बढ़ती जायगी इसमें शंका नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ११-२-१९०५

३०२. केप टाउनमें नाइयोंके लिए नियम

केप टाउनकी नगरपालिकाने नाइयोंके लिए नियम बनाये हैं। वे *गवर्नमेंट गज़ट*में प्रकाशित किये गये हैं। उनके अनुसार प्रत्येक नाईको दुकान खोलनेका अधिकार है। उनके अनुसार प्रत्येक नाईको अपनी दुकान स्वच्छ रखनी चाहिए। वह जिन कैंचियों उस्तरों आदिको एक ग्राहकके लिए काममें ला चुके उनको साफ किये बिना दूसरोंके लिए काममें न लाये। वह सब औज़ारोंको गरम पानीसे साफ रखे, प्रत्येक ग्राहकके लिए नया अंगोछा बरते और यदि उसने किसी रोगीके बाल काटे हों अथवा दाढ़ी बनाई हो तो उसके काममें लाये गये कुल सामानको कीटाणुनाशक पदार्थसे साफ करके काममें ले। जो नाई ऐसा न करे उसे पाँच पौंड जुर्मानेकी सजा है। इन नियमोंपर अमल ठीक-ठीक किया जा रहा है या नहीं इसका निरीक्षण करनेके लिए अधिकारियोंको छानबीन करनेके हक दिये गये हैं। ये नियम हैं तो बहुत ठीक परन्तु इनको अमलमें लाना बहुत कठिन है। फिर भी इनके होनेसे भारतीयोंपर कुछ दबाव पड़ना सम्भव है। इस नियम बनने पहली ही बार केप टाउनकी नगरपालिकामें पेश हुआ है। हम मानते हैं कि और जगहोंमें भी इसका अमल होनेकी सम्भावना है। इसलिए इसपर से हमारे नाइयोंको सबक ले लेना चाहिए। हमारे भारतीय दुकानोंमें सुधार करना जरूरी है। ऐसा लगता है कि उनमें सफाई और व्यवस्था नहीं रहती। उन्हें स्वच्छ रखनेमें उनका

१. [illegible] १८-२-१९०५।

२. [illegible] १८८८-९।

थोड़ा-सा समय जाता है, बस परन्तु खर्च कुछ नहीं आता। औजार अच्छे रखनेसे उनकी आयु बढ़ती है और अंगोछे आदि स्वच्छ रखनेसे ग्राहकोंकी संख्या। गोरे नाई भी अपने औजार आदि अच्छे रखते हैं। परन्तु हम लोगोंको बुरी बातोंमें उनकी नकल करनेकी आवश्यकता नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-२-१९०५

३०३ "रंगका प्रश्न"

रैंड पायोनियर्स' *रिव्यूमें* उपर्युक्त शीर्षकसे एक सम्पादकीय लेख प्रकाशित हुआ है। उसका एक उद्धरण हम अन्यत्र प्रकाशित कर रहे हैं और यह इसलिए कि हमारे सहयोगीने ठीक-ठिकानेकी और खरी बातें कही हैं। लेख एक ऐसे व्यक्तिका लिखा हुआ है जो — दक्षिण आफ्रिकाके कुछ छद्मवेषी राजनीतिज्ञोंके विपरीत — इस विषयकी चर्चा करते समय परिस्थितियोंका ठीक अनुपात स्मरण रख सकता है। यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यदि दक्षिण आफ्रिका एक ब्रिटिश और एशियाई-विरोधी नीतिपर अपनी मुहर लगा देता है तो उसके परिणाम बहुत गम्भीर हो सकते हैं। परन्तु हम विश्वास नहीं कर सकते कि हमारे राजनीतिज्ञ स्थानिक मामलोंपर विचार करते हुए साम्राज्यिक हितोंको भुला देंगे। एशियाई-विरोधी जिहादको हम स्वयं अपने सहयोगीकी अपेक्षा अधिक महत्त्व नहीं देते क्योंकि वस्तुस्थितिको जरा-सा देख लेनेसे ही किसीको भी पता चल सकता है कि इस प्रकारके आन्दोलनके लिए कितना कम आधार है। सारी बातका आरम्भ व्यापारिक ईर्ष्यासे हुआ है। केवल इस तुच्छ हेतुसे ही भारतीय-विरोधी आन्दोलनको स्फूर्ति मिल रही है और यह उन सबके लिए बिलकुल स्पष्ट है, जो रंग-द्वेषसे अंधे नहीं बन गये हैं। *रिव्यूने* यह कहकर सरल सत्यमात्र व्यक्त किया है

> भारतीय व्यापारियोंको साम्राज्यके किसी भी भागमें व्यापार करनेसे रोकनेके लिए ग्रामवासियोंका सार्वजनिक सभाएँ करनेका गौरवहीन दृश्य बहुत ही बेहूदा और मूर्खतापूर्ण है।

हम जानते हैं कि बॉक्सबर्ग और पॉचिफस्ट्रूमकी ओर लेखकका ध्यान विशेष रूपसे रहा है। बॉक्सबर्ग तो एक ऐसा गाँव है, जो अपनी तुच्छ संकीर्ण रूढ़ियोंके विचारसे ऊपर उठ नहीं सकता। और पॉचिफस्ट्रूम एक छोटा-सा गाँव है जो एशियाइयोंका कट्टर विरोधी बननेपर ही प्रसिद्ध हुआ है। और फिर भी अपेक्षा यह की जाती है कि भारतीयोंको — जिनकी संख्या *रिव्यूके* कथनानुसार, साम्राज्यकी कुल जनसंख्याकी आधी है — तुच्छ प्रान्तीय कस्बोंकी चीख पुकारके कारण ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंसे वंचित कर दिया जायेगा।

माना कि भारतीय व्यापारी यूरोपीयोंसे सस्ते दामोंपर माल बेचते हैं। तो क्या प्रत्येक यूरोपीय व्यापारी भी अपने प्रतिस्पर्धीके साथ ठीक ऐसा ही नहीं करता? क्या सस्ती ही व्यापारका प्राण नहीं है? माना कि भारतीय तेलके दियेकी लौ पर जिन्दगी बसर कर सकते हैं परन्तु क्या कोई भी चिकित्साशास्त्री यह नहीं कहेगा कि यूरोपीयोंको जरूरत ठीक इस बातकी है कि वे अपने आहारको सीधा-सादा बनायें? तो फिर भारतीयोंपर उनके इस सद्गुणका ऐसा आरोप क्यों कि मानो यह कोई अपराध हो? सच बात यह है कि यूरोपीय अपने भारतीय प्रतिस्पर्धियोंसे घृणा करते हैं, क्योंकि उनसे स्वयं ग्राहकोंसे अपने मालकी खूब बढ़ाई-चढ़ाई कीमतें वसूल करनेका मौका नहीं मिलता। अगर एशियाई-विरोधियोंकी विजय हो गई तो

जिन लोगोंको सबसे अधिक हानि भोगनी पड़ेगी वे होंगे — गोरे ग्राहक। दक्षिण आफ्रिकी लोगोंको यह याद रखना चाहिए।

रिचने कहा है :

> बहुत-से ऐसे तरीके मौजूद हैं जिनसे गोरे लोग अपने हितों और अधिकारोंका संरक्षण कर सकते हैं और जिनमें समाजकी प्रजाके एक समुदायका दूसरे समुदायके प्रति बार-बार यह तिरस्कार व्यक्त करते रहना जरूरी नहीं है। अगर कुछ थोड़े-से गोरे लोग व्यापार करनेवाले एशियाइयोंसे द्वेष करते हैं जबकि वे उन्हें मजदूरोंके तौरपर लानेके लिए समुद्र और पृथ्वी एक कर डालते हैं, तो फिर वे उन भारतीयोंके साथ व्यापार करनेके लिए बाध्य तो नहीं हैं। क्यों नहीं वे उनका पिंड छोड़ देते और अपनी ही जातिके लोगोंके साथ व्यापार करते?

एशियाई-विरोधी स्थितिको उग्र करनेके लिए यह एक तर्क और काममें लाया जाता है कि वे लोक-स्वास्थ्यके लिए खतरनाक हैं। ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। परन्तु यदि ऐसा है तो निश्चय ही दोष भारतीयोंका नहीं सफाई-अधिकारियोंका है।

सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंने स्वास्थ्यके नियमोंके प्रति विशेष अनुकूलता दिखलाई है। जोहानिसबर्गमें हालमें जो प्लेग फैला था उसमें सारे भारतीय समाजने जिस तरह प्लेग-अधिकारियोंके निर्देशोंको शिरोधार्य किया उससे इसका निर्विवाद और उल्लेखनीय प्रमाण मिलता है।

एक अन्य आरोप भारतीयों पर यह लगाया गया है कि उन्होंने पिछले दक्षिण आफ्रिकी युद्धमें साम्राज्यके हितार्थ हथियार नहीं उठाये। इस आरोपमेंके निर्माताओंका अज्ञान नमूनेका है, क्योंकि खुद इन लोगोंके सिवा सारा संसार जानता है कि भारतीय साम्राज्यके लिए लड़ने और जरूरत होनेपर मर जानेके लिए, उतने ही तैयार थे जितनी कि साम्राज्यकी कोई भी अन्य जाति। परन्तु उनको वैसा करने नहीं दिया गया। कुछ लोग मौजूद हैं जो जानते हैं कि नेटाल और ट्रान्सवालके भारतीयोंने बार-बार नेटाल-सरकारको अर्जियाँ दी थीं कि उन्हें किसी भी हैसियतसे युद्धमें जानेकी इजाजत दी जाये। और कुछ ऐसे लोग भी मौजूद हैं जो जानते हैं कि सारी ब्रिटिश फौजमें नेटाल भारतीय स्वयंसेवक आहत-सहायक दल (नेटाल इंडियन वॉलंटियर एम्बुलेंस कोर)[1] के लोग ही ऐसे थे जिन्होंने सेवा तो की परन्तु कोई भी पुरस्कार नहीं लिया।

सच बात यह है कि भारतीय समाजमें ऐसे लोग हैं जो अधिकतर एशियाई-विरोधियोंसे अधिक ब्रिटिश हैं। उन्होंने देशभक्ति तथा लोकसेवाकी उस भावनामें अपना पूरा-पूरा हिस्सा बँटाया है जिससे साम्राज्य जैसा भी आज है, वैसा बना है। यह मानना एक भोंडी बात होगी कि जो लोग अपनी ब्रिटिश प्रजा की हैसियतसे परिचित हैं वे चुपचाप बाजार या बस्तियोंमें निर्वासित हो जाना मंजूर कर लेंगे। इतना ही नहीं देशभक्तिकी इस भावनाको मिटानेका प्रयत्न करना एक अपराध है। और यह आशा करना भी उतना ही मूर्खतापूर्ण है कि वे गलतफहमी अन्याय और धमकियोंके तरीकोंसे कुचल जायेंगे। दक्षिण आफ्रिकाके एशियाई-विरोधियोंके रुख का सार संक्षेपमें यह बताया जा सकता है — कुत्तेको पहले बदनाम करो फिर मौतके घाट उतार दो।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-२-१९०५

१ देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ११८-१९।

१०४ प्लेगका छिपाव

हमें खेद है कि डर्बनमें अब भी ऐसे भारतीय हैं जो अबतक छूतके रोगको छिपानेके गम्भीर परिणामोंको नहीं जानते। गत सोमवारको डर्बन-निगमके एक भारतीय कर्मचारीको एक प्लेगके मरीजको छिपानेके आरोपमें २ पौंड जुर्माने या तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा दी गई। सजा शिक्षात्मक है, और यह ठीक ही है। मामला एक लड़कीका था। उसके पिताने जैसे देखा कि वह बीमार है, उसे एक खाली मकानमें हटा दिया था। मजिस्ट्रेटके सामने उसने कारण बताते हुए कहा : मैं नहीं चाहता था कि यूरोपीय डॉक्टर उस मेरे पाससे ले जायें। शायद यह बहुत स्वाभाविक था, परन्तु भारतीयोंको जानना चाहिए कि हम मामलेमें वे उसी कानूनके अधीन हैं जिसके अधीन यूरोपीय हैं। रोगी कोई भी हो, छूतकी बीमारीके हरएक मरीजकी सूचना अधिकारियोंको दी जानी चाहिए और हरएकको चाहे वह भारतीय हो या यूरोपीय अपनी निजी भावनाओंको सामान्य हितकी दृष्टिसे अपने ही भीतर रखना चाहिए। यह आशा करना बहुत अधिक है कि गिरमिटिया वर्गका प्रत्येक भारतीय इस विषयको इसी निगाहसे देखेगा परन्तु ऊँचे वर्गके भारतीयोंसे यह आशा करना बहुत अधिक नहीं कि वे रोगकी रोकथाम करनेमें डॉ. म्यूरिसनकी मदद करेंगे। हम फिर आगे १ दिसम्बरके अंकमें प्रकाशित स्वास्थ्य-अधिकारीके पत्र और उसपर अपनी टिप्पणीकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। हमारे भारतीय मित्र याद रखें कि इस प्रकारके प्रत्येक मुकदमेसे — अनुचित रूपसे ही सही — सारा समाज बदनाम होता है। लेकिन कसूर सिर्फ भारतीयोंका नहीं है। हम नेटाल मर्क्युरीके इस कथनसे सहमत नहीं हो सकते कि कतिपय भारतीयोंके कार्योंके कारण ही हमें अबतक प्लेगसे मुक्ति नहीं मिली है। यह सच है कि भारतीय ही आम तौरपर इस भयंकर बीमारीके शिकार होते हैं परन्तु जैसा कि हमारे गत सप्ताहके अंकमें एक पत्र-लेखकने इस प्रश्नका कि हमारे प्लेगोंका प्रजनक कौन है? उत्तर देते हुए लिखा है — भारतीयोंको ऐसी परिस्थितियोंमें कौन रखता है जिनसे कि वे प्लेग-प्रजनक बनते हैं? डर्बनमें नगर-परिषदके सीधे नियन्त्रणमें प्लेगके मुकाम मौजूद हैं फिर अगर कुदरती नतीजेके तौरपर प्लेग फैलता है तो सारा दोष बेचारे भारतीयोंके सिर क्यों मढ़ा जाता है? वास्तवमें बात इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसे सहजमें छोड़ा नहीं जा सकता। अगले अंकमें हम नगरपालिकाके सफाईके पूरे प्रश्नपर चर्चा करना चाहते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-२-१९ ५

३०५ भारतीयोंके परवाने : सजग होनेकी जरूरत – १

सेठ हुंडामलके परवानेके सम्बन्धमें आज कई महीनोंसे चर्चा चल रही है। हमारे पाठक जानते हैं कि सेठ हुंडामल डर्बनमें करीब १ वर्षसे व्यापार करते आ रहे हैं। शुरूमें उन्होंने डर्बनकी मुख्य बीथी वेस्ट स्ट्रीटमें दूकान खोली। इस दूकानके मालिकको उसकी मरम्मत करानी थी इसलिए उसने सेठ हुंडामलसे वह दूकान खाली करा ली। वेस्ट स्ट्रीटमें पसन्दकी जगह न मिलनेसे उन्होंने पास ही ग्रे स्ट्रीटमें एक अच्छी दूकान ले ली और वहाँ व्यापार शुरू कर दिया। कुछ महीने बीतनेपर उस दूकानको भी खाली करनेकी आवश्यकता पड़ गई। इसलिए उन्होंने एक भारतीय मकान-मालिकसे पासमें ही वेस्ट स्ट्रीटमें कुछ समय पहले एक भारतीय व्यापारी द्वारा खाली की गई एक अच्छी और बड़ी दूकान किरायेपर ले ली और वहाँ व्यापार शुरू किया तथा परवाना-अधिकारीको दरखास्त दी कि दूकान बदल जानेके कारण उनके परवानेपर नया पता लिख दिया जाये। इस दरखास्तको उक्त अधिकारीने स्वीकार नहीं किया नहीं नहीं बल्कि उनपर परवानेके बिना व्यापार करनेका इल्जाम लगाया। मजिस्ट्रेटकी अदालतमें बाकायदा मुकदमा चला और सेठ हुंडामलपर जुर्माना हुआ। सेठ हुंडामलने मजिस्ट्रेटके फैसलेपर अपील की। इस अपीलकी सुनवाईसे पहले नगर-परिषदने सेठ हुंडामलको मजिस्ट्रेटकी अदालतमें दो-तीन बार घसीटा और मजिस्ट्रेटने हर बार उनपर जुर्माना किया। और एक बार तो मजिस्ट्रेट श्री स्टुअर्टने अपनी पद-मर्यादा भूलकर गैर-कानूनी हुक्म दिया कि सेठ हुंडामल अपनी दूकान बन्द कर दें। अलबत्ता गैर-कानूनी होनेसे सेठ हुंडामलने इस हुक्मकी परवाह नहीं की और उनके वकील श्री वाइलीने उनकी ओरसे मजिस्ट्रेट और पुलिसको लिखित रूपमें कड़ी चेतावनी दी कि अगर उक्त गैर-कानूनी हुक्मकी तामील की जायेगी तो उसकी तामील करानेवाले अफसरको उसकी जोखिम उठानी पड़ेगी। मजिस्ट्रेटको बेहद गुस्सा आया लेकिन हुक्म सरासर गैर-कानूनी ही था इसलिए उसे अपना-सा मुँह लेकर बैठ जाना पड़ा। डर्बनमें जब मण्डल-अदालत (सर्किट कोर्ट) बैठी तब अपीलकी सुनवाई हुई और सेठ हुंडामल निरपराध साबित हुए। तब पुलिसने उनपर दूसरा जुर्म लगाया और उसमें मजिस्ट्रेटने दुबारा उन्हें अपराधी ठहराया। इस महीनेमें सर्वोच्च न्यायालयमें उसकी अपील हुई और भारतीय व्यापारियोंके दुर्भाग्यसे उस बड़ी अदालतमें न्यायाधीशोंने हुंडामलके विरुद्ध फैसला दिया।

उक्त अपीलकी सुनवाई तो इस मास न हुई। पिछले मासमें चालू वर्षके परवानेके लिए सेठ हुंडामलने अर्जी दी थी और परवाना-अधिकारीने वह स्वीकार नहीं की। इसपर से नगर-परिषदमें बाकायदा अपील की गई। परवाना न देनेके सम्बन्धमें परवाना-अधिकारीने यह बताया कि वेस्ट स्ट्रीटमें एशियाइयोंको अधिक परवाने नहीं मिलने चाहिए, इसलिए सेठ हुंडामलको परवाना न मिलेगा। जब नगर-परिषदके समक्ष सेठ हुंडामलके वकीलने यह कारण उपस्थित किया तब स्वभावतः नगर-परिषदके सदस्य शर्मिन्दा हो गये क्योंकि परवाना-अधिकारीने यह भी कहा कि नगर-परिषदके सदस्योंकी इच्छा भी यही है। परिषदमें श्री बर्न सदस्य हैं और वे भी एक प्रख्यात वकील हैं। उन्होंने यह बात सुनते ही विरोध किया कि परवाना-अधिकारी यह कह नहीं सकता कि नगर-परिषदके सदस्योंकी इच्छा भी यही है। इसपर उस अधिकारीने उठकर जवाब दिया कि इससे पहले भी उसने यही कारण बताकर दरख्वास्तें नामंजूर की थी और उसका दिया हुआ वह फैसला नगर-परिषदने मान्य किया था। इसलिए इस बार भी उसका

कहना दोषयुक्त नहीं समझा जा सकता। इस झगड़ेको बढ़नेसे रोकनेके लिए नगर-परिषदके एक सदस्यने दरखास्त की कि इस अपीलको खारिज किया जाये। और एक दूसरे सदस्यने उसका अनुमोदन किया। साथ-साथ कानूनकी यह दलील भी पेश की कि कानूनके अनुसार यह अधिकार परवाना-अधिकारीको है कि वह किसीको परवाना दे या न दे। जब कानूनकी बात की गई तब अर्जदारके वकीलने कहा कि अधिकार भी कानूनके अनुसार ही बरता जा सकता है और कानून तोड़ा जाये अथवा कानूनका उल्लंघन किया जाये तो वह न्याय नहीं किया जा सकता। परिषदके सदस्योंको यह कथन उचित नहीं जँचा। फलतः सेठ हुंडामलको परवाना प्राप्त नहीं हुआ और इस कारण दूकान बन्द करनी पड़ी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-२-१९०५

३०६. कारपोरेशनकी गन्दगी

डर्बन नगर-परिषदकी साधारण मासिक बैठकमें इसी ७ तारीखको ईस्टर्न वले और वेस्टर्न वले (पूर्वी और पश्चिमी बस्तीकी बस्तियों)के सम्बन्धमें सफाई-निरीक्षक (इन्सपेक्टर ऑफ न्यूसेन्सेज)की रिपोर्ट पेश की गई थी। यह उल्लेखनीय है कि इसमें उक्त अधिकारीने कुछ खास क्षेत्रोंका जिक्र किया है। उसने उन क्षेत्रोंके ज्यादातर मकानोंको घिराव और सफाई तथा निर्माणकलाकी दृष्टिसे सदोष बताते हुए यह भी कहा है कि बस्तियोंकी जमीन पानी निकाल कर सुखाई नहीं गई। इसके अलावा उसने इन मकानोंको "निवासके उद्देश्यसे प्रयुक्त और मनुष्यके निवासके अयोग्य" घोषित किया है।

हमें बरबस उस सभाकी याद आती है जो जून १९०३ में नेटाल भारतीय कांग्रेसके तत्वावधानमें हुई थी और जिसमें महापौरके एक आरोपकी जोरोंके साथ चर्चा की गई थी। महापौरने नगरपालिकाके सामने एक कार्य-विवरण पेश करते हुए भारतीयोंकी गंदी आदतोंका जिक्र किया था और बताया था कि अनेक कारणोंमें से एक कारण यह है जिससे भारतीयोंको बस्तियोंमें या — जैसा कि उन्हें नरम भाषामें नाम दिया गया है — *बाजारोंमें* भेज दिया जाना चाहिए।

स्मरण रहे, लॉर्ड मिलनरने अपनी १९०३ की स्मरणीय सूचना ३५६ द्वारा उन एशिया इयोंके बारेमें जिन्हें जानेवाले अपवादकी ओर खास तौरपर ध्यान आकर्षित किया था जिनकी रहन-सहनकी आदतें और जिनके विशेष गुण यूरोपीय विचारों या सफाईके आदर्शोंके प्रतिकूल न हो। हम कहनेका साहस करते हैं कि प्रत्येक डॉक्टर या अस्पतालकी परिचारिका हमारे इस कथनकी पुष्टि करेगी कि ऊँचे वर्गके यूरोपीय भी वैज्ञानिक सफाईको सदा अनुकूल दृष्टिसे नहीं देखते। परन्तु यह तो गौण बात हुई। असल बात यह है कि यूरोपीयोंके *सामान्य मतको* उचित मापदण्ड मान लेना सदा ही ठीक नहीं होता। वे तो उन बातोंके बारेमें भी बहुधा बिलकुल अज्ञानमें होते हैं जिनका उन्हें सबसे ज्यादा निश्चय होता है और जिन परिस्थितियोंसे वे अपरिचित होते हैं उनके विरुद्ध अक्सर उनके पूर्वग्रह भी होते हैं। यह कोई छिपी बात नहीं है कि जन-साधारणका मत सुशिक्षित लोगोंके मतसे बहुत भिन्न और अक्सर विरुद्ध भी होता है। अध्ययनशील व्यक्ति जो बातें कहता है उन्हें इकट्ठा करने उनकी छान-बीन करने और उनके गुण-दोषोंका निर्णय करनेका ज्यादा बड़ा और ज्यादा बार मौका पाता रहता है।

भारतीयों और भारतीयोंमें अन्तर है। कुछ भारतीय सफाईके वैज्ञानिक यूरोपीय मापदण्डको पूरी तरह कायम है और कुछ ऐसे हैं जो अबतक सफाईके वे ही तरीके काममें लाते आ रहे हैं जिनका अवलम्बन वे भारतके सुदूरस्थ जिलोंमें स्मरणातीत कालसे करते चले आते हैं। उनसे जरा भी भिन्न तरीके उन्होंने अख्तियार नहीं किये। ऐसे ही भेद सारी दुनियाके सभ्य राष्ट्रोंके लोगोंके बीच किये जा सकते हैं। शिक्षितों और अल्प-शिक्षितोंके बीच यह भेद सदासे है और आगामी बहुत वर्षों तक रहेगा।

इसलिए, जब हम बार-बार भारतीयोंके खिलाफ यह आरोप सुनते हैं कि वे अस्वच्छ हैं तो हम यह पूछनेके लिए बाध्य हो जाते हैं कि "आपका मतलब किन भारतीयोंसे है? और आप व्यक्तिगत सफाईकी बात कहते हैं या घरेलू सफाईकी? क्योंकि इससे अधिक महत्त्वकी बात और क्या है कि जो लोग इस तरहका अस्पष्ट आरोप लगाते हैं उन्हें किसी ज्यादा निश्चित और कम खतरनाक रूपमें अस्पष्ट बातपर स्थिर किया जाये? अक्सर देखा जाता है कि विचार हीन व्यक्तिका ध्यान बातोंको सर्व-सामान्य रूपमें पेश करनेसे सफलतापूर्वक खिंच जाता है जब कि तथ्यको निश्चित रूपमें पेश करनेसे तो वह दब ही जायेगा।

हमारा अनुभव यह है कि प्रायः भारतीय अस्वच्छ नहीं होते। परन्तु हम यह नहीं कहते कि कोई भारतीय अस्वच्छ है ही नहीं। इसे भली-भाँति याद रखना चाहिए। हम यह तर्क विभिन्न भारतीय समाजोंकी परम्पराओं और राष्ट्रीय प्रथाओंके आधारपर पेश करते हैं। हम निश्चयके साथ कह सकते हैं कि भारतीयोंका धर्म उनके लिए एक जीती-जागती चीज है, फिर भले ही वे हिन्दू हों या मुसलमान और वह धर्म उन्हें व्यक्तिगत सफाई और परिणामतः घरेलू सफाईके निरपेक्ष सिद्धान्तोंकी शिक्षा देता है। यह बात नीचीसे-नीची श्रेणियोंके लोगोंके बारेमें भी सही है, और भारतीय जीवनकी साधारण हालतोंसे परिचित कोई भी व्यक्ति इसकी पुष्टि कर सकता है।

परन्तु हमारे यहाँ क्या है? हमारे यहाँ तो ईस्टर्न एण्ड और वेस्टर्न एण्ड हैं। हमने बाजारों और बस्तियोंके बारेमें कुल-निवारण और पृथक्करणके बारेमें बहुत ही सख्त बातें सुनी हैं। परन्तु प्रस्तावकी शेष बातोंको मालूम होता है बहुत सोच-समझकर — या यों कह कि आपर बाहीके साथ — विचारसे अलग रखा गया है।

सफाई और आरोग्यके प्रश्नोंमें दिलचस्पी रखनेवाले लोगोंके लिए हम नगरपालिकाकी सफाई-समितिकी सन् १८९९में *नेटाल मर्क्युरीमें* प्रकाशित रिपोर्टके कुछ उद्धरण देना चाहते हैं। इस समितिके अध्यक्ष माननीय आर० जेमिसन थे।

> (१) बादमें हमने वेस्टर्न एण्ड (पश्चिमी रहनेकी बस्ती) कहलानेवाले स्थानमें बने मकानोंका निरीक्षण किया। वहाँ दो मालीदार चहरके मकान हैं जिनमें २२ मर्द और ११ औरतें तथा बच्चे रहते हैं। ये इमारतें बहुत-कुछ अच्छी हालतमें पाई गईं। परन्तु इनको सफाईके उपनियमोंके अनुकूल बनानेके लिए इनमें छप्पर, नालियाँ, बरसाती नली (डाउन पाइप्स) अधिक, प्रकाश अधिक हवा तथा एक और पाखानेकी जरूरत है। वर्तमान पाखाना स्वच्छताकी दृष्टिसे काफी नहीं है। चहारदीवारीकी मरम्मतकी जरूरत है। मकानोंकी अन्दर सफेदी करनी चाहिए। पानीका प्रबंध पास ही है इसलिए नहाने धोनेके लिए लोहेकी चद्दरोंका एक छोटा-सा कोठा बना देना चाहिए। पासकी खुली नालियोंको बरसात शुरू होनेके पहले भली-भाँति साफ करके खोल देना चाहिए, क्योंकि यह जगह दलदली है।

यह है उस महान बाजार या बस्ती या अहातेकी या आप उसे जो भी कह कर पुकारें, हालतका वर्णन और यह भी स्वयं नियम जैसी अधिकारी संस्थाके सीधे नियन्त्रणमें। हम पूछते हैं अगर गंदगीके ठीक बीचों-बीच इस प्रकारके मकानोंमें बसाये गये भारतीयोंकी आदतें गंदी हैं तो इसके लिए जिम्मेदार कौन है? क्या भारतीय? हर्गिज नहीं। और फिर भी यद्यपि इस रिपोर्टको पेश हुए लगभग साढ़े पाँच वर्ष बीत गये हैं यह दुर्गन्धयुक्त क्षेत्र आज भी करीब-करीब उसी हालतमें है जिसमें उस समय था।

ऐसी घिनौनी हालतोंको सुधारनेके लिए निगम (कारपोरेशन) क्या कर रहा है? यह परवानोंके सम्बन्धमें मुकदमे चलानेके लिए शक्ति और समय निकाल सकता है फिर बीमारी और मौतके इस केन्द्र और दूसरे केन्द्रोंको मिटानेमें अपनी उसी शक्तिका थोड़ा-सा अंश क्यों नहीं लगा सकता?

मैथ्यूस अपनी *[?]* कहता है

> कुली सफाई-पसन्द व्यक्ति नहीं हैं और अगर उन्हें अपनी मर्जीपर छोड़ दिया जाये तो वे बस्तीसे बाहर बने बढ़िया तरहको भी शीघ्र ही घुमरबाड़े जैसा गन्दा बना देंगे।

और वह आगे कहता है

> परन्तु यह उनके मालिकोंका और खास तौरसे प्रवासियोंके संरक्षकका काम है कि न सिर्फ उनके अपने हितके लिए, बल्कि सारे समाजके हितके लिए, सफाईके मामलेमें उन्हें उनकी मर्जीपर न छोड़ा जाये। यह मामला उपनिवेशके स्वास्थ्य-अधिकारीके ध्यान देनेका है। और अगर मालिक लोग अपने कुलियोंको साफ-सुथरे और नये मकान देते हों तो उन्हें अपने तरीके सुधारनेके लिए बाध्य करना चाहिए।

इनमेंसे दूसरे मन्तव्यसे हम पूरी तरह सहमत हैं। इससे सचमुच उनको बहुत-कुछ जवाब मिल जाता है, जो सारेके-सारे भारतीयोंकी कथित गन्दी आदतोंपर जोर देते हैं। पहले मन्तव्यको मंजूर करनेके पहले जाँचना होगा। उसका निपटारा ऊपर बताई हुई रिपोर्टके निम्नलिखित अंशसे हो जाता है

> यहाँ (क्वीन स्ट्रीट अहातेमें) खास तौरसे देखा गया कि *जितने भी स्थानोंका हमने निरीक्षण किया उन सबकी तुलनामें यह बहुत साफ है।* इसका कारण यह है कि यह भूमिगत नाली-प्रणालीसे सम्बद्ध है और इससे यहाँ नहाने-धोने और पाखानोंकी व्यवस्था अच्छी है।

इस प्रकार हमारे पास लिखित प्रमाण है कि यह बुराई निगमकी बताई जा चुकी है और यह भी कि इस तरहकी बुराइयाँ अगर जारी रहती हैं तो वे उस संस्थापर कलंक-रूप हैं, जो इन्हें बरदाश्त करती है और आखिरी बात यह है यद्यपि वह उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, कि निगमने ईस्टर्न और वेस्टर्न पार्कोंमें इन्हें मिटानेका कोई असली प्रयत्न नहीं किया। फिर किसको अधिकार है कि वह भारतीयोंकी अस्वच्छताको कारण बताकर उनका नाम-निशान मिटा देनेपर जोर दे और इस प्रकार जलेपर नमक छिड़के? निगमकी लापरवाहीकी नीतिका परिणाम स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। मूल कारण कितने विनाशक बे-निपटा पड़ा रहेगा?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-२-१९ ५

सफाईके प्रश्नपर, जहाँतक उसका असर भारतीय समाजपर पड़ता है, सम्पूर्ण रूपसे पहले ही विचार किया जा चुका है।[1] अब हमारी तजवीज है कि जो खास बीमारी महामारीके रूपमें फैलकर अभागे लोगोंका शिकार कर रही है उसके कारणकी छानबीन की जाये और उस कारणके परिणामोंपर विचार किया जाये।

गत शनिवारके *मर्क्युरी*में एक लम्बा अनुच्छेद छपा है। उसमें अधिकारियोंके प्रति "भारतीयोंके उस रवैयेकी चर्चा है जो कहा जाता है उन्होंने खास तौरसे प्लेगकी बीमारीको छिपानेके बारेमें अपनाया है। लेखकने कई विचित्र और अधूरी बातें कही हैं उनके आधार पर बहुत-से शिकायती प्रश्न उठाये हैं और अन्तमें यह सुझाव देकर अनुच्छेद समाप्त किया है कि "सम्भवतः इस आचरण (प्लेगके छिपाव) का बीमारीके समय-समयपर फैलनेके साथ गहरा सम्बन्ध है।"

सीधे-सच्चे तथ्य क्या हैं? हमारा समाज गोरों और भारतीयोंसे बना है। गोरोंमें भारतीयोंकी अपेक्षा गरीब लोग कम हैं। तब इससे निष्कर्ष निकलता है कि एशियाई आबादीके गरीब लोगोंके यूरोपीय गरीबोंकी अपेक्षा अधिक संख्यामें रोगका शिकार होनेकी गुंजाइश है। दूसरे, एक यह आरोप लगाया गया है कि "भारतीय जानकारी देनेसे इनकार करके और अगर कोई बीमार हो तो हर तरहसे उसका पता-ठिकाना छिपानेका प्रयत्न करके अधिकारियोंके काममें गम्भीर बाधा डालते हैं। हम फिर पूछते हैं — "कौनसे भारतीय?" निश्चय ही भारतीय समाजके सबसे ज्यादा मालमस्त वर्गके कुछ लोगोंका दोष सारे भारतीय समाजपर मढ़नेका इरादा तो इस आरोपमें नहीं है। तो फिर, लापरवाहीके साथ ये सामान्यीकरण क्यों? क्या समझदार जनताको यह समझाना सम्भव नहीं है कि भारतीयोंके बीच उतने ही बारीकीसे बने उपविभाग हैं जितने कि किन्हीं भी अन्य सभ्य लोगोंमें हैं? यह देखकर निराशा होती है कि किस प्रकार निहायत गैर-जिम्मेदारीके साथ ये झूठी बातें निरन्तर कही जाती हैं। इससे आश्चर्य होता है कि क्या कभी इतिहासके तथ्योंका अध्ययन किया गया है और क्या वे आजके जीवन-दर्शनका अंग बन गये हैं।

ऊँचे वर्गोंके भारतीय अपने कम भाग्यशाली भाइयोंको शिक्षा तथा व्यक्तिगत उदाहरणसे यह बताते कभी थकते नहीं कि जो भीषण रोग हमारे बीच फैला है उसका मूलोच्छेद करनेके प्रयत्नोंमें अधिकारियोंके साथ सहयोग करनेकी आवश्यकता है ताकि उनके प्रयत्न विफल न हों। स्वयं हमने बार-बार अपने इन स्तम्भोंमें अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं दोनोंके द्वारा यह बतानेका अधिकसे-अधिक प्रयत्न किया है कि सफाईका स्थान ईश्वर भक्तिके बाद दूसरा है। और फिर भी हमारे बीच ऐसे मूर्ख लोग हैं जो पूछते हैं — "भारतीय" अधिकारियोंके साथ सहयोग क्यों नहीं करते?

इसके अलावा अगर भारतीयों और यूरोपीयोंके बीच वर्तमान तुलना की जाये तो हमें निश्चय है कि भारतीयोंमें प्लेगकी बीमारियोंको छिपाने तथा प्लेगके रोगियोंको विस्थापित करनेके प्रति अनिच्छाके मामले यूरोपीयोंकी अपेक्षा ज्यादा नहीं हैं। हम इस सम्भावनापर विशेष जोर देना नहीं चाहते और न यह तर्क ही पेश करना चाहते हैं कि आप भी तो ऐसा ही करते हैं। फिर भी

१. देखिए पिछला शीर्षक।

आत्मरक्षाके लिए हमें यह सब करना पड़ा है क्योंकि यह संकेत करना स्पष्टतः अन्यायपूर्ण है कि कुछ भारतीयोंका ऐसा व्यवहार, जिसकी निन्दा हमसे ज्यादा और कोई नहीं करता यूरोपीयोंकी दृष्टिमें भारतीय समाजके प्रति बहुत बुरी धारणा पैदा करता है। तथापि ये छिपावके मामले क्यों होते हैं इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण है। हमें बताया गया है कि प्लेगके अस्पतालमें भारतीयों और काफिरोंके बीच कोई फर्क नहीं किया जाता। सबको अंधाधुन्ध एक साथ डाल दिया जाता है। भारतीयोंकी आदतों और भावनाओंका थोड़ा भी ज्ञान रखनेवाला कोई भी व्यक्ति एकदम ताड़ सकता है कि यह बात अधिकारियोंके जारी किये हुए अच्छे काममें कितनी बाधक है। हम केवल यह कह सकते हैं कि जबतक भारतीयोंको अलग स्थान नहीं दिया जाता और जबतक स्वयं भारतीयोंके बीच उनकी धार्मिक प्रथाओं और परम्परागत विश्वासोंका उचित खयाल रखते हुए, जाति और वर्णका फर्क नहीं किया जाता तबतक अधिकारियोंको व्यर्थ ही उन कठिनाइयोंको झेलते रहना होगा जो जरा-सी दूरदर्शितासे आसानीपूर्वक दूर की जा सकती हैं।

हम अंशतः यह बता चुके हैं कि गरीब वर्गके भारतीयोंके लिए कैसे और क्यों गन्दगीकी हालतें पैदा की जाती हैं। डर्बनमें प्लेग फिरसे फूट पड़ा है। उसके सबसे पहले शिकार कौन हैं? भारतीय। परन्तु हम इस विषयको लेकर प्रश्न करते हैं — कौनसे भारतीय? वे भारतीय कौन हैं? उनके अलावा और कोई नहीं जो दक्षिण आफ्रिकाका आदर्श नगर होनेका अभिमान करनेवाले नगरके निगमकी नौकरियोंमें हैं उसके मकानोंमें रहते हैं और जिनकी वह "हिफाजत" करता है। निगमने इन भारतीयोंको गन्देसे-गन्दे काम करनेके लिए नौकर रखा है। उनसे नालियाँ और मटके साफ कराये जाते हैं और उन्हें ईस्टर्न वले और वेस्टर्न वले (पूर्वी और पश्चिमी खण्ड) जैसे "स्वच्छ" मुहल्लोंमें बसाया जाता है। तब फिर अगर ये अभागे इस प्लेगकी बीमारीको और दूसरी हरएक गन्दगीकी बीमारीको पकड़ लेते हैं तो ताज्जुब क्या? सफाई-आयोग (सैनिटरी कमिशन) की रिपोर्टमें जिसकी विस्तृत चर्चा अन्यत्र की गई है उन भयानक परिस्थितियोंका काफी यथार्थ वर्णन किया गया है जिनमें इन अभागे लोगोंको स्वामी स्पर्से निकृष्ट जीवन बितानेके लिए बाध्य किया जाता है। और जब ऐसी परिस्थितियोंमें प्लेग स्वभावतः फैल जाता है — यद्यपि इसके बारेमें भारतीय समाजने अधिकारियोंसे बार-बार शिकायतें कीं और *उन्हीं अधिकारियों द्वारा नियुक्त विशेषज्ञोंने भी बार-बार चेतावनियाँ दीं* — तब बिना किसी भेदभावके सारे भारतीयोंपर गन्दी आदतोंका दोष मढ़ दिया जाता है और कुली को फौरन "रोग-सवर्धक" की उपाधि दे डाली जाती है। जिस आदमीको सूअरोंके बाड़ेमें रखा जाता हो उसका उस बाड़ेके असली निवासी पशुओंके समान ही गन्दी आदतोंवाला बन जाना असम्भव नहीं है। ट्रान्सवालके स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ. टर्नरने विधान-परिषदमें ट्रान्सवालकी भारतीय बस्तियोंके बारेमें बोलते हुए कहा है

> जोहानिसबर्गकी कुली बस्ती शर्मनाक हालतमें है, और क्यों? इसलिए कि वे गरीब लोग दरबेमें मुर्गोंके बच्चोंकी तरह वहाँ रहनेके लिए मजबूर हैं और अधिकारियोंने उसे बहुत ही गन्दी हालतमें रख छोड़ा है। अगर भी रेड (विधान-परिषदके सदस्य) उसमें रहनेको विवश होते तो वे भी उतने ही गन्दे होते।

हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि सफाईके मामलेमें गुनहगार स्वयं निगम है। इसलिए अपने मकानोंकी भयानक हालत तथा प्लेगसे होनेवाली मौतोंके लिए मुजरिमाना जिम्मेदारी उसके ही सिर है। इन तथ्योंके प्रकाशमें भारतीय समाज या अभागे कुलियों पर भी "गन्दी

भारतीयों" और बुराईको मिटानेमें अधिकारियोंके साथ सहयोगके प्रयत्न जान-बूझकर न करनेका दोष मढ़ना केवल मुख्य विषयसे लोगोंका ध्यान बँटा देना है।

सरकार और निगम द्वारा नियुक्त किये हुए प्लेग-विशेषज्ञोंके प्रति हम अपना आभार प्रकट करते हैं। उन्होंने बुराईका इलाज करनेकी शक्ति-भर कोशिश की है और सरकारसे सिफारिशें भी की हैं परन्तु सब व्यर्थ। परिणामको पकड़कर उसे कारण मानना बिलकुल व्यर्थ है। परिणाम आखिर परिणाम ही रहता है और कारण जो कुछ बताया गया है उससे बिलकुल भिन्न होनेके कारण अभी खोजना शेष ही है।

इस सबके बावजूद हम देखते हैं कि कुछ जिम्मेदार लोग ऐसे हैं जो लॉर्ड मिलनरकी विज्ञप्तिमें सुझाये गये तरीकोंके अनुसार नये कानून बनानेके पक्षमें हैं। वे चाहते हैं कि इन कानूनोंके द्वारा भारतीयोंको *बाजारोंमें* ढकेल दिया जाये और उन विशेषाधिकारोंको स्थायी बना दिया जाये जो *निगमकी भूमिपर बनी बस्तियोंमें* फैली हैं। भारत-सरकारके अंक-विभागके भूतपूर्व महानिदेशक श्री ज० ई० ओ'कोनरने इस नीतिकी निन्दा करते हुए ठीक ही कहा है कि भारतीयोंको *बाजारमें* ढकेलनेका मतलब है कि "वे अपनी फिक्र खुद ही करें।" यह माना जाता है कि अच्छी सरकारकी सच्ची कसौटी यह है कि वह अधिकतममें भी कर्तव्यकी ऊँची भावना भरती है, वह उसे निम्नतर कोटिकी दासतामें कभी भी नहीं गिराती किन्तु निश्चय ही कोई "मूर्खतापूर्ण अफीरकी फकीरी" राजनीतिज्ञताकी उदार भावना अथवा नगरपालिकाकी सफाई तथा राजनीति सम्बन्धी नीतियोंकी निर्मात्री नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-२-१९०५

३०८. दक्षिण आफ्रिकाके तमाम भारतीयोंसे अपील

हमसे पाठकोंसे हमारी सिफारिश है कि इन दिनों भारतसे जो समाचारपत्र आते हैं वे धीरज से पढ़ें। क्योंकि उन्हें उनको पढ़नेसे यह यकीन हो जायगा कि हमारे भारतके भाई हमारे सहायतार्थ दौड़कर आनेके लिए तैयार हैं। बम्बईमें कांग्रेसका जो अधिवेशन हुआ उसमें हम लोगोंके कष्टोंके सम्बन्धमें अच्छी चर्चा की गई थी और यहाँके निवासियों द्वारा दिये गये भाषणोंका उस महान संस्था कांग्रेसपर ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ा कि नेताओंने हमारे प्रश्नका महत्व समझकर हमारी परिस्थितिमें सुधारका प्रयत्न भी आरम्भ कर दिया है। समाचारपत्रोंने भी हमारी समस्याको भली-भाँति हाथमें ले लिया है। ये सारी बातें बहुत सन्तोषप्रद हैं। और हमें ईश्वरका अनुग्रह मानना चाहिए कि भारतके लोक-प्रतिनिधियोंने खुद हमारी शिकायतपर ध्यान दिया है। हमें भी अधिक उत्साहसे अपना कर्तव्य पूरा करनेमें तत्पर हो जाना चाहिए। कहावत है कि "हिम्मते मर्दां मददे खुदा" और "अपने मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता।" इसलिए हमें अपना कर्तव्य पूरा करना ही चाहिए। यदि नहीं करेंगे तो हमारी आशाएँ फलीभूत नहीं होंगी। भारतसे ज्यों-ज्यों मदद मिलती जाय त्यों-त्यों हमारे जोशमें बढ़ती होनी चाहिए, क्योंकि मदद मिलनेपर जिम्मेदारी बढ़ती है। अपने दुःखोंको मिटानेके लिए हमारा कोशिश करना तो स्वाभाविक ही है। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो हम लोगोंका पशुओंमें भी गया-गुजरा माना जायेगा। जब हम लोगोंकी सहायताके लिए सहायक लोग निकल पड़े हैं तब हम उनके प्रति अपने कर्तव्योंका भी विचार करना चाहिए। और उनका मनोरथ तथा प्रोत्साहन देनेके लिए अधिक उमंग और उत्साहसे

कोशिशें करनी चाहिए ताकि उन्हें यह प्रतीत हो कि हम अपात्र नहीं हैं, सुपात्र हैं। अपनी योग्यता साबित कर देनेसे उनका हौसला भी बढ़ेगा और इससे हमें बहुत काम होगा। दुनियादारीमें व्यस्त आदमी भी यह बात समझ सकता है। फिर जो लोग धर्मके सम्बन्धमें विचार करते हों उनको तो इस बातका औचित्य तुरन्त दिखाई देगा।

दक्षिण आफ्रिकाके तमाम भाइयोंसे हमारी खास विनती है कि वे ऊपर लिखी बातपर विशेष रूपसे विचार करें और अपना फर्ज अदा करनेके लिए तुरन्त तैयार हो जायें। भारतीय नेता हमारी मदद करनेके लिए तैयार हैं तो उनके लिए उसके साधन जुटा देना हमारा साफ फर्ज है। क्योंकि हमें समझना चाहिए कि यदि हम ऐसा नहीं करते तो उन लोगोंसे इच्छानुकूल मदद नहीं मिल सकती। फिलहाल तीन साधनोंकी आवश्यकता है (१) हम अपनी कोशिशें जारी रखें (२) उन्हें अपनी सही हालतसे वाकिफ रखें (३) हमारी ओरसे काम करनेमें उन्हें खर्च करना पड़ता हो तो रुपये-पैसेकी पर्याप्त सहायता दें। ये तीनों साधन बड़े कामके हैं। हम पहले दो साधन कुछ-कुछ जुटा देते हैं अर्थात् हमारी कोशिशें थोड़ी-बहुत जारी हैं और हम यहाँकी सही हालत भी प्रकाशित करते हैं। तीसरे साधनपर, यानी रुपये-पैसेके सम्बन्धमें हमने कुछ नहीं किया है। इसलिए उस विषयपर अविलम्ब पूरा विचार करना आवश्यक है। पैसेकी मदद करना एक भारी हथियार देनेके बराबर है। दुनिया ऐसी है कि उसमें आजकल पग-पगपर पैसा चाहिए, और पैसेकी कमी पड़ जाये तो चाहे जैसी बड़ी और ऊँची उम्मीद मनमें बाँधी हो अन्तमें नाउम्मीद हो जाना पड़ता है। जिस प्रकार मनुष्यको आहारकी आवश्यकता होती है उसी प्रकार सार्वजनिक काममें पैसेकी जरूरत रहती है। सहायक अपना बहुमूल्य समय दें और खुशीसे मिहनत करें तिसपर भी उन्हें पैसेकी आवश्यकता हो और तब हम अपनी थैलीका मुँह बन्द रखें तो हम नीच और अधम गिने जायेंगे।

हमें सोचना चाहिए कि नेता किस प्रकार सहायता कर सकते हैं। इस देशमें हमारा जो अनुभव है उससे यह समझना कठिन नहीं है। ब्रिटिश राज्यमें अपनी अभिलाषा पूरी करनेके लिए कैसे काम करना चाहिए यह हमने प्रत्यक्ष अनुभवसे सीखा है। ट्रान्सवालके लोगोंने चाहा तो युद्ध करवाया और इस समय चाहें तो हमें इतना कष्ट दे सकते हैं। यह कैसे होता है? वे लोग सर्व-साधारण जनतासे अपने विचारोंका समर्थन प्राप्त करनेकी दृष्टिसे जगह-जगह सभाएँ करते हैं सब लोग सभाओंमें हमेशा उपस्थित नहीं हो सकते इसलिए समाचारपत्र निकालते हैं और उनमें यथारुचि लेख लिखाते हैं पत्रक और पत्रिकाएँ छपवाते हैं अर्जियाँ तैयार करते हैं छपवाते हैं और उनके ऊपर बहुतसे दस्तखत कराते हैं, और जो कुछ करते हैं उसकी खबर देनेके लिए तार भेजते हैं। अब यह सब करनेके लिए पैसेकी बड़ी आवश्यकता रहती है। और इसलिए उनके नेता अपनी जेबें जरा हल्की करनेमें झिझकते नहीं हैं। वे लोग बलवान हैं अक्लमन्द हैं संगठित हैं उनका इस देशमें एवं विलायतमें पूरा-पूरा प्रभाव है फिर भी वे निश्चित काम निर्विघ्न पूरा करनेके लिए बुद्धिमत्तासे काम लेकर तमाम कोशिशें हमेशा जारी रखते हैं। ऐसे लोगोंसे हमें टक्कर लेनी पड़ती है। हम कमजोर हैं अक्लमें पिछड़े हुए हैं ऐक्यका पूरा महत्त्व समझकर सब एक नहीं हो सकते सरकारपर हमारा कुछ प्रभाव नहीं है और जिस उत्साह और विवेक-विचारसे हमें अपनी मनुष्यता दिखानी चाहिए उसका हममें अभाव है। तब उनसे टक्कर कैसे ली जाये? हमारी प्रायः सभी कमियोंके बदलेमें हमारे पक्षमें इन्साफ है और इन्साफ विरोधी पक्षको हरा सकता है। किन्तु फिर भी हमें जय प्राप्त करनेके लिए अपनी मनुष्यता और योग्यता अवश्य दिखानी ही चाहिए। क्योंकि ऐसा न करें तो इन्साफ कमजोर पड़ जाता है।

हमारे सौभाग्यसे यहाँके कई प्रतिष्ठित महानुभाव इन दिनों भारतमें हैं। उनके द्वारा यहाँके नेताओंको सहायता मिलनी चाहिए। दक्षिण आफ्रिकाके हर हिस्सेसे — खास करके नेटाल और ट्रान्सवालसे पैसेकी जितनी बन पड़े सहायता भेजकर भारतके नेताओंको बल देना चाहिए ताकि वे ब्रिटिश राज्यकी रीतिके अनुसार जनताकी भावनाओंको प्रकाशमें लाकर सरकारसे इन्साफकी माँग करें। यहाँकी जैसी महँगाई भारतमें नहीं है। वह देश गरीब है, इसलिए वहाँ थोड़े पैसोंसे काम हो सकता है फिर वह बहुत विशाल है। इन सारी बातोंको ध्यानमें रखकर यहाँके नेताओंका अपना प्रत्यक्ष कर्तव्य अविलम्ब पूरा करना चाहिए — अर्थात् वहाँ अच्छी-खासी रकमें तत्काल भेज देनी चाहिए, जिससे उनका उत्साह मन्द न हो जाये। और अखबारोंमें लिखकर तथा सभाएँ करके समूचे देशमें आवाज गूँजा देनी चाहिए, जिससे कहा जा सके कि भारतकी सरकारको जनताका पूरा समर्थन मिला है और विलायतकी सरकारका भी उसपर ध्यान देना लाजिमी हो जाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५–२–१९०५

३०९ केपके सामान्य व्यापारी

केपके *गवर्नमेंट गज़टमें* सामान्य व्यापारियोंके व्यापारका नियमन करनेके लिए एक विधेयकका मसविदा प्रकाशित हुआ है। व्यापारियोंके परवानोंके नियमनकी बात तो हम समझ सकते हैं, मगर कानून व्यापारियोंका भी नियमन करे, यह एक बिलकुल अनूठी कल्पना है। हम विधेयककी असली उपधाराओंको दूसरे स्तम्भमें उद्धृत कर रहे हैं। इसमें कुल १५ खण्ड हैं, जिनमें से अधिकांशको न्यूनाधिक रूपमें टाला जा सकता था। परन्तु, इसके साथ ही हमें यह भी मंजूर करना होगा कि यद्यपि विधेयक काफी सख्त है, फिर भी उससे मालूम होता है कि उसके निर्माताओंने सामान्य व्यापारियोंके हितोंका बहुत खयाल रखा है। इस दृष्टिसे वह निस्सन्देह नेटाल अधिनियमकी अपेक्षा कम आपत्तिजनक है। विधेयकके अनुसार, सब वर्तमान परवानेदार व्यापारियोंको तबतक संरक्षण प्रदान किया गया है जबतक कि उन्होंने इतवारको व्यापार, शराब बिक्री और मकानोंसे सम्बन्धित कानूनका भंग न किया हो या उनके ग्राहकों साथियों अथवा उनकी बुरी आदतोंके कारण उनके अहाते पास-पड़ोसके लोगोंके लिए कष्टदायक न बन गये हों। जहाँतक नये परवानोंका सम्बन्ध है कोई आवासी मजिस्ट्रेट आवेदकको परवाना प्राप्त करनेके लिए प्रमाणपत्र दे सकेगा अथवा इस प्रकारका फैसला परवाना देनेवाली अदालत कर देगी। मजिस्ट्रेट और परवाना-अदालत दोनोंको अधिकार होगा कि वे दूसरी बातोंके साथ-साथ आवेदकके चाल-चलन किसी यूरोपीय भाषामें लिखनेके सामर्थ्य अथवा कारोबारका समझमें आने लायक लेखा रखनेकी अयोग्यताके आधारपर उसे परवाना देनेसे इनकार कर दें। परवानेदारको भी अधिकार होगा कि अगर उसका परवाना रद कर दिया जाये तो वह सर्वोच्च न्यायालयमें अपील कर सके। अपील केवल उस हालतमें नहीं हो सकेगी जब कि परवाना शराब-कानूनके अन्तर्गत सजाके कारण रद किया गया हो। सारे विधेयकमें सबसे अधिक आपत्तिजनक उपधारा यूरोपीय भाषाओंके सम्बन्धमें है। इस तरहकी व्यवस्थाका अर्थ है — ब्रिटिश भारतीयों और उनकी पुश्तैनी भाषाओंका स्पष्टतः अपमान। उसके कारण ही केप-निवासी भारतीयोंके लिए विधेयकका विरोध करना आवश्यक हो गया है अन्यथा वे शायद उससे सहमत हो जाते। इस तरहकी

भावशायक व्यवस्थाओंसे भारतीयोंका सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता। हम नहीं समझ सकते कि किसी ऐसे व्यक्तिको जो एक योग्य व्यापारी हो पूरी तरह ईमानदार हो और दूसरोंकी सहायतासे अपना हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखनेमें समर्थ हो क्यों परवाना प्राप्त करनेसे वंचित किया जाना चाहिए। हम ऐसी बीसियों दुर्दशाग्रस्त झोंपड़ियाँ बता सकते हैं जिनके मालिक किसी यूरोपीय भाषा का ज्ञान रखते हैं परन्तु जो किसी भी महत्त्वके धन्धेके लिए हर तरहसे अयोग्य हैं। ऐसे लोगोंको परवाने क्यों मिलें और किसी अच्छे शिष्ट भारतीय प्रजाजनको जिसके व्यापारका स्थान बिलकुल स्वच्छ हो और जिसका चरित्र आपत्ति रहित हो मुँहपर यह थप्पड़-सा मारकर अपमान क्यों किया जाये कि वह अयोग्य है क्योंकि उसे कोई यूरोपीय भाषा नहीं आती? हमें विश्वास है कि केप निवासी ब्रिटिश भारतीय अपने ऊपर भार डालनेके इस नये प्रयत्नका विरोध करनेमें सहयोग करेंगे। हमें यह भी आशा है कि सरकार विधेयकमें से इस आपत्तिजनक उपधाराको निकालकर सम्बन्धित व्यापारियोंके भारी समाजका सक्रिय सहयोग प्राप्त करेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ४–१–१९०५

३१० भारतीयोंके परवाने सजग होनेकी जरूरत – २

ये दोनों हारें[1] सेठ इब्राहिमकी ही हारें हुईं ऐसा न समझा जाये बल्कि ये नेटालके तमाम भारतीय व्यापारियोंकी हुईं ऐसा मानना चाहिए। हम यह नहीं कहते कि सर्वोच्च न्यायालयने *जानबूझकर गैरइन्साफी की है किन्तु हम मानते हैं कि यदि सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेपर सम्राटकी* न्यायपरिषद (प्रीवी कौंसिल) में अपील की जाये तो परिणाम अवश्य भारतीय व्यापारियोंकी दलीलके पक्षमें होगा। यदि कानून बनानेवालोंका मन्शा सर्वोच्च न्यायालयके कथनानुसार हो तो प्रश्न यह उठता है कि परवानेका फार्म पहले वैसा ही क्यों नहीं था? उसमें तो केवल शहरका ही नाम था स्थानका नहीं। यह स्थान लिखनेकी बात बादमें ही दाखिल की गई है। और यह सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेकी काट है। परन्तु, फिलहाल कानूनी बारीकीकी छानबीन आवश्यक नहीं। यह समझना आवश्यक है कि परवानेका कानून कुल मिलाकर भारतीय व्यापारियोंके लिए अत्यन्त हानिकर है और इस कानूनको बदलवानेके लिए यथासम्भव उपाय किये जाने चाहिए। कानून अत्याचारपूर्ण है उससे बहुत गैरइन्साफी हुई है और अनेक दूकानदार बरबाद हुए जा रहे हैं, यह बात अच्छी तरह ज्ञात हो चुकी है और सब लोग यह स्वीकार करते हैं तब हमारा स्पष्ट कर्तव्य है कि हम ऐसे कानूनको बदलवानेकी भरसक कोशिशें करें और जबतक सफलता नहीं मिलती तबतक सुस्त न पड़ें। यह स्पष्ट है कि ऐसी बातोंमें थोड़ी-सी भी लापरवाही करना बहुत खतरनाक है।

फिलहाल फौरन क्या किया जाये इसका विचार करें। पूरी मरोसेकी पक्की जानकारी प्रत्येक नगरसे प्राप्त करनी चाहिए कि वहाँ वर्षके आरम्भमें भारतीयोंको बाकायदा परवाने मिले हैं या नहीं और यह जानकारी यथासम्भव प्रकाशित करनी चाहिए। जो अगुआ हैं उन्हें इस जानकारीपर विचार करना चाहिए और उचित कदम उठाने चाहिए। भारत और विलायतमें हमारी ओरसे काम करनेवाले लोगोंके कार्यालय में सब तथ्य पहुँचाने चाहिए, जिससे हमारे स्थानीय प्रयत्नोंके साथ-साथ वहाँ भी हम लोगोंका समर्थक आन्दोलन चल पड़े। जबतक इस प्रकार काम नहीं होगा तबतक हम व्यापारियोंकी परिस्थिति सुधरनेकी आशा रखना व्यर्थ

1. देखिए "भारतीयोंके परवाने सजग होनेकी जरूरत" १८–९–१९०५।

समझते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि कुछ इसी प्रकारकी बात हमने १८९८में की थी उसके फलस्वरूप १८९९में उपनिवेश-सचिवने श्री चेम्बरलेन द्वारा लिखित सख्त सूचनाओंके आधार पर नेटालकी प्रत्येक नगरपालिकाको एक गुप्त पत्र लिखा था कि यदि भारतीय व्यापारियोंपर जुल्म किया गया तो कानून बदलना पड़ेगा और भारतीयोंकी माँगोंके अनुसार सर्वोच्च न्यायालयमें अपीलकी छूट देनी पड़ेगी। इसके बाद कुछ ही समयमें युद्ध शुरू होनेसे यह सब बन्द हो गया। किन्तु अब फिर वे बातें उठ रही हैं। अतः हम लोगोंको सावधान रहनेकी पूरी आवश्यकता है। हमें उक्त उदाहरणसे साहस बटोरकर काम करना चाहिए। यदि हम अपने कर्तव्योंको ठीक-ठीक पूरा करेंगे तो अन्तमें हमारा मन्तव्य पूरा हुए बिना नहीं रहेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, ४-३-१९०५

३११ हिन्दू धर्म

[जोहानिसबर्ग
मार्च ४, १९०५]

श्री मो० क० गांधीने पिछले शनिवारकी शामको मेसॉनिक टेम्पल, जीप स्ट्रीटमें उपर्युक्त विषयपर जोहानिसबर्ग लॉज ऑफ दि थियोसॉफिकल सोसाइटीके तत्त्वावधानमें चार व्याख्यानोंकी मालामें से पहला व्याख्यान दिया। उपाध्यक्ष मेजर पीकॉक सभापति थे।

विषयका प्रारम्भ करते हुए गांधीजीने कहा कि विभिन्न धार्मिक पद्धतियोंके अध्ययनके प्रति उत्कण्ठा जगानेका जोहानिसबर्ग लॉजका प्रयत्न बहुत ही प्रशंसनीय है, क्योंकि इससे लोगोंकी सहानुभूतिका विस्तार होता है और अपनेसे भिन्न मत और धर्मवालोंके व्यवहारके मूलमें रहनेवाले उद्देश्यों और विश्वासोंको समझनेकी शक्ति बढ़ती है। वे स्वयं अपने व्याख्यानोंके माध्यमसे [?] जोहानिसबर्गमें अपने देशवासियोंके प्रति फैले हुए द्वेष और अज्ञानको दूर करनेकी कोशिश करते रहे हैं।

आगे बोलते हुए भाषणकर्ताने "हिन्दू" शब्दका अर्थ आर्योंकी उस शाखाके सन्दर्भमें समझाया जो सिन्धु नदीके पारके भारतीय मैदानोंमें आकर उसके विशाल भूभागमें बस गई थी। भारतके करोड़ों लोग जो धर्म मानते हैं उसकी व्याख्याके विचारसे वास्तवमें "हिन्दू धर्म" की अपेक्षा "आर्यधर्म" शब्द अधिक अर्थसूचक होगा।

हिन्दू जिस धर्मको मानते हैं अवश्यमेव उसकी अत्यन्त उल्लेखनीय विशेषताओंमें से एक है और यह बात स्वयं उस धर्मके नामसे ही जाहिर है। संसारमें फैले हुए अन्य बड़े धर्मोंकी तरह उसका नामकरण किसी गुरु या पैगम्बरके नामपर नहीं हुआ — यद्यपि उसके अन्तर्गत अनेक महान विभूतियाँ हुईं। भाषणकर्ताने आगे चलकर अपनी मान्यताके प्रमाणमें आरकाटके ऐतिहासिक घेरेका[1] उदाहरण दिया कि जब सारी ब्रिटिश फौजके भूखसे मर जानेका खतरा था तब भारतीय सिपाहियोंने अपने हिस्सेके चावलकी रसद अंग्रेज सिपाहियोंको दे दी और स्वयं उस चावलका माँड़ पीकर पेट भरा था। उन्होंने निर्भीकतापूर्वक [?] सन्तोष किया और सभी भावनाओंको दबा दिया [?]। इन्होंने सिरमिटिया मजदूर प्रभुसिंहकी बात भी कही जिसे जंगके समय जानकी जोखिम उठाकर पेड़के ऊपर छिपे छिपे घंटी बजाकर बोअरोंकी हर बमवर्षाके पहले लेडीस्मिथके निवासियोंको सावधान करनेका सम्मानपूर्ण काम सौंपा गया था। सर जॉर्ज व्हाइटने कई बार इस व्यक्तिका खरीतोंमें उल्लेख किया है।

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १०९ और *दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास* प्रथम खण्ड, अध्याय १।

हिन्दुओंका अपना दावा यह है कि उनके शास्त्रोंकी निर्माणतिथि पुरातन कालके कुहरेमें आच्छन्न है, क्योंकि वे शास्त्र अपौरुषेय हैं। इसके विरुद्ध कुछ यूरोपीयोंकी मान्यता है कि वे शास्त्र ३ या ४ वर्षोंसे अधिक पुराने नहीं हैं। तथापि संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान श्री तिलकने इन ग्रंथोंमें आये हुए ज्योतिषके कतिपय तथ्योंके आधारपर इन्हें कमसे-कम दस हजार वर्ष पुराना गिना है — भले ही वे केवल ईसाके कोई तीन सौ वर्ष पूर्व लिपिबद्ध किये गये हों। वेदोंके — जो इन शास्त्रोंकी धारा हैं — विभिन्न सूक्त हैं। प्रत्येकका विशिष्ट काल है और वे एक-दूसरेसे बिलकुल स्वतन्त्र हैं। उनमें एक विशेषता यह है कि उनके एक भी प्रणेताका नाम भावी पीढ़ियोंको ज्ञात नहीं हुआ। वेदोंने पश्चिमके कई प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियोंके विचारोंको प्रेरणा दी है जिनमें आर्थर शॉपेनहॉर और प्रोफेसर मैक्समूलरके नाम लिये जा सकते हैं।

हिन्दू धर्मावलम्बियोंकी संख्या बीस करोड़से ऊपर होगी। धर्म उनके प्रत्येक आचारमें प्रविष्ट है। आध्यात्मिक पक्षमें हिन्दू धर्मका प्रधानस्वर है — मोक्ष अर्थात् सर्वव्यापी परमात्मतत्त्वमें आत्माका अन्तिम रूपसे विलीन हो जाना। धर्मसे सम्बन्धित मुख्य विशेषता है अखिल-वेदवाद और नीतिके स्तरपर सर्वाधिक द्रष्टव्य गुण है आत्मत्याग तथा उससे निःसृत उसका अनुभव सहिष्णुता। सामाजिक व्यवहारमें जाति सर्वोपरि थी और आचारमें पशुओंका बलिदान। जब हिन्दू धर्म अपेक्षाकृत अधिक कर्मकाण्डी हो गया तब राजपुत्र गौतम बुद्धने दीर्घकालतक तपस्या करके वस्तुओंके आध्यात्मिक मूल्यको जानकर यह उपदेश करना प्रारम्भ किया कि पशुबलि अनाध्यात्मिक है और प्रेमके परम स्वरूपकी अभिव्यक्ति जीवित प्राणियोंका नाश करनेकी क्रियासे विमुख होकर, उस सहिष्णुताकी भावनाको फैलाना है जो पहलेसे उनके धर्मका सिद्धान्त है। हिन्दू धर्म कभी ईसाई अथवा इस्लाम मतकी तरह प्रचारक धर्म नहीं रहा किन्तु, सम्राट् अशोकके समयमें देश-देशान्तरोंमें बौद्ध भिक्षु इस नये मतका प्रचार करनेके लिए भेजे गये। हिन्दू धर्मपर बौद्ध मतका कुछ वैसा ही सुधारक प्रभाव पड़ा जैसा कैथोलिक मतपर प्रोटेस्टेंट मतका हुआ था। किन्तु इस सुधारकी आन्तरिक भावना बहुत अलग थी। किसी हिन्दूके मनमें बौद्धोंके प्रति दुर्भावना नहीं थी। यह एक ऐसी बात है जो प्रोटेस्टेंटों और कैथोलिकोंके बारेमें नहीं कही जा सकती। कई बार कहा जाता है कि बादमें भारतमें बौद्ध मतका ह्रास हो गया। किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। बौद्ध भिक्षुओंने अत्यधिक लगनसे अपने मतका प्रचार किया और तब हिन्दू पुरोहितोंमें ईर्ष्या जागी। उन्होंने बौद्धोंको देशके सीमान्त भागों — तिब्बत चीन जापान ब्रह्मदेश और लंकामें खदेड़ दिया। किन्तु बौद्ध भावना भारतमें रह गई और उसने हिन्दुओं द्वारा मान्य प्रत्येक सिद्धान्तको बल दिया।

इस सम्बन्धमें भाषणकर्त्ताने जैनमतका धर्मके एक बहुत आकर्षक रूपकी तरह संक्षेपमें उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि जैनोंका दावा है कि जैनमत बौद्धमतसे एकदम स्वतन्त्र है यह उससे निकला हुआ नहीं है। यह मानते हुए कि उसके पवित्र शास्त्र मानवकृतित्वके परिणाम हैं वे अन्य मतवादियोंकी तरह यह दावा नहीं करते कि उनका धर्म अपौरुषेय है। शायद सारे धर्मोंमें जैनमत सबसे अधिक तर्कसंगत है और उसकी सर्वाधिक ध्यान देने योग्य विशेषता जीवमात्रके प्रति उसका हार्दिक सद्भाव है।

भाषणके बाद कुछ श्रोताओंने प्रश्न पूछे और श्री गांधीने उनके उत्तर दिये तथा कार्य वाही आभार प्रदर्शनके बाद समाप्त हुई जिसे श्री गांधीने मुसकराते हुए इस आधारपर रोकना चाहा कि वे प्रशंसाके कृतज्ञता प्रदर्शनके पात्र नहीं हैं।

व्याख्यान-मालाका दूसरा भाषण अगले शनिवार ता० ११ की शामको उसी भवनमें होगा।

[अंग्रेजीसे]

स्टार १०–३–१९ ५

३१२ श्री रिचकी विदाईपर भाषण

यह गांधीजीके उस भाषणकी संक्षिप्त रिपोर्ट है जो उन्होंने रिचके[1] विदाई-समारोहमें जोहानिसबर्गमें दिया था।

[मार्च ९, १९०५]

श्री गांधीने कहा कि वे श्री रिचके चरित्रके बारेमें और अपने दफ्तरमें उनके वास्तविक कार्यके बारेमें अपने प्रशंसात्मक भाव प्रकट करना चाहते हैं। उन्होंने श्री रिचके साथ अपने सम्बन्धोंका इतिहास बताया और कहा कि हम दोनों भाई-भाई जैसे प्रेम-भावसे परस्पर आबद्ध रहे हैं। श्री रिचने पिछले साल प्लेगके समय बहुत आत्मत्याग दिखाया था और प्लेगसे पीड़ित भारतीयोंकी सेवा करनेके लिए बहुत श्रम[2] की थी। उन्होंने उसमें यह खयाल भी नहीं किया कि उनके ऊपर इसका सम्भावित परिणाम क्या होगा। श्री गांधीने इसकी चर्चा विशेष जोर देकर की। उन्होंने अपना खयाल बताते हुए कहा कि श्री रिच जिस कारणसे स्वदेश लौट रहे हैं वह उनके ऊपर ईश्वरका अनुग्रह है और उन्हें इसमें कोई शक नहीं कि जो कुछ घटित हुआ है उसीमें उनका सर्वोत्तम हित होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २५-३-१९०५

१. एल॰ डब्ल्यू॰ रिचने १९०३ में अपना व्यवसाय छोड़ा और गांधीजीके मुंशी हो गये। वे थियॉसॉफिस्ट थे और उन्होंने गांधीजीको थियॉसॉफिस्ट मित्रोंसे परिचित कराया। वे सन् १९०५ में कानून पढ़नेके लिए इंग्लैंड गये और वहाँ दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंकी ओरसे पत्रोंमें बार-बार लेख लिखकर बहुत-सा उपयोगी काम करते रहे।

२. इस घटनाके सम्बन्धमें गांधीजीने बादमें लिखा: "श्री रिचका परिवार बड़ा था। वे खतरेमें कूदनेके लिए तैयार थे, किन्तु मैंने उन्हें रोक लिया। [illegible] इसलिए उन्होंने [illegible] दफ्तरका काम संभाला।" (आत्मकथा भाग ४ अध्याय १५)। हम यहाँ यह बता दें कि *इंडियन ओपिनियनमें* [illegible] रिपोर्ट छपी है [illegible] उनकी सूचीमें उनका नाम नहीं दिया।

३१३. एक राजनीतिक डाक्टरी रिपोर्ट

पॉचेफस्ट्रूमके स्वास्थ्य-अधिकारीने नगर-परिषदके निर्देशसे उस शहरके भारतीय मुहल्लोंकी हालतपर एक रिपोर्ट तैयार की है। जिन परिस्थितियोंमें यह तैयार की गई है वे जरा विलक्षण हैं। जैसा कि हमारे पाठकोंको मालूम है, पॉचेफस्ट्रूमके लोग भारतीय मुसलमानोंके एक मसजिद बनानेके विचारसे बड़े बौखला उठे हैं। नगर-परिषदकी बैठकमें प्रतिकूल कानूनी सलाहके बावजूद सदस्योंने मसजिद बनानेका विरोध करनेका निश्चय किया और एक प्रस्ताव पास करके स्वास्थ्य-अधिकारीको निर्देश भी दिया कि वह शहरके उस हिस्सेका निरीक्षण करे और तुरन्त परिषदको रिपोर्ट दे। लोग सोचेंगे कि मसजिद बनाने और आसपासके मकानोंकी स्वच्छता-विषयक स्थितिके बीच कोई सम्बन्ध नहीं है — मसजिद तो विशुद्ध रूपमें धार्मिक आराधनाकी इमारत है जो कभी भी रहनेकी जगहके तौरपर काममें नहीं लाई जाती। तथापि पॉचेफस्ट्रूमकी नगर-परिषदको तो मेमने और भेड़ियेवाली कहानीके भेड़ियेके समान कदम उठानेके लिए किसी आरोपकी जरूरत थी। स्वास्थ्य-अधिकारी डॉ॰ फीएसने परिषदके वफादार नौकरके तौरपर, अवसरके अनुकूल तत्परता दिखाकर उसके इच्छानुसार एक रिपोर्ट दे दी है। यह रिपोर्ट एक विलक्षण वस्तु है। डॉक्टरने कहा है:

> कुल मिलाकर अहाते काफी साफ हैं। मगर यदि कोई बीमारी फैल गई तो उन्हें छूत-रहित करना बहुत कठिन होगा; क्योंकि वे ज्यादातर सब आकार-प्रकारोंकी झोंपड़ियोंके भोंडे समुदाय-मात्र हैं।

कुदरतन सवाल उठता है कि यह अधिकारी इस सारे समय क्या करता रहा? ट्रान्सवालमें प्लेगको आये अब एक बरस हो गया है और अबतक ये अहाते खतरेके उद्गम स्थान नहीं पाये गये थे। आज वे शहरके लिए अविलम्ब खतरेकी चीजें हो गये हैं और उनका इलाज तुरन्त होना चाहिए — प्लेगकी रोकथाम करनेके लिए नहीं, मसजिद बनाना रोकनेके लिए। अगर यह इतने खुले तौरपर बेईमानीकी बात न होती तो निस्सन्देह इसे भोंडापन तो माना ही जाता। डॉक्टरका कथन है कि हरएक अहातेमें स्वच्छताकी सुविधाएँ मौजूद हैं। परन्तु, चूँकि इस प्रकारका वक्तव्य नगर-परिषदके प्रयोजनके लिए बहुत हानिकारक है इसलिए सचमुच उन्हें कहना ही चाहिए था कि ज्यादातर मामलोंमें स्नानका पानी सड़कोंपर फेंक दिया जाता है। उसने यह नहीं बताया कि पॉचेफस्ट्रूमके कितने यूरोपीय लोग भी स्नानका पानी सड़कोंपर फेंक देते हैं और जहाँतक हमारा खुदका सम्बन्ध है हमें प्रबल शंका है कि जो भारतीय ऐसा करते हैं उनके लिए और कोई चारा ही नहीं है। इतनेपर भी डॉक्टर उपनियमोंके उल्लंघनका मामला तैयार नहीं कर सका इसलिए उसने कहा है:

> भले ही प्रत्यक्ष रूपमें उपनियमोंका उल्लंघन न हुआ हो फिर भी नियमोंमें वायु-क्षेत्रकी जो कमसे-कम मर्यादा है उसके अनुसार ही मकान बनाये गये हैं, और कमरोंमें हवा और रोशनीका इन्तजाम बहुत खराब है।

हमें कौतूहल है कि क्या पॉचेफस्ट्रूम-नगरपालिकाके उपनियमोंमें रोशनी और हवाका खराब इन्तजाम बरदाश्त किया जाता है? अगर ऐसा है तो नगरपालिका उपनियमोंमें संशोधनकी माँग क्यों नहीं करती ताकि वे स्वास्थ्य और स्वच्छताकी जरूरत पूरी करें? हम तो सचमुच

यह जानते हैं कि पॉचिफस्ट्रूम नगरपालिकाने सरकार द्वारा बनाये हुए स्वास्थ्य-सम्बन्धी उप नियमोंको स्वीकार किया है और वे नियम सख्त और अत्यधिक व्यय-साध्य हैं। डॉक्टरने रिपोर्टके स्वास्थ्य-सम्बन्धी हिस्सेको यह कहकर समाप्त किया है कि कुल मिलाकर उनका रहन-सहन मामलेके स्तरके अनुकूल नहीं है और शहरके बीचोंबीच बने हुए ये मकान और इनके निवासी लोक-स्वास्थ्यके लिए भयंकर खतरेके कारण हैं। रिपोर्टमें जिसमें इतनी स्पष्टताके साथ परस्पर-विरोधी बातें कही गई हैं हमें ऐसी कोई बात दिखलाई नहीं पड़ती जिससे डॉक्टरका दिया हुआ मत सही हो। और, मानो डॉक्टरकी दी हुई स्वास्थ्य सम्बन्धी रिपोर्ट काफी नहीं थी इसलिए वह आगे बढ़कर कानूनी सलाह देता है और सुझाता है कि सरकारसे कहना चाहिए कि सब एशियाइयों और बाकायदा परवाना प्राप्त व्यापारियोंके अलावा दूसरे लोगोंको बाजारोंमें रहनेके लिए बाध्य किया जाये।

यद्यपि हमारा मतलब यह रिपोर्ट अपने-आपमें ही खण्डित है जिस मकानपर डॉ. फ़ीटसनें अपना निर्णय दिया है उनपर एक निष्पक्ष सम्मति दे देना कदाचित् उपयोगी होगा। सद्भाग्यसे हमारे पास जिला-सर्जन डॉ. टॉमस की लिखितकी रिपोर्ट मौजूद है जो उन्होंने पॉचिफस्ट्रूमके भारतीयोंके अनुरोधसे तैयार की है। वे कहते हैं

> मुझे यह कहते खुशी होती है कि विभिन्न मकानोंको देखनेपर मेरे मनपर हर जगहका बहुत अच्छा असर पड़ा। मैंने अन्दरसे और बाहरसे भी देखा है। कुल बातोंका खयाल करते हुए, पीछेके आँगन बिलकुल साफ और स्वास्थ्यकर हैं। मैंने कूड़के ढेर कहीं नहीं देखे। मुझे मालूम हुआ कि सारा कूड़ा रोजाना ठेकेदार ले जाया करता है। शहरके दूसरे हिस्सोंमें तमाम यही बाल्टी-पद्धति काममें लायी जाती है। इसकी भी सफाईका प्रबन्ध है, जो सफाई विभाग द्वारा किया जाता है। मैंने जो-कुछ देखा उसमें मैं कोई दोष नहीं बता सकता। जहाँतक लोगोंके स्वास्थ्यकी बात है मुझे कोई दोष दिखलाई नहीं पड़ता। प्रत्येक व्यापार-स्थानके पीछे उससे अलग मैंने एक प्रकारका भोजन-गृह-सा देखा जिसमें ५ से ८ आदमियों तकके बैठनेका स्थान है और हरएकमें उसका रसोईघर है। ये सब भी साफ-सुथरे रखे जाते हैं।

डॉक्टरके ओर हुए प्रत्येक घरकी विस्तृत रिपोर्ट हमारे सामने मौजूद है। यह एक निष्पक्ष डॉक्टरी रिपोर्ट है जो एक ऐसे सज्जनकी दी हुई है जिसे किसी मालिकको खुश नहीं करना है। उसने देखा है कि भारतीय मकान सफाईकी दृष्टिसे आपत्ति करने योग्य नहीं हैं।

हम देखते हैं कि डॉ. फ़ीटसकी रिपोर्ट नगर-परिषदने सरकारके पास भेज दी और हम यह देख रहे हैं कि सरकार उसपर क्या करती है। यह रिपोर्ट अप्रमाणित एक ऐसा दस्तावेज़ है जिसका सामान उसकी अप्रामाणिकताके प्रतिरूप है।

[अंग्रेज़ीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-३-१९०५

३१६ पत्र : दादाभाई नौरोजीको

२१–२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़, रिसिक व एंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मार्च १८, १९०५

सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२ केनिंगटन रोड
लन्दन

प्रिय श्री दादाभाई,

यह पत्र आपका जोहानिसबर्गके श्री एल० डब्ल्यू० रिचका परिचय दे सकेगा। श्री रिच और मैं कई बरसोंसे एक दूसरेको अच्छी तरह जानते हैं। श्री रिचके भारतीयोंके पक्षमें खूब निश्चित विचार हैं और कई बातोंके साथ भारतीय हितकी ज्यादा ठीक सेवा कर सकनेके खयालसे वे बैरिस्टरी पढ़ने इंग्लैंड रवाना हो रहे हैं।

मैं बड़ी कृपा मानूँगा यदि आप अपनी सहायताका लाभ उन्हें दे सकें। श्री रिचने दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय प्रश्नका अध्ययन किया है।

आपका सच्चा,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (जी० एन० २२६६) से।

३१७ हिन्दू धर्म

[जोहानिसबर्ग
मार्च १८, १९०५]

श्री गांधीने शनिवारकी शामको जोहानिसबर्ग थियोसॉफिकल लॉजके तत्त्वावधानमें मेसॉनिक टेम्पलमें हिन्दू धर्मपर दूसरा भाषण दिया। भवन खचाखच भरा था।

पिछले भाषणका सारांश देनेके बाद वक्ताने कहा कि दूसरे भाषणमें हिन्दू धर्मके उस कालका निरूपण किया जायेगा जिसे उसका अद्वितीय युग कह सकते हैं। बुद्धके उपदेशोंके प्रभावसे जो आन्तरिक सुधार हुए उनके बाद हिन्दू धर्म मूर्तिपूजाका अत्यधिक अभ्यस्त हो गया। वक्ताने बातको निर्दोष दिखानेके लिए कई स्पष्टीकरण किये किन्तु वे इस तथ्यको अस्वीकार नहीं कर सके कि हिन्दू मुख्य रूपमें लकड़ी-पत्थर जैसी जड़ चीजें पूजते हैं। हिन्दू दार्शनिक ईश्वरको सरलतासे पुरुषतम आत्माके रूपमें जानते और पूजते थे तथा अद्वैतवादके आधारपर उच्चतम कल्पनातक पहुँच जाते थे। इसी भाँति अज्ञानी जन-साधारण इससे निम्नतम अवस्थामें गिर जाते थे। यदि जाग्रत-बुद्धि ईश्वरका अनुभव निर्गुण आत्माके रूपमें नहीं कर पाती

जो उसके विविध सगुण रूपोंके माध्यमसे उसको पूजनेमें उसे कोई कठिनाई नहीं होती। अनेक उसे सूर्य चन्द्र और तारोंके माध्यमसे पूजते हैं और अनेक उसे लकड़ी-पत्थरके रूपमें भी पूजते हैं। दर्शन-प्रधान हिन्दू धर्मकी सहिष्णु भावनाके कारण पूजाका यह प्रकार अंगीकार करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। इस प्रकार हिन्दू-जीवनका चक्र आनन्दसे चलता रहा। किन्तु तभी अरबके मरुस्थलमें एक ऐसी शक्ति उदित हुई जो विचारोंमें क्रान्ति उत्पन्न किये और जीवनपर अपनी स्थायी छाप छोड़े बिना रह नहीं सकती थी। मुहम्मद बचपनसे ही अपने आसपासके लोगोंको मूर्तिपूजा विलासपूर्ण असंयम और शराबखोरीमें डूबा देखकर मन ही मन क्षोभसे कुढ़ते रहते थे। उन्होंने यहूदी धर्मको पराजयी और ईसाइयतको पतित देखा। उन्होंने मूसा और ईसाकी ही तरह अनुभव किया कि उनके पास एक दिव्य सन्देश है। उन्होंने संसारको अपना सन्देश देनेका निश्चय किया और पहले अपने कुटुम्बी-जनोंको उसका पात्र चुना। जो लोग इस्लामको तलवारका धर्म मानते हैं वस्तुतः अपनेको उनसे अलग बताया और कहा कि वाशिंगटन इरविंगने इस्लाम धर्मपर अपने ग्रंथमें प्रश्न उठाया है "अपनी पहली अवस्थामें इस्लामके पास तलवार चलानेवाले लोग कहाँ थे? उनके विचारमें इस्लामकी सफलताका कारण अधिकतर उसकी सादगी और मनुष्यकी कमजोरियोंकी स्वीकृति है। मुहम्मदने सिखाया कि ईश्वर एक और केवल एक है और वे उसके पैगम्बर हैं। उन्होंने यह भी सिखाया कि आत्मोत्थानकारी प्रभावके रूपमें प्रार्थना नितान्त आवश्यक है। जो कर सकें ऐसे अपने समस्त अनुयायियोंको उन्होंने वर्षमें कमसे कम एक बार इकट्ठा होनेके लिए मक्काकी यात्राका विधान किया। और यह मानकर कि लोग धन-संग्रह करेंगे उन्होंने अपने अनुयायियोंसे अनुरोध किया कि वे उसका एक निश्चित अंश दान-कार्यके लिए धर्मबुद्धिसे अलग सुरक्षित कर दें। बहरहाल इस्लामकी मुख्य ध्वनि उसकी समताकी भावना थी। जो उसके दायरेमें आये उसने उन सबको ऐसे भावसे समान व्यवहार प्रदान किया जैसे भावसे संसारके किसी और धर्मने नहीं किया था। इसलिए जब ईसाके ९ वर्ष बाद उसके अनुयायियोंने भारतपर चढ़ाई की तब हिन्दू धर्म किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसे ऐसा लगा कि इस्लामको सफलता मिलकर रहेगी। जातिभेदसे ग्रस्त जनतापर समताके सिद्धान्तका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता था। इस आन्तरिक शक्तिके साथ तलवारकी ताकत भी जोड़ दी गई। वे कट्टर हमलावर जो समय-समयपर भारतमें आ घुसते थे यदि समझा बुझाकर सम्भव न होता तो तलवारके बलपर धर्म-परिवर्तन करनेमें हिचकते नहीं थे। मन्दिरोंपर मूर्तियाँ तोड़ते हुए उन्होंने लगभग सारा देश रौंद डाला और यद्यपि राजपूती शौर्य हिन्दुत्वकी ओर था किन्तु वह इस्लामके अचानक हमलेसे उसकी रक्षा करनेमें असमर्थ रहा। प्रारम्भमें हिन्दू धर्मकी भावनाके अनुरूप दोनों धर्मोंके समन्वयका प्रयत्न किया गया। वाराणसीमें लगभग १५वीं शताब्दीमें कबीर नामके एक सन्त हुए जिन्होंने हिन्दूधर्मके प्रधान सिद्धान्तोंको अक्षुण्ण रखकर और थोड़ा-बहुत इस्लामसे लेकर दोनों धर्मोंके एकीकरणकी चेष्टा की किन्तु उनका यह प्रयत्न बहुत सफल नहीं हुआ। [illegible] होकर मुसलमान विजेता भारतमें बड़ी संख्यामें घुस और जिसने उनकी पहली चोटको झेला उस पंजाबने सिख धर्मके संस्थापक गुरु नानकको जन्म दिया। उन्होंने अपने धर्मके सिद्धान्त कबीरसे लिए और उनमें [illegible] हिन्दू-तत्त्वको मिलाया। उन्होंने मुस्लिम भावनाओंका आदर करते हुए समझौतेके लिए हाथ बढ़ाया किन्तु यदि वह स्वीकार नहीं किया गया तो वे हिन्दू धर्मकी इस्लामके आक्रमणसे रक्षा करनेके लिए भी उतने ही तैयार थे। और इस तरह सिख धर्म इस्लामका सीधा परिणाम था। यह सर्वविदित है कि सिख कैसा बहादुर होता है और उसने [illegible] है। हिन्दू धर्मपर इस्लामका यह प्रभाव हुआ कि उसने सिख धर्मको जन्म दिया और धर्मके एक प्रधान गुण अर्थात् सहि

ष्णुताको उसके सच्चे और पूर्ण रूपमें व्यक्त किया। जिन दिनों कोई राजनीतिक प्रभाव काम नहीं करते होते थे तब बिना कठिनाईके हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेकी भावनाका आदर करते हुए और बिना किसी विघ्न-बाधाके अपना-अपना धर्म पालते हुए पूर्ण शान्ति और सद्भावनाके साथ-साथ रहते थे। हिन्दू धर्मने ही इस्लामको अवसर दिया जिसने अचूक अन्तर्दृष्टिसे सहिष्णुताकी भावनाको पहचाना और भारतपर शासन करनेमें उसे स्वयं अपनाया। इसके सिवाय हिन्दू धर्मने अपना लचीलापन इस तरह भी जाहिर किया कि भयानक संघर्षके बाद भी विशिष्ट वर्गों और साधारण जनताका बहुत बड़ा भाग एकदम अप्रभावित रह गया और हिन्दू धर्म संघर्षमें से ऐसा तरोताजा होकर निकला जैसे हम शीतल जलमें से स्नान करनेके बाद तेजस्वी होकर निकलते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि पहला धक्का जोरका लगा था किन्तु जल्दी ही हिन्दू धर्मने दृढ़तासे अपनेको फिर स्थापित कर लिया। वक्ताने फकीरों और योगियोंका भी उल्लेख किया और कहा कि यद्यपि फकीर इस्लामको और योगी हिन्दू धर्मको मानते थे तथापि उनकी जीवन-पद्धति लगभग एक-सी होती थी।

भाषणके अन्तमें अनेक दिलचस्प सवाल पूछे गये और सदाकी तरह सभा सधन्यवाद समाप्त हुई।

भाषण-मालाका तीसरा व्याख्यान अगले शनिवारको ८ बजे मेसॉनिक टेम्पलमें होगा।[1] व्याख्यानमें निम्नलिखित विषयोंपर प्रकाश डाला जायेगा भारतमें ईसाई मतका उदय हिन्दुओंपर प्रभावकी दृष्टिसे इस्लाम और ईसाई मतकी तुलना हिन्दू धर्मपर ईसाई मतका असर ईसाई मत और आधुनिक अथवा पाश्चात्य सभ्यताका मिश्रण भारतमें ईसाई मतकी प्रत्यक्ष असफलता और अप्रत्यक्ष सफलता राममोहनराय केशवचन्द्र सेन दयानन्द थियॉसॉफी ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज हिन्दू धर्मकी वर्तमान स्थिति उसकी दीर्घायु और जबर्दस्त जीवन-शक्तिका रहस्य।

[अंग्रेजीसे]

स्टार, १८-३-१९०५

१. स्टारमें तीसरे और चौथे भाषणका विवरण प्रकाशित भी हुआ हो तो उपलब्ध नहीं है। किन्तु इस भाषणका सारांश बादमें *इंडियन ओपिनियनमें* प्रकाशित हुआ था। देखिए, "चौथा व्याख्यान" १५-४-१९०५।

३१८ पत्र: उपनिवेश-सचिवको

ब्रिटिश भारतीय संघ

बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मार्च १४, १९०५

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
प्रिटोरिया

महोदय

मेरा संघ आपका ध्यान पॉचेफस्ट्रूम बजटकी संलग्न कतरनों[1] की ओर सादर आकर्षित करता है। उनमें इसी ४ तारीखको शनिवारके दिन पॉचेफस्ट्रूमके मार्केट स्क्वेयरमें भारतीय वस्तुभण्डारोंके सामने किये गये एशियाई-विरोधी प्रदर्शनका विवरण छपा है।

पॉचेफस्ट्रूमवासी ब्रिटिश भारतीयोंने मेरे संघको सूचना दी है कि प्रदर्शनकी कार्रवाई हिंसापूर्ण थी और उसमें ऐसे भाषण दिये गये जो लोगोंकी निकृष्टतम भावनाओंको उत्तेजित करें। भाषण समाप्त होनेपर शरारतके लिए आमादा लोग भारतीय वस्तु-भण्डारोंकी खिड़कियोंपर पत्थर फेंकने लगे। यदि पुलिस इस संकट-कालके लिए इस प्रकार सक्षम रूपसे तैयार न होती तो हिंसा कितनी बढ़ जाती यह कहना कठिन है। इसीलिए हानि खिड़कियोंके काँच तोड़े जाने तक ही सीमित रही। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रदर्शनकारियोंका नेतृत्व नगरके कुछ प्रमुख व्यक्ति कर रहे थे जैसे पॉचेफस्ट्रूम व्यापार-संघके अध्यक्ष, नगर-परिषदके एक प्रमुख सदस्य और सरकारी तथा अर्धसरकारी पदोंपर नियुक्त अन्य लोग। नगरमें एक मसजिद बनानेका प्रस्ताव है। यह बात भारतीय समाजके विरुद्ध जनताके पूर्वग्रहको उत्तेजित करनेके लिए उपयोगमें लाई गई। लेकिन मेरे संघको सूचित किया गया है कि प्रस्तावित मसजिदका स्थान —

(क) नगरके केन्द्रमें नहीं है
(ख) मुख्य आवागमनके मार्गोंपर नहीं है
(ग) नये होटलसे जिसपर, कहा जाता है कि १   पौंड खर्च हुए हैं कुछ दूरीपर है उससे संलग्न नहीं जैसा कि बताया जाता है।
(घ) यह स्थान एक पीछेकी गलीमें है और प्रस्तावित इमारतें पासकी किसी भी सड़कसे दिखाई नहीं देंगी।
(ङ) उस स्थानके बिलकुल आसपासकी इमारतें केवल लकड़ी और लोहेकी बनी हैं और प्रस्तावित मसजिदकी इमारतोंसे उनकी बनावट बहुत घटिया दर्जेकी रहेगी।

इसलिए मेरा संघ सादर निवेदन करता है कि पॉचेफस्ट्रूमके ब्रिटिश भारतीय सरकारसे यह जोरदार माँग करनेके अधिकारी हैं कि पॉचेफस्ट्रूममें एशियाई विरोधी आन्दोलन जिस ढंगसे चलाया जा रहा है वह उसको नामंजूर करती है और साथ ही वे सरकारसे यह आश्वासन पानेके हक-

१ ये उपलब्ध नहीं हैं।

घार भी है कि उनके प्राणों और उनकी सम्पत्तिकी रक्षा पूर्ण रूपसे की जायेगी। शायद सरकारको मालूम होगा कि पश्चिफस्ट्रूम महूरेवार संघ तथा उपनिवेशकी इसी तरहकी अन्य संस्थाएँ, जैसा कि उन्होंने कहा है, सरकारके हाथ मजबूत करनेके उद्देश्यसे आन्दोलन चलाती हैं। उनका कथन है कि सरकार उनकी माँगें स्वीकार करनेके लिए तैयार है और उनकी रायमें वह इसी उद्देश्यको लेकर इंग्लैंडकी सरकारसे इस समय बातचीत करनेमें संलग्न है।

मेरा संघ यह खयाल भी नहीं कर सकता कि सरकारका ऐसा कोई उद्देश्य हो सकता है। किन्तु संघके नम्र विचारसे सरकारकी स्पष्ट विपरीत घोषणाके अभावका गलत अर्थ लगाया जा सकता है और उससे आन्दोलनमें हिंसा तीव्र हो सकती है।

इसलिए मेरा संघ विश्वास करता है कि सरकार कृपा करके ऐसे उपाय करेगी जो पश्चिफस्ट्रूम तथा उपनिवेशके अन्य नगरोंके शान्तिप्रिय ब्रिटिश भारतीयोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए आवश्यक हों।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष,
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]

प्रिटोरिया आर्काइव्ज एल० जी० ९१ विविध फाइलें ९७/१ एशियाटिक्स १९० २/१९० ७।

३१९. नेटाल नगर-निगम विधेयक

नेटाल सरकारका २१ फरवरी १९० ५ का गजट हमारे सामने है। इसमें नगर-निगमोंसे सम्बन्धित कानूनको संशोधित और संघटित करनेके लिए एक विधेयक है। हम एक अन्य स्तम्भमें उसकी वे धाराएँ उद्धृत कर रहे हैं जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव ब्रिटिश भारतीयोंके प्रश्नपर पड़ता है। यह सरकारका इस विधेयकको पेश करने और कानूनके रूपमें पारित करनेका दूसरा प्रयत्न होगा। उसमें रंगदार व्यक्ति और असभ्य प्रजातियों की जो परिभाषाएँ दी गई हैं वे बहुत असन्तोषजनक हैं। उनसे "रंगदार व्यक्ति" की परिभाषासे पैदा हुई शरारत विधेयकमें दाखिल हो जायेगी। विधेयकके अनुसार, उक्त संज्ञामें दूसरोंके साथ-साथ प्रत्येक हॉटेंटॉट कुली बुशमैन या लस्कर सम्मिलित है। अब स्वयं कुली और लस्कर शब्दोंकी व्याख्या करनेकी जरूरत है। इनकी व्याख्या करनेका काम मजिस्ट्रेटोंसे लेकर काफिर पुलिस-सिपाहीतक कानूनके सभी प्रशासकोंपर छोड़ देना बहुत खतरनाक है। उदाहरणके लिए काफिर पुलिस-सिपाही कैसे जानेगा कि कौन कुली है और कौन लस्कर ? फिर, जब यह सभी जानते हैं कि कुली शब्द कितना घृणास्पद बन गया है तब उसे विधेयकमें रखा ही क्यों जाये ?

असभ्य प्रजातियों शब्दोंकी परिभाषा सम्बन्धित भारतीयोंके लिए अपमानजनक है और उनके वंशजोंके लिए तो और भी अपमानजनक है। सभ्यताकी एक अचूक कसौटी यह है कि जो आदमी सभ्य होनेका दावा करता है वह बुद्धिपूर्वक श्रम करनेवाला हो और वह श्रमका गौरव समझे और उसका काम ऐसा हो कि उससे उसके समाजके हितोंकी वृद्धि हो। इस कसौटीपर तुच्छसे-तुच्छ गिरमिटिया भारतीयको भी कसें तो वह खरा उतरेगा। फिर उसे असभ्य प्रजातिका

असभ्य क्यों कहा जाये? और यदि भारतीय मजदूरको असभ्य कहना ठीक भी हो — क्योंकि उसने शर्तोंमें बँधकर उपनिवेशकी सेवा करना मंजूर किया है — तो भी उसके वंशजोंपर यह अभिशाप क्यों लादा जाये? ऊँची श्रेणीके जिस भारतीय विद्यालयकी गवर्नर और भूतपूर्व प्रधानमन्त्रीने मुक्त और सुन्दर शब्दोंमें प्रशंसा की है, उसमें गिरमिटिया भारतीयोंके बहुत-से बच्चे हैं। ये बच्चे किसी भी समाजका मान बढ़ा सकते हैं। ये होशियार हैं और उन्नत शिक्षा पाते हैं। तब क्या इनपर "असभ्य प्रजातियोंका" बिल्ला लगाना उचित है? ऐसे भारतीयों तथा अन्य भारतीयोंके बीच अन्तर करना अकारण ही होगा क्योंकि हम विधेयकके निर्माताओंको विश्वास दिलाते हैं कि अनेक गिरमिटिया भारतीय बिलकुल उतने ही अच्छे हैं जितने कि अपना खर्च स्वयं उठाकर स्वतन्त्र लोगोंकी हैसियतसे इस उपनिवेशमें आये हुए कुछ दूसरे भारतीय। सच तो यह है कि अगर गिरमिटिया भारतीय किसी चीजके पात्र हैं तो इसके कि उनके साथ स्वतन्त्र भारतीयोंकी अपेक्षा ज्यादा अच्छा बरताव किया जाये क्योंकि वे इस उपनिवेशमें आनेके लिए आमन्त्रित और प्रेरित किये गये हैं और उन्होंने इसको समृद्धिशाली बनानेमें कम योग नहीं दिया है।

अब हम विधेयककी उपधारा २२ पर विचार करेंगे। स्वर्गीय श्री एस्कम्ब और स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सनने राजनीतिक मताधिकार विधेयक पास करते समय विधानसभामें उसकी सिफारिश इस आधारपर की थी कि उसका प्रभाव नगरपालिका-सम्बन्धी मताधिकारपर नहीं पड़ता है। उनकी इस घोषणाके प्रतिकूल हम देखते हैं कि संसदीय मताधिकार अधिनियम (पार्लमेंटरी फ्रैंचाइज ऐक्ट) की व्यवस्थाएँ नगरपालिका-सम्बन्धी मताधिकारपर लागू की जा रही हैं और यदि यह विधेयक ज्यों-का-त्यों कानूनके रूपमें स्वीकृत हो जाता है तो ऐसा कोई आदमी नगरपालिका-सम्बन्धी मताधिकार प्राप्त न कर सकेगा जो कि १८९६ के अधिनियम ८ के अन्तर्गत संसदीय मताधिकारके अयोग्य ठहरा दिया गया हो। अर्थात् जिन प्रजातियोंने अबतक प्रातिनिधिक-प्रणालीका उपभोग नहीं किया उनके सदस्य नगरपालिका-सम्बन्धी चुनावोंमें मतदाता होनेके अयोग्य ठहरा दिये जायेंगे भले ही उन्होंने अपने देशमें प्रातिनिधिक नगरपालिका-सम्बन्धी प्रणालीका उपभोग क्यों न किया हो। यह सभी जानते हैं कि भारतके सभी मुख्य शहरोंमें निर्वाचित नगरपालिकाएँ मौजूद हैं और ऐसी नगरपालिकाएँ सैकड़ोंकी संख्यामें हैं और हजारों मतदाता उनके सदस्योंका निर्वाचन करते हैं। उन लोगोंको अयोग्य क्यों ठहराया जाये? भारतीय समाजने नगरपालिका-सम्बन्धी चुनावोंकी बाबत कितने भारी आत्म-संयमसे काम लिया है, इसका विधेयकके निर्माताओंने कोई खयाल नहीं किया। उन्होंने नागरिकोंकी नामावलीमें अपने नाम दर्ज करानेका लोभ संवरण किया है, और उन्हें उसका पुरस्कार दिया गया है इस विचाराधीन अपमानजनक रूपमें! हम इस उपधाराको जान-बूझकर किया जानेवाला अपमान समझते हैं और हमें आशा है कि भारतीय समाजके ऐसे अपमानको विधानसभाके सदस्य अपना समर्थन प्रदान न करेंगे।

उपधारा १८२ द्वारा नगरपालिकाओंको अधिकार दिया जायेगा कि वे रंगदार लोगों द्वारा सड़कों पैदल-पटरियों और रिक्शा-गाड़ियोंके उपयोगका नियमन करनेके लिए उपनियम बना सकें। यहाँ "कुली" तथा रंगदार शब्दोंकी व्याख्या करना आवश्यक है और यह बतलाना कठिन नहीं है कि अगर वर्तमान व्याख्या कायम रखी गई तो ये उपनियम अत्याचारक जैसे भयानक साधन सिद्ध हो सकते हैं। स्पष्ट है कि यह उपधारा ट्रान्सवाल सरकारकी कुख्यात नीतियों और उस आन्दोलनका नतीजा है जो "रंगदार" लोगों द्वारा सड़की पटरियोंके उपयोगके बारेमें ट्रान्सवालमें अब भी चलाया जा रहा है।

उपधारा २० में यह व्यवस्था है कि शहरमें रहने और काम करनेवाले असभ्य प्रजातियोंके सब लोग अपना पंजीयन (रजिस्टरी) करायें। उन काफिरोंके पंजीयन करानेकी बात तो समझमें आ सकती है जो काम नहीं करते परन्तु जो गिरमिटिया भारतीय शर्तोंसे मुक्त हो चुके हैं उनका और उनके वंशजोंका जिनके बारेमें सामान्य शिकायत यह है कि वे बहुत ज्यादा काम करते हैं पंजीयन कराना जरूरी क्यों हो? क्या गिरमिटिया भारतीयके स्नातककी नौकरी चाहनेवाले लड़केका पंजीयन किया जायेगा?

विधेयकमें और भी आपत्तिजनक उपधाराएँ हैं मगर हम फिलहाल इस संक्षिप्त मीमांसामें उनपर ध्यान नहीं देते। सारे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंको कुचलनेका जो प्रयत्न किया जा रहा है यह विधेयक उसके बहुत-से प्रमाणोंमें से केवल एक है क्योंकि इस समय जो आन्दोलन चल रहा है वह यद्यपि सारेका-सारा नाममात्रके लिए रंगदार लोगोंके खिलाफ है तथापि उसके वास्तविक लक्ष्य ब्रिटिश भारतीय हैं। जो नीति बरती जा रही है, वही है जिसका आरोप युद्धके पूर्व किम्बरलेके अपने प्रसिद्ध भाषणमें लॉर्ड मिलनरने इवेतर गोरोंके सिलसिलेमें बोअरोंपर किया था। लॉर्ड महोदयने उसे छेड़खानीकी नीति कहा था। फिर भी इवेतर गोरे अपने ऊपर लादी जानेवाली राजनीतिक अयोग्यताओंके बावजूद बेहद खुशहाल थे और भारतीयोंकी अपेक्षा उन्हें बरदाश्त करनेमें ज्यादा समर्थ भी थे। अगर इवेतर गोरोंके प्रति व्यवहार छेड़खानीकी नीति कहा जाये तो दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतीयोंके प्रति जो नीति बरती जा रही है उसे हम क्या कहेंगे? जैसा कि नेटालकी विधानसभाके एक सदस्यने एक बार कहा था औप-निवेशिक आदर्श ऐसा होना चाहिए कि दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके जीवनको जितना हो सके कष्टमय बना दिया जाये जिससे उनका धैर्य समाप्त हो जाये और वे इस देशको छोड़कर चले जायें।

इस अग्नि-परीक्षामें अब ब्रिटिश भारतीयोंका कर्तव्य क्या है? इसका उत्तर सीधा-सादा है। धैर्य भारतीयोंकी विशेषता है और यह तथ्य उन्हें किसी भी कारणसे नहीं भूलना चाहिए। यह उनकी मूल्यवान विरासत है और यदि वे इसके साथ केवल सचाईकी एक बड़ी मात्रा और जोड़ दें और सम्राट्की प्रजाकी हैसियतसे अपने अधिकारोंके अपहरणका एक होकर निरन्तर विरोध करते रहें तो वे फिर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं — भले ही उनके सामने कठिनाइयाँ क्यों न हों। उनमें अविचल पैगम्बरकी श्रद्धा होनी चाहिए, जो ईश्वरमें जीवन्त विश्वाससे उत्पन्न साहसके साथ शत्रु-दलका मुकाबला करनेके आदी थे और जिन्होंने अपने शिष्योंके याद दिलानेपर कि शत्रुओंकी भारी संख्याके मुकाबले वे केवल तीन ही हैं यह मुँहतोड़ उत्तर दिया था हम तीन नहीं चार हैं क्योंकि सर्वशक्तिमान प्रभु अदृश्य रूपमें हमारे साथ हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-३-१९०५

३२०. केपका सामान्य विक्रेता विधेयक

हमें यह देखकर प्रसन्नता है कि केप-संसदके वर्तमान अधिवेशनमें जो विक्रेता-विधेयक पेश किया जानेवाला है उसके सम्बन्धमें केपके ब्रिटिश भारतीय बराबर आन्दोलन करते रहे हैं। सर विलियम बोर्न और माननीय एडमंड पॉवेलके नेतृत्वमें उनका एक शिष्टमण्डल माननीय महान्यायवादी (अटर्नी-जनरल) से पहले ही मिल चुका है। तथापि हमें यह स्वीकार करना होगा कि श्री सैम्सनके ऊपर उत्तरसे हमें निराशा हुई है। उनके लिए यह कह देना बड़ा सरल है कि "किसी यूरोपीय भाषामें हिसाब रखनेके प्रश्नका समाधान करनेके लिए कोई आवासी मजिस्ट्रेट बाध्य नहीं है। विधेयकमें विधान है कि वह चाहे तो उसका समाधान करे, चाहे न करे।" हम सब जानते हैं कि इन विवेकाधिकारोंका अर्थ क्या है। अतीतमें इनका दुरुपयोग किया गया है और भविष्यमें नहीं किया जायेगा ऐसा कोई नियम नहीं है। हम यह आश्वासन माननेके लिए बिलकुल तैयार हैं कि विधेयक "भारतीयोंपर प्रहार नहीं है।" परन्तु जहाँतक विवेकाधिकारका सम्बन्ध है यदि उसका उपयोग इस प्रकार करनेकी गुंजाइश है तो विधेयकका अर्थ प्रहार करना ही होगा। हम साहसपूर्वक कहते हैं कि यह विधेयक निःसन्देह ऐसा है जो भारी पैमानेपर उत्पीड़नका साधन बन जायेगा। फिर, महान्यायवादीने बहस करते हुए कहा कि प्रश्न किसी यूरोपीय भाषामें हिसाब-किताब रखनेका है तब उनका ध्यान मुख्य मुद्देपर बिलकुल नहीं गया। विधेयक तो इससे बहुत आगेतक जाता है और परवाना-अधिकारीको अधिकार देता है कि अर्जदारको कोई यूरोपीय भाषा न जाननेकी बिनापर परवाना देनेसे इनकार कर दे। हमें अंग्रेजीमें हिसाब-किताब रखनेके बारेमें कोई आपत्ति न होगी। यह योग्य मुनीमोंके द्वारा कराया जा सकता है। परन्तु अर्जदार कोई यूरोपीय भाषा जाने यह आग्रह करना बिलकुल दूसरी ही बात है। अगर इस उपधाराका उद्देश्य धोखा-धड़ीको रोकना है तो हम नहीं समझ सकते कि हिसाब-किताब अंग्रेजीके अलावा किसी भी यूरोपीय भाषामें क्यों रखा जाये। यदि यह परिवर्तन सिर्फ हिसाब-किताबतक ही सीमित रखा जाये और परवाना-प्राप्त लोगोंतक विस्तृत न किया जाये तो इस धारामें से भारतकी महान भाषाओंके प्रति अपमानका दोष निकल जायेगा। विद्वान महान्यायवादी आगे चलकर भारतीयोंको एक प्रवचन सुनाने लग पड़ते हैं :

> मैं ऐसी बातोंके बारेमें नहीं कह रहा हूँ जिन्हें मैं जानता नहीं। मैं व्यवसायिक आदमी हूँ और स्थितिसे परिचित हूँ। उदाहरणके लिए, रविवारके दिन भारतीयोंके व्यापार करनेकी बात ही ले लीजिए। क्या आप मुझसे यह कहना चाहते हैं कि भारतीय व्यापारी रविवारको व्यापार नहीं करते?

हम बड़े आदरके साथ निवेदन करते हैं कि वे नहीं करते। और अगर जहाँ-तहाँ करते भी हैं तो उनका महकमा क्या कर रहा है? क्या केपमें रविवासरीय व्यापार-कानून नहीं है? क्या गैरकानूनी रविवासरीय व्यापार कड़ाई करके बन्द नहीं किया जा सकता? और अगर हम इन दलीलोंके जालमें आ जायें कि आप भी तो करते हैं तो क्या गैरकानूनी व्यापार भारतीयोंतक ही सीमित है? इसके अलावा यह दुःख और आश्चर्यकी बात है कि केपके कानूनी पेशवरोंके नेताने अपनी व्यवस्थाके समर्थनमें एक ऐसी दलील पेश करके जिसका उस विषयपर

कोई असर नहीं पड़ता कानूनकी परम्पराओंकी अवहेलना की है क्योंकि रविवारको गैरकानूनी व्यापार करने और भारतीय व्यापारियोंको किसी एक यूरोपीय भाषाका ज्ञान रखनेके बीच क्या सम्भव सम्बन्ध हो सकता है? परवानेके अर्जदारके लिए किसी यूरोपीय भाषाका ज्ञान आवश्यक करके वे रविवासरीय व्यापारको कैसे रोकेंगे? माननीय सज्जन आगे कहते हैं

> भारतीयोंके सम्बन्धमें एक कठिनाई और है। वे अक्सर अपने परिवारोंके साथ निकलते हैं और सारा परिवार व्यापार करता है। अगर व्यापारी थक जाता है तो उसकी पत्नी कुछ देर काम चलाती है; और जब वह थकती है तो बच्चे दुकान देखते हैं। उन्हें मालूम होता कि यूरोपीय लोगोंको दूसरे ही ढंगसे रहना पड़ता है। उन्हें अपने बच्चोंको जिनके बहुत बड़े हिस्सेके लिए स्कूलोंमें भेजना पड़ता है इसलिए वे उन लोगोंके साथ ठीक तरहसे होड़ नहीं कर सकते जिनपर ये शामिल नहीं हैं।

हमें यह कहनेमें कोई सकोच नहीं कि वक्तव्य देते समय उक्त माननीय सज्जन भारतीयोंको छोड़कर और लोगोंकी बात सोच रहे थे क्योंकि जब हम यह कहते हैं कि ऐसे भारतीय बहुत ही कम हैं जिनकी पत्नियाँ बिक्रीके काममें उनकी मदद करती हैं तो हम जानकारीके साथ कहते हैं। हाँ ज्यादा गरीब दुकानदारोंके बच्चे ऐसा भले ही करते हों इससे इनकार करनेके लिए हम तैयार नहीं हैं। परन्तु भारतीय बच्चोंकी शिक्षाके प्रति ईर्ष्या-भाव ही इसका ज्यादातर कारण हो सकता है, और कुछ नहीं। भारतीयोंकी शिक्षाके मार्गमें हर तरहकी बाधा डालना और फिर यह कहना कि माता-पिता अपने बच्चोंको पढ़ाते नहीं न्यायसंगत नहीं है। क्या यह असमानता — अगर वह नहीं हो तो — भारतीय दुकानदारसे यूरोपीय भाषा जाननेकी अपेक्षा करके दूर की जायेगी?

यह कहीं ज्यादा अच्छा और गौरवपूर्ण होता अगर श्री सैम्पसनने कोई समझौता कराया होता और भारतीयोंकी भावनाके प्रति कुछ लगाव दिखाया होता। विक्रेता-परवाना अधिनियमका सिद्धान्त ऐसा है, जिसे दक्षिण आफ्रिकाकी वर्तमान परिस्थितियोंमें सब सही विचार करनेवाले लोग मंजूर करेंगे। महान्यायवादीका सारा तर्क जहाँतक वह संगत है, बताता है कि सब दुकानदारोंका हिसाब-किताब अंग्रेजीमें रखा जाना चाहिए। अगर यह बात है तो उपधारामें इसे उसी तरहसे कहना चाहिए। इससे सारी आलोचना व्यर्थ हो जायेगी और विधेयकके उपबन्धोंपर अमल करानेमें कानून-विभागको बहुत मदद मिलेगी क्योंकि तब उन लोगोंमें से अधिकतर, जिनपर कि विधेयकका असर पड़नेकी सम्भावना है उन उपबन्धोंको स्वीकार कर लेंगे।

यहाँ सरसरी तौरपर हम अपने पाठकोंका ध्यान एक विचित्र प्रासंगिक जानकारीकी ओर भी खींचना चाहते हैं जो श्री सैम्पसनने शायद अनजाने सरकारके रुखके सम्बन्धमें दे दी है। उन्होंने कहा

> हालांकि यिडिश भाषाको प्रवासियोंके निमित्त एक यूरोपीय भाषाके रूपमें स्वीकार किया गया है, वह उस रूपमें उन हिसाब-किताबपर लागू नहीं होती जो किसी यूरोपीय भाषामें रखा जाता है।

१. यहूदियोंकी एक प्राचीन भाषा जिसमें अनेक यूरोपीय भाषाओंके शब्द मिले हुए हैं।

स्पष्ट है कि सरकार जरूरत पड़नेपर किसी कानूनको कार्यान्वित करानेके लिए किसी भाषाको यूरोपीय बना सकती है और दूसरे कानूनको कार्यान्वित करानेके लिए उसे गैर-यूरोपीय भी ठहरा सकती है।

उपर्युक्त लेख लिखनेके बाद महान्यायवादीके साथ मुलाकातकी पूरी रिपोर्ट प्राप्त हुई। उससे मालूम होता है कि किसी यूरोपीय भाषाके ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाली आपत्तिजनक उपधारा वापस ले ली जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-३-१९०५

३२१ केपके वकील

केपका विधिवत् स्थापित वकील-मण्डल (इनकार्पोरेटेड लॉ सोसाइटी) एक विधेयक पास कराना चाहता है जिसके द्वारा उसका इरादा केप-स्थित सर्वोच्च न्यायालयके वकील-मण्डल और अन्य छोटी अदालतोंके वकील-मण्डलोंमें रंगदार वकीलोंको प्रवेश पानेसे रोकनेका है। ब्रिटिश साम्राज्यके किसी भी देशमें ऐसे कानूनका उपक्रम किया गया हो यह हम नहीं जानते। अबतक केपको दक्षिण आफ्रिकी उपनिवेशोंमें सबसे उदार और रंग-भेदसे सर्वाधिक मुक्त होनेकी प्रतिष्ठा प्राप्त रही है। जिस उपनिवेशकी परम्पराएँ ऐसी रही हों उसमें ऐसे लोगोंके एक समुदायका होना जिन्हें समाजमें सबसे बुद्धिशाली माना जाता है, और जो खराबसे-खराब किस्मके वर्ण-भेद कानूनको प्रोत्साहित करना चाहते हैं एक उल्लेखनीय बात है क्योंकि इस प्रकारकी कार्रवाईका कोई औचित्य दिखलाई नहीं पड़ता। हम प्रस्तावित विधेयकको लन्दनके इन्स ऑफ कोर्ट्स और इनकार्पोरेटेड लॉ सोसाइटीकी भी नजरोंमें लाना चाहते हैं। हम जानना चाहेंगे कि इस नितान्त गैरकानूनी प्रस्तावके बारेमें उनका कहना क्या है। अबतक यह माना जाता रहा है कि किसी एक इन्स ऑफ कोर्टकी परीक्षा पास करके निकले हुए बैरिस्टरके लिए सारा ब्रिटिश साम्राज्य बैरिस्टरी करनेके लिए खुला है। क्या अब यूनियन जैक फहरानेवाला केप उपनिवेश इनके बनाये हुए नियमोंको किनारे रख देगा और अगर किसी बैरिस्टरकी चमड़ी काली हो तो उन्हें बैरिस्टरी न करने देगा?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १८-३-१९०५

३२४ नेटालकी भारतीय विरोधी प्रवृत्ति

फरवरी २८के नेटाल *गवर्नमेंट गज़टमें* बन्दूकोंके उपयोगका नियमन करनेवाला एक विधेयक प्रकाशित हुआ है। उसका खण्ड ४ वतनियों और एशियाइयों द्वारा बन्दूकोंके उपयोगसे सम्बन्ध रखता है। अन्यत्र हम उस धाराएँ प्रकाशित कर रहे हैं। जाहिर है कि विधेयकके निर्माताओंने अगमन सहज वृत्तिसे एशियाइयोंको वतनियोंके साथ मिला दिया है और इस मनोवृत्तिका ही हमने सदा दृढ़ता और आदरके साथ विरोध किया है। एक वर्ग और दूसरे वर्गके बीच भेद किया गया है इसलिए एशियाइयोंको तबतक न्याय प्राप्त नहीं हो सकता जबतक कि उन्हें वतनियोंसे अलग न माना जाये। वतनियोंका प्रश्न दक्षिण आफ्रिकाका बहुत बड़ा प्रश्न है। उनकी जनसंख्या बहुत बड़ी है। उनकी सभ्यता एशियाई या यूरोपीय सभ्यतासे बिलकुल भिन्न है। वे इस भूमिके ही आदिम हैं, इसलिए उन्हें अच्छा व्यवहार पानेका अधिकार है। परन्तु वे जो कुछ भी हैं उसके ही कारण कदाचित् प्रतिबन्धात्मक प्रकारके किसी कानूनकी ज़रूरत है। इसलिए, वह एशियाइयोंपर कभी लागू नहीं हो सकता। बन्दूकोंके इस मामलेमें एशियाइयोंको जो वतनी लोगोंके साथ जोड़ दिया गया है वह बहुत ही अनुचित है। बन्दूकें रखनेके सम्बन्धमें विधेयक द्वारा वतनी लोगोंपर जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं वैसे कोई प्रतिबन्ध ब्रिटिश भारतीयों-पर लगानेकी जरूरत नहीं है। प्रबल गोरे वतनी लोगोंको शस्त्र-सज्जित होनेसे रोक कर प्रबल बने रह सकते हैं। परन्तु क्या ब्रिटिश भारतीयोंको इस प्रकार रोकनेमें न्यायका ज़रा-सा भी अंश है? सभी जानते हैं कि जो ब्रिटिश भारतीय इस उपनिवेशमें बसे हैं वे लड़ाकू नहीं हैं। वे अत्यन्त सीधे-सादे हैं। फिर उन्हें वतनियोंके ही वर्गमें रखकर उनका अपमान क्यों किया जाये? क्या नेटालमें आनेवाला कोई अपरिचित व्यक्ति इस प्रकारके कानूनको देखकर यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा कि ब्रिटिश भारतीयोंका समाज बहुत तकलीफदेह होगा? ऐसे प्रसंग आते हैं जब कि कोने-किनारेमें रहनेवाले ब्रिटिश भारतीयोंको बन्दूक या रिवॉल्वरकी जरूरत हो। अगर यह विधेयक कानूनमें परिणत हो गया तो उन्हें साधारण अधिकारियोंके पास नहीं बल्कि वतनी मामलोंके सचिवके पास जिसका ब्रिटिश भारतीयोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है रिवॉल्वर या बन्दूक रखनेकी इजाज़तकी याचना करनेके लिए जाना होगा — मानो भारतीयोंके बन्दूक रखनेके बारेमें मजिस्ट्रेट लोग अपने विवेकका उपयोग करनेके अयोग्य हों। हमें लगता है कि क्या इस दुराग्रही तरीकेसे भारतीय-विरोधी पूर्वग्रहोंका पोषण करके सरकार ब्रिटिश भारतीयोंको मैत्रीपूर्ण तौरपर संतप्त नहीं कर रही है? हमें आशा है कि जब विधेयक नेटालकी संसदके सामने आयेगा उसमें संशोधन कर दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-३-१९०५

४२५. फुटकर मिनिटोंका मूल्य

किसी कामको शुरू करनेसे पहले उसको करनेके सोच-विचारमें ही कितना समय बीत जाता है। इस प्रकारका समय फुटकर मिनिट समझा जाता है। हम समयके इन टुकड़ोंकी कोई परवाह किये बिना छीज जाने देते हैं। नगण्य समझे जानेवाले इन छुट-पुट मिनिटोंका जोड़ लगानेपर वह जीवनका बड़ा भाग हो जाता है। और इनका सही उपयोग न करना आयुष्यको व्यर्थ खो देनेके बराबर है।

हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने शिक्षण सुधार और प्रगतिके सम्बन्धमें कम या ज्यादा चर्चा करता रहता है। खाली समयका सबसे बढ़िया उपयोग क्या किया जाये हम इसके लिए आयोजन करते हैं। परन्तु जब छुट-पुट समयमें अवकाशके थोड़े-बहुत मिनिट मिलते हैं तब स्त्रियाँ और पुरुष — उनमें भी विशेष रूपसे स्त्रियाँ — उनका खयाल मनसे उतार कर उन्हें खो देते हैं। जब समय मिल जायेगा तब हम क्या-क्या करेंगे इसके हवाई किले हम बनाते रहते हैं। समय तो पाव घंटेका आधे घंटेका अथवा थोड़े मिनटोंका ही मिलता है। उस समय हम कहेंगे कि कुछ नहीं अभी काफी समय नहीं है। इस प्रकार सुवर्ण अवसर बीत जाता है और हम स्वप्न ही देखते रहते हैं।

जिसे इस चीजकी आवश्यकता है, ऐसा व्यक्ति रोज मिलनेवाले चन्द शिलिंगोंकी परवाह न करे तो उसे हम कैसा मूर्ख बतायेंगे और फिर भी हम उसके समान ही आचरण करते हैं। समय नहीं मिलता इसके लिए मनमें दुःखित होते हैं और उन छुट-पुट शिलिंगोंके समान जिनका जोड़ एकाध बैंक-नोटके बराबर हो सकता है हम छुट-पुट मिनटोंका जिनको जोड़नेसे दिन बन सकते हैं आलसी बनकर खोते रहते हैं।

एक चौदाम नवयुवती महिला ऐसे मिनटोंका नित्य प्रति नियमपूर्वक उपयोग करनेसे इटालियन भाषा सीखनेमें कामयाब हो गई थी। एवं एक अन्य महिला इस प्रकारके फुरसतके समयमें दान-धर्मके लिए कढ़ाईका काम करके वर्ष-भरमें आश्चर्यजनक बड़ी रकम पैदा कर सकी थी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २५-३-१९ ५

सन्देह है कि क्या वैसी गश्ती चिट्ठीकी ओर हमने ध्यान आकर्षित किया है वैसी गश्ती चिट्ठियों द्वारा कानूनके अमलमें बाधा डालना उचित है। सन् १८९७ के अधिनियम २८ में ऐसा कुछ नहीं है जिससे अधिवास-प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना जरूरी हो। हमें इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि कोई भारतीय आग्रह करे तो वह प्रार्थनापत्र देकर कानूनकी रूसे संरक्षकको पास देनेके लिए मजबूर कर सकता है। तब फिर अधिवास-प्रमाणपत्र पेश करनेकी बात जरूरी तौरपर रखना अधिनियममें एक गैरजरूरी चीज जोड़ना है। इसलिए हम विश्वास करते हैं कि या तो उक्त गश्ती चिट्ठी वापस ले ली जायेगी या सरकार सन् १८९७ के अधिनियम २८ को जल्दी ही रद कर देगी।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-८-१९०५

३२९. भारतीयोंके प्रति सहानुभूति

जोहानिसबर्ग कांग्रिगेशनल चर्चके मुखपत्र *आउटलुकके* वर्तमान अंकमें "भारतीयोंके प्रति न्याय" शीर्षकसे एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसका सारांश हम अन्यत्र उद्धृत करते हैं। हमारा सहयोगी अनुभव करता है कि समाजके रंगदार हिस्सेको प्रभावित करनेवाले कुछ वर्तमान विचारोंके प्रति विरोध प्रकट करनेका समय आ गया है। वह कबूल करता है कि ब्रिटिश भारतीयोंका जिस तरह बंधसे विरोध किया जाता है वह घृणास्पद है। उसने विभिन्न स्थानोंमें एशियाई-विरोधी कार्रवाइयोंके विवरणोंको उनके अन्यायपूर्ण रुख और गलत वक्तव्योंके कारण तिरस्कारजनित ग्लानिसे पढ़ा है। वह स्वीकार करता है कि कुछ लोग वास्तवमें दक्षिण आफ्रिकामें एशियाइयोंकी उपस्थितिको सार्वजनिक हितकी बाधक मानते हैं। वह आपत्तिका कारण बतलाते समय कड़ाईके साथ ईमानदारी बरतनेकी हिमायत करता है और यह सही ही है। जब आपत्ति वास्तवमें रंग-विद्वेषपर आधारित हो तब भारतीयोंके विरुद्ध निराधार आरोप लगाना ठीक नहीं है। इसी प्रकार जब वे असुविधाजनक प्रतिस्पर्धी मात्र हों तब उनके रूपमें "सार्वजनिक स्वास्थ्यके लिए खतरा" खोज निकालना ठीक नहीं होगा। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय स्वयं अपनी ही कमी पूरी करते हैं। नेटालकी समृद्धि बहुत कुछ गिरमिटिया मजदूरोंपर ही निर्भर है। और, जैसा कि *आउटलुक* कहता है, उन धन्धोंमें जिन्हें उन्होंने खास तौरसे अपना ही बना लिया है भारतीयोंके बिना काम नहीं चल सकता। शराबसे परहेज करने और कानूनका आदर करनेके कारण वे उत्तम नागरिक बन गये हैं। हम यह कहनेका साहस करते हैं कि यदि हम जनमहाशयोंके कोप एशियाई प्रश्नपर तटस्थ होकर विचार करें तो अत्यन्त कठिन परिस्थितियोंमें भी भारतीय समाजके व्यवहारकी वे प्रशंसा ही करेंगे। ऐसे लाभकारी कानूनोंके होते हुए भी जिनकी ओर हम हालमें ध्यान आकृष्ट कर चुके हैं ब्रिटिश न्याय-भावनामें उनका विश्वास अडिग बना है। अन्तमें उनके साथ न्याय होगा ही। दक्षिण आफ्रिकाके सुसंस्कृत यूरोपीयोंमें भारतीयोंके मित्रोंकी संख्या लगातार बढ़ रही है। इसलिए एक दिन आयगा जब उनकी पुकार सुनी जायेगी। इस सर्वथा सामयिक लेखके लिए हम अपने सहयोगीको धन्यवाद देते हैं। जहाँ-कहीं भी *आउटलुक* पढ़ा जाता है उसकी प्रत्यक्ष ईमानदारी उदारता और बुद्धिमत्ताका आदर होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-८-१९०५

३३० तुच्छ शंका

पॉचेफस्ट्रूम पहरेदार संघ (पॉचेफस्ट्रूम विजिलैंस असोसिएशन) के मुखपत्रने इन स्तम्भोंमें प्रकाशित एक लेखके सम्बन्धका हवाला देकर हमें इज्जत बख्शी है। लेख उन तथाकथित गन्दी बस्तियोंके बारेमें था जिनमें मार्केट स्क्वेयरमें भारतीय रहते बताये जाते हैं। परन्तु, साथ ही पत्रने डॉक्टर विक्समनकी रिपोर्टकी ईमानदारीपर शंका भी की है। यह रिपोर्ट हमने यह बताते हुए प्रकाशित की थी कि पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय समाजपर गन्दगीका जैसा कोई आरोप न्यायपूर्वक नहीं लगाया जा सकता। हम बिलकुल नहीं जानते कि हमारा सहयोगी तथ्योंका इस तरह बार-बार मजाक क्यों उड़ाता है प्रतिष्ठित सज्जनोंका गलत अर्थ क्यों लगाता है या उनकी उपेक्षा क्यों करता है। ऐसा मालूम होता है कि अगर राजा कोई गलत काम नहीं कर सकता तो भारतीय कोई सही काम नहीं कर सकता। जिनपर विपरीत मत हावी हो गया हो उन्हें समझानेके लिए कोई कितना भी प्रमाण पेश करे, सब व्यर्थ होगा। हमें तो ऐसी नुक्ताचीनी करनेवाली टीका-टिप्पणियोंका उत्तर देना मरे घोड़ेको चाबुक लगाने जैसा मालूम होता है। हमारे ऐसा करनेका कारण केवल एक यह है कि पूर्वग्रहोंसे रहित पाठकोंको विचार करनेकी सामग्री मिले और हम जिस विषयकी पैरवी कर रहे हैं उसके औचित्य और अनौचित्यका वे ज्यादा न्यायपूर्वक निर्णय कर सकें। डॉ० विक्समनने भारतीय समाजके अनुरोधपर गत अक्टूबर मासके आरम्भमें जब कि भारतीय-विरोधी भावनाएँ अपनी उचित सीमाओंको भंग करने लगी थीं यह जाँच की थी। उन्हें अधिकार दिया गया था कि वे अपने ही समयमें अपनी सुविधाके अनुसार और जैसा भी तरीका ठीक समझें उस तरीकेसे यह जाँच करें। इसलिए सम्बद्ध भारतीयोंकी आपस उनके कार्यपर कोई सम्भव नियन्त्रण नहीं था। और न भारतीयोंका उनके आनेके बारेमें कोई सूचना ही दी जाती थी। इसके अलावा जिला-सर्जन (डॉ० विक्समन) ने इस तरहकी जाँच भी की जैसा कि उनकी रिपोर्टसे स्पष्ट है जिससे कि रातको बहुत भीड़ होनेका आरोप झूठा सिद्ध हो जाता है। परन्तु मालूम होता है कि बजटने हमारे वाद-विवादका पूरा मुद्दा ही चूक गया है। हमने दावा किया था कि डॉ० फ्रीएलकी रिपोर्टकी तहमें स्पष्ट राजनीतिक प्रयोजन है। उसके बावजूद वे सिद्ध नहीं कर सके कि भारतीयोंने नगरपालिकाके नियमोंका भंग किया है। उन्होंने कहा कि वे ऐसे ढंगसे रहते हैं जो गोरे अपने मानदण्डपर स्वास्थ्यजनक नहीं उतरता। यह मानदण्ड क्या है डॉक्टर फ्रीएलके अलावा कोई नहीं जानता। और अबतक बजटने हमारी बातोंका उत्तर नहीं दिया है। इसी बीच हमें मालूम हुआ है कि सरकारने काफी स्पष्टतासे घोषित कर दिया है कि नगरपालिका जो-कुछ करना चाहेगी वह अवैध होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-८-१९०५

१. देखिए "एक राजनीतिक कलंकी निर्णय" ११-३-१९०५।

३३१ सत्यका प्राच्य आदर्श

लॉर्ड कर्जनने दीक्षान्त-अभिभाषणमें घोषणा की है कि सत्यका उच्चतम आदर्श बहुत हदतक पाश्चात्य कल्पना है और "निःसन्देह, पाश्चात्य आचार-संहिताओंमें सत्यको प्राच्य देशोंसे पहले ही ऊँचा स्थान प्राप्त हो चुका था। प्राच्य देशोंमें जैसा पीछे जाकर हुआ वहाँ तो सदासे कुटिलता और कूटनीतिक चतुरताका ही अधिक आदर होता आया है।" हम वाइसराय महोदयसे सिफारिश करते हैं कि वे सत्य और असत्यके विषयमें प्राच्य शास्त्रों महाकाव्यों धार्मिक ग्रन्थों तथा नीति-सम्बन्धी अन्य रचनाओंकी निम्न शिक्षाओंपर ध्यान देनेकी कृपा करें और यदि वे सत्यका तथा इस देशके लोगोंका कुछ भी आदर करते हों—और हमें सन्देह नहीं कि वे करते हैं—तो भारतके वाइसराय कलकत्ता विश्वविद्यालयके कुलपति और एक अंग्रेज सज्जनकी हैसियतसे उनके सम्मानका तकाजा है कि वे अपने निराधार और आक्रमक आक्षेपोंको वापस ले ले।

दुर्लंघ्य मार्गोंको जीतो; क्रोधको अक्रोधसे, और असत्यको सत्यसे जीतो।—*सामवेद आरण्यकाल अर्कपर्व।*

सत्य ही जीतता है, झूठ नहीं। सत्यका ही वह मार्ग है जिसपर देव अर्थात् विद्वान चल सकते हैं। इसी मार्ग पर चलकर अपनी सब कामनाओंको पूर्ण कर चुकनेवाले ऋषि उस ब्रह्ममें लीन होकर मुक्त हो जाते हैं जो सत्यका परम निधान है।[1]—*मुण्डकोपनिषद्*, मुण्डक ३ खण्ड १, वाक्य ६।

जब शिष्य यज्ञोपवीत धारण करके वेद पढ़ना शुरू करता है तब आचार्य उसे पहला उपदेश यह देता है

सत्य बोलो। धर्मपर चलो। सत्यसे कभी विचलित न हो।[2]—*तैत्तिरीयोपनिषद्*, शिक्षावल्ली, ग्यारहवाँ अनुवाक वाक्य १।

हिन्दू धर्मके अनुसार, सत्य ब्रह्मका तत्त्व है

ब्रह्म सनातन सत्य है, अनन्त ज्ञान है।[3]—*तैत्तिरीयोपनिषद्*, ब्रह्मवल्ली प्रथम अनुवाक वाक्य १।

वाणी सत्यमें ही प्रतिष्ठित होती है। यह सब सत्यमें प्रतिष्ठित है। इसीलिए विद्वान् सत्यको ही सबसे ऊँचा बताते हैं।[4]—*महानारायणोपनिषद्* २७ १।

सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं और झूठसे बढ़कर कोई पाप नहीं। वस्तुतः सत्य ही धर्मका मूल है।[5]—*महाभारत*।

१ सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥

२. सत्यं वद। धर्मं चर। सत्यान्मा प्रमदितव्यम्॥

३ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

४ वाक् सत्ये प्रतिष्ठिता। सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।

५. न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।

युवराज रामचन्द्रको दरबारके एक पुरोहितने सलाह दी थी कि वे अपने पिताको दिये चौदह वर्षतक वनमें रहनेके वचनसे मुकर जायें। किन्तु उसे उत्तर देते हुए अमरकीर्ति रामचन्द्र कहते हैं

> सत्य और दया राजधर्मके अविस्मरणीय अंग हैं। इसलिए राज्यशासन तत्त्वतः सत्य ही है। सत्य ही संसारका आधार है। ऋषि और देव दोनोंने सत्यका आदर किया है। जो मनुष्य इस लोकमें सत्य बोलता है वह श्रेष्ठ और अमर पदको प्राप्त करता है। मिथ्यावादी मनुष्यसे लोग भय और आतंकके मारे, ऐसे डरे भागते हैं जैसे कि साँपसे। संसारमें धर्मका मुख्य तत्त्व सत्य है। सत्य प्रत्येक वस्तुका आधार कहा जाता है। सत्य संसारमें सर्वोपरि है। धर्मका आधार सदा सत्य ही होता है। सब वस्तुओंका आधार सत्य ही है। कोई भी वस्तु इससे ऊँची नहीं। मैं अपने वचनका पालन क्यों न करूँ अपने पिताके सत्य आदेशपर सचाईसे क्यों न चलूँ? मैं लोभ-लालच अहंकार या अज्ञानके वशमें होकर या अपनी बुद्धि कलुषित हो जानेके कारण सत्यकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करूँगा। मैं पिताजीको दिये हुए वचनका पालन अवश्य करूँगा। मैं उन्हें वनवासका वचन दे चुका हूँ। अब मैं उनके आदेशका उल्लंघन करके भरतकी बात कैसे मान सकता हूँ?'[1] (प्रोफेसर मैक्समूलरके अंग्रेजी अनुवादसे)।—*रामायण*।

प्रकृतिके नियमोंमें ही सत्यका प्रकाश होता है। सब सद्गुण सत्यके और सब अवगुण असत्यके रूप हैं। भीष्मने *महाभारत*में उनका वर्णन इस प्रकार किया है

> सत्य-परायणता न्यायवर्तिता आत्मसंयम मात्सर्यहीनता क्षमा नम्रता सहिष्णुता अनसूया दाक्षिण्य, परोपकार, आत्मध्यान दया और अहिंसा—ये तेरहों सत्यके रूप हैं। —*महाभारत* शान्तिपर्व अध्याय १६२, श्लोक ८ व ९।

किसी वस्तुका होना सत्य और न होना असत्य है। भीष्मने कहा है

> सत्य सनातन ब्रह्म है. सब कुछ सत्यमें प्रतिष्ठित है। —*महाभारत*, शान्तिपर्व अध्याय १६२, श्लोक ५।

[1] सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः ॥ १०९।१० ॥
ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन् परमं गच्छति चाक्षयम् ॥ १०९।११ ॥
उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः।
धर्मः सत्यं परो लोके मूलं स्वर्गस्य चोच्यते ॥ १०९।१३ ॥
सत्यमीश्वरो लोके सत्ये पद्मा प्रतिष्ठिता।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥ १०९।१४ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ १०९।१६ ॥
नैव लोभान्न मोहाद्वा न ह्यज्ञानात्तमोऽन्वितः।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः ॥ १०९।१७ ॥
कथं मया प्रतिज्ञातं वनवासमिदं गुरौ।
भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः ॥ १०९।१८ ॥

आर्य ऋषियोंने बहुधा कहा है

मेरे मुखसे असत्य कभी नहीं निकला।

अश्वमेध पर्वमें श्रीकृष्णने कहा है

सत्य और धर्मका मुझमें नित्य निवास है।

भीष्मने सत्यका बखान करते हुए उसे उच्चतम त्याग बतलाया है और कहा है

एक बार एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और सत्य एक तराजूमें तौले गये। सत्य सहस्र अश्वमेध यज्ञोंसे कहीं भारी उतरा। —*महाभारत* शान्तिपर्व अध्याय १६२ श्लोक २६।

सत्यसे बढ़कर कुछ नहीं और सत्यको अन्य समस्त वस्तुओंसे पवित्र मानना चाहिए। —*रामायण।*

सत्य महात्माओं और प्रभुको सदा प्रिय रहा है और जिसकी वाणी इस जीवनमें सत्यका पालन करती है वह मृत्युके पश्चात् उच्चतम लोकोंमें जाता है। जो सत्यसे घृणा करता है उससे हम इसी प्रकार डरे रहते हैं जिस प्रकार साँपके विष-भरे दाँतसे। —*रामायण।*

जिन गुणोंसे मनुष्यको योग और सांख्यकी प्राप्ति होती है शान्ति और संतोष मिलता है और अपने लक्ष्यकी पूर्तिमें सहायता मिलती है उनकी चर्चा श्रीकृष्णने इस प्रकार की है

हे अर्जुन निर्भयता सत्त्व शुद्धि ज्ञानकी प्राप्तिका निरन्तर प्रयत्न दान इन्द्रिय-दमन यज्ञ स्वाध्याय तप अन्तःकरणकी सरलता मन वचन और कर्मकी अहिंसा सत्य अक्रोध त्याग शान्ति परनिन्दा न करना प्राणिमात्रपर दया लोभ-लालचका न होना कोमलता अनुचित कार्य करनेमें लज्जा, अचपलता तेजस्विता क्षमा धीरता शुद्धता अद्रोह और निरभिमानता ये गुण उस व्यक्तिमें होते हैं जो दैवी सम्पत्तिको प्राप्त कर लेता है। —*भगवद्गीता,* अध्याय १६, श्लोक १–३।

वाणीके तपकी व्याख्या *भगवद्गीतामें* इस प्रकार की गई है

किसीका चित्त दुखानेवाली बात न कहना केवल सत्य प्रिय और हितकारी वचन बोलना और वेद-शास्त्रोंका पढ़ना वाणीका तप कहलाता है। —अध्याय १७ श्लोक १५।

हिन्दू धर्मके अनुसार, ईश्वर सत्यका ही रूप है। क्योंकि आवाहन करनेपर, जब ईश्वर उनके सम्मुख श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हुआ तब उन्होंने उसकी स्तुति इस प्रकार की

१ अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

२ अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

सत्य बोले परन्तु प्रिय सत्य बोले। अप्रिय सत्य न बोले। साथ ही प्रिय झूठ भी न बोले। यही सनातन धर्म है।[1] —*मनुस्मृति* अध्याय ४ श्लोक १३८।

मनुष्यको सदा सत्य न्याय प्रशंसनीय आचरण और पवित्रतामें सुख मानना चाहिए।[2] —अध्याय ४ श्लोक १७५।

चुगलखोर या झूठी गवाही देनेवालेका अन्न न खावे।[3] —अध्याय ४ श्लोक २१४।

जो योग्य लोगोंके सामने अपनी प्रशंसा सत्यके विपरीत करता है वह संसारमें अत्यन्त नीच और पापी होता है। वह चोरोंका चोर और अपनी चोरी करनेवाला होता है।[4] —अध्याय ४ श्लोक २५५।

जो भोजन केवल जीवित रहनेके लिए करता है, और जो भाषण केवल सत्य बोलनेके लिए करता है, वह सब आपत्तियोंपर विजय पा सकता है। —*हितोपदेश*।

वाणीके पाप चार हैं

१ झूठ बोलना २ परनिन्दा करना ३ गाली देना और ४ निष्प्रयोजन बकवाद करना। —बौद्ध धर्मकी एक शिक्षा।

सच और झूठकी टक्कर ऐसी है जैसी कि पत्थर और मिट्टीके बर्तनकी। पत्थर मिट्टीके बर्तनपर गिरेगा तो बर्तन टूट जायेगा। दोनों हालतोंमें नुकसान मिट्टीके बर्तनका ही होगा। —सिक्ख धर्मकी सीख।

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साँच है ताके हिरदै आप॥ —कबीर।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-४-१९०५

१ सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥
२ सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा।
३ पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा।
४ योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते।
स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः॥

२३२. केपके भारतीय भाइयोंका स्तुत्य काम

नये विधेयकके सम्बन्धमें सभा और शिष्टमण्डल

हम अपने केप-वासी भारतीय भाइयोंको मुबारकबादी देते हैं कि वे नये बननेवाले कानूनके बारेमें ठीक समयपर सतर्क हो गये और अपने कर्तव्यका पालन करनेमें लग गये। केपके गवर्नमेंट गजटमें व्यापारियोंके परवाना-अधिनियमका मसविदा प्रकाशित होते ही हमारे नेता उसका मतलब समझ गये और उन्होंने केप टाउनमें एक विराट सभा[1] करके उसमें उसके सम्बन्धमें अपनी भावना प्रकट की एवं प्रस्ताव पास किये। (इसका विवरण[2] हमने छापा है)। वे इस मामलेकी गम्भीरतासे वाकिफ थे इसलिए उन्होंने इतना करके ही सन्तोष नहीं माना। उन्होंने एक शिष्टमण्डल बनाकर केप कालोनीके माननीय महान्यायवादीसे मुलाकात भी की। और उस अवसरपर वे प्रस्ताव उनके सामने पेश किये जो सभामें स्वीकार किये गये थे तथा उनपर उनसे चर्चा की।

उन्होंने शिष्टमंडल बनानेमें भी चतुराईसे काम लिया अर्थात् उसमें दो स्थानीय सुप्रतिष्ठित संसद-सदस्य[3] सम्मिलित किये और उनको नेतृत्व सौंपा। महान्यायवादी श्री सेम्पसनने कई बातोंका स्पष्टीकरण किया जिनमें से कुछ स्पष्टीकरण उचित थे। अन्य उत्तर कुल मिलाकर सन्तोषप्रद थे ऐसा नहीं कहा जा सकता और उनपर विचार करनेसे स्पष्ट पता चलता है कि जब यह कानून संसदमें पेश किया जाये तब भारतीय नेताओंको सजग रहनेकी पूरी आवश्यकता है। मुख्यत विचार भाषाके सम्बन्धमें हुआ। कानूनमें एक धारा ऐसी है कि व्यापारिक परवानेका आवेदन देनेवाले व्यक्तिको किसी भी एक यूरोपीय भाषाका जानकार होना चाहिए। इस सम्बन्धमें श्री सेम्पसनने साफ-साफ बातें नहीं कीं और कुछ बातोंपर ऐसे उत्तर दिये मानो वे चतुराईसे टाल देनेकी कोशिश कर रहे हों। उन्होंने एक सन्तोषप्रद बात यह कही कि वे भाषा-सम्बन्धी धारामें स्पष्ट कर देंगे कि केवल बहीखाता किसी यूरोपीय भाषामें रखा जाये। आवेदकको वह भाषा आती है या नहीं इस बातपर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं है। बहीखाता यूरोपीय भाषामें रखनेकी बात भारतीयोंको मंजूर है, फिर भी महान्यायवादीने इस सम्बन्धमें बहुत टीका की। यद्यपि टीका तर्कपुष्ट नहीं थी फिर भी उसपर से हमारे भारतीय भाइयोंको बहुत सावधान हो जाना चाहिए। मजिस्ट्रेटकी मर्जीके सम्बन्धमें जो टीका की गई उसपरसे चौकन्ने रहनेकी आवश्यकता है। आजकल यदि कोई बात मजिस्ट्रेटकी मर्जीपर छोड़ दी जाये तो समझना चाहिए कि वह गड़बड़में पड़ गई। सारे दक्षिण आफ्रिकामें हम देख रहे हैं कि ऐसी मर्जीका परिणाम एक ही होता है और वह सदैव भारतीयोंके विरुद्ध। श्री सेम्पसनने यह बताना चाहा कि भारतीयोंको अधिक डरनेका कारण नहीं है, परन्तु ऐसा करनेमें वह मर्यादासे बाहर निकल गये इसलिए अन्तिम उत्तर देते समय श्री पॉवेलने पोल खोल दी कि वे लोगोंको खुश करनेके लिए ही ऐसी गोल-मोल बातें कह रहे हैं। उनका उत्तर एक मजाक-सा लगता है।

१. ब्रिटिश भारतीय संघके तत्त्वावधानमें केप टाउनके प्रमुख भारतीय निवासियोंकी यह सभा अप्रैलमें केप टाउनमें हुई थी।

२. देखिए *इंडियन ओपिनियन* १८-३-१९०५ और २५-३-१९०५।

३. सर विलियम बील, [illegible] और माननीय [illegible]।

मजिस्ट्रेटको अर्जी भी अंग्रेजीमें देनेकी जरूरत नहीं है यद्यपि वह उसकी समझमें आ सके ऐसी होनी चाहिए। इसका क्या मतलब है?

कानून बनानेके प्रयोजनके सम्बन्धमें बोलते हुए भी सेम्सनने कई तरहकी बातें कहीं। इससे प्रतीत होता है कि खुद इन साहबके मनमें भी वहम है और वे भारतीयोंके प्रति अच्छी भावना नहीं रखते। ऐसा नहीं लगता कि उन्होंने गम्भीरतासे बात की हो और जो उदाहरण उन्होंने बताये वे हमारे मतसे तो असंगत थे। एक बार उन्होंने कहा कि यह कानून विशेष रूपसे भारतीयोंके लिए नहीं बनाया गया है और दूसरी बार कहा कि व्यापार-संघ (चेम्बर ऑफ कॉमर्स) आदि व्यापारी-मण्डल शिकायत किया करते हैं और दबाव डालते हैं कि भारतीयोंके बही-खाते बहुत बेढंगे होते हैं इसलिए ऐसा कानून बनानेकी जरूरत पड़ रही है। भारतीयोंके बही-खातोंसे अदालतमें आवश्यक जानकारी प्राप्त करनेमें बड़ी असुविधा होती है, ऐसा उनका अपना अनुभव है इत्यादि। इस प्रकार यूरोपीय व्यापारियोंका रक्षण करनेके लिए यह कानून बन रहा है। स्पष्ट ही ये स्पष्टीकरण पूरा विचार किये बिना ही दिये गये प्रतीत होते हैं। फिर वे स्वयं अपनी न्यायप्रियता बताने लगे। और भारतीयोंके बारेमें अपनी निजी जानकारी दिखाने लगे। इसी सिलसिलेमें उन्होंने रविवारको व्यापार होनेका उल्लेख किया और पूछा कि क्या भारतीयोंका पूराका पूरा परिवार रविवारको व्यापार करता हो ऐसा उदाहरण देखनेमें नहीं आता? श्री सेम्सनने बताया कि उनके पास एक पत्र आया है कि एक पूरा भारतीय कुटुम्ब अर्थात् औरत और बच्चों सहित रविवारको गैरकानूनी व्यापार करता है। इन लोगोंके साथ गोरोंकी स्पर्धा नहीं हो सकती। भारतीय और यूनानी इस बातमें बुरे हैं और कुछ लोगोंके कारण सबको दंड भुगतना पड़ता है इत्यादि इत्यादि। श्री गुलने[1] तुरन्त उनकी बात काटी और कहा कि चिट्ठी लिखनेवाला ईर्ष्यालु होगा और यह विवरण गलत है। फिर भी अगर कोई कसूर करता है तो कायदेके अनुसार उसे सजा क्यों नहीं देते?

सार रूपमें उपर्युक्त बातें हुईं। अब हमारे मनमें यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या अंग्रेजी या यूरोपीय भाषा जान लेनेसे यह प्रच्छन्नता खत्म हो जायेगी? महान्यायवादी एक होशियार वकील हैं। फिर भी ऐसी दलीलबाजी करनेमें वे झिझके नहीं इसलिए हमें आश्चर्य और खेद होता है। मनुष्यकी भाषाका उसके चालचलनसे क्या सम्बन्ध है? भारतीय व्यापारी उक्त भाषामें बहीखाते लिखना लें तो क्या तब शिकायत मिट जायेगी?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-४-१९०५

१. श्री अब्दुल हमीद गुल, केप टाउनके एक प्रमुख भारतीय व्यापारी और शिष्टमण्डलके एक सदस्य।

३३३. प्लेगसे तबाही

प्लेगने देशमें तबाही फैलाई है। इस वर्ष इसका जोर बहुत ज्यादा है। सरकारने हाथ ढीले कर दिये हैं। लोग कायर हो गये हैं। पंजाबमें तो इतना जोर है कि व्यापारको बहुत धक्का लगा है और पहले अच्छी तरह रहनेवाले लोगोंको रोग थोड़ा होता था परन्तु अब तो वे भी उससे मुक्त नहीं रहे। फिर भी यह भयंकर रोग अबतक देशी लोगोंमें ही फैला है। बहुतसे भारतीयोंकी धारणा यह है कि हमारे पाप बहुत अधिक बढ़ गये हैं अतः प्लेग ईश्वरके प्रकोपके रूपमें आया है। इसपर *टाइम्स ऑफ इंडिया*के एक लेखकने यह सुझाया है कि सरकारको भारतमें एक ऐसा दिन मनाना चाहिए जिस दिन सारा देश ईश्वरसे इस रोगके अन्तके लिए स्तुति करे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १-४-१९०५

३३४. प्रार्थनापत्र : नेटाल विधान-सभाको[1]

अप्रैल ७, १९०५

आपके प्रार्थी अमुक दो विधेयकोंके विषयमें इस माननीय सदनकी सेवामें उपस्थित होनेकी धृष्टता कर रहे हैं। ये विधेयक आपके विचारके लिए इसी सत्रमें पेश किये जायेंगे। इनमें से एक है — नगर-निगम सम्बन्धी कानूनको संशोधित तथा संघटित करनेवाला" विधेयक और दूसरा है — आग्नेय हथियारोंके उपयोगको नियन्त्रित करनेवाला विधेयक। प्रार्थियोंका निवेदन निम्नलिखित है :

आपके प्रार्थियोंका खयाल है कि उपर्युक्त प्रथम विधेयकमें "रंगदार व्यक्ति" शब्दोंकी जो परिभाषा की गई है वह नितान्त असन्तोषजनक है। उसमें इनका अर्थ है एशियाके साथ साथ कोई भी कुली या लसकर जिन्हें कि स्वयं परिभाषाकी आवश्यकता है। पुलिस सिपाहीके लिए यह समझना अत्यन्त कठिन होगा कि कौन कुली है, कौन लसकर क्योंकि ये शब्द किसी विशेष प्रजातिके द्योतक नहीं हैं बल्कि इनका प्रयोग मजदूर श्रमिकों तथा खलासियोंके लिए होता है।

आपके प्रार्थियोंके विचारमें "असभ्य प्रजातियाँ" शब्दोंकी परिभाषा भी असन्तोषजनक है और ये शब्द स्पष्ट उन लोगोंके लिए दुःखदायी हैं जिन्हें कि इनमें शामिल करना अभीष्ट है। इसके अतिरिक्त आपके प्रार्थी यह समझनेमें भी असमर्थ हैं कि गिरमिटिया भारतीयोंके वर्ग असभ्य प्रजातियोंके वर्गमें क्या रखे जायें। उनमें बहुतसे ज्ञान परिश्रम द्वारा शिक्षा और सम्पत्तिमें बहुत ऊँचे उठ गये हैं और उपनिवेशमें कर्मचारियों या स्वतन्त्र व्यवसायीके रूपमें महत्त्वपूर्ण स्थानपर स्थित हैं।

१. [illegible] ब्रिटिश भारतीयोंकी ओर से [illegible] १५-[illegible]-१९०५ के [illegible] १८-४-१९०५ के *इंडियन ओपिनियन*में छपी थी।

धारा (मसविदा) २२ की उपधारा (ख) के अन्तर्गत उन लोगोंको नागरिकताका अधिकार प्राप्त करनेके अयोग्य ठहराया गया है जिन्हें कि १८९६ के अधिनियम ८ के अनुसार संसदीय मताधिकार उपलब्ध नहीं है। १८९६ का अधिनियम ८ उन लोगोंको मताधिकारसे वंचित करता है जो कि ऐसे देशोंके निवासी हैं जिनमें अबतक संसदीय मताधिकारपर आधारित प्रातिनिधिक संस्थाएँ नहीं हैं।

आपके प्रार्थी निवेदन करते हैं कि संसदीय मताधिकार तथा नगरपालिका मताधिकारमें कोई सम्बन्ध नहीं है और यदि तर्कके लिए यह सच मान भी लिया जाये कि भारतमें भारतीयोंको संसदीय मताधिकार उपलब्ध नहीं है तो भी यह निश्चयपूर्वक सिद्ध किया जा सकता है कि उन्हें काफी हदतक नगरपालिकाके मताधिकार उपलब्ध हैं। आपके प्रार्थियोंमें से कुछ लोग भारतमें स्वयं नगरपालिकाओं या परिषदोंके सदस्य रह चुके हैं। उपनिवेशमें बसे ब्रिटिश भारतीयों का भूतकालीन इतिहास भी उपर्युक्त प्रकारकी निर्योग्यताको उचित नहीं ठहराता। इसलिए आपके प्रार्थी नम्र निवेदन करते हैं कि यदि प्रस्तुत धाराको आपका अनुमोदन मिल गया तो यह ब्रिटिश भारतीयोंका अनावश्यक अपमान होगा।

उपनिवेशकी नगर-परिषदोंको "रंगदार व्यक्तियों" द्वारा पैदल पटरियों तथा रिक्शोंके उपयोगके सम्बन्धमें उपनियम बनानेका जो अधिकार दिया गया है उसमें — जहाँतक ये शब्द भारतीयोंको शामिल करते हैं — आपके प्रार्थियोंको कोई औचित्य नजर नहीं आता है। इस प्रकार इस सम्बन्धमें "रंगदार व्यक्ति" की परिभाषा अपना प्रभाव डालती है और सन्देह किया जाता है कि इससे बहुत-सी शरारतें पैदा होंगी।

आपके प्रार्थी उक्त विधेयककी धारा २० का भी नम्रतापूर्वक विरोध करते हैं। उसमें परिषदको बस्तियों या "असभ्य प्रजातियों" के लोगोंके पंजीकरणकी एक प्रणाली स्थापित करनेके लिए उपनियम बनानेका अधिकार दिया गया है। आपके प्रार्थियोंके विचारमें उन भारतीयोंका भी "असभ्य प्रजाति" शब्दोंमें शामिल किये गये हैं पंजीकरण करना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि भारतीयोंको मेहनतसे मुँह मोड़ते हुए कभी नहीं पाया गया है। प्रस्तुत धारासे आगे यह भी मालूम पड़ता है कि गुलाम भारतीयोंकि भी पंजीकरणकी आवश्यकता होगी।

दूसरे विधेयकके सम्बन्धमें आपके प्रार्थी निवेदन करते हैं कि इससे उपनिवेशवासी ब्रिटिश भारतीयोंको बड़ा दुःख हुआ है। खं ४४ से ४७ तकके खण्ड वतनियों तथा एशियाइयों द्वारा आग्नेय हथियारोंके उपयोगसे सम्बद्ध हैं। आपके प्रार्थियोंके विचारसे भारतीयोंका वतनियोंके साथ मिला दिया जाना उचित नहीं है। भारतीय अत्यन्त सीधे-सादे उपनिवेशी हैं और उन्होंने कभी भी किसीको कष्ट नहीं दिया। इसलिए आपके प्रार्थी सादर निवेदन करते हैं कि भारतीयों और वतनियोंको साथ मिलाना तथा भारतीयोंको इस बातके लिए मजबूर करना कि वे आग्नेय हथियारोंके लिए, जिनकी कि आत्मरक्षाके लिए आवश्यकता पड़ सकती है, अनुमतिपत्र प्राप्त करनेसे पहले वतनी विभागसे पूछ-ताछ करें, नितान्त अपमानजनक होगा।

अन्तमें आपके प्रार्थियोंकी प्रार्थना है कि उपर्युक्त विधेयकोंको इस प्रकार संशोधित कर दिया जाये कि उनसे शिकायतकी सभी बातें दूर हो जायें।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया १४-९-१९०६

३३५. ट्रान्सवालके भारतीयोंपर श्री लिटिलटनका वक्तव्य

स्थानिक पत्रोंमें प्रकाशित एक तारसे मालूम होता है कि श्री लिटिलटनने एक प्रश्नके उत्तरमें कहा है, *मोटन* बनाम सरकारके परीक्षात्मक मुकदमेके फैसलेसे[1] ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थितिमें सुधार हो गया है। पूर्ण और उचित आदरके साथ हमारा खयाल यह है कि यह वक्तव्य तथ्योंके अनुरूप नहीं है। और फिर, अगर स्थितिमें कोई राहत मिली भी है तो उसके लिए उनको या सरकारको जरा भी श्रेय क्यों मिलना चाहिए, क्योंकि वह तो सरकारके विरोधके बावजूद प्राप्त की गई है? क्या यह सच नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालयको परवानेके लिए जो आवेदन दिया गया था उसका सरकारने विरोध किया था? सरकारकी ओरसे तीन अग्रगण्य वकील पैरवी कर रहे थे और वास्तवमें तो उसने सारे भारतीय समाजको यह परीक्षात्मक मुकदमा लड़नेके लिए मजबूर कर दिया क्योंकि यह मुकदमा तब दायर किया गया था जब कि पुराने प्रामाणिक व्यापारियोंको भी इस बिनापर व्यापार करनेका परवाना देनेसे इनकार कर दिया गया कि युद्धके ऐन पहले उनके पास परवाने नहीं थे। इस बातको काफी नहीं माना गया था कि वे युद्धके पूर्व बस्तियोंके बाहर व्यापार करते थे।

वस्तुत: हमें युद्ध-पूर्वके दिनोंकी जबरदस्त याद दिलाई गई है। जिस प्रकारके परीक्षात्मक मुकदमेका उल्लेख श्री लिटिलटनने किया है, ठीक उसी प्रकारका मुकदमा[2] उस समय भी चला था। तब ब्रिटिश सरकारने मुकदमा लड़नेमें भारतीयोंकी मदद की थी। भारतीयोंके स्वर-में-स्वर मिलाकर उसने यह दावा किया था कि १८८५ के कानून ३ के मातहत बस्तियोंके बाहर भारतीयोंको व्यापार करनेकी मनाही नहीं थी। परन्तु ट्रान्सवालके ब्रिटिश हाथोंमें चले जानेके बाद एक और ही तरहकी तान छेड़ी गई। मोटनके परीक्षात्मक मुकदमेमें उसी ब्रिटिश सरकारने अपने वकीलोंको भारतीय तर्कका विरोध करनेका निर्देश किया। इस सबकी जानकारी रखते हुए भी श्री लिटिलटन परीक्षात्मक मुकदमेमें सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेका श्रेय स्वयं लें तो यह एक अजीब बात है। परन्तु, जैसा कि हमने कहा है, भारतीयोंकी स्थिति बोअर शासनकालमें जैसी थी उससे किसी भी तरह सुधरी नहीं। हाँ, वह परीक्षात्मक मुकदमेके पहले जैसी थी उससे बेहतर जरूर हो गई है। परन्तु, ट्रान्सवालमें ब्रिटिश सरकारकी स्थापनाके बाद सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके अन्तर्गत भारतीय परवाना-शुल्क देनेके बाद जहाँ चाहें वहाँ व्यापार कर सकते हैं। युद्धके पूर्व ब्रिटिश सरकारके संरक्षणमें भारतीय *कोई परवाना शुल्क दिये बिना ही* जहाँ चाहते व्यापार कर सकते थे। यह सच है कि भारतीय परवाना-शुल्क पेश करते थे परन्तु बोअर सरकार उसे लेनेसे इनकार कर देती थी। भारतीय उसकी जानकारीमें और उसे सूचित करके बस्तियोंके बाहर व्यापार किया करते थे और वह ब्रिटिश विरोधके कारण उनपर मुकदमे चलानेमें असमर्थ थी। इस तरह, जहाँतक व्यापारका सम्बन्ध है ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति आजकी अपेक्षा युद्धके पूर्व बेहतर थी। दूसरी बातोंमें भी स्थिति काफी बुरी है और वह युद्धके पहलेकी स्थितिसे किसी कदर भी कम निराशाजनक नहीं है।

१. फैसला यह था कि भारतीय व्यापारी एशियाई बस्तियोंके बाहर व्यापार करनेका परवाना देनेसे इनकार नहीं किया जा सकता।

२. देखिए खण्ड १, पृ० ८८१।

जहाँतक इस देशमें भारतीयोंके प्रवासका सम्बन्ध है यह अनुचित रूपसे सुधार है। युद्धके पहले हर-किसी भारतीयको ट्रान्सवालमें प्रवेशकी स्वतन्त्रता थी। आज किसी प्रामाणिक भारतीय शरणार्थीको भी जो यह साबित करनेकी स्थितिमें है कि वह पहले ट्रान्सवालका अधिवासी रह चुका है और युद्धके पूर्व इस उपनिवेशमें बसनेकी अनुमतिके मूल्यके रूपमें ३ पौंडकी रकम अदा कर चुका है उपनिवेशमें प्रवेशकी अनुमति प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। और कोई ऐसा ब्रिटिश भारतीय जो शरणार्थी नहीं है — फिर भले ही उसकी योग्यता या दर्जा कुछ भी क्यों न हो — सम्भवतः यहाँ प्रवेश नहीं कर सकता। ऐसे व्यक्तिकी अर्जीपर सरकार विचार ही नहीं करती। और भारतीयोंके प्रवासपर पूरा तो नहीं किन्तु यह सारा प्रतिबन्ध खुले और उचित तरीकोंसे नहीं बल्कि एक राजनीतिक अध्यादेशको अमलमें लाकर लगाया गया है। पहले-पहल यह अध्यादेश ट्रान्सवालमें उन लोगोंका प्रवेश रोकनेके लिए जारी किया गया था जिनपर यह शक था कि इनका इरादा बगावत करनेका है। अब भारतीयोंको देशसे बाहर रखनेके उद्देश्यसे इसका दुरुपयोग किया जा रहा है। पुराने शासन-कालमें भारतीयोंकी धार्मिक भावनाओंको शायद ही कभी छेड़ा गया हो परन्तु अब यद्यपि यह सच है कि सरकारके खिलाफ कुछ कहा नहीं जा सकता फिर भी इस विषयमें हकीकत यह है कि आज पॉचेफस्ट्रूममें एक मसजिदके निर्माणके खिलाफ आन्दोलन चल रहा है और यह मसजिद शहरके किसी मुख्य स्थानमें नहीं जैसा कि लोग बताते हैं बल्कि एक गलीमें बनेगी। हम भारतीयोंके कष्टोंको और भी गिना सकते हैं और बता सकते हैं कि कैसे ब्रिटिश सरकारके व्यवहार और ब्रिटिश मन्त्रियोंके भाषणोंसे भारतीयोंके दिलोंमें उठी हुई तमाम आशाओंके विपरीत भारतीयोंके सामने जीवन और मरणका संघर्ष उपस्थित हो गया है। ऐसी स्थितिमें भी लिटिलटनका यह *कहना कि ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति सुधर गई है* यदि कमसे-कम कहा जाये तो अत्यन्त भ्रमोत्पादक है। ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयोंके लिए यह कहना कि वे फिरसे ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे उपलब्ध सब अधिकारोंका भोग करनेवाले ब्रिटिश प्रजाजन बन गये हैं तबतक सम्भव नहीं होगा जबतक कि १८८५ का कानून ३ और ब्रिटिश भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे नियम कानूनकी पुस्तक (स्टैट्यूट बुक) से निकाल नहीं दिये जाते और न्याय-सम्बन्धी ब्रिटिश विचारोंके अधिक अनुरूप नहीं बनाये जाते। आज तो भारतीय सौतेला लड़का है, जो अपने माता-पितासे संरक्षण चाहता है और उसके लिए लालायित है परन्तु वह संरक्षण उसे मिलता नहीं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ८–६–१ ५

३३६. ट्रान्सवालके भारतीयोंके बारेमें महत्त्वपूर्ण फैसला

सभी यह जानते हैं कि ट्रान्सवालमें अनेक भारतीय अपने नामसे जमीन नहीं रख सकते इसलिए गोरोंके नामपर रखते हैं। श्री सैयद इस्माइल नामके एक व्यक्ति जोहानिसबर्गके निवासी हैं। उनके नामपर कुछ जमीन थी जो उन्होंने स्यूकस नामक अपने गोरे मित्र और जमीन मालिकके नाम कर रखी थी। यह जमीन जोहानिसबर्गके नगर-निगमने जब बस्ती (लोकेशन) आदि भी तब ले ली और हरजानेके रूपमें २ पौंड स्यूकसके नामपर देनेका प्रस्ताव हुआ। स्यूकस लड़ाईके समयमें गुजर गया। उसकी जायदाद दिवालियापनमें गई। चूँकि उसके लेनदारोंको पूरा चुकाया जा सके इतना पैसा स्यूकसकी मिलकियतमें नहीं था इस कारण उसके न्यासियों (ट्रस्टियों) ने स्यूकसके नामपर दर्ज सैयद इस्माइलकी जमीनके पैसोंपर हक जमाया। इसपर सैयद इस्माइलने उच्च न्यायालयमें मुकदमा दायर किया कि उक्त २ पौंड उसे मिलने चाहिए। इसमें स्यूकसके लेनदारोंने दो सवाल उठाये। अर्थात्, सैयद इस्माइल जो पैसे माँगते हैं वे पैसे स्यूकसके नामपर हैं और जिस जमीनपर सैयद इस्माइल हक बताते हैं उस जमीनपर, अचल सम्पत्ति होनेके कारण सैयद इस्माइलको मालिकीका हक नहीं है। सैयद इस्माइलकी ओरसे यह सफाई दी गई कि यह जमीन निन्यानबे वर्षके पट्टेपर होनेके कारण अचल सम्पत्ति नहीं कही जा सकती इसलिए भारतीयोंके उसकी मालिकी पानेपर रोक नहीं होनी चाहिए। और यदि यह सफाई उचित न मानी जाये तो जिस कानूनसे भारतीयोंको अचल सम्पत्तिपर स्वामित्व नहीं दिया जाता वह कानून ऐसा नहीं कहता कि गोरे तथा दूसरे लोग भारतीयोंकी तरफसे अचल सम्पत्ति अपने नामपर नहीं रख सकते। माननीय जजने फैसला सैयद इस्माइलके खिलाफ देते हुए बताया कि निन्यानबे वर्षके पट्टेपर होनेके कारण उस अचल[1] सम्पत्ति नहीं कहना चाहिए। इसलिए ऐसी जमीन भारतीयोंके नामपर नहीं चढ़ सकती। किन्तु सैयद इस्माइलकी दूसरी सफाई मंजूर करते हुए कहा कि भारतीयोंके लाभके लिए गोरे जमीन रख सकते हैं और यदि गोरे धोखा देना चाहें तो ऐसी हालतमें भारतीय मालिकके हकका रक्षणका कर्त्तव्य कानून सँभालेगा। यह निर्णय बड़ा सन्तोषप्रद है और यदि गोरेके नाम भारतीय लोग जमीन लेनेमें डरते हों तो उन्हें अब डरनेकी जरूरत नहीं है। फिर भी यह याद रखना चाहिए कि गोरा विश्वासपात्र व्यक्ति होना चाहिए और उससे साफ-साफ दस्तावेज लेने चाहिए। इस निर्णयसे हमको सरकारसे स्वत्वोंके विषयमें मोर्चा लेते हुए बल मिलेगा ऐसा निश्चित दीखता है। हमें खबर मिली है कि उच्च न्यायालयके निर्णयके विरुद्ध स्यूकसकी मिलकियतके न्यासीने अपील दायर की है। देखें इसका क्या परिणाम होता है!

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-४-१९०५

1. यहाँ मूलमें भूल हो गई है "अचल" के स्थान "चल" शब्द चाहिए।

३३७. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके बारेमें लॉर्ड कर्ज़नका भाषण

रायटरके तारसे मालूम होता है कि भारतकी विधानसभामें लॉर्ड कर्ज़नने हमारे पक्षमें जोरदार भाषण किया है। इस भाषणमें उन्होंने कहा है कि जबतक भारतीयोंके स्वत्वोंकी सम्पूर्ण रक्षा करनेका सबूत दक्षिण आफ्रिकाके राज्य नहीं देंगे तबतक उनको भारतकी ओरसे सहायता नहीं मिलेगी। भारतीयोंका रक्षण करनेका काम भारत सरकारका है और इस कामको वह अंजाम देती रहेगी।

ये वचन हमें आनन्द देनेवाले हैं। इनका प्रभाव अच्छा ही पड़ेगा। यह भाषण बताता है कि यहाँपर जो परिश्रम हम कर रहे हैं वह व्यर्थ नहीं जा रहा है। हमारे लिए मुनासिब है कि हम और भी अधिक परिश्रम करते रहें और जब-जब प्रसंग आये हमें आनेवाले कष्टोंके बारेमें शिकायत करें। हमें यकीन है कि ऐक्यसे और मिलकर मेहनत करनेसे हम जीतेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ८-४-१९०५

३३८. पत्र : दादाभाई नौरोजीको[1]

ब्रिटिश भारतीय संघ

२५ व २६ कोर्ट चेम्बर्स
रिसिक स्ट्रीट
जोहानिसबर्ग
१० अप्रैल, १९०५

माननीय श्री दादाभाई नौरोजी
२२ केनिंगटन रोड
लंदन

प्रियवर,

जानते हैं श्री लिटिलटनने यह कहा है कि ट्रान्सवालके परीक्षात्मक मुकदमेके निर्णयके बाद ब्रिटिश भारतीयोंकी स्थिति युद्धके पहलेकी स्थितिसे अच्छी हो गई है। *इंडियन ओपिनियनके* ८ अप्रैलके अंकके पहले सम्पादकीय लेखमें इस वक्तव्यका उत्तर दिया गया है। वास्तवमें स्थिति तबसे अच्छी नहीं खराब हुई है। परीक्षात्मक मुकदमेसे जो सुविधा भारतीयोंको मिली है वह है कि वे युद्धके पहलेके दिनोंकी हालतमें पहुँच गये हैं। मगर इसका श्रेय भी सरकारको शायद ही मिल सकता है क्योंकि उन्होंने सर्वोच्च न्यायालयके सामने भारतीयोंके मतका बड़े जोरसे विरोध किया था।

१. इस पत्रको दादाभाईने निम्न अंश जोड़कर भारत-मन्त्री और उपनिवेश-मन्त्रीके पास भेज दिया था:
"मुझे पूरी आशा है कि आप विरोध करेंगे और महामहिमकी ब्रिटिश भारतीय प्रजाके प्रति, जो आपका [illegible] है ध्यान देंगे।"

नेटालमें भारतीय-विरोधी स्वभाव कितने ही विधेयक पेश किये जा रहे हैं। इंडियन ओपिनियनमें इनका उल्लेख है। और ऑरेंज रिवर कालोनी रंगदार प्रजापर अपना शिकंजा हमेशा कड़ा करती जा रही है। एक नगरके बाद दूसरे नगरमें ऐसे नियम लगाये जा रहे हैं जो मेरी रायमें ब्रिटिश संविधानकी दृष्टिसे अनैतिक हैं। यदि ये ही विधान-परिषदके सामने विधेयकके रूपमें पेश होते तो भी लिटिलटनकी सहमति उन्हें कभी न मिलती।

मैं गम्भीरतापूर्वक आशा करता हूँ कि आप महामहिम सम्राटके ब्रिटिश प्रजाजनोंकी रक्षा करेंगे और उनके साथ न्याय करेंगे। भारतीय सहायताके लिए आपका ही मुँह जोहते हैं।

आपका विश्वासपात्र,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकल (जी एन २२९३) से।

३३९. पत्र उपनिवेश-सचिवको

जोहानिसबर्ग
अप्रैल ११, १९०७

सेवामें
माननीय उपनिवेश-सचिव
ब्लूमफॉटीन

महोदय,

ऑरेंज रिवर कालोनीकी विभिन्न नगरपालिकाओंके सम्बन्धमें उनके अन्तर्गत रहनेवाले रंगदार लोगोंकी बाबत *गवर्नमेंट गज़टमें* समय-समयपर जो विनियम छपते रहते हैं उनकी ओर, और "ब्लूमफॉटीन नगरपालिकाकी कानूनी व्यवस्थाओंको समेकित तथा परिपूर्ण करने" के अध्यादेशकी ओर मेरे संघका ध्यान आकर्षित किया गया है।

रेडर्सबर्ग शहरके विनियमोंमें मेरे संघने देखा है कि 'रंगदार' शब्दकी व्याख्या इस तरह की गई है कि उसमें सब रंगदार लोग शामिल हो जाते हैं। ब्रिटिश भारतीय भी इसमें अपवाद-रूप नहीं हैं। और इस शहरके जैसे ही कोड सहायक विनियमोंके अन्तर्गत भी वहाँके रंगदार निवासियोंको नियन्त्रित करनेके नियम बनाये गये हैं। मेरे संघके विनम्र मतमें ये नियम असाम्य-भरे, अन्यायपूर्ण और अपमानजनक हैं। बहुत सम्भव है कि उन शहरोंमें कोई भी ब्रिटिश भारतीय न रहते हों। फिर भी इस कारणसे उक्त आपत्तिजनक विनियम कम कष्टदायक नहीं हो जाते क्योंकि यदि कोई भूला भटका भारतीय उनमें से किसी भी शहरमें पहुँच जाये तो वह अकस्मात् अपने-आपको भयानक प्रतिबन्धोंमें जकड़ा हुआ पायगा।

मेरे संघको यह देखकर दुःख हुआ है कि ब्लूमफॉटीन नगरपालिकाको भी एक अध्यादेश द्वारा वैसे ही अधिकार दे दिये गये हैं। मेरा संघ यह समझता है कि ऑरेंज रिवर कालोनीकी इस तरहकी रंगविरोधी प्रवृत्ति ब्रिटिश परम्पराओं तथा महामहिमके मन्त्रियों द्वारा समय-समयपर की गई घोषणाओंके विरुद्ध है। मेरा संघ यह समझनेमें असमर्थ है कि ऑरेंज रिवर कालोनी क्यों इस प्रकारके कानूनों और विनियमोंको बर्दाश्त करती है।

यदि आप कृपाकर मुझे सूचित करेंगे कि क्या सरकारका इरादा इस विषयमें किसी प्रकारकी राहत देनेका है, तो मेरा संघ आपका बहुत आभारी होगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
अब्दुल गनी
अध्यक्ष
ब्रिटिश भारतीय संघ

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३४० श्री बार्नेटका आरोप और श्री ऐंकेटिल

भूतपूर्व शिक्षा-अधीक्षक (एजुकेशन सुपरिंटेंडेंट) श्री बार्नेटने नेटालके कुछ गिरमिटिया भारतीयोंके मालिकोंपर भारतीयोंकी झोंपड़ियोंकी हालतके सम्बन्धमें — जिन्हें उन्होंने सूअरोंके बाड़े कहा है — आरोप लगाया था। इस आरोपके सम्बन्धमें उपनिवेश-मन्त्रीसे सवाल पूछनेपर श्री ऐंकेटिल बधाईके पात्र हैं।

श्री मेडनने[1] उत्तर दिया है कि श्री बार्नेट द्वारा लगाया गया आरोप बहुत अतिरंजित है और भारतीय संरक्षक गिरमिटिया भारतीयोंकी सुख-सुविधाका प्रबन्ध करता है। श्री मेडनने इस आरोपपर संरक्षककी रिपोर्ट सदनके सामने पेश करनेका वादा किया। हम उपनिवेश-मन्त्रीके उत्तरको प्रत्येक दृष्टिसे असन्तोषजनक मानते हैं। आरोप अत्यन्त गम्भीर है और भली-भाँति सोच-विचार कर ऐसे सुसंस्कृत लोगोंकी सभामें लगाया गया है, जिनकी उपनिवेशमें अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण स्थिति है। उस समय श्री बार्नेट नेटालमें शिक्षाके प्रश्नपर भाषण कर रहे थे और उपर्युक्त आरोप उनके भाषणका कोई प्रसंगसे पृथक्कृत अंश नहीं है। भाषण नेटालमें प्रचलित शिक्षा-प्रणालीपर एक गम्भीर आक्षेप है। ऐसे मामलेमें प्रवासी-संरक्षककी रिपोर्ट माँगना बहुत-कुछ वैसा ही है जैसा कि किसी आदमीको अपने ही मामलेके निर्णयका काम सौंपना। हमारा दावा है कि श्री बार्नेटके आरोपमें सारेके-सारे भारतीय प्रवासी-विभागकी निन्दा शामिल है। हम यह नहीं कहते कि श्री बार्नेटका कथन सही है परन्तु यह जरूर कहते हैं कि जिस विभागकी निन्दा की गई है उसीसे उस निन्दाके प्रतिवादमें रिपोर्ट प्राप्त करना आरोपका उत्तर देनेका तरीका नहीं है।

यह प्रश्न केवल गिरमिटिया भारतीयोंके हितोंकी जानकारी प्राप्त करनेका नहीं है बल्कि उपनिवेशकी नेकनामीका है। हम समझते हैं कि सरकारका प्रश्नकी तहतक छानबीन न करना और जनताको पूर्णरूपसे सन्तोष न देना बहुत ही अबुद्धिमत्तापूर्ण होगा। अगर स्वतंत्र जाँचके परिणामसे किसी तरह श्री बार्नेटके आरोपका समर्थन होता है तो जितनी जल्दी यह कलंक मिटाया जाये उपनिवेशके लिए उतना ही अच्छा है और अगर आरोप गलत सिद्ध होता है तो श्री बार्नेटसे भूतपूर्व सरकारी सेवकके नाते कैफियत माँगी जाये। इसलिए हमें आशा है कि श्री ऐंकेटिल तबतक उपनिवेश-मन्त्रीसे प्रश्न करते रहेंगे जबतक कि आवश्यक कार्रवाई न की जाये।

१. नेटालके उपनिवेश-सचिव।

यह भी देखनेकी बात है कि श्री बार्नेट ने अपना आक्रमण एक ऐसी श्रोता-मण्डलीके सामने किया था जिसमें नेटालके भूतपूर्व प्रधानमन्त्री सर अल्बर्ट हाइम और उपनिवेशके अन्य अनेक प्रमुख व्यक्ति शामिल थे। वक्ताके व्याख्यान दे चुकनेपर सर अल्बर्ट हाइमने एक लम्बी मीमांसा की थी और उसमें हमें श्री बार्नेटके गम्भीर आरोपका खण्डन कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ता। क्या उपनिवेश-मन्त्रीको इसमें विचारकी सामग्री प्राप्त नहीं होती?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-४-१९०५

३४१. धर्मपर व्याख्यान

जोहानिसबर्गके समाचारपत्रोंसे पता चलता है कि वहाँकी थियोसॉफिकल सोसाइटीने श्री गांधीको हिन्दू धर्मपर भाषण देनेके लिए आमन्त्रित किया और उसपर उन्होंने मेसॉनिक टेम्पलमें चार भाषण दिये। हर बार भवन भर जाता था। अन्तिम भाषण मार्च महीनेकी २५ वीं तारीखको दिया। इनमें से दो भाषणोंका विवरण स्टार[1] अखबारमें आ गया है। अपने अनेक पाठकोंकी माँगपर हम गांधीजीसे प्राप्त चारों भाषणोंका संक्षिप्त सार लेकर नीचे दे रहे हैं।

दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंका अपमान

थियोसॉफिकल सोसाइटीने मुझे भाषण करनेके लिए बुलाया तब मैंने दो बातें सोचकर यह आमन्त्रण स्वीकार किया। मुझे दक्षिण आफ्रिकामें बस हुए बारह बरस होने आते हैं। यहाँ मेरे देशवासियोंपर जो तकलीफें आती हैं उनकी खबर रखता हूँ। लोग उनके रंगको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं। मैं ऐसा मानता हूँ कि यह सब गलतफहमीसे होता है और यह गलतफहमी दूर करनेमें मुझसे जितनी बने उतनी मदद करनेके हेतुसे मैं दक्षिण आफ्रिकामें पड़ा हूँ। इसलिए मुझे लगा कि यदि मैं सोसाइटीका आमन्त्रण स्वीकार करूँ तो जो मेरा कर्तव्य है उसमें एक इतनी मदद मिलेगी और यदि मैं आपको इन भाषणोंसे भारतीयोंके प्रति थोड़ा भी अच्छा खयाल करा सका तो अपना भाग्य धन्य समझूँगा। मुझे आपको बताना था [हिन्दुओं][2] ही के विषयमें है किन्तु हिन्दू और अन्य जो भारतीय हैं उनकी बहुत-सी रीति एक ही है। सारे भारतीयोंके गुण-दोष समान हैं और सारे एक ही मालाके दाने हैं। फिर दूसरा कारण यह था कि थियोसॉफिकल सोसाइटीके उद्देश्योंमें से एक उद्देश्य विभिन्न धर्मोंका मिलान करके उनका तत्त्व खोजकर लोगोंको यह बताना है कि वास्तवमें देखा जाये तो सारे धर्म ईश्वरको पहचाननेके अलग-अलग मार्ग हैं और कोई धर्म खराब है, ऐसा कहते हुए हिचक होनी चाहिए। मैंने सोचा कि यदि मैं हिन्दू धर्मके बारेमें दो बातें कहूँगा तो थोड़ा-बहुत यह हेतु भी सिद्ध होगा।

हिन्दू

हिन्दू वास्तवमें हिन्दुस्तानके रहनेवाले नहीं माने जाते। पश्चिमके विद्वान कहते हैं कि हिन्दू और यूरोपके अधिकांश लोग एक समय मध्य एशियामें निवास करते थे। वहाँसे अलग होकर कुछ लोग यूरोप गये कुछ ईरान गये और कुछ हिन्दुस्तानमें पंजाबके रास्तेसे पहुँचे और वहाँ

१. यह उपलब्ध नहीं है।

२. यहाँ मूलमें भूलसे हिन्दुओं की जगह स्त्रियों हो गया है।

आर्यधर्मका प्रसार हुआ। हिन्दुओंकी संख्या २ करोड़से ऊपर है। उनका नाम हिन्दू इसलिए पड़ा कि वे सिन्धु नदीके पार बसते थे। उनकी प्राचीनतम पवित्र पुस्तकें वेद हैं। बहुत-से भक्त हिन्दू ऐसा मानते हैं कि वेद ईश्वरकृत और अनादि हैं। पश्चिमके विद्वानोंकी मान्यता है कि ईसासे २ वर्ष पहले वेद रचे गये। पूनाके प्रख्यात विद्वान श्री तिलकने बताया है कि वेद कमसे-कम १ वर्ष पुराने हैं।[1] हिन्दुओंकी प्रधान विशेषता है उनका सर्वव्यापक ब्रह्ममें विश्वास। पृथ्वीपर प्रत्येक व्यक्तिका अक्षम होना चाहिए मोक्ष प्राप्त करना और मोक्षका अर्थ है जन्म-मरणके भयसे छूटना और ब्रह्ममें लीन हो जाना। उनकी नीतिमें मृदुता और समदृष्टि मुख्य गुण हैं और उनके लौकिक व्यवहारमें जाति भेद सर्वोपरि है।

हिन्दू धर्मकी पहली कसौटी जब बुद्धदेवने जन्म लिया तब हुई। बुद्धदेव स्वयं एक [राजा]के पुत्र थे। उनका जन्म ईसासे ६ वर्ष पहले हुआ बताया जाता है। उस समय हिन्दू ऊपरके दिखावेपर मोहित हो रहे थे और ब्राह्मण स्वार्थके कारण हिन्दू धर्मकी रक्षाका अपना कर्तव्य भूल गये थे। जब यह सब बुद्धकी दृष्टिमें पड़ा तब उन्हें अपने धर्मकी यह दशा देखकर दया आई। उन्होंने संसार छोड़कर तपस्याको अपनाया। कितने ही वर्ष ईश्वर-भक्तिमें लीन रहकर व्यतीत किये। अन्तमें उन्होंने हिन्दू धर्ममें सुधार सूचित किये। उनकी पवित्रताका ब्राह्मणोंपर असर हुआ और बहुत हदतक यज्ञके लिए प्राणियोंका वध बन्द हो गया। इस तरह बुद्धदेवने नया धर्म स्थापित किया ऐसा नहीं कहा जा सकता। पर उनके बाद जो लोग आये उन्होंने उसे एक अलग धर्मका रूप दिया। महान् सम्राट अशोकने बौद्ध धर्मके प्रचारके लिए भिन्न-भिन्न देशोंमें लोग भेजे और लंका चीन ब्रह्मदेश आदि मुल्कोंमें बौद्ध धर्मको फैलाया। इस समय हिन्दू धर्मकी यह खूबी प्रकट हुई कि किसीको जबरदस्ती बौद्ध नहीं बनाया गया। केवल वादविवाद द्वारा तर्क करके और प्रधान रूपसे अपने शुद्ध चालचलनसे प्रचारकोंने लोगोंके मनपर छाप डाली थी। ऐसा कह सकते हैं कि बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म भारतमें तो एक ही थे और आज भी दोनोंके मूल तत्त्व एक ही हैं।

मुहम्मद पैगम्बरका जन्म

आपने देखा कि हिन्दू धर्मपर बौद्ध धर्मका असर अच्छा हुआ और उससे हिन्दू धर्मके रक्षक जागृत हुए। आजसे १ वर्ष पहले हिन्दू धर्म एक दूसरे सम्पर्कमें आया जो ज्यादा जोरदार था। हजरत मुहम्मद अबसे ११ वर्ष पहले जन्मे। उन्होंने अरबस्तानमें बहुत अनाचार देखा। यहूदी धर्म तब मोठे जा रहा था। ईसाई धर्म वहाँ पाँव नहीं जर पाता था और लोग विषयी और स्वच्छन्द हो गये थे। यह सब मुहम्मदको ठीक नहीं लगा। उनका मन दुःखने लगा और उन्होंने ईश्वरका नाम लेकर अपने देशवासियोंको होशमें लानेका निश्चय किया। उनकी लगन इतनी तीव्र थी कि आस-पासके लोगोंपर उनके हार्दिक जोशकी छाप तुरन्त पड़ी और बड़ी तेजीसे इस्लामका प्रचार हुआ। जोश इस्लामकी जबरदस्त खूबी है। इससे कई अच्छे काम हुए और कई बार बहुत बुरे काम भी हुए। १ वर्ष पूर्व इस्लाम फैलानेके लिए भारतपर गजनीकी सेना चढ़ आई। हिन्दू मूर्तियोंका खण्डन शुरू हुआ और लोग नाहक हलाकान थे। इस तरह एक तरफसे जबरदस्ती हो चली और दूसरी तरफसे इस्लामी फकीर उसकी वास्तविक खूबी बताने लगे। जो इस्लाममें आते हैं वे सब बराबर हैं इस बातका असर हल्के वर्गके लोगोंपर बहुत अच्छा पड़ा और लाखों हिन्दुओंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इससे हिन्दुओंमें बड़ी खलबली मची।

१. देखिए, *आर्कटिक होम इन दि वेदाज्* ।

२. यहाँ मूलमें स्थान अस्पष्ट छोड़ा गया है।

बनारसमें कबीर पैदा हुए। उन्होंने सोचा कि हिन्दू विचारके अनुसार हिन्दू-मुसलमानमें भेद नहीं है। अगर दोनों अच्छा काम करें तो स्वर्ग प्राप्त कर सकते हैं। मूर्तिपूजा हिन्दू धर्मका आवश्यक तत्त्व नहीं है — यह सोचकर उन्होंने इस्लाम और हिन्दू धर्मको एक करना शुरू किया। किन्तु उसका बहुत असर नहीं हुआ और वह एक अलग पंथ होकर रह गया जो आजतक देखनेमें आता है। कुछ बरसों बाद पंजाबमें गुरु नानक हुए। उन्होंने वही कबीरका तर्क मानकर, दोनों धर्मोंको एक करनेका विचार पसन्द किया किन्तु उसके साथ-साथ उनका खयाल यह भी था कि जरूरत पड़े तो इस्लामको तलवारसे मुकाबला करके हिन्दू धर्मकी रक्षा की जाये। इसीमें से सिक्ख धर्म उत्पन्न हुआ और लड़नेवाले सिक्ख तैयार हुए। इस सबका नतीजा यह हुआ है कि भले ही इन दिनों भारतमें हिन्दू और मुसलमान ऐसे दो मुख्य धर्म हैं फिर भी दोनों कौमें हिल-मिलकर रहती हैं और दोनों एक-दूसरेकी भावनाको चोट न पहुँचे ऐसा बर्ताव करती हैं। हाँ राजनीतिक संघर्ष और उत्तेजनासे तनाव उत्पन्न होती है। हिन्दू योगी अथवा मुस्लिम फकीरके बीच बहुत थोड़ा अन्तर देखनेमें आता है।

पैगम्बर यीशु क्राइस्ट

इस तरह जब इस्लाम और हिन्दू धर्ममें प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी उसी बीच लगभग ५ वर्ष पहले ईसाई गोवाके बन्दरगाहमें उतरे और हिन्दुओंको ईसाई बनाने लगे। उन्होंने भी कुछ बलपूर्वक और कुछ समझाकर काम लेनेकी पद्धति अपनाई। उनमें कई पादरी अत्यन्त कोमल और दयालु थे। उनको सन्त कहें तो भी गलत नहीं होगा। उनका असर फकीरोंकी तरह हिन्दू जातिके निचले वर्गोंपर बहुत हुआ। परन्तु बादमें जब ईसाई धर्म और पश्चिमी सभ्यताका गठबन्धन किया गया तब हिन्दुओंने ईसाई धर्मको पसन्द नहीं किया। और आज हम देखते हैं कि उनके ऊपर एक बहुत बड़ी ईसाई शक्तिका राज्य होनेपर भी बिरला ही हिन्दू ईसाई धर्म स्वीकार करता है। फिर भी ईसाई धर्मका असर हिन्दू धर्मपर बहुत अधिक हुआ है। उन पादरियोंने ऊँचे प्रकारका शिक्षण दिया हिन्दू धर्मकी बड़ी-बड़ी कमियाँ बताईं और परिणाम यह हुआ कि कबीर जैसे दूसरे हिन्दू शिक्षक पैदा हुए और उन्होंने ईसाई धर्ममें जो अच्छा था उसे सीखना शुरू किया और हिन्दुओंकी कमियाँ दूर करनेका आन्दोलन चलाया। राजा राममोहनराय देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन ऐसे ही व्यक्ति थे। पश्चिम भारतमें दयानन्द सरस्वती हुए और वर्तमानकालमें भारतमें ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज बने। यह निश्चय ही ईसाई धर्मका असर है। फिर श्रीमती एनीबेसेन्टने[1] भारतमें आकर हिन्दू-मुसलमान दोनोंको पश्चिमी सभ्यताके दोषोंसे परिचित कराया और उन्हें समझाया कि उसपर आसक्त नहीं होना चाहिए।

हिन्दू धर्मके तत्त्व

इस तरह आपने देखा कि हिन्दू धर्मपर तीन आक्रमण — बौद्ध इस्लाम और ईसाई धर्मके हुए। किन्तु कुल मिलाकर देखें तो हिन्दू धर्म उनसे उबरकर निकला है। हरएक धर्ममें जो अच्छाई थी उसे उसने ग्रहण करनेका प्रयत्न किया है। इस धर्मके लोग क्या मानते हैं, यह जान लेना चाहिए। ईश्वर है। वह अनादि है। निर्गुण है। निराकार है। सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान है। उसका मूल स्वरूप ब्रह्म है। वह करता नहीं है कराता नहीं है। वह सत्ता नहीं चलाता। वह आनन्दस्वरूप है और उसके द्वारा ही सारी सृष्टिका पालन होता है। आत्मा है जो देहसे पृथक् है। वह भी अनादि है, अजन्म है। उसके मूल स्वरूप और ब्रह्ममें भेद नहीं है। किन्तु

१ थियोसॉफिकल सोसायटीकी संस्थापिका।

कर्मवश या मायावश समय-समय पर देह धारण करता रहता है और अच्छे या बुरे कर्मोंसे अच्छी या बुरी योनियोंमें जनमता रहता है। जन्म-मरणके चक्करसे छूटना और ब्रह्ममें लीन होना मोक्ष है। मोक्ष पानेका साधन बहुत अच्छे काम करना जीव-मात्र पर दया करना और सत्यमय होकर रहना है। इस ऊँचाईतक या पहुँचनेपर भी मोक्ष नहीं मिलता क्योंकि ऐसे अच्छे कामोंका फल भोगनेके लिए भी शरीर मिलता ही है। इसलिए इससे भी एक कदम आगे बढ़ना जरूरी है। कर्म करना तो अनिवार्य है ही अब उनमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। उन्हें करनेके लिए करें किन्तु उनके परिणाम पर नजर न रखें। कौड़ेमें सब ईश्वरको अर्पण करें। हम कुछ कर रहे हैं या कर सकते हैं स्वप्नमें भी ऐसा गुमान नहीं रखना चाहिए। सबको समान-भावसे देखना चाहिए। ये हैं हिन्दू धर्मके तत्त्व। हिन्दुओंमें अनेक सम्प्रदाय हैं फिर लौकिक आचारोंको लेकर कुछ फिरके बन गये हैं। उन सबका विचार हम प्रसंगपर करना जरूरी नहीं है।

परिसमाप्ति — पुनर्वेपार्थोंसे प्रार्थना

यदि आपमें से किसीपर भी यह सब सुनकर अच्छा असर हुआ हो और यदि आपको ऐसा लगा हो कि हिन्दू या भारतीय जिनके देशमें ऐसा धर्म प्रचलित है वे एकदम नीची प्रकृतिके लोग नहीं होंगे तो आप राजनीतिके मामलोंमें बिना उकसे मेरे देशवासियोंकी सेवा कर सकते हैं।

हम सबको प्रेमसे रहना है यह सारे धर्म सिखाते हैं। मेरा हेतु आपको धर्मका उपदेश देना नहीं था। मैं वैसा करने योग्य हूँ भी नहीं। मेरा इरादा भी नहीं है। फिर भी यदि आपके मनपर कोई अच्छा असर पड़ा हो तो उसका लाभ मेरे भाइयोंको देनेकी कृपा करें। अब उनकी निन्दा हो तो उनका पक्ष लें जो अंग्रेज जातिकी शोभता है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १५-४-१९०५

३४२ पत्र छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
अप्रैल १७ १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी
मार्फत इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि छगनलाल

तुम्हारा पत्र मिला। तुम जिन मामलोंका उल्लेख करते हो उनपर तुम्हें भी किफिनसे बात कर लेनी चाहिए। चुप नहीं बैठना चाहिए। तुम देखोगे कि तुम्हारी उत्सुकताएँ जो बिलकुल वाजिब है उन्हें बुरा नहीं लगेगा। नया इन्तजाम कैसा रहा? क्या बाँध-बर्क अब पूरा हो गया है, या होनेको है? जबतक तुम यह नहीं बताते हमारी हिन्दी ग्राहक-संख्या क्या है अथवा हिन्दी पाठक एक निश्चित संख्या की गारंटी नहीं देते तबतक हम हिन्दी-स्तंभ नहीं बढ़ा सकते। मैं एक पत्र तुम्हारे इस पत्रको पानेके पहले डाकमें छोड़ चुका हूँ। वास्तवमें उसमें मैंने यही लिखा है कि यदि पर्याप्त ग्राहक नहीं बनते तो मैं हिन्दी स्तंभोंमें कमी कर देना भी पसन्द करूँगा। यही बात तमिल पर लागू होती है। फिलहाल मेरे यहाँ पहुँच सकनेकी कोई सूरत नहीं है। मैं १ पौंड भेज ही चुका हूँ। आनेके तीन महीनोंतक तुम एम सी कमरुद्दीनके नाम चकों पर दस्तखत मत करना।

तुम्हें कमसे कम छः महीनोंकी मुहलत मिलनी चाहिए। श्री नाजर तुम्हें गुजराती दें चाहे न दें चिन्ता नहीं करना। क्या तुम निश्चित रूपसे मर्क्युरीमें आ सकते हो? यदि अपनी तारीख पहलेसे तय करो तो मैं तुम्हारे लिए अनुमतिपत्रका प्रबन्ध कर सकता हूँ। यदि मणि चाहता है कि उसे दो प्रतियाँ भेजी जायें तो बेशक केवल एकका पैसा लगाकर ऐसा कर सकते हो। और बंबईमें श्री वल्लभजीको नियमसे तीन प्रतियाँ भेजता रहता हूँ। क्या लन्दन और भारतकी भेंट-सूची छोटी नहीं की जा सकती? विदेशोंमें यानी ब्रिटिश दक्षिण आफ्रिकाके बाहर भेंटमें कुल कितनी प्रतियाँ जाती हैं? मैं बड़े परिश्रमसे तमिल सीख रहा हूँ और यदि सब ठीक रहा तो मैं अधिकसे अधिक दो महीनोंमें तमिल लेख काफी समझने लगूँगा। मैं तमिल पुस्तकें पानेके लिए जरा आतुर हो उठा हूँ। अगर बालासिंह न मिलें तो उनके लिए कोशिश करो। मेरा खयाल है तुम मेरी जरूरत समझ गये हो। तुम श्री मूडलेके घर जा सकते हो। मैंने उन्हें लिख दिया है।

तुम्हारा शुभचिन्तक,
मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२१२) से।

३४३. पत्र : छगनलाल गांधीको

जोहानिसबर्ग
अप्रैल १९, १९०९

श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी
मार्फत इंटरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। हिन्दी और तमिलके बारेमें मुझे आशा है तुम हिम्मतसे काम कर लोगे। निःसन्देह अगर मुझे दोनों भाषाओंको छोड़ देनेका बड़ा दुःख होगा। मैरिट्ज़बर्गके बारेमें मैं तुमसे बिलकुल सहमत हूँ। श्री वेस्टसे इसपर चर्चा कर लेना। मैरिट्ज़बर्गके कमतक आनेकी संभावना है? उम्मीद करता हूँ कि भाइ कल शामको रवाना हो रहा है उसके साथ तुम्हें केक भिजवा सकूँगा। तमिल पुस्तकें मिल गई हैं। वे उपयोगी होंगी। वैसे मुझे पोपके बड़े व्याकरणकी जरूरत थी। मैंने मगनभाईको अपनी जो किताब दे दी सो तुमने देखी है। तुमसे केक ठीक नहीं बनती तो भट्टी ठीक नहीं होगी। या तुम काफी मोन नहीं डालते। आटेको पानीमें कोई तीन घंटे फूलने देना चाहिए। जब केक बनाने जाओ तब पहले घीका मोन दो और उसे आटेमें एकजी कर दो। तब पानी डालो और खूब अच्छी तरह उसे गूँधो।

तुम्हारा शुभचिन्तक,
मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२११) से।

३४४ पत्र "आउटलुक"को[1]

[अप्रैल १२, १९०७
के पूर्व]

सेवामें
सम्पादक
आउटलुक
जोहानिसबर्ग

महोदय

श्री डब्ल्यू॰ हिल्सने *आउटलुकको* लिखे अपने पत्रमें ऐसी बातें कही हैं जो तथ्योंसे प्रमाणित नहीं होतीं। सम्पादकने किसी ऐसी नीतिका समर्थन नहीं किया है जिससे ट्रान्सवाल एक परोपजीवी प्रजातिके हाथोंमें चला जायेगा। स्वयं श्री हिल्स अप्रत्यक्ष रूपसे स्वीकार करते हैं कि ब्रिटिश भारतीय बहुत उद्यमी और परिश्रमी हैं। ऐसे लोगोंकी प्रजातिको परोपजीवी कह कर पुकारना न्यायसंगत नहीं है।

श्री हिल्स कहते हैं एशियाइयोंके प्रति उनका विरोध रंग-द्वेष-जनित नहीं बल्कि आर्थिक कारणोंसे है। इसके समर्थनमें वे सब नेटालवासियोंके अनुभवका उल्लेख करते हैं। अब सब नेटालवासियोंके अनुभवकी जानकारी हासिल करना तो बहुत कठिन है। कुछ लोगोंका अनुभव जो नेटाली लोगोंके प्रतिनिधि भी माने गये हैं कागजातमें मौजूद है। स्वर्गीय श्री सॉण्डर्स स्वर्गीय सर हेनरी बिन्स स्वर्गीय सर जॉन रॉबिन्सन स्वर्गीय श्री एस्कम्ब वर्तमान उपनिवेश-सचिव श्री मेडन सर जी॰ एम॰ सटन सर जेम्स हलेट और अन्य अनेक सज्जनोंने नेटालके भारतीयोंकी उपयोगिताकी साक्षी दी है। स्वर्गीय सर हेनरी बिन्सने एक आयोगके सामने गवाही देते हुए कहा था कि भारतीयोंके प्रवासका समारम्भ तब किया गया था जब कि नेटाल दिवालियापनके कगार पर खड़ा था। सर जेम्स हलेटने अभी कुछ ही महीने पहले वतनी मामलोंके आयोगके सामने गवाही देते हुए जोरदार शब्दोंमें कहा था कि नेटालकी समृद्धिका श्रेय भारतीय प्रवासियोंको है और उनके बिना नेटालका काम नहीं चल सकता तथापि नेटालको भारतीयोंकी जरूरत है इसके समर्थनमें सबसे बड़ा प्रमाण तो स्वयं श्री हिल्सने ही दिया है। अगर १८९६ से लेकर, अब तक वहाँ भारतीयोंकी आबादी दुगुनी हो गई है तो इसका कारण क्या है? कारण सिर्फ यह है कि नेटालके मुख्य उद्योगों — अर्थात् चीनी चाय और कोयलाके उद्योगों — को चालू रखनेके लिए अधिकाधिक भारतीयोंकी आवश्यकता प्रकट की जा रही है। याद रखना चाहिए कि श्री हिल्स जिन भारतीयोंका खयाल कर रहे हैं वे बिना बुलाये नहीं आये हैं बल्कि उपनिवेशके लिए वस्तुतः आमन्त्रित किये गये हैं। भारतीय प्रवासी न्यास निकाय (इंडियन इमिग्रेशन ट्रस्ट बोर्ड) के सामने अब भी १८ आवेदन पत्र मौजूद हैं जिनको निबटाना बाकी है। भारतीय गिरमिटिया मजदूरोंकी उपलब्धिकी अपेक्षा माँग बहुत ज्यादा है। वेरुलममें हमेशा भारतीयोंकी बहुत बड़ी आबादी रही है। श्री हिल्स यह खेद व्यक्त करते हुए, कि वह भारतीय नगर बन गया है यह भूल जाते हैं कि उसके सामने दो ही चारे थे — या तो वह भारतीयोंका नगर बन जाता या नगर रहता ही नहीं। सबसे ज्यादा

१ यह पत्र *आउटलुकमें* "एक प्रतिष्ठित नामसे १४ मार्चको श्री डब्ल्यू॰ हिल्सके पत्रके साथ छपा था। उसके सम्पादकने श्री हिल्सका पत्र "एक निष्पक्ष एवं विशेष जानकार व्यक्ति" को भेज दिया था। संकेत गांधीजीकी ओर था। पत्र और उत्तर दोनों बादमें *इंडियन ओपिनियनमें* छपे थे। श्री हिल्सका पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

21 24 Court Chambers
Corner Rissik Anderson Streets
P.O. Box 6522

Johannesburg 18th April 1905 190

My dear Chhaganlal

I have your letter You should talk to Mr Kitchin about the matters you mention You should not sit still You will find that your curiosity which will be quite legitimate will not be resented How is the new arrangement working? Is the job work now finished or about to be? Before you tell me how many Hindi subscribers we have or unless the Hindi people would guarantee so many subscribers we cannot afford to increase the Hindi columns In fact the letter that crossed your letter under reply would show you that I would even decrease the Hindi columns if you have not enough support The same thing applies to Tamil There is no prospect of my being able to go there at present I have already sent £100 You should not sign the notes in favour of M C Camroodeen three months hence We should get at least six months You need not bother about Mr Nazar giving you any Gujarati Can you definitely come in the beginning of May? If you fix your date before hand I can arrange for your permit If Appoo wants you to send two copies do so by all means charging for one only and you should regularly send three copies to Mr Rustomji at Bombay Can you not reduce the complimentary list for India and London? What is the total of foreign complimentary copies that is outside British South Africa? I am studying Tamil very diligently and if all is well I may be able to fairly understand the Tamil

- articles -

भारतीय नेटालके उत्तरी तटपर जाते हैं। उसका विकास या तो भारतीय मजदूरोंसे होता या बिलकुल होता ही नहीं। नेटालके लोगोंने सोचनेमें ज्यादा बुद्धिमानी की है। उन्होंने भारतीय मजदूरोंके जरिये तटवर्ती जमीन पर खेती करानेमें पसोपेश नहीं किया। और, याद रहे, उत्तरी तटपर भी जो बड़ी-बड़ी महलों जैसी इमारतें हैं और जिनमें गोरे लोग रहते हैं पूर्ण रूपसे भारतीय प्रवासियोंकी ही मददसे बनी हैं और वे उन्हींके मालिकोंकी सम्पत्ति भी हैं। इस तरह नेटालका उदाहरण पूर्णतः भारतीयोंके पक्षमें है और जिन आर्थिक कारणों पर श्री हिल्स इतना जोर देते हैं उन्हींसे नेटालके लोग भारतीयोंकी सहायताका आश्रय लेनेके लिए विवश हुए हैं।

फिर श्री हिल्स यह कहनेमें भी भूल करते हैं कि "पिछली सरकारके अधीन कानून द्वारा जैसी कि उसकी १५ वर्ष तक व्याख्या की जाती रही थी एशियाई बस्तियोंमें ही रहनेके लिए बाध्य थे"। यह तो एक सुविदित तथ्य है कि पिछली सरकारके शासनमें भारतीय पूर्णतः बन्ध-मुक्त होकर बस्तियोंके बाहर रहते थे और इस तरह रहनेके कारण ही वर्तमान सरकारको उन्हें बेदखल करना कठिन हो रहा है। यह सच है कि उस समय उन्हें ब्रिटिश संरक्षण प्राप्त था इसलिए अब उसे वापस नहीं लिया जा सकता। फिर यह भी याद रखना चाहिए कि बोअरोंके शासनमें भारतीयोंके प्रवासपर कोई रुकावट नहीं थी। इसके विपरीत आज जैसा कि मुख्य पर वाना-सचिवने बताया है, केवल उन भारतीयोंको उपनिवेशमें पुनः प्रवेशकी इजाजत दी जाती है जो युद्धके पहले देशमें बसे हुए थे — और सो भी बहुत पूछताछ और विलम्बके बाद। यद्यपि श्री हिल्स सामान्य गोरी आबादी और उसके कल्याणकी बातें करते हैं अपने सिद्धान्तोंको लागू करनेमें वे सिर्फ भारतीयोंके व्यापारिक परवानोंका ही खयाल करते हैं। तो क्या उनकी आपत्ति केवल भारतीय व्यापारियोंके बारेमें ही है? श्री हिल्स यह मान कर फिर गलती करते हैं कि दक्षिण आफ्रिकी रंगदार लोगोंको तो परवाने देनेसे इनकार किया जाता है जबकि वे भारतीयोंको बेरोकटोक दे दिये जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयके अन्तर्गत सरकार किन्हीं रंगदार लोगोंको रंगदार होनेके आधार पर परवाने प्राप्त करनेसे रोक ही नहीं सकती। और अगर श्री हिल्सकी आपत्ति मन्तव्य — जैसी कि वह दिखलाई पड़ती है — उपनिवेशका व्यापार पूर्णतः या अधिकांशमें भारतीयोंके हाथोंमें जाने देनेके विरुद्ध है तो उनके साथ सहानुभूति व्यक्त करनेमें बहुत कठिनाई नहीं है और न आउट्लुकके सम्पादकने यह सुझाव दिया है कि इस प्रकारकी प्रतिस्पर्धाका साधारण कानून द्वारा विनियमन न किया जाये। परन्तु भारतीय व्यापारका इस प्रकारसे विनियमन करना और हर प्रकारसे हैरान करनेवाले कानून बना-बनाकर भारतीयोंको उपनिवेशसे खदेड़ देना दो भिन्न बातें हैं। एकके साथ जबतक कि निहित स्वार्थोंको हानि नहीं पहुँचाई जाती और भारतीयोंको भारतीय होनेके नाते ही परवाने देनेसे इनकार नहीं किया जाता प्रत्येक समझदार उप-निवेशी पूरी तरहसे सहमत रहेगा। परन्तु भारतीयोंका ऐसे कामोंसे जैसे सड़कोंकी पटरियों पर चलनेसे जमीन-जायदाद खरीदनेसे कड़े म्यूनिसिपल विनियमोंके अनुसार निवास करनेसे या जहाँ वे चाहें वहाँ मसजिद बनानेसे रोकना शायद ही न्याय और औचित्यके अनुकूल है। अगर ऐसे प्रतिबन्धों का मूल रंगभेद-जनित नहीं है तो वे निरर्थक हैं। और यह शंकाजनक है कि इस प्रकारके इस भावकी लपटोंको उत्तेजित करनेवाले लोग आगामी पीढ़ियोंका कोई भला कर रहे हैं। हकीकतें जैसी हैं, वैसी मंजूर करनी चाहिए। भारत भी ट्रान्सवालके समान ही ब्रिटिश साम्राज्यका भाग है। इन दोनोंके बीच आदान-प्रदानकी नीति तो होनी ही चाहिए, मगर साथ ही गैरजरूरी तौरपर उन लोगोंकी भावनाओंको ठेस पहुँचानेवाली कोई कार्रवाई न की जानी चाहिए जो आखिर कार तो उसी सम्राटकी प्रजा हैं जिसकी प्रजा व स्वयं हैं और जिनकी विशिष्ट परम्पराएँ हैं तथा जो एक आश्चर्यजनक प्राचीन सभ्यताके उत्तराधिकारी हैं।

सारी कठिनाई तो सीधे-सादे विधेयकोंसे दूर की जा सकती है। एकसे तो तमाम व्यापारिक परवानोंका नियंत्रण स्थानिक संस्थाओंको सौंप दिया जाये, हाँ, विशेष मामलोंमें सर्वोच्च न्यायालयको पुनर्विचार करनेका अधिकार रहे; और दूसरेके द्वारा केप प्रवासी अधिनियमके आधारपर उपनिवेशमें प्रवासका विनियमन कर दिया जाये।

श्री हिस्लके एक और कथनमें भूल-सुधार करना आवश्यक है। स्टारमें एक वक्तव्य प्रकाशित करके इस कथनको चुनौती दी गई थी कि पीटर्सबर्गमें ११ गोरे वस्तु-भंडार मालिक हैं और उनके विरुद्ध ४९ भारतीय वस्तु-भंडार मालिक। इसके बाद कमसे-कम कुछ तो सावधानी जरूरी है। ब्रिटिश भारतीय संघने निश्चयात्मक रूपसे प्रकट किया है[1] कि उस शहरमें केवल २१ भारतीय वस्तु-भंडार हैं। श्री हिस्लने जिन श्री क्लाइनेनबर्गकी नकल की है वे उस कथनका खंडन नहीं कर सके। इसलिए श्री हिस्लके लिए जरूरी है कि वे श्री क्लाइनेनबर्गसे दरियाफ्त करें कि क्या उन्होंने स्टारमें जो आँकड़े दिये वे उनकी पुष्टि की जा सकती है। जब तक ब्रिटिश भारतीय संघका ही कथन अंतिम है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि जो लोग लोकमतके नेतृत्वके जिम्मेदार हैं वे अपने सामने सच्ची बातें ही रखें, सच्ची बातोंके अलावा और कुछ नहीं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३४५. ऑरेंज रिवर कालोनी

जोहानिसबर्गके कर्मठ ब्रिटिश भारतीय संघका पत्र अन्यत्र मिलेगा। यह पत्र ऑरेंज रिवर कालोनीके उपनिवेश-सचिवको उपनिवेशकी एशियाई-विरोधी प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें भेजा गया है। इस लोकापवादके मामलेमें कदम उठानेके लिए हमें संघको अवश्य ही बधाई देनी चाहिए। अबतक हमें नगरोंके विनियमोंकी ओर ध्यान आकर्षित करना पड़ा है। ये विनियम जिस छूटके साथ बने और काममें आये उससे हिम्मत पाकर ब्लूमफोंटीनकी नगरपालिकाने अब एक अध्यादेश बनवा लिया है। इसके द्वारा उसे लगभग वे ही अधिकार प्राप्त हो गये हैं जो कि उपनिवेशके अनेक नगरोंमें उन विनियमोंके द्वारा हड़प लिये गये हैं जिनकी ओर इस पत्र द्वारा अनेक बार ध्यान आकर्षित किया जा चुका है। अध्यादेशके पास होनेसे मालूम होता है कि उसकी एशियाई विरोधी धाराएँ साम्राज्यके उपनिवेश-मन्त्रीने स्वीकार कर ली हैं। जैसा कि ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्षने अपने पत्रमें कहा है, निस्सन्देह ऐसा कानून "पतनकारी, अन्यायपूर्ण और अपमानजनक है। और, "ऑरेंज रिवर कालोनीकी इस प्रकारकी रंगदार-विरोधी प्रवृत्ति ब्रिटिश परम्पराओं और स्वर्गीया महारानीके मन्त्रियों द्वारा बार-बार की गई घोषणाओंके विरुद्ध है।

हम देखते हैं कि सर मंचरजी[3] भी ब्रिटिश भारतीय संघसे दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके सम्बन्धमें फिर फिर प्रश्न पूछ रहे हैं। हम मानते हैं कि यद्यपि ऑरेंज रिवर कालोनीमें यह प्रश्न अभीतक अधिक ब्रिटिश भारतीयोंके मार्गमें बाधक नहीं हुआ है फिर भी यदि वे इसे संजीदगीके साथ उठायेंगे तो उन्होंने दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंकी जो अनेक सेवाएँ की हैं उनमें यह कार्रवाई और जुड़ जायगी। हम उस दिनके आगमनके बारेमें निराश नहीं हैं, जब कि भारतीयोंको एक उचित अनुपातमें उस उपनिवेशमें बसने दिया जायेगा। इस समय भी वहाँ शायद २ भारतीयोंसे कम न होंगे जो उपनिवेशके भिन्न-भिन्न शहरोंमें रहकर अपनी आजीविका उपार्जित कर रहे हैं। हम

1. देखिए "पत्र: स्टारको," दिसम्बर २४, १९०४के पूर्व।
2. देखिए "पत्र: उपनिवेश-सचिवको," अप्रैल ११, १९०५।
3. लन्दनके दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीय समितिके सदस्य।

अनुभव करते हैं कि उनकी भी — क्योंकि वे मुट्ठी-भर हैं — जानबूझ कर किये जानेवाले इस अपमानसे रक्षाकी जरूरत है। राज्यके कानूनोंके कारण ही वे इस अपमानके शिकार बनाये गये हैं।

शुद्ध साम्राज्यीय दृष्टिकोणसे तो हम एक कदम और आगे जा सकते हैं और कुछ पूछ सकते हैं कि क्या यह दूरदर्शितापूर्ण या उचित है कि इस भूमिके मूल निवासियोंको अनावश्यक प्रतिबन्ध लगा-लगाकर परेशान किया जाये? ब्रिटिश शासनमें किसी समाजको गतिरुद्ध अथवा अप्रगतिशील नहीं रहने दिया जाता। मूल निवासियोंको धीरे-धीरे शिक्षा दी जा रही है। यह मान लेना गलत होगा कि उनकी कोई भावनाएँ नहीं हैं या वे अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रतामें कमी होनेपर दुःखी नहीं होते। हम ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी बस्तियोंको नियमित करनेके विनियमोंकी तुलना उन नियमोंसे करते हैं जो किसी व्यवस्थित जेलमें कैदियोंका नियन्त्रण करनेके लिए बनाये जाते हैं। और ऐसी तुलनामें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। अगर ऑरेंज रिवर उपनिवेशकी बस्तियोंको थोड़ी-सी ज्यादा स्वतंत्रता है तो उसमें सिर्फ मात्राका अन्तर है, प्रकार का नहीं। ट्रान्सवालके आदिवासियोंका बहुत लम्बा प्रार्थनापत्र बताता है कि उनमें ब्रिटिश झंडेकी छत्रछायामें अपने अधिकारोंकी भावना जाग रही है। सच्ची राजनीतिज्ञता यह होगी कि उनकी मुनासिब जरूरतोंका पहले ही से अनुमान कर लिया जाये और वे पूर्ण कर दी जायें। ऑरेंज रिवर उपनिवेशमें तो दीख पड़ता है कि मूल निवासियोंके मनमें कोई भावना है, ऐसा माना ही नहीं जाता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २२-४-१९०५

३४६. लन्दन विश्वविद्यालयमें तमिल भाषा

लंकासे हमें एक पत्र प्राप्त हुआ है। उसमें हमसे अनुरोध किया गया है कि हम मैट्रिक तथा कला-विषयक अन्य परीक्षाओंके पाठ्य-क्रममें तमिल भाषाको वैकल्पिक विषयके रूपमें स्थान देनेके लिए लन्दन विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रारको प्रार्थनापत्र भेजनेके उद्देश्यसे एक सभा आयोजित करें। हम तमिल शिक्षा प्राप्त भारतीयोंका ध्यान इस मामलेकी ओर आकर्षित करते हैं। हमारा खयाल है कि इस विषयको हर तरहसे प्रोत्साहन देना चाहिए। तमिल शिक्षा-प्रेमियोंको एक सभा करके लन्दन विश्वविद्यालयकी बाह्य परीक्षाओंके रजिस्ट्रारके नाम भेजनेके लिए एक सीधा सादा प्रार्थनापत्र स्वीकार कर लेनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें जाकर बसे हुए तमिल लोगोंने अपने प्रार्थनापत्र पहले ही भेज दिये हैं और हमें कोई कारण दिखलाई नहीं पड़ता कि दक्षिण आफ्रिकाके लोग भी वैसा ही क्यों न करें। तमिल सबसे बड़ी द्राविड़ भाषाओंमें से एक है और उसका साहित्य बहुत सम्पन्न है। यह भारतकी शास्त्रीय भाषा मानी जाती है। इसलिए यह लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा वैकल्पिक विषयके रूपमें स्वीकार की जानेके सर्वथा योग्य है। लन्दन विश्वविद्यालय दुनियाकी सबसे उदार संस्था माना गया है और यह देखते हुए कि तमिल भाषा सम्राटकी प्रजाके करोड़ों लोगों द्वारा बोली जाती है, साम्राज्यकी राजधानीके विश्वविद्यालयके लिए उचित ही होगा कि वह तमिल-भाषी आवेदकोंकी प्रार्थना स्वीकार कर ले।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २९-४-१९०५

३४७. खानोंमें भारतीय

श्री लिटिलटनने खानोंमें भारतीयोंके प्रति व्यवहारके बारेमें सर मंचरजी भावनगरीके प्रश्नका ब्रिटिश संसदमें उत्तर दे दिया। यह उत्तर अत्यन्त असंतोषजनक है। श्री लिटिलटनने कहा कि उन्हें यह जानकारी नहीं कि जाँचके लायक कोई बात है। किन्तु जब तारमें मामलोंकी खबरें उनतक पहुँचेंगी तब संभवत वे अपनी राय बदल देंगे। ऐसे अरुचिकर मामलोंका लगातार होते रहना खुद कड़ी और निष्पक्ष जाँचके लिए बिलकुल पर्याप्त कारण है। श्री लिटिलटनने यह भी कहा कि नेटालमें एक भारतीय संरक्षक है। ऐसा कहनेसे उनका आशय यह था कि उसीको इस मामलेको पेश करना था। किन्तु, उसने यह मामला पेश किया हो यह हमने नहीं सुना। *नेटाल विटनेस* श्री लिटिलटनके इस उत्तरपर टिप्पणी करते हुए इसे असन्तोषजनक मानता है और इस सम्बन्धमें जाँचकी माँग दुहराता है। भारतीय संरक्षकके बारेमें विटनेस लिखता है :

> हम जानते हैं कि ऐसा एक अधिकारी है; किन्तु खानोंमें नियुक्त भारतीयोंका कहना है कि उन्हें उसके पास जाने नहीं दिया जाता और यह खुद ऐसी बात है जिसकी जाँचकी जरूरत है।

पत्र यह भी लिखता है :

> यदि हमारी सरकार इन मामलोंमें अपने कर्तव्य को स्वीकार करनेमें चूकती है तो आशा करनी चाहिए कि इंग्लैंडमें यह प्रश्न आँखोंसे ओझल नहीं किया जायेगा और वहाँसे ठीक दिशामें प्रभाव डाला जायेगा। किन्तु यदि ऐसे किसी दबावके बिना ही जाँच कराई जायेगी और जितने आरोप अन्तिम रूपसे सिद्ध या असिद्ध कर दिये जायेंगे तो यह ज्यादा अच्छा होगा।

हमें आशा है कि ये मामले भारत सरकारके ध्यानमें लाये जायेंगे। वह अपने पूर्व अनुभवके कारण श्री लिटिलटनकी तरह सरलतासे सन्तुष्ट न होगी। किन्तु, सबसे अच्छी बात नेटाल सरकारके लिए यह होगी कि वह हमारे सहयोगीके सुझावके अनुसार स्वयं पहल करके जाँच कराये और अविलम्ब मामलेकी तहतक छानबीन करे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-४-१९ ५

३४९ ईस्ट लंदनमें भारतीय

ईस्ट लंदनमें भारतीयोंके पैदल पटरियोंपर चलने और नगरमें रहनेपर कुछ प्रतिबन्ध हैं। वहाँका कानून ऐसा है कि जो भारतीय जमीनके मालिक हों अथवा उनके किरायेदार हों वे शहरमें आजादीसे रह सकते हैं। किन्तु नगर-परिषदसे उन लोगोंको पास प्राप्त कर लेना चाहिए। जो माँगे उसे पास देनेके लिए टाउन क्लार्क बँधा हुआ है। भारतीयोंने आम तौरसे इस प्रकार पास लेनेमें आनाकानी की। डेढ़ वर्ष तक जूझते रहे और काम चलता रहा किन्तु जब नगर परिषदने मुकदमा दायर कर दिया तब मजिस्ट्रेटने नगर-परिषदके हकमें फैसला दिया। इसके विरोधमें भारतीयोंने अपील की। उसमें यह मुद्दा रखा कि वे एशियाई नहीं हैं, परन्तु भारतमें बादमें आकर बसे हैं। वे आर्य हैं। हमें इस मौकेपर कहना चाहिए कि हमारे भाइयोंने इस मुकदमेमें पैसे बरबाद किये और अपनी हँसी कराई। आर्य हैं इत्यादि बात सही है। परन्तु अदालतमें इस प्रकारकी दलील देनेसे नुकसान ही होता है और हुआ भी।

ईस्ट लंदनका कानून जब बना उस समय जागनेकी जरूरत थी। बने हुए कानूनोंको रद कराना बहुत मुश्किल होता है। अब हमारी सलाह है कि चुपचाप कानूनका पालन करके प्रमाण पत्र ले लेना चाहिए। दूसरी जगहों जैसे ट्रान्सवाल आदिकी तुलनामें ईस्ट लंदनमें अब भी स्थिति बेहतर है। *कानूनके अनुसार चलें और हम भी लड़ाई लड़ते रहें।* परन्तु यह लड़ाई संसदकी मार्फत लड़नी चाहिए। ईस्ट लंदनमें हमारे पास वोटकी ताकत और वोटका हक है। इसलिए उसका ठीक उपयोग करनेसे अच्छा परिणाम निकलेगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-४-१९ ५

३५० गिरमिटिया भारतीय

नेटालके *गवर्नमेंट गजट*से पता चलता है कि प्रत्येक व्यक्तिपर ३ पौंडका जो कर लगाया गया है उसके लागू होनेके बाद सन् १९ ४ के दिसम्बरकी ३१ वीं तारीखतक ११,१७५ मर्द और ५,३१४ औरतें गिरमिटसे मुक्त हुए। उनमें से ७,५८५ मर्दोंने और १,८८५ औरतोंने ३ पौंडका कर दिया है। अर्थात् मुक्त होनेवाले गिरमिटियोंमें से ५ प्रतिशतने प्रति व्यक्ति लगाया गया यह कर सरकारको दिया है। और वे लोग इस समय कालोनीमें नौकरी अथवा दूसरा धन्धा करते हैं।

इन व्यक्तियोंसे सरकार २८,२९ पौंडकी उगाही कर चुकी है। इसपर विचार करें तो यह कोई मामूली रकम नहीं है। गिरमिटकी मियादको ऐसी सजा दी जाती है यह बहुत दुःखकी बात है। लेकिन जहाँ चारा न हो वहाँ सन्तोष कर लेना पड़ता है। लॉर्ड कर्जनके लगाये हुए हिसाबके अनुसार प्रत्येक भारतीयकी औसत वार्षिक आय ३ रुपयेकी होती है। मतलब यह हुआ कि यह कर हिन्दुस्तानमें हिन्दुस्तानीकी औसत आयसे डेढ़ गुना अधिक है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-४-१९ ५

३५१ जोहानिसबर्गमें मलायी बस्ती

जोहानिसबर्गकी सरकारने फ्रीडडॉर्पकी कुछ जमीन लेनेके विचारसे कानून बनानेके लिए आयोग नियुक्त किया है। फ्रीडडॉर्पमें मलायी बस्ती आ जाती है या नहीं यह अभी निश्चित नहीं हुआ है लेकिन सम्भव है कि उसका कुछ अंश उसमें आ जायेगा। आयोग इस तरह विचार करेगा

१ किस रीतिसे रहनेवालोंके पाससे जमीन ली जाये।

२ यदि जमीन ली जाये तो उन लोगोंको हरजाना किस तरह दिया जाये।

३ इस सम्बन्धमें प्रमाण प्राप्त करना।

आयोगके मुखिया जोहानिसबर्गके मुख्य मजिस्ट्रेट श्री ब्लेन नामजद हुए हैं। आयोग कब बैठेगा यह अभी निश्चित नहीं हुआ है। लेकिन निश्चित हो जानेपर जो लोग मलायी बस्तीमें रहनेवाले हैं उन्हें सावधानी रखनी होगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-४-१९०५

३५२ ज्यूजित्सु

यूरोपकी प्रजाकी आँख धीरे-धीरे खुलती जा रही है। कवि नर्मदाशंकरने गाया है कि

राज करे अंग्रेज देश रहता है दबकर,
दबे न क्योंकर देश देहका देखो अन्तर,
यह पैंचहत्था ज्वान पाँच सौ को भी पूरे।

कविने इसमें यह बताया है कि अंग्रेजोंके शरीरकी काठी विशाल है, यह उनकी बहादुरीका एक मुख्य कारण है। जापानियोंने सिद्ध किया है कि डीलडौलदार शरीरके ऊपर कोई आधार नहीं है। रूसी लोग बहुत बड़े कद्दावर हैं फिर भी बौने और पतले जापानियोंके सामने उनकी कुछ चल नहीं पाती। इसपर अंग्रेज समझदार विचारमें पड़ गये और उन्होंने यह तय पाया कि व्यायाम और शरीरके नियमोंके सम्बन्धमें यूरोप बहुत पिछड़ा हुआ है। शरीरके भिन्न-भिन्न जोड़ और हड्डियों-पर कब क्या असर पड़ता है यह जापानी लोग बड़ी अच्छी तरह समझ सकते हैं और इसलिए वे लोग अजेय बन गये हैं। व्यायाम करते समय गर्दनकी और पैरोंकी किस नस पर दबाव पड़नेसे क्या असर होता है, यह तो हमारे बहुत-से पाठकोंको ज्ञात होगा। जापानियोंने उसी बातका सम्पूर्ण शास्त्र बनाया है। अंग्रेजोंकी फौजको यह शास्त्र सिखानेके लिए एक जापानी शिक्षक रखा गया है, और हजारोंको यह युक्ति सिखा दी गई है। इस शास्त्रका जापानी नाम ज्यूजित्सु है। फिर भी यह सवाल बना रहता है कि जब सभी प्रजा ज्यूजित्सु सीख लेगी तब फिर कुछ नई खोज करनी होगी और इस प्रकार चरखी चलती ही रहेगी।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २२-४-१९०५

३५३ मारबर्टन कृषि-परिषदका सुझाव

बारबर्टनके इर्दगिर्दकी जमीनमें तम्बाकू बोनेपर फसल ठीक होगी या नहीं इसका निर्णय करनेके लिए वहाँकी कृषि-परिषदने कैप्टन मेजको नियुक्त किया था। कैप्टन मेजका कहना है कि तम्बाककी फसल बड़ी अच्छी हो सकती है। इस परसे परिषदकी समितिने यह सिफारिश की है कि तम्बाकू बोनेके काममें सहायता करनेके लिए भारतीय लोग चाहिए और जिस प्रकार नेटालमें भारतीय आ रहे हैं उसी प्रकार बारबर्टनकी तरफके हिस्सेमें भारतीयोंको आने दिया जाये। इस प्रकार आजम ही गोरे लोगोंको भारतीय मजदूरकी जरूरत महसूस हो रही है। काफिर कामके नहीं हैं। चीनी जितने मिल सकते हैं खानोंमें खप जाते हैं। इसलिए काम करनेके लिए आम तौरसे भारतीय चाहिए।

लॉर्ड कर्जनने अपने भाषणमें[1] कहा है कि जबतक दक्षिण आफ्रिकाके राज्य भारतीयोंको पर्याप्त अधिकार नहीं देते तबतक उन्हें सहायता नहीं दी जायेगी। इसलिए यदि ट्रान्सवालकी सरकारको भारतीयोंकी सचमुच आवश्यकता होगी तो लॉर्ड कर्जनको अमूल्य अवसर मिलेगा और भारतीयोंके अधिकार दिलवानेमें वे स्वयं काफी दबाव डाल सकेंगे। जबतक ट्रान्सवालमें खेती आरम्भ नहीं की जाती तबतक इस प्रदेशका ठीक तरहसे आबाद होना सम्भव नहीं है। और भारतीयोंके बिना खेती होनेकी सम्भावना कम है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २९-४-१९०५

३५४ रंगदार और गोरे लोगोंकी आयु

केप टाइम्सने प्रश्न पूछा है कि मर्दोंसे औरतें ज्यादा जीवित क्यों रहती हैं? और हब्शी हॉटेनटॉट और मलायी आदि गोरोंसे ज्यादा जीवित क्यों रहते हैं? मर्दुमशुमारीकी रिपोर्ट पढ़नेपर यह सवाल पैदा होता है। केपमें मर्दोंसे औरतें ज्यादा हैं। मर्दोंकी संख्या १२,१८,९४ है और औरतोंकी संख्या १२१९,८६४ है। ६ वर्षकी आयुतक मर्दोंकी संख्या ज्यादा है लेकिन ७ वर्षकी आयुवालोंकी संख्यामें २१७८८ मर्द हैं और २१७१९ औरतें हैं। ८५ वर्षकी आयुवालोंमें २३५५ मर्द और २८९५ औरतें हैं। और ९५ वर्षवालोंमें ८८ मर्द और १९ औरतें हैं। केपमें १ वर्षसे अधिक आयुवाले मनुष्य १ हैं। उनमें मर्द केवल १२६ हैं और शेष सब औरतें हैं। इसी प्रकार गोरोंसे रंगदार मनुष्य अधिक आयुष्यवाले सीख पड़ते हैं।

ऐसा होनेका कारण स्पष्ट नजर आता है। यूरोपीय लोग अधिक मौज-शौक उड़ाते हैं, इस कारण उनकी आयु रंगदार मनुष्योंसे कम है और औरतोंके मुकाबले मर्दोंपर चिन्ताका अधिक बोझ होता है इसलिए मर्दोंकी आयु कम है। उनकी तुलना भारतीयोंके साथ की जाये तो भारतीय कम उतरते हैं। इसके बहुत-से सबल कारण हैं। मगर मुख्य कारण यह है कि भारतीयोंका रहन सहन दक्षिण आफ्रिकामें बहुत खराब है। पैसोंकी बचतके लिए हम बहुत-सारे लोग एक कोठरीमें

1. देखिए "दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके बारेमें लॉर्ड कर्जनका भाषण" ८-४-१९०५।

इस हफ्ते अंग्रेजीका काम कैसा हुआ। क्या रघुवीर बिलकुल चला ही गया? मुझे उसके लिए बहुत अफसोस है। क्या तुमने रातको काम करना बन्द कर दिया?

निःशुल्क-सूचीमें श्री एडवर्ड बी रोज ४५, ग्रेट ऑर्मण्ड स्ट्रीट ब्लूम्सबरी लन्दनका नाम चढ़ा लो। तुम इसी चालू अंकसे शुरू कर सकते हो।

शुभचिन्तक
मो० क० गांधी

[पुनश्च]

मिठाइयाँ देसाई लाये थे यह मालूम हो गया।[1]

संलग्न एक वक्तव्य

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस एन ४२१४) से।

३५६ पत्र छगनलाल गांधीको

[जोहानिसबर्ग
मई ८, १९०९के बाद]

चि छगनलाल[2]

तुम्हारी चिट्ठी और पोपकी पुस्तिका मिली। अगर पी डेविस तीनों भाग ३ शिलिंगसे कममें देनेको राजी हों तो तुम २५ पौंडमें[3] तीनों खरीद सकते हो। अगर वे पहला भाग १२ शिलिंग ६ पेंसमें बेचें तो तुम उसकी कीमत चुका सकते हो। अगर वे तीनों भाग एक-साथ देने अथवा बिलकुल न देनेका आग्रह करें और तीनोंके ३ शिलिंग ही माँगें तब भी तुम्हें दाम चुका देना चाहिए और दूसरे दो भाग लेकर भेज देने चाहिए।

हाँ प्रेसमें तुम्हारे नियोजनके बाद मैंने तुम्हें ५ पौंड १ शि ६ पेंस[4] भेजे थे। मैंने यह रकम प्रेसके नाम इसलिए डलवा दी है कि अन्तमें मेरी स्थिति क्या रहती है यह मैं देख सकूँ। निस्सन्देह यह रकम और छाहकी १६ पौंडकी रकम इस सालके खर्चमें शामिल नहीं होगी। छाहको दिये गये ५ पौंड और उनको दफ्तरके लिए दिये गये ५ शिलिंग मेरे नाम लिख देना। इस हफ्ते भेजी गई गुजराती सामग्री काफी है या अभी और भेजूँ?

शुभचिन्तक,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस एन ४२१५) से।

१ यह गांधीजीके स्वाक्षरोंमें है।

२. इस पत्रमें जो पोपकी पुस्तिका है वह [illegible] तमिल [illegible] उल्लेख किया है और उसका [illegible] किया है, इन दोनोंको [illegible] है; इससे मालूम होता है कि यह पत्र [illegible] है।

३ मूल अस्पष्ट है। [illegible] है। जिससे [illegible] पता है कि यह छगनलाल गांधीको लिखा गया था। लेकिन [illegible]।

४ पैंस स्पष्ट ही भूलसे लिखा गया है। शिलिंग होना चाहिए।

१५७. ट्रान्सवालका संविधान

जबसे ट्रान्सवालका संविधान प्रकाशित हुआ है तबसे दक्षिण आफ्रिकामें हरएक की जबानपर उसकी ही चर्चा है। लोगोंका जितना ध्यान इस संविधानकी ओर आकर्षित हुआ है, उतना किसी अन्य ब्रिटिश उपनिवेशीय संविधानकी ओर आकर्षित हुआ हो यह हमें याद नहीं आता। हर समाचारपत्रने इसपर सम्पादकीय प्रकाशित किये हैं दक्षिण आफ्रिकाके प्रत्येक महत्त्वपूर्ण व्यक्तिने उसपर अपना मन्तव्य दिया है और उक्त संविधानके सम्बन्धमें प्रकट की गई सम्मतियोंका सार कुल मिलाकर प्रशंसात्मक ही जान पड़ता है यद्यपि उसमें कुछ विरोधी आलोचना भी है। वास्तवमें लॉर्ड मिलनरने जोहानिसबर्गमें अपने विदाई भाषणमें ऐसे परिणामकी पूर्व कल्पना कर ली थी। उन्होंने कहा था कि यह संविधान कदाचित् पूरी तरह किसी को भी सन्तुष्ट नहीं कर सकेगा किन्तु सब निष्पक्ष व्यक्ति इसे अंग्रेजों और बोअरोंको एक दूसरेके समीप लाने तथा निकट भविष्यमें जनताको पूर्ण स्वराज्यके लिए तैयार करनेके सच्चे प्रयत्नके रूपमें ग्रहण करेंगे।

तफसीलके बारेमें की गई आपत्तियाँ ऐसी आपत्तियाँ हैं जो हमारी रायमें अन्य स्वशासित उपनिवेशोंके संविधानोंकी प्रारम्भिक अवस्थामें की गई हैं। बात यह है कि यद्यपि स्वराज्य अथवा अन्य प्रातिनिधिक संस्थाओंकी प्राप्तिके लिए जोरदार आन्दोलन किये जाते रहे हैं किन्तु पहले तफसीलकी जाँच इतनी बारीकीसे कभी नहीं की गई। लोग अबतक एक सिद्धान्तकी स्वीकृति-मात्रसे सन्तुष्ट हो जाया करते थे किन्तु हम देखते हैं कि आज वे हर तफसील अपने कथा-नाकके अनुसार रखनेका आग्रह करते हैं। इसलिए विधानके बारेमें ताज द्वारा निषेधाधिकार सुर-क्षित करनेकी बातका इतनी गम्भीरतासे विरोध किया जाता है। किन्तु यदि स्वशासित उपनि-वेशोंके संविधानोंकी जाँच-पड़ताल करनेकी तकलीफ उठाई जाये तो यह मालूम हो जायगा कि निषेधाधिकार सदा ही सुरक्षित रखा गया है और कभी-कभी उसका उपयोग भी किया गया है। उदाहरणार्थ जब आस्ट्रेलिया सरकारने एशियाइयोंको एशियाई होनेके नाते अलग रखनेका एशियाई-विरोधी अधिनियम बनाया तब श्री चेम्बरलेनने उस अधिनियमको अस्वीकार करनेमें कोई आगा-पीछा नहीं किया और ऐसा ही नेटालमें भी हुआ। उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल द्वारा भारतीयोंको भारतीय होनेके नाते मताधिकारसे वंचित करनेके लिए की गई पहली कार्यवाहीकी लॉर्ड रिपनने मुस्तैदीसे रोकथाम की थी। उत्तरदायी शासनसे पूर्व आजतक जितने संविधानोंके मंजूर होनेकी हमें जानकारी है उनमें ट्रान्सवालका संविधान शायद सबसे अधिक उदारतापूर्ण है। यह तथ्य सहूलियतके साथ भुला दिया गया है। दूसरी आपत्ति यह है कि ऑरेंज रिवर उपनिवेशके साथ वही व्यवहार नहीं किया गया है जो ट्रान्सवालके साथ किया गया है। इसका सम्बन्ध समस्त शासनके मूलसे है। जबतक ब्रिटेन प्रमुख शक्ति है और जबतक शासन-सत्ताएँ अन्ततः शक्ति पर निर्भर करती हैं तबतक प्रस्तुत स्थितियोंमें जो-कुछ अपरिहार्य है उससे असन्तोष प्रकट करना निरर्थक है।

संविधानमें निहित गुण-दोषोंके सिवा अवश्य मुख्य बात तो लॉर्ड सेल्बोर्नका यह तरीका है जिसने स्वयं संविधानकी भूमिकाका काम दिया है। वह एक विशिष्ट सम्भीर योग्य मानवता-पूर्ण प्रलेख है।

विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोणसे विचार करें तो यह अनुभव न करना कठिन है कि ब्रिटिश भारतीय और उसी तरह रंगदार ब्रिटिश लोग केवल सौतेली सन्तान हैं और वे उपेक्षित छोड़

दिये गये हैं। उपनिवेश-सम्बन्धी मामलोंमें उनकी बात नहीं पूछी जाती। वे जानबूझकर पृथक् करके अपमानित किये जाते हैं। श्री लिटिल्टन कहते हैं

> महामहिमकी सरकार, १९०२ की सन्धिकी शर्तोंके लिहाजसे महामहिमकी रंगदार प्रजाको प्रतिनिधित्व देनेकी व्यवस्था करनेमें असमर्थ रही है।

और यहाँ इसपर ध्यान दिया जाना चाहिए कि श्री लिटिल्टनने भी बतनी शब्दके अन्तर्गत अन्य लोगोंको लेनेकी भूल नहीं की है। सन्धिकी शर्तोंमें केवल दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंका उल्लेख है। तब फिर यह निष्कर्ष क्यों निकाला गया कि उसमें अन्य रंगदार लोग शामिल हैं? श्री लिटिल्टन आगे कहते हैं

> तथापि आबादीके जिन अंशोंको विधानसभामें सीधा प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है, उनके हितोंकी रक्षाके लिए आपकी तरह गवर्नरको अपनी हिदायतोंमें ऐसे किसी भी विधेयकको सुरक्षित रखना आवश्यक होगा जिसके द्वारा गैर-यूरोपीय लोगोंपर वे रुकावटें और निर्योग्यताएँ लगाई जा सकती हों जो सामान्यतः यूरोपीय लोगोंपर लागू न हों।
>
> आशा की जाती है कि इस रक्षित अधिकारका व्यवहार पूरा-पूरा किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ६-५-१९०५

३५८. भारतीयोंकी शिक्षा

नेटालकी संसदमें शिक्षाके सम्बन्धमें बोलते हुए संसद-सदस्य श्री विलसायरने कहा कि सरकारको भारतीयोंकी शिक्षाके लिए अधिक साधन उपलब्ध करने चाहिए। भारतीयोंको शिक्षाकी आवश्यकता है और जिन भारतीयोंका जन्म नेटालमें हुआ है उनके प्रति सरकारकी जिम्मेदारी खास है। इस मामलेके लिए हमें इन सज्जनका आभार मानना चाहिए। ज्यों-ज्यों शिक्षाका प्रसार अधिक होगा त्यों-त्यों हर प्रकारसे हमारी स्थितिमें सुधार होनेकी सम्भावना है। आखिर अपना कर्तव्य पूरा किये बिना सरकारका छुटकारा नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि केडीस्मिथमें भारतीयोंकी अलग पाठशाला नहीं है इसीलिए सरकारने अच्छी स्थितिके भारतीयोंके बच्चोंको वर्तमान पाठशालामें प्रविष्ट करनेकी स्वीकृति दे दी है।

ट्रान्सवाल और ऑरेंज रिवर कालोनीके शिक्षा विभागके भूतपूर्व अधीक्षक श्री सार्जेंटने ऑरेंज रिवर कालोनीमें भाषण देते हुए कहा कि वे काफिरों (हब्शियों) की शिक्षाके लिए अमुटी-लैंडमें विशेष प्रयास करेंगे। औद्योगिक शिक्षाकी ओर उनका ध्यान पर्याप्त है। भारतीयोंकी शिक्षाके प्रति भी उनका खयाल बहुत सहानुभूतिपूर्ण था और वे ट्रान्सवालमें उनके बच्चोंके लिए पाठशालाएँ स्थापित करनेका प्रयास सदा करते रहे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ६-५-१९०५

३५९. पत्र : छगनलाल गांधीको

२१–२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़ रिसिक और ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई ६, १९०५

[चि० छगनलाल,][1]

आज सारी गुजराती सामग्री भेज रहा हूँ। शायद अब और न भेजूँ। आंगलियाने मुझे बताया कि उसने पीटरमैरित्सबर्ग-अभिनन्दनका[2] विवरण भेजा है। मैं गुजरातीमें जो सम्पादकीय उपलेख भेज रहा हूँ अगर इसके खिलाफ कुछ हो तो तुम वह भाग काट देना। भावी स्नानापम उम्मासुल्लाकी झूठी शादीकी कोई बात नहीं हो। उसका उत्तर उतना सन्तोषप्रद नहीं है जितना हो सकता था। मैं जो भेज रहा हूँ उससे यह साफ दिखेगा।

देसाईने बताया कि तुम्हारा स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं है। तुम्हारे फुंसी-फोड़े हो रहे हैं। यह असह्य है। जरूर भोजनकी कोई गड़बड़ी होगी। वेस्टके सादे जीवनका अनुकरण करो। इसपर जितना जोर दूँ उतना थोड़ा है। दोपहरके भोजनमें हम सब चूनेकी रोटी मूँगफली मक्खन और मुरब्बा ले रहे हैं। रोटी घर काट लेते हैं और दफ्तरमें ले जाते हैं और भोजन वहीं हो जाता है। अगर शहरमें भोजन करना पड़े तो तुम भी ऐसा ही कर सकते हो। मैं चाहता हूँ कि तुम बहुत सँभालकर सब-कुछ करो। भूकम्प-निधिके[3] बारेमें तुम्हें गुजरातियोंसे मिलना चाहिए। यह कहीं ठप न हो जाये। यहाँ मैं जो-कुछ कर सकता हूँ कर रहा हूँ। क्या काबा अभीतक नहीं आये? श्री मुकर्जी और श्री दादाभाई दोनोंने मुझे लिखा है कि अप्रैलके बीचमें उन्हें *ओपिनियनके* अंक नहीं मिले। चूँकि मुम्बईमें हैं

तुम्हारा और चि० मगनलालका पत्र मिला। इस बार पिछली बारसे गुजराती सामग्री दुगुनी भेज रहा हूँ। अभी और भी भेजनेकी उम्मीद है। वहाँकी तकलीफोंका तुम्हारी चिट्ठीसे अन्दाज कर सकता हूँ। मैं अपने अवकाशका बहुत-सा समय तमिलमें लगाता हूँ। इसलिए जितना चाहिए उतना नहीं कर पाता। अबसे जहाँतक बनेगा गुजरातीकी तो काफी सामग्री डाककी तरह शनिवारकी डाकसे रवाना कर दिया करूँगा। मैं जो कुछ लिखता हूँ उसे दुबारा नहीं पढ़ता इसका ध्यान रखना। मुझे *इंडियन रिव्यू* भेजना। मैं उसमें से तरजुमा कर सकूँगा।

चि० मगनलालकी चिट्ठी पढ़कर सन्तोष हुआ। तुम लोगोंने साग-सब्जी लगा ली है यह अच्छा किया। कीड़े साग-सब्जीको नुकसान तो नहीं पहुँचाते यह लिखना। सबसे अच्छी किसकी क्यारी है? दादा सेठने अभीतक मुझे बुलाया नहीं है। अगर वे बुलायेंगे तो मैं आऊँगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२११) से।

१. अंग्रेजी नकलमें सम्बोधन नहीं है; किन्तु पत्रकी सामग्रीसे यह अनुमान करना सहज है कि यह छगनलालको लिखा गया था।

२. यह अभिनन्दनपत्र गांधीजीको दिया गया था; देखिए "श्री कार्टर आर्की और पिटर्सबर्ग भारतीय", १३–५–१९०५।

३. देखिए "भारतमें भूकम्प," १३–५–१९०५।

४. यहाँसे आगे अंश अस्पष्ट है। इसके आगेका अनुच्छेद गुजरातीमें है जिसका अनुवाद यहाँ दिया गया है।

३६० नये उच्चायुक्त और भारतीय

[मई ८, १९०५][1]

परमश्रेष्ठ लॉर्ड सेल्बोर्न अब थोड़े ही दिनोंमें जोहानिसबर्ग पहुँच जायेंगे। ब्रिटेनके प्रसिद्ध पत्रकार श्री स्टेडने अप्रैल मासके *रिव्यू ऑफ रिव्यूज* नामक पत्रमें उनका जीवन-वृत्त दिया है। उससे प्रकट होता है कि परमश्रेष्ठ सेल्बोर्नने जब नवम्बर १, १८९९ को लड़ाईके बारेमें भाषण दिया था तब वे श्री चेम्बरलेनके सचिव थे। उन्होंने भाषण देते हुए बताया था कि युद्ध करनेका उद्देश्य बोअरोंके अधिकार छीन लेना नहीं था बल्कि बोअरों तथा अंग्रेजोंको समान अधिकार देना था। ब्रिटिश सरकारने स्वार्थ-भाव या आर्थिक विचारोंसे प्रेरित होकर यह कार्रवाई नहीं की थी बल्कि उसे तो दूसरोंके अधिकारोंकी हिफाजत करके उनका संरक्षण करना था। ब्रिटिश सरकार जैसे कैनेडा तथा आस्ट्रेलियाके लोगोंकी संरक्षक है वैसे ही दक्षिण आफ्रिकाके सिद्दियों और ट्रान्सवालमें बसे भारतीयोंकी भी संरक्षक है। इसलिए उनकी रक्षाके लिए युद्ध कर्तव्य हो गया था। ब्रिटिश सरकारने जो वचन दिया है उसकी पूर्ति करना उसका कर्तव्य हो तो उसे उपर्युक्त सब लोगोंके अधिकारोंकी रक्षा करनी चाहिए। ब्रिटिश सरकारका कर्तव्य था कि वह ब्रिटिश प्रजाके फिर वह काली हो या गोरी और चाहे जहाँ जाये वहाँ अधिकार सुरक्षित रखे। परमश्रेष्ठने इस विचारसे लड़ाईका समर्थन किया।

श्री स्टेड इस भाषणका विवरण देते हुए कहते हैं कि अब यह देखना है कि लॉर्ड सेल्बोर्न किस तरह अपने वचनका पालन करते हैं। हम आशा करते हैं कि उक्त महोदय अपने वचनों-पर दृढ़ रहकर अंग्रेजोंका नाम उज्ज्वल करेंगे और भारतीयोंको उन अत्याचारोंसे मुक्त करायेंगे जो उनपर किये जा रहे हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १३-५-१९०५

१ देखिए "पत्र : छगनलाल गांधीको," मई ८, १९०५।

३६१ पत्र: छगनलाल गांधीको

२१-२४ कोर्ट चेम्बर्स
नुक्कड़ रिसिक व ऐंडर्सन स्ट्रीट्स
पो० ऑ० बॉक्स ६५२२
जोहानिसबर्ग
मई ११, १९०५

श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी
मार्फत इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। काकाने मुझे लिखा है कि वे जब रवाना होना चाहते थे तब रवाना नहीं हो सके। वे १९ अप्रैलको जरूर रवाना हो चुके होंगे। उनका जो पत्र अभी मिला है उसमें उन्होंने लिखा है कि वे अपनी पत्नीको साथ नहीं ला रहे हैं। वे अपने साथ शायद हरिलाल और गोकुलदासको लायें मगर चूँकि उनका कोई तार नहीं आया है इसलिए मेरा यह खयाल नहीं कि वे रवाना हुए हैं। मुझे ओर्चर्ड बहुत असन्तुष्ट जान पड़ते हैं। तुमने उनके बारेमें कुछ नहीं कहा है। मेहरबानी करके मुझे बताओ कि क्या बात है। मनसुखलालकी[1] एक अजीब चिट्ठी मिली है। उनका कहना है कि वे अकेले रहते हैं और चाहते हैं कि जिन कमरोंमें वीन रहते थे मैं उन्हें उनमें रहने दूँ। इसका कारण क्या है? तुम इस विषयमें चुप्पी क्यों साध रहे? श्री एम० सी० कमरुद्दीनकी पेढ़ीने मुझे अपने ब्यौरे भेज दिये हैं। एक १२ पौंड २ शिलिंग ११ पैंस का किरायेके बाबत है और दूसरा २१८ पौंड [illegible] शिलिंग २ पैंसका दूसरे सामानके बाबत। क्या तुमने उन्हें जाँच लिया है? समय-समय आये हुए मालके मूल बीजक तुम्हारे पास हैं या नहीं? मैं उन्हें किरायेके हिसाबकी रकमका ड्राफ्ट भेज रहा हूँ। अलबत्ता हिसाबमें कोई भूल-चूक होगी तो उसमें सुधार होगा ही। मेरे पास फिलहाल कुछ पैसा है इसलिए मैं पारसी रुस्तमजीको ५ पौंड भेज रहा हूँ ताकि वे उसका उपयोग कर सकें और जब तुम्हें रुपयेकी जरूरत पड़े तो तुम उनसे कुछ ले सको।

शुभचिन्तक,
[मो० क० गांधी]

मूल अंग्रेजी प्रतिकी फोटो-नकल (एस० एन० ४२१७) से। सौजन्य: श्री नारण गांधी, बम्बई।

१. [illegible]
२. [illegible]

३६२. पत्र : उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
मई ११, १९०५

श्री उमर हाजी आमद
बॉक्स ४४१
डर्बन

श्री सेठ उमर हाजी आमद,

आपका पत्र मिला। अब्दुल्ला सेठके बारेमें बहुत दुःखी हूँ। कृपया दादा सेठको कहें कि अगर वे मुझे बुलायें तो बगैर पैसे आनेके लिए कहकर संकोचमें न डालें। फीनिक्समें रुपया खर्च हो जानेसे मुझे बहुत सोच-विचार कर चलना पड़ता है।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे पत्र-पुस्तिका (१९ ५) सं० १।

३६३. सर आर्थर लाली और ब्रिटिश भारतीय

परमश्रेष्ठ उच्चायुक्त एक कृषि-प्रदर्शनीके सम्बन्धमें पीटर्सबर्ग आये हुए हैं। ब्रिटिश भारतीयोंने उक्त अवसरसे लाभ उठाकर उन्हें राजभक्तिपूर्ण अभिनन्दनपत्र दिया। यह कार्य प्रशंसनीय है। उन्होंने अभिनन्दनपत्रके उत्तरमें सर आर्थर लालीसे भारतीय प्रश्नके सम्बन्धमें कुछ बातें कहलवा ली। बताया जाता है कि परमश्रेष्ठने यह कहा :

> इस समय सरकारके सामने जो कठिनाइयाँ उपस्थित हैं उनमें इस देशमें ब्रिटिश भारतीयोंके बसनेसे सम्बन्धित कठिनाईसे बड़ी अन्य कोई कठिनाई नहीं है। सरकार अनुभव करती है कि उन्होंने भारतमें और अन्य भागोंमें साम्राज्यकी विशिष्ट और गौरवास्पद सेवाएँ की हैं। सरकार उनकी कौशलको भलीभाँति जानती है। परन्तु इस देशके लोग यह जानते हैं कि भारतीयोंकी स्थिति यहाँ वैसी नहीं है जैसी उस देशमें है जिससे वे आये हैं। रंगदार वर्गोंके साथ जो पुराना इतिहास जुड़ा है उसके कारण यहाँ लोगोंके मनमें पूर्वग्रह जमित हो गये हैं और भारतीयोंकी उपस्थितिपर एक बिलकुल ही अलग दृष्टिकोणसे विचार किया जाता है। मुझे भरोसा है कि भारतीय इसे अवश्य स्वीकार करेंगे। निःसन्देह उनसे न्याय करना सरकारका कर्तव्य है और ब्रिटिश सरकार और औपनिवेशिक प्रशासनके बीच अभीतक इस प्रश्नपर पत्र-व्यवहार हो रहा है।

हम भारतकी साम्राज्यके प्रति सेवाओंको मान्य करनेके लिए सर आर्थर लालीको धन्यवाद देते हैं। किन्तु हमें यह कहते हुए दुःख होता है कि इस मान्यताका परिणाम प्रायः नगण्य है। हम परमश्रेष्ठ द्वारा श्री लिटिलटनको दी गई इस सलाहको स्मरण किये बिना नहीं रह सकते कि ब्रिटिश भारतीयोंसे जो वादे अज्ञानवश किये गये थे उन्हें पूरा करनेके बजाय तोड़ देना ज्यादा

अच्छा है। ब्रिटिश भारतीय संघने यह बात निर्णयात्मक रूपसे सिद्ध कर दी है कि ट्रान्सवालमें भारतीयोंसे सारे परिस्थितियोंको पूरी तरह जानते हुए किये गये वे अज्ञानवश हरगिज नहीं। हमें भय है कि परममेष्ठने — यदि हम आदरपूर्वक कहें तो — अपने उक्त कथनमें बड़ी गलती की है। वे भारतीयोंको अन्य रंगदार वर्गोंमें किसलिए मिला देते हैं? यदि ट्रान्सवालमें श्वेत लोगोंका बड़ा भाग किसी भेदको न देख पाये तो क्या उसे ठीक-ठीक समझानेकी दृष्टिसे प्रशिक्षित करना सरकारका कर्तव्य नहीं है? भारतीयोंसे अनुचित पूर्वग्रहको स्वीकार करनेकी आशा कैसे की जाती है — जब इसका अर्थ यह है कि वे उसके आगे झुकें। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे पूर्वग्रहको तथ्य रूपमें स्वीकार करना आवश्यक है किन्तु यह केवल इसलिए आवश्यक है कि यह पूर्वग्रह शान्तिके साथ विचार-विनिमय करके और जनताके सामने सच्चे तथ्योंको प्रस्तुत करके दूर किया जा सके। सरकार तभी "निष्पक्ष न्याय करेगी" जब वह प्रश्नको साहसपूर्वक हाथमें लेगी और अप्रत्यक्ष रूपसे प्रचारित पूर्वग्रहको बढ़ावा देनेके बजाय दृढ़ रुख इख्तियार करके उसकी जड़को रोकनेका प्रयत्न करेगी। जहाँतक ब्रिटिश सरकारसे पत्रव्यवहार चलानेका सम्बन्ध है हमारे पास यह माननेके पर्याप्त कारण है कि इसका मंशा उस सरकारसे जैसे भी हो वैसे ब्रिटिश भारतीयोंपर और भी निर्योग्यताएँ लादनेकी स्वीकृति प्राप्त करना है। क्या परममेष्ठने ट्रान्सवालके ब्रिटिश भारतीयों द्वारा प्रस्तुत अत्यन्त नम्र प्रस्तावोंका अध्ययन ध्यानसे किया है? क्या उनकी सरकारने ट्रान्सवालके लोगोंसे कभी यह कहा है कि भारतीयोंकी माँगें अत्यन्त उचित हैं और उन्होंने श्वेत उपनिवेशियोंके मतसे यथासम्भव समझौता करनेकी प्रशंसनीय इच्छा व्यक्त की है?

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-५-१९०५

३६४. बच्चोंमें धूम्रपान

केप पार्लमेंट गजटके एक हालके अंकमें एक मनोरंजक विधेयक छपा है। इसे केप विधान सभामें प्रसिद्ध सदस्य श्री टी एल श्राइनर पेश करेंगे। श्री श्राइनर एक लोक-हितैषी और नीतिवादी व्यक्ति विख्यात हैं। प्रस्तुत विधेयकका नाम "बाल धूम्रपान-निषेध विधेयक" है। उसका उद्देश्य उन बालकोंमें धूम्रपान रोकना है जो १६ वर्षकी आयुके या उससे कम आयुके हों या जिनकी आयु इतनी लगती हो। माननीय सदस्य जिस रीतिसे अपने उद्देश्यको सफल करना चाहते हैं वह बहुत सरल है। विधेयकके अनुसार तम्बाकू-विक्रेताओंके लिए उनको तम्बाकू सिगार अथवा सिगरेट बेचना अपराध होगा जो १६ वर्षके या उनसे कम आयुके लगते हों। उसमें पुलिसको यह अधिकार प्राप्त होगा कि यदि उसे ऐसे बालकोंके पास तम्बाकू पाइप सिगार अथवा सिगरेट मिलें तो वह उन्हें जब्त कर ले और नष्ट कर दे। उसके अनुसार माता-पिताओं अथवा अभिभावकोंको अधिकार होगा कि वे उन हानिकर वस्तुओंके विक्रेता पर, उन वस्तुओंके नष्ट कर दिये जानेके बावजूद बालकसे प्राप्त रुपया वापस करनेके लिए मुकदमा दायर करें। साथ ही उसमें सरकारी शालाओंके शिक्षकोंको यह अधिकार मिल जायेगा कि वे धूम्रपानको शाला-सम्बन्धी अपराध मानकर लड़कोंको धूम्रपान करनेपर दण्ड दें। यह प्रायः कहा गया है कि लोग नागरिक विधानोंसे परहेजगार नहीं बनाये जा सकते और सम्भव है यह बात श्री श्राइनरके विधेयक पर उसी तरह लागू हो किन्तु हम इस विचारसे सहमत नहीं हो सकते कि ऐसा बन्दी कानूनसे कोई अच्छा फल नहीं निकला है। हमें ऐसा लगता है कि यदि यह विधेयक

केप विधानसभाके द्वारा स्वीकृत हो गया तो यह ठीक दिशामें एक कदम होगा। तम्बाकू पीना किसी भी हालतमें कोई वांछनीय या स्वच्छ आदत नहीं है। और मुमकिन है किसी विशेष स्थितिमें उसका कुछ उपयोग हो और उससे किसी दर्दमें भी बहुत राहत मिलती हो किन्तु तम्बाकू पीनेकी आदत बालकोंके लिए बेशक नुकसानदेह है और उसे समस्त वैध साधनोंसे रोकना उचित है। विधेयक शायद बुराईके व्यापक अस्तित्वका प्रमाण है। वस्तुतः यह आदत तार चपरासियों और हरकारोंमें जिनकी आयु १६ वर्षसे बहुत कम होती है अक्सर देखी जाती है। बच्चोंके धूम्रपानके पक्षमें प्रायः यह भ्रामक तर्क दिया जाता है कि जब वह वयस्कोंके लिए अच्छा है तो बालकोंके लिए बुरा नहीं हो सकता। किन्तु तार्किक सज्जन यदि क्षण भर सोचें तो उन्हें विश्वास हो जायेगा कि जो चीज एकके लिए अच्छी होती है वह अनिवार्यतः दूसरेके लिए अच्छी नहीं होती और तम्बाकू एक ऐसी चीज है जिसका व्यवहार बालकोंको निर्ममतापूर्वक नहीं करने देना चाहिए। इससे उनके शरीरमें घुन लग जाता है और मानसिक शक्ति कमजोर पड़ जाती है। इसलिए हम आशा करते हैं कि श्री माइकल केप विधानसभाको यह विधेयक स्वीकार करनेके लिए रजामन्द कर सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-५-१९०५

३६५ भारतमें भूकम्प

भारतसे हालकी डाकमें प्राप्त तारों समाचारोंसे यह जानकारी पूरी तरह मिलती है कि भारतमें भूकम्पसे कैसी हानि हुई है। इस विपरीत प्रकोपसे भारतके उत्तरी क्षेत्रके निवासियोंपर जो मुसीबत आई है वह कदाचित नहीं भुलाई जा सकेगी। अनेक पुरानी ऐतिहासिक इमारतें अनेक गाँव और बड़े-बड़े शहरोंके भव्य मकान गरीबोंके सारे झोंपड़े और तम्बुओंमें आबाद सैनिक छावनियाँ — सभी बरबाद हो गई हैं। कितने ही परिवारोंका नाम-निशान भी नहीं रहा है। धर्मशाला कोयला घाटी पालनपुर और मंसूरीमें सबसे अधिक हानि हुई है। इस आकस्मिक घटनाके शिकार लोगोंकी दुर्दशाका विवरण अत्यन्त करुणाजनक है। कई क्षेत्रोंसे तारका सम्बन्ध टूट गया है। इससे वहाँके लोगोंकी कैसी दुर्दशा हुई है इसका समाचार तक प्राप्त नहीं हो सका है। फलस्वरूप सहायता और पानीके अभावमें बिलखते हुए लोग मृत्युके ग्रास हो गये हैं। सरकारकी ओरसे बड़ी सहानुभूति प्रदर्शित की गई और सहायताके लिए खास रेलगाड़ियाँ चलाकर यथासम्भव सहायता पहुँचाई गई। संकटग्रस्त लोगोंकी सहायताके लिए भारत और इंग्लैंडमें चन्दे किये गये हैं। इनमें बड़ी-बड़ी रकमें दी गई हैं। हमारे पाठकोंको स्मरण होगा कि अपने इस राज्यसे एक बार भारतीय भाइयोंके सहायतार्थ हमारी ओरसे एक कोष खोला गया है। आशा है, इसमें सभी भाई यथाशक्ति रकमें भेजकर अपना कर्तव्य पूरा करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन ११-५-१९०५

३९६. पत्र: एनी बेसेंटको

[जोहानिसबर्ग]
मई १३, १९०७

श्रीमती एनी बेसेंट
सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज
बनारस सिटी

प्रिय महोदया,

इन्टरनेशनल प्रिंटिंग प्रेसके प्रबन्धकोंने आपका वह पत्र मेरे पास भेजा है जो आपने अपनी *भगवद्गीताको* छापनेके सम्बन्धमें उनको लिखा था। पुस्तकको छापने और उसमें आपकी तसवीर लगानेकी सलाहकी सारी जिम्मेदारी अवश्य ही मेरे ऊपर है। मैं जानता हूँ कि मामूली तौरपर किसी लेखककी किताब उसकी अनुमतिके बिना छापना उचित नहीं माना जाता। एक सज्जनने प्रस्ताव किया था कि अगर प्रबन्धक भगवद्गीताका कोई अनुवाद लागत-मात्र लेकर छापें तो वे हिन्दू लड़कों और दूसरोंमें बाँटनेके लिए पुस्तक खरीद लेंगे। उन्हें इसकी जल्दी भी थी। आपके अनुवादको छापनेका सुझाव दिया गया। इस मामलेमें मेरी सलाह माँगी गई। चूँकि आपसे पूछनेका समय नहीं था इसलिए बहुत सोच-विचार कर मैंने सलाह दी कि वे दक्षिण आफ्रिकामें प्रचारके लिए आपका अनुवाद छाप सकते हैं। मुझे लगा कि प्रबन्धकोंका उद्देश्य शुद्ध है और यह संस्करण जिन परिस्थितियोंमें प्रकाशित किया गया था उनको जाननेपर आप भी इस प्रत्यक्ष अनौचित्यकी उपेक्षा कर देंगी। किताबके प्रकाशनके साथ ही साथ सारी स्थितिको स्पष्ट करते हुए प्रबन्धक और मालिकके हस्ताक्षरोंसे आपको पत्र भेजा गया था। प्रतीत होता है वह कहीं गुम हो गया। हम सब हैरान थे कि आपकी स्वीकृति या अस्वीकृतिका पत्र क्यों नहीं आया। परन्तु आपके २७ मार्चके पत्रसे स्पष्ट है कि इसके पहले आपको कोई सूचना क्यों नहीं मिली। तसवीरके बारेमें इतना ही कह सकता हूँ कि अगर कोई गलती हुई है तो वह आपके प्रति अत्यधिक आदर भावके कारण ही। मैंने जब तसवीर लगानेका सुझाव दिया था तब कुछ लोग इसका जो अर्थ लगा सकते हैं वह मेरे ध्यानमें था। किन्तु फिर मैंने अनुभव किया कि जब आप जानेंगी कि पुस्तककी बहुत-सी प्रतियाँ भारतीय युवकोंको मिली हैं तब आप इस गलतीको अगर वह गलती है तो माफ कर देंगी। नहीं तो, जैसा कि आप जानती ही हैं, भारतमें पवित्र पुस्तकोंमें ऐसी तसवीरोंका प्रकाशन या मुद्रण असाधारण नहीं है। केवल १ प्रतियाँ छापी गई थीं। उनमें से शायद २ से अधिक शेष नहीं हैं और ये अब शायद प्रति सप्ताह ५ प्रतियोंकी दरसे बाँटी या बेची जा रही हैं — सो भी सच्चे जिज्ञासुओंको।

मैंने सारी स्थिति आपके सामने रख दी है और मैंने आपकी भावनाओंके विरुद्ध जो अपराध किया है उसके लिए सहज रूपसे खेद प्रकट करना और क्षमा माँगना शेष रहता है। यदि आपके खयालसे कोई सार्वजनिक वक्तव्य देना या पुस्तककी बिक्री तुरन्त बन्द करना या केवल तसवीरको पुस्तकसे निकाल देना आवश्यक हो तो आपकी इच्छाओंकी पूर्ति अक्षरशः की जायेगी।

आपका सच्चा सेवक,

टाइप की हुई दफ्तरी अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२१८) से।

३६७. श्री गांधीका स्पष्टीकरण[1]

मई ११, १९०५

सम्पादकजीने ऊपरका पत्र मेरे पास भेजा है इससे मुझे प्रसन्नता हुई। श्री बावड़ाने अपना विचार बताया इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। मैंने जो भाषण दिये उनमें मेरा एक मात्र हेतु था भारतीयोंकी सेवा करना। भारतमें हिन्दू धर्मका क्या रूप है इसका चित्र उपस्थित करनेका निमन्त्रण मुझे मिला था। उसको मैंने स्वीकार कर लिया। उस विषयका विवेचन करते हुए दूसरे धर्मोंसे तुलना करना आवश्यक हो गया। किन्तु उसमें मेरा एक ही इरादा यह था कि मैं जहाँतक बने हर धर्मकी अच्छी बातें बताकर गोरोंके मनपर अच्छी छाप डालूँ। मैंने जो-जो तथ्य बताये वे सब उस इतिहाससे लिये गये हैं जिसे हम बचपनसे पाठशालामें पढ़ते आये हैं। इस्लामका प्रचार जोर-जबरदस्तीसे हुआ यह बात इतिहास बताता है। किन्तु उसके साथ मैंने बताया कि इस्लामके प्रचारका प्रबल कारण है — उसकी सादगी और सबको समान समझनेकी खूबी। निम्नवर्गीय हिन्दू ज्यादातर मुसलमान हुए, यह बात भी सिद्ध होने योग्य है और मेरी समझमें इसमें कोई बुराई नहीं है। मेरे अपने मनमें ब्राह्मण और भंगीके बीच कोई भेद नहीं है और मैं इसमें इस्लामधर्मकी श्रेष्ठता मानता हूँ कि जो लोग हिन्दू धर्मके भेदभावसे असन्तुष्ट हुए उन्होंने इस्लामको स्वीकार करके अपनी स्थिति सुधारी है। फिर मैंने यह भी नहीं कहा कि जितने हिन्दू मुसलमान हुए वे सब नीचे वर्णके थे और नीचे वर्णमें केवल ढेड़ ही आते हैं ऐसा तो मुझे अभाष्टक नहीं है। ऊँचे वर्णके हिन्दू अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय भी मुसलमान हुए हैं मैं यह स्वीकार करता हूँ किन्तु उसमें अधिक भाग उनका नहीं था यह जगत प्रसिद्ध बात है। परन्तु मुझे मुख्य जोर इस बातपर देना है कि नीचे वर्णके हिन्दू मुसलमान हुए इसमें इस्लाम धर्मकी तनिक भी हीनता नहीं है। उलटे यह बात उसकी खूबी बताती है और मुसलमानोंको इसका गर्व होना चाहिए।

जुनून (जोश) के बारेमें मेरा मत जैसा मैंने बताया वैसा ही है। श्री बावड़ा जुनूनका अर्थ उलटा लगाते हैं। मैंने जुनून शब्दका सारार्थ लिया है और मैंने स्पष्ट कहा है कि यह इस्लामकी एक शक्ति है। सच्चे जुनूनके बिना कोई अच्छा काम नहीं हो सकता। तुर्क जब सच्चे जुनूनसे जानकी बाजी लगाकर लड़े तभी वे रूस और प्लेवनके साथ टक्कर ले सके और आज सब लोग तुर्क सिपाहियोंसे भय खाते हैं। जबतक राजपूत लोग जुनूनसे लड़े तबतक कोई राजपूतानेको हाथ भी नहीं लगा सका। जुनूनसे जापान जूझता है तभी तो वह पोर्ट आर्थरको बिना डर कर सकता है। जिस तरह युद्धमें उसी तरह दूसरे कामोंमें भी जुनूनकी

१. गांधीजीने जोहानिसबर्गमें थियोसॉफिकल सोसाइटीके तत्त्वावधानमें "हिन्दू धर्म" पर दिये गये अपने भाषणोंमें (देखिए "हिन्दू धर्म", मार्च ४ और ११, १९०५) इस्लामके प्रसारकी चर्चा करते हुए कहा था कि इस्लाम धर्मको अधिकतर निम्नवर्गीय लोगोंने अपनाया। उन्होंने यह भी कहा था कि "जोश" या "जुनून" इस्लामकी एक [illegible] खूबी है जिससे कई अच्छे काम हुए हैं और बुरे काम भी।

गांधीजीके इन कथनोंसे भारतीय मुसलमानोंमें नाराजगी पैदा हो गई और उनके लिए *इंडियन ओपिनियन*के सम्पादकको पत्र भेजे गये। सम्पादकने उनमें से तीन पत्र गांधीजीके इस स्पष्टीकरणके साथ प्रकाशित किये थे। यह स्पष्टीकरण भी [illegible] ([illegible] मई ६, १९०५ के [illegible] है।

२. [illegible] १९ ४की [illegible]।

सामके[1] पौंडी लगानेके मामलेमें हल्की झिड़की और समझाना-बुझाना ही एक उपाय है। मैं समझता हूँ उससे अधिक कुछ नहीं किया जा सकता। किचिनके बारेमें मेरा सुझाव है, तुम्हें उनके पास जाकर पूछना चाहिए कि वे मिठ्ठापन क्यों दिखा रहे हैं। मैं जानता हूँ वे बुरा न मानेंगे। बहरहाल यह अच्छा ही होगा कि तुम उन्हें भलीभाँति समझ लो। साप्ताहिक विवरणकी चिन्ता मत करो। तुम्हें तो मासिक पत्रिकाकी केवल दो और प्रतियाँ छापनी हैं। पता नहीं पूरी रकम वसूल हो सकेगी या नहीं। फिर भी मुझे आशा तो है कि हो जायेगी। इतना कर चुकनेके बाद मुझे लगता है कि हमें बारहों अंक छाप देने चाहिए। तुम ग्यारहवाँ अंक तो अब छाप ही रहे हो सिर्फ १२वाँ प्रकाशनके लिए बच जायेगा। सेपके बारेमें अगर वे चाहते हैं कि हम उन्हें प्रकाशित करें तो हम उनसे गारंटी माँगेंगे। मुझे खुशी है कि तुमको मेरे व्याख्यानोंके सम्बन्धमें गुजराती पत्र मिल गया है। अपने अंकमें उसे पूरा-पूरा छाप देना और मेरा पत्र भी। इससे मालूम होता है कि हमारा पत्र बड़े चावसे पढ़ा जाता है। और यही तो हम चाहते भी हैं। कभी-कभी गलतफहमियाँ होती ही। परन्तु इससे हमें अपने कर्तव्यसे विमुख नहीं होना चाहिए। यह पत्र पहले छापा जाये और मेरा स्पष्टीकरण उसके नीचे।[2] यहाँ भी वैसी ही कुछ चर्चा चली थी। यद्यपि मैं खुलासा करनेकी कोशिश तो करता रहा हूँ परन्तु तुमने जो पत्र मुझे भेजा है उससे मैं अधिक विस्तारके साथ और सार्वजनिक रूपसे स्पष्टीकरण कर सकूँगा। फिलहाल तुम मुझसे हर हफ्ते गुजरातीके ३२ सफोंकी आशा रख सकते हो। एन. सेनको बिल क्यों भेजा गया? क्या मदनजीतकी सूचना पर? यदि ऐसी बात है तो तुम उन्हें इस आशयका पत्र लिखो कि मदनजीतके लिखनेपर आपको हिसाब भेजा गया था। नहीं तो उन्हें लिख भेजो कि बिल भूलसे चला गया था और व्यवस्थापक उसके लिए क्षमा-प्रार्थी है। मैं तुम्हारे देखनेके लिए और अगर किचिन वेस्ट और बीनने श्रीमती बेसेंटका पत्र देखा हो तो उनके देखनेके लिए भी श्रीमती बेसेंटके नाम प्रेषित अपने पत्रकी नकल भेज रहा हूँ। उन्होंने श्रीमती बेसेंटका पत्र न देखा हो तो भी तुम उन्हें यह बात बताकर यह नकल दिखा दो। प्रत्यक्ष है कि बीन तुम्हारे लिए पोलकका रिक्त स्थान पूरा कर रहे हैं। वे कहते हैं कि यह अच्छा ही हुआ कि वे फीनिक्स चले गये — कमसे-कम तुमसे और मगनलालसे जान-पहचान हो जानेके लिहाजसे ही सही।

हृदयसे तुम्हारा शुभचिन्तक,
मो० क० गांधी

टाइप की हुई मूल अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ४२१९) से।

१. सम फीनिक्स गर्लिन रॅलिनिक और डिफ्टी — गोविन्द स्वामी।
२. देखिए "श्री गांधीका स्पष्टीकरण" ११-५-१९०५।
३. देखिए "पत्र : श्री वेस्टको," मई १६, १९०५।

बड़ी रकम लम्बे अर्से रखना मनमें अच्छा नहीं लगता और जब मेरे पास अतिरिक्त रुपया हो तब तो ऐसा होना ही नहीं चाहिए। यह मेरी मान्यता है।

बच्चोंकी पढ़ाईकी चिन्ता रखें। मैंने आपकी तबीयतके बारेमें जो-कुछ कहा है उसे न भूलें।

भाभीको सलाम

मो॰ क॰ गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजराती पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं॰ ११।

३७१. पत्र : दादाभाई नौरोजीको[1]

[जोहानिसबर्ग
मई १५, १९०५]

[महोदय,]

नेटालमें अभी हालमें भारतीय-विरोधी आन्दोलन बहुत सक्रिय हो उठा है। हमारा ध्यान विभिन्न विधेयकोंकी ओर गया है जो *गवर्नमेंट गज़टमें* छपे हैं और अब नेटाल संसदके सामने हैं।

बन्दूक आदि शस्त्र-विधेयक भारतीयोंको किसी औचित्यके बिना ही वतनियोंके साथ सम्बद्ध कर देता है और जहाँतक उस विधेयकका सम्बन्ध है, उन्हें वतनी मामलोंके मुहकमेके अन्तर्गत रख देता है। इसका नैतिक प्रभाव क्या हो सकता है यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

एक दूसरा विधेयक प्रकाशित हुआ है। उसके अनुसार नेटालके देहाती क्षेत्रोंमें भारतीयोंका भूमि-अधिकार अधिकार ही नहीं रह जाता। यदि किसी व्यक्ति या कम्पनीके अधिकारमें २४९ एकड़से अधिक देहाती जमीन हो और वह बेकार पड़ी हो तो उसपर इस विधेयकमें प्रतिवर्ष प्रति एकड़ आधा पेंस कर लगानेका विधान है। इस विधेयकके अन्तर्गत यदि ऐसी भूमि भारतीयोंके अधिकारमें हो परन्तु वे उसके मालिक न हों तो उन्हें कर देना होगा। यह अपमानजनक और अन्यायपूर्ण है। भारतीयोंने ही समुद्रतटकी भूमिमें कृषिको सम्पन्न बनाया है।

[अंग्रेजीसे]

इंडिया ऑफिस : ज्यूडिशियल ऐंड पब्लिक रेकर्ड्स : १९५।

१. मूल उपलब्ध नहीं है। यह केवल वह अंश है जिसे दादाभाई नौरोजीने भारत-मंत्रीके नाम अपने जून ६, १९०५ के पत्रमें उद्धृत किया था।

इस परिस्थितिमें और यह देखते हुए कि अन्तर्गत कार्रवाईको छोड़कर अन्यका कोई औचित्य नहीं है मुझे भरोसा है कि आप प्रमुख प्रवासी-प्रतिबन्धक अधिकारीको जमानतकी रकम लौटानेका अधिकार देनेकी कृपा करेंगे। इसके कानूनी पहलूपर जोर देनेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है किन्तु प्रार्थीके प्रति न्याय-दृष्टिसे आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० ९५।

३७४ पत्र पारसी रुस्तमजीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १० १९०५

[सेवामें]
श्री रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू

श्री सेठ पारसी रुस्तमजी

आपका पत्र मिला। पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। आप अपनी माताजीसे मिले। मुझे विश्वास है कि इससे उन्हें बहुत हर्ष हुआ होगा। आपकी यह इच्छा पूरी हुई, यह बड़े संतोषकी बात है।

आशा है अब आप बच्चोंके शिक्षण और चालचलनपर खूब ध्यान देंगे।

आपने जहाजमें खुराक सादी रखी यह बहुत ठीक किया। इससे भी बहुत प्रसन्नता होती है कि आप बम्बईमें अपना घूमना खाना और *महात्मा नियमानुसार* चलाते रहनेका आश्वासन देते हैं। मैंने आपकी कुछ सेवा की है मनमें ऐसा खयाल करनेकी कोई जरूरत नहीं है। मैं तो इतना ही चाहता हूँ कि आपकी तन्दुरुस्ती हमेशा पुष्टरसी बनी रहे और आप दीर्घायु होकर अच्छे काम करें।

आप मेरे बच्चोंसे जब मिलें तो उन्हें यहाँ आनेके लिए समझायें।

यहाँके कामकी जरा भी फिक्र न करें। मुझे समय-समयपर आपके पत्र मिलते हैं। मुझे लगता है कि दोनों व्यक्ति सन्तोषपूर्वक काम करते हैं।

मैं पिछले मुकदमोंके सिक्कोंके बारेमें पूछताछ कर रहा हूँ।

माजीको सलाम। भाई बाल्को[1] मुझे चिट्ठी लिखनेके लिए कहें। उसके बीच सोराबसे[1] भी लिखवायें।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० ७।

१ पारसी रुस्तमजीके पुत्र।

३७५. पत्र : फैजुलख व अब्दुल हकको

[जोहानिसबर्ग]
मई १७, १९०५

श्री चाकमाई मोरारजी डर्बन

भाई फैजुलख और अब्दुल हक,

तुम्हारा पत्र मिला। भूचाल-पीड़ित सहायक कोषमें ज्यादासे-ज्यादा पाँच गिन्नी चन्दा देना बशर्ते कि उमर सेठ इतना दें। उनकी राय ले लेना। उनसे कहना कि दोनों इतना ही चन्दा दें यह मेरी सलाह है। अगर उमर सेठ इससे कम दें तो तुम भी उनके बराबर ही देना उनसे अधिक नहीं। दूसरोंसे भी चन्दा लेनेकी तजवीज करना।

रुस्तमजी सेठका पत्र आया है। उसमें श्री छोटमके पिछले मुकदमोंके बिलोंके बारेमें पूछा है। उनमें कुछ कमी समझ हो तो करा लेना और उनका रुपया चुकाया न हो तो चुका कर उसकी खबर उनको दे देना।

रुस्तमजी सेठ चाहते हैं कि तुम दोनों भाइयोंमें से एक अधिकतर हमेशा दूकानमें रहे ऐसा प्रबन्ध करना और इसके बारेमें उन्हें आश्वासनप्रद पत्र लिख देना। मैंने उनको लिखा है कि तुम्हारे हाथोंमें काम हमेशा ठीक ही रहेगा और उन्हें तनिक भी चिन्ता नहीं करनी है।

तसवीर वहाँ खिचवाई, यह ठीक किया।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० ७२।

३७६. पत्र : ईसा हाजी सुमारको

[जोहानिसबर्ग]
मई १८, १९०५

सेवामें
श्री ईसा हाजी सुमार
राणावाव
पोरबन्दर
भारत

श्री सेठ ईसा हाजी सुमार,

आपका पत्र मिला। आपका मत मेरे मतसे मिलता है यह जानकर मुझे खुशी हुई है। यदि आप श्री जोशीको ले जायें तो कागज वगैराका खर्च इतना कम आयेगा कि उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। जब आप विलायत जायेंगे तब उसका काम होगा ऐसा मैं समझता हूँ।

दूसरे भाई आपकी मददके लिए नहीं बढ़ते इससे जरा भी हिम्मत हारनेकी जरूरत नहीं है। जो अपना फर्ज समझते हैं उन्हें ही वह फर्ज अदा करना है दूसरे शामिल हों या न हों।

परवानेके बारेमें जो मुकदमा चल रहा है उसका हाल *इंडियन ओपिनियन*में देखा होगा।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० ७१।

३७७ पत्र उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १८, १९०५

श्री उमर हाजी आमद झवेरी
बॉक्स ४४१
डर्बन

श्री सेठ हाजी उमर आमद

आपका पत्र मिला। मैं जितनी जल्दी बनेगा वहाँ आऊँगा। किन्तु लॉर्ड सेल्बोर्नको मान *पत्र देनेकी बात है इसलिए इस कामको निबटानेसे पहले रवाना होना कठिन है।*

मैं पैसा न माँगता किन्तु मेरी स्थिति ऐसी है कि इस समय खुद खर्च करके आना बहुत मुश्किल है। इसलिए अगर दादा सेठ थोड़ा-बहुत पैसा भेज दें तो अच्छा हो।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे पत्र-पुस्तिका (१९ ५) सं ७५।

३७८ पत्र एस० बी० पटेलको

[जोहानिसबर्ग]
मई १९, १९०५

श्री एस बी पटेल
पो ऑ बॉक्स २ ८
क्लार्क्सडॉर्प

प्रिय महोदय

कदाचित् चिकित्सा-शास्त्रकी श्रेष्ठ शिक्षा जर्मनीमें मिल सकेगी किन्तु उसके लिए जर्मन भाषाका ज्ञान आवश्यक होगा। सामान्यतः चिकित्साकी ग्लासगोसे प्राप्त उपाधि बहुत अच्छी मानी जाती है और बम्बईसे चाहे जो उपाधि ली हो पाठ्यक्रम प्रायः ५ सालका होता है। दक्षिण आफ्रिकाके किसी भी भागमें व्यवसायके लिए ग्लासगोकी उपाधि काफी मानी जायेगी।

समाचारपत्र *इंडिया*का पता ८४–८५, पैलेस चेम्बर्स, वेस्टमिन्स्टर, लन्दन है।

आपका विश्वस्त,
मो क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९ ५) सं ११।

२७९. दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके सम्बन्धमें लॉर्ड कर्ज़नका भाषण

वाइसरायकी परिषद्में बजटकी बहसके समय दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंके सम्बन्धमें लॉर्ड कर्ज़नका पूरा भाषण भारतकी भारतीय डाकसे प्राप्त हुआ है।[1]

परमश्रेष्ठने दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके दर्जेकी लम्बी चर्चा की इसलिए दक्षिण आफ्रिकी प्रवासी ब्रिटिश भारतीयोंको उनकी इस जोरदार वकालतके लिए अत्यन्त कृतज्ञ होना चाहिए। परमश्रेष्ठके भाषणका खासा हिस्सा नेटालकी स्थितिके सम्बन्धमें था और हमें अब पहली बार मालूम हुआ है कि कुछ समय पूर्व नेटाल सरकारकी ओरसे जो प्रतिनिधि भारत गये थे उनका काम किस किस्मका था। उनका उद्देश्य यह था कि नौकरीकी समाप्तिपर गिरमिटिया भारतीयोंकी वापसी नितान्त अनिवार्य करार देकर उनपर और भी प्रतिबंध लागू किये जायें। हमें यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि जबतक नेटाल सरकार उपनिवेशमें आबाद गैर-गिरमिटिया भारतीयोंको कुछ रियायतें न दे दे तबतक लॉर्ड कर्ज़नने किसी भी ऐसे सुझावको माननेसे इनकार कर दिया। लॉर्ड महोदयने तीन पौंडी करकी अन्ततः समाप्ति, विक्रेता-परवाना अधिनियममें संशोधन तथा जिन कानूनोंके अन्तर्गत भारतीय असभ्य जातियोंमें वर्गीकृत किये जाते हैं उनमें और अन्य छोटी-मोटी बातोंमें परिवर्तनकी माँग की।

यह सब अत्यन्त संतोषजनक है और इससे जाहिर होता है कि भारतीयोंने वाइसरायसे जो अपील की थी उसपर पूरा विचार किया गया है। परमश्रेष्ठने यह भी कहा कि वे एक रियायत स्वीकृत भी करा सके हैं, अर्थात् नेटाल-सरकारने उपनिवेशमें तीन वर्षका निवास भारतीयोंको प्रवासी-प्रतिबन्धक कानूनके अन्तर्गत उसे निषेधसे मुक्त करनेकी शर्तके रूपमें मान लिया है। इसका यह अर्थ है कि लॉर्ड महोदयको किसी तरह यह विश्वास हो गया है कि यह नेटाल-सरकार द्वारा दी गई रियायत है। यदि ऐसी बात है तो हमें दुःख है क्योंकि यह वक्तव्य भ्रामक होगा। वस्तुतः नेटाल सरकार "पूर्व निवास" शब्दोंकी व्याख्याके सम्बन्धमें कुछ नियम बनानेके लिए बाध्य थी। कानूनमें जैसा वह पहले था कहा गया था कि वे भारतीय जो उपनिवेशके "पूर्व निवासी" हैं प्रवासियों प्रतिबन्धोंसे मुक्त रहेंगे। व्यवहारतः दो वर्षका निवास भी स्थिति द्वारा मान्य "पूर्व-निवास" के प्रमाणके रूपमें स्वीकार कर लिया जाता था और भी स्मिथकी सिफारिशपर ही सरकारने यह अवधि बढ़ाकर तीन वर्ष कर दी है और उसे कानूनमें शामिल कर लिया है। हम परमश्रेष्ठका यह भी सूचित कर दें कि तीन वर्षका निवास "पूर्व निवास" का प्रमाण मान ही लिया जाये यह जरूरी नहीं है। हम यह कहनेकी धृष्टता करते हैं कि *यदि कानूनमें यह संशोधन न किया जाता तो किसी भारतीयको* जो उपनिवेशमें छः महीने भी रह चुका हो और जो यह सिद्ध कर सकता हो कि वह अब नेटालमें रहने लग गया है और वहाँका निवासी होना चाहता है, छूट देनेसे इनकार करना संभव नहीं था। इसलिए हमें बहुत ही नम्रतापूर्वक यह कहना पड़ता है कि लॉर्ड महोदय जिसे रियायत समझते हैं वह कतई रियायत नहीं है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या लॉर्ड महोदय नहीं रुक सकते हैं जहाँ उन्होंने बात छोड़ी है। खास अर्थमें नेटाल संसद सक्रिय रूपसे भारतीय-विरोधी नीतिका अनुसरण करती रही है। हम उन विधेयकोंकी ओर ध्यान आकर्षित कर ही चुके हैं जिनमें भारतीय-विरोधी धाराएँ

१. [illegible]।

है। विक्रेता-परवाना अधिनियम सतत चिन्ता और परेशानीका सबब है। तब क्या यह उचित है कि नेटाल भारतको अपनी उन्नतिके साधनके रूपमें बरतता चला जाये और स्वतन्त्र ब्रिटिश भारतीयोंकी तरफसे भारत सरकारके सुझावोंको अस्वीकृत कर दे? हमें कमसे-कम यह तो कहना ही चाहिए कि यह एकतरफा सौदा है जिसमें बदलेमें कुछ दिए बिना नेटाल सब लेता ही है।

परमश्रेष्ठने ट्रान्सवालकी स्थितिकी भी चर्चा की। उनका वक्तव्य भी लिटिल्टनके खरीतेका संक्षेप है किन्तु उससे यह प्रकट हो जाता है कि वह अपने आश्रितोंके हितोंके बारेमें पूरी तरह सावधान हैं। हम आशा करते हैं कि उनकी सतर्क अभिभावकतामें भारतीय निकट भविष्यमें उन कष्टप्रद प्रतिबन्धोंसे छुटकारा पा जायेंगे जिनके कारण वे उस शाही उपनिवेशमें उत्पीड़ित हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २०–५–१९०५

३८० नेटालमें भारतीय-विरोधी कानून

नेटाल *गवर्नमेंट गज़ट*के एक हालके अंकमें तीन विधेयक प्रकाशित हुए हैं। उनसे पता चलता है कि इस उपनिवेशकी आर्थिक स्थिति कितनी खराब है। उनमें से एक विधेयकका उद्देश्य १८ वर्ष या उससे अधिक उम्रके प्रत्येक वयस्क पुरुषपर एक पौंडका व्यक्तिकर लगाना है। उसके अनुसार इस करकी अदायगीसे वे लोग मुक्त रहेंगे जो या तो गरीब हैं या असक्त हैं या गिरमिटिया मजदूर हैं। परन्तु गिरमिटिया मजदूर उसी वक्ततक मुक्त रहेंगे जबतक वे गिरमिटके अन्तर्गत हैं। दूसरे विधेयकमें मृत व्यक्तियोंकी जायदादपर उत्तराधिकार-कर लगानेकी तजवीज है। इस करकी न्यूनतम दर मृत व्यक्तिके पूर्वजों अथवा वंशजोंके लिए एक फी सदी है। अगर ये दोनों विधेयक नेटाल संसद द्वारा स्वीकृत कर लिये गये तो इनसे सरकारको अच्छी-खासी आमदनी होनेकी सम्भावना है।

लेकिन वह तीसरा विधेयक है जिससे हमारा अधिक सम्बन्ध है और भारतीय समाजको प्रभावित करनेवाला एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है। इस विधेयकको शीर्षक दिया गया है— अनधिकृत देहाती जमीन-कर विधेयक । इसका उद्देश्य है २५ एकड़ या उससे अधिक अनधिकृत देहाती भूमिपर आधा पैंस फी एकड़की दरसे कर लगाना। विधेयककी पाँचवीं धारामें कहा गया है कि

> जिस जमीनपर उसका मालिक या कोई यूरोपीय किसी साफमें पट्टेकी मार्फत पहले बारह महीनोंमें से कमसे-कम नौ महीनेतक लगातार न रहा हो वह जमीन अनधिकृत समझी जायेगी।

इस प्रकार, अगर यह विधेयक पास हो गया तो देहाती भूमिका कोई भी टुकड़ा जिसपर उसके मालिकके अलावा उपनिवेशके किसी अन्य भारतीयका दखल है आधा पैंस प्रति एकड़ कर लगानेके उद्देश्यसे अनधिकृत माना जायेगा। समुद्र-तटवर्ती जिलोंमें जहाँ जमीनकी काश्त केवल भारतीय ही करते हैं भारतीय जमींदार इस विधेयकसे प्रभावित हो सकते हैं।

श्री लिटिल्टनको साम्राज्यके हितकी दृष्टिसे भारतीयोंको अकारण ही लगातार अपमानित और परेशान करनेकी इस नीतिको रोकना चाहिए। यह सच है कि नेटाल पूर्ण रूपसे स्वशासित राज्य है और इसलिए वह अपने कानून स्वयं बनानेके लिए स्वतंत्र है। लेकिन जब स्वतन्त्रता

स्वच्छन्दता बन जाती है तब सवाल यह पैदा होता है कि क्या इंग्लैंडकी सरकारको जो साम्राज्यकी सम्मानित परम्पराओंकी संरक्षिका है ऐसे कानूनका निर्माण नहीं रोकना चाहिए, जिसके द्वारा विधान-सभामें प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्वसे वंचित ब्रिटिश प्रजाका अपमान होता है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २०-५-१९०५

३८१. केपमें प्रवासी कानून

केपमें जो प्रवासी कानून बना है उसके अमलके बारेमें वहाँके प्रवासी-अधिकारी डॉक्टर पेमरीकी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी गई है। इससे पता चलता है कि पिछले महीनेमें जिन लोगोंने उपनिवेशमें प्रवेशका प्रयत्न किया उनमें से २९८ को लौटा दिया गया है। उनमें से ५६ लोगोंको अंग्रेजी पढ़ा न होनेसे १५६ को कंगाल होनेसे और ७४ को अनपढ़ और गरीब होनेसे अनुमति नहीं दी गई। उनमें से १२ वेश्याएँ थीं अतः उन्हें उतरनेकी मनाही कर दी गई। डॉक्टर पेमरी मानते हैं कि समय खराब होनेके कारण ऐसे बहुत-से लोग नहीं आये हैं जो अन्यथा आना चाहते। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि कानूनका वास्तविक प्रभाव क्या हुआ है। डॉक्टर पेमरी विश्वास करते हैं कि बहुतसे भारतीयोंको उतरने नहीं दिया गया अतः उन्हें कष्ट उठाने पड़े हैं। और यदि यह भी मान लिया जाये कि यह कानून भारतीयोंका प्रवेश रोकनेके लिए अच्छा है तो भी यह प्रश्न हो सकता है कि जब यिडिशभाषी यहूदी जो वस्तुतः भिखमंगे हैं अपने साथियोंसे रुपया उधार लेकर आ सकते हैं तब क्या ब्रिटिश भारतीय लोगोंको प्रवेश करनेसे रोकना न्यायपूर्ण है। इस रिपोर्टसे मालूम होता है कि डॉक्टर पेमरी स्वयं इस कानूनको अन्यायपूर्ण मानते हैं। केप-सरकारने केपके भारतीयोंको वचन दिया है कि उक्त कानूनमें भाषा-ज्ञान सम्बन्धी शर्तमें परिवर्तन कर दिया जायेगा ताकि एक भारतीय भाषाका ज्ञान स्वीकृत हो सके। इस वचनकी पूर्ति कराना केपके प्रमुख भारतीयोंका कर्तव्य है। यदि वे इस सम्बन्धमें जोर-शोरसे काम करें तो हमें पक्का भरोसा है कि सरकार उक्त विधेयकमें आवश्यक परिवर्तन कर देगी। हम आशा करते हैं कि केपके भारतीय इस मामलेको पूरी शक्तिसे हाथमें लेंगे और सफल करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २०-५-१९०५

३८२. स्वर्गीय श्री टाटा[1]

गत सप्ताहके आरम्भमें बम्बईके टाउन हॉलमें स्वर्गीय श्री टाटाकी यादगार कायम करनेके उद्देश्यसे एक विशाल सभा की गई थी। इसमें अध्यक्ष पदपर गवर्नर लॉर्ड लैमिंग्टन सुशोभित हुए और स्मारक बनानेके सम्बन्धमें प्रथम प्रस्ताव बम्बई उच्च न्यायालयके लोकप्रिय प्रधान न्यायाधीश सर लॉरेंस जेंकिन्सने पेश किया। उस सभामें न्यायाधीश बदरुद्दीन तैयबजी[2] न्यायाधीश चन्दावरकर माननीय श्री पारेख[3] और सर भालचन्द्र आदिने भाग लिया था। गवर्नर तथा अन्य सभी वक्ताओंने यह कहा कि श्री टाटाके समान उदार, सरल और बुद्धिमान सज्जन भारतमें कम ही हुए हैं। श्री टाटाने जो कुछ किया उसमें अपना स्वार्थ नहीं देखा। उन्होंने सरकारसे खिताब लेनेकी आकांक्षा नहीं की और जात-बिरादरीका भेद भी नहीं माना। न्यायाधीश बदरुद्दीनके कथनानुसार उनके लिए पारसी मुसलमान और हिन्दू सभी समान थे। उनके लिए भारतीय होना ही बस था। उनका दयाभाव बहुत ही महान था। वे गरीबोंके दुःखोंका विचार करके स्वयं रो पड़ते थे। उनके पास अपार धन था किन्तु उन्होंने उसमें से अपनी सुख सुविधाके लिए कुछ भी खर्च नहीं किया। उनकी सादगी जबरदस्त थी। हम चाहते हैं भारतमें बहुतसे टाटा हों।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २०-५-१९०५

३८३. सर फीरोजशाह मेहता

सर फीरोजशाह मेहताने बम्बईकी जैसी सेवा की है वैसी और किसीने नहीं की। आज तीस वर्षसे वे नगर निगममें हैं और बड़े-बड़े मुकदमे छोड़कर निगमकी बैठकोंमें उपस्थित रहे हैं इसलिए वे निगमके पिता माने जाते हैं। इस वर्ष उनको नगर निगमके अध्यक्षका पद देनेकी बात चल रही है क्योंकि इस वर्ष प्रिंस ऑफ वेल्स भारत आनेवाले हैं। उनको नाइटकी उपाधि प्राप्त है। इसलिए *टाइम्स ऑफ इंडियाने* सुझाया है कि जब सर फीरोजशाह अध्यक्षके स्थानपर विराजमान हों तब सरकार उनको "लॉर्ड मेयर" की उपाधि दे तो अनुचित न होगा। यदि मेल्बोर्न तथा सिडनीके निगमोंके अध्यक्ष लॉर्ड मेयर कहे जाते हैं तो कलकत्ता और बम्बईमें ऐसा क्यों न हो?

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २०-५-१९०५

1. सर जमशेदजी नसरवानजी टाटा (१८३९-१९०४), महान भारतीय उद्योगपति और दानी।
2. बम्बईके वकील-वर्गके एक प्रमुख सदस्य और बादमें बम्बई उच्च न्यायालयके न्यायाधीश। दिसम्बर १८८७ में मद्रास कांग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष।
3. सर गोकुलदास कहानदास पारेख — बम्बई विधान-परिषदके सदस्य।
4. सर भालचन्द्र भाटवडेकर — बम्बईके एक प्रमुख डॉक्टर और सार्वजनिक सेवक।

३८४. पत्र: हाजी मुहम्मद हाजी दादाको

[जोहानिसबर्ग]
मई २, १९०५

श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादा
बॉक्स ७१
डर्बन

श्री सेठ हाजी मुहम्मद हाजी दादा,

मैंने *कसासुल अंबिया*[1] पुस्तक पढ़ी नहीं है। अगर आप मुझे उसकी प्रति भेज दें तो मैं कह सकूँगा कि *इंडियन ओपिनियनमें* उसके उद्धरण दे सकेंगे या नहीं। अंग्रेजीके पाठकोंके कामकी उपयोगी हो तो अंग्रेजीमें भी छापी जा सकती है। मैंने इस पुस्तकका नाम कई बार सुना है। क्या यह सम्भव नहीं है कि उसमें दी हुई बातें बहुत-से पाठक जानते हों? यदि ऐसा हो तो छापें कि नहीं यह सवाल आ जायेगा।

सुपरिंटेंडेंटसे रुपया वसूल कर रहा हूँ। २५ पौंड आ गये हैं और सेठ हाजी हबीबके खातेमें जमा कर दिये हैं। मेरा खयाल है बाकी रकमका ५ पौंड हर महीना आयेगा।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० १२।

३८५. पत्र: अब्दुल हक व कैकुसरूको

[जोहानिसबर्ग]
मई २, १९०५

श्री आदमभाई मोराबजी बदर्स
८४ फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

श्री ५ भाई अब्दुल हक व कैकुसरू,

आपका पत्र मिला। सेठ आदम गुलाम हुसैनकी तरफसे मुख्तारीके इख्तियार मिल गये हैं।

हुसेन ईसप दूकानका नौकर जान पड़ता है। वह १५ पौंड तनख्वाह पेटे पेशगी माँगता है। वह कहता है कि आपने उसको मेरी स्वीकृति लानेके लिए कहा है। अगर वह आदमी काम बहुत अच्छा करता हो, विश्वास करने लायक हो और उसे रुपयेकी सचमुच जरूरत हो तो मुझे लगता है कि उसे पेशगी रुपये देनेमें हर्ज नहीं है। पर यह मैं आपके निर्णयपर छोड़ता हूँ।[2]

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० १३।

१. यह वह पुस्तक जिसमें इस्लामके नबियों और खलीफोंके जीवन-चरित हैं।

२. जान पड़ता है कि गांधीजी उनकी अनुपस्थितिमें उनका कारबार देखते थे और अपनी दैनिक आवश्यकता कर उनकी समस्याएँ उनके सामने रखते थे और उनकी सम्मतिसे काम लेते थे।

४८६. पत्र : उमर हाजी आमद और आदमजी मियाँखाँको

[जोहानिसबर्ग]
मई २, १९०५

श्री सेठ उमर हाजी आमद और श्री आदमजी मियाँखाँ

मैंने पहले श्री गांधरके मार्फत जो अर्जी[1] भेजी थी वह विधानसभामें दे दी होगी। न दी हो तो शायद अब समय थोड़ा रह गया है।

मैं आज दूसरी अर्जी भेजता हूँ। यह एक दूसरे कानूनके बारेमें है। मुझे आशा है, इस मामलेमें ढील नहीं होगी।

यह डर्बनका एक गैरसरकारी विधेयक है जिसके बारेमें वकीलकी मार्फत सुनवाई हो सकती है। मैंने श्री गांधरको वैसा करनेकी सूचना दे दी है।

इस वक्त आप दोनोंको ताकत दिखानी है और हिम्मतसे काम करना है। कम हस्ताक्षर हों तो भी हर्ज नहीं है। अगर अध्यक्ष और मन्त्रीके हस्ताक्षर हों तो भी काम चल सकता है।

मो० क० गांधीके सलाम

संलग्न–१

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे : पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १४।

४८७. पत्र : हाजी दादा हाजी हबीबको

[जोहानिसबर्ग]
मई २१, १९०५

श्री हाजी दादा हाजी हबीब
बॉक्स ८८
डर्बन

श्री सेठ हाजी दादा हाजी हबीब

आपका पत्र और टिकट[2] मिला। मेरे लिए टिकटका कोई उपयोग नहीं है इसलिए वापस भेजता हूँ। मेरी स्थिति ऐसी है कि मैं अपनी गाँठका पैसा कुछ समयके लिए भी खर्च करनेमें हिचकिचाता हूँ। फिर भी आपका आग्रह है इसलिए अगर अब्दुल्ला सेठका सन्तोषजनक जवाब नहीं मिला तो यथासम्भव शीघ्र यहाँसे रवाना हो जाऊँगा।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे : पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० १११।

१. देखिए "ट्रान्सवाल लेजिस्लेटिव असेम्बली," ७-४-१९०५।
२. यह उपलब्ध नहीं है।

३८८ पत्र पारसी कावसजीको

[जोहानिसबर्ग]
मई १३ १९०५

श्री पारसी कावसजी
११५, फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

श्री पारसी कावसजी

आपका पत्र मिला। आपके बारेमें मेरी रुस्तमजी सेठसे बातचीत हुई थी। उनका विचार जमानतके बिना मदद करनेका नहीं था इसलिए मैं हाँ नहीं कह सकता। मुझे सीधा रास्ता यह दिखाई देता है कि आप रुस्तमजी सेठको लिखें और जबतक जवाब न आये तबतक चुप रहें।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० ११९।

३८९ पत्र चिन्दे-स्थित सरकारी अफसरको

[जोहानिसबर्ग]
मई २५ १९०५

सरकारी अफसर
प्रतिनिधि उपनिवेश-सचिव
चिन्दे
ब्रिटिश मध्य आफ्रिका

महोदय

मैंने सुना है कि सरकार चिन्देमें रेलमार्ग बनवा रही है। यदि वहाँ काम मिल सके तो इस समय ट्रान्सवालमें कुछ भी भारतीय हैं जो चिन्दे[1] रवाना होनेके लिए उत्सुक हैं। इनमें से कुछ लोग चिन्देमें या ब्रिटिश मध्य आफ्रिकाके दूसरे हिस्सोंमें काम भी कर चुके हैं।

मैं आपका कृतज्ञ हूँगा यदि आप कृपया मुझे यह सूचित करेंगे कि वहाँ उनके लिए कोई गुंजाइश है या नहीं और यदि है तो उन्हें अपनी दरख्वास्तें कहाँ भेजनी चाहिए।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० १२ ।

१ पुर्तगाली पूर्वी आफ्रिकामें [illegible]

३९० पत्र : पुलिसके डिप्टी कमिश्नरको[1]

[जोहानिसबर्ग]
मई २५, १९०७

सेवामें
डिप्टी कमिश्नर पुलिस
"ब" विभाग
जोहानिसबर्ग

महोदय,

आपके कार्यालयसे श्री कमरुद्दीनकी पेढ़ीके नाम भेजी गई एक चेतावनी[2] साथमें नत्थी कर रहा हूँ। चेतावनीमें उन्हें "कमरुद्दीन कुली" कहा गया है।

मैं आशा करता हूँ कि जिस अफसरने चेतावनी दी है उससे यह गलती अनजाने हुई है। आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर आकर्षित करनेकी आवश्यकता नहीं है कि उनको ऐसा कहना अत्यन्त अपमानजनक है। श्री एम. सी. कमरुद्दीन वगैराको "कुली" कहना बिलकुल गलत होगा। मैं यह भी कह दूँ कि उनकी पेढ़ी दक्षिण आफ्रिकामें स्थापित एक सबसे पुरानी ब्रिटिश भारतीय पेढ़ी है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
मो० क० गांधी

१ संलग्न

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०७), सं० १२४।

३९१ पत्र : छगनलाल गांधीको

[जोहानिसबर्ग]
मई २२, १९०७

श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी
मार्फत इंटरनेशनल प्रिंटिंग प्रेस
फीनिक्स

चि० छगनलाल,

मैं गुजरातीमें नगरपालिकाकी सूचना छापनेके लिए भेजता हूँ। इसे कृपया तमिल, हिन्दी और उर्दूमें भी अनुवादित करा लेना। ध्यान रहे कि अनुवाद सही हो। कृपया यह सब चारों भाषाओंमें फुल्सकेपके दुगुने आकारमें एक ही कागजपर और १   प्रतियाँ छापना। तुम देखोगे कि यह मामला तात्कालिक महत्त्वका है और चूँकि नगरपालिकासे सम्बन्धित है इसलिए

१. ऐसी चिट्ठियाँ दक्षिण आफ्रिकी मताधिकार कमिश्नरको भी भेजा ही पत्र लिखा गया था (पत्र-पुस्तिका, १९०७, सं० १२९।)

२. यह उपलब्ध नहीं है।

यदि बहुत काम हो तो अन्य कामोंसे पहले इसे कराना। कागज अच्छा लगाना। प्रूफकी जरूरत नहीं है ताकि देर न हो। मैं तुम्हें मूल अंग्रेजी भी भेजता हूँ जिससे तुम कठिनाईके बिना उसका अनुवाद करा सको।

मो० क० गांधीके आशीर्वाद

संलग्न[1]

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० १११।

३९२. पत्र ई० ए० वॉल्टर्सको

[जोहानिसबर्ग]
मई २५, १९०५

श्री ई० ए० वॉल्टर्स
[illegible]
केप कालोनी

प्रिय महोदय,

विषय : कुमारिका और सीडल

इस मामलेमें हालमें भेजे गये मेरे सब पत्रोंकी उपेक्षा की गई है। स्वयं कर्जदार मुझे लिखता है कि उसने आपको पूरी रकम चुका दी है। इसलिए यदि मुझे आपसे चुकौतेके हिसाबकी सूचना नहीं मिलती तो मैं अत्यन्त अनिच्छासे यह मामला पत्रोत्तर न्याय-संघ (इनकॉर्पोरेटेड लॉ सोसाइटी) केप टाउनके समक्ष रखनेके लिए बाध्य हूँगा।

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० १८५।

१. ये उपलब्ध नहीं हैं।
[illegible]

२९३ पत्र : कैखुसरू और अब्दुल हक़को

[जोहानिसबर्ग]
मई २५, १९०७

श्री जालभाई सोराबजी बर्दी
८४ फील्ड स्ट्रीट
डर्बन

श्री भाई कैखुसरू और अब्दुल हक़

आपका पत्र मिला। रुस्तमजी सेठने नूरुद्दीनके बारेमें जैसी सूचना दी है वैसा ही करना। नूरुद्दीनको मैंने सेठ रुस्तमजीको सीधा पत्र लिखनेके लिए कहा है।

हुसेन ईसपको अगर वह अच्छा काम करता हो और विश्वासी हो तो ७ पौंड तक पेशगी वेतनपेटे दे दीजिये।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे : पत्र-पुस्तिका (१९ ५) सं १५१।

२९४ पत्र : उमर हाजी आमद झवेरीको

[जोहानिसबर्ग]
मई २६, १९०७

श्री उमर हाजी आमद झवेरी
बॉक्स ४४१
डर्बन

श्री सेठ उमर हाजी आमद झवेरी

आपका पत्र तथा सेठ हाजी मुहम्मदके पत्रकी नकलें मिलीं। पत्र पढ़कर बहुत आश्चर्य और दुःख होता है कि बुजुर्ग और समझदार व्यक्तिको भी भान नहीं रहता। मुझे लगता है कि जब पत्र मिला था तभी आपने छोटा-सा जवाब दे दिया होता तो ठीक था। परन्तु अभी तक जवाब नहीं दिया इसलिए अब मुझे जवाब देनेकी जरूरत दिखाई नहीं देती। मुझे पत्र मिलेगा तो आपको लिखूँगा।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे : पत्र-पुस्तिका (१९ ५) सं १५७।

> महारानीने जिसमें माता नारी और रानीका अद्वितीय और सुन्दर समन्वय हुआ है, समस्त भारतीयोंके हृदय जीत लिये हैं। उनके आश्चर्यजनक शासनकालने भारतीय इतिहासपर जो छाप छोड़ी है उसके विषयमें बहुत-कुछ कहना और उन बहुत-सी बातोंको बताना सरल है, जिनमें स्वर्गीया सम्राज्ञीने विवेकपूर्वक हाथ डाला था और जिनपर उनका प्रभाव पड़ा था किन्तु क्या १८५८ की वह प्रसिद्ध घोषणा उनके समूचे शासन और चरित्रको व्यक्त नहीं करती जो भारतका मैग्ना-कार्टा और हमारे व्यवहार और महत्त्वाकांक्षाओंका उत्तम मार्गदर्शक है? उनके विषयमें यह कहा जा सकता है कि उन्होंने भारतको स्तम्भ बनाकर ब्रिटेनको एक विश्वव्यापी साम्राज्यमें बदल दिया।

विक्टोरिया भारतके प्रति सदा व्यक्तिगत और गहरी दिलचस्पी रखती थीं। इतना ही नहीं कि उनके समीपस्थ नौकर-चाकर बहुतसे भारतीय होते थे और उन्होंने हिन्दुस्तानी लिखना बोलना सीखा था (जो राज्यकी चिन्ताओंसे ग्रस्त व्यक्तिके लिए कोई आसान काम नहीं है) बल्कि व वाइसरायसे प्रत्येक डाकसे भारतकी स्थितिका विवरण मँगाती थीं और लॉर्ड नार्थब्रुकके नाम लिखे हुए पत्रोंमें से एक पत्रके निम्न अंशसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनको भारतीय मामलोंका आन्तरिक ज्ञान प्राप्त था

> महारानीका विश्वास है कि अब अंग्रेज पहलेकी अपेक्षा भारतके देशी लोगोंके प्रति अपने व्यवहारमें अधिक सदय हैं। अब ईसाइयोंके लिए अशोभनीय इन भावनाओंका निर्मूल होना बहुत जरूरी है। उनकी सर्वत्र सबसे बड़ी इच्छा यह है कि सब वर्गोंके बीच, जो आखिरकार भगवानकी दृष्टिमें समान हैं, अधिकतम प्रेम और सद्भाव हो।

"भगवानकी दृष्टिमें समान" — यही वह भावना थी जिससे प्रेरित होकर वह महान घोषणा की गई थी और साम्राज्य जिसके योग्य सिद्ध नहीं हुआ। हम यह दुःखके साथ कहते हैं और दुःखके साथ ही हमें अपने पाठकों और अधिकारियोंका ध्यान उन बहुत-सी बातोंकी ओर आकर्षित करना पड़ता है जिनमें नेक विक्टोरियाकी भावना भंग की गई है। वैसे हमने इस समय पसन्द नहीं किया होता कि हमारे पत्रके कमसे-कम इस अंकमें ऐसी कोई बात न होती जो हमारे इस संतोषमें बाधक प्रतीत होती कि हम अंग्रेजी साम्राज्यके अंग हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २७–५–१९ ५

भारतीय इस मुकदमेसे अपने संघर्षमें एक कदम और आगे बढ़ जाते हैं और १८८५ का कानून ३ स्पष्ट रूपमें उनके खिलाफ प्रयोगकी दृष्टिसे और भी कुण्ठित हो जाता है। यदि कोई भारतीय सम्पत्तिके नामके अधिकारीके रूपमें अपने नामका पंजीयन करानेका आग्रह करे तो उसका नाम इस तरह पंजीकृत किया जा सकता है या नहीं इसकी परीक्षा करना एक बड़ी दिलचस्प बात होगी। यदि भारतीय ऐसे परीक्षात्मक मुकदमेमें जीत जायें तो वे तनिक भी जोखिमके बिना ट्रान्सवालके किसी भी भागमें व्यवहारतः जमीनके मालिक हो सकेंगे और इसपर सामान्य बुद्धिके दृष्टिकोणसे विचार करें तो हमें ऐसा लगता है कि सर्वोच्च न्यायालयके निर्णयसे यह बात उपसिद्धान्तकी तरह निष्पन्न होती है। चूँकि अब यह फैसला हो गया है कि भारती ट्रान्सवालके किसी भी भागमें जमीनी जायदादके मालिक हो सकते हैं और उसका पंजीयन अपने नाम पर करा सकते हैं इसलिए यह निश्चय ही उनके न्याय्य अधिकारोंके अनुकूल होगा।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २७–५–१९०५

३९७ मुस्लिम बनाम हिन्दू

हमने ईस्ट लंदनके एक समाचारपत्रमें एक हिन्दू और मुसलमान भाईके बीचका पत्र-व्यवहार बड़े खेदके साथ पढ़ा है। हम समझते थे कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय समाजके सभी वर्गोंमें अधिकसे-अधिक मेलकी प्रत्यक्ष जरूरतके आगे इस तरहके प्रेम-भावकी गुंजाइश नहीं है। हम इन पत्रोंके गुण-दोषकी चर्चा नहीं करना चाहते केवल इस प्रकारके व्यवहारके प्रति नापसन्दगी जाहिर करना चाहते हैं। हम विश्वास करते हैं कि पत्रलेखक भी हमारे साथ-साथ खेद प्रकट करनेकी समझदारी दिखायेंगे और पत्र-व्यवहारको जहाँका तहाँ रोक देंगे। यहाँ दूसरी और अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण बातें मौजूद हैं जिनकी ओर वे ज्यादा लाभप्रद ढंगसे ध्यान दे सकते हैं। हमें शायद अपने पाठकोंको यह स्मरण दिलानेकी अनुमति दी जायेगी कि *इंडियन ओपिनियन* दक्षिण आफ्रिकाके सारे भारतीय मसलोंकी चर्चा करनेके लिए विशेष पत्र है और यदि दुर्भाग्यसे भारतीयोंके बीच मतभेद उत्पन्न हों तो उनको प्रकाशमें लानेके लिए हमारे स्तम्भ स्वाभाविक और अत्यन्त उपयुक्त माध्यम हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन २७–५–१९०५

१. [illegible]

३९८. सर मंचरजी और श्री लिटिलटन

सर मंचरजीने श्री लिटिलटनसे पूछा कि ट्रान्सवाल राज्यके संविधानमें भारतीयोंको मताधिकार से वंचित करनेका क्या कारण था? उन्होंने यह भी पूछा कि सरकार संविधानमें परिवर्तन करके भारतीयोंको अब मताधिकार देगी या नहीं। श्री लिटिलटनने उत्तर दिया कि लड़ाईकी समाप्तिपर जो सन्धि हुई उसका अर्थ बोअर लोग यह करते हैं कि जबतक ट्रान्सवालको पूर्ण स्वराज्य नहीं मिलता तबतक किसी भी काले आदमीको मताधिकार नहीं दिया जायेगा। इसके आधारपर श्री लिटिलटनने भारतीयोंको मताधिकारसे वंचित कर दिया है जिससे बोअर लोगोंको ब्रिटिश सरकारकी ईमानदारीके बारेमें सन्देह उत्पन्न न हो। सन्धिपत्रमें जो शब्द प्रयोगमें लाया गया है वह "रंगदार लोग" नहीं है अपितु "वतनी" है। अब "वतनी" शब्दका अर्थ किसी भी प्रकार "भारतीय" नहीं किया जा सकता। दक्षिण आफ्रिकामें यह शब्द सदैव इस देशके मूल वासियोंके लिए ही प्रयुक्त किया जाता है। "वतनी" शब्दमें भारतीयोंको और दूसरे काले लोगोंको गिननेका रिवाज अभी नया ही है। और वह भी तब जब कानूनमें विशेष रूपसे उसका ऐसा उल्लेख हो। अब भी आम तौरसे इसका इस प्रकारका अर्थ नहीं किया जाता। फिर भी श्री लिटिलटनने ऊपर जो स्पष्टीकरण किया है वह आश्चर्यजनक है। और यदि भारतीय "वतनी" शब्दमें इस तरह शामिल किये जाते रहे तो उनको बहुत हानि होनेकी सम्भावना है।

स्वराज्य मिलनेपर डच या ब्रिटिश कोई भी भारतीयोंको मताधिकार देंगे यह सम्भावना तनिक भी नहीं है। सर जॉर्ज फेरारने जो ट्रान्सवालके एक विख्यात सज्जन हैं कहा है कि "वतनी" लोगोंको कभी मताधिकार नहीं दिया जायेगा। भारतीयोंके सम्बन्धमें इन महानुभावके विचार बहुत ही विरोधी हैं। इसलिए "वतनी" लोगोंको मताधिकार न मिले और भारतीयोंको मिले यह विचार उनको सपनेमें भी नहीं आ सकता।

उपर्युक्त सवाल-जवाबका अर्थ यह निकलता है कि जब-जब "वतनी" शब्दके अन्तर्गत भारतीय गिने जायें तब-तब डटकर मोर्चा लिया जाये।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २७-५-१९०५

३९९. जोहानिसबर्गमें प्लेग[1]

जोहानिसबर्गमें प्लेग आ गई है। कहा यह जाता है कि यह मुसाफिरी जहाजोंसे आई है। इसका मलायी बस्तीसे आरम्भ हुआ है। इसका सबसे पहला रोगी एक मलायी था। उसके बाद यह रोग एक गोरेको हुआ। डॉक्टर पोर्टरके कथनानुसार ५ भारतीय भी व्याधिग्रस्त हुए हैं। मलायी बस्तीमें बड़ी सख्ती की जा रही है। सुबह और शाम लोगोंके घरोंकी जाँच की जाती है।

अगर प्लेग अधिक फैली तो बड़ी दिक्कतें पैदा होनेकी सम्भावना है। मलायी बस्तीमें जबरन टीके लगाये गये हैं। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। नगर-परिषदने कानून बनाये हैं। और जब वे अमलमें आयेंगे तब सम्भवतः बहुत-सी कठिनाइयाँ सामने आयेंगी।

उपाय लोगोंके ही हाथमें है। घर साफ रखना, हर रोज नहाना, पानी और दूध आदि स्वच्छ रखना, कपड़े साफ पहिनना और मकानमें हवा और रोशनी काफी आने देना। ये प्लेग और दूसरी बीमारियोंको रोकनेके उपाय हैं। यदि घरमें किसीको प्लेग निकले तो उसकी खबर अधिकारियोंको तुरन्त दी जाये। लोग ऐसे रोगोंको डरके मारे जितना छिपायेंगे उतना ही अधिक कष्ट होगा तथा रोग अधिक फैलेगा और अधिकारी विरोधी हो जायेंगे। फिर रोगीको अन्तमें अस्पताल तो ले जाया ही जायेगा। तब यदि हम स्वयं ही खबर दे दें तो परेशानी कम होनेकी सम्भावना है। रोगीको अस्पताल ले जानेसे कोई नुकसान नहीं होता — बल्कि जल्दी आराम होनेकी सम्भावना है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, २७-५-१९०५

४००. पत्र : मुहम्मद सीदतको

जोहानिसबर्ग
मई २७, १९०५

श्री मुहम्मद सीदत
मार्फत श्री एम० सी० ऐंग्लिया
ग्रे स्ट्रीट
डर्बन

श्री सेठ मुहम्मद सीदत व अन्य इस्लामी स्वामी

आपका पत्र मिला। मेरे भाषण और लेखसे आपको और दूसरे सज्जनोंको बुरा लगा उसके लिए मुझे बहुत दुःख है और मैं माफी चाहता हूँ।

उस भाषणमें मेरा उद्देश्य तमाम भारतीयोंकी सेवा करना था। मैं मानता हूँ कि वैसी ही छाप मेरे भाषणके श्रोताओंके मनोंपर पड़ी है।

१. यह "हमारे संवाददाता द्वारा प्रेषित" रूपमें छपा था।
२. देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ३९५, ४२ और ४३५।

मैंने जो कुछ कहा है वह इतिहासपर आधारित है। इसमें कोई भ्रम नहीं है और इसके लिए मैं आपसे *एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका* और हन्टरकी *इंडियन एम्पायर* आदि पुस्तकें देखनेकी सिफारिश करता हूँ।

इतर धर्मोके लोग मेरी समझमें नीच नहीं हैं। मैं उनका सँभालना बुराई काम मानता हूँ। आपने मेरा धर्म पूछा है। मेरा धर्म वैदय है।

अधिक क्या लिखूँ।[1]

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० १९१।

४०१ लॉर्ड सेल्बोर्नको दिया हुआ मानपत्र

जोहानिसबर्ग
[मई २८, १९०५][2]

परमश्रेष्ठ हमपर कृपालु हों

हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले ट्रान्सवालमें बसे हुए ब्रिटिश भारतीयोंके प्रतिनिधि परमश्रेष्ठका सम्मानपूर्ण स्वागत करनेकी इजाजत चाहते हैं और प्रार्थना करते हैं कि आपके शासनकालमें विशेष रूपसे यह देश पुनः समृद्धिको प्राप्त हो और इस उपमहाद्वीपमें बसी हुई महामहिमकी प्रजाओंके विभिन्न वर्गोमें शान्ति और सौहार्दकी स्थापना हो। क्या हम परमश्रेष्ठसे यह अनुरोध कर सकते हैं कि परमश्रेष्ठ महामहिम सम्राट और सम्राज्ञीको उनके प्रति हमारी राजभक्तिका विश्वास दिला देनेकी कृपा करेंगे?

हम हैं,
परमश्रेष्ठके विनीत सेवक,
अब्दुल गनी
ए० ए० पिल्ले
मो० क० गांधी
[तथा अन्य १७ व्यक्ति]

[अंग्रेजीसे]
इंडियन ओपिनियन १–६–१९०५

१. गांधीजी इस सम्बन्धमें अपनी स्थिति कुछ विस्तारसे पहले स्पष्ट कर चुके हैं। देखिए "भारतीय सांसारिक," ११–५–१९०५।

२. यह मानपत्र अब्दुल गनी द्वारा ७ जूनको भेंट किया गया था।

४०२. पत्र : ईसा हाजी सुमारको

[जोहानिसबर्ग]
जून १, १९०५

सेवामें
श्री ईसा हाजी सुमार
राणावाव
पोरबन्दर
काठियावाड़, भारत

श्री सेठ ईसा हाजी सुमार,

आपका पत्र मिला। जोशी चतुर आदमी है यह ठीक है। किन्तु मुझे इस समय यहाँ कुछ भी पैसा मिलनेकी सूरत नहीं दिखती। उमर सेठने श्री मजमूदारको ठीक पैसा दे दिया था। आप भी वैसा ही कर सकते हैं। विलायत जायेंगे तो उसमें उचित खर्च करना पड़ेगा। मगर उसमें थोड़ा पैसा ज्यादा खर्च हो जाये तो हिसाब लगाना ठीक नहीं है।

श्री जोशीका पत्र वापस नत्थी करता हूँ।

मो० क० गांधीके सलाम

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें गुजरातीसे पत्र-पुस्तिका (१९०५), सं० २१।

४०३. पत्र : एच० जे० हॉफमेयरको

निजी पत्र वाहक द्वारा प्रेषित

[जोहानिसबर्ग]
जून ६, १९०५

सेवामें
श्री एच० जे० हॉफमेयर
मिनर्स बिल्डिंग्स
जोहानिसबर्ग

प्रिय श्री हॉफमेयर,

मुझे स्वीकार करना चाहिए कि आपके पत्रसे जिसके साथ एक चैक भी है, मैं असमंजसमें पड़ गया हूँ। क्योंकि मेरा खयाल है कि इसमें एक सिद्धान्तका सवाल है। यह चैक मुझे एक खास कामके लिए दिया गया था। आप जानते हैं कि यह रुपया मेरा था। मेरे पास सईद इस्माइलका जो कुछ जमा था यह रकम उसमें से नहीं ली गई है। और इस बातको देखते हुए कि जिस जायदादको खरीदनेके उद्देश्यसे यह रकम दी गई थी वह जायदाद खरीदी नहीं गई है मेरा खयाल है कि मैं उस चैककी पूरी रकम वापस पानेका अधिकारी हूँ। मैं जानता

१. सम्भवतः श्री [illegible] मजमूदार, [illegible]।

शासनके अन्य किसी भी विभागमें महाराजा गायकवाड़की दूरदर्शितापूर्ण उदारता इतनी प्रत्यक्ष नहीं जितनी कि शिक्षामें; और उसके परिणाम भी अन्यत्र कहीं इतने वास्तविक और ठोस नहीं निकले हैं। बड़ौदामें रियासतकी आयका १५ प्रतिशत शिक्षापर व्यय किया जाता है। इसके विपरीत बंगालमें यह प्रतिशत १ १७ बम्बईमें १ ४४ मद्रासमें १ ११ और सारे ब्रिटिश भारतमें लगभग १ है। और सारी आबादीमें शिक्षा पानेवाले बालकोंका प्रतिशत बड़ौदामें ८.६, बंगालमें ४ बम्बईमें ६.२, मद्रासमें १ ९, और समस्त ब्रिटिश भारतमें १ से भी कम है। बड़ौदामें शिक्षाकी मदमें कुल आबादीपर प्रति व्यक्ति सात आने खर्च किये जाते हैं जब कि ब्रिटिश भारतमें लगभग एक आना खर्च किया जाता है।

श्री दत्तकी दिलचस्पी स्वशासनकी समस्याके अतिरिक्त भारतके महान ग्राम-समाजोंको जिन्हें स्वर्गीय सर हेनरी मेनने अपनी सजीव वर्णनशैलीमें आत्मनिर्भर गणराज्योंके रूपमें चित्रित किया है, पुनरुज्जीवित करने और कायम रखनेमें बहुत गहरी है। श्री दत्तने ग्रामोंको अपने प्रबन्धका नियन्त्रण दे दिया है और गाँवके मुखियाको भी कुछ अधिकार दे दिये हैं उन्होंने गाँवके अध्यापकको उसके आसनपर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया है और पुरानी प्रणालीके पौधेमें सच्चे निर्वाचनात्मक प्रतिनिधित्वकी कलम लगा दी है। अब गाँवकी पंचायतके सदस्य पुश्तैनी न होंगे वे लोगों द्वारा चुने जाया करेंगे। यह प्रयोग साहसपूर्ण है और यदि यह सफल हो गया तो यह भारतीय रियासतोंके शासनमें एक नई प्रगतिका प्रतीक बन जायेगा। और जैसा कि सर विलियम वेडरबर्नने लिखा है सम्भव है कि ब्रिटिश भारतकी सरकारको बड़ौदाका अनुकरण करना पड़े। सर विलियम वेडरबर्नने यह भी लिखा है कि इसमें लज्जा या झिझक अनुभव करनेकी कोई जरूरत नहीं है प्रत्युत ब्रिटिश सरकारके लिए तो यह अभिमानकी बात होनी चाहिए क्योंकि भारतको वर्तमान बड़ौदा नरेश और श्री दत्त जैसे असाधारण योग्यताके शासक भी तो आखिर उसने ही दिये हैं। बड़ौदा सरीखी रियासतसे दक्षिण आफ्रिकाके हमारे पाठकोंको अपने भारत विषयक पूर्वग्रह और भ्रान्त विचार दूर करनेमें सहायता मिलनी चाहिए। क्योंकि जिस देशमें इतने अच्छे और इतने उदारताकारी कार्य होते हों उसे किसी भी प्रकार असभ्य अथवा अर्ध-सभ्य जंगली जातियोंका आवास देश नहीं कहा जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-९-१९०५

४०५ एक परोपकारी भारतीय

कुछ समयसे हमारे पास *इंडियन सोशियोलॉजिस्ट* नामक पत्रकी प्रतियाँ आ रही हैं। यह पत्र स्वतंत्रताका और राजनीतिक सामाजिक तथा धार्मिक सुधार का समर्थक है। यह लन्दनसे प्रकाशित होता है और इसके सम्पादक हैं पंडित श्यामजी कृष्णवर्मा जो कि ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके एम ए हैं और वहाँ अध्यापक भी रह चुके हैं। इस पत्रका सम्पादन निर्भीकतासे किया जाता है और इसके सम्पादक स्वर्गीय हर्बर्ट स्पेन्सरकी शिक्षाओंसे अनुप्राणित हैं। स्पष्ट है कि इस पत्रका लक्ष्य भारतीय विचारोंको स्पेन्सरकी शिक्षाओंके अनुसार ढालना है। पण्डितजी एक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् हैं और उनके पास सम्पत्ति भी अच्छी खासी है। उन्होंने कई छात्रवृत्तियाँ आरम्भ की हैं जिससे भारतीय छात्र यूरोप और अमेरिकामें अपना स्नातकोत्तर अध्ययन जारी रख सकें। प्रत्येक छात्रवृत्ति २ • रुपये की है और यह भारतके सभी भागोंके चुने हुए स्नातकोंको इस मुख्य शर्तपर दी जाती है कि उम्मीदवार यूरोप या अमेरिकामें कमसे-कम दो वर्ष तक अवश्य रहेंगे और अध्ययन करेंगे एवं किसी भी अवस्थामें सरकारी नौकरी स्वीकार नहीं करेंगे। उम्मीदवारोंसे इस आशयका शर्तनामा लिखनेकी आशा की जाती है कि वे अध्ययन पूरा कर चुकनेपर इस प्रकार दी हुई रकमको सुविधाजनक किस्तोंमें चुका देंगे। प्रथम स्पर्धामें ये पाँच उम्मीदवार चुने गये हैं — अब्दुल्का-अल-महमूद सुहरावर्दी एम ए शरच्चन्द्र मुकर्जी एम ए परमेश्वरलाल एम ए मैयर अब्दुल मजीद बी ए और शेख अब्दुल अजीज बी ए । यह प्रयोग अति साहसपूर्ण है। दानी व्यक्तिके उद्देश्य देशभक्तिपूर्ण हैं। परन्तु इस प्रयोगकी सफलता बहुत-कुछ इस बातपर निर्भर करती है कि प्रथम छात्र इस अवसरका उपयोग कैसे करते हैं। उनकी शिक्षा-सम्बन्धी योग्यताएँ तो सुखद परिणामकी सूचक हैं। हम पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्माके प्रयत्नकी पूर्ण सफलताकी कामना करते हैं। दक्षिण आफ्रिका और अन्य स्थानोंके भारतीय व्यापारी भी उनके उदाहरणका अनुकरण बखूबी कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १-१-१९ १

४०६. श्री गांधीकी टिप्पणियाँ[1]

उपर्युक्त पत्रको पढ़कर मुझे बहुत दुःख हुआ है। मैंने वही लिखा है जिसे मैंने सत्य माना है। फिर भी मुझे मालूम हुआ है कि कुछ लोग मेरे कथनसे अप्रसन्न हुए हैं। उसके लिए मुझे खेद है और मैं उनसे क्षमा माँगता हूँ। चूँकि मैं इस विवादको बढ़ाना नहीं चाहता इसलिए मैं इस पत्रका उत्तर कुछ भी विस्तारसे देना ठीक नहीं समझता। मैंने इस्लामकी निन्दा करनेका प्रयत्न नहीं किया है और न मैं उसे नीचा ही मानता हूँ। मैं नहीं समझता हूँ कि जब मैंने वह भाषण दिया था तब किसी व्यक्तिके मस्तिष्कपर ऐसा प्रभाव पड़ा होगा।

मो० क० गांधी

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १–६–१९०५

४०७. जोहानिसबर्गमें चेचक

यह रोग जोहानिसबर्गमें फूट निकला है लेकिन सौभाग्यसे अधिक फैला नहीं है। हुसनमल नामका एक भारतीय मलायी बस्तीमें रहता है। उसके घरमें एक लड़केको चेचकका रोग हो गया था। उसने इसकी खबर अधिकारियोंको नहीं दी और जब अधिकारियोंने पूछताछ की तब उसने सही-सही बात नहीं बताई। इस वजहसे उसपर मुकदमा चलाया गया और १ पौंड जुर्माना किया गया। इस उदाहरणसे हम लोगोंको सबक लेना चाहिए। रोगको छिपानेसे कुछ भी लाभ नहीं अपितु बहुत हानि है। केवल छिपानेवाला ही उसकी सजा भुगतता है यह बात नहीं है बल्कि वह सारी कौमको भुगतनी पड़ती है। चेचक छूत लगनेसे फैलती है इसमें कोई शक नहीं। हजारों मनुष्य इससे दुःखी होते हैं यह हम जानते हैं। इसलिए स्वयं अपनी तन्दुरुस्ती कायम रखनेके लिए भी हमें सँभलकर रहना आवश्यक है।

फिर, दक्षिण आफ्रिकामें सँभलकर रहनेकी और भी ज्यादा जरूरत है क्योंकि हममें से किसी से भी भूल हो जाये तो उसमें पूरी कौमको उलाहना मिलता है और सारी कौमके सामने बाधाएँ आती हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १–६–१९०५

१ श्री [illegible] (देखिए "श्री गांधीका स्पष्टीकरण" ११–५–१९०५) *इंडियन ओपिनियनके* सम्पादकको [illegible] । [illegible] "[illegible]" [illegible] है [illegible] कि "[illegible]" [illegible] । [illegible] है कि [illegible] । [illegible] है ।

४०८. सम्युअल स्मिथ और भारत

श्री सैम्युअल स्मिथ भारतके शुभचिन्तक हैं। वे ब्रिटिश संसदके सदस्य हैं, और पिछली कांग्रेसमें खास तौरपर गये थे। उन्होंने लन्दन [illegible] लिखते हुए निम्न सुझाव दिये हैं:

१. ब्रिटेनमें जो इंडिया कौंसिल है उसमें तीन [illegible] भारतीय शामिल किये जायें और उनकी नियुक्ति वाइसराय करें।

२. वाइसरायकी शासन-समितिमें कमसे-कम एक भारतीय नियुक्त किया जाये।

३. ब्रिटिश संसदमें कलकत्ता, बम्बई और मद्रासकी ओरसे एक-एक सदस्य नियुक्त किया जाये और उन सदस्योंका चुनाव सम्बन्धित धारासभाएँ करें।

श्री सैम्युअल स्मिथका कहना है कि इस प्रकार सुधार किया जाये तो भारतीयोंको बहुत सन्तोष होगा और शासन-प्रबन्ध बहुत अच्छा चलेगा। फिर भी स्मिथ यह बताते हैं कि भारतकी सबसे बड़ी बीमारी कंगाली है। इसलिए रैयतको सुखी करनेके लिए भूमिका लगान सदाके लिए निश्चित कर देना चाहिए और वह बहुत कम होना चाहिए। श्री स्मिथके इन विचारोंपर सरकार ध्यान दे तो अवश्य काम होगा।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-६-१९०५

४०९. भारत और आम चुनाव

खयाल किया जाता है कि अब सम्भवतः कुछ ही दिनोंमें ब्रिटिश संसदका नया चुनाव होगा। ऐसे अवसरपर भारतकी अवस्था ब्रिटिश मतदाताओंको बताई जानी चाहिए। इस विचारसे गत कांग्रेसमें यह प्रस्ताव किया गया था कि भारतीय प्रतिनिधि भारतसे ब्रिटेन भेजे जायें। *इंडिया* पत्र बताता है कि इस सम्बन्धमें भारतके पक्के मित्र सर विलियम वेडरबर्नने एक सूचना निकाली है और ब्रिटेनके बड़े शहरोंके सदस्योंसे विनती की है कि वे भारतीय प्रतिनिधियोंसे भारतके दुःखका इतिहास सुननेके लिए सभाएँ करें। इन प्रतिनिधियोंके मुखिया श्री गोपालकृष्ण गोखले सी० आई० ई० नियुक्त किये गये हैं। ये श्री गोखले वे ही हैं जिन्होंने पूनाके फर्ग्युसन कॉलेजमें केवल अपने जीवन-निर्वाह लायक पैसा लेकर अध्यापनका काम किया था। इन दिनों वे कलकत्तामें इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलके सदस्य हैं और प्रतिवर्ष उसमें भारतके निमित्त टक्कर लेते हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-६-१९०५

४१०. भारतमें प्लेग

पिछले अप्रैल मासके अन्तिम सप्ताहमें भारतमें प्लेगसे ५५,७८ लोग बीमार पड़े उनमें से ५७७ २ मर गये। संयुक्त प्रान्तमें[1] २१ १८७ पंजाबमें १९, १९, और बंगालमें ९,७ १ लोग मरे। *सिविल रिव्यू* नामक पत्रने इस मृत्यु-संख्याकी चर्चा की है और कहा है कि इस प्लेगके लिए अंग्रेज सरकार जिम्मेदार है, क्योंकि बेकारी बहुत है। यह हिसाब लगाया गया है कि १ करोड़में से १ करोड़ लोगोंको केवल एक बार मिलता है। यह निश्चित बात है कि जिस मनुष्यको रोज भूखा रहना पड़ता हो उसका धीरे-धीरे कमजोर पड़ता जाता है और अन्तमें ऐसा बिगड़ जाता है कि उसपर छूतकी बीमारीका असर तुरन्त होता है। फिर भी हमें कहना चाहिए *सिविल रिव्यूकी* आलोचना हदतक नामुनासिब है। यह अनुभवके आधारपर कहा जा सकता है कि केवल भुखमरीसे लोगोंको ही प्लेग नहीं होता। हम देखते हैं कि अच्छी स्थितिमें रहनेवाले भी इससे घिर जाते हैं। और अनुभवसे हम यह कह सकते हैं कि

१ जिस घरमें प्लेग होता है उस घरमें अक्सर सभी लोग बीमार पड़ते हैं।
२ जिस गाँवमें प्लेग फैलता है वहाँ उसका सर्वथा उन्मूलन नहीं होता।
३ जो लोग स्वच्छतापूर्वक रहते हैं उनको प्लेग कम होता है।
४ जहाँ प्लेग हो उस गाँवसे लोग निकल जाते हैं तो बच जाते हैं।
५ भारतीयोंमें जितना प्लेग होता है उतना गोरोंमें नहीं होता।
६ गोरे अधिक स्वच्छ रहते हैं और स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करते हैं।
७ भारतसे बाहर जहाँ-जहाँ प्लेग होता है वहाँ वह तुरन्त निर्मूल हो जाता है।

इससे हम देख सकते हैं कि भुखमरीके साथ प्लेगका सम्बन्ध अधिक नहीं है।

इसमें कोई शक नहीं कि प्लेग के सम्बन्धमें मुख्य बात स्वच्छता रखनेकी है। स्वच्छताका मतलब बस नहाना-धोना ही नहीं है। यह ठीक है कि शारीरिक स्वच्छता रखनी चाहिए। परन्तु इसके अतिरिक्त घर साफ रखना चाहिए, घरमें रोशनी और धूप आने देनी चाहिए। पाखाने साफ रखने चाहिए और जिस घरमें रोग हो वहाँ रोगी और दूसरोंके रहनेकी सुविधा ऐसी रखनी चाहिए कि रोगीके लिए बरता जानेवाला सामान दूसरे व्यवहारमें न आये। प्लेगके रोगीकी तीमारदारी एक महत्त्वपूर्ण विषय है। उसकी बातें इस समय अधिक नहीं कह सकते किन्तु हमारे पाठकोंको यह याद रखना आवश्यक है कि प्लेगके समान दूसरा घातक रोग सुननेमें नहीं आता। हैजा हमेशा भयानक रोग माना गया है लेकिन प्लेगके सामने वह कुछ नहीं है ऐसा कहा जा सकता है। फिर भारतमें दिन-प्रतिदिन प्लेग बढ़ रहा है, घट नहीं रहा है। उदाहरणार्थ उसमें १९ १ में २ ,१२ मौतें हुई १९ २ में ५, १ ३ में ८ और इस वर्ष तो इतना अधिक जोर है कि शायद ही १ मौतें हो जायेंगी। वर्तमान इस वर्ष १२ मनुष्योंकी मौतका का रही है।

१ अब उत्तर प्रदेश।
२. मूल प्रतिमें १२ यह अंक प्रत्यक्षतः छूटे दिख गये हैं।

मौतें होती ही रहीं और प्रतिवर्ष बढ़ती ही रहीं तो सारा भारत १५ वर्षमें उजाड़ हो जाये तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। कुछ गाँव तो उजड़ चुके हैं। पंजाबमें कई जगह लोकोपयोगी काम बन्द हो गये हैं। प्लेगसे बचे हुए लोग गाँव छोड़कर भाग गये हैं। इसलिए इसपर प्रत्येक भारतीयको विचार करना चाहिए। प्रत्येक भारतीयको अपना हृदय टटोलना है और अपने कर्तव्यकी रूपरेखा तैयार करनी है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १–६–१९०५

४११ पत्र एम० एच० मर्स्टनको

[जोहानिसबर्ग]
जून ५, १९०५

श्री एम० एच० मर्स्टन
पो० ऑ० बॉक्स १७१२
जोहानिसबर्ग

प्रिय महोदय,

मैं देखता हूँ कि जिस मकानमें रह रहा हूँ उसके भोजन-कक्षकी चिमनी बिलकुल काम नहीं करती। उसमें जो आग लकड़ीका बना है वह बाहर उभर आया है। प्रत्येक बार, जब मैं आग जलाता हूँ भोजनकक्ष धुएँसे भर जाता है। यह धुआँ लकड़ीके बाहर उभरे हुए भागकी दरारोंमें से निकलता है।

यदि आप इसको कृपापूर्वक अविलम्ब ठीक करा देंगे तो मैं आपका कृतज्ञ हूँगा।

मैं आपका ध्यान इस तथ्यकी ओर भी आकृष्ट करना चाहूँगा कि ट्रामविलेमें सब जगह किराये घट गये हैं। और यदि आप मैं जो किराया दे रहा हूँ उसमें कुछ कमी कर देंगे तो मैं कृतज्ञ होऊँगा।

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० २५२।

उपनिवेश-मन्त्रीको यह सलाह तक देनेमें संकोच नहीं किया है कि वे ब्रिटिश सरकारकी बार-बार दुहराई हुई प्रतिज्ञाओंको तोड़ दें और निस्सन्देह उन्होंने अन्तमें ही इस भयावह परामर्शके समर्थनमें तत्कालिक मजबूत इरादे किये हैं। ब्रिटिश सरकारकी शक्ति बहुत कुछ उसकी मर्यादामें और अपने वचनोंका ईमानदारीसे पालन करनेमें है। यह ठीक है कि कई बार उसने इसके विपरीत आचरण किया है, और जब-जब उसने ऐसा किया है तब-तब अंग्रेजोंकी प्रतिष्ठाकी ही क्षति हुई है। कोई भी राजनयिक ऐसे आचरणका स्मरण अभिमानपूर्वक नहीं करता। वह या तो उसकी लीपा-पोती करता है या उसकी सफाई देनेका प्रयत्न करता है। इस प्रकार वह अप्रत्यक्ष रूपसे यह दिखाना चाहता है कि ब्रिटिश राजनयिकोंका इरादा अपने ऊँचे स्तरसे स्खलित होनेका कदापि नहीं है। इसलिए भी लॉर्ड गॉशकी स्थितिके सज्जनको भी उन लोगोंकी पंक्तिमें खड़ा देखकर चिन्ता होती है जो कि ब्रिटिश तौर-तरीकोंमें क्रान्ति करनेवाली नीतिके समर्थक हैं। फिर भी इससे ब्रिटिश भारतीयोंके प्रश्नपर ट्रान्सवालके यूरोपीय लोगोंकी भावनाएँ प्रकट होती हैं। और व्यावहारिक राजनीतिज्ञोंको इन भावनाओंका ध्यान रखना है।

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन १०-६-१९०५

४१६. चीनियों और काफिरोंकी तुलना

चीनी लोग जोहानिसबर्गकी खानोंमें रखे गये हैं, इसके सम्बन्धमें अब भी इंग्लैंडमें बहुत चर्चा होती रहती है। इस बारेमें लोगोंके मानसिक क्षोभको शान्त करनेके लिए लॉर्ड मिलनरने अपनी रवानगीसे पहले एक विवरण ब्रिटेन भेजा था जो वहाँ प्रकाशित हुआ है। इसमें लॉर्ड मिलनरने बताया है कि काफिरोंको ढूँढने और उन्हें जोहानिसबर्ग लानेमें तीन वर्षोंमें प्रति व्यक्ति १ पौंड १५ शिलिंग खर्च बैठता है। चीनियोंको लानेका खर्च प्रति व्यक्ति १६ पौंड ११ शिलिंग १ पैंस पड़ता है। इससे लॉर्ड मिलनर दिखाना चाहते हैं कि चीनियोंको लानेमें खान-मालिकोंको पैसोंका फायदा नहीं होता। फिर जोहानिसबर्गमें आ जानेपर भी काफिरोंकी अपेक्षा चीनियोंपर खर्च अधिक पड़ता है। क्योंकि काफिरोंपर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति पौने ८ पेंस खर्च आता है जब कि चीनियोंपर प्रतिदिन प्रति व्यक्ति ११ पेंस खर्च पड़ता है। लॉर्ड मिलनर इसके आधारपर बताते हैं कि यदि खान-मालिकोंको पर्याप्त संख्यामें काफिर मिल जायें तो वे चीनियोंका नाम भी नहीं लेंगे। १ ९८ चीनी तो ट्रान्सवालमें प्रविष्ट हो चुके हैं।

इन सारे आँकड़ोंमें लॉर्ड मिलनर एक बात भूल गये हैं कि काफिर क्वचित् ही ६ महीने काम करते हैं जब कि चीनियोंको लगातार ३ वर्ष काम करना पड़ता है। फिर चीनी काफिरोंकी अपेक्षा अधिक फुर्तीले होते हैं इसलिए उनसे अधिक काम लिया जा सकता है। यह बात मुख्यतः आवश्यक है और इसके बारेमें ये महानुभाव एक शब्द भी नहीं कहते। जबतक यह ध्यान नहीं रखा जाता तबतक लॉर्ड मिलनरके आँकड़े कुछ भी उपयोगी नहीं माने जा सकते। अधिक कुशलको अधिक वेतन दिया जाता है। यदि ऐसा न हो तो लॉर्ड मिलनरके हिसाबमें तो यह भूल ही रही है। इसलिए हमें लगता है कि लॉर्ड मिलनरके विवरणका प्रभाव ब्रिटेनमें अधिक होनेकी सम्भावना नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन, १०-६-१९०५

४१७ जापान और रूस

जापानकी कला दिनोंदिन बढ़ती दिखाई देती है। उसने पोर्ट आर्थरको मुकम्मल सर किया और दूसरी बहादुरियाँ दिखाईं। वे सब उसके नामसे इतिहासमें पढ़ जाती हैं। उसने रूसके विशाल जहाजी बेड़ेको हरा दिया, यही नहीं, बल्कि जल-सेनाध्यक्षको घायल कर दिया और उसका एक भी युद्धपोत नहीं छोड़ा। इतनी बहादुरी दिखा सकेगा ऐसा खयाल किसीने न किया था। बहुतसे लोग कहते थे कि रूसी बेड़ा सिंगापुर पहुँच जायेगा तब जापान बड़ी कठिनाईमें पड़ जायेगा। जानते थे कि जापानका बेड़ा कोई बहुत मजबूत बेड़ा नहीं है क्योंकि जापानी युद्धपोत रूससे संख्यामें कम थे। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जापानके जलसेनाके जल-सेनाध्यक्ष तोगोके जासूस बहुत चौकन्ने थे और जब रूसी बेड़ा उसके बीच आ गया तभी उसने उसपर हमला कर दिया। यह साहस छोटा-मोटा नहीं कहा जा इस साहसकी तुलना नहीं की जा सकती। किन्तु इस प्रकार काम देनेमें जल-सेनाध्यक्ष जिस धीरज और दिमागी ठंडेपनका प्रयोग किया है उसे हम सर्वोपरि मानते हैं। इसमें प्राप्त करने अथवा दुनियाको बहादुरी बतानेके उद्देश्यसे कुछ भी नहीं किया गया। हेतु एक ही था और वह यह कि सही वक्तपर और सही जगह उसको नष्ट करना यह उसने करके दिखा दिया है। और, जो रूस दो वर्ष पहले प्रायः अजेय माना जाता था इस समय जापानके काबूमें आ गया प्रतीत होता है। यह कहा जाता है कि इस युद्धसे जिसकी तुलना की जा सके ऐसा एक भी युद्ध तवारीखमें देखनेको नहीं मिलता। सदीमें इंग्लैंडकी एक बड़ी जीत हुई थी। स्पेनका बेड़ा अजेय था। वह छिन्न-भिन्न हो गया था और अंग्रेज जल-सेनाध्यक्षकी जीत हुई थी। वह लड़ाई बड़ी भारी मानी जाती है। किन्तु उसमें इंग्लैंडको दैवी सहायता मिली थी। स्पेनका बेड़ा बहुत बड़ा था भारी [illegible] थी और ऐन लड़ाईके मौकेपर ही ऐसी जोरकी आँधी चल पड़ी कि स्पेनका बेड़ा उसे बर्दाश्त नहीं कर सका। वह आँधी इंग्लैंडके बेड़ेके अनुकूल थी।

ट्रफ़ालगर अन्तरीपके पास १९वीं सदीमें नेल्सनने भारी विजय प्राप्त करके बेड़ेको प्रथम स्थान दिलाया किन्तु उस समय आजकल जैसे मजबूत जहाज नहीं थे। तब इस जमानेके भयानक हथियार नहीं थे।

जापानको कोई अनपेक्षित सहायता नहीं मिली। उसका तो केवल एक सपना यह था कि उसे जीतना ही है। वह निश्चय उसका सच्चा मित्र सिद्ध हुआ है। हार किसे है यह इस लड़ाईमें जापानने जाना ही नहीं है।

ऐसे महा कठिन पराक्रमका स्रोत क्या है? इस प्रश्नका उत्तर हमें बार-बार आवश्यकता है और वह एक ही है — ऐक्य स्वदेशाभिमान मर-मिटनेकी चाह। इस युद्धमें जापानियोंका उत्साह एकसा ही है। इसमें कोई किसीको ज्यादा नहीं मानता और सबके कुछ नहीं है। देशकी सेवा करनेके अतिरिक्त वे और कुछ नहीं जानते। जिस देशमें जन्म लिया जिन लोगोंमें वे पले और जिनके बीच उनको जीवन बिताना पड़ा उस समृद्ध होनेपर वे स्वयं समृद्ध बनें उस देशकी उन्नति होनेपर स्वयं उन्नत हों और उस राज्यसत्ता मिलनेपर ही उसके अंगके रूपमें राज्यसत्ताका उपभोग करें, ऐसा महान

स्वदेशाभिमान रहा है। इस प्रकारके ऐक्य तथा स्वदेशाभिमानमें प्राणोंके प्रति अनासक्तिका योग है। जापानमें इस समय ऐसी स्थिति है। इस तरहकी स्थिति संसारके किसी अन्य भागमें नहीं है। मृत्युका भय तो उन लोगोंने जाना ही नहीं है बल्कि देश-सेवामें मरना हर प्रकारसे अच्छा माना है। एक दिन तो सभीको मरना है, फिर लड़ाईमें ही मरनेमें क्या हानि है? लड़ाईमें नहीं जायेंगे तो घरमें बैठकर अधिक जियेंगे यह कोई निश्चय नहीं है। कदाचित् अधिक जियें तो भी पराजित लोगोंकी संतान बनकर रहनेमें क्या लाभ है? ऐसा विचार करके जापानी सरफरोश हुए हैं। जो लोग इस प्रकार अपने हाड़-मांस तथा रक्त देते हों व रणमें अजेय हों इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

ये विचार किस कामके हैं? हमें इनसे क्या सीखना है? दक्षिण आफ्रिकामें जो हम तुच्छ-सी लड़ाई लड़ रहे हैं इसमें हम ऐक्य नहीं पाते हैं; फूट-फाट चलती रहती है। स्वदेशाभिमानके बदले स्वार्थ अधिक दीख पड़ता है। मैं बच जाऊँ दूसरे भले ही जायें ऐसा खयाल मनमें रहता है। हमें अपने प्राण इतने प्यारे होते हैं कि हम इन प्राणोंसे मोह करते-करते ही चले जाते हैं। इस लोकमें कल्याण नहीं हो पाता तो परलोककी आशा किसे हो? हममें से ज्यादातर लोगोंकी ऐसी ही स्थिति नजर आती है। यदि हम लोग जापानके उदाहरणसे प्रेरणा लेकर उसका थोड़ा-सा भी अनुकरण कर सकें तो जापानके युद्धकी कहानी पढ़नेकी बात लाभदायक होगी। वैसे तो बहुत-से तोते राम राम रटते हैं किन्तु इससे वे स्वर्ग नहीं पहुँच जाते। इसी तरह इसे केवल पढ़ जानेसे हमें भी कोई लाभ नहीं है।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १०-६-१९०५

४१८. नेटाल भारतीय कांग्रेसकी सभामें भाषण

नेटाल भारतीय कांग्रेसकी एक सभा डर्बनमें श्री हाजी मुहम्मद हाजी दादाकी अध्यक्षतामें हुई थी। गांधीजीने उस अवसरपर भाषण करते हुए निम्न बातें कहीं

जून १८, १९०५

मेरी सलाह है कि कांग्रेसके सदस्य हुंडामलके परवानेके मुकदमेमें खर्च करनेका अधिकार कार्यवाहक मन्त्रियोंको दे दें। क्योंकि मुकदमा बहुत संगीन है और यदि संघर्ष नहीं किया गया तो भविष्यमें पछतानेका मौका आयेगा। श्री मदनजीत भारतमें हमारी ओरसे अच्छा आन्दोलन कर रहे हैं इसलिए उनको मददके तौरपर पैसा भेजा जाना चाहिए।

मैंने जोहानिसबर्गमें जो भाषण[1] दिये हैं जान पड़ता है कि कुछ लोगोंने उनका अनर्थ किया है। उन भाषणोंसे मेरा इरादा मुसलमानोंकी भावनाको ठेस पहुँचानेका नहीं था। हम लोगोंको हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच भेद नहीं करना चाहिए। हम लोगोंको अच्छी तरह समझना चाहिए कि फूटके कारण हम अपना दम खो बैठे हैं और जापानी लोग संगठन और एकताके बलपर कितना कर सके हैं। हम अलग-अलग धर्मोंके लोग हैं किन्तु हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि हम सार्वजनिक कार्योंमें एक ही हैं।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन १-७-१९०५

१. देखिए "हिन्दू धर्म" भाग ४ और ११ तथा जोहानिसबर्ग, अप्रैल १५, १९०५।

४२३. पत्र: टाउन क्लार्कको

[जोहानिसबर्ग]
जून २१, १९०५

सेवामें
टाउन क्लार्क
पी० ऑ० बॉक्स १ ४९
जोहानिसबर्ग

महोदय,

विषय: *भारतीयोंका नगरपालिकाकी ट्रामोंमें यात्राका अधिकार*

यदि ट्रामवे-समितिने इस मामलेपर विचार कर लिया हो तो मैं इस सम्बन्धमें प्रेषित अपने पत्रोंके उत्तरके लिए आपको धन्यवाद दूँगा।

मेरे मुवक्किलने मासिक पासके लिए प्रार्थनापत्र भेजा था। यदि समिति उसके प्रार्थनापत्रपर सहानुभूतिपूर्वक विचार न करे तो वह इस मामलेको आगे बढ़ानेके लिए उत्सुक है और अपने अधिकारकी परीक्षा करना चाहता है।

आपका आज्ञाकारी,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पत्र-पुस्तिका (१९०५) सं० १९७।

४२४. पत्र: पारसी रुस्तमजीको

[जोहानिसबर्ग]
जून २१, १९०५

श्री पारसी रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू
९, मंगवाड़ी गली
बम्बई

श्री सेठ रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू,

मैं पिछले सप्ताहमें डर्बन गया था। तभी दूकानपर भी गया। उमरसेठ, कैकुभाई, अब्दुल हक और मैं — साथ-साथ बैठे और हिसाब देखा। भाड़की आय बहुत घट गई है। वह २ पौंडके नीचे आ गई है तथा अभी और घटेगी। मगर इसका कोई उपाय नहीं है। एवान हॉल्मकी मकान-मालिकिनका मसविदा मिला। उसने कहा कि भाड़ा कम होगा तब तभी रहेगी। मैंने उसका भाड़ा कम करनेकी हाँ कर दी है। व्यापारमें भी कोई लाभ तत्त्व नहीं दिखाई देता। लेकिन अब्दुल हकमें हिम्मत है इसलिए उमर सेठकी सलाह है कि थोड़ा बहुत व्यापार करें। वे खुद हिम्मतसे रहनेकी बात कहते हैं। इसलिए मैं मानता हूँ कि थोड़ा व्यापार करनेमें हर्ज नहीं है।

४२६ पत्र "स्टार"को[1]

[जून २४, १९०५ के पूर्व]

[सेवामें
श्री सम्पादक
स्टार
जोहानिसबर्ग]

महोदय

मैं देखता हूँ कि श्री लवडेने इस उपनिवेशमें बड़ी संख्यामें भारतीयोंके आगमनके विषयमें अपना वक्तव्य फिर दुहराया है। इसमें उन्होंने उन सबूतोंकी पूरी उपेक्षा की है जिन्हें पहले जारी किये गये वक्तव्योंके बाद पेश करनेकी बात वे स्वीकार करते हैं। श्री लवडेका खयाल है कि परवाना-विभाग ब्रिटिश भारतीयोंको यहाँ आनेसे नहीं रोकता और जो लोग शरणार्थी नहीं हैं, वे भी इस उपनिवेशमें आ रहे हैं। मुख्य परवाना-सचिवकी रिपोर्टको देखनेके पश्चात्, कोई भी इसी नतीजेपर पहुँचेगा कि श्री लवडे उस रिपोर्टपर विश्वास करनेसे इनकार करते हैं। मैं तो यही कह सकता हूँ कि ब्रिटिश भारतीय शरणार्थियोंको भी इस उपनिवेशमें प्रविष्ट होनेमें बेहद कठिनाईका सामना करना पड़ता है। मेरे सामने परवाना-कार्यालयका एक पत्र है जो एक ब्रिटिश भारतीयको भेजा गया है। इस भारतीयने कोई सात महीने पूर्व परवानेके लिए प्रार्थनापत्र दिया था। प्राप्त पत्रमें उससे पूछा गया है कि क्या उसे अब भी परवानेकी जरूरत है। बेचारा शरणार्थी महीनों ट्रान्सवालमें अपना प्रवेशाधिकार सुनिश्चित किये जानेकी राह देखता रहा। उसके बाद निराश होनेसे भारत लौट गया। यह पत्र उन सज्जनने मुझे भेजा है जिनका पता वह परवाना-कार्यालयको दे गया था। और यह इस किस्मका एक ही मामला नहीं है। यूरोपीयोंको तो वे चाहे शरणार्थी हों चाहे न हों माँगते ही परवाने मिल जाते हैं, परन्तु भारतीय शरणार्थियोंको प्रवेशसे पूर्व कमसे-कम दो महीने इंतजार करना पड़ता है। और तिसपर भी प्रत्येक प्रार्थीको पहले अनेक जाब्तोंमें से गुजरना और बहुत-सा रुपया खर्च करना पड़ता है तब कहीं वह उपनिवेशमें प्रवेश कर सकता है। इनमें से कई शरणार्थी तो ऐसे हैं जो पुराने शासन-कालमें देशमें रहनेकी अनुमतिके मूल्यके रूपमें ३ पौंड कर दे चुके हैं। प्रार्थीको प्रार्थनापत्रका फॉर्म लेनेके लिए स्वयं किसी तटवर्ती नगरके परवाना-कार्यालयमें जाना आवश्यक है। फिर उसे वह फॉर्म वकीलसे भरवाना पड़ता है। उसके लिए भी वह प्रायः कुछ फीस देता है। जब प्रार्थनापत्र जोहानिसबर्गके परवाना-कार्यालयमें पहुँच जाता है तब जिन व्यक्तियोंके नाम हवालेके लिए दिये गये हैं उनको पत्र भेजे जाते हैं। अब इन व्यक्तियोंको हलफनामे देने पड़ते हैं जिनपर आधे क्राउनका स्टाम्प लगाना होता है। यदि पूर्व निवासके सम्बन्धमें प्रस्तुत साक्षी सन्तोषजनक समझी जाती है तो प्रार्थीको उपनिवेशमें प्रवेशका अधिकार देते हुए सूचना भेज दी जाती है। अन्त यहीं नहीं हो जाता। इसके बाद प्रार्थीको जोहानिसबर्ग पहुँचना, परवाना-कार्यालयमें जाना और जिरहके लिए खुद पेश होना पड़ता है। यदि वह वहाँ परीक्षक अधिकारीको सन्तुष्ट कर दे तो उसे उपनिवेशमें रहनेका स्थायी अधिकारपत्र मिल जाता

१. यह इंडियन ओपिनियनमें "श्री लवडे और शरणार्थियोंका प्रश्न" शीर्षकसे उद्धृत किया गया था।

कि इस समय इस उपनिवेशमें भारतीयोंकी संख्या १२ से कम है। श्री कावेने और भी कहा है कि नेटालके वे गिरमिटिया भारतीय जो हालमें मुक्त हुए हैं पॉचेफस्ट्रूम चले गये हैं और वहाँ बस गये हैं, एवं इस बातसे स्वयं पॉचेफस्ट्रूमके भारतीय भी नाराज हैं। क्या माननीय सज्जन उन भारतीयोंके नाम बतानेकी कृपा करेंगे जो इस प्रकार इस उपनिवेशमें आ गये हैं? यह ऐसा करेंगे तो निश्चय ही इससे उनके अपने निर्वाचक एशियाई-विरोधी पहरेदारों की भी बड़ी सेवा होगी। क्या वे उन भारतीयोंके नाम बतानेकी भी कृपा करेंगे जिन्होंने यह शिकायत की है कि यहाँ नेटालसे भारतीयोंकी बाढ़ आ रही है? यदि वे ऐसा नहीं कर सकते तो क्या वे उन गम्भीर वक्तव्योंको जो उन्होंने दिये हैं वापिस लेनेका सौजन्य दिखायेंगे?

आपका आदि,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

इंडियन ओपिनियन, २४-६-१९०५

४२७. पत्र : दादाभाई नौरोजीको[1]

[जून २४, १९०५ के पूर्व]

[सेवामें
माननीय दादाभाई नौरोजी
२२, कैनिंग्टन रोड
लन्दन, एस० ई०

महोदय,]

मैं इसके साथ *इंडियन ओपिनियनकी* प्रति भेज रहा हूँ। उसके सम्पादकीयसे यह मालूम होगा कि १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत अब भारतीयोंके लिए जमीनी मिल्कियत हासिल करना बिल्कुल नामुमकिन हो गया है। सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेके बाद वे अचल सम्पत्तिकी मिल्कियत हासिल करनेके लिए असली रूपमें स्वतन्त्र हैं, बशर्ते कि उनको कोई यूरोपीय मित्र ऐसा मिल जाये जो उनका स्वामी बन सके। मैं आपका ध्यान इस बातकी ओर इसलिए खींच रहा हूँ कि यदि यहाँ किसी कानूनका मसविदा बनाया जाये तो इस बातका तथ्य न मान लिया जाये कि १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत भारतीयोंका अचल सम्पत्ति रखना असम्भव है।

यहाँ जो-कुछ हो रहा है उससे जान पड़ता है कि १८८५ के कानून ३ की जगह जो नया कानून बनेगा वह यथासम्भव १८८५ के कानून ३ के ढंगका होगा; अर्थात् नेटाल-सरकारका इरादा भारतीयोंको १८८५ के कानून ३ के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारोंसे कुछ अधिक अधिकार देनेका नहीं है। इसलिए श्री लिटिलटनने जिस तरह यह कहा है कि सर्वोच्च न्यायालयके फैसलेको देखते हुए वे भारतीयोंके व्यापारिक अधिकारोंको सीमित करना मंजूर नहीं करेंगे और उन्होंने इस तरह एक रुख अपनाया है, उसी प्रकार अब उनका ऐसे किसी भी कानूनको मंजूर

1. यह उपलब्ध नहीं है। इसके अंश दादाभाई नौरोजीके उस पत्रमें उद्धृत किये गये हैं जो उन्होंने २८ जून १९०५को भारत-मन्त्रीको लिखा था।

इसका कारण यह बताया जाता है कि मनुष्यकी मनोवृत्तिकी परख संकटके समय होती है। जबतक किसीको सफलतापूर्वक अपराध करनेका मौका नहीं मिलता तबतक तो यही माना जाता है कि उसकी परीक्षा नहीं हुई। जब वह मौका मिलनेपर भी अचल रहे तभी यह गिना जाता है कि वह कसौटीपर खरा उतर गया। ऐसे मौकेपर ऐसी अटल दृढ़ता क्वचित् और विरले लोगोंमें ही पाई जाती है।

लड़ाई ज्यों-ज्यों बड़ी होगी त्यों-त्यों अन्धेरगर्दीकी सीमा बढ़ेगी। क्रीमियाकी लड़ाई[1] के षड्यन्त्रोंका जो भेद खुला और छोटे-मोटे दूसरे तथ्य प्रकाशमें आये वे अत्यन्त दुःखदायक जान पड़े। उस युद्धके समय सैनिकोंके लिए बहुतसे बूट थाकमें खरीदकर मोर्चेपर भेजे गये थे। सबके-सब बूट बायें पैरके थे। फौजके खानेके लिए ब्रिटेनसे बड़ी मात्रामें खाद्य-सामग्री रवाना की गई थी। वह खाद्य-सामग्री जब काममें लाई गई तब यह सहारा देनेके बदले गुनाहगार साबित हुई क्योंकि उसमें बहुत दिनोंका रखा हुआ सड़ा मांस था। यही नहीं कि इसमें केवल व्यापारी ही सवायती बननेके लिए धोखाबाजी करते थे बल्कि स्वयं युद्धभूमिपर गये हुए सेनापति और बड़ी संख्यामें अमूल्य प्राणोंकी आहुति देनेके लिए कटिबद्ध राजनीतिज्ञ और राज्यके तथाकथित हितचिन्तक नेता एवं मुखिया भी थे। शय्याओंपर पड़े हुए मरणासन्न सैनिकों और सरदारोंके लिए विशाल मात्रामें रवाना की हुई उपयोगी औषधियाँ उचित अस्पतालोंमें पहुँचनेके पहले ही अधबीच कहीं गायब हो गई थी। उनका कहीं पतातक नहीं चला। व्यापारी और तथाकथित देशभक्त सरदार या राज्यतन्त्रके संचालक देशकी खातिर घर-बार छोड़कर लड़ाईपर गये हुए सैकड़ों गरीब सैनिकोंकी बलि चढ़ाकर अपनी खाली थैलियाँ भरनेके लिए सैकड़ों उपयोगी और कीमती वस्तुएँ इस प्रकार हजम करते रहे। सेबस्टपोलपर जो सेना पड़ी हुई थी उसका वर्णन करते हुए समाचारपत्रके एक संवाददाताने जब पूरी खबर लिखकर भेजी तब वहाँकी जनता इतनी अधिक उत्तेजित हो गई कि तत्कालीन मन्त्रिमण्डलको त्यागपत्र देना पड़ा। इसके अतिरिक्त और भी भयंकर अत्याचारोंकी बहुत बड़ी सूची है। लेकिन वे घटनाएँ इस अन्तिम बोअर युद्धमें घटी घटनाओंके मुकाबिले उपेक्षणीय हैं। इस अन्तिम युद्धमें फौजके उपयोगके लिए खाद्य पदार्थों और कपड़े आदि वस्तुओंके जो ठेके दिये जाते थे उनकी और उन ठेकोंकी पूर्ति किस प्रकार की जाती थी इसकी बारीकीसे छानबीन करनेपर यह ज्ञात हुआ है कि जनताके पैसेकी निरी बरबादी ही हुई है। यह आपाधापी करनेवाले अधिकारियोंकी बदनियतोंका ही नतीजा है। अपने परिचित और कृपापात्र ठेकेदारोंको ठेके देनेवाले विभागोंकी ओरसे आँख मीचकर ठेके दिये जाते थे। इनमें कुछ सामानपर वे लोग ५ प्रतिशतसे ५ प्रतिशत-तक मुनाफा लेते थे। ऐसी अन्धेरगर्दी केवल ब्रिटेनमें ही नहीं थी। जब १८७१में फ्रांसने हार खाई सो केवल अपने जर्मनीके दास बने हुए सरदारोंकी वजहसे खाई थी। उस युद्धके समय फ्रांसीसी सरकारकी ओरसे प्रत्येक वस्तु तैयार रखी गई थी। प्रारम्भमें सारी व्यवस्था करनेमें लाखों और करोड़ों रुपये खर्च किये गये थे लेकिन वह सारा खर्च गुप्त रूपसे किया गया था। जो-कुछ चीजें संचित की गई थी वे सब केवल कागज पर ही। पैसा पानीकी तरह बहाया गया था। फिर भी लड़ाईमें काम आनेवाली वस्तुएँ तब लड़ाईके आरम्भमें ही कम पड़ गई थी। इस समयकी रूसी-जापानी लड़ाईकी खबरें भी हैरत-अंगेज हैं। गत अप्रैल मासमें मंचूरिया-स्थित फौजके और खाने-पीने और कपड़ेपर खर्च करनेके लिए रूसके ऑफ मार्जेसको दस लाख रूबल दिये गये थे। मई मासमें सामान्यतः यह माल मंचूरियाको रवाना कर दिया गया परन्तु वह वहाँ पहुँचनेके पहले ही मास्कोमें सीधा डॉकयार्ड पहुँच गया और वहाँसे

[1] रूस और मित्र राष्ट्रों अर्थात् टर्की इंग्लैंड फ्रांस और सार्डीनियाके बीच हुई थी (१८५३-१८५६)।

जमनाम   जाकर हजारों पौंड मूल्यका माल मित्रोंके मौज शौक [illegible]
और सरदारोंकी विधवाओंके लिए बड़ी मात्रामें धन इकट्ठा किया,
गरीब विधवाओंके हाथ एक दमड़ी भी नहीं लगी। युद्ध-स्थलमें भेजी
से चीनीके बजाय बालू निकली थी। ट्रान्स-आस्ट्रेलियन रेलवेमें लगाये
स्थल खर्च हुए वे कहाँ उड़ गये इसका पता नहीं लगा। इसके अतिरिक्त
मनमानी धाँधली और रिश्वत व भ्रष्टाचारके असंख्य किस्से लिखे गये हैं।

इसके मुकाबिलेमें जापानी लोगोंका आचरण इससे बिलकुल विपरीत
स्थितिका लाभ उठानेका इरादा किसी भी व्यापारी अथवा अधिकारीने नहीं
परिणाम यह हुआ है कि जापानी सेनाको बहुत थोड़े खर्चमें आवश्यक चीजें
हैं। दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईके सम्बन्धमें बटलर-आयोगने जो विवरण
उसमें बताया गया है कि उस समय जो अन्धेरगर्दी मची थी वह किसीसे छिपी
नहीं थी। आम जनताके धनका जो उपयोग हुआ वह अत्यन्त शोचनीय
इसमें से अधिकतर नुकसान अयोग्य अधिकारियोंके कारण हुआ था। वे अनुभवहीन और
थे। आयोगने और भी बताया है कि ऐसी बड़ी भूलके लिए अधिकारी ही जिम्मेदार
चाहिए। देशकी जो दौलत भारी-भारी करोंके रूपमें एकत्र की गई थी उसका बेहद
किया गया था और इसके लिए जो अधिकारी उत्तरदायी माने जाते थे वे अपनी आँखें
कान बन्द किये बैठे रहे थे। इस सम्बन्धमें सर्वसाधारणके कामको चलानेमें प्रामाणिकता
न्यायके लिए अंग्रेजी राज्यका जो नाम था उसपर बहुत कालिख लगी है। जब
भर्ती भ्रष्टाचार व रिश्वत और अप्रामाणिकताकी कोई हद नहीं रही है। आशा है,
लोग आयोगकी इस रिपोर्टसे चेतेंगे और यह अब भी जो-कुछ हो सकता है करेंगे।

[गुजरातीसे]

इंडियन ओपिनियन २४–६–१९०५

४३७ पत्र ई० इब्राहीम ऐंड कम्पनीको

[जोहानिसबर्ग]
जून १ १९०७

श्री ई० इब्राहीम ऐंड कं०
पो० बॉ० २७
स्टैंडर्टन

सेठ ई० इब्राहीमकी कम्पनी

आपका पत्र मिला। पंचोंने कोई खर्च ही नहीं लिया। श्री इस्माइल काजीके कामका बहुत-सा खर्च नहीं लिया। परन्तु फैसलेके सम्बन्धमें जो चिट्ठियाँ लिखी आपसे और श्री काजीसे मिला पंचोंको देनेके लिए कागजात तैयार किये और वे पंचोंके सामने पेश किये और बादमें पंचोंका काम किया — इस सबकी फीस १ गिनी होती है। मैंने यह सारी फीस जुदा-जुदा तो नहीं लिखी परन्तु जो कमसे-कम वाजिब लगी उतनी ही लिखी है। फिर भी अगर आप चाहें तो विगतवार बिल बनाकर भेज दूँगा। वह कितनी होगी सो नहीं कह सकता क्योंकि जो १ गिनी फीस नाम लिखी है वह इकट्ठी ही लिखी है।

आपका वकीलका खर्च नहीं मिल सकता क्योंकि उसके कामका सम्बन्ध पंचोंसे नहीं था। कुछ और पूछना हो तो पूछें।

मो० क० गांधीके सलाम

सामग्रीके साधन-सूत्र

कलोनियल ऑफिस रेकर्ड्स: औपनिवेशिक कार्यालय, लन्दनके पुस्तकालयमें रक्षित कागजात जिनमें दक्षिण आफ्रिकी राजकाज सम्बन्धी ज्यादातर सरकारी प्रलेख और कागजात भी शामिल हैं। देखिए खण्ड १ पृष्ठ ३५९।

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय और पुस्तकालय। देखिए खण्ड १ पृष्ठ ३५९।

गवर्नमेंट ऑफ साउथ आफ्रिका रेकर्ड्स: जो पीटरमैरित्सबर्ग और प्रिटोरिया आर्काइव्ज़में हैं।

इंडिया: भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समिति, लन्दनका मुखपत्र १८९०–१९२१। देखिए खण्ड २, पृष्ठ ४१।

इंडिया ऑफिस रेकर्ड्स: १९४७ तक लन्दन-स्थित इंडिया ऑफिसमें रक्षित उन भारतीय मामलोंसे सम्बन्धित प्रलेख और कागजात जिनका सम्बन्ध भारत-मन्त्रीसे था।

इंडियन ओपिनियन (१९०३–): डर्बनमें स्थापित साप्ताहिक पत्र, जो १९१४में दक्षिण आफ्रिकासे रवाना होनेतक लगभग गांधीजीके सम्पादनमें रहा। इसमें अंग्रेजी और गुजराती दो विभाग थे और कुछ समय तक हिन्दी और तमिल भी रहे।

पत्र-पुस्तिका (१९०५): फीनिक्ससे प्राप्त गांधीजीके लगभग एक हजार पत्रोंकी कार्यालय प्रतिका संक्षिप्त संग्रह। ये पत्र प्रायः व्यवसाय सम्बन्धी हैं और १ मई तथा १९ अगस्तके बीच १९०५ में लिखे गये थे।

[illegible]: जोहानिसबर्गके कांग्रीगेशनल चर्चका मुखपत्र।

साबरमती संग्रहालय, अहमदाबाद: पुस्तकालय और संग्रहालय जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल और १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं। देखिए खण्ड १ पृष्ठ ३६ ।

स्टार: जोहानिसबर्गसे प्रकाशित दैनिक सान्ध्य पत्र।

मार्च १९ : टाउन क्लार्कसे मुलाकात की और कहा कि नगर-परिषद कोई आर्थिक दायित्व नहीं ले सकती; अस्पतालकी व्यवस्थाकी और मिट्टीसे चिकित्सा करनेकी प्रेरणा दी। टाउन क्लार्कको बताया कि भारतीय प्लेगका मुकाबला करनेके लिए क्या-क्या कदम उठा रहे हैं।

मार्च २१ : स्टारके प्रतिनिधिने प्लेगकी समस्या पर मुलाकात की।

अप्रैल ५ : प्लेगकी महामारीके सम्बन्धमें जोहानिसबर्गके अखबारोंको पत्र लिखा। जोहानिसबर्गके स्वास्थ्य-चिकित्सा अधिकारी डॉ० पोर्टरके साथ किया गया पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया।

अप्रैल १४ : प्लेगके प्रश्नपर *रैंड डेली मेलको* पत्र लिखा।

अप्रैल १८ : लोक-स्वास्थ्य समितिको क्रूगर्सडॉर्पकी भारतीय बस्तीका तफसीलवार मूल्यांकन भेजा।

अप्रैल २ : प्लेग महारोगके सम्बन्धमें *इंडियाको* विस्तृत पत्र लिखा।

मई ११ : सर्वोच्च न्यायालयने निर्णय दिया कि १८८५ के कानून ३ में उल्लिखित "निवास" शब्दके अन्तर्गत व्यवसायका स्थान नहीं आता।

सितम्बर ३ (से पूर्व) : ब्रिटिश भारतीय संघकी ओरसे उपनिवेश-सचिवको प्रार्थनापत्र भेजा।

सितम्बर ३ : दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीयोंके प्रश्नपर *स्टारको* पत्र लिखा।

सितम्बर ५ : दादाभाई नौरोजीको पत्र लिखा कि भारतीय प्रश्नसे सम्बन्धित मामले संकटापन्न स्थिति में पहुँच चुके हैं।

अक्तूबर १ : *इंडियन ओपिनियनकी* पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली और साथ ही उसका प्रबन्ध भी सँभाला। टॉल्सटॉय पढ़े। डर्बनकी यात्रामें रस्किनकी *अन्टु दिस लास्ट* पुस्तक पढ़ी। उसमें निर्दिष्ट आधारपर एक बस्ती बसानेका निश्चय किया।

अक्तूबर : डर्बनमें अपने और अन्य भारतीय नेताओंके सम्मानमें आयोजित भोजमें आत्म-त्यागपर भाषण दिया।

अक्तूबर १५ : *इंडियन ओपिनियनके* मालिक श्री मदनजीतको भारत वापस जानेसे पूर्व विदाई देनेके लिए डर्बनमें किये गये समारोहमें भाषण दिया।

नवम्बर ३ : लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र देनेकी तारीख पूछनेके लिए उपनिवेश सचिव प्रिटोरियाको तार दिया।

नवम्बर : प्रिटोरियामें एशियाई-विरोधी सम्मेलन हुआ जिसमें ब्रिटिश भारतीयोंको उपनिवेशसे निकालनेके लिए कड़ी कार्रवाई करनेकी माँग की गई।

नवम्बर ११ : लॉर्ड रॉबर्ट्सको मानपत्र दिया।

नवम्बर १७ : ब्रिटिश भारतीयोंकी उस सभामें भाग लिया जो ट्रान्सवालमें एशियाइयोंके प्रवासके सम्बन्धमें आयोजित "सम्मेलन" की कार्रवाईका विरोध करनेके लिए की गई थी।

नवम्बर-दिसम्बर : फीनिक्स बस्तीकी स्थापना की।

दिसम्बर ३ : रैंड प्लेग-समितिके आदेशसे जो सामान नष्ट कर दिया गया था उसके हर्जानेकी माँगोंके सम्बन्धमें कार्यवाहक लेफ्टिनेंट गवर्नरको प्रार्थनापत्र भेजा।

दिसम्बर ९ : भारतीयोंके व्यापारिक परवानोंके सम्बन्धमें *स्टारको* पत्र लिखा।

दिसम्बर १४ : बंगाल भारतीय कांग्रेसकी बैठकमें परीक्षात्मक मुकदमेके सम्बन्धमें श्री हुंडामलको आर्थिक सहायता देनेका प्रस्ताव किया।

दिसम्बर २४ (से पूर्व) : एशियाई-विरोधी सम्मेलनमें भारतीयोंपर किये गये विद्वेषपूर्ण हमलेके जवाबमें *स्टारको* पत्र लिखा।

दिसम्बर २४ : फीनिक्स बस्तीसे *इंडियन ओपिनियनका* पहला अंक निकाला।

जनवरी १ : डर्बनमें पुस्तकालयके उद्घाटन-समारोहमें भाषण दिया।
जनवरी ११ : इंडियन ओपिनियनके सम्बन्धमें श्री पोलाक
बालकोंके लिए एक स्कूल खोलनेका इरादा व्यक्त किया।
फरवरी १७ : पारसी रुस्तमजीके साथ केप टाउन गये जोहानिसबर्गकी
मार्च ४ : जोहानिसबर्गकी थियोसॉफिकल सोसाइटीमें हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें
मार्च ९ : एल. डब्ल्यू. रिचको विदाई देनेके लिए जोहानिसबर्गमें दिये गये
मार्च ११ : हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें दूसरा व्याख्यान।
मार्च १८ : हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें तीसरा व्याख्यान।
मार्च २५ : हिन्दू धर्मके सम्बन्धमें चौथा और अन्तिम व्याख्यान।
अप्रैल ७ : नेटाल विधानसभाको उन विधेयकोंके सम्बन्धमें प्रार्थनापत्र भेजा जो
निगमोंसे सम्बन्धित कानूनके संशोधन और समन्वय" और "असभ्य जातियों
के नियमनके सम्बन्धमें रखे गये हैं।
मई : गांधीजी इन दिनोंके आसपास तमिल भाषा सीख रहे थे।
मई ९ : भारतके दुर्भिक्ष-पीड़ितोंकी सहायताके लिए धन-संग्रहके प्रयत्न किये।
जून ७ : नये उच्चायुक्त लॉर्ड सेल्बोर्नको मानपत्र भेंट किया।
जून १ : (के बाद) डर्बन और फीनिक्स बस्ती गये।
जून १९ : डर्बनमें नेटाल भारतीय कांग्रेसकी बैठकमें भाषण दिया।

सांकेतिका

इ

ई

सूची

ऐ

ओ

क

ठ

थ

द

फ

ब

भ

ल